

RAV-P-3

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला [संस्कृत ग्रन्थाङ्क-२४]



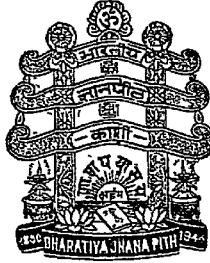
श्रीमद्भारविषेणाचार्यप्रणीतम्

पद्मपुराणम्

[पद्मचरितम्]

द्वितीयो भागः

हिन्दीभाषानुवादसहितः



—सम्पादक—

पण्डित पन्नलाल जैन साहित्याचार्य

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

प्रथम आवृत्ति
१९०८ प्रति

साध, वीर नि० २४म५
वि० सं० २०१५
फरवरी १९६६

{ मूल्य
दस रुपये

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला

संस्कृत ग्रन्थाङ्क २४

इस ग्रन्थमालामें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तामिल भादि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन और उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमाला सम्पादक
डॉ. हीरालाल जैन,
एम० ए०, डी० लिट्०
डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये,
एम० ए०, डी० लिट्०



प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक :—वाडूलाल जैन फागुल, सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

स्थापनान्द
फाल्गुन कृष्ण ६
वीर नि० २५७०

सर्वाधिकार सुरक्षित

विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी सः

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी



स्वर्गायि मूर्तिदेवी, मातेश्वरी साहू ज्ञान्तिनसाद जैन

JÑĀNAPĪTHA MURTIDEVĪ JAINA GRĀNTHAMĀLĀ
SANSKRIT GRANTHA, No 24

PADAMA PURĀṆA

[VOL.II]

of

RAVISENACĀRYA

WITH

HINDI TRANSLATION



EDITER

Pandit, PANNALAL JAN SAAITĪYĀGHARYA

Published by

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA KĀSHĪ

First Edition }
1100 Copies }

MAGHA VIRA SAMVAT 2485
V. S. 2015
FEBRUARY 1959

{ Price
Rs 10/-

विषयानुक्रमिका

छन्वीसवाँ पर्व

विषय	पृष्ठ
राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें स्थित सीता और भामरुडलके पूर्वभवोका वर्णन । सीता चित्तोत्सवा थी और भामरुडल कुरुडलमण्डित । कुरुडलमण्डितने चित्तोत्सवाका हरण किया था जिससे उसका पति पिङ्गल बहुत दुखी होता हुआ मरकर महाकाल नामका असुर हुआ । पूर्व वैरके कारण वह कुरुडलमण्डितको नष्ट करनेके प्रयत्नमें तत्पर रहने लगा । रानी विदेहाके गर्भसे एक साथ पुत्र और पुत्रीका जन्म हुआ । महाकाल असुर अबधिज्ञानसे पुत्रको अपनी स्त्रीका हरण करनेवाला—कुरुडलमण्डित जानकर रोषसे उबल पड़ा और उत्पन्न होते ही उसने उसका अपहरण कर पश्चात् दयासे द्रवीभूत हो उसे आकाशसे नीचे गिरा दिया । साथ ही उसे दिव्य कुरुडलतोसे अलङ्कृत भी कर दिया ।	१-१०
चन्द्रगति विद्यावरने आकाशसे पड़ते हुए पुत्रको फेला और अपनी अपुत्रवती पुष्यवती रानीको सौंप दिया । पुत्र जन्मका उत्सव मनाया गया और पुत्रका भामरुडल नाम रक्खा गया ।	११-१२
पुत्रापहरणके कारण राजा जनककी रानी विदेहाका कष्ट विलाप और राजा जनकके द्वारा सान्त्वनाका वर्णन ।	१३-१४
सीता-पुत्रीका बाल्यकाल तथा सौन्दर्यका वर्णन ।	१४

सत्ताईसवाँ पर्व

म्लेच्छ राजाओंके द्वारा राजा जनकके देशमें उपद्रव होना । सहायताके लिए राजा जनकका दशरथको बुलाना । दशरथका तत्काल वहाँ जाना और म्लेच्छोंको परास्त करना । दशरथके इस अमृतपूर्व सहयोगसे प्रसन्न होकर राजा जनकका, दशरथके पुत्र रामके लिए अपनी पुत्री सीताके देनेका निश्चय करना ।	१५-२२
--	-------

अट्ठाईसवाँ पर्व

नारद सीताके महलमें पहुँचे । सीता उस समय दर्पणमें मुल देख रही थी । नारदकी प्रतिकृति दर्पणमें देख सीता भयभीत हो उठी । नारद और अन्तःपुरकी स्त्रियोंके बीच होहल्ला सुन द्वारपालोंने उसे रोकना चाहा । पर नारद जिस किसी तरह वचकर आकाशमार्गसे उड़ कैलास पर्वत पर गये । वहाँ सीतासे बदला लेनेका विचार कर उसका चित्रपट बनाते हैं और उसे ले बाकर विजयार्थ पर्वत पर स्थित रथनूपुर नगरके राजाके उद्यानमें छोड़ दिये हैं । चित्रपटको देखकर भामरुडल उसपर मोहित हो उठता है । नारदने चित्रपटका परिचय दिया जिससे भामरुडलका व्यामोह बढ़ता गया ।	२३-३०
---	-------

राजा चन्द्रगतिकी संमतिसे चपलवेग नामका विद्याधर अश्वका रूप रख मिथिलासे राजा जनकको हरकर रथनूपुर नगर ले गया । राजा जनक वहाँका वैभव देखकर प्रसन्न हुआ । विद्याधरोंने राजा जनकके सामने भामरुडलके लिए सीता देनेका प्रस्ताव किया परन्तु राजा जनकने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया कि मैं दशरथके पुत्र रामके लिए पहलेसे देना निश्चित कर चुका हूँ । विद्याधरों द्वारा भूमिगोचरियोंकी निन्दा सुन राजा जनकने करार उत्तर दिया । अन्तमें 'यदि राम वज्रावर्त धनुष चढ़ा दैंगे तो सीता ले सकेंगे अन्यथा भामरुडल लेगा' इस शर्त

परजनक मिथिलामें वापिस आये । मिथिलामें स्वयंवर हुआ और रामने धनुष चबाकर सीताकी रत्नमाला प्राप्त की । लक्ष्मणने भी दूसरा धनुष चबाकर अठारह कन्याएँ प्राप्त कीं । भरतका राजा जनकके भाई जनककी पुत्री लोक-सुन्दरीके साथ विवाह हुआ ।

३०-४४

उनतीसवाँ पर्व

आपादी अष्टाह्निकामें राजा दशरथने भगवान्का अभिषेक कर गन्धोदक, सब रानियोंके पास भेजा । सुप्रभा रानीके पास एक वृद्ध कञ्चुकी ले गया इसलिए वह देरसे पहुँचा । अन्य रानियोंके पास तक्षण दासियों ले गई थीं इसलिए जल्दी पहुँच गया । सुप्रभाने इसे अपना अपमान समझ प्राणघात करनेके लिए विष मँगाया ।

४५-४७

कञ्चुकी विष लेकर सुप्रभाके पास पहुँचा ही था कि उसी समय राजा दशरथ उसके पास पहुँच गये । राजा तथा अन्य रानियाँ जब तक उसे समझाती हैं तब तक वृद्ध कञ्चुकी गन्धोदक लेकर आ पहुँचा ।

४७-४८

प्रसन्न होकर सुप्रभाने गन्धोदक शिर पर धारण किया । राजा दशरथने कञ्चुकीसे विल्म्व का कारण पूछा तो उसने अपनी वृद्ध अवस्थाको ही उसका कारण बतलाया । उसकी जर्जर अवस्था देख राजाको वैराग्य उत्पन्न हो आया । उसी समय अयोध्याके महेन्द्रोदय उद्यानमें सर्वभूतहित नामक मुनिराजका आगमन हुआ ।

४८-५३

तीसवाँ पर्व

विद्याधरोने यथार्थ बात भामण्डलसे छिपा रखी थी इसलिए वह सीताके मिलनेमें विल्म्व देख विह्वल हो उठा । निदान, एक दिन लज्जा छोड़ उसने पिताके समक्ष ही अपने मित्र वसन्त-ध्वजको उपासम्भ दिया । तब विद्याधरोने सब बात स्पष्ट कर दी । भामण्डल उत्तेजित हो उठा और सीताहरणकी भावनासे सेना लेकर अयोध्याकी ओर चला । विदग्ध नामक देशके मनोहर नगर पर जब उसकी दृष्टि पड़ी तब उसे पूर्वभवका स्मरण हो आया जिससे मूर्च्छित हो गया । सचेत होनेपर अपने कुविचारोंके प्रति उसे बहुत घृणा हुई । उसने चन्द्रयान विद्याधरको बताया कि मैं पूर्वभवमें यहाँका राजा कुरुडलमण्डित था । धर्मके प्रभावसे राजा जनकका पुत्र हुआ । उत्पन्न होते ही मेरा हरण हुआ । और आपके यहाँ पलकर मैं पुष्ट हुआ । जिस सीताके व्यामोहसे मैं उन्मत्त हो रहा था वह तो मेरी सगी बहिन है । अन्तमें भामण्डल सब लोगोंके साथ अयोध्याके महेन्द्रोदय उद्यानमें स्थित सर्वभूतहित मुनिराजके पास जाता है । चन्द्रयान विद्याधर दीक्षा लेनेका भाव प्रकट करता है । भामण्डलका विरदगान होता है जिसे सुनकर सीता जागती है । सर्वभूतहित मुनिके पास सबका मिलन होता है । सीता अपने भाईसे मिलती है । दशरथ राजा जनकको खबर देते हैं । राजा जनक सपरिवार आकर अपने जन्महृत पुत्रसे मिलकर परम आनन्दका अनुभव करते हैं । राजा जनक अपने राज्य अपने भाई जनकको सौंपकर भामण्डलके साथ विनयार्थ चले जाते हैं ।

५४-६६

इकतीसवाँ पर्व

सर्वभूतहित मुनिराजके द्वारा दशरथके पूर्व भवोंका वर्णन ।

६५-७२

पूर्वभवोंका वर्णन सुन राजा दशरथका विरक्त हृदय और भी अधिक विरक्त हो जाता है । वे मन्त्रियोंके समक्ष अपना अहार्थ निश्चय प्रकट कर रामके राज्याभिषेककी घोषणा करते हैं । समय पाकर भरतकी माँ कैकया, अपना पूर्वस्वीकृत वर माँगकर भरतके लिए राज्य माँगती है । राजा दशरथ असमझसमें पड़ जाते हैं । रामके समक्ष वे अपनी इस दुरवस्थाको प्रकट

करते है। राम दृढ़ताके साथ कहते हैं कि आप भरतको राज्य देकर अपने सत्यवचनको रक्षा कीजिये मेरी चिन्ता छोड़िये। इसी बीच भरत संसारसे विरक्त हो दीक्षाके लिए महलसे नीचे उतरता है तब राजा दशरथ और राम उसे जिस किसी तरह समझा बुझाकर रोकते है। भरतका राज्याभिषेक होता है।

७३-७८

पिताके पाससे उठकर राम अपनी माता अपराजिता (कौशल्या) के पास जाते हैं और उसे समझाकर तथा सान्त्वना देकर वनको जानेके लिए उद्यत होते है। सीता और लक्ष्मण उनके साथ हो जाते हैं। राम लक्ष्मणके साथ प्रजाके अनेक लोग थे। सूर्यास्तका समय आया और राम लक्ष्मण तथा सीता तीनों ही नगरके बाहर श्री जिनमन्दिरमें ठहर गये। दशरथकी अन्त्य रानिधोने उनके पास जाकर प्रार्थना की कि आप राम लक्ष्मणको लौटाकर शोकसागरमें डूबते हुए इस कुलकी रक्षा करो परन्तु दशरथके विरक्त हृदयने अब इस प्रपञ्चमें पडना उचित नहीं समझा।

७६-८५

वत्सीसर्वा पर्व

राम लक्ष्मण, सीताको साथ ले मध्यरात्रिके समय जब कि सब लोग ब्राह्मणपडमे सो रहे थे मन्दिरके पश्चिम द्वारसे निकलकर दक्षिण दिशाकी ओर चल पडे। प्रातः जागनेपर कितने ही लोग उनके पीछे दौडे तथा कुछ दूर तक साथ गये। अन्तमें परियात्रा नामक वनके बीचमें पडनेवाली भयंकर नदीको राम लक्ष्मण तैरकर पार कर गये परन्तु सामन्त एवं अन्य प्रजाजन उसे पार नहीं कर सके। फलस्वरूप कितने ही घर लौट गये और कितने ही दीक्षित हो गये। तदनन्तर राजा दशरथने सर्वभूतहित मुनिराजके पास दीक्षा धारण कर ली। कौशल्या और सुमित्रा पति एवं पुत्रके बिना बहुत दुःखी हुई। भरतकी माता केकया इन दोनोंकी दुःखपूर्ण अवस्था देख भरतसे कहती है कि तू राम लक्ष्मणको लौटानेके लिए जा। मैं भी पीछेसे आती हूँ। तदनन्तर सघन वनमें एक सरोवरके तीरपर भरतने राम लक्ष्मणको देखा। सबका मिलाप हुआ। केकया और भरतने वारिस चलनेका बहुत आग्रह किया परन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। राम वापिस नहीं लौटे। भरत निराश हो वापिस लौट आया और राज्यका पालन करने लगा। उसने द्युतिभट्टारकके समक्ष प्रतिज्ञा ली कि मैं राम के दर्शनमात्रसे मुनिदीक्षा ले लूँगा। द्युतिभट्टारकने सबको धर्मका यथार्थ उपदेश दिया। ८६-१००

तैत्तीसर्वा पर्व

क्रम-क्रमसे राम लक्ष्मण चित्रकूट वनको पारकर अवन्ति देशमें पहुँचे। वहाँ एक ऊबड़ देशको देख तत्रागत दीनहीन मनुष्यसे उसका कारण पूछा। उसने इसी प्रकारमें दशाङ्गपुरके राजा वज्रकर्णका वृत्तान्त सुनाया। तदनन्तर सिंहोदरकी उद्दण्डताका वर्णन सुनाया। सिंहोदर और वज्रकर्णके पारस्परिक संघर्षका निरूपण किया और वह बताया कि सिंहोदरने कुपित होकर इस हरे-भरे देशको ऊबड़ किया है।

१०१-११३

राम लक्ष्मण आहार प्राप्त करनेकी इच्छासे आगे बढ़ते हैं। लक्ष्मणके सौन्दर्यसे व्याकृत हो राजा वज्रकर्ण उसे उत्तमोत्तम भोज्यपदार्थ देता है। लक्ष्मण उन सबको लेकर रामके पास आता है। वज्रकर्णके इस आतिथ्य सत्कारका रामके हृदयमें भारी प्रभाव पड़ता है और वे लक्ष्मणको वज्रकर्णकी रक्षाके लिए भेजते हैं। लक्ष्मण भरतका सेवक बनकर सिंहोदरकी अक्ल ठिकाने लगाता है और उसे परास्तकर वज्रकर्णकी रक्षा करता है। अन्तमें वज्रकर्ण और सिंहोदरकी मित्रता कराकर राम लक्ष्मण आगे बढ़ते हैं।

११४-१२४

चौतीसवाँ पर्व

राम वनमें विराजमान हैं और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए एक सरोवरके किनारे जाते हैं। वहाँ हाथी पर चढा एक युवराज अपने सेवकोंके द्वारा लक्ष्मणको बुलाकर उसके प्रति प्रेम प्रकट करता है। लक्ष्मणके यह कहने पर कि प्रथम मुझे अपने भाईके पास भोजन सामग्री भेजना है। यह सुन उस युवराजने अपने पास उत्तमोत्तम भोजन सामग्री बुलाकर प्रधान द्वारपाल द्वारा राम और सीताको अपने मण्डपमें बुलाया। लक्ष्मण वहाँ विद्यमान था ही सीता और राम भी वहाँ पहुँच गये। सबका आतिथ्य सत्कार करनेके बाद युवराजने अपना असली रूप प्रकट किया। वह कन्या होने पर भी अचतक कुमारके वेषमें रह रहा था। पूछने पर उसने इसकी आश्चर्यकथा कह सुनाई। मेरा पिता बालिखिल्य मेरे जन्मके पूर्वसे ही भ्लेच्छ राजाके यहाँ कैद है। उनके अभावमें मैं कुमारका वेष रख राज्यका पालन कर रही हूँ मेरा नाम कल्याणमाला है। राम-लक्ष्मण-सीताने उसे सान्त्वना दी। तदनन्तर आगे चलकर उन्होंने भ्लेच्छ-राजाको आज्ञाकारी बनाकर बालिखिल्यको बन्धन-मुक्त कराया। १२५-१३२

पैंतीसवाँ पर्व

वन विहार करते-करते सीता थक जाती है। प्यासे उसका मुख सूख जाता है। जिस किसी तरह सान्त्वना देकर राम-लक्ष्मण उसे समीपवर्ती गाँवमें ले जाते हैं और सब क्रमप्राप्त कपिल ब्राह्मणकी यज्ञशालामें ठहर जाते हैं। ब्राह्मणकी द्वारा दिया ठण्डा पानी पीकर सीताका हृदय शान्त हो जाता है, परन्तु उसी समय लकड़ियोंका भार शिर पर रखे हुए कपिल ब्राह्मण आता है और इन्हें अपनी यज्ञशालामें ठहरा देकर ब्राह्मणकी प्रति रोषसे उबल उठता है। वह सबका तिरस्कार कर उन्हें घरसे निकलनेके लिए बाध्य करता है। उतेजित लक्ष्मणको शान्त कर राम और सीता वनमें एक बट वृक्षके नीचे पहुँच कर विश्राम करते हैं। आकाशमें धनषट्ठा उमड़ आती है। जोरदार वर्षा होने लगती है तथा राम-लक्ष्मण सीता असहायकी तरह पानीसे भीगने लगते हैं। यक्षपति अपने अत्रथिज्ञानसे उन्हें बलभद्र और नारायण जानकर नगरीकी रचना करता है और उसमें सबको ठहराता है। अचानक कपिल ब्राह्मण उस नगरीके पास जाकर जैन धर्म धारण करता है और रामकी दान-वीरतासे प्रलुब्ध चित्त हो ब्राह्मणकी साथ उनके दरबारमें जाता है। वहाँ लक्ष्मणको देख भयसे भागनेका प्रयत्न करता है पर सान्त्वना मिलने पर धीरजसे बैठकर रामका स्तवन करना है। राम उसे अपरिमित धनधान्य-सम्पदासे परिपूर्ण करते हैं। अपकारके बदले उपकारका अनुभव कर ब्राह्मण लज्जासे नतमस्तक हो गया। अन्तमें ब्राह्मणने गृहस्थीका भार स्त्रीके लिए सौंप जिन-दीक्षा धारण कर ली। १३३-१४६

छत्तीसवाँ पर्व

वर्षाकाल वीतने पर अन्न राम उस यक्ष निर्मित रामपुरीसे चलने लगे तब यक्षराजने उनसे ज्ञमा मोंगी। महावनको पारकर राम, वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे। रात्रिके समय एक वृक्षके नीचे ठहर गये। वैजयन्तपुरके राजा पृथिवीधर और रानी इन्द्राणीकी वनमाला नामक पुत्री प्रारम्भसे लक्ष्मणको चाहती थी पर उनके वन भ्रमणका समाचार सुन राजा पृथिवीधर उसका अन्व्य कुमारके साथ विवाह करनेके लिए उद्यत हुआ। यह देख, वनमाला आत्म-घातकी भावना लेकर रात्रिके समय अपनी सखियोंके साथ वनदेवीकी पूजाका बहाना कर वनमें गई और सायके सब लोगोंके सो जाने पर वह उत्तरीय वल्लकी फाँसी बना मरनेके लिए तैयार हुई। लक्ष्मणने छिपे-छिपे उसके पास पहुँच कर उसकी प्राण-रक्षा की।

अपने आपको प्रकट किया। रामके पास सब लोग पहुँचे। राजा पृथिवीधर रानी इन्द्राणीके साथ सन-धनकर उनके पास गये। आमोद-प्रमोदसे लक्ष्मणका वनमालाके साथ विवाह हुआ।

१४७-१५४

सैतीसाँ वर्ष

राजा पृथिवीधरके समामण्डपमें राम सुलासीन हैं उसी समय राजा अतिवीर्यका दूत एक पत्र राजा पृथिवीधरको देता है। उसमें लिखा था कि मैं अयोध्याके राजा भरतके प्रति अभियान कर रहा हूँ अतः सहायताके लिए सदल बल शीघ्र पधारो। रामके पूछने पर दूतने भरतके प्रति होनेवाले अभियानका कारण भी बताया। रामका संकेत पाकर राजा पृथिवीधरने दूतको आश्वासन देकर विदा किया। तदनन्तर परस्परके विचार-विमर्शके बाद, राम लक्ष्मण-सीता और पृथिवीधरके पुत्रोंके साथ अतिवीर्यकी राजधानीकी ओर चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बड़ी गम्भीरताके साथ कर्तव्य मार्गका निर्णय कर, राम-लक्ष्मण सीताको आर्थिकाश्रमोंके पास छोड़ नर्तकियोंके वेपमें अतिवीर्यके दरबारमें गये। वहाँ उन्होंने अपने अनुपम संगीतों और कलापूर्ण नृत्योंसे उसे मन्त्र-मुग्धकी तरह वशीभूत कर लिया। रङ्ग जमा हुआ देख नर्तकीने डौट दिखाते हुए कहा कि तू भरतके प्रति जो अभियान कर रहा है यह तेरी मृत्युका कारण है अतः यदि जीवित रहना चाहता है तो भरतको प्रणाम कर। इस प्रकार अपनी तर्जना और भरतकी प्रशंसा सुन क्रुद्ध हो अतिवीर्यने नर्तकियोंको मारनेके लिए जो तलवार ऊपर उठाई थी लक्ष्मणने उसे लपक कर छीन लिया और उससे ही सब राजाओंको भयभीत कर अतिवीर्यको जीवित पकड़ लिया। नर्तकियोंकी यह विचित्र शक्ति देख आगत राजा-महाराजा पलायमान हो गये। राम-लक्ष्मणने बन्धनबद्ध अतिवीर्यको ले जाकर सीताके सामने रख दिया। उसकी दुःखपूर्ण अवस्था देख सीता दयासे द्रवीभूत हो गई। फलस्वरूप उसने उसे छुट्टवा दिया। अतिवीर्यने सब मान छोड़ कर जिनदीक्षा धारण कर ली। राम-लक्ष्मण रात्रिभेद्यकी तरह अत्यन्त रूपसे भरतकी रक्षा कर आगे बढ़ गये।

१५५-१६६

अड़तीसवाँ पर्व

रामने अतिवीर्यके पुत्र विजयथका राज्याभिषेक किया। अतिवीर्यके मुनि होनेका समाचार सुन भरत उनके दर्शन करनेके लिए गया। दर्शन कर क्षमा मोगी, मुनिराजकी स्तुति की। भरतको नर्तकियोंका पता नहीं था अतः वह आश्चर्यसागरमें निमग्न था। वनमालाको आश्वासन दे राम-लक्ष्मण आगे बढ़े। क्षेमाञ्जलिपुर नगरके बाहर सब ठहरे। भोजनोपरान्त लक्ष्मण, रामकी आज्ञासे नगरमें प्रविष्ट हुए और वहाँके राजा शत्रुघ्ननकी शक्तिको फेल कर उसकी पुत्री जिनपद्माको अपने पर आसक्त किया। जिनपद्माका पिता राजा शत्रुघ्नन सेनाके साथ राम और सीताके पास गया। राम सेनाको आती देख पहले तो आश्चर्यमें पड़े परन्तु बादमें यथार्थ बातका पता चलने पर निश्चिन्त हुए। लक्ष्मणका जिनपद्माके साथ विवाह हुआ।

१६७-१७७

उनतालीसवाँ पर्व

राम-लक्ष्मण तथा सीताका वंशस्थद्युति नगरमें जाना, भागते नगरवासियोंके द्वारा पर्वतसे आते हुए भयङ्कर शब्दकी सूचना तथा रामके द्वारा उसका अनुसरण। देशभूषण तथा कुलभूषण नामक मुनियोंके दर्शन करके उनका अग्निप्रभ देवके द्वारा किये हुए उपसर्गको दूर करना। तथा मुनियोंको केवलज्ञान उत्पन्न होना। मुनियों द्वारा पश्चिमोत्तरीके राजा विजयपर्वत तथा रानी धारिणीके दूत अमृतस्वरके पुत्र उदित तथा मुदितकी कथाका भवान्तर सहित वर्णन, भवान्तर सहित देशभूषण तथा कुलभूषण मुनियोंका वर्णन।

१७८-१८४

चालीसवाँ पर्व

वंशस्थलपुरके राजा सुरप्रभ द्वारा चरमशरीरी रामका अभिवादन, रामचन्द्रका दण्डक वन प्रस्थान तथा रामगिरिका वर्णन ।

१६५-१६८

इकतालीसवाँ पर्व

राम-लक्ष्मण तथा सीताका कर्षारवा नदीको प्राप्त कर उसमें अवगाहन तथा सुगुप्ति और गुप्ति नामक दो मुनिशेको आहार दान देनेसे पञ्चाश्वर्यकी प्राप्ति । मुनिराजके दर्शनसे च्छ्र पत्नीका पूर्वभव ज्ञान उत्पन्न होना तथा मुनिवन्दनाके कारण दिव्य शरीरकी प्राप्ति, मुनि द्वारा च्छ्रके पूर्वभवका कथन, मुनिराज द्वारा अपने पूर्वभवका वर्णन कर अपने स्थानको प्रस्थान, राम द्वारा च्छ्रका 'जटायु' नाम करण तथा उसका रामके आश्रममें निवास ।

१६९-२१०

बयालीसवाँ पर्व

पाम्र दानके प्रभावसे राम-लक्ष्मण रत्न तथा सुवर्णादि सम्पदासे सम्पन्न हो गये । तदनन्तर वे मनोरथ रथ पर आरूढ हो दण्डक वनमें स्वेच्छानुसार भ्रमण करने लगे । नाना छन्दोमें दण्डक वनका अद्भुत वर्णन । वनके सौन्दर्यसे प्रसन्न हो राम पहले तो लक्ष्मणसे कहते हैं कि जाओ अपनी माताओंको ले आओ फिर कुछ रुक कर कहते हैं कि नहीं अभी वर्षा ऋतु है अतः यातायातमें कष्ट होगा । शरद् ऋतुके सुनहले दिन आने पर मैं स्वयं जाऊँगा ।

२११-२२१

तैंतालीसवाँ पर्व

शरद् ऋतुकी निर्मल चाँदनी आकाशमें झिटकने लगी । एक दिन लक्ष्मण वनमें भ्रमण करते करते दूर निकल गये । उन्हें एक ओरसे अद्भुत गन्ध आई उसी गन्धसे आकृष्ट हो वे उस ओर बढ़ते गये । श्रेणिकके फूलने पर गौतम स्वामीने राजस वंश तथा कंठाका वर्णन किया । एक बंसके भिड़ेंमें शम्बूक सूर्यहास खड्ग सिद्ध कर दिया था । देवोपनीत खड्ग आकाशमें लटक रहा था । उसीकी सुगन्धि सर्वत्र फैल रही थी । लक्ष्मणने लक्ष्मण सूर्यहास खड्ग हाथमें ले लिया और उसकी तीक्ष्णताकी परख करनेके लिए उसे उन्होंने उसी बंसके भिड़े पर चला दिया । चलाते ही बंसका भिड़ा कट गया और साय ही उसके भीतर स्थित शम्बूक भी कट कर दो टुक हो गया । शम्बूक, रावणकी वहिन चन्द्रनखाका पुत्र था । वह प्रतिदिन पुत्रको भोजन देनेके लिए आती थी । उस दिन पुत्रके दो टुक देख उसके दुःखका पार नहीं रहा । उसका करण विलाप आकाशमें गूँजने लगा । कुछ समय बाद राम-लक्ष्मणके सौन्दर्यसे उसका मन हरा गया और वह उन्हें प्राप्त करनेके लिए छुलसे कन्या बन गई । राम-लक्ष्मण उसकी मायासे विचलित नहीं हुए ।

२२२-२३१

बयालीसवाँ पर्व

कामेच्छा पूर्ण न होनेपर चन्द्रनखाको पुत्रशोकने फिर घर टनाया जिससे विलाप करती हुई वह अपने पति खरदूषणके पास गई । खरदूषणने स्वयं आकर पुत्रको मरा देखा । उसका क्रोध उबल पड़ा । वह राम लक्ष्मणके साथ युद्ध करनेके लिए उठ खड़ा हुआ । खरदूषणने रावणको भी इस घटनाकी खबर दी थी । खरदूषणका इंचर लक्ष्मणके साथ घमासान युद्ध होता है उचर रावण उसकी सहायताके लिए आता है सो वीचमें सीताको देख मोहित हो उठता है । छुलसे सिंहनाद कर रामको लक्ष्मणके पास भेज देता है और सीताको एकाकिनी देख हर ले जाता है । जटायु शक्ति भर प्रयत्न करता है पर सफलता नहीं प्राप्त कर पाता है । रणभूमिमें रामको देख लक्ष्मण घटित घटनाकी आशंकासे दुःखी हो उन्हें तत्काल वापिस भेजते हैं । पर राम वापिस आनेपर सीताको नहीं पाते हैं । उसके बिना करण विलाप करते हैं ।

२३२-२४३

पैतालीसवाँ पर्व

लक्ष्मण खरदूषणको निष्प्राणकर जब रामके पास आते हैं तब उन्हें सीतारहित देख बहुत दुःखी होते हैं। लक्ष्मण अपने उपकारी विराधित विद्याधरका रामको परिचय देते हैं। उसी समय विराधित सेना सहित रामके समीप आ पहुँचता है। रामको बहुत खुति करता है। लक्ष्मण उससे सीता हरणकी बात कहते हैं। विराधितने अपने मन्त्रियोंको सीताका पता लगानेका आदेश दिया। अर्कजटीका पुत्र रत्नजटी सीताका रोदन सुन रावणके पीछे दौड़ा परन्तु रावणने उसकी आकाशगामिनी विद्या छीनकर उसे नीचे गिरा दिया। वह समुद्रके मध्य कम्बु नामक द्वीपमें पड़ा। विद्याधरोंको सीताका पता नहीं लगा। अनन्तर विराधितके कदनेसे राम अलंकार पुर (पाताल लंका) गये। वहाँ सीताकी विरहानलमे झुञ्जसते रहे। २४४-२५१

द्विपत्नीसवाँ पर्व

रावण सीताको लेकर लकामें पहुँचा। वहाँ पश्चिमोत्तर दिशामें स्थित देवारण्य नामक उद्यानमें सीताको ठहराकर उससे प्रेम याचना करने लगा। शीलवती सीताने उसकी समस्त प्रार्थनाएँ झुकरा दीं। रावणने माया द्वारा सीताको भयभीत करनेका प्रयत्न किया पर वह कर्तव्य पथसे रक्षमात्र भी विचलित नहीं हुई।

रावणकी विप्रलम्भजन्य दुर्दशा देख मन्दोदरीने उसे बहुत समझाया पर सब व्यर्थ हुआ। रावण की दुर्दशासे दुखी हो मन्दोदरी सीताको समझानेके लिए गई पर सीताने ऐसी फटकार दी कि मन्दोदरीको उत्तर नहीं सूझ पड़ा। प्रातःकाल होने पर रावण पुनः सीताके पास गया पर सीताको अनुकूल नहीं कर सका। मन्त्रियोंद्वारा प्रकृत बातपर गम्भीर विचार विमर्श हुआ और लंकाकी रक्षाके उपाय किये गये। २५२-२६८

सैतालीसवाँ पर्व

विट सुग्रीवके द्वारा उपद्रुत होनेके कारण किष्किन्धापुरीका स्वामी सुग्रीव दुःखी होकर इधर-उधर भ्रमण करता फिरता था। उसी समय वह विराधितकी पाताललंकामें आया। विराधितने उसका सन्मान किया। वहाँ रामके साथ उसका परिचय हुआ। मन्त्रियोंने रामसे सुग्रीवकी दुःखद दशाका वर्णन किया जिसे सुनकर रामने उसकी सहायता करना स्वीकृत किया। रामने जाकर कुत्रिभ सुग्रीव साहसगति विद्याधरको निष्प्राण किया। सुग्रीवकी तेरह कन्याओंने रामको बरा***। २६९-२८०

अड़तालीसवाँ पर्व

राम सीताके विरहसे संतप्त हैं। सीताका पता चलानेमें सुग्रीवको विलम्ब युक्त देख लक्ष्मण उसके प्रति क्रुपित होते हैं। सुग्रीव रामके पास आकर क्षमा मांगता है और अपने सेवकोंको सीता का पता लगानेका आदेश देता है। रत्नजटीने पता दिया कि सीताको लंकाधिपति रावण हर कर ले गया है। रावणका नाम सुन विद्याधरोंके होश ठण्डे पड़ जाते हैं। रामके प्रबल आग्रह वश वानर यह कहकर सहयोग देनेको तत्पर होते हैं कि रावणकी मृत्यु कोटिशिला उठाने वालेके द्वारा होगी ऐसा अनन्तवीर्य मुनीन्द्रने कहा था सो यदि आप लोग कोटिशिला उठा सकें तो हम रावणके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हो सकते हैं। लक्ष्मणने उसी समय जाकर कोटिशिला उठा दी। वानर उनकी शक्तिका विश्वास कर युद्धके लिए तैयार हुए। २८१-२९८

उनचासवाँ पर्व

सुग्रीवने हनूमान्को बुलानेके लिए अपना कर्मभूति नामका दूत भेजा । इसने हनूमान्से खरदूषण की मृत्युका समाचार कहा जिससे उसके अन्तःपुरमें शोक छा गया । विट सुग्रीवके नाशका समाचार सुन हनूमान्की दूसरी स्त्री पद्मरागा प्रसन्न हुई । रामकी महिमा सुन हनूमान् उनके समीप आया और विनीत भावसे उनकी स्तुति कर सीताके पास राम संदेश भेजनेके लिए लंका गया ।

३६६-३०७

पचासवाँ पर्व

लंका जाते समय हनूमान् मार्गपतित मातामह महेन्द्रके नगरमें पहुँचा वहाँ उसके द्वारा किये हुए माताके अपमानका स्मरण होनेसे उसे बहुत रोष उत्पन्न हुआ जिससे उसने उसे बलपूर्वक परास्त किया । हनूमान्का आदेश पाकर राजा महेन्द्र अपनी पुत्री अञ्जनाके साथ मिला । ३०८-३१२

इक्यावनवाँ पर्व

दक्षिसुख द्वीपमें स्थित मुनिथोके ऊपर दावानलका उपसर्ग हनूमान्ने दूर किया । समीप स्थित गन्धर्व-कन्याओंने विद्यासिद्ध हो जानेके कारण हनूमान्के प्रति क्रुतशता प्रकट की । रामको गन्धर्व-कन्याओंकी प्राति हुई ।

३१३-३१६

बावनवाँ पर्व

अचानक अपनी सेनाकी गति रक जानेसे हनूमान् आश्चर्यमें पड़ा । आगे बढ़ कर उसने मायामय कोटको ध्वस्त कर दिया । और थोड़ी देरमें ही ब्रह्मासुथको प्राणरहित कर दिया । तदनन्तर उसकी पुत्री लंकासुन्दरीके साथ हनूमान्का विवाह हुआ ।

३१७-३२३

त्रेपनवाँ पर्व

हनूमान् लंकामें जाकर सर्व प्रथम विभीषणसे मिलता है और रावणके दुष्कृत्यका उसे उपालम्भ देता है । तदनन्तर विभीषणकी विवशताका विचार कर प्रमदोद्यानमें जाता है । वहाँ अशोक वृक्षके नीचे सीताको देख अपने जन्मको सफल मानता है । वह उसकी गोठमें रामप्रदत्त अंगूठी छोड़ता है । सीता उसे बुलाती है । वह प्रकट होकर विनीतभावसे सीताके समक्ष आता है और सीताके लिए रामका संदेश सुनाता है । ग्यारहवें दिन रामका संदेश पाकर सीता आहार ग्रहण करती है । मन्दीद्री आदिके साथ हनूमान्का संघर्ष होता है । हनूमान् उद्यानको क्षति ग्रस्त करता है । बन्धन बद्ध होने पर रावणके समक्ष उपस्थित होता है परन्तु अन्तमें बन्धन तोड़ तथा लंकाको नष्ट-भ्रष्ट कर रामके पास वापिस आ जाता है । ३४२-३४३

चौवनवाँ पर्व

वापिस आकर हनूमान्ने रामको सीताका सब समाचार सुनाया उसका चूड़ामणि उन्हें अर्पित किया । साथ ही सीताकी द्यनीय दशाका भी वर्णन किया । चन्द्रमरीचि विद्याधरकी प्रेरणासे उत्तेजित हो सब विद्याधरोंने रामको साथ ले लंकाकी ओर प्रस्थान किया ।

३४४-३५०

पचपनवाँ पर्व

लंकाके समीप पहुँचने पर राज्ञसंघमें क्षोभ उत्पन्न हो गया । इन्द्रजित् और विभीषणमें पर्याप्त वाक्संघर्ष हुआ । रावणसे तिरस्कार प्राप्तकर विभीषण लंका छोड़ कर रामसे आ मिला । ३५१-३५७

छप्पनवाँ पर्व

रावणकी अज्ञौहिणी आदि सेनाका वर्णन ।

३५८-३६०

सत्तावनवाँ पर्व

लंका निवासिनी सेनाकी तैयारी तथा लंकासे बाहर निकलनेका वर्णन । ३६१-३६६

अट्ठावनवाँ पर्व

नल और नीलके द्वारा हस्त और प्रहस्तका मारा जाना । ३६७-३७०

उनसठवाँ पर्व

श्रेणिकके पूछने पर गौतम स्वामी द्वारा हस्त-प्रहस्त और नल-नीलके पूर्वमवका वर्णन । ३७१-३७३

साठवाँ पर्व

अनेक राक्षसोंका मारा जाना तथा राम लक्ष्मणको दिव्यास्त्र तथा सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याओंकी प्राप्तिका वर्णन । ३७४-३८४

इकसठवाँ पर्व

सुग्रीव और भामरगडलका नागपाशसे बंधा जाना तथा राम-लक्ष्मणके प्रभावसे उनका बन्धन-मुक्त होना । ३८५-३८७

बासठवाँ पर्व

वानर और राक्षसवंशी राजाओंका युद्ध, विभीषण और रावणका संवाद, योद्धाओंकी रणोन्मादिनी चेष्टाएँ और रावणके द्वारा शक्तिका चलाया जाना । शक्तिके लगनेसे लक्ष्मणका मूर्च्छित हो पृथिवी पर गिर पड़ना । ३८८-३९५

तिरसठवाँ पर्व

शक्ति निहत लक्ष्मणको देख राम विलाप करते हैं । ३९६-३९८

चौसठवाँ पर्व

इन्द्रजित् मेघवाहन तथा कुम्भकर्णके मरनेकी आशंकासे रावण दुःखी होता है । लक्ष्मणके धायल होनेका समाचार सुन सीता भी बहुत दुःखी हुई । एक अपरिचित मनुष्य द्वारा लक्ष्मणकी शक्ति निकालनेका उपाय बताया जाता है, वह अपना परिचय देता है । विशल्याके पूर्वभवों तथा उसके वर्तमान प्रभावका वर्णन कर वह रामको सान्त्वना देता है । ३९९-४०७

पैंसठवाँ पर्व

उस अपरिचित प्रतिचन्द्र विद्याधरके वचनोंसे हर्षित हो रामने हनुमान् भामरगडल तथा अंगदको तत्काल अयोध्या भेजा । अयोध्यामें क्षोभ फैल जाता है । अनन्तर द्रोणमेघके पास भरतकी मा स्वयं गई और विशल्याको लंका भेजनेकी व्यवस्था की । विशल्याके लंका पहुँचते ही लक्ष्मणके वक्षःस्थलसे शक्ति निकल कर दूर हो गई और रामकी सेनामें हर्ष छा गया । विशल्याका लक्ष्मणके साथ विवाह हुआ । ४०८-४१४



पञ्चपुत्रसम्

श्रीमद्‌रविषेणाचार्यकृतम्

पद्मचरितापरनामधेयं

पद्मपुराणम्

षड्विंशतितमं पर्व

अतो जनकसम्यन्धं शृणु श्रेणिक ते परम् । निवेदयामि यद्वृत्तं भवावहितमानसः^१ ॥१॥
भामिनी जनकस्यासीद् विदेहा नाम सुन्दरी । गर्भनिर्वेदनं तस्याः प्रत्यैक्षत्^२ चिरं सुरः ॥२॥
जगाद् श्रेणिको नाथ तं गर्भं केन हेतुना । देवो ररञ्च विज्ञातुमेतदिच्छामि^३ शिष्यताम् ॥३॥
उवाच गौतमो राजा नाम्ना चक्रध्वजोऽभवद् । स्थाने चक्रपुराभिख्ये भार्या तस्य मनस्विनी ॥४॥
तयोश्चित्तोत्सवापत्यं कन्या गुरुगृहे च सा । रराज सितमृगेशैर्लखनी वर्णपूरिका ॥५॥
राज्ञः पुरोहितस्यास्य धूमकेशस्य पिङ्गलः । स्वाहाकुक्षिमवोऽधीते सुतस्तत्रैव पाठके ॥६॥
विद्यालामस्तयोर्नासीदन्योन्व्यहृतचेतसोः । विद्याधर्मावगाहश्च जायतेऽत्रहितात्मनाम् ॥७॥
पुरा संसृतः प्रीतिः प्राणिनामुपजायते । प्रीतितोऽभिरतिप्राप्ती रतेर्विश्रम्भसंभवः ॥८॥
सद्भावाद् प्रणयोपतिः प्रेमैवं पञ्चहेतुकम् । दुर्मोचं वध्यते कर्म पातकैरिव पञ्चभिः ॥९॥

अथानन्तर गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब राजा जनकका वृत्तान्त कहता हूँ सो तुम सावधान चित्त होकर सुनो ॥१॥ राजा जनककी विदेहा नामकी सुन्दरी स्त्री थी । उसके गर्भ रहा, सो एक देव चिरकालसे उसके गर्भकी प्रतीक्षा करने लगा ॥२॥ यह सुन राजा श्रेणिकने कहा कि नाथ ! वह देव किस कारणसे विदेहाके गर्भकी रक्षा करता था ? यह मैं जानना चाहता हूँ सो कहिए ॥३॥ इसके उत्तरमें गौतमस्वामीने कहा कि चक्रपुरनामा नगरमें एक चक्रध्वज नामका राजा था । उसकी स्त्रीका नाम मनस्विनी था ॥४॥ उन दोनोंके चित्तोत्सवा नामकी कन्या उत्पन्न हुई । वह कन्या गुरुके घर अर्थात् चाटशालामें खड़िया मिट्टीके टुकड़ोंसे वर्णमाला लिखती हुई सुशोभित होती थी ॥५॥ उसी गुरुके घर राजाके पुरोहित धूमकेशकी स्वाहा नामकी स्त्रीसे उत्पन्न पिङ्गल नामका पुत्र भी अध्ययन करता था ॥६॥ चित्तोत्सवा और पिङ्गल इन दोनोंका चित्त परस्परमें हरा गया इसलिए उन्हें विद्याकी प्राप्ति नहीं हो पाई । सो ठीक ही है क्योंकि विद्या और धर्मकी प्राप्ति स्थिरचित्तवालोंको ही होती है ॥७॥ आचार्य कहते हैं कि पहले स्त्री पुरुषका संसर्ग अर्थात् मेल होता है फिर प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिसे रति उत्पन्न होती है, रतिसे विश्वास उत्पन्न होता है और तदनन्तर विश्वाससे प्रणय उत्पन्न होता है । इस तरह प्रेम पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे उत्पन्न होता है । जिस प्रकार हिंसादि पाँच पापोंसे जो छूट न सके ऐसे कर्मका बन्ध होता है उसी प्रकार पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे प्राणियोंके गाढ़ प्रेम उत्पन्न होता है ॥५-९॥

अयामौ ज्ञातस्तद्वाचा तेन चिचोत्सवा र्हः । हियतेन महारुष्या कान्तिर्दुर्घशस्ता यथा ॥१०॥
 दूरं देशं यद्गमामि तदाज्ञायि सुवन्धुभिः । हता प्रयाइदोपेग मोहेन सुगतिर्यथा ॥११॥
 कन्याया मुदितश्रैरः पिङ्गलो धनवर्जितः । न विभावति यथा लोभो नृपगया धनवर्जितः ॥१२॥
 विद्वन्धनगरं चाप दुर्गमं परराष्ट्रिणाम् । बहिः कृत्वा कुर्वी तत्र तस्यै निःस्वकपादके ॥१३॥
 ज्ञानविज्ञानरहितस्तृगकाष्टाद्विक्रयाम् । अनुरञ्जति तां पत्नीं मन्गो दारिद्र्यसागरे ॥१४॥
 पुत्रः प्रकाशसिंहस्य परराष्ट्रनयकरः । जातोऽत्र प्रवरावस्थां राजा कुण्डलमण्डितः ॥१५॥
 तेन दृष्टान्यदा बाला नियतितेन क्रयञ्जन । हतश्च पञ्चमित्रागैर्माँरल्याभूत् सुदुर्भक्तितः ॥१६॥
 प्रच्छन्नं प्रेषिता दूता तया राज्ञी नृपालयम् । यथासीत् कमलानेला सुसुजस्य प्रवेशिता ॥१७॥
 तथा तह सुन्नं रेमे प्रीतः कुण्डलमण्डितः । उर्वरया सह संरक्तो ययासाँसलकृत्वरः ॥१८॥
 ततः स पिङ्गलाख्योऽपि श्रान्तः स्तवगुह्यनगनम् । तामपरयन् विशालाक्षीं मन्गो वैदुर्यसागरे ॥१९॥
 विस्तार्णैण किमुक्तेन सोऽयं विरहदुःखितः । न क्वचिह्नते सौख्यं चक्राल्द इवाकुलः ॥२०॥
 हृतभार्यो द्विजो द्रुमस्तं राजानमुपागमम् । ऊचे चान्विध्व मे राजन् पत्नी केतापि चौरिता ॥२१॥
 भाँपितानां दरिद्राणानातांवां च विशेषतः । नारीणां पुत्ररागां च स्वर्षां शरणं नृपः ॥२२॥

अथानन्तर जब पिङ्गलको चित्तोत्सवाके अभिप्रायका पूर्ण ज्ञान हो गया तब वह उस रूपवतीको एकान्त पाकर हर ले गया । जिस प्रकार अपयशके द्वारा क्रांतिका अपहरण होता है उसी प्रकार पिङ्गलके द्वारा चित्तोत्सवाका हरण हुआ ॥१०॥ जब वह उसे बहुत दूर देशमें ले गया तब बन्धुजनोंको उसका पता चला । जिस प्रकार मोहके द्वारा उत्तम रातिका हरण होता है उसी प्रकार प्रमादके द्वारा उस कन्याका हरण हुआ था ॥११॥ इधर कन्याको सुरानेवाला पिङ्गल कन्या पाकर प्रसन्न था, पर निर्धन होनेके कारण वह उससे उस प्रकार सुराभित नहीं हो रहा था जिस प्रकारकी धर्महीन लोभो मनुष्य चण्यासे सुराभित नहीं होता है ॥१२॥ पिङ्गल कन्याको लेकर जहाँ दूसरे देशके लोगोंका प्रवेश नहीं हो सकता था ऐसे विद्वन्धनगरमें पहुँचा और वहाँ नगरके बाहर जहाँ अन्य दरिद्र मनुष्य रहते थे वहीं कूटी बनाकर रहने लगा ॥१३॥ वह ज्ञान-विज्ञानसे रहित था साथ ही दरिद्रतारूपी सागरमें भी निमग्न था इसलिये चण, काष्ठ आदि वैचकर अपनी उस पत्नीकी रक्षा करता था ॥१४॥

उसी नगरमें राजा प्रकाशसिंह और प्रवरावली रानीका पुत्र राजा कुण्डलमण्डित रहता था जो कि शत्रुओंके देशको भय उत्पन्न करनेवाला था ॥१५॥ एक दिन वह नगरके बाहर गया था सो वहाँ चित्तोत्सवा उसकी दृष्टिमें आई । देखते ही वह कामके पँचों चाँगोंसे वाहिन होकर अत्यन्त दुःखी हो गया ॥१६॥ उसने गुमरूपसे चित्तोत्सवाके पास दूती भेजी सो उस दूतीने उसे रात्रिके समय राजमहलमें उस तरह प्रविष्ट करा दिया जिस प्रकार कि पहले राजा सुसुतको दूतीने कमलानेलाको उसके महलमें प्रविष्ट कराया था ॥१७॥ जिस प्रकार अनुरागसे भरा नलकृत्वर उर्वशीके साथ रमण करता था उसी प्रकार प्रीतिते भरा कुण्डलमण्डित उस चित्तोत्सवाके साथ रमण करने लगा ॥१८॥

तदनन्तर जब वह पिङ्गल यकाभाँड़ा अपने घर आया तो उस विशाल लोचनाको न देखकर दुःखरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥१९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि अधिक कृहेनेसे क्या ? उसके विरहसे दुःखी हुआ वह चक्राल्दकी तरह भाइल होवा हुआ किसी भी जगह सुन्न प्राप्त नहीं करता था ॥२०॥ तदनन्तर जिसकी भार्या हरी गई थी ऐसा वह द्रुमहीन ब्राह्मण राजाके पास गया और जिस किसी तरह राजाका पता चलाकर बोला कि हे राजन् ! किसीने मेरी स्त्री चुरा ली है ॥२१॥ राजा ही सबका शरण है और खासकर जो स्त्री-पुरुष भयभीत, दरिद्र

अमात्यं धूर्तमाहूय समायं पार्थिवोऽब्रवीत् । चिराय मा कृया माम जायास्यान्विव्यतामिति ॥२३॥
जगदेति च तत्रैकः सन्निकारेण चक्षुषा । सा दृष्टा पथिकैर्देव पौदनस्थानवर्त्मनि ॥२४॥
चान्धार्याद्वृन्दमध्यस्था^२ तपः कर्तुं समुद्यता^३ । विनिवर्तय तां चिप्रं किं चिरौपि ब्रज द्विज ॥२५॥
को वा ब्राह्मणकालोऽस्या दृधत्यास्तरुणी तनुम् । वरक्रीगुणपूर्णाया हरन्यास्तरुणं जनम् ॥२६॥
इत्युक्ते द्विज उत्याय वदध्वा परिकरं ददम् । दधाव रंहसा विद्वो अष्टाश्वतरको यथा ॥२७॥
पौदने नगरेऽन्विव्य चैत्येषूपवनेषु च । अदृष्ट्वा पुनरागच्छद् विदग्धनगरं द्रुतम् ॥२८॥
नृपाज्ञया नरैः क्रूरैर्गलघातैः स तर्जनैः । यष्टिलोष्टप्रहारैश्च दूरं निर्वासितो मृशम् ॥२९॥
स्थानभ्रंशं परिवलेशमवमानं वधं तथा । अनुभूय परं दीर्घमध्वानं स प्रपन्नवान् ॥३०॥
रतिं न लभते क्वापि रहितः प्रियया तया । शुष्यत्यहनि रात्रौ च पतितोऽग्नाविवोरगः ॥३१॥
विशालपङ्कजवनं दावाग्निमिव पश्यति । सरोऽपि ग्राहमानोऽसौ दृश्यते विरहाग्निना ॥३२॥
एवं सुदुःखितमतिः पर्यटन् पृथिवीतले । नगरस्य स्थितं द्वारै^४ ददर्श^५ गगनाम्बरम् ॥३३॥
आचार्यमार्यगुप्तं^६ च समेत्य रचिताङ्गलिः । प्रणम्य शिरसा दृष्टो धर्मं शुभ्राव तच्चतः ॥३४॥
श्रुत्वा धर्मं सुनेः प्राप्तः स वैराग्यमनुत्तमम् । प्रधाशंस जिनेन्द्राणां शासनं शान्तमानसः ॥३५॥
अहो परममाहात्म्यो मार्गोऽयं जिनदेशितः । ममान्धकारयात्सय यो भास्कर इवोदितः ॥३६॥

तथा दुःखी होते हैं उनका राजा ही शरण होता है ॥२२॥ यह सुन राजाने एक धूर्तमन्त्रीको बुलाकर मायासहित कहा कि विलम्ब मत करो, शीघ्र ही इसकी खीका पता चलाओ ॥२३॥ तब एक मन्त्रीने विकारसहित नेत्र चलाकर कहा कि हे राजन् ! उस खीको तो पथिकोंने पौदनपुरके मार्गमे देखा था ॥२४॥ वह आर्यिकाओके समूहके बीचमे स्थित थी तथा शान्तिपूर्वक तप करनेके लिए तत्पर जान पड़ती थी । अरे ब्राह्मण ! जल्दी जाकर उसे लौटा ला । इधर क्यों रो रहा है ? ॥२५॥ जब कि वह यौवनपूर्ण शरीरको धारण कर रही है, उत्तम स्त्रियोंके गुणोंसे परिपूर्ण है तथा तरुण जनोको हरनेवाली है तब उसका यह तप करनेका समय ही कौन-सा है ? ॥२६॥ मन्त्रीके ऐसा कहते ही वह ब्राह्मण उठा और अच्छी तरह कमर कसकर वेगसे इस प्रकार दौड़ा जिस प्रकार कि बन्धनसे छूटा घोड़ा दौड़ता है ॥२७॥ वहाँ जाकर उसने पौदनपुरके मन्दिरों तथा उपवनोमे अपनी खीकी बहुत खोज की । जब नहीं दिखी तब वह पुनः शीघ्र ही विदग्धनगरमें वापिस आ गया ॥२८॥ राजाकी आज्ञासे दुष्ट मनुष्योंने उसे गलेमे घिन्ना देकर नाना प्रकारकी डोंट दिखाकर तथा लाठी और पत्थरोंसे मारकर बहुत दूर भगा दिया ॥२९॥ स्थान भ्रंश, अत्यन्त क्लेश, अपमान और मारका अनुभव कर उसने लम्बा रास्ता पकड़ लिया अर्थात् वह बहुत दूर चला गया ॥३०॥ खीके बिना वह कहीं भी रतिको प्राप्त नहीं होता था । वह अग्निमे पड़े हुए सोंपके समान रात-दिन सूखता जाता था ॥३१॥ वह कमलोंके विशाल वनको दावानलके समान देखता था और सरोवरमें प्रवेश करते समय विरहाग्निसे जलने लगता था ॥३२॥ इस प्रकार दुःखित हृदय होकर वह पृथिवीपर घूमता रहा । एक दिन उसने नगरके द्वारपर स्थित आर्यगुप्त नामक दिगम्बर आचार्यको देखा । उनके पास जाकर उसने हाथ जोड़कर शिरसे प्रणाम किया तथा हर्षित हो धर्मका यथार्थ स्वरूप सुना ॥३३-३४॥ मुनि-राजसे धर्म श्रवणकर वह परम वैराग्यको प्राप्त हुआ तथा शान्त-चित्त होकर इस प्रकार जिन-शासनकी प्रशंसा करने लगा ॥३५॥ कि अहो ! जिन भगवान्के द्वारा प्रदर्शित यह मार्ग उल्लूख प्रभावसे सहित है । मैं अन्धकारमे पड़ा था सो यह मार्ग मेरे लिए मानो सूर्यके समान ही -

१. मायासहितं यथा स्यात्तथा । १. मध्यस्था म० । ३. समुद्यतां म० । ४. ग्राहमानो म० । ५. दूरे व०, क०, ख० । दूर म० । ६. दिगम्बरसुनिम् । ७. -मर्यगुप्तिं च म० ।

प्रपद्येऽहं जिनेन्द्राणां शासनं पापनाशनम् । देहं निर्वापयाम्यथ दग्धं विरहवह्निना ॥३७॥
 ततः संवेगमापद्य शुक्रणाम्बुनुमोदितः । कृत्वा परिग्रहत्यागं दीर्घां दैगम्बरीमितः ॥३८॥
 तथापि विहरन् चोर्णां सर्वसङ्गविवर्जितः । चित्तोत्सवासमुत्कण्ठां जातुचिप्रत्यपद्यत ॥३९॥
 सरित्पर्वतदुर्गेषु रमशानेष्वटवीषु च । वसन् स परमं चक्रे तपो विग्रहशोषणम् ॥४०॥
 न यस्य जलदधान्ते काले खेदं गतं मनः । हेमन्ते हिमपङ्केन वपुर्यस्य न कम्पितम् ॥४१॥
 पूष्णो यस्य करैश्चैस्तापोऽशुरपि नो कृतः । स्मृत्यासीदत् सतां जातु स्नेहस्य किमु दुष्करम् ॥४२॥
 दह्यमानं तथाप्येव शरीरं विरहाग्निना । पुनर्विध्यापयन्मैत्रैवचनो^१ दकलीकरैः ॥४३॥
 अधदग्धतरुच्छायं तत्तस्य वपुरागतम् । रमणीस्मरणेनोत्प्रतपसा च निरन्तरम् ॥४४॥
 आस्तां तावद्विदं वक्ष्ये 'मण्डितस्याधुनेहितम्' । कथा ह्यन्तरयोगेन स्थिता रत्नावली यथा ॥४५॥
 अनरण्ये च राज्यस्य वृत्तमेतद्विदुष्यताम् । कथानुक्रमयोगेन कथ्यमानमतः शृणु ॥४६॥
 स्थानं दुर्गं समाश्रित्य मण्डितेन वसुन्धरा । विराधितानरण्यस्य कुशीलेन यथा स्थितिः^२ ॥४७॥
 देशा उद्रासिता तेन दुर्जनेन गुणा यथा । विरोधिताश्च सामन्ताः कषायो^३ इव योगिना ॥४८॥
 नाशवनोद्वनरण्यस्थं गृहीतुं छुद्रमप्यलम् । आखोगिरिविलस्थस्य किं करोतु^४ शृगाधिपः ॥४९॥

उदित हुआ है ॥३६॥ मैं पापको नष्ट करनेवाले जिनशासनको प्राप्त होता हूँ और विरहरूपी अग्निसे जले हुए इस शरीरको आज शान्त करता हूँ ॥३७॥ तदनन्तर संवेगको प्राप्त हो तथा गुरुकी आज्ञा लेकर उसने परिग्रहका त्याग कर दिया और दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली ॥३८॥ यद्यपि वह समस्त परिग्रहसे रहित हो पृथिवीपर विहार करता था तथापि जब कभी भी चित्तोत्सवाके विषयमें उत्कण्ठित हो जाता था ॥३९॥ नदी, पर्वत, दुर्ग, रमशान और अटवियोंमें निवास करता हुआ वह शरीरको सुखानेवाला परम तपश्चरण करता था ॥४०॥ मेघोसे अन्धकारपूर्ण वर्षाकालमें उसका मन खेदको प्राप्त नहीं होता था और न हेमन्त ऋतुमें हिमके पङ्केसे उसका शरीर कम्पित होता था ॥४१॥ सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंसे उसे थोड़ा भी सन्ताप नहीं होता था । वह सदा सत्पुरुषोंका स्मरण करता रहता था सो ठीक ही है क्योंकि स्नेहके लिए कौन-सा कार्य दुष्कर अर्थात् कठिन है ? ॥४२॥ यह सब था तो भी उसका शरीर विरहाग्नि से जलता रहता था जिसे वह जिनेन्द्र भगवान्के वचनरूपी जलके छींटोंसे पुनः-पुनः शान्त करता था ॥४३॥ इस प्रकार निरन्तर होनेवाले स्त्रीके स्मरण तथा उग्र तपश्चरणसे उसका वह शरीर अधजले वृक्षके समान काला हो गया था ॥४४॥

अथानन्तर गौतमस्वामी कहते हैं कि अब यह कथा रहने दो । इसके बाद कुण्डलमण्डित की कथा कहता हूँ सो सुनो ! यथार्थमे जिस प्रकार रत्नावली वीच-वीचमें दूसरे रत्नोंके अन्तरसे निमित्त होती है उसी प्रकार कथा भी वीच-वीचमें दूसरी-दूसरी कथाओंके अन्तरसे निर्मित होती है ॥४५॥ जिस समय राजा अनरण्य राज्यमे स्थित थे अर्थात् राज्य करते थे उस समय की यह कथा है सो कथाके अनुक्रमसे कही जानेवाली इस अवान्तर कथाको सुनो ॥४६॥ कुण्डलमण्डित दुर्गम गढ़का अवलम्बन कर सदा अनरण्यकी भूमिको उस तरह विराधित करता रहता था जिस प्रकार कि कुशील मनुष्य कुलकी मर्यादाको विराधित करता रहता है ॥४७॥ जिस प्रकार दुर्जन गुणोंको उजाड़ देता है उसी प्रकार उसने अनरण्यके बहुतेसे देश उजाड़ दिये और जिस प्रकार योगी कषायोंका अवरोध करते हैं उसी प्रकार उसने बहुतेसे सामन्तोंका अवरोध कर दिया ॥४८॥ यद्यपि वह छुद्र था तो भी अनरण्य उसे पकड़नेके लिए समर्थ नहीं हो

१. गुरुणात्बुनुमोदितः म० । २. प्राप्तः । ३. चित्तोत्सवा समुत्कण्ठा म० । ४. प्रतिपद्यत म० । ५. जलधेर्घान्ते म० । ६. पूष्णोर्बस्य म० । ७. वचनोत्कर -म० । ८. कुण्डलमण्डितस्य । ९. दितः ख० । १०. विरोधितानरण्यस्य । ११. स्थितेः म० । १२. कषाय इव म० । १३. मूषकस्य । १४. करोति म० ।

नक्तदिवमशुष्यत् स^१ तत्पराजयचिन्तया । अनादरेण शरीरमपि कर्म प्रपन्नवान् ॥५०॥
 ततोऽसौ बालचन्द्रेण सेनान्या जात्वभाष्यत । उद्विन्नं ह्य कस्मात्त्वं सततं नाथ लक्ष्यसे ॥५१॥
 उद्वेगकारणं भद्र मम मण्डितकः परम् । ह्यस्युक्ते बालचन्द्रेण प्रतिज्ञेयं समाश्रिता ॥५२॥
^२राजज्ञसाधयित्वा तं^३ पापं मण्डितकं तव । सकाशां नागमिव्यामि व्रतमेतन्मया कृतम् ॥५३॥
 इति राज्ञः पुरः कृत्वा संगरं रोपसुद्वहन् । बलेन चतुरद्वेण सेनानीर्गन्तुमुद्यतः ॥५४॥
 चित्तोत्सवा समायुक्तचित्तो मुक्तान्यचेष्टितः । प्रमाद्वहूलो भिन्नमूलभ्रष्टपक्षतायतिः ॥५५॥
 अज्ञातलोकवृत्तान्तो मण्डितः खण्डितोद्यमः । हेलया बालचन्द्रेण गात्वा यद्वो मृगो यथा ॥५६॥
 गृहीतबलराज्यं तं निर्वास्य^४ विपयात् कृती । बालचन्द्रोऽनरप्यस्य समीपं पुनरागमत् ॥५७॥
 ततस्तेव सुश्रुत्येन कृतसुस्यवसुन्धरः । परं प्रमोदमापशोऽनरप्यः सुखमन्वभूत् ॥५८॥
 शरीरमात्रधारी तु मण्डितः पादचारकः । पर्यटन् धरणीं दुःखी पश्चात्ताप समाहृतः ॥५९॥
 परिप्राप्याश्रमपदं श्रमणानां महात्मनाम् । नत्वा च शिरसाचार्यं धर्मं प्रपन्नं भावतः ॥६०॥
 दुःखितानां दरिद्राणां वर्जितानां च बन्धवैः । व्याधिसंपीडितानां च प्रायो भवति धर्मयोगैः ॥६१॥
 प्राप्नोष्ये यस्य भगवन् शक्तिर्जन्तोर्न विद्यते । परिग्रहपरस्यास्य धर्मः कश्चिन्न विद्यते ॥६२॥

सका । सो ठीक ही है क्योंकि पहाड़के बिलमें स्थित बूहेका सिंह क्या कर सकता है ? ॥४६॥
 वह रात-दिन उसीके पराजयकी चिन्तासे सूखता जाता था । भोजन, पान आदि शरीर-सम्बन्धी कार्य भी वह अनादरसे करता था ॥५०॥

तदनन्तर किसी दिन उसके बालचन्द्र नामा सेनापतिने उससे कहा कि हे नाथ ! आप सदा उद्विन्न-से क्यों दिखाई देते हैं ? ॥५१॥ इसके उत्तरमें राजा अनरप्यने कहा कि हे भद्र ! मेरे उद्वेगका परम कारण कुण्डलमण्डित है । राजाके यह कहनेपर बालचन्द्र सेनापतिने यह प्रतिज्ञा की कि हे राजन् ! पापी कुण्डलमण्डितको बुरा किये बिना मैं आपके समीप नहीं आऊँगा^१ मैंने यह व्रत लिया है ॥५२-५३॥ इस प्रकार राजाके सामने प्रतिज्ञा कर क्रोध धारण करता हुआ सेनापति चतुरङ्ग सेनाके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥

उधर चित्तोत्सवामें जिसका चित्त लग रहा था ऐसा कुण्डलमण्डित अन्य सब चेष्टाएँ छोड़कर प्रमादसे परिपूर्ण था । उसके मन्त्री आदि मूल पक्षके सभी लोग उससे भिन्न हो चुके थे । लोकमें कहाँ क्या हो रहा है ? इसका उसे कुछ भी पता नहीं था । सब प्रकारका उद्यम छोड़कर वह एक क्षीमें ही आसक्त हो रहा था । सो अनरप्यके सेनापति बालचन्द्रने जाकर उसे मृगकी भौंति अनायास ही बाँध लिया ॥५५-५६॥ चतुर बालचन्द्र उसकी सेना और राज्य पर अपना अधिकार कर तथा उसे देशसे निकालकर अनरप्यके समीप वापिस आ गया ॥५७॥ इस प्रकार उस उत्तम सेवकके द्वारा जिसकी वसुधामें पुनः सुख-शान्ति स्थापित की गई थी ऐसा अनरप्य परम हर्षको प्राप्त होता हुआ सुखका अनुभव करने लगा ॥५८॥

कुण्डलमण्डितका सब राज्य छिन गया था, शरीर मात्र ही उसके पास बचा था । ऐसी दशामें वह पैदल ही पृथिवी पर भ्रमण करता था । सदा दुःखी रहता था और पश्चात्ताप करता रहता था ॥५९॥ एक दिन वह भ्रमण करता दिगम्बर मुनियोंके तपोवनमें पहुँचा । वहाँ आचार्य महाराजको शिरसे नमस्कार कर उसने भावपूर्वक धर्मका स्वरूप पूछा ॥६०॥ सो ठीक ही है क्योंकि दुःखी, दरिद्रो, भाई-बन्धुओंसे रहित और रोगसे पीड़ित मनुष्योंकी बुद्धि प्रायः धर्ममें लगीती ही है ॥६१॥ उसने पूछा कि हे भगवन् ! जिसकी मुनिदीक्षा लेनेकी शक्ति नहीं है उस

१. तत्परो जय म० । २. हे राजन् ! असाधयित्वा = त स्वशमकृत्वा । ३. पापमहितक. ख० ।

४. देशात् ।

कथं वा मुच्यते पापैश्चतुःसंज्ञापरायणः । एतद्विच्छामि विज्ञातुं प्रसीद व्याकुलह्व मे ॥६३॥
 गुरुः प्रोवाच वचनं धर्मः प्राणिदया स्थिता । मुच्यन्ते देहिनः पापैरात्मनिन्दाविगर्हणैः ॥६४॥
 हिंसायाः कारणं घोरं शुक्रशोणितसंभवम् । पिशितं मा भक्ष्य त्वं शुद्धं चेद्धर्ममिच्छसि ॥६५॥
 प्राणिनां मृत्युभीरुणां मांसैश्चर्मप्रसेविकाम् १ । पूरथिखा भुवं याति नरकं पापमानवः ॥६६॥
 शिरसो मुण्डनैः स्नानैर्विलिङ्गग्रहणादिभिः । नास्ति संधारणं जन्तोर्मांसभक्षणकारिणः ॥६७॥
 तीर्थस्नानानि दानानि सोपवासानि देहिनः । नरकाच्च परित्राणं कुर्वन्ति पिशिताशिनः ॥६८॥
 सर्वजातिगता जीवा बान्धवाः पूर्वजन्मसु । स्त्रुरमी भक्षितास्तेन मांसभक्षणकारिणा ॥६९॥
 पश्चिमत्स्यमृगान् हन्ति परिपन्थं च तिष्ठति । यो नरोऽस्मादपि क्रूरां मधुमांसाद् गतिं व्रजेत् ॥७०॥
 न वृक्षाज्जायते मांसं नोद्भिन्न धरणीतलम् । नाम्नसः पद्मवज्रापि सद्द्रव्येभ्यो यथौषधम् ॥७१॥
 पश्चिमत्स्यमृगान् हत्वा धराकान् प्रियजीवितान् । क्रूरैरुत्पाद्यते मांसं तन्नाशनन्ति दयापराः ॥७२॥
 १स्तन्येन वर्धितं यस्या शरीरं तां मृतां सतीम् । महिषीं मातरं कष्टं भक्षयन्ति नराधमाः ॥७३॥
 माता पिता च पुत्रश्च मित्राणि च सहोदराः । भक्षितास्तेन यो मांसं भक्षयत्यधमो नरः ॥७४॥
 इतः षमापटलं मेरोरथस्तात् सप्तकं स्मृतम् । तत्र रत्नप्रभाभिख्ये देवा भवनवासिनः ॥७५॥
 सकपायं तपः कृत्वा जायन्ते तत्र देहिनः । देवानामथमास्ते तु दुष्टकर्मसमन्विताः ॥७६॥

परिग्रही मनुष्यके लिए क्या कोई धर्म नहीं है ? ॥६२॥ अथवा चारों संज्ञाओंमें तत्पर रहनेवाला गृहस्थ पापोंसे किस प्रकार छूट सकता है ? मैं यह जानना चाहता हूँ सो आप प्रसन्न होकर मेरे लिए यह सब बताइये ॥६३॥

तदनन्तर मुनिराजने निम्नाङ्कित वचन कहे कि जीवदया धर्म है तथा अपनी निन्दा गर्हा आदि करनेसे मनुष्य पापोंसे छूट जाते हैं ॥६४॥ यदि तू शुद्ध अर्थात् निर्दोष धर्म धारण करना चाहता है तो हिंसाका भयंकर कारण तथा शुक्र और शोणितसे उत्पन्न मांसका कभी भक्षण नहीं कर ॥६५॥ जो पापी पुरुष मृत्युसे डरनेवाले प्राणियोंके मांससे अपना पेट भरता है वह अवश्य ही नरक जाता है ॥६६॥ शिर मुँडाना, स्नान करना तथा नाना प्रकारके वेष धारण करना आदि कार्योंसे मांसभक्षी मनुष्यकी रक्षा नहीं हो सकती ॥६७॥ तीर्थक्षेत्रोंमें स्नान करना, दान देना तथा उपवास करना आदि कार्य मांसभोजी मनुष्यको नरकसे बचानेमें समर्थ नहीं है ॥६८॥ समस्त जातियोंके जीव इस प्राणीके पूर्वभवोंमें बन्धु रह चुके हैं । अतः मांसभक्षण करने वाला मनुष्य अपने इन्हीं भाई-बन्धुओंको खाता है यह समझना चाहिए ॥६९॥ जो मनुष्य पक्षी, मत्स्य और मृगोंको मारता है तथा इनके विरुद्ध आचरण करता है वह मधु-मांसभक्षी मनुष्य इन पक्षी आदिसे भी अधिक क्रूर गतिको प्राप्त होता है ॥७०॥ मांस न वृक्षसे उत्पन्न होता है, न पृथिवीतलको भेदन कर निकलता है, न कमलकी तरह पानीसे उत्पन्न होता है और न ओषधिके समान किन्हीं उत्तम द्रव्योंसे उत्पन्न होता है । किन्तु जिन्हें अपना जीवन प्यारा है ऐसे पक्षी, मत्स्य, मृग आदि दीन-हीन प्राणियोंको मारकर दुष्ट मनुष्य मांस उत्पन्न करते हैं । इसलिए दयालु मनुष्य उसे कभी नहीं खाते ॥७१-७२॥ जिसके दूधसे शरीर पुष्ट होता है तथा जो माताके समान है ऐसी भैंसके मरने पर नीच मनुष्य उसे खा जाता है यह कितने कष्टकी बात है ? ॥७३॥ जो नीच मनुष्य मांस खाता है उसने माता, पिता, पुत्र, मित्र और भाइयोंका ही भक्षण किया है ॥७४॥ यहाँसे मेरु पर्वतके नीचे सात पृथिवियों हैं उनमें से रत्नप्रभानामक पृथिवीमें भवनवासी देव रहते हैं । जो मनुष्य कषायसहित तप करते हैं । वे उनमें उत्पन्न होते हैं । भवनवासी देव सब देवोंमें नीच देव कहलाते

१. मृच्छसि म० । २. उदरद्रीम् । ३. विविधलिङ्गधारणैः । ४. अमार्गं प्रतिकूलप्रवृत्तिमिति यावत् ।
 ५. क्रूरात् म० । ६. शन्येन म० । ७. यस्या म० ।

अथस्तस्याः चितेरन्या दारुणः पट्टं च भूमयः । नारका यासु पापस्य भुञ्जन्ते कर्मणः फलम् ॥७७॥
 कुरुपा दारुणावावा दुःस्वर्षा ध्वान्तपूरिताः । उपमोष्मितदुःखानां कारणीभूतविग्रहाः ॥७८॥
 कुम्भीपाकाख्यमाख्यातं नरकं भीमदर्शनम् । नदी वैतरणी घोरा शाल्मली क्रूरकण्डका ॥७९॥
 असिपत्रवनच्छ्रिताः क्षुरधाराश्च पर्वताः । ज्वलदग्निनिभास्तांछणलोहकीला निरन्तराः ॥८०॥
 तेषु ते तीव्रदुःखानि प्राप्नुवन्ति निरन्तरम् । प्राणिनो मधुमांसादा^१ घातकाश्चासुचारिणाम् ॥८१॥
 नास्त्यथा^२ङ्गुलमात्रोऽपि प्रदेशस्तत्र दुःखितैः । क्रियते नारकैर्यत्र निमेषमपि विश्रमः ॥८२॥
 प्रच्छन्नमिह तिष्ठाम इति ध्यात्वा पलायिताः । हन्यन्ते निर्दयैरन्यैर्नारकैरमरैश्च ते ॥८३॥
 ज्वलदङ्गारकुटिले दग्धा मत्स्या इवानिले । विरसं विहिताक्रन्दा विनिःसृत्य कथञ्चन ॥८४॥
 नारकाग्निभयग्रस्तः प्राप्ता वैतरणीजलम् । चण्डचारोर्मिभिर्भूयो दहन्ते वह्नितोऽधिकम् ॥८५॥
 असिपत्रवनं यातारङ्गायाप्रत्याशया द्रुतम् । पतन्निस्तत्र दार्यन्ते चक्रखड्गदादिभिः ॥८६॥
 चिच्छन्ननासिकाकार्णस्कन्धजङ्घादिविग्रहाः । कुम्भीपाके^३ नियुज्यन्ते^४ वान्तशोणितवर्षिणः ॥८७॥
 प्रपीड्यन्ते च यन्त्रेषु क्रूरारविषु विह्वलाः । पुनः शैलेषु भिद्यन्ते तीक्ष्णेषु विरसस्वराः ॥८८॥
 उल्लङ्घ्यन्तेऽतिदुष्टेषु पादपेन्धन्कारिषु । ताड्यन्ते मुद्गरावातैर्हर्षिर्मस्तके तथा ॥८९॥
 जलं प्राथयमानानां तृष्णात्तानां प्रदीयते । ताम्रादिकललं तेन दग्धदेहाः सुदुःखिताः ॥९०॥

हैं तथा ये दुष्ट कार्य करने वाले होते हैं ॥७५-७६॥ रत्नप्रभा पृथिवीके नीचे छह भयंकर पृथिवियों और हैं जिनमें नारकी जीव पाप कर्मका फल भोगते हैं ॥७७॥ वे नारकी कुरुप होते हैं, उनके शब्द अत्यन्त दारुण होते हैं, वे अन्धकारसे परिपूर्ण रहते हैं तथा उनके शरीर उपमातीत दुःखोंके कारण हैं ॥७८॥ उन पृथिवियोंमें कुम्भीपाक नामका भयंकर नरक है, भय उत्पन्न करने वाली वैतरणी नदी है, तथा तीक्ष्ण कौटोसे युक्त शाल्मली वृक्ष है ॥७९॥ असिपत्र वनसे आच्छादित तथा क्षुरोकी धारके समान तीक्ष्ण पर्वत हैं और जलती हुई अग्निके समान निरन्तर लोहेकी तीक्ष्ण कीलें वहाँ व्याप्त हैं ॥८०॥ मधु मांस खानेवाले तथा प्राणियोंका घात करनेवाले जीव उन नरकोंमें निरन्तर तीव्र दुःख पाते रहते हैं ॥८१॥ वहाँ अर्ध-अङ्गुल प्रमाण भी ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ दुःखी नारकी निमेषमात्रके लिए भी विश्राम कर सकें ॥८२॥ 'हम यहाँ छिपकर रहेंगे' ऐसा सोचकर नारकी भागकर जाते हैं पर वही पर दयाहीन अन्य नारकी और दुष्ट देव उनका घात करने लगते हैं ॥८३॥ जिस प्रकार जलते हुए अंगारोंसे कुटिल अग्निमें जलते हुए मच्छ विरस शब्द करते हैं उसी प्रकार नारकी भी अग्निमें पड़ कर विरस शब्द करते हैं । यदि अग्निके भयसे भयभीत हो किसी तरह निकलकर वैतरणी नदीके जलमें पहुँचते हैं तो अत्यन्त खारी तरङ्गोंके द्वारा अग्निसे भी अधिक जलने लगते हैं ॥८४-८५॥ यदि छायाको इच्छासे शीघ्र ही भागकर असिपत्र वनमें पहुँचते हैं तो वहाँ पड़ते हुए चक्र, खड्ग, गदा आदि शस्त्रोंसे उनके खण्ड-खण्ड हो जाते हैं ॥८६॥ जिनके नाक, कान, स्कन्ध तथा जङ्घा आदि अवयव काट लिये गये हैं तथा जो निकलते हुए खूनकी मानो वर्षा करते हैं ऐसे उन नारकियोंको कुम्भीपाकमें डाला जाता है अर्थात् किसी घड़े आदिमें भर कर उन्हें पकाया जाता है ॥८७॥ जिनसे क्रूर शब्द निकल रहा है ऐसे कोल्लुओंमें उन विह्वल नारकियोंको पेल दिया जाता है फिर तीक्ष्ण सुकीले पर्वतों पर गिराकर उनके टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं जिससे वे विरस शब्द करते हैं ॥८८॥ अन्धा कर देने वाले बहुत ऊँचे वृक्षां पर उन्हें चढ़ाया जाता है तथा बड़े-बड़े मुद्गरों की चोटसे उनका मस्तक पीटा जाता है ॥८९॥ जो नारकी प्याससे पीड़ित होकर पानी माँगते

१. शाल्मली क्रूरकण्डका क० । २. मासादिघातका म० । ३. चन्द्र म० । तीव्र व० । ४. पात्रेन युज्यन्ते । ५. चान्त म० । वात व० ।

श्रुवते नास्ति तृष्णा न इत्यतोऽपि बलाद्भी । पाप्यन्ते तदतिक्रमैः संदंशन्वाहुताननाः^१ ॥६३॥
 प्रपाय भूतले भूयो वक्षस्याक्रम्य^२ दीयते । पादः क्रूरवचोभिस्तैस्तेषां कर्मपकर्मणाम्^३ ॥६२॥
 तेषां निर्दग्धकण्ठानां दहते हृदयं पुनः । निष्कामन्ति पुरीतन्ति^४ निर्भिद्य नठरं सह ॥६३॥
 परस्परकृतं दुःखं तथा भवनवासिभिः । नरका यद्यपद्यन्ते कस्तद्वर्णयितुं क्षमः ॥६४॥
 इति ज्ञात्वा महादुःखं नरके माससंभवम् । वर्जनीयं प्रयत्नेन विदुषा मांसभक्षणम् ॥६५॥
 भ्रान्तान्तरे जगादैवं कुण्डलस्रस्तमानसः । नाथाणुव्रतयुक्तानां का गतिर्यस्यते वद् ॥६६॥
 गुरुरुचे न यो मांसं खादत्यतिदृढव्रतः । तस्य वक्ष्यामि यत्पुण्यं सम्यग्दष्टेर्विशेषतः ॥६७॥
 उपवासादिहीनस्य दरिद्रस्यापि धीमतः । मांसभुक्तेर्निवृत्तस्य सुगतिर्हस्तवर्तिनी ॥६८॥
 यः पुनः शीलसम्पन्नो जिनशासनभाषितः । सोऽणुव्रतधरः प्राणी सौधर्मादिषु जायते ॥६९॥
 अहिंसा प्रवरं मूलं धर्मस्य परिकीर्तितम् । सा च मांसाश्लिष्टस्य जायतेऽन्यन्तनिर्मला ॥७०॥
 दयावान् सद्गवान् योऽपि श्लेच्छश्राण्डाल एव वा । मधुमांसाश्लिष्टः सन् सोऽपि पापेन मुच्यते ॥७१॥
 मुक्तमात्रः स पापेन पुण्यं गृह्णाति मानवः । जायते पुण्यबन्धेन सुरः सन्मनुजोऽथवा^५ ॥७२॥
 सम्यग्दष्टिः पुनर्जन्तुः कृत्वाणुव्रतधारणम् । लभते परमान्भोगान् ध्रुवं स्वर्गनिवासिनाम् ॥७३॥

है उनके लिए तामा आदि धातुओंका कलल (पिघलाया हुआ रस) दिया जाता है जिससे उनका शरीर जल जाता है तथा अल्पन्न दुःखी हो जाते हैं ॥६७॥ यद्यपि वे कहते हैं कि हमें प्यास नहीं लगी है तो भी जबर्दस्ती संडाशीसे मुँह फाड़ कर उन्हें वह कलल पिलाया जाता है ॥६१॥ पाप करने वाले उन नारकियोंको जमीन पर गिराकर तथा उनकी छाती पर चढ़कर दृष्ट वचन बोलते हुए बलवान् नारकी उन्हें पैरोंसे रूँदते हैं ॥६२॥ पूर्वोक्त कललपापसे उन नारकियोंके कण्ठ जल जाते हैं तथा हृदय जलने लगते हैं । यहाँ नहीं पेट फोड़ कर उनकी आँते भी बाहर निकल आती हैं ॥६३॥ इसके सिवाय भवनवासी देव उन्हें परस्पर लड़ाकर जो दुःख प्राप्त कराते हैं उसका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥६४॥ इस तरह मांस खानेसे नरकमे महादुःख भोगना पड़ता है ऐसा जानकर समभदार पुरुषको अणुव्रतपूर्वक मांसभक्षणका त्याग करना चाहिए ॥६५॥

इसी बीचमे जिसका मन अत्यन्त भयभीत हो रहा था ऐसे कुण्डलमण्डितने कहा कि हे नाथ ! अणुव्रतसे युक्त मनुष्योंकी क्या गति होती है सो कहिये ॥६६॥ इसके उत्तरमे गुरु महाराजने कहा कि जो मांस नहीं खाता है तथा अत्यन्त दृढ़तासे व्रत पालन करता है उसे तथा खासकर सम्यग्दष्टि मनुष्यको जो पुण्य होता है उसे कहता हूँ ॥६७॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य मांस-भक्षणसे दूर रहता है भले ही वह उपवासादिसे रहित हो तथा दरिद्र हो तो भी उत्तम गति उसके हाथमे रहती है ॥६८॥ और जो शीलसे सम्पन्न तथा जिनशासनकी भावनासे युक्त होता हुआ अणुव्रत धारण करता है वह सौधर्मादि स्वर्गोंमें उत्पन्न होता है ॥६९॥ धर्मका उत्तम मूल कारण अहिंसा कही गई है । जो मनुष्य मांस-भक्षणसे निवृत्त रहता है उसीके अत्यन्त निर्मल अहिंसा-धर्म पलता है ॥७०॥ जो परिग्रही श्लेच्छ अथवा चाण्डाल भी क्यों न हो यदि दयालु है और मधु-मांस-भक्षणसे दूर रहता है तो वह भी पापसे मुक्त हो जाता है ॥७१॥ ऐसा जीव पापसे मुक्त होते ही पुण्य-बन्ध करने लगता है और पुण्य-बन्धके प्रभावसे वह देव अथवा उत्तम मनुष्य होता है ॥७२॥ यदि सम्यग्दष्टि मनुष्य अणुव्रत धारण करता है तो वह

१. अस्माकम् । २. व्यावृत्ताननः म० । ३. प्रयात्य म० । ४. वक्षस्याक्रम म० । ५. ६२-६३ श्लोकयोरेवं पाठः 'व' पुस्तकसंमतः । पुस्तकान्तरेषु त्वित्यं पाठोऽस्ति 'प्रपाय भूतले भूयो वक्षस्याक्रमदीयते । तेषां निर्दग्धकण्ठानां दहते हृदयं पुनः' ॥६२॥ निष्कामन्ति पुरीतन्ति निर्भिद्य नठरं सह । ज्वलता कललेनाशु तेषा कलशु कर्मणाम् ॥६३॥ ६. अत्राणि । ७. यथा म० । ८. विसुः क०, ख०, ग० ।

इत्याचार्यस्य वचनं श्रुत्वा कुण्डलमण्डितः । मन्दभाग्यतया शक्या रहितोऽणुव्रतेऽपि ॥१०४॥
 प्रणिपत्य गुरुं मूर्च्छां मधुमांसविवर्जनम् । जग्राह शरणोपेतं समीचीनं च दर्शनम् ॥१०५॥
 कृत्वा चैत्ये^१ नमस्कारं गुरोर्दिग्वाससां तथा । निष्कान्तः स^२ ततो देशादिति चिन्तासुपागतः ॥१०६॥
 मातुः सहोदरो भ्राता कृतान्तसमविक्रमः । भ्रुवं मे स्तूयतः सोऽयं भविव्यत्यवलम्बनम् ॥१०७॥
 राजा भूत्वा पुनः शत्रुं जेव्यामीति सुनिश्चितः । आशां वहन् भद्रचोऽसावातुरो दक्षिणापथम् ॥१०८॥
 श्रमादिदुःखपूर्णस्य व्रजतोऽस्य शनैः शनैः । उदीयुर्घ्याधयो देहे पापैरन्यमवार्जितैः ॥१०९॥
 सन्धिषु चिद्ब्रह्मनामेषु भिद्यमानेषु मर्मसु । सर्वस्य जगतोऽन्नाणं^३ मरणं तस्य ढौकितम् ॥११०॥
 मुञ्चते समये यस्मिन् जीवं कुण्डलमण्डितः । तत्रैव च्यवते देवः^४ शेषपुण्यादिवरच्युतः ॥१११॥
 गर्भं च^५ तौ विदेहाया विधिना परियोजितौ । पश्य कर्मात्तुभावस्य विचित्रमिति चेष्टितम् ॥११२॥
 एतस्मिन्नन्तरे साधु कालं कृत्वा स पिङ्गलः । तपोबलान्महातेजा महाकालोऽसुरोऽभवत् ॥११३॥
 भवनेऽवधिना स्मृत्या धर्मस्य च फलोदयम् । दृष्ट्वा चित्तोत्सवा वचेति तावज्ज्ञे यथाविधि ॥११४॥
 दुष्टया किं तथा कृत्यं क्वासौ कुण्डलमण्डितः । येनाहं प्रापितोऽवस्थां विधुरां विरहार्णवे ॥११५॥
 पत्न्यां जनकराजस्य गर्भमाश्रित्य मण्डितः । साकमन्येन जीवेन विवेद स्थित इत्यसौ ॥११६॥
 सुतां तावदियं देवी युगलं किं ममानया । गर्भद्वितययोगिन्या मृतयास्ति प्रयोजनम् ॥११७॥

निश्चित ही देवोंके उत्कृष्ट भोग प्राप्त करता है ॥१०३॥ इस प्रकार आचार्यके वचन सुनकर कुण्डलमण्डित मन्द भाग्य होनेसे अणुव्रत धारण करनेके लिए भी समर्थ नहीं हो सका ॥१०४॥ अतः उसने शिरसे गुरुको नमस्कार कर मधुमांसका परित्याग किया और शरणभूत सम्यग्दर्शन धारण किया ॥१०५॥

तदनन्तर जिन-प्रतिमा और दिगम्बराचार्यको नमस्कार कर वह ऐसा विचार करता हुआ उस देशसे बाहर निकला कि मेरी माताका सगा भाई यमराजके समान पराक्रमका धारी है सो वह विपत्तिमें पड़े हुए मेरी अवश्य ही सहायता करेगा । मैं फिरसे राजा होकर निश्चित ही शत्रुको जीतूँगा । ऐसी आशा रखता हुआ वह कुण्डलमण्डित दुःखी हो दक्षिण दिशाकी ओर चला ॥१०६-१०८॥ वह थकावट आदि दुःखोंसे परिपूर्ण होनेके कारण धीरे-धीरे चलता था । बीचमें पूर्वभवमें संचित पाप कर्मके उदयसे उसके शरीरमें अनेक रोग प्रकट हो गये ॥१०९॥ उसकी सन्धियों छिन्न होने लगीं और मर्म स्थानोंमें भयंकर पीड़ा होने लगी । अन्तमें समस्त संसार जिससे नहीं बचा सकता ऐसा उसका मरण या पहुँचा ॥११०॥ जिस समय कुण्डल-मण्डितने प्राण छोड़े उसी समय चित्तोत्सवाका जीव जो स्वर्गमें देव हुआ था शेष पुण्यके प्रभावसे स्वर्गसे च्युत हुआ ॥१११॥ भाग्यवशा वे दोनों ही जीव राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें उत्पन्न हुए । गौतमस्वामी कहते हैं कि अहो श्रेणिक ! कर्मादयको यह विचित्र चेष्टा देखो ॥११२॥ इसी बीचमें वह पिङ्गल ब्राह्मण अच्छी तरह मरण कर तपके प्रभावसे महातेजस्वी महाकाल नामका असुर हुआ ॥११३॥ उसने उत्पन्न होते ही अवधिज्ञानसे धर्मके फलका विचार किया और साथ ही इस बातका ध्यान किया कि चित्तोत्सवा कहाँ उत्पन्न हुई है ? वह अपने अवधिज्ञानसे इन सब बातोंको अच्छी तरहसे जान गया ॥११४॥ फिर कुछ देर बाद उसने विचार किया कि मुझे उस दुष्टसे क्या प्रयोजन है ? वह कुण्डलमण्डित कहाँ है जिसने मुझे विरहरूपी सागरमें गिराकर दुःखपूर्ण अवस्था प्राप्त कराई थीं ॥११५॥ उसने अवधिज्ञानसे यह जान लिया कि कुण्डलमण्डित राजा जनककी पत्नीके गर्भमें चित्तोत्सवाके जीवके साथ विद्यमान है ॥११६॥ उसने विचार किया कि यदि गर्भमें ही इसे मारता हूँ तो रानी विदेहा

१. चैत्यनमस्कारं व० । २. सततं ख० । ३. न विद्यते त्राण यस्यात्तद्, व० पुस्तके टिप्पणम् ।
 ४. तस्मिन् म० । ५. देवी शेषपुण्यादिवः सती व० । ६. चित्तौ म० । ७. यस्य म० ।

ततो निर्दुहितं सन्तं पापं मण्डितकं ध्रुवम् । नेप्यामि यदहं दुःखं तत्तमेव दुरीहितम् ॥११८॥
 इति संचिन्तयन् क्रुद्धः पूर्वकर्मानुबन्धतः । देवो रचति तं गर्भं संमृदन्पाणिना करम् ॥११९॥
 इति ज्ञात्वा चमं कर्तुं दुःखं जन्तोरनं कस्यचित् । कालग्न्यवहितं तद्दि कृतमात्मन एव हि ॥१२०॥
 कालेनाथ सुत देवो प्रसूता युगल शुभम् । सुतं दुहितरं चान्ते जहार प्रथुकं सुरः ॥१२१॥
 आस्फाल्य मारयाभ्येनं शिलायां पूर्वमण्डितम् । इति ध्यातं पुरा तेन पुनरेवमचिन्तयत् ॥१२२॥
 धिङ्मया चिन्तितं सर्वं ससारपरिवर्धनम् । जायते कर्मणा येन तत्कुर्वीत कथं बुधः ॥१२३॥
 तृणस्यापि पुरा दुःखं श्रामभ्ये न कृतं मया । सर्वारम्भनिवृत्तेन तपोवीवधवाहिना ॥१२४॥
 गुरोस्तस्य प्रसादेन कृत्वा धर्मं सुनिर्मलम् । ईदृशीं धृतिमाप्तोऽस्मि करोमि दुरितं कथम् ॥१२५॥
 स्वल्पमप्यजितं पापं ब्रजत्युपचय परम् । निमग्नो येन संसारे चिर दुःखेन दहते ॥१२६॥
 निर्दोषभावो यस्तु दयावान् सुसमाहितः । स्थितं करतले तस्य रत्नं सुगतिर्संज्ञकम् ॥१२७॥
 घृणावान् संप्रधार्येदं तमलंकृत्य बालकम् । कुण्डले कर्णधोरस्य चक्रे दीप्तांशुमण्डले ॥१२८॥
 पर्णलक्ष्मी ततो विद्यां संक्रमय्य शिशौ सुरः । सुखदेशे विमुच्येनं गतो धाम मनीषितम् ॥१२९॥

मरणको प्राप्त होगी इसलिये यह युगल सन्तानको उत्पन्न करे पीछे देखा जायगा । दो गर्भको धारण करनेवाली इस रानीके मारनेसे मुझे क्या प्रयोजन है ? गर्भसे निकलते ही इस पापी कुण्डलमण्डितको अवश्य ही भारी दुःख प्राप्त कराऊँगा ॥११७-११८॥ ऐसा विचार करता हुआ वह असुर पूर्वकर्मके प्रभावसे अत्यन्त क्रुद्ध रहने लगा तथा हाथसे हाथको मसलता हुआ उस गर्भकी रक्षा करने लगा ॥११९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राजन् ! ऐसा जानकर कभी किसीको दुःख पहुँचाना उचित नहीं है क्योंकि कालान्तरमे वह दुःख अपने आपको भी प्राप्त होता है ॥१२०॥

अथानन्तर समय आनेपर रानी विदेहाने एक पुत्र और एक पुत्री इस प्रकार युगल सन्तान उत्पन्न की । सो उत्पन्न होते ही असुरने पुत्रका अपहरण कर लिया ॥१२१॥ उसने पहले तो विचार किया कि इस कुण्डलमण्डितके जीवको मैं शिलापर पछाड़कर मार डालूँ । फिर कुछ देर बाद वह वह विचार करने लगा ॥१२२॥ कि मैंने जो विचार किया है उसे धिक्कार है । जिस कार्यके करनेसे संसार (जन्म-मरण) की वृद्धि होती है उस कार्यको बुद्धिमान् मनुष्य कैसे कर सकता है ? ॥१२३॥ पूर्वभवमे मुनि अवस्थामें जब मैं सब प्रकारके आरम्भसे रहित था तथा तपरूपी कौबरको धारण करता था तब मैंने तृणको भी दुःख नहीं पहुँचाया था ॥१२४॥ उन गुरुके प्रसाद से अत्यन्त निर्मल धर्म धारण कर मैं ऐसी कान्तिको प्राप्त हुआ हूँ । अतः अब ऐसा पाप कैसे कर सकता हूँ ॥१२५॥ संचित किया हुआ थोड़ा पाप भी परम वृद्धिको प्राप्त हो जाता है जिससे संसार-सागरमें निमग्न हुआ यह जीव चिरकाल तक दुःखसे जलता रहता है ॥१२६॥ परन्तु जिसकी भावना निर्दोष है जो दयालु है और जो अपने परिणामको ठीक रखता है सुगतिरूपी रत्न उसके करतलमें स्थित रहता है ॥१२७॥ ऐसा विचार करके हृदयमे दया उत्पन्न हो गई जिससे उसने उस बालकको मारनेका विचार छोड़ दिया तथा उसके कानोंमें देदीप्यमान किरणोंके धारक कुण्डल पहिनाकर उसे अलंकृत कर दिया ॥१२८॥ तदनन्तर वह देव उस बालकमें पर्णलक्ष्मी विद्याका प्रवेश कराकर तथा उसे सुखकर स्थानमें छोड़कर इच्छित स्थानपर चला गया ॥१२९॥

१. बालकं 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः प्रथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः । २. श्रामभ्येन म० । ३. तपो-विविध-म० ।

नक्तं शक्त्या स्थितेनासावुद्याने नभसः पतन् । विद्यामृतेन्दुगतिना दृष्टो सुखभाजनम् ॥१३०॥
 उड्डपातः किमेव स्याद् विद्यलक्षण्डोऽथवा च्युतः । वितर्षयति समुत्पत्य दृष्टो पुथुकं शुभम् ॥१३१॥
 गृहीत्वा च प्रमोदेन देव्याः पुण्यवतीश्रुतेः । वरशय्याप्रसुतायां जङ्घादेशे चकार सः ॥१३२॥
 ऊचै वैतां हुतत्वान उतिष्ठोत्तिष्ठ सुन्दरि । किं श्रेये बालकं पश्य संप्रसूतासि शोभनम् ॥१३३॥
 ततः कान्तकरस्पर्शसौख्यसंपत्प्रबोधिता । शय्यातः सहसोत्तस्थौ सा विधृण्णितलोचना ॥१३४॥
 भर्भकं च ददृशौतिसुन्दरं सुन्दरानना । तस्यास्तदंशुजालेन निद्राशेषो निराकृतः ॥१३५॥
 परं च विस्मयं प्राप्ता पप्रच्छ प्रियदर्शना । कथयं जनितो नाथ पुण्यवत्या स्त्रिया शिशुः ॥१३६॥
 सोऽवोचदृष्टिते जातस्तवायं प्रवरः सुतः । प्रतीहि संशयं मा गास्त्वतो धन्या परा तु का ॥१३७॥
 सानोचस्त्रिय वन्ध्यास्मि कुतो मे सुतसंभवः । प्रतारितास्मि दैवेन किं मे भूयः प्रतार्यते ॥१३८॥
 सोऽवोचद्वेवि मा शङ्कं कार्पाः कर्मचियोगतः । प्रच्छन्नोऽपि हि नारीणां जायते गर्भसंभवः ॥१३९॥
 सानोचदस्तु नामैवं कुण्डले त्वत्तिचारिणी । ईदृशी मर्त्यलोकेऽस्मिन् सुरत्वे भवतः कुतः ॥१४०॥
 सोऽवोचद्वेवि नानेन विचारेण प्रयोजनम् । शृणु तथ्यं पतन्नेप गगनादाहृतो मया ॥१४१॥
 भयानुमोदितस्तेऽयं सुतः सुकुलसंभवः । लक्ष्णानि वदन्यत्य महापुत्रपभूमिकम् ॥१४२॥
 श्रमं कृत्वापि भूयांसं भारद्वाज च गर्भजम् । फलं तनयलामोऽत्र तत्ते जातं सुखं प्रिये ॥१४३॥

तदनन्तर चन्द्रगति विद्याधर रात्रिके समय अपने उद्यानमें स्थित था सो उसने आकाशसे पड़ते हुए सुखके पात्रस्वरूप उस बालकको देखा ॥१३०॥ क्या यह नक्षत्रपात हो रहा है ? अथवा कोई बिजलीका टुकड़ा नीचे गिर रहा है ऐसा संशय कर वह चन्द्रगति विद्याधर ज्योंही आकाशमें उड़ा त्योही उसने उस शुभ बालकको देखा ॥१३१॥ देखते ही उसने बड़े हर्षसे उस बालकको बीचसे ही ले लिया और उत्तम शय्यापर शयन करनेवाली पुण्यवती रानी की जोंपों के बीचसे रख दिया ॥१३२॥ यही नहीं, ऊँची आवाजसे वह रानीसे बोला भी कि हे सुन्दरि ! उठो, क्यों सो रही हो ? देखो तुमने सुन्दर बालक उत्पन्न किया है ॥१३३॥ तदनन्तर पतिके हस्त-स्पर्शसे उत्पन्न सुखरूपी सम्पत्तिसे जाग्रत हो रानी शय्यासे सहसा उठ खड़ी हुई और इधर-उधर नेत्र चलाने लगी ॥१३४॥ ज्योंही उस सुन्दरमुखीने अत्यन्त सुन्दर बालक देखा, त्योही उसकी किरणोंके समूहसे उसकी अवशिष्ट निद्रा दूर हो गई ॥१३५॥ उस सुन्दरीने परम आश्चर्यको प्राप्त होकर पूछा कि यह बालक किस पुण्यवती स्त्रीने उत्पन्न किया है ? ॥१३६॥ इसके उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे प्रिये ! यह तुम्हारे ही पुत्र उत्पन्न हुआ है । विश्वास रक्खो, संशय मत करो, तुमसे वढ़ कर और दूसरी धन्य स्त्री कौन हो सकती है ? ॥१३७॥ उसने कहा कि हे प्रिय ! मैं तो वन्ध्या हूँ, मेरे पुत्र कैसे हो सकता है ? मैं दैवके द्वारा ही प्रतारित हूँ—ठगी गई हूँ अब आप और क्यों प्रतारित कर रहे हैं ? ॥१३८॥ उसने कहा कि हे देवि ! शङ्का मत करो, क्योंकि कदाचित् कर्मयोगसे स्त्रियोंके प्रच्छन्न गर्भ भी तो होता है ॥१३९॥ रानीने कहा कि अच्छा ऐसा ही सही पर यह तो बताओ कि इसके कुण्डल लोकोत्तर क्यों है ? मनुष्य लोकमें ऐसे उत्तम रत्न कहाँसे आये ? ॥१४०॥ इसके उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे देवि ! इस विचारसे क्या प्रयोजन है ? जो सत्य बात है सो सुनो । यह बालक आकाशसे नीचे गिर रहा था सो बीचसे ही मैंने प्राप्त किया है ॥१४१॥ मैं जिसकी अनुमोदना कर रहा हूँ ऐसा यह तुम्हारा पुत्र उचकुलमें उत्पन्न हुआ है क्योंकि इसके लक्षण इसे महापुरुषसे उत्पन्न सूचित करते हैं ॥१४२॥ बहुत भारी श्रम कर तथा गर्भका भार धारण कर जो फल प्राप्त होता है वह पुत्रलाम रूप ही होता है । सो हे प्रिये ! तुम्हें यह फल

१. प्रसुताया म० । २. चैतां क० म० । ३. हुतत्वान म० । ४. शोभिनम् म० । ५. भूप म० ।
 ६. त्वत्तिचारिणी म० । ७. मया तु मोदित म० ।

कुञ्चिजातोऽपि पुत्रस्य यः कृत्यं कुरुते न ना^१ । अपुत्र एव कान्तेऽसौ जायते रिपुरेव वा ॥१४३॥
 तव सोऽयमपुत्रायाः सति पुत्रो भविष्यति । ^२अन्तर्यानेन किं कृत्यमत्र वस्तुनि-शोभने ॥१४४॥
 एवमस्त्विति संभाष्य देवी स्तितिगृहं गता । प्रभाते सुतजन्मांस्त्यास्तृष्टया लोके प्रकाशितम् ॥१४६॥
 ततो जन्मोत्सवस्तस्य पुरेऽस्मिन् रथन्पुरे । संप्रवृत्तः समागच्छद् विरमिताशेषान्धवः ॥१४७॥
 रत्नकुण्डलभानूनां मण्डलेन यतो वृतः । प्रभामण्डलनामास्य पितृभ्यां निर्मितं ततः ॥१४८॥
 अर्पितः पोपणायसौ धान्या लीलामनोहरः । सर्वान्तःपुरलोकस्य करपद्ममधुव्रतः ॥१४९॥
 विदेहा तु हते पुत्रे कुररीवत्कृतस्त्वना । बन्धूनपातयत् सर्वान् गम्भीरे शोकसागरे ॥१५०॥
 परिदेवचमेवं च चक्रे चक्राहतेव सा । हा वत्स केन नीतोऽसि मम दुष्करकारिणा ॥१५१॥
 विद्युत्स्य कथं तस्य पापस्य प्रसूतौ करौ । अज्ञानं जातमात्रं त्वां गृहीतुं त्र्यौचैतसः ॥१५२॥
 परिचमाया इवाश्रायाः संश्लेषेयं सुता मम । स्थिता स तु परिप्राप्तौ मन्दायाः पूर्ववत्सुतः ॥१५३॥
 भ्रुवं भवान्तरे कोऽपि मया बालो वियोजितः । तदेव फलितं कर्म न कार्यं बीजवर्जितम् ॥१५४॥
 मारितारिमि न किं तेन पुत्रचोरणकारिणा । पुरु प्राप्तास्मि यद्दुःखं समागत्याद्धवैशसम्^४ ॥१५५॥
 इति तां कुर्वतीमुखैर्विह्वलां परिदेवनम् । समाश्वासयदागत्य जनको निगदन्निरदम् ॥१५६॥
 त्रिये मा गाः परं शोकं जीवत्येव शरीरजः^५ । हतः केनाप्यसौ जीवन् द्रक्ष्यसे भ्रुवमेव हि ॥१५७॥

अनायास ही प्राप्त हो गया है ॥१४३॥ जो मनुष्य कुञ्चिसे उत्पन्न होकर भी पुत्रका कार्य नहीं करता है हे त्रिये ! वह अपुत्र ही है अथवा शत्रु ही है ॥१४४॥ हे पतिव्रते ! तुम्हारे पुत्र नहीं है सो यह तुम्हारा पुत्र हो जायगा । इस उत्तम वस्तुके भीतर जानेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१४५॥

तदनन्तर ऐसा ही हो इस प्रकार कहकर रानी प्रसूतिकागृहमें चली गई और प्रातःकाल होते ही इसके पुत्र-जन्मका समाचार लोकमें बड़े हर्षसे प्रकाशित कर दिया गया ॥१४६॥ तदनन्तर रथन्पुर नगरमें पुत्रका जन्मोत्सव किया गया । इस उत्सवमें आश्चर्यचकित होते हुए समस्त भाई-बन्धु-रिश्तेदार सम्मिलित हुए ॥१४७॥ चूंकि वह बालक रत्नमय कुण्डलोंकी किरणोंके समूहसे घिरा हुआ था इसलिए माता-पिताने उसका भामण्डल नाम रक्खा ॥१४८॥ अपनी लीलाओंसे मनको हरनेवाला तथा समस्त अन्तःपुरके करकमलोंमें भ्रमरके समान संचार करनेवाला वह बालक पोषण करनेके लिए धायको सौपा गया ॥१४९॥

इधर पुत्रके हरे जानेपर कुररीके समान विलाप करती हुई रानी विदेहाने समस्त बन्धुओं को शोकरूपी सागरमें गिरा दिया ॥१५०॥ चकसे ताड़ित हुईके समान वह इस प्रकार विलाप कर रही थी कि हाथ वत्स^१ कठोर कार्य करनेवाला कौन पुरुष तुम्हें हर ले गया है ? ॥१५१॥ जिसे उत्पन्न होते देर नहीं थी ऐसे तुम अवोष बालकको उठानेके लिए उस निर्दय पापीके हाथ कैसे पसरे होंगे ? जान पड़ता है कि उसका हृदय पत्थरका बना होगा ॥१५२॥ जिस प्रकार पश्चिम दिशामें आकर सूर्य तो अस्त हो जाता है और सन्ध्या रह जाती है उसी प्रकार मुझ अभागिनीका पुत्र तो अस्त हो गया और संध्याकी भाँति यह पुत्री स्थित रह गई ॥१५३॥ निश्चित ही भवान्तरमें मैंने किसी बालकका वियोग किया होगा सो उसी कर्मने अपना फल दिखाया है क्योंकि बिना बीज के कोई कार्य नहीं होता ॥१५४॥ पुत्रकी चोरी करनेवाले उस दुष्टने मुझे मार ही क्यों नहीं डाला । जब कि अधमरी करके उसने मुझे बहुत भारी दुःख प्राप्त कराया है ॥१५५॥ इस प्रकार विह्वल होकर जोर-जोरसे विलाप करती हुई रानीके पास जाकर राजा जनक यह कहते हुए उसे समझाने लगे कि हे त्रिये ! अत्यधिक शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र जीवित ही है, कोई उसे हरकर ले गया

दरयते नेचयते भूयः पुनर्जातवलोक्तयते । पूर्वकर्मानुभावेन जाये रोदिपि कि ब्रुथा ॥१५८॥
 ब्रज स्वालयमिमं लेखं सुहृदो^१ नाययाम्यहम् । वार्ता दशरथस्येमां परिवेदयितुं प्रिये ॥१५९॥
 स चाह च सुतस्याशु करिष्यामि गवेपणम् । प्रच्छाद्य धरणीं सर्वां चरैः कुशलचेष्टितैः ॥१६०॥
 दयितां सान्त्वयित्वैवं लेखं मित्राय दत्तवान् । तं प्रवाच्य सशोकेन पूरितोऽतिगरीयसा ॥१६१॥
 मह्यमन्वेपितस्ताभ्यां नासौ दृष्टो यदाभकः । मन्दाकृत्य तदा शोकमस्थुः कृच्छ्रेण वान्धवाः ॥१६२॥
 नासावासीजनस्तत्र पुरुषः प्रमदायवा । यो न वाप्यपरीताचस्तच्छ्रेणैव वशीकृतः ॥१६३॥
 शोकविस्मरणे हेतुर्बभूव सुमनोहरा । जानकी बन्धुलोकस्य शुभशैशवचेष्टिता ॥१६४॥

मालिनीवृत्तम्

प्रमदसुपगतानां योपितामङ्गदेशे
 पृथतनुभवकान्त्या लिम्पती दिक्समूहम् ।
 विपुलकमलयाता^२ श्रीरिवासौ सुकण्ठा
 शुचिहसितसितास्या वर्धताम्भोजनेत्रा ॥१६५॥
 प्रभवति गुणसस्यं येन तस्यां समृद्धं
 भजदखिलजनानां सौख्यसंभारदानम् ।
 तदतिशयमनोज्ञा चारुलक्ष्मान्विताङ्गा
 जगति निगदितासौ भूमिसाम्येन सीता ॥१६६॥
 वदनजितशशाङ्गा पल्लवच्छायापाणिः
^३शितिमणिसमतेजः^४केशसंधातरम्या ।

है और निश्चित ही तुम उसे जीवित देखोगी ॥१५६-१५७॥ इष्ट वस्तु पूर्व कर्मके प्रभावसे अभी दिखती है फिर नहीं दिखती, तदनन्तर फिर कभी दिखाई देने लगती है । इसलिए हे प्रिये ! न्यर्थ ही क्यों रोती हो ? ॥१५८॥ तुम स्वस्थताको प्राप्त होओ । हे प्रिये ! मैं यह समाचार वतलानेके लिए मित्र राजा दशरथके पास पत्र भेजता हूँ ॥१५९॥ वह और मैं दोनों ही चतुर गुप्तचरोंसे समस्त पृथिवीको आच्छादित कर शीघ्र ही तेरे पुत्रको खोज करेंगे ॥१६०॥ इस प्रकार स्त्रीको सान्त्वना देकर उसने मित्रके लिए पत्र दिया । उस पत्रको वॉचकर राजा दशरथ अत्यधिक शोकसे व्याप्त हो गये ॥१६१॥ उन दोनोंने पृथिवीपर पुत्रकी खोज की । पर जब कहीं पुत्र नहीं दिखा तब सब बन्धुजन शोकको भन्दकर वड़े कष्टसे चुप बैठ रहे ॥१६२॥ उस समय न कोई ऐसा पुरुष था और न कोई ऐसी स्त्री ही थी जिसके नेत्र पुत्र सम्बन्धी शोकके कारण अश्रुओंसे व्याप्त नहीं हुए हों ॥१६३॥ उस समय बन्धुजनोंका शोक भुलानेका कारण यदि कुछ था तो अत्यन्त मनोहर और शुभ बालचेष्टाओंको धारण करनेवाली जानकी ही थी ॥१६४॥

वह जानकी हर्षको प्राप्त होने वाली स्त्रियोंकी गोदमे निरन्तर वृद्धिगत हो रही थी । वह अपने शरीरकी विशाल कान्तिसे दिशाओंके समूहको लिप्त करती थी । वह विपुल कमलोंको प्राप्त लक्ष्मीके समानसी जान पड़ती थी, उसका कण्ठ सुन्दर था, पवित्र हास्यसे उसका मुख शुक्ल हो रहा था और कमलके समान उसके नेत्र थे ॥१६५॥ समस्त भक्तजनोंके लिए सुखका समूह प्रदान करने वाला गुणरूपी धान्य, चूँकि उस जानकीमे अत्यन्त समृद्धिके साथ उत्पन्न होता था, अतः अत्यन्त मनोहर और उत्तम लक्षणोंसे युक्त उस जानकी को लोग भूमिकी समानता रखनेके कारण सीता भी कहते थे ॥१६६॥ उसने अपने मुखसे चन्द्रमाको जीत लिया था, उसके हाथ पल्लवके समान लाल कान्तिके धारक थे, वह नील मणिके समान कान्तिके

जितसमदनहंसखीगतिः सुन्दरभू-
 र्बकुलसुरभिवक्त्रामोदयद्दालिवृन्दः ॥१६७॥
 अतिमृदुभुजमाला शक्रशस्त्रानुमध्या
 प्रवरसरसरम्भास्तम्भसाम्यस्थितोरुः ।
 स्थलकमलसमानोत्तुङ्गपृष्ठोच्चलाद्भिन्नः
 प्रभवदतिविशालच्छ्वायवचोऽजयुग्मा ॥१६८॥
 प्रवरभवनकुक्षिप्वत्युदारेषु कान्त्या
 विविधविहितमार्गा लब्धवर्णा पर सा ।
 सततमुपगतान्तःसप्तकन्याशताना-
 मतिशय रमणीयं शास्त्रमार्गेण रेमे ॥१६९॥
 अपि दिनकरदीप्तिः कौमुदी चन्द्रकान्तिः
 सुरपतिमहिषी वा कापि वा सा सुभद्रा ।
 यदि भजति तदीयासङ्गशोभां कथं चि-
 न्नियतमतिमनोज्ञास्तास्ततो वेदनीयाः ॥१७०॥
 विधिरिव रतिदेवी कामदेवस्य ब्रुद्ध्या
 दशरथतनयस्याकल्पयत्पूर्वजस्य ।
 जनकनरपतिस्तां सर्वविज्ञानयुक्तां
 ननु रविकरसङ्गस्योचिता पद्मलक्ष्मीः ॥१७१॥
 इत्यार्षे रविप्रेषाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सीताभामण्डलौत्पत्त्यभिधानं
 नाम षड्विंशतितमं पर्व ॥२६॥

धारक केशोके समूहसे मनोहर थी, उसने कामोन्मत्त हंसिनी चालको जीत लिया था, उसकी
 भौंहें सुन्दर थीं तथा मौलिश्रीके समान सुगन्धित उसकी मुखके सुवाससे उसके पास भौरोंके
 समूह मँडराते रहते थे ॥१६७॥ उसकी भुजाएँ अत्यन्त सुकुमार थीं, उसकी कमर वज्रके समान
 पतली थी, उसकी जाँघें उत्तम सरस केलेके स्तम्भके समान सुन्दर थीं, उसके पैर स्थल-कमलके
 समान उन्नत पृष्ठभागसे सुशोभित थे और उसके उठते हुए स्तनयुगल अत्यधिक कान्तिसे युक्त
 थे ॥१६८॥ वह विदुषी जानकी उत्तमोत्तम राजमहलोंके विशाल कोष्ठोंमें अपनी कान्तिसे
 विविध मार्ग बनाती हुई सात सौ कन्याओंके मध्यमें स्थित हो बड़ी सुन्दरताके साथ शास्त्रानुसार
 क्रीड़ा करती थी ॥१६९॥ यदि सूर्यकी प्रभा, चन्द्रमाकी चोँदनी, इन्द्रकी इन्द्राणी, और चक्रवर्ती
 की पट्टरानी सुभद्रा किसी तरह जानकीके शरीरकी शोभा प्राप्त कर सकतीं तो वे निश्चित ही अपने
 पूर्वरूपकी अपेक्षा अधिक सुन्दर होतीं ॥१७०॥ जिस प्रकार विधाताने रतिको कामदेवकी पत्नी
 निश्चित किया था उसी प्रकार राजा जनकने सर्व प्रकारके विज्ञानसे युक्त सीताको राजा दशरथके
 प्रथम पुत्र रामकी पत्नी निश्चित किया था सो ठीक ही है क्योंकि कमलोंकी लक्ष्मी सूर्यकी किरणों-
 के साथ संपर्क करने योग्य ही है ॥१७१॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध रविप्रेषाचार्यके द्वारा प्रोक्त पद्मचरितमें सीता और भामण्डलकी
 उत्पत्तिका कथन करने वाला छव्वीसवौं पर्व समाप्त हुआ ॥२६॥

सप्तविंशतितमं पर्व

ततो मगधराजेन्द्रश्चारुद्वृत्तान्तविस्मितः । पप्रच्छ गणिनामग्र्यं नूतनप्रग्रयान्वितः ॥१॥
 किं पुनस्तस्य माहात्म्यं दृष्टं जनकभृश्रुता । रामस्य येन सा तस्मै तेन बुद्धया निरूपिता ॥२॥
 ततः करतलासङ्गद्विगुणीभूतदन्तभाः । जगौ गणधरो वाक्यं चित्तप्रह्लादनावहम् ॥३॥
 श्यु राजन् प्रवक्ष्यामि रामस्याविलष्टकर्मणः । यतः प्रकसिपता कन्या जनकेन सुबुद्धिना ॥४॥
 दक्षिणे विजयाद्वैस्य कैलासाद्रेस्तथोचरे । अन्तरेऽत्यन्तवहवः सन्ति देशाः सहान्तराः ॥५॥
 तत्रार्धवर्षे देशो निःसंयमनमच्छतिः । निर्विदग्धजनो घोरम्लेच्छलोकसमाकुलः ॥६॥
 मयूरमालनगरे कृतान्तनगरोपमे । अन्तरङ्गतमो नामेत्यर्धवर्षचारिणाम् ॥७॥
 पूर्वापरायतक्षोण्यां यावन्तो म्लेच्छसंभवाः । कपोतशुककाम्बोजमङ्गनाथाः सहस्रशः ॥८॥
 गुप्ता बहुविधैः सैन्यैर्भीषणैर्विविधायुधैः । अन्तरङ्गतमं प्रीत्या परिचार्य ससाधनाः ॥९॥
 आर्यानेताङ्गनपदान् प्रचण्डान्तररंहसः । उद्वासयन्त आजगमुरिति कारुण्यवसिन्ताः ॥१०॥
 देशं जनकराजस्य ततो भ्यान्तुं समुद्यताः । शलभा इव निःशेषमुपप्लवविधायिनः ॥११॥
 जनकेन च साक्रेतां युवानः प्रेषिताः द्रुतम् । अन्तरङ्गतमं प्रासमूजुर्दशरथस्य ते ॥१२॥
 विज्ञापयति देव त्वां जनको जनवत्सलः । पौलिन्यदपरचक्रेण समाक्रान्तं महीतलम् ॥१३॥

अथानन्तर भामण्डलके सुन्दर वृत्तान्तसे आश्चर्यचकित हुए राजा श्रेणिकने नूतन विनयसे युक्त हो अर्थात् पुनः नमस्कार कर गौतम गणधरसे पूछा कि हे भगवन् ! राजा जनकने रामका ऐसा कौनसा माहात्म्य देखा कि जिससे उसने रामके लिए बुद्धिपूर्वक अपनी कन्या देनेका निश्चय किया ? ॥१-२॥ तदनन्तर करतलके आसङ्गसे जिनके दौतोंकी कान्ति दूनी हो गई थी ऐसे गौतम गणधर चित्तको आह्लादित करनेवाले वचन बोले ॥३॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! सुनो, संकलेशहीन कार्यको कानेवाले रामचन्द्रके लिए अत्यन्त बुद्धिमान् जनकने जिस कारण अपनी कन्या देना निश्चित किया था वह मैं कहता हूँ ॥४॥ विजयाद्वै पर्वतके दक्षिण और कैलास पर्वतके उत्तरकी ओर बीच-बीचमें अन्तर देकर बहुतेसे देश स्थित हैं ॥५॥ उन देशोंमें एक अर्धवर्षर नामका देश है जो असंयमी जनोके द्वारा मान्य है, धूर्तजनोंका जिसमे निवास है तथा जो अत्यन्त अयंकर म्लेच्छ लोगोंसे व्याप्त है ॥६॥ उस देशमे यमराजके नगरके समान एक मयूरमाल नामका नगर है । उसमे अन्तरङ्गतम नामका राजा राज्य करता था ॥७॥ पूर्वसे लेकर पश्चिम तककी लम्बी भूमिमें कपोत, शुक, काम्बोज, मङ्गल आदि जितने हजारों म्लेच्छ रहते थे वे अनेक प्रकारके शस्त्र तथा नाना प्रकारके भीषण अस्त्रोंसे युक्त हो अपने सव साधनोंके साथ प्रीतिपूर्वक आन्तरङ्गतम राजाकी उपासना करते थे ॥८-९॥ जिनका गमन बीच-बीचमें अत्यन्त वेगसे होता था तथा जो दयासे रहित थे ऐसे वे म्लेच्छ इन आर्य देशोंको उजाड़ते हुए यहाँ आये ॥१०॥ तदनन्तर टिड्डियोंके समान उपद्रव करनेवाले वे म्लेच्छ राजा जनकके देशको व्याप्त करनेके लिए उद्यत हुए ॥११॥ राजा जनकने शीघ्र ही अपने योद्धा अयोध्या भेजे । उन्होंने जाकर राजा दशरथसे आन्तरङ्गतमके आनेकी खबर दी ॥१२॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! प्रजा-

१. नूतनप्रग्रयान्वितः क०, ख० । २. तत्रार्धवर्षरीदेशो व० । ३. मयूरमालानगरे क०, ख० । ४. आन्तरङ्गतमे क०, ख० । ५. मङ्गल्याथाः व० । ६. प्रेषिता क०, ख०, व० । ७. आतासन्तजना तेन दूतस्तेन वदन्त वै (?) क०, ख० । ८. प्रासु व० । ९. पौलिन्य म० ।

आर्यदेशाः परिध्वस्ता म्लेच्छैरुद्धासितं जगत् । एकवर्णां प्रजां सर्वां पापाः कर्तुं ससुद्यताः ॥१४॥
 प्रजासु विप्रनष्टासु जीवासः किं प्रयोजनाः^१ । चिन्त्यतामिति किं कुर्मो ब्रजामो वा कमाश्रयम् ॥१५॥
 किं वा दुर्गां समाश्रित्य तिष्ठाम. ससुहृजनाः । नन्दीकालिन्दभागान् वा गिरिं वा विपुलाह्वयम् ॥१६॥
 अथवा सर्वसैन्येन निकुञ्जगिरिमाश्रिताः । संनिरुध्मः^३ समागच्छत् परसैन्यं भयानकम् ॥१७॥
 साधुगोश्रावकाकीर्णां प्रजामेतां सुविह्वलाम् । सम्यक् संघारथिष्यामस्त्यक्त्वा जीवं सुदुस्त्वहम् ॥१८॥
 अतो ब्रवीमि राजंस्त्वां यच्चया पात्यते महीं । तव राज्यं महाभाग त्वमेव हि जगत्पतिः ॥१९॥
 यजन्ते^४ भावतः सन्तो यावन्तः श्रावकादयः । पञ्चयज्ञान् विधानेन^५ ब्राह्मणैर्यद्वर्धयिष्ये^६ ॥२०॥
 मुक्तिञ्चान्तिगुणैर्युक्ता यच्च ध्यानपरायणाः । तप्यन्ते सुतपो मोक्षसाधनं गगनाम्बराः ॥२१॥
 महान्तश्च पुरस्कारा यच्चैत्यभवनादिषु । विधीयन्तेऽभिषेकाश्च जिनानां क्षीणकर्मणम् ॥२२॥
 प्रजासु रक्षितास्त्वेतत्सर्वं भवति रक्षितम् । ततश्च धर्मकामार्थाः प्रेत्य चेह च भूभृताम् ॥२३॥
 बहुकोपो नरेशो यः प्रीतः पालयति हितम् । परचक्राभिमृतश्च नावसादं^७ समश्नुते ॥२४॥
 हिंसाधर्मविहीनानां यच्छ्रुतां यागदक्षिणाम् । कुर्वते पालनं यश्च तस्य भोगाः पुनर्भुवः ॥२५॥
 धर्मार्थकामभोगाणामधिकारा मर्हंतले । जनानां राजगुप्तानां जायन्ते तेऽन्यथा वृत्तः ॥२६॥
 नृपबाहुवलच्छायां समाश्रित्य सुखं प्रजाः । ध्यायन्त्यात्मानमन्यग्रास्तथैवाश्रमिणो बुधाः ॥२७॥

वत्सल राजा जनक आपसे निवेदन करते हैं कि समस्त पृथिवीतल म्लेच्छ राजाकी सेनासे आक्रान्त हो चुका है ॥१२॥ उन म्लेच्छोंने आर्य देश, नष्ट-भ्रष्ट कर दिये हैं तथा समस्त जगत्को उजाड़ दिया है । वे पापी समस्त प्रजाको एक वर्णकी करनेके लिए उद्यत हुए हैं ॥१४॥ जब प्रजा नष्ट हो रही है तब हम किसलिए जीवित रह रहे हैं ? विचार कीजिए कि इस दृश्यामें हम क्या करें ? अथवा किसकी शरणमें जावे ? ॥१५॥ हम मित्रजनोके साथ किस दुर्गका आश्रय लेकर रहें अथवा नन्दी, कलिन्द या विपुलगिरि इन पर्वतोका आश्रय लें ? ॥१६॥ अथवा सब सेनाके साथ निकुञ्जगिरिमें जाकर शत्रुकी आती हुई भयंकर सेनाको रोकें ॥१७॥ अथवा यह कठिन दिखता है कि हम अपना जीवन देकर भी साधु, गौ तथा श्रावकोसे व्याप्त इस विह्वल प्रजाको रक्षा कर सकेंगे ॥१८॥ इसलिए हे राजन् ! मैं आपसे कहता हूँ कि चूँकि आप ही पृथिवीकी रक्षा करते रहे, अतः यह राज्य आपका ही है और हे महाभाग ! आप ही जगत्के स्वामी हैं ॥१९॥ जितने श्रावक आदि सत्पुरुष हैं वे भावपूर्वक पूजा करते हैं । अङ्कुर उत्पन्न होनेकी शक्तिसे रहित पुराने धान आदिके द्वारा विधिपूर्वक पाँच प्रकारके यज्ञ करते हैं ॥२०॥ निर्ग्रन्थ मुनि मुक्ति चान्ति आदि गुणोसे युक्त होकर ध्यानमें तत्पर रहते हैं तथा मोक्षका साधनभूत उत्तम तप तपते हैं ॥२१॥ जिनमन्दिर आदि स्थलोंमें कर्मोको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्की वड़ी-वड़ी पूजाएँ तथा अभिषेक होते हैं ॥२२॥ प्रजाकी रक्षा रहने पर ही इन सबकी रक्षा हो सकती है और इन सबकी रक्षा होने पर ही इस लोक तथा परलोकमें राजाओंके धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्ग सिद्ध हो सकते हैं ॥२३॥ बहुत बड़े खजानेका स्वामी होकर जो राजा प्रसन्नतासे पृथिवीकी रक्षा करता है और परचक्रके द्वारा अभिमृत होने पर भी जो विनाशको प्राप्त नहीं होता तथा हिंसाधर्मसे रहित एवं यज्ञ आदिमें दक्षिणा देनेवाले लोगोंकी जो रक्षा करता है उस राजाको भोग पुनः प्राप्त होते हैं ॥२४-२५॥ पृथिवीतलपर मनुष्योंको धर्म अर्थ, काम और मोक्षका अधिकार है सो राजाओंके द्वारा सुरक्षित मनुष्योंको ही ये अधिकार प्राप्त होते हैं अन्यथा किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं ? ॥२६॥ राजाके बाहुवलकी छायाका आश्रय

१. किं प्रयोजनम् म० । २. नदीकीलीन्द्रभागान्वा म० । ३. सन्निरुध्मः म० । ४. राजंस्त्वम् म० । ५. यजन्ते क०, ख० । ६. प्रधानेन म० । निधानेन व० । ७. यववीलकैः व० । ८. युक्तिः म० । ९. प्रजाः सुरक्षितास्त्वेतत् म० । १०. समश्नुतम् म० । ११. पुनरपि प्राप्या भवन्ति ।

यस्य देशं समाश्रित्य साधवः कुर्वते तपः । पष्टमंशं नृपस्तस्य लभते परिपालनात् ॥२८॥
 अथैवमिति तत्सर्वमुपश्रुत्य^१ नराधिपः । द्रुतं रामं समाहूय^२ राज्यं दातुं ससुधतः ॥२९॥
 मुद्रितैः किङ्करैर्भेरीवनानन्दा समाहता^३ । आजग्मुः सचिवाः सर्वे गजवाजिसमाकुलाः ॥३०॥
 जाम्बूनदमयान् कुम्भान् गृहीत्वा वारिपूरितान् । बद्ध्वा परिकरं शूरा भासमानाः समागताः ॥३१॥
 चारुनूपुरनिखाना दधाना वेपमर्चितम् । चस्त्रालङ्कारमादाय पटलेष्वागताः^४ स्त्रियः ॥३२॥
 आटोपमोदश दृष्ट्वा किमेतदिति शब्दितम् । रामं दशरथोज्जीवत् पालयेमां सुत कितिम् ॥३३॥
 रिपुचक्रमिहायातं यद्वैरपि दुर्जयम् । विजेत्ये तदहं गत्वा प्रजानां हितकाम्यया ॥३४॥
 ततो राजीवन्यनो राघवो नृपमब्रवीत् । किमर्थं तात संरभमस्थाने प्रतिपथसे ॥३५॥
 किं कार्यं पशुसंज्ञैस्त्वैरसभापैर्दुरात्मभिः । येषामभिमुखीभावं प्रयासि रणकाङ्क्षया ॥३६॥
 न ह्यास्त्रानां विरोधेन क्षुभ्यन्ति वरवारणाः । न चापि नूलाद्वाढार्यं^५ सन्नद्यति विभावसुः ॥३७॥
 तत्र प्रयातुमस्माकं युष्यते यच्छ शसनम् । इत्युक्ते हर्षिताङ्गस्तं परिप्लव्य पितृव्रवीत् ॥३८॥
 एवं बालः सुकुमारान्नः पथं पञ्चनिभेक्षणः । कथं तान् सहसे जेतु न प्रत्येग्यहमर्भकं ॥३९॥
 सोऽजोचत् सद्य उल्पन्नो भृशमस्वोऽपि पावकः । कथं दहति विस्तीर्णं महद्भिः किं प्रयोजनम् ॥४०॥
 बालः सूर्यस्तमो घोरं श्रुतीरं क्रुच्चगणस्य च । एको नाशयति क्षिप्रं भूतिभिः किं प्रयोजनम् ॥४१॥

लेकर प्रजा सुखसे आत्माका ध्यान करती है तथा आश्रमवासी विद्वान् निराकुल रहते हैं ॥२७॥
 जिस देशका आश्रय पाकर साधुजन तपश्चरण करते हैं उन सबकी रक्षाके कारण राजा तपका
 छठवां भाग प्राप्त करता है ॥२८॥

अथानन्तर यह सब सुनकर राजा दशरथ शीघ्र ही रामको बुलाकर राज्य देनेके लिए उद्यत
 हो गये ॥२९॥ किङ्करोंने प्रसन्न होकर बहुत भारी आनन्द देनेवाली भेरी बजाई । हाथी और
 घोड़ोंसे व्याकुल समस्त मन्त्री लोग आ पहुँचे ॥३०॥ देदीप्यमान शूरवीर जलसे भरे हुए सुवर्ण-
 कलश लेकर तथा कमर कसकर आ गये ॥३१॥ जिनके नूपुरोंसे सुन्दर शब्द हो रहा था तथा
 जो उत्तमोत्तम वेप धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियों पिटारोंमें चञ्चलकार ले लेकर आ गईं ॥३२॥
 यह सब तैयारी देखकर रामने पूछा कि यह क्या है ? तब राजा दशरथने कहा कि हे पुत्र !
 तुम इस पृथिवीका पालन करो ॥३३॥ यहाँ ऐसा शत्रुदल आ पहुँचा है जो देवोंके द्वारा भी
 दुर्जेय है । मैं प्रजाके हितकी वाञ्छासे जाकर उसे जीतूँगा ॥३४॥ तदनन्तर कमललोचन रामने
 राजा दशरथसे कहा कि हे तात ! अस्थानमें क्रोध क्यों करते हो ? ॥३५॥ आप रणकी इच्छा
 से जिनके सम्मुख जा रहे हैं, उन पशुस्वरूप भापाहीन दुष्ट मनुष्योंसे क्या कार्य हो सकता
 है ? ॥३६॥ चूहोंके विरोध करनेसे उत्तम गजराज क्षोभको प्राप्त नहीं होते और न सूर्य रुईको
 जलानेके लिए तत्पर होता है ॥३७॥ वहाँ जानेके लिए तो मुझे आज्ञा देना उचित है सो दीजिए ।
 ऐसा कहनेपर हर्षित शरीरके धारी पिताने रामका आलिङ्गन कर कहा ॥३८॥ कि हे पद्म ! अभी
 तुम बालक हो, तुम्हारा शरीर सुकुमारहै, तथा नेत्र कमलके समान हैं, इसलिए हे बालक ! तुम
 उन्हें किस तरह जीत सकोगे इसका मुझे प्रत्यय नहीं है ॥३९॥ रामने उत्तर दिया कि तत्काल
 उत्पन्न हुई थोड़ी-सी अग्नि बड़े विस्तृत वनको जला देती है इसलिए बड़ासे क्या प्रयोजन
 है ? ॥४०॥ बालसूर्य अकेला ही घोर अन्धकारको तथा नक्षत्र-समूहकी कान्तिको नष्ट कर देता
 है इसलिए विभूतिसे क्या प्रयोजन है ? ॥४१॥

१. -सुपश्रित्य ज०, व०, क०, ख० । २. दातुं राज्यम् म० । ३. समाहताः म० । ४. पटलेष्वागताः
 म० । ५. तत्परो भवति । ६. हे राम । ७. प्रत्यय करोमि । ८. अर्भकः म० । ९. सद्यमुपन्नो क०, ख०, म० ।

ततः सहृष्टरोमाङ्गो नृपो दशरथः पुनः । प्रमोदं परमं प्राप्तो विषादं च सवाष्पदृक् ॥४२॥
 सत्वत्यागादिवृत्तीनां क्षत्रियाणामियं स्थितिः । उत्सहन्ते प्रयातुं यद्विहातुमपि जीवितम् ॥४३॥
 अथवा क्षयमप्राप्ते जन्तुरायुषि नारयुते । मरणं गहनं प्राप्तः परं यद्यपि जायते ॥४४॥
 इति चिन्तयतस्तस्य कुमारी रामलक्ष्मणौ । पितुः पादाब्जयुगलं प्रणयोपगतौ बहिः ॥४५॥
 ततः सर्वाङ्कुशलौ सर्वशास्त्रविशारदौ । सर्वलक्षणसंपूर्णौ सर्वस्य प्रियदर्शनौ ॥४६॥
 चतुरङ्गबलोपेतौ पूर्यमाणौ विभूतिभिः । संप्रयातौ रथारूढौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ॥४७॥
 पूर्वमेव तु निर्गतां जनकः सोदरान्वितः । अन्तरं योजने द्वे च परसैन्यस्य तस्य च ॥४८॥
 शत्रुशब्दममृष्यन्तो^१ जनकस्य महारथाः । विविशुर्ल्लेच्छसंघातं मेघवृन्दमिव ग्रहाः ॥४९॥
 प्रवृत्तश्च महाभीमः संप्रामो रोमहर्षणः । बृहत्पहरणाटोप आर्यंलेच्छभटाकुलः ॥५०॥
 जनकः कनकं दृष्ट्वा परं गहनमागतम् । अचोदयदतिक्रुद्धो दुर्वारकरिणां घटाम् ॥५१॥
 वर्वरैस्तु महासैन्यैर्भग्नैर्भग्नैः पुनः पुनः । भीमैर्जनकराजोऽपि दिक्षु सर्वासु वेष्टितः ॥५२॥
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः पद्मः सौमित्रिणा सह । अपारं गहनं सैन्यमपर्यन्तारूढोचनः ॥५३॥
 दृष्ट्वा तस्य सितच्छत्रं विशीर्षां शत्रुवाहिनी । तमसां सन्ततिः स्फोता पौर्णमासीविद्युं यथा ॥५४॥
 आरवासितश्च बाणौघैर्जनको^२ ध्वस्तकङ्कटः । तेन जन्तुर्यथा दुःखी धर्मेण जगदायुषा ॥५५॥

तदनन्तर जिनका शरीर रोमाञ्चित हो रहा था ऐसे राजा दशरथ पुनः परम प्रमोद और विषादको प्राप्त हुए । उनके नेत्रोंसे आँसू निकल पड़े ॥४२॥ सत्त्व त्याग आदि करना जिनकी वृत्ति है ऐसे क्षत्रियोंका यही स्वभाव है कि वे युद्धमें प्रस्थान करनेके लिए अथवा जीवनका भी त्याग करनेके लिए सदा उत्साहित रहते हैं ॥४३॥ उन्होंने विचार किया कि जब तक आयु क्षीण नहीं होती है तब तक यह जीव परम कष्टको पाकर भी मरणको प्राप्त नहीं होता ॥४४॥ इस प्रकार राजा दशरथ विचार ही करते रहे और राम लक्ष्मण दोनों कुमार उनके चरण-कमलको नमस्कार कर बाहर चले गये ॥४५॥

तदनन्तर जो सर्व शास्त्र चलायनेमें कुशल थे, सर्व शास्त्रोंमें निपुण थे, सर्व लक्षणोंसे परिपूर्ण थे, जिनका दर्शन सबके लिए प्रिय था, जो चतुरङ्ग सेनासे सहित थे, विभूतियोंसे परिपूर्ण थे तथा आत्मतेजसे देदीप्यमान हो रहे थे ऐसे दोनों कुमार रथपर आरूढ़ होकर चले ॥४६-४७॥ राजा जनक अपने भाईके साथ पहले ही निकल पड़ा था । जनक और शत्रुसेनाके बीचमें दो योजनका ही अन्तर रह गया था ॥४८॥ जिस प्रकार सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रह मेघसमूहके बीच में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार राजा जनकके महारथी योद्धा शत्रुके शब्दको सहन नहीं करते हुए म्लेच्छसमूहके भीतर प्रविष्ट हो गये ॥४९॥ दोनों ही सेनाओंके बीच जिसमें बड़े-बड़े शास्त्रोंका विस्तार फैला हुआ था, और जो आर्य तथा म्लेच्छ योद्धाओंसे व्याप्त था, ऐसा रोमहर्षित करनेवाला महाभयंकर युद्ध हुआ ॥५०॥ राजा जनकने देखा कि भाई कनक संकटमें पड़ गया है तब उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दुर्वार हाथियोंकी घटाको प्रेरित कर आगे बढ़ाया ॥५१॥ म्लेच्छोंकी सेना बहुत बड़ी तथा भयंकर थी इसलिए उसने बार-बार भग्न होनेपर भी भी राजा जनकको सब दिशाओंमें घेर लिया ॥५२॥ इसी बीचमें सुन्दर नेत्रोंको धारण करनेवाले राम लक्ष्मणके साथ वहाँ जा पहुँचे । पहुँचते ही उन्होंने शत्रुकी अपार तथा भयंकर सेना देखी ॥५३॥ रामके सफेद छत्रको देखकर शत्रुकी सेना इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो गई जिस प्रकार कि अन्धकारकी सन्तति पूर्णिमाके चन्द्रमाको देख कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है ॥५४॥ बाणोंके समूहसे जिसका कवच टूट गया था ऐसे जनकको रामने उसी तरह आरवासन

राघवो रथमारूढो युक्तं चपलवाजिभिः । क्वचोद्योतितवपुः हारकुण्डलमण्डितः ॥५६॥
धनुरायतमास्थाय शरपाणिर्हृदिध्वजः । प्रकीर्णकोत्सवच्छत्रो धरणीधीरमानसः ॥५७॥
प्रविशन् विपुलं सैन्यं लीलाया लोकवत्सलः । सुभटैः पूर्यमाणः सन् भात्यर्कं हव रश्मिभिः ॥५८॥
संरक्ष्य जनकं प्रीतः कनकं च यथाविधि । वलं व्यध्वंसयच्छत्रोरिभवत् कदलीवनम् ॥५९॥
तथैव लक्ष्मणस्तत्र बाणानाकर्णसहतान् । ववर्ष वायुना नुन्नः सागरे जलदो यथा ॥६०॥
निशितानि च चक्राणि शक्तीश्च कनकानि च । शूलैः क्रकचनिर्घातान्येवमांध्यान्यचिच्छिपत् ॥६१॥
सौमित्रियुजनिमुक्तैस्तैः पतद्भिरितस्ततः । म्लेच्छदेहा^२ न्यक्त्यन्त हुमाः परशुभिर्यथा ॥६२॥
भटाः शबरसैन्येऽस्मिन् बाणैर्निर्भिन्नवक्षसः । केचिच्छत्रमुजग्रीवा निपतन्ति^३ सहस्रशः ॥६३॥
ततः पराद् मुखीभूता लोककण्टकवाहिनी । तथापि लक्ष्मणस्तेपामनुधावति पृष्ठतः ॥६४॥
अनिवार्यं समालोक्य तं सौमित्रि सृगाधिपम् । अपरे म्लेच्छशादूला समन्ताद् चोभमागताः ॥६५॥
बृहद्वादित्रनिर्घापैः कुर्वीणा भैरवं रवम् । चापासिचक्रवहूलाः कृतसंघातपटुक्त्तयः ॥६६॥
रक्तवक्त्रशिरस्त्राणाः केचिद्वरधारिणः । असिधेनुकराः क्रूरा नानावर्णाधारिणः ॥६७॥
केचिद्विन्नाञ्जनच्छायाः^४ शुक्रपत्रविपोऽपरे । केचिद्वर्द्धमसंकाशाः केचित्ताम्रसमत्विपः ॥६८॥
कटिसूत्रमणिप्रायाः पत्रचीवधारिणः । नानाधातुविलिप्ताः मञ्जरीकृतशेखराः ॥६९॥

दिया-वैर्यं बंधाया जिस प्रकार कि जगत्के प्राणस्वरूप धर्मके द्वारा दुःखी प्राणीको आरवासन दिया जाता है ॥५५॥ रामचन्द्र चञ्चल घोड़ोंसे जुते हुए रथ पर सवार थे, उनका शरीर कवचसे प्रकाशमान हो रहा था, हार और कुण्डल उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥५६॥ वे एक हाथमें लम्बा धनुष और दूसरे हाथमें बाण लिये हुए थे । उनकी ध्वजामें सिंहका चिह्न था, शिर पर विशाल छत्र फिर रहा था तथा उनका मन पृथिवीके समान धीर था ॥५७॥ जिनके साथ अनेक सुभट थे ऐसे लोकवत्सल राम, लीलापूर्वक विशाल सेनाके बीच प्रवेश करते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो किरणोंसे सहित सूर्य ही हो ॥५८॥ प्रसन्नतासे भरे रामने जनक और कनक दोनों भाइयोंकी विधिपूर्वक रक्षा कर शत्रुसेनाको उस तरह नष्ट कर दिया जिस प्रकार कि हाथी केलाके वनको नष्ट कर देता है ॥५९॥ जिस प्रकार वायुसे प्रेरित मेघ समुद्र पर जल वर्षा करता है उसी प्रकार लक्ष्मणने शत्रुदल पर कान तक खिंचे हुए बाण बरसाये ॥६०॥ वह अत्यन्त तीक्ष्ण चक्र, शक्ति, कनक, शूल, क्रकच और वज्रदण्ड आदि शस्त्रोंकी खूब वर्षा कर रहा था ॥६१॥ जिस प्रकार पड़ते हुए कुल्हाड़ोंसे वृक्ष कट जाते हैं उसी प्रकार लक्ष्मणकी भुजासे छूटकर जहाँ-तहाँ पड़ते हुए पूर्वोक्त शस्त्रोंसे म्लेच्छोंके शरीर कट रहे थे ॥६२॥ म्लेच्छोंकी इस सेनामें बाणोंसे कितने ही योद्धाओंका वक्षःस्थल छिन्न-भिन्न हो गया था, और हजारों योद्धा भुजा तथा गरदन कट जानेसे नीचे गिर गये थे ॥६३॥ यद्यपि लोकके शत्रुओंकी वह सेना लक्ष्मणसे पराङ्मुख हो गई थी तो भी वह उनके पीछे दौड़ता ही गया ॥६४॥ जिसे कोई रोक नहीं सकता था ऐसे लक्ष्मणरूपी मृगराजको देखकर म्लेच्छरूपी तिट्टुए सब ओरसे चौभको प्राप्त हो गये ॥६५॥ उस समय वे म्लेच्छ बड़े भारी बाजोंके शब्दसे भयंकर शब्द कर रहे थे, धनुष, कृपाण तथा चक्र आदि शस्त्र बहुलतासे लिये थे और भुण्डके-भुण्ड बनाकर पड़ितरूपमें खड़े थे ॥६६॥ कितने ही म्लेच्छ लाल वस्त्रका साफा बाँधे हुए थे, कोई छुरी हाथमें लिये थे और नाना रङ्गके शरीर धारण कर रहे थे ॥६७॥ कोई मसले हुए अञ्जनके समान काले थे, कोई सूखे पत्तोंके समान कान्ति वाले थे, कोई कीचड़के समान थे और कोई लाल रङ्गके थे ॥६८॥ अधिकतर वे कटिसूत्रमें मणि बाँधे हुए थे, पत्तोंके बख पहिने हुए थे; नाना धातुओंसे उनके शरीर लिप्त थे, फूलकी

वराटकाभद्रशना विशालपिठोदराः । विरेजुः सैन्यमध्ये^१ तु कुटजा इव पुष्पिताः ॥७०॥
 अपरे शबरा रेजुभीषणायुधपाणयः । पीनजङ्घाभुजस्कन्धा असुरा इव दर्पिताः ॥७१॥
 निर्दयाः पशुमांसादो मूढाः प्राणिवधोद्यताः । आरभ्य जन्मनः पापा सहस्रात्मकारिणः ॥७२॥
 वराहमहिषव्याघ्रवृककङ्कादिकेतवः । नानायानच्छुद्धच्छत्रास्तत्सामन्ताः सुभीषणाः ॥७३॥
 नानायुद्धकृतध्वान्ता महावेगपदातयः । सागरोर्मिनिभाश्रण्डा^३ नानाभीषणनिस्वनाः ॥७४॥
 लक्ष्मणचमाधरं वज्रुः क्षुब्धाः शबरनोरदाः । निजसामन्तवातेन प्रेरिताः पुरुरंहसः ॥७५॥
 अथावत्लक्ष्मणस्तेषां निपाताय समुद्यतः । यथानङ्कुत्समूहानां महावेगो गजाधिपः ॥७६॥
 मृद्यमाना निपेतुस्ते स्वैरेव वसुधातले । विदुदुवुरसंख्याश्च भीत्या विचतमूर्तयः^५ ॥७७॥
 ततः संधारयन् सैन्यं मान्तरङ्गतमो नृपः । समं सकलसैन्येन लक्ष्मणाभिमुखं स्थितः ॥७८॥
 तेनाभ्यागतमात्रेण प्रवृत्ते भैरवे मृधे । लक्ष्मणस्य धनुश्छिन्नबाणैः संततवर्षिभिः ॥७९॥
 कृपाणं यावदादत्ते लक्ष्मणो विरथीकृतः । समीरणजवं तावत्पत्रो रथमचोदयत् ॥८०॥
 लक्ष्मणस्योपनीतश्च रथोऽन्यः क्षेपवर्जितः । अपारमदहत् सैन्यं रामः कचमिवानलः ॥८१॥
 कांश्चिच्चिच्छेद बाणौघैः कांश्चिक्कनकतोमरैः । चक्रैः शिरांसि केषांचिक्कुञ्चितौघान्यपातयत् ॥८२॥

मञ्जरियोसे उन्होंने सेहरा बना रक्खा था ॥६६॥ कौड़ियोंके समान उनके दौंते थे, बड़े मटकाके समान उनके पेट थे और सेनाके बीच वे फूले हुए कुटज वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७०॥ जिनके हाथोंमें भयंकर शस्त्र थे, और जिनकी जाँघें, भुजाएँ और स्कन्ध अत्यन्त स्थूल थे ऐसे कितने ही म्लेच्छ गर्वाल्ले असुरोंके समान जान पड़ते थे ॥७१॥ वे अत्यन्त निर्दय थे, पशुओंका मांस खाने वाले थे, मूढ़ थे, पापी थे और सहसा अर्थात् बिना विचार किये काम करने वाले थे ॥७२॥ वराह, महिष, व्याघ्र, वृक और कङ्का आदिके चिह्न उनके पताकाओंमें थे, उनके सामन्त भी अत्यन्त भयंकर थे तथा नाना प्रकारके वाहन, चहर और छत्र आदिसे सहित थे ॥७३॥ नाना युद्धोंमें जिन्होंने अन्धकार उत्पन्न किया था, जो समुद्रकी लहरोंके समान प्रचण्ड थे, और नाना प्रकारका भयंकर शब्द कर रहे थे ऐसे महावेगशाली पैदल योद्धा उनके साथ थे ॥७४॥ अपने सामन्तरूपी वायुसे प्रेरित होनेके कारण जिनका वेग बढ़ रहा था ऐसे उन चौभको प्राप्त हुए म्लेच्छरूपी मेघोंने लक्ष्मणरूपी पर्वतको घेर लिया ॥७५॥ जिस प्रकार वैलोक समूहको नष्ट करनेके लिए महावेगशाली हाथी दौड़ता है उसीप्रकार उन सबको नष्ट करनेके लिए उद्यत लक्ष्मण दौड़ा ॥७६॥ लक्ष्मणके दौड़ते ही उनमें भगदड़ मच गई जिससे वे अपने ही लोगोंसे कुचले जाकर पृथिवीपर गिर पड़े। तथा भयसे जिनके शरीर खण्डित हो रहे थे ऐसे अनेक योद्धा इधर-उधर भाग गये ॥७७॥

तदनन्तर आन्तरङ्गतम राजा सेनाको रोकता हुआ सब सेनाके साथ लक्ष्मणके समुख खड़ा हुआ ॥७८॥ उसने आते ही भयंकर युद्ध किया और निरन्तर बरसते हुए बाणोंसे लक्ष्मणका धनुष तोड़ डाला ॥७९॥ लक्ष्मण जब तक तलवार उठाता है तब तक उसने उसे रथ-रहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ डाला। यह देख रामने वायुके समान वेगवाला अपना रथ आगे बढ़ाया ॥८०॥ लक्ष्मणके लिए शीघ्र ही दूसरा रथ लाया गया और जिस प्रकार अग्नि वनको जलाती है, उसी प्रकार रामने शत्रुकी सेनाको जला दिया ॥८१॥ उन्होंने कितने ही लोगोंको बाणोंके समूहसे छेद डाला, कितने ही लोगोंको कनक और तोमर नामक शस्त्रोंसे

१. सैन्यमय म० । २. सहस्रात्मकारिणः म० । ३. चन्द्रा म० । ४. शरदनीरदाः म० । ५. यथा नदत्समूहानां म० । ६. विकृतमूर्तयः म० । ७. साधरयन् म० । ८. आन्तरङ्गतमः एतन्नामा म्लेच्छनृपः । ९. समीरणजवात्तावत् म० ।

ननाश भयपूर्णां च यथाशं म्लेच्छवाहिनी । विध्वस्तचामरच्छत्रध्वजचापसमाकुला ॥८२॥
 निमिपान्तरमात्रेण रामेणाविलटकर्मणा । म्लेच्छा निराकृताः सर्वे कषाया इव साधुना ॥८३॥
 आगतो यश्च सैन्येन निष्पारेणोद्धिर्धर्यथा । भीतोऽश्वैर्दृशभिः सोऽयं म्लेच्छराजो विनिःसृतः ॥८४॥
 पराङ्मुखोऽकृतैः कर्त्तव्यैः किमेमिनिहतैरिति । सौमित्रिणा समं रामः कृती निववृते सुखम् ॥८५॥
 अमी भयाकुला म्लेच्छा चिहाय विजिगीषुताम् । आश्रित्य सहाविन्ध्याद्रोन् समयेनावतस्थिरे ॥८६॥
 कन्दमूलफलाहारास्तत्यञ्च रौद्रकर्मताम् । राघवाद् भयमापन्ना वैनतेयाद्रिवोरगाः ॥८७॥
 ३सानुजः ४सानुजं पद्मो विग्रहे शान्तविग्रहः । विसर्ज्य जनकं हृष्टं जनकाभिसुखोजगामत् ॥८८॥
 प्रजात्तपरमानन्दार् रेमे विस्मितमानसा । रराज पृथिवी सर्वा भूत्या कृतयुगे यथा ॥८९॥
 धर्मार्थकामसंस्तैः पुरुषैर्भूषितं जगत् । व्यतीतहिमसंरोधैर्नक्षत्रैस्त्वरं यथा ॥९०॥
 माहात्म्यादमुतो राजन् दुहिता लोकसुन्दरी । जनकेन प्रसन्नेन राघवस्य प्रकल्पिता ॥९१॥

काट डाला तथा जिनके आँठ टेढ़े हो रहे थे ऐसे कितने ही लोगोंके शिर चक्ररत्नसे नीचे गिरा दिये ॥८२॥ टूटे-फूटे चमर छत्र ध्वजा और धनुषोसे व्याप्त म्लेच्छोंकी वह सेना भयभीत होकर इच्छानुसार नष्ट हो गई—इधर-उधर भाग गई ॥८३॥ जिस प्रकार साधु कषायोंको क्षण भरमे नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार क्लेशरहित कार्य करनेवाले रामने निमेष मात्रमें ही समस्त म्लेच्छोंको नष्ट कर दिया ॥८४॥ जो म्लेच्छ राजा समुद्रके समान अपार सेनाके साथ आया था वह भयभीत होकर केवल दश घोड़ोंके साथ बाहर निकला था ॥८५॥ इन विसुख नपुंसकोको मारनेसे क्या प्रयोजन है ऐसा विचार कर कृतकृत्य राम लक्ष्मणके साथ सुख पूर्वक युद्धसे लौट गये ॥८६॥ भयसे घबड़ाये हुए म्लेच्छ विजयकी इच्छा छोड़ सन्धि कर सब और विन्ध्य पर्वतोपर रहने लगे ॥८७॥ जिस प्रकार सौंप गरुड़से भयभीत रहते हैं उसी प्रकार म्लेच्छ भी रामसे भयभीत रहने लगे । वे कन्द मूल फल आदि खाकर अपना निर्वाह करने लगे तथा उन्होंने सब दुष्टता छोड़ दी ॥८८॥

तदनन्तर युद्धमे जिनका शरीर शान्त रहा था ऐसे सानुज अर्थात् छोटे भाई लक्ष्मणसहित राम, सानुज अर्थात् छोटे भाई जनकसहित हर्षित जनकको छोड़कर जनक अर्थात् पिताके सम्मुख चले गये ॥८९॥ तदनन्तर जिसे परम आनन्द उत्पन्न हुआ था और जिसका मन आश्चर्यसे विस्मित हो रहा था ऐसी समस्त प्रजा आनन्दसे क्रीड़ा करने लगी और समस्त पृथिवी कृतयुगके समान वैभवसे सुशोभित होने लगी ॥९०॥ जिस प्रकार हिमके आवरणसे रहित नक्षत्रोसे आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार धर्म अर्थ काममे आसक्त पुरुषोसे संसार सुशोभित होता है ॥९१॥ गौतमस्वामी श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! राजा जनकने इसी माहात्म्य से प्रसन्न होकर अपनी लोकसुन्दरी पुत्री जानकी रामके लिए देना निश्चित की थी ॥९२॥

१. यथावाञ्छम् यथासंम्लेच्छ म० । २. विनिःसृतः म० । ३. सलक्ष्मणः । ४. अनुजसहित जनक सहितमिति यावत् । ५. पद्मोविग्रहः ऋ० । ६. मिथिलाधिपम् । ७. पित्रभिसुखम् । ८. रोमविस्मित- म० ।

उपजातिवृत्तम्

किं वात्र कृत्यं बहुभाषितेन श्रीश्रेणिकं स्वं ननु कर्म पुंसाम् ।
 समागमे गच्छति हेतुभावं वियोजने वा सुजनेन साकम् ॥६३॥
 सोऽहं महात्मा शुवने समस्ते गतः प्रतापं परमं सुभाग्यः ।
 गुणैरनन्यप्रमितैरुपेतो रविर्यथोज्जाति^२ परो मयूखैः ॥६४॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यं प्रोक्ते पद्मचरिते स्लेच्छपरराज्यसंकीर्तनं नाम
 सप्तविंशतितमं पर्व ॥२७॥

इस विषयमे बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? हे श्रेणिक ! यह निश्चित बात है कि मनुष्योंका अपना किया कर्म ही उत्तम पुरुषोंके साथ संयोग अथवा वियोग होनेसे कारणभावको प्राप्त होता है ॥६३॥ परम प्रतापको प्राप्त भाग्यशाली एवं असाधारण गुणोंसे युक्त महात्मा रामचन्द्र समस्त संसारमे इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि किरणोंसे युक्त सूर्य सुशोभित होता है ॥६४॥

इस प्रकार आर्षेनामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें स्लेच्छोंके परराज्यका वर्णन करनेवाला सत्ताईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२७॥

अष्टाविंशतितमं पर्व

ईदृक्पराक्रमाकृष्टो नारदः पुरुविस्मयः । धृतिं न लभते क्वापि रामसंकथया विना ॥१॥
 श्रुतश्च तेन वृत्तान्तो रामस्य किल मैथिली । पिता दातुमभीष्टेति प्रकटा सर्वविष्टे ॥२॥
 अचिन्तयन् पश्यामि कन्यां तामद्य कीदृशीम् । शोभनेल्लक्ष्णैर्येन रामस्य परिकल्पिता ॥३॥
 पद्मगर्भदलं यस्मिन् कृत्वा स्तनतटे रहः । मत्कान्त्या सदृशं नेदमिति बुद्ध्यावलोकते ॥४॥
 समये नारदस्तस्मिन् सीतालोकनलालसः । विद्युद्बहूदयः प्रापदारुरोहं च तद्गृहम् ॥५॥
 ततो दर्पणसंक्रान्तं जटामुकुटभीपणम् । नारदीयं वपुर्वीक्ष्य कन्या त्राससमाकृता ॥६॥
 हा मातः कोऽयमत्रेति कृत्वा प्रस्रलितस्वनम् । विवेश गर्भभवनं वेपमानशरीरिका ॥७॥
 नारदोऽनुपदं तस्या विशन्नतिक्रुतहृलः । नारीभिर्द्वारपालीभिः सावष्टम्भमरुष्यत ॥८॥
 यावत्तस्य च तासां च कलहो वर्तते महान् । तावच्छब्देन संप्रापुर्नराः खड्गधनुर्धराः ॥९॥
 गृह्णातां गृह्णातां कोऽयं कोऽयमित्युद्धतस्वनाः । कुञ्चितौघान्नरान् दृष्ट्वा सशस्त्रान् हन्तुमुद्यतान् ॥१०॥
 नारदः परमं विश्रद्मयमुक्त्वैवपथुः । ऊर्ध्वरोमा खमुत्पत्य विश्रान्तोऽष्टापदाचले ॥११॥
 अचिन्तयन् हा कष्टं प्राप्नोऽस्मि जननं पुनः । निष्क्रान्तोऽस्मि महादावात् पत्नी ज्वालाहतो यथा ॥१२॥

आथानन्तर जो इस प्रकारके पराक्रमसे आकर्षित था तथा बहुत भारी आश्चर्यसे मुक्त था ऐसा नारद युद्धकी चर्चाके विना कहीं भी सन्तोपको प्राप्त नहीं होता था ॥१॥ उसने समाचार सुना कि समस्त संसारमे प्रसिद्ध अपनी सीता नामकी पुत्री उसके पिता राजा जनकने रामचन्द्रके लिए देनेकी इच्छा की है ॥२॥ समाचार सुनते ही उसने विचार किया कि उस कन्याको देखू तो सही कि वह शुभ लक्षणोंसे कैसी है जिससे रामचन्द्रके लिए उसका देना निश्चित किया गया है ॥३॥ ऐसा विचार कर नारद उस समय सीताके महलमे पहुँचा जब कि वह एकान्त स्थानमें पद्मगर्भ मणिका एक खण्ड अपने स्तन तटके समीप करके इस बुद्धिसे उसे देख रही थी कि यह मेरी कान्तिके समान है या नहीं ॥४॥ जिसे सीताके देखनेकी लालसा थी तथा जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध अर्थात् निर्विकार था ऐसा नारद उस समय सीताके महलमे ऊपर जा चढ़ा ॥५॥ तदनन्तर जिसका दर्पणमे प्रतिबिम्ब पड़ रहा था और जो जटारूपी मुकुटसे भीपण था ऐसा नारदका शरीर देखकर सीता भयसे व्याकुल हो गई ॥६॥ हा मातः ! यह यहाँ कौन आ रहा है ? इस प्रकार अर्धोच्चारित शब्द कर वह महलके भीतर घुस गई । उस समय उसका शरीर कम्पित हो रहा था ॥७॥ अत्यन्त क्रुतहृलसे भरा नारद भी उसीके पीछे महलमे भीतर प्रवेश करने लगा तो द्वारकी रक्षा करनेवाली स्त्रियोंने उसे बलपूर्वक रोक लिया ॥८॥ जब तक नारद तथा उन स्त्रियोंके बीच बड़ा कलह होता है तब तक उनका शब्द सुनकर तलवार और घनुषको धारण करनेवाले पुरुष वहाँ आ पहुँचे ॥९॥ वे पुरुष पकड़ो-पकड़ो कौन है ? कौन है ? इस प्रकारका जोरदार शब्द कर रहे थे । जो ओंठ चाव रहे थे, शस्त्रोंसे मुक्त थे तथा मारनेके लिए उद्यत थे ऐसे उन पुरुषोंको देखकर नारद अत्यन्त भयभीत हो उठा । उसके शरीरसे अत्यधिक कंप-कंपी छूट रही थी, और रोमाञ्च खड़े हो गये थे । खैर, जिस किसी तरह वह आकाशमें उड़कर कैलास पर्वत पर पहुँचा और वहीं विश्राम करने लगा ॥१०-११॥ वह विचारने लगा कि हाय ! मैं वड़े कष्टमे पड़ गया था । बचकर क्या आया मानो दूसरा जन्म ही मैंने प्राप्त किया है । जिस प्रकार ज्वालाओंसे मुलसा पत्नी किसी वड़े ढावानलसे बाहर निकलता

शनैः शनैस्ततः कर्मपं तद्विग्न्यस्तेऽङ्गणोऽमुचत् । समार्जं च ललाटस्थान् स्वेद्विन्दन् स्थवीर्यसः ॥१३॥
 समाद्रधे स्खलपाणिजटाभार समाकुलम् । मुहुः स्मृता च निःश्वासान्मुमुक्षुः दीर्घवेगिनः ॥१४॥
 ततः स्वैरं भयाद् अष्टौ दध्यावेवं प्रकोपवान् । निश्चलस्थितशेषाङ्गो मूर्धानं कम्पयन् मनाक् ॥१५॥
 अद्भुष्टमानसः पश्यन् यातो रूपदिदृक्षया । रामानुरागतः प्रापमवस्थां मृत्युगोचराम् ॥१६॥
 अहो प्रौढकुमारार्थस्तच्छेषितं दुष्टविभ्रमम् । गृहीतोऽस्ति नयनेनैव कृतान्तसदृशैर्नरैः ॥१७॥
 क्व मे पापाश्रुना याति व्यसने पातयामि ताम् । नृत्याभ्यातोद्यमुक्तोऽपि किमुतातोद्यसंयुतः ॥१८॥
 विचिन्त्यैवं द्रुतं गत्वा नगरं रथनूपुरम् । सीतारूपं पदे न्यस्य प्रत्यक्षमिव सुन्दरम् ॥१९॥
 चकारोपवने चन्द्रगतेः^२ क्रांढनसद्यनि । उत्सृज्य च वहिस्तस्थौ पुरस्याप्रकटाऽमकः ॥२०॥
 अन्यदाथ तमुद्देशं कुमारैर्वह्निभिः समम् । भामण्डलकुमारोऽसी रममाणः समायथौ ॥२१॥
 तत्राज्ञानात् समालोक्य स्वसारं चित्रगोचराम् । हाश्रुतिस्मृतियुक्तात्मा द्राक् प्रभामण्डलोऽभवत् ॥२२॥
 ततः शोचति निरवासान्मुब्रूतेऽन्यन्तमायतान् । श्रुप्यति क्षिपति क्षत्तं गात्रं यत्र क्वचिद् द्रुतम् ॥२३॥
 न रात्रौ न दिवा निद्रां लभते ध्यानतत्परः । उपचारेण कान्त्वेन न ज्ञातु सुखमश्नुते ॥२४॥
 पुष्पाणि गन्धमाहारं द्वेष्टि चवैढं^३ यथा मृशम् । करोति लोठनं भूयः संतापी जलकुट्टिने ॥२५॥

हैं उसी प्रकार मैं भी उस कष्टसे बाहर निकला हूँ ॥१२॥ उस समय भी उसके नेत्र उसी दिशा में लग रहे थे । तदनन्तर धीरे-धीरे उसने शरीरको कँपकँपी छोड़ी और ललाटपर स्थित पसीनेकी बड़ी-बड़ी बूँदें पोंछीं ॥१३॥ उसने कोंपते हुए हाथसे अपनी विखरी हुई जटाएँ ठीक कीं । यह करते हुए जब उसे बार-बार पिछली घटनाका स्मरण हो आता था तब वह लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ने लगता था ॥१४॥ तत्पश्चात् जब भय दूर हुआ तो क्रोधमें आकर वह इस प्रकार विचार करने लगा । विचार करते समय उसके समस्त अङ्ग निश्चित रूपसे स्थिर थे केवल वह मस्तकको कुल-कुल हिला रहा था ॥१५॥ वह विचारने लगा कि देखो मेरे मनमें कोई दोष नहीं था मैं केवल रामचन्द्रके अनुरागसे सीताका रूप देखनेकी इच्छासे ही वहाँ गया था परन्तु ऐसी दशाको प्राप्त हो गया जिसमें मृत्यु तककी आशाका ही गई ॥१६॥ आश्चर्य है कि उस प्रौढ कुमारीकी वह चेष्टा कितनी दुष्टतासे भरी थी कि जिसके कारण मैं यमराजकी समानता करनेवाले मनुष्योंके द्वारा पकड़ लिया गया ॥१७॥ वह पापिनी अब जावेगी कहाँ ? मैं उसे अवश्य ही संकटमें डालूँगा । मैं तो वाजेके विना ही नाचता हूँ फिर यदि वाजे मिल जावे तो कहना ही क्या है ? ॥१८॥ ऐसा विचार कर उसने एक पटपर प्रत्यक्षके समान सीताका सुन्दर चित्र बनाया और उसे लेकर वह शीघ्र ही रथनूपुर नगर गया ॥१९॥ वहाँ जाकर उसने उपवनमें जो अत्यन्त उत्तुङ्ग क्रीड़ा भवन था उसमें वह चित्रपट रख दिया और स्वयं अप्रकट रहकर नगरके बाहर रहने लगा ॥२०॥

अथानन्तर किसी दिन अनेक कुमारोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ भामण्डल कुमार वहाँ आया ॥२१॥ सो चित्रमें अङ्कित वहिन सीताको देखकर वह अज्ञानवश शीघ्र ही लज्जा, शास्त्र, ज्ञान तथा स्मृतिसे रहित हो गया अर्थात् सीताके चित्रको देखकर इतना कामाकुलित हुआ कि लज्जा, शास्त्र तथा स्मृति आदि सबको भूल गया ॥२२॥ वह निरन्तर शोक करने लगा, अत्यन्त लम्बे श्वासोच्छ्वास छोड़ने लगा, उसका शरीर सूख गया तथा शिथिल शरीरको वह चाहे जहाँ उपेक्षासे डालने लगा अर्थात् चाहे जहाँ ठठने बैठने लगा ॥२३॥ उसे न रात्रिमें नींद आती थी न दिनमें चैन पड़ता था । वह रात-दिन उसीके ध्यानमें निमग्न रहता था । सुन्दर लपचाराँसे उसे कभी भी सुख नहीं मिलता था ॥२४॥ वह पुष्प, सुगन्धित पदार्थ तथा आहारसे ऐसा द्वेष

मौनमाचरति स्मित्वा करोति च कथां मुहुः । सहसोत्तिष्ठति व्यर्थं याति भूयो निवर्तते ॥२६॥
 ततो ग्रहगृहीतस्य सदृशैस्त्वैविचेष्टितैः । ज्ञातं तदातुरत्वस्य कारणं भतिशालिभिः ॥२७॥
 जगदुद्भवमन्योन्येन कन्येयं केन चित्रिता । पटोऽत्र निहितो गेहे स्याद् वा नारदचेष्टितम् ॥२८॥
 ततः श्रुत्वा कुमारं तमाकुलं स्वेन कर्मणा । नारदस्तस्य बन्धूनां विलम्बो दूर्यं ददौ ॥२९॥
 आदरेण च तैः पृष्टः कृतपूजानमस्कृतिः । मुने कथय कन्येयं दृष्ट्वा क्व भवतेदृशी ॥३०॥
 महोरगाङ्गना किं स्याद् भवेत् किं वा विमानजा । मर्त्यलोकं समायाता त्वया दृष्टा कथंचन ॥३१॥
 'अवद्वारस्ततोऽवोचद् विनयं परम वहन्' । भूयो भूयः स्वयं गच्छन्' विस्मयं कम्पयन् शिरः ॥३२॥
 अस्त्यत्र मिथिला नाम पुरी परमसुन्दरी । इन्द्रकेतोः सुतस्तत्र जनको नाम पार्थिवः ॥३३॥
 विदेहेति प्रिया तस्य मनोबन्धनकारिणी । गोत्रसर्वस्वभूतेयं सीतेति दुहिता तयोः ॥३४॥
 निवेद्यैवमसी तेभ्यः कुमारं पुनरुक्तवान् । बाल मा याः विपादं त्वं तवेयं सुलभैव हि ॥३५॥
 रूपमात्रेण यातोऽसि किमस्या भावमीदृशम् । ये तस्या विभ्रमा भद्र कस्तान्' वर्णयितुं व्रमः ॥३६॥
 तथा चित्तं समाकृष्ट तवेति किमिहाङ्कृतम् । धर्मध्याने दृढ बद्धं मुनीनामपि सा हरेत् ॥३७॥
 आकारमात्रमत्रैतत्तस्या न्यस्तं मया पटे । लावण्यं यच्च तत्तस्यास्तस्यामैवैतदीदृशम् ॥३८॥
 नवयौवनसंभूतकान्तिसागरवीचिपु । सा तिष्ठति तरन्तीव संसक्ता स्तनकुम्भयोः ॥३९॥

करता था मानो उन्हें विपमय ही समझता हो । वह संतापसे युक्त होकर बार-बार जलसे सींचे हुए फर्शपर लोटता था ॥२५॥ वह मौन वैठा रहता था, कभी हँसकर बार-बार चर्चा करने लगता था, कभी सहसा उठकर व्यर्थ ही चलने लगता था और फिर लौट आता था ॥२६॥ उसकी समस्त चेष्टाएँ ऐसी हो गईं मानो उसे भूत लग गया हो । तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषोंने उसकी आतुरताके कारणोंका पता लगाया ॥२७॥ वे परस्परमें इस प्रकार कहने लगे कि यह कन्या किसने चित्रित की है ? इस महलमे यह चित्रपट किसने रक्खा है ? जान पड़ता है कि यह सब नारदकी चेष्टा है ॥२८॥

तदनन्तर जब नारदने सुना कि हमारे कार्यसे भामण्डल कुमार अत्यन्त आकुल हो रहा है तब उसने निःशङ्क होकर उसके बन्धुओंके लिए दर्शन दिया ॥२९॥ उन सबने बड़े आदरसे नारदकी पूजा कर नमस्कार किया तथा पूछा कि हे मुने ! कहो आपने यह ऐसी कन्या कहाँ देखी है ? ॥३०॥ यह कोई नागकुमार देवकी अङ्गना है या पृथिवी पर आई हुई किसी कल्पवासी देवकी स्त्री आपने किसी तरह देखी है ? ॥३१॥ तदनन्तर परम विनयको धारण करता तथा स्वयं ही आश्चर्यको प्राप्त हो बार-बार शिर हिलता हुआ नारद कहने लगा ॥३२॥ कि इसी मध्यमलोकमे अत्यन्त मनोहर मिथिला नामकी नगरी है उसमें इन्द्रकेतुसे प्रशंसाको प्राप्त हुआ जनक नामका राजा रहता है ॥३३॥ उसके मनको बाँधने वाली विदेहा नामकी प्रिया है । उन दोनोकी ही यह सीता नामकी कन्या है । यह कन्या उन दोनोके गोत्रका मानो सर्वस्व ही है ॥३४॥ भामण्डलके भाई-बन्धुओंसे ऐसा कहकर उसने भामण्डलसे कहा कि हे बालक ! तू विपादको प्राप्त मत हो । यह कन्या तुझे सुलभ ही है ॥३५॥ तू इसके रूपमात्रसे ही ऐसी अवस्थाको प्राप्त हो रहा है फिर इसके जो हाव-भाव विभ्रम हैं उनका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥३६॥ उसने तुम्हारा चित्त आकृष्ट कर लिया इसमे आश्चर्य ही क्या है ? वह तो धर्मध्यान में सुदृढरूपसे निबद्ध मुनियोंके चित्तको भी आकृष्ट कर सकती है ॥३७॥ मैंने चित्रपटमे उसका यह केवल आकारमात्र ही अङ्कित किया है । उसका जो लावण्य है वह तो उसीमें है अन्यत्र सुलभ नहीं है ॥३८॥ वह नव यौवनसे उत्पन्न कान्तिरूपी समुद्रकी तरङ्गोंमे ऐसी जान पड़ती

१. नारदः । अवद्वारः म० । २. महत् म० । ३. गच्छद्विस्मयं म० । ४. इन्द्रकेतोः स्तुतः म० । ५. तां म० ।

तस्याः श्रोणी वराहोहा कान्तिस्फलावितांशुका । वीक्षितोन्मूलयेत्^१ स्वान्तं समूलमपि योगिनाम् ॥४०॥
 युक्त्वा भवन्तमन्यस्य सेयं कस्योचिता भवेत् । यत्न वस्तुनि कुर्वन्ना^२ जायतां योग्यसंगमः^३ ॥४१॥
 ह्युक्त्वा चरितार्थः सन्नारदोऽगान्मनीपितम् । दध्यौ भामण्डलोऽप्येव स्मरसायकताडितः ॥४२॥
 क्षेपिष्ठं प्रमदाखलं न लभेय यदीदृशम् । न जीवेयं तदावश्यं स्मराकुलितमानसः ॥४३॥
 धारयन्ती परां कान्तिमिय मे^४ हृदयस्थिता । कथं न^५ कुरुते तापमग्निज्वालेव सुन्दरी ॥४४॥
 दहति त्वचमेवाको बहिरन्तश्च मन्मथः । अन्तर्द्विरस्ति सूर्यस्य मन्मथस्य न विद्यते ॥४५॥
 द्वयमेव ध्रुवं मन्ये प्रासव्यमधुना मया । तथा वा संगमः साकं मरणं वा स्मरेषुभिः ॥४६॥
 अनारतमिति^६ ध्यायन्नशने शयने न च । न प्रासादे न चोद्याने धृतिं भामण्डलोऽगमत् ॥४७॥
 खियोऽथ नारदं मत्वा कुमारासुखकारणम् । ससंभ्रमं समुद्विग्नाः^७ पितुरस्य न्यवेदयन्^८ ॥४८॥
 नाथानर्थसमुद्गेन^९ नारदेनाहता पटे । चित्रीकृत्याङ्गना कापि^{१०} रूपातिशययोगिनी ॥४९॥
 समालोक्य कुमारस्तां विह्वलीभूतमानसः । धृतिं न लभते कापि त्रयथा दूरमुद्विगतः ॥५०॥
 सुहुस्तामीक्षते कन्यां सीताशब्दं समुच्चरन् । करोति विविधां चेष्टां वायुनेव वशीकृतः ॥५१॥
 उपायश्चिन्त्यतामाशु तस्योत्पादयितुं दृष्टिम् । यावन्न मुच्यते प्राणैर्भोजनादिपरादमुखः ॥५२॥

है मानो स्तनरूपी कलशोंके सहारे तैर ही रही हो ॥३९॥ कान्तिसे वखको तिरोहित करने वाले उसके नितम्ब यदि देखनेमें आ जावे तो निश्चित ही वह योगियोंके मनको भी समूल उखाड़ कर फेंक दे ॥४०॥ आपको छोड़कर और यह किसके योग्य हो सकती है ? इस कार्यमें यत्न करो जिससे योग्य समागम प्राप्त हो सके ॥४१॥ इतना कहकर नारद तो कृतकृत्य हो इच्छित स्थान पर चला गया पर इधर भामण्डल कामके बाणोंसे ताड़ित हो इस प्रकार विचार करने लगा कि ॥४२॥ चूंकि मेरा मन कामसे इतना आकुल हो रहा है कि यदि मैं शीघ्र ही इस खीरलको नहीं पाता हूँ तो अवश्य ही जीवित नहीं रह सकूँगा ॥४३॥ परम कान्तिको धारण करने वाली यह सुन्दरी प्रमदा मेरे हृदयमें स्थित है फिर अग्निकी ज्वालाके समान सन्ताप क्यों कर रही है ॥४४॥ सूर्य सिर्फ बाहरी चमड़ेको जलाता है पर काम भीतरी भागको जलाता है । इतने पर भी सूर्य अस्त हो जाता है पर काम कभी अस्त नहीं होता ॥४५॥ इस समय तो ऐसा जान पड़ता है कि मेरे द्वारा दो ही वस्तुएँ प्राप्त करने योग्य हैं । एक तो उस स्त्री रत्नके साथ समागम और दूसरा कामके बाणोंसे मारा जाना ॥४६॥ इस प्रकार निरन्तर उसीका ध्यान करता हुआ भामण्डल न भोजनमें, न शयनमें, न महलमें और न उद्यानमें—कहीं भी धैर्यको प्राप्त हो रहा था ॥४७॥

अथानन्तर जब स्त्रियोंको पता चला कि कुमारके दुःखका कारण नारद है तब उन्होंने उद्विग्न होकर शीघ्र ही कुमारके पितासे यह समाचार कहा ॥४८॥ कि इस समस्त अनर्थका पिटारा नारद ही है । वही कहींकी एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीको चित्रपट पर अङ्कित करके लाया था ॥४९॥ उसे देखकर जिसका मन अत्यन्त विह्वल हो गया है ऐसा कुमार किसी भी वस्तुमें धैर्यको प्राप्त नहीं हो रहा है । लज्जाने उसे दूरसे ही छोड़ दिया है ॥५०॥ वह सीता शब्दका उच्चारण करता हुआ बार-बार उसी कन्याको देखता रहता है तथा वायुके वशीभूत हुए के समान नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करता रहता है ॥५१॥ वह भोजनादि समस्त कार्योंसे विमुख हो गया है अर्थात् उसने खाना-पीना सब छोड़ दिया है । इसलिए जब तक प्राण इसे नहीं छोड़ते है तब तक

१. -न्मूलयत् म० । २. पुमान् । ३. योग्यसमागमसहितः । ४. शीघ्रम् । ५. हृदय स्थिता म०, ज० । ६. च म० । ७. -मतिध्यायन् म० । ८. समुद्विग्ना म० । ९. न्यवेदयत् म० । १०. तथायर्थसमुद्गेन म०, नाथानर्थ- व० । अनर्थसमुद्गेन = अनर्थकरखड्केन । ११. कापि म० ।

ततश्चन्द्रगतिः श्रुत्वा वार्तामैतां समाकुलः । आगल्य कान्तया साकं सुतमेवमभायत ॥५३॥
 भज सर्वाः क्रियाः पुत्र सुचेता भोजनादिकाः । अयं वृणोमि तां कन्यां भवतो मनसि स्थिताम् ॥५४॥
 १परिसान्त्व्य सुतं कान्तां रहश्चन्द्रायणोऽवदत् । प्रमोदं च विपादं च विस्मयं च वहन्निदम् ॥५५॥
 आर्ये विद्याभृतां कन्याः संत्यज्य प्रतिमोक्षिताः । भृगोचरामिसम्बन्धः कथमस्मासु युज्यते ॥५६॥
 क्षमागोचरस्य निलयं गन्तुं वा युज्यते कथम् । यदा वा तेन नो दत्ता मुखच्छाया तदा तु का ॥५७॥
 तस्मात् केनाप्युपायेन कन्यायाः पितरं प्रियम् । इहैव ३ नाथयाम्याशु नान्यः पन्था विराजते ॥५८॥
 नाथ युक्तमयुक्तं वा त्वमेव ननु मँन्यसे । तथापि तावकं वाक्यं मसापि हृदयङ्गमम् ॥५९॥
 ततश्चपलवेगास्त्वं शृत्यमाहूय सादरम् । कर्णजापेन विज्ञातवृत्तान्तमकरोन्मृपः ॥६०॥
 आज्ञादानेन तुष्टोऽसौ मिथिलं त्वरितो ययौ । हृष्टहंसयुवामीदसूचितामिव पद्मिनीम् ॥६१॥
 अवतीर्थाम्बराचारुसौप्तिवेषमुपाश्रितः । वित्रासयितुमुद्युक्तो गोमहिष्यश्ववारणान् ॥६२॥
 ४देशवाते यथा जातः समाक्रन्दस्तदापरः । शुभ्राव च जनौघेभ्यो जनकस्तद्विचेष्टितम् ॥६३॥
 निर्ययौ च पुराद्युक्तः प्रमोदोद्वेगकौतुकैः । ईशान्शक्रे च तं सक्षिं नवयौवनसंगतम् ॥६४॥
 ५उद्दामानं मनोवेगं भास्वंप्रवरलक्षणम् । प्रदक्षिणमहावर्तं तनुवक्त्रोदरं चलम् ॥६५॥

उसके पहले ही इसे धैर्य उत्पन्न करानेके लिए कोई उपाय सोचा जाय ॥५२॥ तदनन्तर चन्द्र-
 गति विद्याधर इस समाचारको सुनकर धबड़ाया हुआ स्त्रीके साथ आकर पुत्रसे इस प्रकार
 बोला कि हे पुत्र ! स्वस्थचित होकर भोजनादि समस्त क्रियाएँ करो । मैं तुम्हारे मनमें स्थित
 उस कन्याको बरता हूँ अर्थात् तेरे लिए स्वीकार करता हूँ ॥५३-५४॥ इस प्रकार पुत्रको
 सान्त्वना देकर चन्द्रगति विद्याधर हर्ष, विपाद और विस्मयको धारण करता हुआ एकान्तमें
 अपनी स्त्रीसे बोला कि ॥५५॥ हे आर्ये ! विद्याधरीको अनुपम कन्याएँ छोड़कर हम लोगोंका
 भूमिगोचरियोंके साथ सम्बन्ध करना कैसे ठीक हो सकता है ? ॥५६॥ इसके विषय एक बात
 यह है कि भूमिगोचरीके घर जाना कैसे ठीक हो सकता है ? याचना करने पर भी यदि उसने
 कन्या नहीं दी तो उस समय मुखकी क्या कान्ति होगी ? ॥५७॥ इसलिए कन्याके प्रिय पिताको
 किसी उपायसे शीघ्र ही यहीं बुलाता हूँ । इस विषयमें कोई दूसरा मार्ग शोभा नहीं देता ॥५८॥
 स्त्रीने उत्तर दिया कि हे नाथ ! उचित और अनुचित तो आप ही जानते हैं पर इतना अवश्य
 कहती हूँ कि आपकी बात मुझे भी अच्छी लगती है ॥५९॥

तदनन्तर राजाने चपलवेग नामक शृत्यको आदरपूर्वक बुलाकर उसके कानमें सब
 वृत्तान्त सूचित कर दिया ॥६०॥ तत्पश्चात् स्वामीकी आज्ञासे सन्तुष्ट हुआ चपलवेग शीघ्र ही
 उस प्रकार मिथिलाकी ओर चला जिस प्रकार कि हर्षसे भरा तरुण हंस सुगन्धिसे सूचित कम-
 लिनीकी ओर चलता है ॥६१॥ उसने आकाशसे उतरकर सुन्दर घोड़ेका रूप बनाया और वह
 गाय, भैसा, अश्व तथा हाथी आदि पशुओंको भयभीत करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६२॥ वह
 जिस देशके घात करनेमें प्रवृत्त होता था उसी ओरसे रोनेका प्रबल शब्द उठ खड़ा होता था ।
 राजा जनकने भी जनसमूहसे उस घोड़ेकी चेष्टाएँ सुनीं ॥६३॥ सुनी ही नहीं, वह हर्ष, उद्वेग
 और कौतुकसे युक्त हो उस घोड़ेकी चेष्टाएँ देखनेके लिए नगरसे बाहर भी आया और उसने
 नव यौवनसे युक्त उस घोड़ेकी देखा ॥६४॥ वह घोड़ा अत्यन्त ऊँचा था, मनको अपनी ओर
 खींचनेवाला था, उसके शरीरमें अच्छे-अच्छे लक्षण देदीप्यमान हो रहे थे, दक्षिण अङ्गमें महान्

१. परिशान्त्य म० । २. चन्द्रगतिः । ३. नवयाम्याशु म० । ४. मन्वते म० । ५. हयवेषम् ।
 ६. महियाश्व क०, ख० । ७. देशवातां ख० । ८. उद्दामानं म० । उद्दामानं ज० । ९. मनोयोगं म० ।
 १०. चलम् म०, ज० ।

सुशफाम्रैर्मुदङ्गानां कुर्वाणमिव ताडनम् । पृथग्जनेर्दुरारोह दधत प्रोधवेपथुम् ॥६६॥
 ततः शुद्धप्रमोदः सन् जगाद जनको मुहुः । ज्ञायतामेप कस्याश्वः प्राप्नो निर्दामतामिति ॥६७॥
 ततो द्विजगणा उचुः प्रियोघोघतचेतसः^३ । राजन्नस्य न नाकेऽपि तुरङ्गो विद्यते समः ॥६८॥
 कैव वातां पृथिव्यां नु^४ राज्ञामीदम् भवेदिति । अथवा किं न कालेन नृप दृष्टस्त्वयेयता ॥६९॥
 रथे दिवाकरस्यापि श्रुतिविभ्रमगोचरः । विद्यते नेति जानामः^५ स्थूरीपृष्ठोऽमुना समः ॥७०॥
 नूनं भवन्तमुद्दिश्य कृतवन्तं परं तपः । सृष्टोऽयं विधिना सस्मिरतः स्वक्रियतां प्रभो ॥७१॥
 ततोऽसौ^६ विनयी निन्ये प्रग्रहद्वयसंयुतः । मन्दुरां कुङ्कुमाद्राङ्गिः प्रवलच्चारुचामरः ॥७२॥
 संवृत्तो मासमात्रोऽस्य ययौ कालो गृहीतितः^७ । उपचारैरलंयैर्गैः सेव्यमानस्य सन्ततम् ॥७३॥
 पाशकोऽन्त्रान्तरे नत्वा जनकाय न्यवेदयत् । नाथ नागस्य^८ सदेशे ग्रहण दृश्यतामिति ॥७४॥
 ततोऽसौ मुदितस्तुङ्गमारुह्य वरवारणम् । उद्विष्टपादविस्तेन विवेश सुमहद्वनम् ॥७५॥
 दूरे च सरसो दुर्गे स्थितं दृष्ट्वा वरं द्विपम् । जगादानय तत्स्त्रिं कंचिवश्वं महाजवम् ॥७६॥
 दौकितश्च स मायाश्वः सद्यः स्फुरितविग्रहः । आरुरोह स तं यातश्चोपत्य तुरगो नभः ॥७७॥
 हाहाकारं नृपाः कृत्वा बहन्तः शोकमुद्धतम् । निवृत्ताः सहसा भीता विस्मयव्यासमानसाः ॥७८॥

आवर्त थी, उसका मुख तथा उदर कृश था, वह अत्यन्त बलवान् था, टापीके अग्रभागसे वह पृथिवीको ताडित कर रहा था । उससे ऐसा जान पड़ता था मानो मुदङ्ग ही बजा रहा हो । साधारण व्यक्ति उसपर चढ़नेमें असमर्थ थे तथा उसका नथना कम्पित हो रहा था ॥६५-६६॥ तदनन्तर विशुद्ध हर्षको धारण करनेवाले राजा जनकने बार-बार उपस्थित लोगोसे कहा कि साल्म किया जाय कि यह किसका घोड़ा बन्धनमुक्त हो गया है ? ॥६७॥ तत्पश्चात् प्रिय वचन कहनेमें जिनका चित्त उत्कण्ठित हो रहा था ऐसे ब्राह्मणोंने कहा कि हे राजन् ! इस घोड़ेके समान कोई दूसरा घोड़ा नहीं है ॥६८॥ यहाँ की बात जाने दीजिए समस्त पृथिवीमें जितने राजा हैं उनमें किसीके ऐसा घोड़ा नहीं होगा । अथवा हे राजन् ! आपने भी इतने समय तक क्या कभी ऐसा घोड़ा देखा ? ॥६९॥ हम तो समझते हैं कि सूर्यके रथमें भी इस घोड़ेकी समानता करनेवाला घोड़ा नहीं होगा ॥७०॥ ऐसा जान पड़ता है कि परम तपस्या करनेवाले आपको लक्ष्य कर ही विधाताने यह घोड़ा बनाया है सो हे प्रभो ! इसे आप स्वीकार करो ॥७१॥

तदनन्तर उस विनयवान् घोड़ेको दुहरी रस्सीसे बाँधकर घुड़शालमें ले जाया गया । उस समय उसका शरीर केशरके विलेपनसे गीला हो रहा था और उसपर सुन्दर चमर हिल रहे थे ॥७२॥ घुड़शालमें निरन्तर योग्य उपचारोंसे इसकी सेवा होती थी । इस तरह जिस दिनसे घोड़ा पकड़कर लाया गया था उस दिनसे एक मासका समय व्यतीत हो गया ॥७३॥ इस बीचमें वनके एक कर्मचारीने नमस्कार कर राजा जनकसे निवेदन किया कि हे नाथ ! अपने देशमें हाथी कैसे पकड़ा जाता है यह देखिए ? ॥७४॥ तदनन्तर प्रसन्नतासे भरे राजा जनक उत्तुङ्ग गजराज पर सवार होकर चले । वनका कर्मचारी उन्हें मार्ग बताता जाता था । इस तरह राजा जनक किसी बड़े वनमें प्रविष्ट हुए ॥७५॥ वहाँ उन्होंने सरोवरके दूसरी ओर दुर्गम स्थानमें खड़े हुए उत्तम हाथीको देखकर सारथीसे कहा कि शीघ्र ही किसी वेगशाली घोड़ेको लाओ ॥७६॥ कहनेकी देर थी कि जिसका शरीर पड़क रहा था ऐसा वह मायामय घोड़ा लाकर राजा जनकके समीप खड़ा कर दिया गया । राजा जनक उसपर सवार हुए नहीं कि वह घोड़ा उन्हें लेकर आकाशमें उड़ गया ॥७७॥ यह देख जो सहसा भयभीत हो गये थे तथा जिनके चित्त आश्चर्यसे व्याप्त

१. प्रोथु म० । २. शुद्धः प्रमोदः ब०, म० । ३. प्रियभाषणपरमानसाः । ४. न ना कोऽपि म० । ५. तु म० । ६. अश्वः स्थूलीपृष्ठोऽ ज० । ७. विनयैर्निन्ये व० । ८. मन्दुराकुङ्कुमाद्राङ्गप्रचलच्चारुचामरः म० । ९. संवृत्तो म० । १०. गृहीतितः व० । ११. सदेशो म०, क० । सदेशो ख० ।

ततो नदीगिरिं च देशानरण्यानि च भूरिशः । प्रयाति लङ्घयन् सतिः मनावदनिवारणं ॥७६॥
 नातिदूरे ततो दृष्ट्वा^१ प्रासादं तुङ्गमुच्चलम् । हियमाणः स शाखायां दृढं लग्नो महातरो ॥८०॥
 भवतीत्यं ततो वृष्ट्वा^२ विश्रम्य च सविस्मयः । चरणाभ्या परिक्रामन् प्रययी स्तोकमन्तरम् ॥८३॥
 ददर्श च महातुङ्गं शालं चार्माकरात्मकम् । गोपुरं च सुरलेन तोरणेनातिशोभिनम् ॥८२॥
 नानाजातीश बृक्षाणां लताजालकयोगिनाम् । फलपुष्पसमृद्धानां नानाविहगशोभिनाम् ॥८३॥
 संध्याभ्रच्छ संकाशान् प्रासादान् मण्डलस्थितान् । सेवां प्रासादराजस्य^३ कुवाणानिव^४ तत्पराम् ॥८५॥
 ततोऽसौ खड्गमालम्ब्य दक्षिणे दक्षिणे करे । केसरीवातिभिःशङ्कः प्रविवेश स गोपुरम् ॥८५॥
 अपश्यच्च परिस्फीताः पुष्पजातीर्वहुस्विपः । मणिकाञ्चनसोपाना वापीश्च^५ स्फटिकाम्भसः ॥८६॥
 रमणांश्च महामोदान् विशालान् कुन्दमण्डपान् । चलत्पल्लवसंघातान् कृतसंगीतपट्टपदान् ॥८७॥
 ततश्च माधवीतुङ्गजालकान्तरयोगिना । विस्फारितप्रसन्नेन चक्षुषा चारुकान्तिना ॥८८॥
 रत्नवातायनैर्गुक्तं मुक्ताजालकशोभितैः । शातकौम्भमहास्तम्भसहस्रकृतधारणम् ॥८९॥
 नानारूपसमाकीर्णं मेरुशङ्खसमप्रभम् । वज्रबद्धमहापीठमद्राचीं च भवनं नृपः ॥९०॥
 अचिन्तयच्च किं न्वेतद्विमानं पतितं खतः^६ । वासवस्य हतं किं वा दैत्यैः क्रीडागृहं भवेत् ॥९१॥

हो रहे थे ऐसे अन्य राजा लोग हाहाकार करके बहुत भारी शोकको धारण करते हुए वापिस लौट आये ॥७८॥

अथानन्तर मनके समान जिसका कोई निवारण नहीं कर सकता था ऐसा वह घोड़ा अनेक नदी, पहाड़, देश और पर्वतोंको लँघता हुआ आगे बढ़ता गया ॥७६॥ तदनन्तर पास ही मे एक ऊँचा उच्चल भवन देखकर राजा जनक एक महावृक्षकी शाखामें मजबूतीसे भूम गये ॥८०॥ तदनन्तर वृक्षसे नीचे उतरकर उन्होंने आश्चर्यचकित हो कुछ देर तक विश्राम किया फिर पैरोंसे पैदल चलते हुए कुछ दूर गये ॥८१॥ वहाँ उन्होंने अत्यन्त ऊँचा सुवर्णमयकोट और उत्तमोत्तम रत्नोंसे युक्त तोरणसे समुद्रासित गोपुर देखा ॥८२॥ लताओंके समूहसे युक्त, फल और फूलोंसे समृद्ध, तथा नाना प्रकारके पक्षियोंसे सुशोभित वृक्षोंकी नाना जातियों देखीं ॥८३॥ जिनके शिखर संध्याके बादलोके समान सुशोभित थे, जो गोलाकारमें स्थित थे तथा जो भवनोके राजा अर्थात् राजभवनकी बड़ी तत्परतासे सेवा करते हुए के समान जान पड़ते थे ऐसे महलोको भी उन्होंने देखा ॥८४॥ तदनन्तर अतिशय चतुर राजा जनकने दाहिने हाथमें तलवार लेकर सिद्धके समान निःशङ्क हो गोपुरमें प्रवेश किया ॥८५॥ वहाँ जाकर उन्होंने जहाँ-तहाँ फैले हुए रत्न-विरङ्गे अनेक प्रकारके फूल देखे । जिनकी सीढ़ियों मणि और स्वर्णकी वनी हुई थी तथा जिनमें स्फटिकके समान स्वच्छ जल भरा था ऐसी वावड़ियों देखीं ॥८६॥ जिन्हें देखकर आनन्द उत्पन्न होता था, जिनकी बहुत भारी सुगन्धि दूर-दूर तक फैल रही थी, जिनके पल्लवोंके समूह हिल रहे थे, और जहाँ भ्रमर संगीत कर रहे थे ऐसे कुन्द पुष्पोंके विशाल मण्डप भी उन्होंने देखे ॥८७॥ तदनन्तर राजा जनकने खुले हुए अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ नेत्रसे माधवी लताओंकी ऊँची जालीके बीच भँककर एक ऐसा सुन्दर मन्दिर देखा जो भोटियोंकी जालीसे सुशोभित रत्नमय भरोखोसे युक्त था, जो सुवर्णनिर्मित हजारों बड़े-बड़े खम्भे धारण कर रहा था, नाना प्रकारके रूपसे व्याप्त था, मेरुकी शिखरके समान जिसकी प्रभा थी, और जिसकी महापीठ (भूमिका) वज्रनिवद्धके समान अत्यन्त मजबूत थी ॥८८-९०॥ उसे देखकर वे विचार करने लगे कि क्या यह आकाशसे गिरा हुआ विमान है अथवा दैत्योके द्वारा हरण किया हुआ

१. नदीगिरेशान् म० । २. प्रासादं तुङ्गमुच्चलम् म० । ३. कुवाणामिव व० । ४. तत्परम् व०, ज० । ५. वापी च म० । ६. पीत म० । ७. किल्वेतद्विमानं म० । ८. आकाशात् ।

पातालादुत्थितः किं वा नागेन्द्रस्याथमालयः । कुतोऽपि कारणात् सूर्यमरीचिकृतखण्डनः ॥६२॥
 अहो मे यथुना^१ तेन भद्रेणोपकृतं परम् । अदृष्टपूर्वमेतद् यत् साधु वेरमावलोकिताम् ॥६३॥
 विवेश चिन्तयन्नेव भवनं तन्मनोहरम् । सस्फुल्लवदनाम्भोजो ददर्श च जिनाधिपम् ॥६४॥
 द्रुताशनशिखागौरं पूर्णचन्द्रनिभाननम् । पद्मासनस्थितं तुङ्ग^२ जटामुकुटधारिणम् ॥६५॥
 प्रातिहार्यसमायुक्त हेमतामरसावितम्^३ । चित्ररत्नकृतच्छायं तुङ्गसिंहासनस्थितम् ॥६६॥
 ततोऽञ्जलिपुटं मूर्ध्नि कृत्वा हृष्टतनूरुहः । प्रणामं प्रयतः कुर्वन् भक्त्या मूर्च्छासुपागतः ॥६७॥
 क्षणेन प्राप्य संज्ञां च स्तुतिं कृत्वा सुसस्कृताम् । विस्मयं जनकस्तस्थौ विस्मयं परमुद्ग्रहन् ॥६८॥
 कृती चपलवेगश्च मायां संहृत्य सत्वरः । खड्गविद्याधरो भूत्वा संग्राप रथनूपुरम् ॥६९॥
 स्वामिने चावदन्नवा तुष्टो जनकमाहृतम् । रम्यकाननसवीते स्थापितं जिनवेरमनि १००॥
 आगतं जनकं ज्ञात्वा परं हर्षसुपागमत् । आसवर्गेण संयुक्तश्चन्द्रायानो महामनाः ॥१०१॥
 गृहीत्वा च परां पूजां नानावाहनसकुलः । मनोरथरथारूढो यथौ जिनवरालयम् ॥१०२॥
 दृष्ट्वा तत्सुमहसैन्यमागच्छत्परमोज्ज्वलम् । तूर्यशङ्कमहानादमाविशो जनकोऽभवत् ॥१०३॥
 ततो हृदिगजद्वीपिनागहसादिवाहिनाम् । पुरुपाणामिदं मध्ये विमानं स व्यलोकयत् ॥१०४॥

इन्द्रका क्रीड़ागृह है ? ॥६१॥ अथवा किसी कारणवश सूर्यकी किरणोंसे जिसके खण्ड हो गये थे ऐसा पातालासे निकला हुआ नागेन्द्रका भवन है ? ॥६२॥ अहो ! उस भले घोड़ेने मेरा बड़ा उपकार किया जिससे मैं इस अदृष्टपूर्व सुन्दर मन्दिरको देख सका ॥६३॥ ऐसा विचार करते हुए राजा जनकने उस मनोहर मन्दिरमें प्रवेश किया और वहाँ जाकर जिनेन्द्रभगवान्के दर्शन किये । जिनदर्शनके प्रभावसे उनका मुखकमल खिल उठा था ॥६४॥ मन्दिरमें विराजमान जिनेन्द्रदेव अग्निकी शिखाके समान गौर वर्ण थे, उनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, वे पद्मासनसे विराजमान थे, बहुत ऊँचे थे, जटारूपी मुकुटको धारण किये हुए थे, आठ प्रातिहार्यों से युक्त थे, स्वर्ण कमलोंसे उनकी पूजा की गई थी, नाना प्रकारके रत्नोंसे उनकी कान्ति बढ़ रही थी, और वे ऊँचे सिंहासनपर विराजमान थे ॥६५-६६॥

तदनन्तर जिसके शरीरमें रोमाञ्च उठ रहे थे ऐसे राजा जनकने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये और बढ़ी सावधानीसे जिनेन्द्रदेवको नमस्कार किया । नमस्कार करते-करते उसकी भक्ति इतनी अधिक बढ़ी कि वह उसके अतिरेकसे मूर्च्छित हो गया ॥६७॥ क्षण भरके बाद पुनः चेतना प्राप्त कर उसने सुन्दर सुसंस्कृत स्तुति की । तदनन्तर वह परम आश्चर्यको धारण करता हुआ निःशङ्क हो वहीं बैठ गया ॥६८॥

इधर चपलवेग नामका विद्याधर जो घोड़ेका रूप धरकर जनकको हर ले गया था अपने कार्यमें सफल हो बड़ा प्रसन्न हुआ तथा शीघ्रतासे सब माया समेटकर तथा खड्गधारी विद्याधर बनकर रथनूपुर नगर पहुँचा ॥६९॥ उसने संतुष्ट होकर अपने स्वामीके लिए नमस्कार कर कहा कि राजा जनक यहाँ लाये जा चुके हैं तथा सुन्दर वनसे वेष्टित जिनमन्दिरमें उन्हें ठहरा दिया गया है ॥१००॥ राजा जनकको आधा जानकर चन्द्रगति परम हर्षको प्राप्त हुआ । तदनन्तर उदार चित्तको धारण करनेवाला एवं नाना वाहनोंसे युक्त चन्द्रगति आप्तवर्गके साथ पूजाकी उन्तमोत्तम सामग्री लेकर मनोरथरूपी रथपर सवार हो जिनमन्दिर गया ॥१०१-१०२॥ जिसमें तुरही और शङ्कोका विशाल शब्द हो रहा था ऐसी उस देदीप्यमान बड़ी भारी सेनाको आती देख जनक कुछ भयभीत हुआ ॥१०३॥ तदनन्तर उसमें सिंह, हाथी, शार्दूल, नाग तथा हंस

१. अश्वेन । २. तुङ्गजटा-ज०, क०, ख० । ३. सुवर्णकमलपूजितम् । ४. मनोहरोद्यानवेष्टिते ।
 ५. सुमहासैन्य व० ।

अचिन्तयच्च ते नूनमेते विद्याभृतो^१ जनाः । विजयाद्धर्गिरेरूर्ध्वं ये वसन्तीति मे श्रुतम् ॥१०५॥
^२मध्येऽयमस्य सैन्यस्य स्वविमानकृतस्थितिः । शोभते परमो द्रीप्या कोऽपि विद्याधराधिपः ॥१०६॥
 एवं चिन्तापरे तस्मिन्पृथ्वी दैत्यपुङ्गवः । संप्रापच्चैत्यभवनं सम्मदी^३ नतविग्रहः ॥१०७॥
 द्यूता दैत्याधिपं प्राप्तं भीमसौम्यपरिग्रहम् । जनकः किमपि ध्यायस्तस्थौ सिंहासनान्तरे ॥१०८॥
 भक्त्या शशाङ्कयानोऽपि कृत्वा पूजामनुत्तमाम् । प्रणम्य विधिना चक्रे जिनानां परमस्तुतिम् ॥१०९॥
^४विपद्भिं च विधायाङ्गे सुखरूपां प्रियामिव । महाभावनया युक्तो जगौ जिनगुणात्मकम् ॥११०॥

चतुष्पदिकावृत्तम्

त्रिभुवनवरदमभिष्टुतमतिशयपूजाविधानविनिहितचित्तैः ।
 प्रणतं सुरवृषभगणैः प्रणमत नाथं जिनेन्द्रमच्चयसौख्यम् ॥१११॥
 ऋषभ सततं परमं वरुणं मनसा वचसा शिरसा सुजनाः ।
 भजत प्रवरं विलयं प्रगतं विहितं सकलं दुरितं भवति ॥११२॥
 अतिशयपरमं विनिहत दुरितं परमगतिगतं नमत जिनवरम् ।
 सर्वसुरासुरपूजित पाद क्रोधमहारिपुनिर्मितमहम् ॥११३॥
 उत्तमलक्षणलक्षितदेहं नीमि जिनेन्द्रमहं प्रयतात्मा ।
 भक्त्या विनमितसर्वजनौघं नतिमात्रधिनाशितभक्तभयम् ॥११४॥

आदि नाना वाहनोपर स्थितं पुरुषोके मध्यमें एक विमान देखा ॥१०४॥ उसे देखकर वह विचार करने लगा कि निश्चय ही वे विद्याधर हैं जो कि विजयाद्धर् पर्वतपर वास करते हैं ॥१०५॥ इस सेनाके बीचमें अपने विमानमें बैठा हुआ जो कान्तिमान पुरुष शोभित हो रहा है वह विद्याधरो का राजा है ॥१०६॥ राजा जनक इस प्रकारकी चिन्तामें तत्पर थे ही कि हर्षसे भरा तथा नम्रीभूत शरीरको धारण करनेवाला वह चन्द्रगति जिनमन्दिरमें आ पहुँचा ॥१०७॥ जिसका परिग्रह-कुछ तो भीम अर्थात् भय उत्पन्न करनेवाला था और कुछ सौम्य अर्थात् शान्ति उत्पन्न करनेवाला ऐसे दैत्यराजको आया देख कुछ ध्यान करता हुआ राजा जनक जिनराजके सिंहासन के नीचे बैठ गया ॥१०८॥ राजा चन्द्रगतिने भी भक्तिवश उत्तम पूजा कर तथा विधिपूर्वक प्रणाम कर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम स्तुति की ॥१०९॥ और प्रियाके समान जिसका स्वर अत्यन्त सुखकारी था ऐसी वीणाको गोदमें रख बड़ी भावनासे युक्त हो जिनराजका गुणगान करने लगा ॥११०॥

गुणगान करते समय उसने कहा कि जो तीनों लोकोंके लिए वर देनेवाले हैं, अतिशय पूर्ण पूजाके करनेमें चित्त धारण करनेवाले मनुष्य जिनकी सदा स्तुति करते हैं, इन्द्रादि श्रेष्ठ देव जिन्हें नमस्कार करते हैं, तथा जो अक्षय—अविनाशी सुखके धारक हैं, ऐसे जिनेन्द्रदेवको हे भग्यजन ! सदा प्रणाम करो ॥१११॥ हे सत्पुरुषो ! तुम उन ऋषभदेव भगवान्को मनसे, वचनसे शिर झुकाकर सदा नमस्कार करो जो कि उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हैं, वर देनेवाले हैं, श्रेष्ठ हैं, अविनाशी हैं और उत्तम ज्ञानसे युक्त हैं तथा जिन्हें नमस्कार करनेसे समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥११२॥ तुम उन जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार करो जो कि अतिशयोक्ते उत्कृष्ट हैं, जिन्होंने पापको नष्ट कर दिया है, जो परमगति—सिद्ध गतिको प्राप्त हो चुके हैं, समस्त सुर और असुर जिनके चरणोंकी पूजा करते हैं, तथा जिन्होंने क्रोधरूपी महाशत्रुको पराजित कर दिया है ॥११३॥ मैं भक्तिपूर्वक बड़ी सावधानीसे उन जिनेन्द्रभगवान्की स्तुति करता हूँ कि जिनका शरीर उत्तम लक्षणोंसे युक्त है, जिन्होंने समस्त मनुष्योंके समूहको नम्रीभूत कर

१. विद्याधरा म० । २. मध्ये + अयम् + अस्य । ३. हर्षयुक्तः । ४. नम्रशरीरः । ५. वीणाम् ।

अनुपमगुणधरमनुपमकार्यं विनिहृतभवभयसकलकुचेष्टम् ।

कलिमलघनपटविनयनदक्षं प्रणमत् जिनवरमतिशयपूतम् ॥११५॥

इति गायति दैत्येन्द्रे जिनसिंहासनान्तरात् । निर्यथौ भयमुत्सृज्य जनको नाम शोभनः ॥११६॥
ततश्चन्द्रायणोऽवोचदीपञ्चलितमानसः । को भवान् विजने देशे वसत्यत्र जिनालये ॥११७॥
उरगाणां पतिः किं स्यात् किं वा विद्याधराधिपः । सखे वद कुतः प्राप्सो भवान् किं संज्ञकोऽपि वा ॥११८॥
मिथिलानगरीतोऽहं प्राप्सो जनकसंज्ञकः । हृतो मायातुरङ्गेण नभश्चरमहीपते ॥११९॥
इत्युक्ते जनकेनैतावन्व्योम्यं^१ प्रीतमानसौ । इच्छाकाराञ्जलिं कृत्वा सुखासीनौ बभूवतुः ॥१२०॥
क्षणं स्थित्वा च वृत्तान्तैरन्योन्यविनिवेदितैः । जनितान्योन्यसन्मानौ तौ विश्रम्भं समीयतुः ॥१२१॥
ततश्चन्द्रायणोऽवोचद्धीमान् कृत्वा कथान्तरम् । पुण्यवानस्मि येन त्वं मिथिलापतिरीक्षितः ॥१२२॥
अस्ति ते दुहिता राजन् लक्ष्णैरन्विता शुभैः । कर्णगोचरमायाता मम भूरिजनाननात् ॥१२३॥
सा भामण्डलसंज्ञाय मस्तुत्राय प्रदीयताम् । त्वया विहितसम्बन्ध मन्ये स्वं परमोदयम् ॥१२४॥
सोऽवोचत् सर्वमेतत्स्यात् कृतं विद्याधराधिप । किन्तु दाशरथेर्बाला ज्येष्ठस्य परिकल्पिता ॥१२५॥
सुहृच्चन्द्रगतिरूपे सा कस्मात्तस्यकल्पिता । सोऽवोचच्छ्रुयतामस्ति भवतां चेत् कुतूहलम् ॥१२६॥

दिया है और जिन्हें नमस्कार करने मात्रसे भक्तोका भय नष्ट हो जाता है ॥११४॥ हे भव्य-जन ! तुम उन जिनेन्द्रदेवको प्रणाम करो कि जो अनुपम गुणोंको धारण करनेवाले है, जिनका शरीर उपमाहित है, जिन्होंने संसाररूपी समरत कुचेष्टाओंको नष्ट कर दिया है, जो कलिकालके पापरूपी सघन पटको दूर करनेमें समर्थ हैं तथा जो अतिशयोक्ते पवित्र है अथवा अत्यन्त पवित्र है ॥११५॥

तदनन्तर दैत्यराजके इस प्रकार गानेपर सुन्दर शरीरको धारण करनेवाला राजा जनक भय छोड़ जिनेन्द्रदेवके सिंहासनके नीचेसे बाहर निकल आया ॥११६॥ उसे देख जिसका मन कुछ विचलित हो गया था ऐसा चन्द्रगति बोला कि आप कौन हैं ? जो इस निर्जन स्थान में जिनालयके बीच रहते हैं ॥११७॥ आप नागकुमार देवोंके स्वामी हैं ? या विद्याधरोंके अधि-पति है ? अथवा किस नामको धारण करनेवाले है ? और यहाँ कहाँसे आये हैं ? हे मित्र ! यह सब मुझसे कहो ॥११८॥ इसके उत्तरमें राजाने कहा कि विद्याधरराज ! मैं मिथिला नगरीसे आया हूँ । जनक मेरा नाम है और एक मायामयी घोड़ा मुझे हरकर लाया है ॥११९॥ जनकके इतना कहनेपर दोनोंके हृदय परस्पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और दोनों ही एक दूसरेके लिए हाथ जोड़कर सुखसे बैठ गये ॥१२०॥ क्षणभर ठहरकर दोनोंने एक दूसरेके लिए अपना वृत्तान्त सुनाया और परस्पर एक दूसरेका सम्मान किया । इस तरह वे परस्पर विश्वासको प्राप्त हुए ॥१२१॥ तदनन्तर बीचमें ही बात काटकर चन्द्रगतिये कहा कि अहो ! मैं बड़ा पुण्यवान् हूँ कि जिसने आप मिथिलाके राजाका दर्शन किया ॥१२२॥ हे राजन् ! मैंने अनेक लोगोंके मुखसे सुना है कि आपके शुभ लक्ष्णोंसे युक्त कन्या है ॥१२३॥ सो वह कन्या मेरे भामण्डल नामक पुत्रके लिए दीजिए । आपके साथ सम्बन्ध स्थापित कर मैं अपने-आपको परम भाग्यशाली समझूँगा ॥१२४॥ इसके उत्तरमें राजा जनकने कहा कि हे विद्याधरराज ! यह सब हो सकता था परन्तु वह कन्या राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र रामके लिए निश्चित की जा चुकी है, अतः विवशता, है ॥१२५॥ मित्र चन्द्रगतिये कहा कि वह कन्या रामके लिए किस कारण निश्चित की गई है ? इसके उत्तरमें जनकने कहा कि यदि आपको कौतूहल है तो सुनिए ॥१२६॥

१. नागशोभनः ज० । २. प्रीतिमानसौ ज० । प्रतिमानसौ म० । ३. -ञ्जली कृत्वा म० । ४. दशरथ-सुतस्य रामचन्द्रस्य ।

धनगोरत्नसंपूर्णा मदीया मिथिलापुरी । अर्द्धवर्षरक्षैर्लच्छैरवाध्यत सुदास्यै ॥१२७॥
 अपील्लवन्त प्रजाः सर्वाः स्वहिन्यन्त धनोत्कराः । धर्मयज्ञा न्यवर्तन्त श्रावकाणां महात्मनाम् ॥१२८॥
 ततो महाहवे जाते रक्षित्वा मां सद्भानुजम् । पद्मेन विजिता म्लेच्छा ये सुरैरपि दुर्जयाः ॥१२९॥
 लक्ष्मणश्चानुजस्तस्य शत्रोपमपराक्रमः । कुर्वते शासनं नित्यं महाविनयसंयुतः ॥१३०॥
 यदि नाम न तत्सैन्यं ताभ्यां स्याद् विजितं द्विषा । म्लेच्छलोकैः संपूर्णा ततः स्यादखिला महीं ॥१३१॥
 विवेकरहितास्ते हि लोकपीडामया इव । महोत्पाता इधात्यन्तभीषणा विपदाख्याः ॥१३२॥
 प्राप्य तौ गुणसंपूर्णां सुपुत्रीं लोकवत्सलौ । इन्द्रवद्भवने राज्यं सुखं दशरथोऽमजत् ॥१३३॥
 तस्य राज्येऽधुना जाते नयशौर्यविलासिनः । वातोऽपि नाहरत् किञ्चित् प्रजानां पुरुसम्पदाम् ॥१३४॥
 ततः प्रत्युपकारं क करोमीति समाकुलः । न रात्रौ न दिवा निद्रां संप्राप्तोऽस्मि विचिन्तयन् ॥१३५॥
 रक्षिता येन मे प्राणास्तस्य रामस्य नो समः । कश्चित् प्रत्युपकारोऽस्ति किमुताधिक्यगोचरः ॥१३६॥
 हतं महोपकारेण प्रतीकारविवर्जितम् । मन्ये तृणमिवात्मानं भोगभीतिं पराद्सुखम् ॥१३७॥
 नवयौवनसंपूर्णां दृष्ट्वा दुहितरं शुभाम् । गतो विरलतां शोकः शोकस्थानेऽपि मे ततः ॥१३८॥
 तथा कल्पितया तस्य रामस्य पुरुतेजसः । नावेव शोकजलधेस्तारितोऽहं सुजातया ॥१३९॥
 ततो नमश्चरा ऊचुरन्धकाराकृतानना । अहो मानुषमात्रस्य बुद्धिस्तव न शोभना ॥१४०॥

अर्ध-राक्षसोंके समान अत्यन्त दुष्ट म्लेच्छोंने मेरी धन, धान्य, गाय, भैंस तथा अनेक रत्नों-से परिपूर्ण मिथिला नगरीको वाधा पहुँचाना शुरू किया ॥१२७॥ समस्त प्रजा पीड़ित होने लगी, धन-धान्यके समूह चुराये जाने लगे, और महानुभाव श्रावकोंके धार्मिक पूजा-विधान आदि अनुष्ठान नष्ट किये जाने लगे ॥१२८॥ तदनन्तर उनके साथ मेरा महायुद्ध हुआ । सो उस महा-युद्धमे रामने मेरी तथा मेरे छोटे भाईकी रक्षा कर देवोंसे भी दुर्जय उन समस्त म्लेच्छोंको पराजित किया ॥१२९॥ रामका छोटा भाई लक्ष्मण भी इन्द्रके समान महापराक्रमी तथा महा विनयसे सहित है । वह सदा रामकी आज्ञाका पालन करता है ॥१३०॥ यदि उन दोनों भाइयोंके द्वारा म्लेच्छोंकी वह सेना नहीं जीती जाती तो निश्चित था कि यह समस्त पृथिवी म्लेच्छोंसे भर जाती ॥१३१॥ वे म्लेच्छ विवेकसे रहित तथा लोगोंको पीड़ा पहुँचानेके लिए रोगके समान थे अथवा महा उत्पातके समान अत्यन्त भयंकर और विषके समान दारुण थे ॥१३२॥ गुणोंसे सम्पूर्ण तथा लोगोंसे स्नेह करनेवाले उन दोनों पुत्रोंको पाकर राजा दशरथ अपने भवनोंमें इन्द्रके समान राज्यसुखका उपभोग करते हैं ॥१३३॥ नय और शूरवीरतासे सुशोभित राजा दशरथके राज्यमें इस समय हवा भी सम्पत्तिशाली प्रजाका कुछ हरण नहीं कर पाती है फिर अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥१३४॥ इस उपकारके बदले मैं उनका क्या उपकार करूँ इती बातकी आकुलतासे विन्ता करते हुए मुझे न रातमें नींद आती है न दिनमें ही ॥१३५॥ रामने मेरे प्राणोंको जो रक्षा की है उस समान भी कोई प्रत्युपकार नहीं है फिर अधिककी तो चर्चा ही क्या है ? ॥१३६॥ जो महान् उपकारसे दवा हुआ है तथा स्वयं कुछ भी प्रत्युपकार करनेमें असमर्थ है, ऐसे अपने आपको मैं तृणके समान तुच्छ समझता हूँ । मैं केवल भोगोंके भयसे पराद्सुख हो रहा हूँ ॥१३७॥ तदनन्तर जब मेरी दृष्टि नवयौवनसे सम्पूर्ण अपनी शुभ पुत्री पर पड़ी तब शोकके स्थानमें भी मेरा शोक विरलताको प्राप्त हो गया ॥१३८॥ मैंने अतिशय प्रतापी रामचन्द्रजीके लिए उसको देना संकल्पित कर लिया और नावकी भाँति इस पुत्रीने मुझे शोकरूपी सागरसे पार कर दिया ॥१३९॥

तदनन्तर जिनके मुखोंपर अन्धकार छा रहा था ऐसे विद्याधर बोले कि अहो ! तुम एक

भ्लेच्छैः किं ग्रहणं क्षुद्रैर्यदि तेषां पराजये । 'प्रशंससि परां शक्ति भूमिगोचरिणो' बुध ॥१४१॥
 भ्लेच्छनिर्घाटनात् स्तोत्र त्वया पद्मस्य कुर्वता । कृता प्रत्युत निन्देयमहो हास्यमिदं परम् ॥१४२॥
 शिशोर्विषफले प्रीतिनिःस्वस्त्र^३ बदरादिषु । ध्वाङ्क्षस्य पादपे शुष्के स्वभावः खलु दुस्सयजः ॥१४३॥
 कुसम्बन्धं परित्यज्य क्षितिगो^४चरिणां मतम् । कुरु विद्याधरेन्द्रेण सम्बन्धमधुना सह ॥१४४॥
 क्व महासम्पदो देवैः सदृशो व्योमचारिणः । क्व भूमिगोचराः क्षुद्राः सर्वथैवातिदुःखिताः ॥१४५॥
 जनकोऽवोचदत्यन्तत्रिपुलः 'क्षारसागरः । न तत्करोति यद्वाप्यः स्तोत्रस्वादुपयोभृत' ॥१४६॥
 अत्यन्तघनबन्धेन तमसा भुयसापि किम् । अल्पेन तु प्रद्रीपेन जन्यते लोकक्षेपितम् ॥१४७॥
 असख्या अपि मातङ्गा मदिनः कुर्वते न तत् । केशरी यत्किशोरः सश्चन्द्रनिर्मलकेशरः ॥१४८॥
 इत्युक्ते 'कोऽपि नोऽप्यर्थं समं कृतमहारवा । भूमिचेष्टां समारब्धा निन्दितु गगनायनाः' ॥१४९॥
 विद्यामाहात्म्यनिर्मुक्ता नित्यं स्वेदसमन्विताः । शौर्यसम्पत्परित्यक्ताः शोचनीया धराचराः ॥१५०॥
 वद तेषां पशुनां च को भेदो जनक त्वया । दृष्टो येन व्रपां त्यक्त्वा दुर्बुद्धिस्ताम् विकल्पसे ॥१५१॥
 उवाच जनको धीरः हा कष्टं श्रुत मया । वसुधाराजरत्नानां निन्दित पापकर्मणा ॥१५२॥
 कथं त्रिसुवनख्यातो वंशो नाभेयसंभवः । कर्णगोचरमेतेषां न प्राप्सो लोकपावनः ॥१५३॥

साधारण मनुष्य हो, तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं है ॥१४०॥ रामने भ्लेच्छोंको पकड़ा है इससे क्या हुआ ? उनको परास्त तो लुद्र मनुष्य भी कर सकते हैं फिर क्यों तुम बुद्धिमान् होकर भूमि-गोचरियोंकी परम शक्तिकी प्रशंसा कर रहे हो ॥१४१॥ भ्लेच्छोंको निकालने मात्रसे ही तुम रामकी स्तुति कर रहे हो सो यह उनकी स्तुति नहीं किन्तु निन्दा है । अहो ! यह षड्डी हंसीकी बात है ॥१४२॥ बालककी विपफलोमे, दरिद्रकी बैर आदि तुच्छ फलोमे और कौएकी सुखे वृत्तमें प्रीति होती है । सो कहना पड़ता है कि प्राणीका स्वभाव कठिनाईसे छूटता है ॥१४३॥ इसलिए तुम भूमिगोचरियोंका खोटा सम्बन्ध छोड़कर इस समय विद्याधरोके राजाके साथ सम्बन्ध करो ॥१४४॥ महासम्पत्तिमान् तथा देवोंके समान आकाशमें चलनेवाले विद्याधर कहाँ ? और सर्वप्रकारसे अत्यन्त दुःखी लुद्र भूमिगोचरी कहाँ ? ॥१४५॥

तदनन्तर जनकने उत्तर दिया कि अत्यन्त विस्तृत लवणसमुद्र वह काम नहीं करता जो कि थोड़ेसे मधुर जलको धारण करनेवाली वापिकाएँ कर लेती हैं ॥१४६॥ अत्यन्त सघन अन्धकार बहुत भारी होता है तो भी उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है जब कि छोटेसे दीपकके द्वारा लोककी चेष्टा उत्पन्न होती है अर्थात् सब काम सिद्ध होते हैं ॥१४७॥ मद्को भ्रष्टानेवाले असंख्य हाथी भी वह काम नहीं कर पाते जो कि चन्द्रबिम्बके समान उज्ज्वल जटाओंको धारण करनेवाला सिंहका एक बच्चा कर लेता है ॥१४८॥ ऐसा कहनेपर कितने ही विद्याधर 'ऐसा नहीं है' इस प्रकार जोरसे एक साथ बड़ा शब्द करते हुए भूमिगोचरियोंकी निन्दा करने लगे ॥१४९॥ वे कहने लगे कि भूमिगोचरी विद्याके माहात्म्यसे रहित हैं, निरन्तर पसीनासे युक्त रहते हैं, शूरवीरता और सम्पत्तिसे रहित हैं तथा अतिशय शोचनीय हैं ॥१५०॥ अरे जनक ! बता तूने उनमें और पशुओंमें क्या भेद देखा है ? जिससे दुर्बुद्धि हो तथा लज्जा छोड़कर उनकी इस तरह प्रशंसा किये जा रहा है ? ॥१५१॥

तदनन्तर धीरवीर जनकने कहा कि हाय ! बड़े कष्टकी बात है कि मुझ पापीको भूमि-गोचरी उत्तमोत्तम राजाओंकी निन्दा सुननी पड़ी ॥१५२॥ क्या त्रिजगत्में प्रसिद्ध तथा लोकको

१. प्रशंससि म० । २. गोचरिणोर्बुधः म०, गोचरिणो बुधैः व० । ३. दरिद्रस्य । निःस्वस्य म० । ४. गोचरिणामतः म० । ५. लवणसागरः । ६. चन्द्रमण्डल- म० । ७. केऽपि नोत्यर्थं (?) । ८. विद्याधराः ।

अहन्तस्त्रिजगत्पूज्याश्चक्रिणो हरयो बलाः । उत्पद्यन्ते नरा यस्यां सा कथं निन्दिता महो ॥१५४॥
 पञ्चकल्याणसम्प्राप्तिं पुंसो वदत खेचराः । स्वप्नेऽपि जातु कि दृष्टा भवद्भिः खेचरावनौ ॥१५५॥
 इक्ष्वाकुवंशसंभूता गोपदीकृतविष्टपाः । अनोक्षितपरच्छत्रा महारत्नसमृद्धयः ॥१५६॥
 सुरेन्द्रकीर्तितोदारकीर्तयो गुणसागराः । व्यतीता बहवो भूमौ कृतकृत्या नरोत्तमाः ॥१५७॥
 पुत्रोऽनरण्यराजस्य तत्र वयो महात्मनः । जातः सुमङ्गलाकुक्षौ नृपो दशरथोऽभवत् ॥१५८॥
 यो लोकहितमुद्दिश्य विरहेदपि जीवितम् । भूधर्ना बहति यस्याज्ञं शोषामिव जनोऽखिलः ॥१५९॥
 चतस्रो यस्य सम्पन्नाः सर्वशोभागुणोऽञ्जलाः । आशा इव महादेव्यः सुभावाः सुप्रसाधिताः ॥१६०॥
 शतानि वरनारीणां पञ्च यस्य सुचेतसः । वक्त्रनिर्जितचन्द्राणां हरन्ति चरितैर्मनः ॥१६१॥
 पद्मो नाम सुतो यस्य पद्मालिङ्गितविग्रहः । द्वांसिनिर्जितरिगमांशुः कीर्त्तिनिर्जितशीतगुः ॥१६२॥
 स्थैर्यनिर्जितशैलेन्द्रः शोभाजितपुरन्दरः । शौर्येण यो महापद्मं जयेदपि सुविभ्रमः ॥१६३॥
 अनुजो लक्ष्मणो यस्य लक्ष्मीनिलयविग्रहः । द्रवन्ति शत्रवो भीता दृष्ट्वा यस्य शरासनम् ॥१६४॥
 वायसा अपि गच्छन्ति नभसा तेन किं भवेत् । गुणेष्वत्र मनः क्लृप्यमिन्द्रजालेन^१ को गुणः ॥१६५॥
 ग्रहणं भावद्भिः किं यत्र देवाग्रिषा अपि । क्रियन्ते भूमिसमृत्तैर्नमन्तः चित्तिमस्तकाः ॥१६६॥
 इत्युक्ते रहसि स्थित्वा सन्मन्य गगनायनाः । ऊचुर्न वेत्सि कार्याणि जनकैक्याग्रमानसाः ॥१६७॥

पवित्र करनेवाला भगवान् ऋषभदेवका वंश इनके कर्णगोचर नहीं हुआ ॥१५३॥ त्रिजगत्के द्वारा पूजनीय तीर्थंकर चक्रवर्ती, नारायण और बलभद्र जैसे महापुरुष जिसमें उत्पन्न होते हैं वह भूमि निन्दनीय कैसे हो सकती है ? ॥१५४॥ हे विद्याधरो ! कहो, विद्याधरोंकी भूमिमें पुरुषोंको पञ्च कल्याणकोंकी प्राप्ति होना क्या कभी आप लोगोंने स्वप्नमें भी देखी है ? ॥१५५॥ जिनकी उत्पत्ति इक्ष्वाकु वंशमें हुई थी, जिन्होंने संसारको गोपपदके समान तुच्छ कर दिखाया, जिन्होंने कभी दूसरेका छत्र नहीं देखा, महारत्नोंकी समृद्धि जिनके पास थी, इन्द्र जिनकी उदार कीर्तिका वर्णन करता था, और जो गुणोंके सागर थे ऐसे अनेक कृतकृत्य राजा पृथिवी पर हो चुके हैं ॥१५६-१५७॥ उसी इक्ष्वाकु वंशमें महानुभाव राजा अनरण्यकी सुमङ्गला रानीकी कुक्षिसे राजा दशरथ उत्पन्न हुए हैं ॥१५८॥ जो लोकहितके लिए अपना जीवन भी छोड़ सकते हैं, समस्त लोग जिनकी आज्ञाको शोषाक्षतके समान शिरसे धारण करते हैं ॥१५९॥ जिसके सर्व प्रकारकी शोभा और गुणोंसे उज्वल, उत्तम अभिप्रायकी धारक तथा उत्तम अलङ्कारोंसे युक्त चार दिशाओंके समान चार महादेवियों हैं ॥१६०॥ यही नहीं, अपने मुखसे चन्द्रमा को जीतनेवाली पॉंच सौ स्त्रियों और भी अपनी चेष्टाओंसे जिसके मनको हरती रहती हैं ॥१६१॥ जिसके पद्म (राम) नामका ऐसा पुत्र है कि लक्ष्मी जिसके शरीरका आलिङ्गन करती है, जिसने अपनी दीप्तिसे सूर्यको, कीर्तिसे चन्द्रमाको, धीरतासे सुमेरुको और शोभासे इन्द्रको जीत लिया है, जो शूरवीरतासे महापद्म नामक चक्रवर्तीको भी जीत सकता है तथा उत्तम विभ्रमको धारण करनेवाला है ॥१६२-१६३॥ जिसका शरीर लक्ष्मीका निवासस्थल है और जिसके धनुषको देखकर शत्रु भयभीत होकर भाग जाते हैं ऐसा लक्ष्मण उस रामका छोटा भाई है ॥१६४॥ विद्याधर आकाशमें चलते हैं यह कहा सो आकाशमें तो कौए भी चलते हैं । इससे उनमें क्या विशेषता हो जाती है ? यहाँ गुणोंमें मन लगाना चाहिए अर्थात् गुणोंका विचार करना चाहिए । इन्द्रजालमें क्या सार है ? ॥१६५॥ अथवा आप लोगोंकी तो बात ही क्या है ? जबकि भूमिमें उत्पन्न हुए मनुष्य इन्द्रोंको भी नम्रीभूत कर देते हैं और नमस्कार करते समय उन्हें अपने मस्तक पृथिवीपर रगड़ने पड़ते हैं ॥१६६॥

अथानन्तर जनकके ऐसा कहनेपर विद्याधरोंने एकान्तमें बैठकर पहले सलाह की फिर

पद्मो लक्ष्मण इत्युच्चैर्गर्जितं वहसे बृथा । अथ विप्रत्ययः कश्चित्तोऽस्मान्नज निश्चयम् ॥१६८॥
 समय शृणु भूनाथ वज्रावर्तमिदं धनुः । इदं च सागरावर्तममरैः कृतरक्षणम् ॥१६९॥
 इमे वाणासने कर्तुमधिज्ये यदि तौ क्षमौ । अनेनैव तयोः शक्तिं ज्ञास्यामः किं बहुदितैः ॥१७०॥
 वज्रावर्तं समारोप्य पद्मो गृह्णातु कन्यकाम् । अस्माभिः प्रसभं पश्य तामानीतामिहान्यथा ॥१७१॥
 ततः परममित्युक्त्वा धनुषी वीच्य दुर्युधे । मनकाद् व्याकुलोभावं जनको मनसागमत ॥१७२॥
 ततः कृत्वा जिनेन्द्राणां पूजां स्तोत्रं तु भावतः । गदासीरादिसयुक्ते पूजां नीते शरासने ॥१७३॥
 उपादाय च ते शूरा जनकं च नभश्चराः । मिथिलाभिमुख जग्मुश्चन्द्रोऽपि रथनूपुरम् ॥१७४॥
 ततः कृतमहाशोभं समङ्गलमहाजनम् । विवेश जनको वेश्म पौरलोकावलोकितः ॥१७५॥
 विधायायुधशालां च समावृत्य नभश्चराः । वहन्तः परमं गर्वं नगरस्य बहिःस्थिताः ॥१७६॥
 जनकस्तु सखेद्राज्ञः कृत्वा किञ्चित्स भोजनम् । चिन्तयाकुलितो भेजे तत्पमुत्साहवर्जितः ॥१७७॥
 तत्र चोत्तमनारीभिर्विनीताभिः सुविभ्रमम् । चन्द्रांशुचयसंकाशैश्चामरैरभिर्वीजितः ॥१७८॥
 उष्णदीर्घातिभिःश्वासान् विमुञ्चन् विपमानलम् । दधत्या विविधं भावमभाष्यत विदेहयौ ॥१७९॥
 का क कामिंस्त्वया दृष्टा नारी यातेन लक्षिता । तद्वियोगकथामेतामवस्थामसि सञ्चितः ॥१८०॥

कहा कि हे जनक ! तुम कार्य करना नहीं जानते, तुम्हारा मन सिर्फ एक ही ओर लग रहा है ॥१६७॥ 'राम और लक्ष्मण उल्टू हैं' इस गर्जनाको तुम व्यर्थ ही धारण कर रहे हो यदि मेरे इस कहनेमें कुछ संशय हो तो इससे उसका निश्चय कर लो ॥१६८॥ हे राजन् ! हमारी शर्त सुनो । यह वज्रावर्त नामका धनुष है, और यह सागरावर्त नामका धनुष है । देव लोग इन दोनों की रक्षा करते हैं ॥१६९॥ यदि राम और लक्ष्मण इन धनुषोंको डोरीसहित करनेमें समर्थ हो जावेगे तो इसीसे हम उनकी शक्ति जान लेंगे । अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? ॥१७०॥ राम वज्रावर्त धनुषको चढ़ाकर कन्या ग्रहण कर सकते हैं यदि वे उक्त धनुष नहीं चढ़ा सकेंगे तो आप देखना कि हम लोग उसे यहाँ जबरदस्ती ले आवेंगे ॥१७१॥

तदनन्तर 'ठीक है' ऐसा कहकर जनकने विद्याधरोकी शर्त स्वीकार तो कर ली परन्तु उन दुर्योधन धनुषोंको देखकर चिन्तमें वह कुछ आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१७२॥ तदनन्तर भाव-पूर्वक जिनेन्द्र भगवानकी पूजा और स्तुति कर चुकनेके बाद गदा, हल आदि शस्त्रोंसे युक्त उन दोनों धनुषोंकी भी पूजा की गई ॥१७३॥ वे शूरवीर विद्याधर उन धनुषों तथा राजा जनकको लेकर मिथिलाकी ओर चल पड़े और चन्द्रगति विद्याधर भी रथनूपुरकी ओर चल दिया ॥१७४॥ तदनन्तर जिसकी बहुत बड़ी सजावट की गई थी, और जिसमें महाजन लोग मङ्गलाचारसे सहित थे, ऐसे अपने भवनमें राजा जनकने प्रवेश किया । प्रवेश करते समय नागरिकजनोंने जनकके अच्छी तरह दर्शन किये थे ॥१७५॥ बहुत भारी गर्वको धारण करनेवाले विद्याधर नगरके बाहर आयुधशाला बनाकर तथा उसीको घेरकर ठहर गये ॥१७६॥ जिसका शरीर खेद-खिन्न था ऐसे जनकने कुछ थोड़ासा भोजन किया और इसके बाद वह चिन्तासे व्याकुल हो शय्यापर पड़ रहा । उत्साह तो उसे था ही नहीं ॥१७७॥ यद्यपि वहाँ विनयसे भरी उत्तम स्त्रियों, हाव भाव दिखाती हुई, चन्द्रमाकी किरणोंके समान चमरोसे उसे हवा कर रही थी तथापि वह अत्यन्त विपम, उष्ण और लम्बे-लम्बे अत्यधिक श्वास छोड़ रहा था । उसकी यह दशा देख विविध प्रकारके भावको धारण करती हुई रानी विदेहाने कहा ॥१७८-१७९॥ कि हे कामिन् ! आप कहाँ गये थे और वहाँ ऐसी कौन-सी कामिनी आपने देखी है जिसके वियोगसे इस

प्राकृता कापि सा नारी कामिनीगुणरिक्तिका । इति या स्मरसंतस^२ भवन्तं नातुकम्पते ॥१८१॥
 नाथ वेदथ मे स्थानं येन तामानवामि ते । भवददुःखेन मे दुःखं जनस्य सकलस्य वा ॥१८२॥
 उदारो सति सौभाग्ये कथमिष्टोऽसि नो तथा । प्रावमानसया येन धृति न लभसे भृशम् ॥१८३॥
 उत्तिष्ठ भज निःशेषाः क्रिया राजजनोचिताः । शरीरो सति कामिन्यो भविष्यन्ति मनीषिताः^५ ॥१८४॥
 इत्युक्ते पार्थिवोऽब्रुवत् कान्तां प्राणगरीयसीम् । अन्यथा खेदितस्यास्य किं मे चित्तस्य खेद्यते ॥१८५॥
 शृणु देवि यतोऽब्रथ्यामीदृशीमहमागतः । अपरिज्ञातवृत्तान्ता किमर्थमिति भापसे ॥१८६॥
 तेन मायातुरङ्गेण नीतोऽहं विजयाचलम्^४ । समयेनामुना तत्र मुक्तः पत्या खगामिनाम् ॥१८७॥
 वज्रावर्तमधिष्यं चेद्धनुः पद्मं करिष्यति । ततः स्यात्तस्य कन्येयं तनयस्य ममान्यथा ॥१८८॥
 कर्मानुभावतस्तच्च मया साध्वसतोऽपि वा । प्रतिपन्नमभाग्येन वन्धावस्थामुपेयुषा ॥१८९॥
 समुद्रावर्तसञ्ज्ञेन^३ तच्चापेन समन्वितम् । आनीतं खेचरैरुग्रैर्बहिःस्थानस्य तिष्ठति ॥१९०॥
 मन्ये तस्य सुरेशोऽपि न शक्तोऽधिष्यताकृतां । वज्रज्वलनं तुल्यस्य दुर्निरीक्ष्यस्य तेजसा ॥१९१॥
^१कृतान्तमेव निरुद्धमनाकृष्टमपि स्वन्त् । अनधिष्यमपि स्वैरं भीष्मं तिष्ठत्यनारतम् ॥१९२॥
^{११}अधिष्ये न कृते तस्मिन् पद्मेन^१ मदिष्यं भ्रुवम् । हरिष्यते खगैः कन्या मांसपेशीव जम्बुकाद् ॥१९३॥
 विंशतिवार्साराणां च वस्तुन्यत्र कृतोऽवधिः । यलाक्षीता वराकांथं भूयोऽस्माभिः क वीक्षिता ॥१९४॥

अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥१८०॥ जान पड़ता है कि वह कोई पामरी स्त्री है अथवा स्त्रीके योग्य गुणोंसे रिक्त है जो इस तरह कामसे संतप्त हुए आप पर दया नहीं करती है ॥१८१॥ हे नाथ ! आप वह स्थान बतलाइये जिससे मैं उसे ले आऊँ क्योंकि आपके दुःखसे मुझे तथा समस्त लोगोंको दुःख हो रहा है ॥१८२॥ उत्कृष्ट सौभाग्यके रहते हुए भी उस पापाणहृदयाने आपको क्यों नहीं चाहा है जिससे कि आप अत्यन्त अधीर हो रहे है ॥१८३॥ उठिए और राजाओंके योग्य समस्त क्रियाओंका सेवन कीजिए । यदि शरीर है तो अनेक इच्छित स्त्रियाँ हो जावेंगी ॥१८४॥

विदेहाके ऐसा कहनेपर राजाने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय वल्लभासे कहा कि मेरा चित्त दूसरे ही कारणसे खिन्न हो रहा है । उसे इस तरह खेद क्यों पहुँचा रही हो ? ॥१८५॥ हे देवि ! सुनो, मैं जिस कारणसे ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुआ हूँ । तुम वृत्तान्तको जाने बिना इस प्रकार क्यों बोल रही हो ? ॥१८६॥ मैं उस मायामय अश्वके द्वारा विजयार्थ पर्वतपर ले जाया गया था वहाँ विद्याधरोंके राजाने मुझे इस शर्तपर छोड़ा है कि यदि राम वज्रावर्त धनुषको डोरी-सहित कर देगे तो यह कन्या उनकी होगी अन्यथा मेरे पुत्रकी होगी ॥१८७-१८८॥ कर्मके प्रभावसे समझो अथवा भयसे समझो वन्धन अवस्थाको प्राप्त हुए मुझ मन्द्भाग्यने उसकी वह शर्त स्वीकार कर ली ॥१८९॥ समुद्रावर्त नामक दूसरे धनुषके साथ उस धनुषको उग्र विद्याधर ले आये है और वह नगरके बाहर स्थित है ॥१९०॥ वह धनुष वज्राग्निके समान है तथा तेजके कारण उसकी ओर देखना भी कठिन है । इसलिए मैं तो समझता हूँ कि उसे डोरी-सहित करनेमें इन्द्र भी समर्थ नहीं हो सकेगा ॥१९१॥ वह ऐसा जान पड़ता है मानो अत्यन्त क्रुद्ध यमराज ही हो । बिना स्त्रीचे भी वह शब्द करता है और बिना डोरीके भी वह अत्यन्त भयंकर है ॥१९२॥ यदि राम उस धनुषको डोरीसहित नहीं कर सके तो मेरी इस कन्याको विद्याधर लोग अवश्य ही उसी तरह हर कर ले जावेंगे जिस तरह कि पत्नी किसी शृगालके मुखसे मांसकी डलीको हर ले जाते है ॥१९३॥ इस कार्यके लिए बीस दिनोंकी अवधि निश्चित की

१. पामरी । २. स्मरसंसक्त म० । ३. पापाणवत्कटोरचेतसा । ४. इष्टाः । ५. विजयार्थगिरिम् । ६. रामः । ७. स्वीकृतम् । ८. सस्येन म० । ९. दिग्बालानल- ज०, ख०, क० । १०. कृतान्तायैव तल्लुद्ध- म०, ख० । ११. अधिष्येन क्षते यस्मिन् म० । १२. मत् मत्सकाशात् ।

एवमुक्तेऽखिलसपूर्णलोचना सहस्राभवत् । विदेहापहृत बालमस्मरच्च प्रसङ्गत. ॥१६५॥
 अतीतागामिशोकान्यामभित' पीडितेव सा । चकार वारिनेत्राभ्यां कुररीव कृतस्वना ॥१६६॥
 परिदेवनमेवं च चक्रे विह्वलमानसा । कुर्वती परिवर्गस्य द्रवणं^१ चेतसामलम् ॥१६७॥
 कीदृश्याम मया नाथ दैवस्यापकृतं भवेत् । पुत्रेण यन्न संतुष्ट हर्षुं कन्यां समुद्यतम् ॥१६८॥
 स्नेहालम्बनमेकैव बालिकेय सुचेष्टिता । मम ते बान्धवानां च प्रेमभावो जनस्य च ॥१६९॥
 दुःखस्य यावदेकस्य^२ नान्त गच्छामि पापिनी । द्वितीयं तावदेतन्मे^३ कृतसन्निधि वर्तते ॥२००॥
 शोकावर्तनिमगनां तां करुण रुदतीमिति । नियम्यास्तु^४ प्रियोवोचदतः शोकसमाकुलः ॥२०१॥
 अलं कान्ते रुदित्वा ते ननु कर्माजितं पुरा । नर्तयत्यखिलं लोकं नृत्ताचार्यां ह्यसौ परः ॥२०२॥
 अथवा मयि विश्वस्ते हृतो दुष्टेन बालकः । अग्रमत्तस्य बालां तु हर्षुं शक्तोऽस्ति को मम ॥२०३॥
 आसप्रधारणन्यायमपरित्यजता मया । वृष्टासि दधिते वस्तु जानाम्येतत् सुखावहम् ॥२०४॥
 सारैरेवविधैर्वाक्यैः कान्तेन कृतसान्त्वना^५ । विदेहा विरलीकृत्य शोकं कृच्छ्रादवस्थिता ॥२०५॥
 ततो धनुर्गृह्णान्ते विशाला रचितावनि । स्वयवरार्थमाहूता. पार्थिवाः सकला. चिन्ती ॥२०६॥
 प्रेषित. कोशलां दूतः^६ पद्माद्याः समुपागताः । मातापित्रादिसंयुक्ता जनकेनामिपूजिताः ॥२०७॥

गई है । इसके बाद यह कन्या जवदस्ती ले जाई जावेगी । फिर इस बेचारीको हम कहाँ देख सकेंगे ? ॥१६४॥

जनकके ऐसा कहते ही विदेहाके नेत्र सहसा आँसुओंसे भर गये और इस प्रसङ्गसे उसे अपने अपहृत बालकका स्मरण हो आया ॥१६५॥ वह अतीत और आगामी शोकके द्वारा दोनों ओरसे पीड़ित हो रही थी । इसलिए कुररीकी तरह शब्द करती हुई नेत्रोंसे जल बरसाने लगी ॥१६६॥ विह्वल चित्तकी धारक विदेहा परिजनोके चित्तको अत्यन्त द्रवीभूत करती हुई इस प्रकार विलाप करने लगी कि हे नाथ ! मैंने दैवका कैसा उलटा अपकार किया होगा कि जिससे वह पुत्रके द्वारा सन्तुष्ट नहीं हुआ अब कन्याको हरनेके लिए उद्यत हुआ है ॥१६७-१६८॥ उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली यही एक बालिका मेरे और आपके स्नेहका आलम्बन है तथा भाई-बान्धव एवं परिवारके लोगोंका प्रेमभाजन है ॥१६९॥ मैं पापिनी जब तक एक दुःखका अन्त नहीं प्राप्त कर पाती हूँ तब तक दूसरा दुःख आकर उपस्थित हो जाता है ॥२००॥ राजा जनक स्वयं शोकसे आकुल था पर जब उसने देखा कि विदेहा शोकरूपी आवर्तमे फँसकर करुण रोदन कर रही है तब उसने जिस किसी तरह अपने आँसू रोककर कहा कि हे प्रिये ! तुम्हारा रोना व्यर्थ है । निश्चयसे पूर्व जन्ममे अर्जित कर्म ही समस्त लोकको नचा रहा है । यही सबसे बड़ा नर्तकाचार्य है ॥२०१-२०२॥ अथवा मेरे निश्चित असावधान रहनेपर किसी दुष्टके द्वारा बालक हरा गया था पर अब तो मैं सावधान हूँ । देखूँ मेरी कन्याको हरनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२०३॥ हे प्रिये ! 'आप्तजनोके साथ कार्यका विचार करना चाहिए' इस न्यायको न छोड़ते हुए ही मैंने तुममे पूछा था । मैं तो जानता हूँ कि यह वस्तु सुखको धारण करनेवाली ही होगी ॥२०४॥ पतिके इस प्रकार सारपूर्ण वचनोंसे जिसे सान्त्वना दी गई थी ऐसी विदेहा बड़े कष्ट से शोकको हलका कर चुप हो रही ॥२०५॥

तदनन्तर जहाँ धनुष रक्खा था उसके समीप ही विशाल भूमि बनाई गई और उसमे स्वयंवरके लिए समस्त राजा बुलाये गये ॥२०६॥ अयोध्याको भी दूत भेजा गया जिससे राम आदि चारों भाई माता पिता आदिके साथ आये और राजा जनकने उन सबका सम्मान किया

१. द्रविणं म० । २. देतस्य म० । ३. तावदेवन्मे म० । ४. नियम्याश्रुं म० । ५. सान्त्वया ज० । ६. रामाद्याः । ७. मातृपित्रा-ज०, क०, ख०, व० ।

ततो हर्म्यतले कान्ते स्थिता परमसुन्दरी । कन्यासक्तशतान्तस्था सीता शूरभटावृता ॥२०८॥
 प्रान्तेषु सर्वसामन्ता वेश्मनोऽस्यावतस्थिरे । कुर्वाणा विविधां लीलां महाविभववर्तिनः ॥२०९॥
 ततः स्थित्वा पुरस्तस्य कञ्चुकी सुबहुश्रुतः । जगाद तारशब्देन हेमवेत्रलताकरः ॥२१०॥
 राजपुत्रि परीक्षस्व पद्मोऽसौ पद्मलोचन । अयोध्याधिपतेराद्यः पुत्रो दशरथश्रुतेः ॥२११॥
 लक्ष्मीमान् लक्ष्मणश्चायमनुजोऽस्य महाद्युतिः । भरतोऽयं महाबाहुः शत्रुघ्नोऽयं सुचेष्टितः ॥२१२॥
 सुतैर्दशरथोऽमीभिर्गुणसागरमानसैः । वसुधां शास्ति निर्दग्धभयाङ्कुरसमुद्भवाम् ॥२१३॥
 हरिवाहननामाय धामानेषु घनप्रभः । अयं चित्ररथः कान्तो दुर्मुखोऽयं प्रभाववान् ॥२१४॥
 श्रीसजयो जयो भानुः सुप्रभो मन्दरो ब्रुधः । विशालः श्रीधरो वीरो बन्धुर्भद्रबलः शिखी ॥२१५॥
 पुतेऽन्ये च महासत्त्वा महाशोभासमन्विता । विशुद्धवशसम्भूताश्चन्द्रनिर्मलकान्तयः ॥२१६॥
 कुमाराः परमोत्साहा गुणभूषणवारिणः । महाविभवसम्पन्ना भूरिविज्ञानकोविदाः ॥२१७॥
 गजोऽयमस्य शैलाभस्तुरङ्गोऽस्यायमुन्नत । रथोऽस्याय महाभोगो भटोऽस्यायं कृताङ्गतः ॥२१८॥
 साकारयपुरनाथोऽयमयं रन्ध्रपुराधिपः । गवीधुमदधीशोऽयमयं नन्दनिकाधिपः ॥२१९॥
 विभुः सूरपुरस्यायमेप कुण्डपुराधिपः । अय मगधराजेन्द्रः काम्पित्यविभुरेप च ॥२२०॥
 अयमिचचक्रुसम्भूतो नृपोऽय हरिवंशजः । अयं कुरुकुलानन्दो भोजोऽयं वसुधापतिः ॥२२१॥
 इत्यादिवर्णनयुक्ता श्रूयन्तेऽमी महागुणाः । इदं त्वदर्थमेतेषां समाख्यं परीक्षणम् ॥२२२॥

॥२०७॥ तदनन्तर परम सुन्दरी सीता सात सौ अन्य कन्याओंके साथ महलकी सुन्दर छतपर बैठी । शूरवीर योद्धा उसे घेरे हुए थे ॥२०८॥ उस महलके चारो ओर नाना प्रकारकी लीला को करते हुए समस्त सामन्त वड़े ठाट-बाटसे अवस्थित थे ॥२०९॥

तदनन्तर अनेक शास्त्रोंको जाननेवाला तथा हाथमें सुवर्णकी छड़ी धारण करनेवाला कञ्चुकी सीताके सामने खड़ा होकर उच्च स्वरसे बोला कि हे राजपुत्रि ! देखो यह कमल-लोचन, अयोध्याके अधिपति राजा दशरथका आद्य पुत्र पद्म (राम) है ॥२१०-२११॥ यह लक्ष्मीवान् तथा विशाल कान्तिको धारण करनेवाला इसका छोटा भाई लक्ष्मण है । यह बड़ी बड़ी सुजाओं को धारण करनेवाला भरत है और यह सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाला शत्रुघ्न है ॥२१२॥ जिनके हृदय गुणोंके सागर हैं ऐसे इन पुत्रोंके द्वारा राजा दशरथ पृथिवीका पालन करते हैं । इनकी पृथिवीमें भयके समस्त अङ्कुरोंकी उत्पत्ति भस्म कर दी गई है ॥२१३॥ यह अत्यधिक कान्तिको धारण करनेवाला बुद्धिमान् हरिवाहन है, यह सुन्दर चित्ररथ है, यह प्रभावशाली दुर्मुख है ॥२१४॥ यह श्रीसज्जय है, यह जय है, यह भानु है, यह सुप्रभ है, यह मन्दर है, यह बुध है, यह विशाल है, यह श्रीधर है, यह वीर है, यह बन्धु है, यह भद्रबल है और यह शिखी अर्थात् मयूरकुमार है ॥२१५॥ ये तथा इनके सिवाय और भी राजकुमार यहाँ उपस्थित हैं । ये सभी महा पराक्रमी, महा शोभासे युक्त, विशुद्ध कुलमें उत्पन्न, चन्द्रमाके समान निर्मल कान्तिके धारक, परमोत्साही, गुणरूपी आभूषणोंके धारक, महा विभवसे सम्पन्न तथा अत्यधिक विज्ञानमें निपुण हैं ॥२१६-११७॥ यह पर्वतके समान आभावाला इसका हाथी है, यह इसका ऊँचा घोड़ा है, यह इसका विस्तृत रथ है और यह आश्चर्यजनक कार्य करनेवाला इसका सुभट—योद्धा है ॥२१८॥ यह साङ्गश्यपुरका स्वामी है, यह रन्ध्रपुरका अधिपति है यह गवीधुमद् देशका अधीश है, यह नन्दनिकाका नाथ है ॥२१९॥ यह सूरपुरका विभु है । यह कुण्डपुरका अधिप है, यह मगध देशका राजा है, और काम्पित्यपुरका स्वामी है ॥२२०॥ यह राजा इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ है, यह हरिवंशमें उद्भूत हुआ है, यह कुरुकुलका आनन्ददायक है और यह राजा भोज है ॥२२१॥ ये सभी राजा इत्यादि वर्णनासे युक्त तथा महा

वज्रावर्तमिदं चापमारोपयति शो नरः । कुमारि वरणीयोऽसौ भवत्या पुरुषोत्तमः ॥२२३॥
 क्रमेण मानिनस्ते च कुर्वाणाः स्वविकथनम् । वज्रावर्तधनुस्तेन ढौकितेश्चाहविभ्रमाः^१ ॥२२४॥
 आसीदसु कुमारेषु धनुसुञ्चत पावकम् । विद्युत्सटासमाकारं निश्वसन्नीपणोरगम् ॥२२५॥
 चक्षुस्तत्र द्रुतं केचिद्ब्रह्मचालसमाहृतम् । त्रस्ताः पिषाय पाणिभ्यां पराचीनैस्त्वमाश्रिताः ॥२२६॥
 तस्थुर्द्रुत एवान्ये दृष्ट्वा स्फुरितपद्मगात् । कम्पमानसमस्ताद्वा निमीलितविलोचनाः ॥२२७॥
 'केचिज्ज्वराकुलाः पेतुः शितावन्ये' गिरोऽम्भिताः । द्रुतं पलायिताः केचिदेके मूर्च्छासुपागताः ॥२२८॥
 केचित्पद्मगावातेन क्षिप्ता मर्मरपत्रवद् । अपरे स्तम्भमायाताः स्थिताः शान्तर्द्धयोऽपरे ॥२२९॥
 केचिद्बुधैर्दृष्टवान् गमिष्यामो निज ततः । जीवदानानि दास्यामश्चरणौ देहि^२ देवते ॥२३०॥
 'ऊचुरन्येऽन्यनारीभिः सेवां मानसवातिनः' । भ्रियमाणाः करिष्यामो रूपिष्यापि किमेतया ॥२३१॥
 अन्ये जगुरिषं नून केनापि क्रूरचेतसा । प्रयुक्ता परमा माया वधार्थं पृथिवीक्षिताम् ॥२३२॥
 अन्ये जगुः किमस्माकं कामेनास्ति प्रयोजनम् । ब्रह्मचर्येण नेष्यामः समर्थं साधवो यथा ॥२३३॥
 ततः पद्मः समुत्तस्थौ वरकामुकलालसः । ह्रुदौके च^३ महानागमन्थरां गतिमुद्बुद्धन् ॥२३४॥
 आसीदतिष्ठमे तस्मिन् रूपं भेजे धनुर्निजम् । सुचारुपरमं सौम्यमन्तेवार्सी^४ गुराविव ॥२३५॥

गुणवान् मुने जाते है । तुम्हारे लिए इन सनका यह परीक्षण प्रारम्भ किया गया है ॥२२२॥ हे कुमारि ! जो पुरुष इस वज्रावर्त धनुषको चढ़ा देगा वही पुरुषोत्तम तुम्हारे द्वारा बरा जाना है ॥२२३॥

तदनन्तर जो मानसे सहित थे, अपनी प्रशंसा अपनेआप कर रहे थे, और सुन्दर विलाससे सहित थे ऐसे उन सब राजाओंको वह कञ्चुकी वज्रावर्त धनुषके पास ले गया ॥२२४॥ जिसका आकार त्रिजलीकी छटाके समान था तथा जिसमें भयङ्कर सोंप फुंकार रहे थे ऐसा वह धनुष राजकुमारोके पास आते ही अग्नि छोड़ने लगा ॥२२५॥ कितने ही राजकुमार भयभीत हो धनुषकी ज्वालाओसे ताड़ित चक्षुको दोनो हाथोसे ढँककर शीघ्र ही वापिस लौट गये ॥२२६॥ जिनके समस्त अङ्ग कम्पित हो रहे थे तथा नेत्र बन्द हो गये थे ऐसे कितने ही लोग चलते हुए सोंपोको देखकर दूर ही खड़े रह गये थे ॥२२७॥ कितने ही लोग ज्वरसे आकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़े, कितने ही लोगोकी बोलती बन्द हो गई, कितने ही शीघ्र भाग गये और कितने ही मूर्छाको प्राप्त हो गये ॥२२८॥ कितने ही लोग सोंपोकी वायुसे सूखे पत्रके समान उड़ गये, कितने ही अकड़ गये और कितने ही लोगोको ऋद्धि शान्त हो गई अर्थात् वे शोमारहित हो गये ॥२२९॥ कितने ही लोग कहने लगे कि यदि हम अपने स्थानपर वापिस जा सकेंगे तो जीवोको दान देवेंगे । हे देवते ! मुझे दो चरण दो अर्थात् वापिस भागनेकी पैरोंमें शक्ति प्रदान करो ॥२३०॥ कितने ही लोग बोले कि यदि हम जीवित रहेंगे तो अन्य स्त्रियोंसे कामकी सेवा कर लेंगे । भले ही यह रूपवती हो पर इससे क्या प्रयोजन है ? ॥२३१॥ कुछ लोग कहने लगे कि निश्चित ही किसी दुष्ट चित्तने राजाओके वधके लिए इस मायाका प्रयोग किया है ॥२३२॥ और कुछ लोग कहने लगे कि हमें कामसे क्या प्रयोजन ? हम तो साधुओंके समान ब्रह्मचर्यसे समय बिता देवेंगे ॥२३३॥

तदनन्तर जिन्हें उस उत्कृष्ट धनुषकी लालसा उत्पन्न हो रही थी ऐसे राम मदनोन्मत्त गजराजके समान मन्थर गतिको धारण करते हुए उसके पास पहुँचे ॥२३४॥ पुण्यशाली रामके

१. चारुविभ्रमा म० । २. शीघ्रम् । ३. पराङ्मुखत्वम् । ४. केचिद्ब्रह्मकुल म०, केचित्चराकुला ज० । ५. वाण्या रहिताः । ६. देवि ज० । ७. ऊचुरन्येन नारीभिः म० । ८. कामस्य । ९. महागजमन्थरा । १०. छात्रः ।

ततो विन्नब्धमादाय धनुर्द्वेष्टथ चांशुकम् । समारोपयदभ्युच्चैर्ध्वनितं विपुलग्रभम् ॥२३६॥
 महाजलधरध्वानशङ्किभिः शिखिभिः कृतम् । मुक्तकेर्कारवैर्नृत्यं बद्धविस्तीर्णमण्डलैः ॥२३७॥
 अलातचक्रसंकाशः संजातो दिवसाधिपः । सुवर्णरजसाच्छन्ना इवासन् व्योमबाहवः^१ ॥२३८॥
 साधु साध्विति देवानां बभूव नभसि स्वनः । ननुतुर्व्यन्तराः केचिन्मुञ्चन्तः पुष्पसहतीः ॥२३९॥
 ततोऽग्निजटङ्कारवधिरीकृतविष्टपम् । आचकर्प धनुः पद्मः सम्प्राप्तं चक्रतावित्र ॥२४०॥
 विकलीभूतनिशेषहृषीकः सकलो जनः । तदावर्तमिध प्राप्ते भ्राम्यति त्रस्तमानसः ॥२४१॥
 प्रवातघूर्णिताम्भोजपलाशाधिककान्तिना । चक्षुषा स्मरचापेन सीता रामं निरैच्छत ॥२४२॥
 रोमाञ्छार्चितसर्वांगा दधती परमस्रजम् । ग्रीता रामं ङुडौके सा ग्रीढाविनमितानना ॥२४३॥
 पार्श्वस्थया तथा रेजे स तथा सुन्दरो^२ यथा । यथायमिति दृष्टान्तं यो गदेव स गतत्रयः ॥२४४॥
 अवतारितनौर्वीकं स कृत्वा सायकासनम् । तस्यौ विनयसम्पन्नः स्वासने सीतया सह ॥२४५॥
 सकम्पहृदया सीता रामाननदिदृच्छया । भावं कमपि सम्प्राप्ता नवसङ्गमसम्भवसा ॥२४६॥
 झुब्धाकूपारनिस्वानं सागरावर्तकामुर्कम् । तावच्च लक्ष्मणोऽधिज्यं कृत्वास्फालयदुन्नतम् ॥२४७॥
 शरे निहितदृष्टिं तं समालोक्य नभश्चराः । वदन्तो देव मा मेति मुसुबुः कुसुमोत्करान् ॥२४८॥
 आकृत्य कामुर्कं क्रूरं मौर्वीत्तरावमूर्जितः^३ । अवतार्यं च पद्मस्य पार्श्वं सुविनयस्थितः ॥२४९॥

समीप आते ही धनुष अपने असली स्वरूपको उसीतरह प्राप्त हो गया जिस तरह कि गुरुके समीप आते ही विद्यार्थी अत्यन्त सुन्दर एवं सौभाग्यरूपको प्राप्त हो जाता है ॥२३९॥ तदनन्तर रामने वल्ल ऊपर चढ़ाकर निःशङ्क हो धनुष उठा लिया और उसे चढ़ाकर जोरसे विपुल गर्जना की ॥२३६॥ मयूर उस गर्जनाको मेघोकी महागर्जना समझ हर्षसे केकाध्वनि छोड़ने लगे और अपनी पिच्छोंका मण्डल फैला कर नृत्य करने लगे ॥२३७॥ सूर्य अलातचक्रके समान हो गया और दिशाएँ सुवर्णकी परागसे ही मानो व्याप्त हो गई ॥२३८॥ आकाशमे 'साधु' 'साधु'—'ठीक-ठीक' इस प्रकार देवोंका शब्द होने लगा और फूलोंके समूहकी वर्षा करते हुए कितने ही व्यन्तर नृत्य करने लगे ॥२३९॥

तदनन्तर अटनीकी टङ्कारसे जिसने समस्त विश्वको बहिरा कर दिया था तथा जो चक्राकारताको मानो व्याप्त हो रहा था ऐसे धनुषको रामने खींचा ॥२४०॥ जिनकी समस्त इन्द्रियों विकल हो गई थीं तथा मन भयभीत हो रहा था ऐसे सब लोग भँवरमे पड़े हुएके समान घूमने लगे ॥२४१॥ वायुसे हिलते हुए कमलदलसे भी अधिक जिसकी कान्ति थी, तथा जो कामदेवके धनुषके समान जान पड़ता था, ऐसे नेत्रसे सीताने रामको देखा ॥२४२॥ जिसका समस्त शरीर रोमाञ्छोंसे सुशोभित हो रहा था, जो उत्कृष्ट माला धारण कर रही थी, तथा लज्जासे जिसका मुख नीचेकी ओर झुक रहा था ऐसी सीता प्रसन्न हो रामके समीप पहुँची ॥२४३॥ पासमे खड़ी सीतासे सुन्दर राम इस तरह सुशोभित हो रहे थे कि उनकी उपमामे 'वे इस तरह सुशोभित थे' ऐसा जो कहता था वह निर्लज्ज जान पड़ता था अर्थात् वे अनुपम थे ॥२४४॥

तदनन्तर धनुषकी डोरी उतारकर वे विनयवान् राम सीताके साथ अपने आसनपर बैठ गये ॥२४५॥ जो नव समागमके कारण भयभीत हो रही थी तथा जिसके हृदयमे क्रम्पन उत्पन्न हो रहा था ऐसी सीता रामका मुख देखनेकी इच्छासे किसी अद्भुत भावको प्राप्त हो रही थी ॥२४६॥ इतनेमे ही झुमिति समुद्रके समान जिसका शब्द हो रहा था ऐसे सागरावर्त नामक धनुषको लक्ष्मणने प्रत्यञ्चासहित कर जोरसे उसकी टङ्कार छोड़ी ॥२४७॥ तदनन्तर वाणपर दृष्टि लगाये हुए लक्ष्मणको देख 'हे देव नहीं, नहीं' ऐसा कहते हुए विद्याधरोने फूलोंके समूह छोड़े अर्थात् पुष्प वर्षा की ॥२४८॥ तदनन्तर जिसकी डोरीसे विशाल शब्द हो रहा था ऐसे

१. दिशाः । २. सुन्दरा म० । ३. बलवान् ।

विक्रान्ताय तथा तस्मै विद्यामृच्चन्द्रवर्धनः । अष्टादश ददौ कन्या धियैवाप्रौढिका इति ॥२५०॥
 विद्याधरैः समागत्य परमं भयपूरितैः । वृत्तान्ते कथिते तस्मिन्श्रद्धाश्रितान्तरः स्थितः ॥२५१॥
 वृत्तान्तमिममालोक्य भरतः पुरुविस्मयः । अशोचदेवमात्मानं मनसा सम्प्रबुद्धवान् ॥२५२॥
 कुलमेकं पिताम्येकं पत्योर्यमं चेदशम् । प्राप्तमद्भुतमेताभ्यां न मया मन्दकर्मणा ॥२५३॥
 अथवा किं मनो व्यर्थं परलकन्यामित्यसे । पुरा चारुणि कर्माणि न कृतानि भ्रुवं स्वया ॥२५४॥
 पद्मगर्भदलच्छाया साक्षाल्लक्ष्मीरिवोज्ज्वला । ईदृशी पुरुपुण्यस्य पुंस्तो भवति भामिनी ॥२५५॥
 कलाकलापनिष्णाता विज्ञाना केकया ततः । विज्ञाय तनयाकृतं कर्णं प्रियमभापत ॥२५६॥
 भरतस्य मया नाथ शोकवह्निस्त मनः । तथा कुरु यथा नाथ निर्वेदं परमृच्छति ॥२५७॥
 अस्त्यत्र कनको नाम जनकस्थानुजो नृपः । सुप्रभायां ततो जाता सुकन्या लोकसुन्दरी ॥२५८॥
 स्त्रयंवराभिधं भूयः समुद्घोष्य नियोज्यताम् । तथायं यावदायाति नान्यं तं भावनान्तरम् ॥२५९॥
 ततः परममित्युक्त्वा वार्तां दशरथेन सा । कर्णगोचरमानीता कनकस्य सुचेतसः ॥२६०॥
 यद्वाहापयतीत्युक्त्वा कनकेनान्यवासरे । समाहूता नृपाः क्षिप्रं गता ये निलयं निजम् ॥२६१॥
 ततो यथोचितस्थानस्थितभूनाथमध्यगम् । नक्षत्रगणमध्यस्थशर्वरीवरविश्रमम् ॥२६२॥
 उपात्तसुमनोदामा^१ कानकी कनकप्रभा । सुप्रभा भरतं वद्रे सुभद्रा भरतं यथा ॥२६३॥

धनुषको खींचकर और फिर उतारकर बलवान् लक्ष्मण रामके समीप ही बड़ी विनयसे आ बैठा ॥२४६॥ इस प्रकार शूरवीरता दिखानेवाले लक्ष्मणके लिए चन्द्रवर्धन विद्याधरने अत्यन्त बुद्धि-मती अठारह कन्याएँ दीं ॥२४७॥ भयसे अतिशय भरे हुए विद्याधरोंने वापिस आकर जब यह समाचार कहा तब चन्द्रगति विद्याधर चिन्तामें निमग्न हो गया ॥२५१॥

अथानन्तर यह वृत्तान्त देखकर जिसे बड़ा आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिसे मनमें प्रबोध उत्पन्न हुआ था ऐसा भरत अपने आपके विषयमें इस प्रकार शोक करने लगा ॥२५२॥ कि देखो हम दोनोंका एक कुल है, एक पिता हैं। पर इन दोनों अर्थात् राम लक्ष्मणने ऐसा आश्चर्य प्राप्त किया और पुण्यकी मन्दतासे मैं ऐसा आश्चर्य प्राप्त नहीं कर सका ॥२५३॥ अथवा दूसरेकी लक्ष्मीसे मनको व्यर्थ ही क्यों संतप्त किया जाय ? निश्चित ही तूने पूर्वभवमें अच्छे कार्य नहीं किये ॥२५४॥ कमलके भीतरी दलके समान जिसकी कान्ति है ऐसी साक्षात् लक्ष्मीके समान उज्ज्वल स्त्री अत्यधिक पुण्यके धारक पुरुषको ही प्राप्त हो सकती है ॥२५५॥

तदनन्तर कलाओके समूहमें निष्णात एवं विशिष्ट ज्ञानको धारण करनेवाली केकयाने पुत्रकी चेष्टा जानकर कानमें हृद्यवल्बल राजा दशरथसे कहा कि हे नाथ ! मुझे भरतका मन शोकयुक्त दिखाई देता है । इसलिए ऐसा करो कि जिससे यह वैराग्यको प्राप्त न हो जाय ॥२५६-२५७॥ यहाँ जनकका छोटा भाई कनक है उसकी सुप्रभा रानीसे उत्पन्न हुई लोकसुन्दरी नामा कन्या है ॥२५८॥ सो स्वयंवर विधिकी पुनः घोषणा कर उसे भरतके लिए उसी तरह स्वीकृत कराओ जिस तरह कि वह किसी दूसरी भावनाको प्राप्त नहीं हो सके ॥२५९॥ तदनन्तर 'बहुत ठीक है' ऐसा कहकर राजा दशरथने यह बात विचारवान् राजा कनकके कान तक पहुँचाई ॥२६०॥ राजा कनकने भी 'जो आज्ञा' कहकर दूसरे दिन जो राजा अपने घर चले गये थे उन्हें शीघ्र ही बुलाया ॥२६१॥

तदनन्तर जो यथायोग्य स्थानोंपर बैठे हुए राजाओंके मध्यमें स्थित था और नक्षत्रोंके समूहके मध्यमें स्थित चन्द्रमाके समान सुरोभित हो रहा था ऐसे भरतको पुष्पमाला धारण करनेवाली एवं सुवर्णके समान कान्तिसे संयुक्त, राजा कनककी पुत्री लोकसुन्दरीने उस तरह

अत्यन्तविपरीभावं पश्य श्रेणिक कर्मणाम् । यतोऽसौ संप्रबुद्धः सन् कन्धया मोहितः पुनः ॥२६५॥
 विलसाः पार्थिवाः सर्वे जग्मुः स्थानं यथायथम् । अस्थुश्च विकथाशक्त्या बन्धुवर्गसमाम्ने ॥२६५॥
 यादृक् येन कृतं कर्म बुद्धके तादृक् स तत्फलम् । नष्टुप्तान् कोद्ववान् कश्चिद्रनुते शालिसंपदम् ॥२६६॥
 केतुतोरणमालाभिर्मण्डितायां महाद्युतौ । अगुल्फकुसुमापूर्णाविशालापणवर्त्मनि ॥२६७॥
 सशंखतूर्निस्वानपुरिताखिलवेरमनि । मिथिलायां तयोश्चक्रे विवाहः परमोत्सवः ॥२६८॥

द्रविणेन तथा लोकः सकलो परिपूरितः ।
 महाप्रलयमायातं देहीति ध्वनितं यथा ॥२६९॥
 ये विवाहोत्सवं द्रष्टुं स्थिता भूपाः सुचेतसः ।
 परमं प्राप्य सन्मानं ययुस्ते स्वं स्वमालयम् ॥२७०॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

सकलविष्टपनिर्गतकीर्तयः परमरूपपयोनिधिवर्तिनः ।
 पितृजनार्पितसंसदसम्पदः परमरत्नविभूषितविग्रहाः ॥२७१॥
 त्रिविधयानसमाकुलसैनिका जलनिधिस्वनतूर्पनिनादितः ।
 त्रिविष्टुरभ्युदयेन सुकोशलां दशरथस्य सुता वधुके ३तथा ॥२७२॥
 समवलोकितुमुत्तमविग्रहे पुरि तदा वधुके सकलो जनः ।
 रहितसामिहृतस्वमनःक्रियः श्रयति राजपथं भृशमाकुलः ॥२७३॥

वरा जिस तरह कि उत्तम कान्तिको धारण करनेवाली सुभद्राने पहले भरत चक्रवर्तीको वरा था ॥२६२-२६३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! कर्मकी अत्यन्त विषमता देखो कि प्रबोधको प्राप्त हुआ भरत कन्याके द्वारा पुनः मोहित हो गया ॥२६४॥ सब राजा लोग लज्जित होते हुए यथायोग्य स्थानोपर चले गये और अपने बन्धुवर्गके बीचमे विकथा करते हुए रहने लगे ॥२६५॥ कितने ही कहने लगे कि जिस जीवने जैसा कार्य किया है वह वैसा ही फल भोगता है । क्योंकि जिसने क्रोढ़ो बोये है वह धान्य प्राप्त नहीं कर सकता ॥२६६॥

तदनन्तर जो पताका तोरण और मालाओंसे सजाई गई थी, जो महाकान्तिको धारण कर रही थी, जिसके बाजारके लम्बे-चौड़े मार्ग घुटनों तक फूलोंसे व्याप्त किये गये थे और जिसके समस्त घर शङ्ख एवं तुरहीके मधुर शब्दोंसे भर रहे थे ऐसी मिथिला नगरीमें दोनोंका बड़े उत्सवके साथ विवाह किया गया ॥२६७-२६८॥ उस समय धनसे सब लोक इस तरह भर दिया गया था कि जिससे 'देहि अर्थात् देओ' यह शब्द महाप्रलयको प्राप्त हो गया था अर्थात् विलकुल ही नष्ट हो गया था ॥२६९॥ उत्तम चित्तको धारण करनेवाले जो राजा विवाहोत्सव देखनेके लिए रह गये थे वे परम सन्मानको प्राप्त हो अपने-अपने घर गये ॥२७०॥

आथानन्तर जिनकी कीर्ति समस्त संसारमे फैल रही थी, जो परम सौन्दर्यरूपी सागरमे निमग्न थे, जिन्होंने माता-पिताके लिए हर्षरूप सम्पदा समर्पित की थी, जिनके शरीर उल्लूक रत्नोंसे अलंकृत थे, जिनके सैनिक नाना प्रकारकी सवारियोंसे व्यग्र थे, और जिनके आगे समुद्रके समान विशाल शब्द करनेवालो तुरही वज रही थी ऐसे दशरथके पुत्रो तथा वधुओंने वड़े वैभवके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ॥२७१-२७२॥ उस समय उत्तम शरीरको धारण करनेवाली वधुओंको देखनेके लिए समस्त नगरवासी लोग अपना आधा किया कार्य छोड़ बड़ी

कृतसमस्तजनप्रतिमाननाः गुरुगुणस्तवसन्नतमूर्तयः ।
 स्वनिलयेषु महासुखभोगिनो दशरथस्य सुताः सुधियः स्थिताः ॥२७४॥
 समवगम्य जनाः शुभकर्मणः फलमुदारमशोभनतोऽन्यथा ।
 कुरुत कर्म दुर्धरभिनन्दितं भवत येन रवेरधिकप्रभाः ॥२७५॥

इत्यार्षे रविपेरणाचार्यश्रोत्रके पद्मचरिते रामलक्ष्मणरत्नमालामिधानं
 नामाष्टाविंशतितमं पर्व ॥२८॥



व्यग्रतासे राजमार्गमें आ गये ॥२७३॥ जिन्होंने सब लोगोंका सत्कार किया था तथा अपने विशाल गुणोंके स्तवनसे जिनका शरीर बिनम्र हो रहा था अर्थात् लज्जाके भारसे झुक रहा था ऐसे दशरथके बुद्धिमान् पुत्र महासुख भोगते हुए अपने महलोंमें रहने लगे ॥२७४॥ गौतम-स्वामी कहते हैं कि हे भव्यजन्तो ! 'शुभ कर्मका फल अच्छा होता है और अशुभ कर्मका फल अशुभ होता है' ऐसा जानकर विद्वज्जनोंके द्वारा प्रशंसनीय वह कार्य करो जिससे कि सूर्यसे भी अधिक कान्तिके धारक होओ ॥२७५॥

इस प्रकार आर्पणामसे प्रसिद्ध रविपेरणाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमें रामलक्ष्मणकी स्वयंवरमें रत्नमालाकी प्राप्ति होनेका वर्णन करनेवाला अष्टाईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२८॥

एकोनत्रिंशत्तमं पर्व

आपाहवलाष्टम्याः प्रभृत्यथ नराधिपः । महिमानं जिनेन्द्राणां प्रयतः कर्तुमुद्यतः ॥१॥
 सर्वाः प्रियास्तदा तस्य तनया बान्धवस्तथा । त्रिधातुं जिनविम्बानामिति कर्तव्यमुद्यताः ॥२॥
 पिनष्टि पञ्चवर्णानि कश्चिच्चूर्णानि सादरः । कश्चिद् ग्रथ्नाति मात्यानि लब्धवर्णः सुभक्तियु ॥३॥
 वासत्युदकं कश्चिद्रवयत्यपरः क्षितिम् । पिनष्टि परमान् गन्धान् कश्चिद्द्रुविद्यच्छर्वान् ॥४॥
 द्वारशोभां करोत्यन्यो वासोभिरतिभासुरैः । नानाधातुरसैः कश्चित्कुरुते भित्तिमण्डनम् ॥५॥
 एवं जनः परां भक्तिं बहून् प्रमदपूरितः । जिनपूजासमाधानाद् पुण्यमार्जयदुत्तमम् ॥६॥
 ततः सर्वसम्पत्तीनां कृतसम्भारसन्निधिः । चकार स्वपन राजा जिनानां त्र्यनार्दितम् ॥७॥
 अष्टाहोपोषितं कृत्वाभिवेकं परमं नृपः । चकार महतीं पूजां पुण्यैः सहजकृत्रिमैः ॥८॥
 यथा नन्दीश्वरे द्वीपे शक्रः सुरसमन्वितः । जिनेन्द्रमहिमानन्दं कुरुते तद्देव सः ॥९॥
 ततः सदनयातानां महिषीणां नराधिपः । प्रजिघाय महापूतं शान्तिगन्धोदकं कृती ॥१०॥
 तिसृणां तरुणीक्रीमिनीतं शान्त्युदकं द्रुतम् । प्रतीता मस्तके चक्रुस्ततो दुरितनोदनम् ॥११॥
 वृद्धकन्तुकिनो हस्ते दत्तं जिनवरोदकम् । अप्राप्य सुप्रभा क्रोपं शोकं च परमं गता ॥१२॥
 अचित्तयच्च नो साध्वी बुद्धिरेषा महीश्रुतः । यदेता मानिता नाह शान्तिवारिविसर्जनात् ॥१३॥

अथानन्तर आपाह शुक्ल अष्टमीसे आष्टाहिक महापर्व आया । सो राजा दशरथ जिनेन्द्र भगवान्की महिमा करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१॥ उस समय उसकी समस्त स्त्रियाँ, पुत्र तथा बान्धवजन जिन-श्रतिमाओके विषयमे निम्नाङ्कित कार्य करनेके लिए तत्पर हुए ॥२॥ कोई मण्डल धनानेके लिए वड़े आदरसे पाँच रङ्गके चूर्ण पीसने लगा, तो नाना प्रकारकी रचना करनेमे निपुण कोई मालाएँ गूँथने लगा ॥३॥ कोई जलको सुगन्धित करने लगा, कोई पृथिवीको सींचने लगा, कोई नाना प्रकारके उत्कृष्ट सुगन्धित पदार्थ पीसने लगा ॥४॥ कोई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रोंसे जिनमन्दिरके द्वारकी शोभा करने लगा और कोई नाना धातुओंके रससे दीवालोंको अलंकृत करने लगा ॥५॥ इस प्रकार उत्कृष्ट भक्तिको धारण करनेवाले एवं आनन्दसे परिपूर्ण भक्तजनोंने जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर उत्तम पुण्यका संचय किया ॥६॥

तदनन्तर सब प्रकारकी उत्तमोत्तम सामग्रियोंको एकत्र कर राजा दशरथने जिसमे तुरहीका विशाल शब्द हो रहा था ऐसा जिनेन्द्र भगवान्का अभिवेक किया ॥७॥ आठ दिनका उपवास कर उत्कृष्ट अभिवेक किया तथा सहज अर्थात् स्वाभाविक और कृत्रिम अर्थात् स्वर्ण रजत आदिसे बनाये हुए पुष्पोसे महापूजा की ॥८॥ जिस प्रकार इन्द्र देवोंके साथ नन्दीश्वर द्वीपमे जिनेन्द्रपूजा करता है उसी प्रकार राजा दशरथने भी सब परिवारके साथ जिनेन्द्रपूजा की ॥९॥ तदनन्तर जब रानियों घर पहुँच गई तब बुद्धिमान राजा दशरथने सबके लिए महा पवित्र, शान्तिकारक गन्धोदक पहुँचाया ॥१०॥ सो तीन रानियोंके लिए तो वह गन्धोदक तरुण स्त्रियों ले गई इसलिए जल्दी पहुँच गया और उन्होंने पापको नष्ट करनेवाला वह गन्धोदक शीघ्र ही बड़ी श्रद्धासे मस्तकपर धारण कर लिया ॥११॥ परन्तु सुप्रभाके लिए वृद्ध कञ्चुकीके हाथ भेजा था इसलिए उसे शीघ्र नहीं मिला अतः वह अत्यधिक क्रोध और शोकको प्राप्त हुई ॥१२॥ वह विचार करने लगी कि राजाकी यह बुद्धि ठीक नहीं है जिससे उन्होंने मुझे

को वात्र नृपतेर्दोषः प्रायः पुण्यं पुरा मया । नार्जितं येन सम्प्राप्ता^१ निकासिदमिदीदृशम् ॥१४॥
 पुण्यवत्य इमाः श्लाघ्या महासौभाग्यसंयुताः । पूतं यासां जिनद्राम्बु प्रीत्या प्रहितसुत्तमम् ॥१५॥
 अपमानेन दग्धस्य हृदयस्यास्य मेऽधुना । शरणं मरणं मन्ये तापः शाम्यति नान्यथा ॥१६॥
 विशाखसंज्ञमाहूय भाण्डागरिकमेककम् । जगद् भद्रं नाख्येयं त्वयेदं वस्तु कस्यचित् ॥१७॥
 विपेणात्यन्तपरमं मम जातं प्रयोजनम् । तदानय द्रुतं भक्तिर्मयि चेत्तव विद्यते ॥१८॥
 गत्वा स यावदन्विवर्ष्यंश्चिरयत्यतिशंकितः । तावत्तल्पगृहं गत्वा सातिष्ठत् सस्तगात्रिका ॥१९॥
 नृपतिश्चागतो वीषय प्रियास्तित्तस्तथा विना । समन्विव्यागमत्तस्याः समीपं त्वरितक्रमः ॥२०॥
 अपश्यच्च मनश्चौरीमशुकच्छत्रविग्रहाम् । अनादरेण सत्तल्पे शक्यदृष्टिमिव स्थिताम् ॥२१॥
 गृहाण तदिदं^३ देवि श्वेडमित्यवदच्च सः । प्रेष्यो दशरथश्चैतं देशं प्राप्याश्रणोद् ध्वनिम् ॥२२॥
 हा देवि किमिदं मुग्धे प्रारब्धमिति च ब्रुवन् । स निराकरोद्^४ भुजिष्यन्तं तत्तल्पे चोपविष्टवान् ॥२३॥
 राजानमागतं ज्ञात्वा सहसा सन्नपोत्थिता । चित्ताहुपवित्रिचन्ती कान्तेनाङ्गे निवेशिता ॥२४॥
 अवाचि च प्रिये कस्मात् कोपं प्राप्ता त्वमीदृशम् । सर्वतो दयिते येन जीवितेऽप्यसि निस्पृहा ॥२५॥
 सर्वतो मरणं दुःखमन्यस्माद्दुःखतः परम् । प्रतिकारस्तु यद्यस्य तद्दुःखं वद कीदृशम् ॥२६॥
 त्वं मे हृदयसर्वस्वं दयिते वद कारणम् । ज्ञेयनापनय^५ यस्य करिष्यामि वरानने ॥२७॥
 श्रुत वेत्सि जिनेन्द्राणां सदसद्गतिकारणम् । तथापि मतमीदृक् ते धिक्कोपं ध्वान्तसुत्तमम् ॥२८॥

गन्धोदक भेजकर सम्मानित नहीं किया ॥१३॥ अथवा इससे राजाका क्या दोष है ? प्रायः-
 कर मैने पूर्व भवमे पुण्यका संचय नहीं किया होगा जिससे मै ऐसे तिरस्कारको प्राप्त हुई हूँ ॥१४॥
 ये तीनों पुण्यवती तथा महो सौभाग्यसे सम्पन्न हैं जिनके लिए राजाने प्रेमपूर्वक पवित्र एवं
 उत्तम गन्धोदक भेजा है ॥१५॥ अपमानसे जले हुए मेरे इस हृदयके लिए इस समय मरण ही
 शरण हो सकता है ऐसा मै मानती हूँ । अन्य प्रकारसे मेरा सन्ताप शान्त नहीं हो
 सकता ॥१६॥ यह विचार कर उसने विशाख नामक एक भाण्डारीसे कहा कि हे भद्र ! तुम यह
 बात किसोसे कहना नहीं ॥१७॥ मुझे विपकी अत्यन्त आवश्यकता आ पड़ी है । इसलिये यदि
 तेरी मुझमे भक्ति है तो शीघ्र ही ला दे ॥१८॥ विषके नामसे अत्यन्त शङ्कित होता हुआ भाण्डारी
 उसे खोजता हुआ जब तक कुछ विलम्ब करता है तबतक वह शयनगृहमे जाकर तथा शरीर
 को शिथिल कर पड़ रही ॥१९॥ इतनेमें ही राजा आ गये और उसके बिना तीन प्रियाओंको
 देखकर खोज करते हुए शीघ्र ही उसके समीप जा पहुँचे ॥२०॥ उन्होंने देखा कि मनको चुराने-
 वाली सुप्रभा वस्त्रसे शरीर ढँककर शय्यापर अनादरसे इन्द्रधनुषके समान पड़ी है ॥२१॥
 इसी समय उस भाण्डारीने आकर कहा कि हे देवि ! यह विष लो । भाण्डारीके इस शब्दको
 वहाँ जाकर राजाने सुन लिया ॥२२॥ सुनते ही राजाने कहा कि हे देवि ! यह क्या है ? मूर्खे !
 यह क्या प्रारम्भ कर रक्खा है ? ऐसा कहते हुए राजाने उस भाण्डारीको वहाँसे दूर हटाया
 और स्वयं सुप्रभाकी शय्यापर बैठ गये ॥२३॥ राजाको आया जान वह लजाती हुई सहसा
 उठी और पृथिवीपर बैठना चाहती थी कि उन्होंने उसे गोदमे बैठा लिया ॥२४॥ राजाने कहा
 कि प्रिये ! तुम इस प्रकारके क्रोधको क्यों प्राप्त हुई हो जिससे कि सबसे अधिक प्रिय अपने
 जीवनसे भी निःस्पृह हो रही हो ॥२५॥ मरणका दुःख सब दुःखोसे अधिक दुःख है । सो जिस
 अन्य दुःखसे दुःखी होकर तुमने मरणको उसका प्रतिकार बनाया है वह दुःख कैसा है यह
 तो बताओ ॥२६॥ हे दयिते ! तुम मेरे हृदयकी सर्वस्व हो, अतः हे समुक्ति ! शीघ्र ही वह कारण
 बताओ जिससे मैं उसका प्रतिकार कर सकूँ ॥२७॥ सुगति और दुर्गतिके कारणोका निरूपण करने-

प्रसादं देवि कोऽद्यापि कोपस्यावसरस्तव । प्रसादध्वनिपर्यन्तप्रकोपा हि महास्त्रियः ॥२६॥
 तयोक्तं नाथ क' कोपस्त्वयि मे दुःखमीदृशम् । समुत्पन्नं न यद्याति शान्ति पञ्चतया विना ॥३०॥
 देवि तत्कतरदुःखमित्युक्तैवमभाषत । शान्त्यम्बुदानमन्यासां मम नेति कुतो वद ॥३१॥
 दृष्टेन केन कार्येण हीनाहं विदिता त्वया । यद्वञ्चितपूर्वास्मि वञ्चिता पण्डितायुना ॥३२॥
 यावदेवं वदत्येया तावदायाति कञ्चुकी । देवि जैनाम्बु नाथेन तुभ्यं दत्तमिति ब्रुवन् ॥३३॥
 अत्रान्तरे प्रियाः प्राप्ता इतरास्तामिदं जगुः । अयि मुग्धे प्रसादस्य स्थाने प्राप्तासि किं ह्या ॥३४॥
 पश्यास्माक जुगुप्साभिर्दासीभिर्जलमाहृतम् । वरिष्ठेन पवित्रेण तव कञ्चुकिनामुना ॥३५॥
 ईदृशा नाम नाथस्य सन्प्रीतिर्भवती प्रति । यतोऽयं जनितो भेदः किमकाण्डे^१ प्रकृत्यसि ॥३६॥
 प्रसीद दयितस्यास्य लघ्नस्यैव प्रयत्नतः । प्रणयादपराधेऽपि ननु तुत्यन्ति योषित^२ ॥३७॥
 दयिते क्रियते यावत्कोपो दाहणमानसे । तावत्संसारसौख्यस्य विघ्न जानीहि शोभने ॥३८॥
 विपादयितुमस्माकमात्मानमुचितं ननु । किञ्च जिनचन्द्राणां^३ वारिणा नः प्रयोजनम् ॥३९॥
 सपत्नीसिरपि प्रीतमिति सान्त्वितया तथा । चक्रे शान्त्युदकं मूर्ध्नि रोमाञ्चाञ्चितगात्रया ॥४०॥
 ततः प्रकृपितोऽवोचद् राजा कञ्चुकिनं तकम् । व्याक्षेपः क्व तु ते जातो वदापसदं^४ कञ्चुकिन् ॥४१॥
 ततो भयाद्विशेषेण कम्पिताखिलविग्रहः । कञ्चुकी कथमप्युचे^५ चित्तिजानुशिराङ्गलिः ॥४२॥

वाले जिनशास्त्रको तुम जानती हो फिर भी तुम्हारी ऐसी वृद्धि क्यों हो गई ? इस प्रगाढ़ अन्धकारस्वरूप क्रोधको धिक्कार हो ॥२८॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ । इस समय भी क्या तुम्हारे क्रोधका कोई अवसर है क्योंकि जो महास्त्रियों होती हैं उनका क्रोध प्रसाद शब्द सुनने तक ही रहता है ॥२९॥

सुप्रभाने कहा कि हे नाथ ! आप पर मेरा क्या क्रोध हो सकता है ? पर मुझे ऐसा दुःख उत्पन्न हुआ है कि जो मरणके बिना शान्त नहीं हो सकता ॥३०॥ राजाने पूछा कि हे देवि ! वह कौन-सा दुःख है ? इसके उत्तरमें सुप्रभाने कहा कि आपने अन्य रानियोंके लिए तो गन्धोदक भेजा पर मुझे क्यों नहीं भेजा सो कहिए ? ॥३१॥ आपने ऐसा कौन-सा कार्य देखा है जिससे मुझे हीन समझ लिया है । हे सुविज्ञ ! जिसे पहले कभी धोखा नहीं दिया उसे आज क्यों धोखा दिया गया ? ॥३२॥ सुप्रभा जब तक यह सब कह रही थी कि तब तक वृद्ध कञ्चुकी आकर यह कहने लगा कि हे देवि ! राजाने तुम्हें यह गन्धोदक दिया है ॥३३॥ इसी बीचमे दूसरी रानियों आकर उससे कहने लगीं कि अरी भोली ! तू प्रसन्नताके स्थानको प्राप्त है फिर क्या कह रही है ? ॥३४॥ देख, हम लोगोंके लिए तो निन्दनीय दासियों गन्धोदक लाई है पर तेरे लिए यह श्रेष्ठ एवं पवित्र कञ्चुकी लाया है ॥३५॥ तेरे प्रति स्वामी की ऐसी उत्तम प्रीति है इसीसे यह भेद हुआ है फिर असमयमें क्यों कुपित हो रही है ? ॥३६॥ फिर स्वामी तेरे पीछे वड़े प्रयत्नसे लग रहे हैं । अतः इनपर प्रसन्न हो क्योंकि स्नेहके कारण स्त्रियों अपराध होनेपर भी सन्तुष्ट ही रहती हैं ॥३७॥ हे कठोरहृदये ! जब तक पतिपर क्रोध किया जाता है तब तक हे शोभने ! सांसारिक सुखमे विघ्न ही जानना चाहिए ॥३८॥ वास्तवमें तो हमलोगोंका मरना उचित था पर हमें तो गन्धोदकसे प्रयोजन था । इसलिए सब अपमान सहन कर लिया ॥३९॥ इस प्रकार सपत्नियोंने भी जब उसे सान्त्वना दी तब उसका शरीर रोमाञ्चसे सुशोभित हो गया और उसने गन्धोदक मस्तकपर धारण किया ॥४०॥

तदनन्तर राजाने कुपित होकर उस कञ्चुकीसे कहा कि हे नीच कञ्चुकी ! वता तुम्हे यह विलम्ब कहाँ हुआ ? ॥४१॥ भयसे जिसका समस्त शरीर विशेषकर कर्णने लगा था ऐसा

१ हृदये स्थापिताः कृच्छ्रादान्नीता वक्त्रगोचरम् । ओष्ठे प्रणिहिता वर्णा व्यलीन्तेऽस्य भूरिशः ॥४३॥
 २ खलकारं मुहुः कुर्वन् स्फुरयन्नधरो^३ मुहुः । हृदय संस्पृशन् कृच्छ्राहुपनीतेन पाणिना ॥४४॥
 पश्चान्मस्तकभागस्थरचन्द्रांशुसितमूर्द्धजः । मन्दवाताहतश्वेतचामरोपमकूर्चकः ॥४५॥
 मन्त्रिकाच्छदनच्छातव्यवित्तरोहितकैकसः । धवलभ्रूवलच्छन्नशोणप्रभनिरीक्षणः ॥४६॥
 अभिलक्ष्यशिराजालसंवेष्टितचलत्तनुः । असम्पूरितपुस्ताभः कृच्छ्राद्वासोऽपि धारयन् ॥४७॥
 हिमाहत इवात्यर्थं कपोलौ कम्पयन् श्लथौ । विवक्षया मुहुर्जिह्वां स्थानानि स्खलितान्यन् ॥४८॥
 अप्येकाक्षरनिष्पत्ति मन्यमानो महोत्सवम् । वर्णान्तराभिसंधानाद् वर्णमन्य ससुचरन् ॥४९॥
 संधानवर्जितान् वर्णान् परमश्रमकारिणः । कण्टकानिव कृच्छ्रेण मुमोच परिजर्जरान् ॥५०॥
 जराधीनस्य मे नाथ किमागो भृत्यवत्सल । सम्प्राप्तोऽसि यतः कोपं देव विज्ञानभूषण ॥५१॥
 पुरा करिकाकारभुजं कर्कशमुन्नतम् । पीनोत्तुङ्गं महोरस्कमालानसदृशोरुकम् ॥५२॥
 आसोन् मम वपुः शैलराजकूटसमाकृति । कर्मणामिति चित्राणां कारणं परमोदयम् ॥५३॥
 अभूतां चूर्णने देव शक्तौ हृस्तिकपाटयोः । करौ पाण्डिप्रहारश्च पर्वतस्यापि भेदकः ॥५४॥
 उच्चावचां क्षिति वेगात् पुराहं परिलंबयन् । राजहंस इवावाते नाथ स्थानमभीप्सितम् ॥५५॥
 आसीत् दृष्टेरवष्टमस्तादृशो मम पार्थिव । आमन्येऽपि क्षित्तेरीशं यादृशेन तृणोपमम् ॥५६॥

कञ्चुकी पृथिवीपर घुटने और शिरपर अञ्जलि रखकर किसी तरह बोला ॥४२॥ उसके हृदय में जो अक्षर थे वे मुख तक बढ़ी कठिनाईसे आये और जो ओठोपर रखे गये थे वे बार-बार वहीं के वहीं चिलीन हो गये ॥४३॥ वह बार-बार खकारता था, बार-बार ओठ चलाता था, और बढ़ी कठिनाईसे उठकर पांस ले जाये गये हाथसे हृदयका स्पर्श करता था ॥४४॥ उसके मस्तकके पिछले भागमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान सफेद बाल स्थित थे तथा सफेद चमरके समान उसकी दाढ़ीके बाल मन्द-मन्द वायुसे हिल रहे थे ॥४५॥ मक्खीके पङ्कके समान पतली त्वचासे उसकी हड्डियाँ ढँकी हुई थीं, उसके लाल-लाल नेत्र सफेद-सफेद भ्रुकुटियोंकी बलसे आच्छादित थे ॥४६॥ उसका चञ्चल शरीर स्पष्ट दिखाई देनेवाली नसोंके समूहसे वेष्टित था, भिष्टीके अधबने खिलौनेके समान उसकी आभा थी। वह वस्त्र भी बढ़ी कठिनाईसे धारण कर रहा था, हिमसे ताड़ित हुएके समान दोनों शिथिल कपोलोंको कम्पित कर रहा था, बोलनेकी इच्छासे लड़खड़ाती जिह्वाको तालु आदि स्थानोपर बढ़ी कठिनाईसे ले जा रहा था, यदि एक अक्षरका भी उच्चारण कर लेता था तो उसे महान् उत्सव मानता था। कुछ वर्ण-बोलना चाहता था पर उसके बदले कुछ दूसरे ही वर्ण बोल जाता था, जिनके बोलनेका विचार ही नहीं था ऐसे बहुत भारी श्रमको करनेवाले दूटे-फूटे वर्णोंको वह जीर्ण-शीर्ण कोंटेके समान बढ़ी कठिनाईसे छोड़ता था अर्थात् उसका उच्चारण करता था ॥४७-४८॥ हे भृत्यवत्सल, स्वामिन! मुझ बुढ़ेका क्या अपराध है? जिससे कि विज्ञानरूपी आभूषणको धारण करनेवाले हे देव! आप क्रोधको प्राप्त हुए हो ॥५१॥ पहले मेरे शरीरकी भुजाएँ हाथीकी सूँड़के समान थीं, शरीर अत्यन्त कठोर और ऊँचा था। सीना विशाल था, जह्वाएँ आलान अर्थात् हाथी बाँधनेके खम्भेके समान थीं, मेरा यह शरीर सुमेरुके शिखरके समान आकृति वाला था, तथा अनेक अद्भुत कार्योंका सशक्त कारण था ॥५२-५३॥ हे देव! हमारे ये हाथ पहले सुदृढ़ किवाड़ोंके चूर्ण करनेमें समर्थ थे, हमारे पैरकी ठोकर पर्वतके भी टुकड़े कर डालती थी, ऊँची-नीची भूमिको मैं वेगसे लाँघ जाता था, हे स्वामिन! मैं राजहंस पत्नीके समान मन-चाहे स्थानको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता था ॥५४-५५॥ हे राजन्! मेरी दृष्टिमें इतना बल था कि

अङ्गनालनदृष्टीनां मनसां स महास्थिरम् । आलानमेतदासीन्मे शरीरं चारुविभ्रमम् ॥५७॥
 लालितं परमैर्भोगैः प्रसादेन पितुस्तव । विसंघटितमेतन्मे कुमित्रमिव साम्प्रतम् ॥५८॥
 अथत यः पुरा शक्तिं रिपुदारणकारिणीम् । करेण यष्टिमालम्ब्य तेन आम्ब्यामि साम्प्रतम् ॥५९॥
 विक्रान्तपुरुषाकृष्टशरासनसमं मम । पृष्ठास्थि स्थितमाक्रान्ते मूर्च्छिं मृत्योरिवान्निष्ठा ॥६०॥
 दन्तस्थानभववा वर्णाश्रिरं नवापि गता मम । ऊष्मवर्णोष्मणा तापमशक्ता इव सेवितुम् ॥६१॥
 आलम्बे यदि नो यष्टिमेतां प्राणगरीयसीम् । क्षितौ पतेत्ततः पक्वमिदं हतशरीरकम् ॥६२॥
 बलीनां वर्तते वृद्धिरुत्साहस्य परिषयः । राजन् श्वसिमि देहेन यदेतेन तदद्भुतम् ॥६३॥
 अद्यश्वीनममुं कार्यं जरया जर्जरीकृतम् । नाथ धर्तुं न शक्नोमि बाह्ये वस्तुनि का कथा ॥६४॥
 नितान्तपट्टताभाक्षिं हृषीकाणि पुरा मम । संप्रत्युद्देशमात्रेण स्थितानि जडचेतसः ॥६५॥
 पदमन्यत्र यच्छामि पतत्यन्यत्र दुर्घटम् । श्याममेवाखिलं दृष्ट्वा पश्यामि धरणीतलम् ॥६६॥
 गोत्रक्रमसमायातमिदं राजकुलं मम । यतः शक्नोमि न त्यक्तुमपि प्रायेदृशीं दशाम् ॥६७॥
 पक्व फलमिवैतन्मे शरीरं कापि वासरे । नेष्यत्याहारतां मृत्युर्मर्मरच्छदुनोपमाम् ॥६८॥
 न तथासन्नमृत्योर्मे स्वामिन् संजायते भयम् । भवच्चरणसंसेवाविरहाद् भाविनो यथा ॥६९॥
 व्याचेपो मे कुतः कश्चिद्व्यतस्तनुमीदृशीम् । भवदाज्ञा प्रतीच्यैव यस्य जीवितकारणम् ॥७०॥

जिससे मैं राजाको भी ठण्ठके समान तुच्छ समझता था ॥६६॥ अत्यन्त स्थविर और सुन्दर विलाससे युक्त मेरा यह शरीर स्त्रीजनोंकी दृष्टि और मनको बांधनेके लिए आलानके समान था ॥६७॥ आपके पिताके प्रसादसे मैंने इस शरीरका उत्तमोत्तम भोगोंसे लाड़-प्यार किया था पर इस समय कुमित्रके समान यह विघट गया है ॥६८॥ मेरा जो हाथ पहले शत्रुओंको विदारण करनेकी शक्ति रखता था अब उसी हाथसे लाठी पकड़कर चलता हूँ ॥६९॥ मेरी पीठकी इड्डी शूरवीर मनुष्यके द्वारा खींचे हुए धनुषके समान मुक्त गई है और मेरा शिर यमराजके पैरसे आक्रान्त हुएके समान नष्ट हो गया है ॥६०॥ दाँतोंके स्थानसे उच्चरित होनेवाले मेरे वर्ण (लृ तवर्ग ल और स) कहीं चले गये हैं सो ऐसा जान पड़ता है मानो ऊष्मवर्णों (श ष स ह) की ऊष्मा अर्थात् गरमीसे उत्पन्न सन्तापको सहनेमें असमर्थ होकर ही कहीं चले गये हैं ॥६१॥ यदि मैं प्राणोंसे भी अधिक प्यारी इस लाठीका सहारा न लेऊँ तो यह पका हुआ अधम शरीर पृथ्वीपर गिर जावे ॥६२॥ शरीरमें बलि अर्थात् सिकुड़नोंकी वृद्धि हो रही है और उत्साहका हास हो रहा है । हे राजन् ! इस शरीरसे मैं सौंसे ले रहा हूँ यही आश्चर्यकी बात है ॥६३॥ हे नाथ ! आज-कलमें नष्ट हो जानेवाले इस जराजर्जरित शरीरको ही धारण करनेके लिए मैं समर्थ नहीं हूँ फिर दूसरी बाह्य वस्तुको तो क्या ही क्या है ? ॥६४॥ पहले मेरी इन्द्रियों अत्यन्त सामर्थ्यको प्राप्त थीं पर इस समय नाममात्रको ही स्थित है मेरा मन भी जड़रूप हो गया है ॥६५॥ पैर अन्य स्थानपर रखता हूँ पर सम्भल नहीं सकनेके कारण अन्य स्थानपर जा पड़ता है । मैं समस्त पृथ्वीतलको अपनी दृष्टिसे काला-ही-काला देखता हूँ ॥६६॥ चूँकि यह राजकुल मेरी वंश परम्परासे चला आ रहा है इसलिए ऐसी दशाको प्राप्त होकर भी इसे छोड़नेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥६७॥ मेरा यह शरीर पके हुए फलके समान है सो यमराज सूखे पत्रके समान इसे अपना आहार बना लेगा ॥६८॥ हे स्वामिन् ! मुझे निकटवर्ती मृत्युसे वैसा भय नहीं उत्पन्न होता है जैसा कि भविष्यमें होनेवाली आपके चरणोंकी सेवाके अभावसे हो रहा है ॥६९॥ आपकी सम्माननीय आज्ञा ही जिसके जीवित रहनेका कारण है ऐसे इस शरीरको धारण करते हुए मुझे विलम्ब अथवा कार्यान्तरमें

स त्वं नाथ जराधीनं मम ज्ञात्वा शरीरकम् । कोपमर्हसि नो कुतुं धीर धत्स्व प्रसन्नताम् ॥७१॥
 निशम्य तद्ब्रुवो राजा गण्डं कुण्डलमण्डितम् । वामे करतले न्यस्य चिन्तामेवमुपागमत् ॥७२॥
 जलबुद्बुदनितसार कष्टमेतच्छरीरकम् । सन्ध्याप्रकाशसकाशं यौवनं बहुविभ्रमम् ॥७३॥
 सौदाभिनीत्वरस्यास्य कृते देहस्य मानवाः । आरम्भन्ते न किं कृत्यं नितान्तं दुःखसाधनम् ॥७४॥
 अतिमत्तान्नापाहमङ्गतुल्या । प्रतारकाः । भोगिभोगसमाभोगास्तापोपचयकारिणः ॥७५॥
 विपयेषु यदायत्तं दुःप्रापेषु विनाशिषु । दुःखमेतद्विमूढानां सुखत्वेनात्रभासते ॥७६॥
 आपातरमणीयानि सुखानि विषयादयः । किंपाकफलतुल्यानि चित्रं प्रार्थयते जनः ॥७७॥
 पुण्यवन्तो महोत्साहाः प्रबोधं परमं गताः । विपवद् विषयान् दृष्ट्वा ये तपस्यन्ति सज्जनाः ॥७८॥
 कदा नु विषयांस्त्यक्त्वा निर्गतः स्नेहचारकात् । आचरिष्यामि जैनेन्द्रं तपो निर्द्वैतिकारणम् ॥७९॥
 सुखेन पालिता क्षोणी मुक्ता भोगा यथोचिताः । विक्रान्ता जनिता पुत्राः किमद्यापि प्रतीक्ष्यते ॥८०॥
 अन्वयव्रतमस्माकमिदं अत्सूनुवे श्रियम् । दत्त्वा संवेगिनो धीराः प्रविशन्ति तपोवनम् ॥८१॥
 चिन्तयित्वाप्यसावेवं राजा कर्मानुभावतः । भोगेषु शिथिलासक्तिर्गृह एव रतिं ययी ॥८२॥
 यत्प्राप्तस्य यदा येन यत्र यावद्यतोऽपि वा । तत्प्राप्यते तदा तेन तत्र तावत्ततो ध्रुवम् ॥८३॥
 कियत्पि ततोऽतीते काले मगधसुन्दर । पर्यटन् विधिना क्षोणीसङ्घेन महता वृतः ॥८४॥

आसङ्ग कैसे हो सकता है ? ॥७०॥ इसलिए हे नाथ ! मेरे शरीरको जराके आधीन जानकर आप क्रोध करनेके योग्य नहीं है । हे धीर ! प्रसन्नताको धारण करो ॥७१॥

कञ्चुकीके वचन सुनकर राजा कुण्डलसे सुशोभित कपोलको वाम करतलपर रखकर इस प्रकार विचार करने लगे ॥७२॥ कि अहाँ बड़े कष्टकी बात है कि यह अधम शरीर पानोके बबूलेके समान निःसार है और अनेक विभ्रमों—विलासोंसे भरा यह यौवन सन्ध्याके प्रकाशके समान भङ्गुर है ॥७३॥ बिजलीके समान नष्ट हो जानेवाले इस शरीरके पीछे मनुष्य न जाने अत्यन्त दुःखके कारणभूत क्या-क्या कार्य प्रारम्भ नहीं करते हैं ? ॥७४॥ ये भोग अत्यन्त मत्त स्त्रीके कटाक्षोंके समान ठगनेवाले हैं, सौंपके फनके समान भयङ्कर हैं और सन्तापकी वृद्धि करने वाले हैं ॥७५॥ कठिनाईसे प्राप्त होने योग्य विनाशी विषयोंमें जो दुःख प्राप्त होता है वह मूर्ख प्राणियोंके लिए सुख जान पड़ता है ॥७६॥ ये जो विषयादिक हैं वे प्रारम्भमें ही मनोहर सुख रूप जान पड़ते हैं फिर भी आश्चर्य है कि लोग किम्पाक फलके समान इन सुखोकी चाह रखते हैं ॥७७॥ जो सज्जन इन विषयोंको विषके समान देखकर तपस्या करते हैं वे पुण्यात्मा महोत्साहवान् तथा परम प्रबोधको प्राप्त हैं ऐसा समझना चाहिए ॥७८॥ मैं कब इन विषयोंको छोड़ कर तथा स्नेह रूपी कारागृहसे छूटकर मोक्षके कारणभूत जिनेन्द्र-प्रोक्त तपका आचरण करूँगा ॥७९॥ सुखसे पृथिवीका पालन किया, यथायोग्य भोग भोगे, और शूरवीर पुत्र उत्पन्न किये फिर अब किस बातकी प्रतीक्षा की जा रही है ॥८०॥ यह हमारा वंशपरम्परागत व्रत है कि हमारे धीर वीर वंशज विरक्त हो पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तपोवनमें प्रवेश कर जाते हैं ॥८१॥ राजा दशरथने इस प्रकार विचार भी किया और भोगोंमें आसक्ति कुछ शिथिल भी हुई तो भी कर्मोंके प्रभावसे वे घरमें ही प्रीतिको प्राप्त होते रहे अर्थात् गृहत्याग करनेके लिए समर्थ नहीं हो सके ॥८२॥ सो ठीक ही है क्योंकि जिस समय जहाँ जिससे जो और जितना कार्य होना होता है उस समय वहाँ उससे वह और उतना ही कार्य प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥८३॥

अथानन्तर गौतमस्वामी कहते हैं कि हे मगध देशके आभूषण ! कितना ही काल

सर्वभूतहितो नाम सर्वभूतहितो मुनिः । नगरां तां समायासीन्मनःपर्ययवेदकः ॥८५॥
 १ सरस्वाश्च तदे कालं श्रान्तं सद्गमतिष्ठिपत् । पितेव पालयन् न्यस्तकायवाद्मानसक्रियः ॥८६॥
 प्राग्भागेषु २ स्थिताः केचिद् गुहास्वन्ये तपस्विनः । केचिद् विविक्तगोहेषु केचिज्जैन्द्रवेशरमसु ॥८७॥
 नगानां कोदरेष्वन्ये यथाशक्तिसमुद्यताः । तपांसि चक्रुराचार्यादधिगम्यानुमोदनाम् ॥८८॥
 आचार्यस्तु विविक्तैर्षीं पुर्वा उत्तरपश्चिमात् ३ तपःसमुचितक्षेत्रं विशालमतिसुन्दरम् ॥८९॥
 उद्यानं सुमहावृक्षं सयूथ इव वारणः । प्रविवेशात्मदशमो महेन्द्रोदयकीर्तनम् ४ ॥९०॥
 तस्मिन् शिलातले रम्ये विपुले निर्मले समे । पशूनामङ्गनानां च पण्डुकानां ५ च दुर्गमे ॥९१॥
 द्वेपिलोकविमुक्तैःसौ सूचमप्राणिनिवर्जिते । दूरवाटंमिशालस्य स्थितो नागतरोधः ॥९२॥
 मार्तण्डमण्डलच्छायाो गर्भारः प्रियदर्शनः । वर्षाः क्षपयितुं तस्यौ कर्माणि च महामनाः ॥९३॥
 सम्प्राप्तश्च महाकालः प्रवासिजनमैरवः । प्रस्फुरद्विद्युदुग्धोऽष्ट ६ क्रूरधाराधरध्वनिः ॥९४॥
 तर्जयन्निव लोकस्य कृततापं षिवाकरम् । भयात् पलायित कापि स्थूलधारान्धकारतः ॥९५॥
 जातसुर्वीतलं सम्यक् कञ्चुकेन कृतावृत्ति । बद्धन्ते सुमहानद्यो वीचिपातितरोधसः ॥९६॥
 जायते प्रासकम्पानां चित्तोद्भ्रान्तिः प्रवासिनाम् । अस्तिधाराप्रतं जैनो जनोऽसक्तं निषेवते ॥९७॥

व्यतीत होनेपर बड़े भारी संघसे आवृत्त, सर्व प्राणियोंका हित करनेवाले, तथा मनःपर्यय ज्ञानके धारक सर्वभूतहित नामा मुनि, विधिपूर्वक पृथिवीमे विहार करते हुए अयोध्या नगरीमे आये ॥८४-८५॥ जिनके मन वचन कायकी चेष्टा समीचीन थी और जो पिताकी तरह संघका पालन करते थे ऐसे उन मुनिराजने अपने थके हुए संघको सरयू नदीके किनारे ठहराया ॥८६॥ संघके कितने ही मुनि, आचार्य महाराजकी आज्ञा प्राप्त कर वनके सघन प्रदेशोमे, कितने ही गुफाओमे, कितने ही शून्य गुहोमे, कितने ही जिनमन्दिरोमे और कितने ही वृक्षोकी कोटरोमे ठहरकर यथा-शक्ति तपश्चरण करने लगे ॥८७-८८॥ तथा आचार्य एकान्त स्थानके अभिलाषी थे इसलिये उन्होंने नगरीकी उत्तर पश्चिम दिशा अर्थात् वायव्य कोणमे जो महेन्द्रोदय नामका उद्यान था उसमे यूथसहित गजराजके समान प्रवेश किया । उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें तपके योग्य अनेक स्थान थे, तथा वह विशाल, अत्यन्त सुन्दर और अनेक बड़े-बड़े वृक्षोसे सहित था । आचार्यके साथ अधिक भीड़ नहीं थी । अपने आपको मिलाकर कुल दश ही मुनिराज थे । वह उद्यान पशुओं, स्त्रियों और नपुंसकोंके लिए दुर्गम था, द्वेपी मनुष्योंसे रहित था तथा सूक्ष्म जन्तुओसे शून्य था । ऐसे उस उद्यानमे जिसकी शाखाएँ दूर-दूर तक फैल रही थी ऐसे एक नाग वृक्षके नीचे सुन्दर, विशाल, निर्मल एवं समान शिलातल पर विराजमान हुए ॥८९-९०॥ आचार्य महाराज सूर्यविम्बके समान देदीप्यमान, गर्भार, प्रियदर्शन और उदारहृदय थे तथा कर्मोंका क्षय करनेके लिए वर्षायोग लेकर वहाँ विराजमान हुए थे ॥९१-९३॥

तदनन्तर जो विदेशमे जाने वाले मनुष्योंको भय उत्पन्न करने वाला था, चमकती हुई बिजलीसे उग्र था तथा जिसमें आठों दिशाओके मेघोंकी कठोर गर्जना हो रही थी ऐसा वर्षाकाल आ पहुँचा । वह वर्षाकाल ऐसा जान पड़ता था मानो लोगोको संताप पहुँचाने वाले सूर्यको डोंट ही रहा हो और बड़ी मोटी धाराओके अन्धकारसे भयभीत हो कही भाग गया हो ॥९४-९५॥ पृथिवीतल ऐसा दिखाई देने लगा मानो उसने अच्छी तरह कञ्चुक ही धारण कर रक्खी हो । तरङ्गोसे तटोंको गिरानेवाली बड़ी-बड़ी नदियों बढने लगीं ॥९६॥ और जिन्हें कँप-कँपी छूट रही थी ऐसे प्रवासी मनुष्योंके चित्तमें भ्रान्ति उत्पन्न होने लगी । ऐसे वर्षाकालमें जैनी लोग निरन्तर

१ सरयूनद्याः । सरस्वाश्च म० । २ प्राग्भागेषु म० । ३ तपःसमुचितं क्षेत्रं म०, क० । ४ कीर्तितं व० । ५. नपुंसकानाम् । ६. मण्डलच्छाया गभीरप्रिय व० । ७. दुर्गमं म० ।

भूरिशोऽवग्रहांश्चक्रमुनयः चित्तिगोचराः । खयानलब्धयश्चैते पान्तु त्वा मगधाधिप ॥६८॥
 अथ भेरीनिनादेन शङ्खनिस्वनशोभिना । दीपान्ते कोशालानाथो विबुद्धो^२ भास्क्रो यथा ॥६९॥
 ताम्रचूडाः खरं रेणुदम्पतीनां विद्योजकाः । सारसाशक्रवाकाश्च सरसीषु नदीषु च ॥१००॥
 भेरीपणववीणाद्यैर्गीतैश्च सुमनोहरैः । व्यावृत्तश्चैत्यगोहेषु जायते विपुलो जनः ॥१०१॥
 विघूर्णमाननयनः सकलाहणलोचनः । विमुञ्चते जनो निद्रां प्रियामिव द्वियान्वितः ॥१०२॥
 प्रदीपाः पाण्डुरा जाता शशाङ्कश्च गतप्रभः । विकासं यान्ति पद्मानि कुसुदानि निमीलनम् ॥१०३॥
 ध्वस्ता ग्रहादयः सर्वे दिवाकरमरीचिभिः । जिनप्रवचनज्ञस्य वचनैर्वादिनो यथा ॥१०४॥
 एवं प्रभातसमये संपन्नोऽत्यन्तनिर्मले । कृत्वा प्रत्यङ्गकर्माणि नमस्कृत्याचितं जिनम् ॥१०५॥
 आरुह्य वांसितां भद्रां कुथापटविराजिताम् । शतैरवनिनाथानां सेव्यमानोऽमरत्विपाम् ॥१०६॥
 देशे देशे नमस्कृत्यैव मुनींश्चैत्यालयास्तथा । महेंद्रोदयमुदीशो ययौ छत्रोपशोभितः ॥१०७॥
 विष्टपानन्दजननीविभूतिस्तस्य भूभृतः । राजन् संवत्सरेणापि शक्यं कथयितुं न सा ॥१०८॥
 मुनिरायामत्रात्रः सन् गुणरत्नपयोनिधिः । श्रोत्रयोगौचरं तस्य संप्राप्तस्तत्र मण्डले ॥१०९॥
 करेणोरवतीर्यासौ राजामितपरिच्छदः । महाप्रमोदसंपूर्णो विवेशोद्यानमेदिनीम् ॥११०॥
 विन्यस्य भक्तिसम्पन्नः पादयोः कुसुमाञ्जलिम् । सर्वभूतहिताचार्यं शिरसा स नमोऽकरोत्^३ ॥१११॥

खड्गधारके समान कठोर व्रत धारण करते हैं ॥६७॥ जो पृथिवी पर विहार करते थे तथा जिन्हें आकाशमे चलनेकी ऋद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे मुनिराज उस समय अनेक प्रकारके नियम धारण करते थे । गौतमस्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! ये सब मुनिराज तुम्हारी रक्षा करें ॥६८॥

अथानन्तर प्रातःकाल होने पर शङ्खके शब्दसे सुशोभित भेरीके नादसे राजा दशरथ सूर्यके समान जागृत हुए ॥६९॥ स्त्रीपुरुषोंका वियोग करने वाले मुर्गे तथा सरोवर और नादियोंमें विद्यमान सारस और चक्रवाक पक्षी जोर-जोरसे शब्द करने लगे ॥१००॥ भेरी, पणव तथा वीणा आदिके मनोहर गीतोंसे आकर्षित हो बहुतेसे मनुष्य जिनमन्दिरोंमें उपस्थित होने लगे ॥१०१॥ जिस प्रकार लज्जासे युक्त मनुष्य प्रियाको छोड़ता है इसी प्रकार जिसके नेत्र घूम रहे थे तथा समस्त नेत्र लाल-लाल हो रहे थे ऐसा मनुष्य निद्राको छोड़ रहा था ॥१०२॥ दीपक पाण्डुवर्ण हो गये थे और चन्द्रमा फीका पड़ गया । कमल विकासको प्राप्त हुए और कुसुद निमीलित हो गये ॥१०३॥ जिस प्रकार जिनशास्त्रके ज्ञाता मनुष्यसे वादी परास्त हो जाते हैं उसी प्रकार सूर्यकी किरणोंसे समस्त ग्रह परास्त हो गये अर्थात् छिप गये ॥१०४॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल प्रभात काल होनेपर राजा दशरथने शरीर-सम्बन्धी कार्य कर पूजनीय जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार किया । तदनन्तर मनोहर मूलसे सुशोभित हस्तिनीपर सवार हो वह मुनिराजकी वन्दनाके लिए चला । देवोंके समान कान्तिको धारण करनेवाले हजार राजा उसकी सेवा कर रहे थे ॥१०५-१०६॥ इस प्रकार छत्रसे सुशोभित राजा दशरथ जगह-जगह मुनियों और जिनचैत्यालयोंको नमस्कार करता हुआ महेन्द्रोदय नामा उद्यानमे पहुँचा ॥१०७॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस समय राजा दशरथकी लोकको आनन्दित करनेवाली जो विभूति थी वह एक वर्षमें भी नहीं कही जा सकती है ॥१०८॥ गुणरूपी रत्नोंके सागर मुनिराज जब देशमें पधारे थे तभी उसके कानोमें यह समाचार आ पहुँचा था ॥१०९॥ तदनन्तर हस्तिनीसे उतरकर अपरिमित वैभवके धारक एवं महान् हर्षसे परिपूर्ण राजाने उद्यानकी भूमिमें प्रवेश किया ॥११०॥ तत्पश्चात् भक्तिसे युक्त हो चरणोंमें पुष्पाञ्जलि बिखेरकर उसने सर्वभूत आचार्यको शिरसे नमस्कार किया ॥१११॥

१. निशान्ते प्रमाते इत्यर्थः । २. विबुद्धो म० । ३. रराण, रेणुतः, रेणुः-शब्दं चक्रुः । ४. करिणीम् । ५. नमस्करोत् (?) म० ।

ततः सिद्धान्तसबद्धामश्रणोद् गुह्यतः कथाम् । अत्रुयोगान्यत्तीतानां भाविनां च महात्मनाम् ॥११२॥
लोकं द्रव्यानुभावांश्च युगानि च यथाविधि । स्थिति कुलकराणां च वंशाश्च बहुधागतान् ॥११३॥
पदार्थान् सर्वजीवादीन् पुराणानि च सादरम् । श्रुत्वा प्रणम्य संवेशं नगरं पार्थिवोऽविशत् ॥११४॥

मन्दाक्रान्ताच्छुन्दः

दत्त्वा स्थानं चणमवनिमृन्मंत्रिणां स चित्तीशां
कृत्वा जैनी गुणगणकथां विस्मयेवातिपूर्णः ।
अन्तर्गेहं प्रविशति तदा सज्जनादिक्रियाश्च
प्रीतश्रक्के विपुलविभवः स प्रजापत्यभिन्ध्यः ॥११५॥
सम्पूर्णानां परममहसा चन्द्रकान्ताननानां
चक्षुश्चेतोहरणनिपुणैर्विभ्रमैर्मण्डितानाम् ।
श्रीतुल्यानां परमविनयं विभ्रतानां प्रियाणां
पद्मालीनां रविरिव रति तत्र कुर्वन् स तस्थौ ॥११६॥

इत्यार्षे रविषेयाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथवैराग्यसर्वभूतहितागमाभिधानं
नाम एकोनत्रिंशत्तमं पर्व ॥२६॥

सिद्धान्तसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनी, अतीत अनागत महापुरुषोंके चरित सुने, लोक, द्रव्य, युग, कुलकरोकी स्थिति, अनेक वंश, जीवादिक समस्त पदार्थ और पुराणोंको बड़े आदरसे सुना । तदनन्तर संघके स्वामी सर्वभूतहित आचार्यको नमस्कार कर राजाने नगरमे वापिस प्रवेश किया ॥११२-११४॥

तदनन्तर निकटवर्ती मन्त्रियों और राजाओंसे जिनराज सम्बन्धी गुणोंकी कथा कर तथा उन्हें विदाकर आश्चर्यसे भरे हुए राजाने अन्तःपुरमे प्रवेश किया । वहाँ विपुल वैभव तथा प्रजापतिकी शोभा धारण करनेवाले राजाने बड़ी प्रसन्नतासे स्नानादि क्रियाएँ कीं ॥११५॥ तदनन्तर जो लच्छु कान्तिसे युक्त थीं, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखोंको धारण कर रही थीं, नेत्र और हृदयको हरनेमें निपुण विभ्रमोंसे सुशोभित थीं, लक्ष्मीके तुल्य थीं और परम विनयको धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियोंको, कमलिनियोंको सूर्यकी भोंति आनन्द उपजाता हुआ वह उसी अन्तःपुरमे ठहर गया ॥११६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेयाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें राजा दशरथके वैराग्य और सर्वभूत आचार्यके आगमनका वर्णन करनेवाला उन्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२६॥

त्रिंशत्तमं पर्व

ततः कालो गतः क्वापि घनौघडमरो नृप । प्रोद्यथौ पुष्कर धौतमण्डलाप्रसमप्रभम् ॥१॥
 पद्मोत्पलादिजलजपुष्पसुन्मादकृद् वमौ । साधूनां हृदयं यद्वद् बभूव विमल जलम् ॥२॥
 शरत्कालः परिप्राप्तः प्रकटं कुमुदहंसन् । नष्टमिन्द्रधनुर्जाता धरणी पंकवर्जिता ॥३॥
 विद्युत्संभवावायोग्यास्तुरलाशिसमत्विषः । क्षणमात्रमदृश्यन्त घनलेशा ववचिक्कचित् ॥४॥
 सन्ध्यालोकललामोष्ठौ ज्योत्स्नातिविमलाम्बरा । निशानवधुर्भाति चन्द्रचूडामणिस्तदा ॥५॥
 चक्रवाककृत्तच्छाया मत्तसारसनादिताः । वाप्यः पद्मवनभ्राम्भद्राजहंसैर्विराजिरे ॥६॥
 भामण्डलकुमारस्य सीतां चिन्तयतस्तु तत् । ऋतुनाचिन्तमप्येवं जातमशिसमं जगत् ॥७॥
 अरत्याकर्पिताद्गोप्सौ परित्यज्याम्यदा त्रपा । पितुः पुरः परं मित्रं वसन्तध्वजमग्रवीत् ॥८॥
 'दीर्घसूत्रो भवानेवं परकार्येषु शीतलः' । 'गणरात्रमिदं दुःखं तस्यां मे गतचेतसः' ॥९॥
 उद्वेगविपुलावर्ते प्रयाशाजलधौ मम । निमज्जनः सखे कस्माद्दीयते नावलम्बनम् ॥१०॥
 इत्यातं ध्यानयुक्तस्य निशम्य गदित बुधाः । सर्वे 'गतप्रभीभूता विषादं परमं ययुः ॥११॥
 तां वीचय शोकसन्तप्तान् वारणानिव शुष्यतः । आवर्जितशिराघोडां क्षणं भामण्डलोऽगमत् ॥१२॥

अथानन्तर मेघोके आडम्बरसे युक्त वर्षाकाल कहीं चला गया और आकाश मॉजे हुए कृपाणके समान निर्मल प्रभाका धारक हो गया ॥१॥ कमल उत्पल आदि जलमें उत्पन्न होनेवाले पुष्प कामीजनोंको उन्माद करते हुए सुशोभित होने लगे तथा जल साधुओके हृदयके समान निर्मल हो गया ॥२॥ कुमुदोंके सफेद पुष्पोसे प्रकट रूपसे हंसता हुआ शरदकाल आ पहुँचा, इन्द्रधनुष नष्ट हो गया और पृथ्वी कीचड़से रहित हो गई ॥३॥ जिनमें बिजली चमकनेकी सम्भावना नहीं थी और जो रुईके समूहके समान सफेद कान्तिके धारक थे ऐसे मेघोके खण्ड कहीं-कहीं दिखाई देने लगे ॥४॥ सन्ध्याका लाल-लाल प्रकाश जिसका सुन्दर आँठ था, चौदनी ही जिसका अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्र था और चन्द्रमा ही जिसका चूडामणि था, ऐसी रात्रिरूपी नव-वधु उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥५॥ चक्रवाक पक्षी जिनकी शोभा बढ़ा रहे थे, और मदोन्मत्त सारस जहाँ शब्द कर रहे थे ऐसी वापिकाएँ कमलवनमें घूमते हुए राजहंसोंसे सुशोभित हो रही थीं ॥६॥ इस तरह यह जगत् यद्यपि शरदऋतुसे सुशोभित था तो भी सीताकी चिन्ता करनेवाले भामण्डलके लिए अग्निके समान जान पड़ता था ॥७॥

अथानन्तर अरतिसे जिसका शरीर आकर्षित हो रहा था ऐसा भामण्डल एक दिन लज्जा छोड़ पिताके आगे अपने परममित्र वसन्तध्वजसे इस प्रकार बोला कि ॥८॥ आप बड़े दीर्घसूत्री हैं—देरसे काम करनेवाले हैं और दूसरेके कार्य करनेमें अत्यन्त मन्द हैं । उस सीतामें जिसका चित्त लग रहा है ऐसे मुझे दुःख उठाते हुए अनेक रात्रियाँ व्यतीत हो गईं । फिर भी तुम्हें चिन्ता नहीं है ॥९॥ जिसमें उद्वेगरूपी वड़ी-बड़ी भँवरें उठ रही हैं ऐसे आशारूपी समुद्रमें मैं डूब रहा हूँ । सो हे मित्र ! मुझे सहारा क्यों नहीं दिया जा रहा है ॥१०॥ इस प्रकार आर्तध्यानसे युक्त भामण्डलके वचन सुनकर सभी विद्वान् हतप्रभ होते हुए परम विषादको प्राप्त हुए ॥११॥ तद-नन्तर उन सबको शोकसे सन्तप्त तथा हाथियोंके समान सूखते हुए देख भामण्डल शिर नीचा

१. नृपः म० । २. उज्ज्वलकृपाणतुल्यप्रभम् । ३. मेघलेशाः, घनलेशाः म०, ख०, व० । ४. विलम्बने कार्यकारी । ५. मन्दः । ६. बहूनां रात्रीणां समूहः । ७. गतवेगतः म० । ८. निसर्गतः म० । ९. गतप्रभाभूताः म० ।

बृहत्केतुस्ततोऽनोचत् किमद्याप्युपगृह्यते । निवेद्यतां कुमारस्य निराशो येन जायते ॥१३॥
 ततस्ते कथयाञ्चक्रुस्तस्मै सर्वं यथाविधि । चन्द्रयानं पुरस्कृत्य कथमप्युज्जिताश्रयाः ॥१४॥
 जनको बाल कन्याया इदंवास्माभिराहृतः । याचितश्चासित्यत्नेन पद्मस्योच्ये प्रकल्पिताम् ॥१५॥
 उत्कप्रत्युक्तमालाभिरस्माभिस्तेन निर्जितैः । धनूरत्नावाधिशक्रं कृतसन्मन्त्रणैः किल ॥१६॥
 धनूरन्तलता तस्य रामस्याङ्घ्रिकर्मणः । शार्दूलस्य क्षुधातस्य मांसपेशी यथापिता ॥१७॥
 कन्या स्वयंवरा साध्वी कथा हृदयहारिणी । नवयौवनलावण्यपरिपूरितविग्रहा ॥१८॥
 भवालेन्दुमुखा बाला मदनने समन्विता । वैदेही रामदेवस्य श्रीसमा वनिताभवत् ॥१९॥
 न चापे साम्प्रतं जाते गदासीरादिसयुते । अमराधिष्ठिते नापि कन्या त्रैलोक्यसुन्दरी ॥२०॥
 अपि द्रष्टुं न ये शक्ये सुपर्णोरयादावचैः । रामलक्ष्मणवीरान्यामाङ्गुष्ठे ते शरासने ॥२१॥
 प्रसन्न साधुना हर्तुमशक्या त्रिदशैरपि । किमुतात्यन्तमस्माभिर्निस्सारैर्धनुषी विना ॥२२॥
 पूर्वमेव हृता कस्मान्नोति चेन्मन्यते शिशो । यजामाता दशस्यस्य जनकस्य सुहृन्मधुः ॥२३॥
 अवगम्य कुमारैवं विनीतः स्वस्थतां भज । शक्नोति न सुरेन्द्रोऽपि विधातुं विधिमन्यथा ॥२४॥

कर क्षणभरके लिए लज्जाको प्राप्त हुआ ॥१२॥ तब बृहत्केतु नामा विद्याधर बोला कि अवतक इस दातको क्यों छिपाया जाता है प्रकट कर देना चाहिए जिससे कि कुमार इस विषयमें निराश हो जावे ॥१३॥

तदनन्तर उन सबने चन्द्रयानको आगे कर लड़खड़ाते अक्षरोंमें सब समाचार भामण्डलसे कह दिया ॥१४॥ उन्होंने कहा कि हे कुमार ! हमलोग कन्याके पिताको यहाँ ही ले आये थे और उससे यत्नपूर्वक कन्याकी याचना भी की थी पर उसने कहा था कि मैं उस कन्याको रामके लिए देना सङ्कल्पित कर चुका हूँ ॥१५॥ उत्तर-प्रत्युत्तरसे जब उसने हम सबको पराजित कर दिया तब हमने मन्त्रणा कर धनुषरत्नकी अवधि निश्चित की अर्थात् राम और भामण्डलमेसे जो भी धनुष रत्नको चढ़ा देगा वही कन्याका स्वामी होगा ॥१६॥ हम लोगोंने धनुषकी शर्त इसलिए रक्खी थी कि राम उसे चढ़ा नहीं सकेगा अतः अगत्या तुम्हें ही कन्याकी प्राप्ति होगी परन्तु वह धनुष-रत्नरूपी लता पुण्याधिकारी रामके लिए ऐसी हुई जैसे भूखसे पीड़ित सिहके लिए मांसकी डली अर्पित की गई हो अर्थात् रामने धनुष चढ़ा दिया जिससे वह साध्वी कन्या स्वयंवरमें रामकी स्त्री हो गई । वह कन्या अपने वचनोंसे हृदयको हरनेवाली थी, नवयौवनसे उत्पन्न लावण्यसे उसका शरीर भर रहा था, तरुण चन्द्रके समान उसका मुख था, लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली थी और कामसे सहित थी ॥१७-१८॥ वे सागरावर्त और वज्रावर्त नामा धनुष आजकलके धनुष नहीं थे किन्तु बहुत प्राचीन थे, गदा, हल आदि शस्त्रोंसे सहित थे, देवोंसे अधिष्ठित थे तथा सुपर्ण और उरग जातिके दैत्योंके कारण उनकी ओर देखना भी सम्भव नहीं था । फिर भी राम लक्ष्मणने उन्हें चढ़ा दिया और रामने वह त्रिलोकसुन्दरी कन्या प्राप्त कर ली ॥२०-२१॥ इस समय वह कन्या देवोंके द्वारा भी जबर्दस्ती नहीं हरी जा सकती है फिर जो उन धनुषोंके निकल जानेसे अत्यन्त सारहीन हो गये हैं ऐसे हम लोगोंकी तो बात ही क्या है ॥२२॥ हे कुमार ! यदि यह कहो कि रामके स्वयंवरके पहले ही उसे क्यों नहीं हर लिया तो उसका उत्तर यह है कि रावणका जमाई राजा मधु जनकका मित्र है सो उसके रहते हम कैसे हर सकते थे ? ॥२३॥ इसलिए यह सब जानकर हे कुमार ! स्वस्थताको प्राप्त होओ, तुम तो अत्यन्त विनीत हो, जो कार्य जैसा होना होता है उसे इन्द्र भी अन्यथा नहीं कर सकता ॥२४॥

ततः स्वयं वरोदन्त श्रुत्वा भामण्डलो हिया । विषादेन च सम्पूर्णः कृच्छ्रं चिन्तान्तरं गतः ॥२५॥
 निरर्थकमिदं जन्म विद्याधरतया समम् । यतः प्राकृतवत् कश्चिन्न सम्प्राप्तोऽस्मि तां प्रियाम् ॥२६॥
 ईर्ष्याक्रोधपरीतश्च सभामाह हसन्नसौ^१ । का वः खेचरता भीतिं भजतां भूमिगोचरात् ॥२७॥
 आनयाभ्येव सत्कन्यां स्वयं निर्जित्य भूचरान् । न्यासापहारिणां कुर्वं यद्वाणां च विनिग्रहम् ॥२८॥
 इत्युक्त्वासौ सुसन्नह विमानो विद्यदुद्रतः । पुरकाननसम्पूर्णं पृथिवीतलमैक्षत ॥२९॥
 ततो दृष्टिर्गता तस्य विदग्धत्रिषये क्रमात् । महीध्रसंकटे रम्ये नगरे चात्मसेविते ॥३०॥
 दृष्टं मया कदाप्येतदिति चिन्तामुपागतः । जातिस्मरत्वमासाद्य समवाप्य स भूर्जनम् ॥३१॥
 पितुरन्ते ततो नीतः सचिवैराकुलात्मकैः । चन्दनद्रवसिक्ताङ्गः प्रमदाभिः प्रबोधितः ॥३२॥
 अन्योन्यं दत्तनेत्र च हसित्वा तामिरौच्यत । कुमार युक्तमेतत्ते कातरत्वमनुत्तमम् ॥३३॥
 अदृष्टान्विचर्यार्थं निरशेषरहितत्रयं^३ । गुरुणामप्रतो मोहं यत्प्राप्तोऽसि विचक्षणं^४ ॥३४॥
 भज खेचरनाथानां कन्या देव्यधिकप्रभाः । जनजल्पनकं व्यर्थं वृत्तं सुन्दर मा कृथाः ॥३५॥
 ततोऽसाव्रवीदेवं व्रीडाशोकनताननः । धिग्मया घनमोहेन विरुद्धं चिन्तितं महत् ॥३६॥
 नीचानामपि नात्यन्तमोदश कर्म युज्यते । अहो कर्मभिरत्यर्थमशुभैरभिचेष्टितः ॥३७॥
 एकस्मिन्नुपितः कुञ्चौ कापि सार्धमहं तथा । दुष्कर्मविगमाज्ञाता कथाञ्चिद् साधुना मया ॥३८॥
 ततस्त शोकभारेण पीडित चन्द्रविक्रमः । अङ्कमारोप्य चुम्बित्वा पत्रच्छं पुरुविस्मयः ॥३९॥

तदनन्तर स्वयंवरका वृत्तान्त सुनकर भामण्डल लज्जा और विषादसे युक्त होता हुआ दुःखके साथ यह विचार करने लगा कि ॥२५॥ अहो ! मेरा यह विद्याधरका जन्म निरर्थक है कि जिससे मैं साधारण मनुष्यकी तरह उस प्रियाको प्राप्त नहीं कर सका ॥२६॥ ईर्ष्या और क्रोध से युक्त होकर उसने हँसते हुए सभासे कहा कि जब आप लोग भूमिगोचरीसे भी भय रखते हो तब आपका विद्याधर होना किस कामका ? ॥२७॥ मैं भूमिगोचरियोंको जीतकर स्वयं ही उस उत्तम कन्याको ले आता हूँ तथा धनुषरूपी धरोहरका अपहरण करनेवाले यत्नोका निग्रह करता हूँ ॥२८॥ ऐसा कहकर वह तैयार हो विमानमे बैठकर आकाशमें जा उड़ा। वहाँसे उसने पुर और वनसे भरा पृथ्वीतल देखा ॥२९॥ तदनन्तर उसकी दृष्टि अनेक पर्वतोंसे युक्त विदग्धनामक देशमे अपने पूर्वभवके मनोहर नगर पर पड़ी ॥३०॥ यह नगर मैंने कभी देखा, है । इस प्रकार चिन्ता करता हुआ वह जातिस्मरणको प्राप्त होकर मूर्छित हो गया ॥३१॥ तदनन्तर घबड़ाये हुए मन्त्री उसे पिताके समीप ले आये । वहाँ स्त्रियोंने चन्दनके द्रवसे उसका शरीर सींचकर उसे सचेत किया ॥३२॥ स्त्रियोंने परस्पर नेत्रका इशारा कर तथा हँसकर उससे कहा कि हे कुमार ! तुम्हारी यह कातरता अच्छी नहीं ॥३३॥ जो तुम बुद्धिमान होकर भी भूचर्याका समस्त प्रयोजन बिना देखे ही गुरुजनोके आगे इस तरह मोहको प्राप्त हुए हो ॥३४॥ देवियोंसे भी अधिक कान्तिको धारण करनेवाली विद्याधर राजाओंकी अनेक कन्याएँ हैं सो उन्हें तुम प्राप्त होओ । हे सुन्दर ! इस तरह व्यर्थ ही लोकापवाद मत करो ॥३५॥

तदनन्तर लज्जा और शोकसे जिसका मुख नीचा हो रहा था ऐसे भामण्डलने इस प्रकार कहा कि मुझे धिक्कार हो, जो मैंने तीव्र मोहमे पड़कर इस प्रकार विरुद्ध चिन्तवन किया ॥३६॥ ऐसा कार्य तो अत्यन्त नीच कुलवालोंको भी करना उचित नहीं है । अहो, मेरे अत्यन्त अशुभ कर्मोंने कैसी चेष्टा दिखाई ? ॥३७॥ मैंने उसके साथ एक ही उदरमें शयन किया है । आज पाप-कर्मका उदय मन्द हुआ इसलिये किसी तरह उसे जान सका हूँ ॥३८॥ तदनन्तर शोकके भारसे पीडित भामण्डलको गोदमें रखकर बहुत भारी आश्चर्यसे भरा चन्द्रगत चुम्बन कर पृच्छने लगा

वद पुत्रक किन्वेतदीदृशं भापितं त्वया । सोऽनोचत्तात वक्तव्यं चरितं शृणु मामकम् ॥१४०॥
 पूर्वजन्मनि वास्येऽस्मिन् विदग्धे नगरे नृपः । अभूवं परराष्ट्राणां ध्वंसको मण्डितध्वनिः ॥१४१॥
 सर्वस्याभवन्नौ ख्यातः सततं विप्रहृष्टप्रियः । पालको निजलोकस्य महाविभवसंयुतः ॥१४२॥
 हता तत्र मया जाया विप्रस्याशुभकर्मणा । माययाऽपाकृतश्चासौ गतः काप्यतिदुःखितः ॥१४३॥
 ततोऽनरण्यसेनान्या रामितस्तनुशोपताम्^१ । पर्यटन् धरणीं कापि प्राप्नोऽस्मि मुनिसंश्रयम् ॥१४४॥
 यत्र त्रिलोकपूज्यानां सर्वज्ञानं महात्मनाम् । मतं भगवतां प्राप्तमर्हतां पावनं मया ॥१४५॥
 तत्र बान्धवभूतस्य गुरोः शासनतो मया । अनामिषं व्रतं शुद्धं गृहीतं क्षुद्रशक्तिना ॥१४६॥
 शासनस्य जिनेन्द्राणामहो माहात्म्यमुत्तमम् । तथापि यन्महापापो नावतीर्णोऽस्मि दुर्गतिम् ॥१४७॥
 अनन्यशरणत्वेन व्रतेन नियमेन च । सममन्येन जीवेच विदेहाकुलिमागामत् ॥१४८॥
 सुखेन च प्रसूता सा कन्यया सहितं तुकम् । केनाप्यपहृतश्चायं गृध्रेण पिशितं यथा ॥१४९॥
 वचनगोचरातीतं तेन नीतोऽस्मि पुष्करम्^२ । असौ नूनं स यस्यासौ हता मया पुरा ॥१५०॥
 मारयामीति तेनोक्त्वा भूयः कृत्वानुकम्पनम् । शनैरस्मि विमुक्तः खात कुण्डलान्यामलङ्कृतम् ॥१५१॥
 पतन् वीक्ष्य तदा रात्राद्युद्याने परमे तया । गृहीत्वा तात दत्तोऽस्मि जाययै करुणावता ॥१५२॥
 सोऽहं भवत्प्रसादेन तदङ्गे वृद्धिमागतः । परं विद्याधरत्वं च कृतदुर्लभितक्रियः ॥१५३॥
 इत्युक्त्वा विरारामसौ विस्मयं च जनो गतः । हाकारवहुलं शब्दं कृवंन् कम्पितमस्तकः ॥१५४॥

॥३६॥ कि हे पुत्र ! कह, तूने ऐसा कथन किसलिए किया ? इसके उत्तरमे उसने कहा कि हे तात ! मेरा कहने योग्य चरित सुनिए ॥४०॥

पूर्व जन्ममें मैं इसी देशके विदग्ध नगरमे दूसरे देशोको छूटनेवाला, समस्त पृथिवीमे प्रसिद्ध, युद्धका प्रेमी, अपनी प्रजाकी रक्षा करनेवाला तथा महाविभवसे संयुक्त कुण्डलमण्डित नामका राजा था ॥४१-४२॥ वहाँ मैंने अशुभ कर्मके उद्यसे एक ब्राह्मणकी स्त्री हरी और ब्राह्मणको मायापूर्वक तिरस्कृत किया जिससे वह अत्यन्त दुःखी होकर कहीं चला गया ॥४३॥ तदनन्तर राजा अनरण्यके सेनापतिने मेरी सत्र सम्पत्ति हरकर मेरे पास केवल मेरा शरीर ही रहने दिया । अन्तमें अत्यन्त दरिद्र हो पृथिवी पर भटकता हुआ मैं कहीं मुनियोके आश्रममें पहुँचा ॥४४॥ वहाँ मैंने तीनों लोकोसे पूज्य, सब पदार्थोको जाननेवाले तथा महान् आत्माके धारक अरहन्त भगवान्का पवित्र धर्म प्राप्त किया ॥४५॥ और समस्त जीवोंके बान्धवभूत श्री गुरुके उपदेशसे निरतिचार सांस्त्याग व्रत धारण किया । मैं अत्यन्त छुद्र शक्तिका धारक था इसलिए अधिक व्रत धारण नहीं कर सका ॥४६॥ अहो जिन शासनका वड़ा माहात्म्य है जो मैं महापापी होकर भी दुर्गतिको प्राप्त नहीं हुआ ॥४७॥ श्री जिनधर्मकी शरण होनेसे तथा व्रत और नियमके प्रभावसे मेरा जीव किसी अन्य जीवके साथ राजा जनककी विदेहा रानीके उदरमे पहुँचा ॥४८॥ रानी विदेहाने सुखपूर्वक कन्याके साथ एक पुत्र उत्पन्न किया सो जिस प्रकार गीध मांसके टुकड़ेको हर लेता है उसी प्रकार किसीने उस पुत्रको हर लिया ॥४९॥ वह व्यक्ति उस वालकको नन्त्रोसे भी अधिक ऊँचे आकाशमे ले गया । यथार्थमें व्यक्ति वही था जिसकी स्त्री पहले मैंने हरी थी ॥५०॥ पहले तो उसने कहा कि मैं इसे भारता हूँ परन्तु फिर दया कर उसने कुण्डलोंसे अलंकृत कर धीरेसे आकाशसे छोड़ दिया ॥५१॥ उस समय तुम परम उपवनमे विद्यमान थे सो रात्रिमे पड़ता देख तुमने मुझे ऊपरसे ही पकड़ लिया और दयालु होकर अपनी रानीके लिए सौंपा ॥५२॥ आपके प्रसादसे रानीकी गोदमे वृद्धि प्राप्त हुआ, उत्कृष्ट विद्याओंका धारक हुआ और बहुत ही लज्ज प्यारसे मेरा पालन हुआ ॥५३॥ यह कहकर भामण्डल चुप हो रहा तथा उपस्थित

१. गमित्पुत्रशेषता म० । २. पुत्रं 'तुक्' लोक चामनः प्रजा' इत्यमरः । ३. गगनम् ।

इमं चन्द्रगतिः श्रुत्वा वृत्तान्तमतिचित्रितम् । लोकधर्मतरुं^१ वन्द्यं विदित्वा भववन्धनम् ॥५५॥
 भूतमात्रमतिं त्यक्त्वा सुनिश्चित्यात्मकर्मणाम् । परं प्रबोधमायातः संवेगं च सुदुर्लभम् ॥५६॥
 आत्मीयं राज्यमाधाय तत्र पुत्रे यथाविधि । सर्वभूतहितस्यागात् पादमूल त्वरान्वितः ॥५७॥
 भगवान् स हि सर्वत्र विष्टे प्रथितात्मकः । गुणरश्मिसमूहेन भव्यानन्दविधायिना ॥५८॥
 महेन्द्रोदययौतं तमभ्यर्च्य प्रणिपत्य च । स्तुत्वा च भावतोऽत्रादीदेवं मूर्धाहिताक्षलिः ॥५९॥
 भगवंस्त्वत्प्रसादेन सप्राप्य जिनदीक्षणम् । तपोविधातुमिच्छामि निर्विण्णो गृहवास्ततः ॥६०॥
 एवमस्त्विति तेनोक्ते तार भेर्यः^२ समाहिताः । भामण्डलः परं चक्रे महिमानं च भावतः ॥६१॥
 कलं प्रवरनारीभिर्गीतं वंशस्वनानुगम् । जगज्ज्ज्वर्यसङ्घातः करतालसमन्वितः ॥६२॥
 श्रीमान् जनकराजस्य तनयो जयतीति च । इत्युच्चैर्वन्दनां नादः सज्ज्ञे प्रतिनादवान् ॥६३॥
 तेनोद्यानसमुत्थेन नादेन श्रोत्रहारिणा । नक्तं कृत्वा विनीतायां क्लृप्तनिद्रोऽखिलो जनः ॥६४॥
 ऋषिसम्बन्धमुद्धानं श्रुत्वा जैनाः प्रमोदिनः । जाता जना विपण्णाश्च मिथ्यादर्शनपूरिताः ॥६५॥
 रोमाञ्चाचित्तसर्वाङ्गा विस्फुरद्वासलोचना । सीता सिक्तामृतेनैव ब्रुवुधे ध्वनिनामुना ॥६६॥
 अचिन्तयन्न चो न्येव जनको यस्य नन्दनः । जयतीति सुहृन्नादः श्रूयतेऽज्यन्तमुन्नतः ॥६७॥
 कनकन्याग्रजो राजा ममापि जनकः पिता । जातमात्रश्च मे आता ह्यतो यः किं न्वलौ भवेत् ॥६८॥

समस्त लोग हाहाकार करते तथा मस्तक हिलाते हुए आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५४॥ राजा चन्द्र-
 गति यह अत्यन्त आश्चर्यकारी वृत्तान्त सुनकर परम प्रबोध तथा अत्यन्त दुर्लभ संवेगको प्राप्त
 हुआ । उसने लोक-धर्म अर्थात् स्त्री-सेवनरूपी वृत्तको सुखरूपी फलसे रहित तथा संसारका
 बन्धन जाना, इन्द्रियोके विषयोंमें जो बुद्धि लग रही थी उसका परित्याग किया, आत्म-कर्तव्यका
 ठीक-ठीक निश्चय किया, पुत्रके लिए विधिपूर्वक अपना राज्य दिया और बड़ी शीघ्रतासे
 सर्वभूतहित नामक मुनिराजके चरणमूलमें प्रस्थान किया ॥५५-५७॥ भगवान् सर्वभूतहित
 भव्य जीवोको आनन्द देनेवाले गुणरूपी किरणोंके समूहसे समस्त संसारमें प्रसिद्ध थे ॥५८॥
 महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें स्थित उन सर्वभूतहित मुनिराजकी पूजा कर नमस्कार कर तथा भाव-
 पूर्वक स्तुति कर हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर राजा चन्द्रगतिने इस प्रकार कहा कि हे भगवन् !
 मैं गृहवाससे विरक्त हो चुका हूँ इसलिये आपके प्रसादसे जिनदीक्षा प्राप्त कर तपश्चरण करना
 चाहता हूँ ॥५९-६०॥ 'एवमस्तु' ऐसा कहने पर भामण्डलने भावपूर्वक परम प्रभावना की ।
 जोर-जोरसे भेरियों बजने लगीं, उत्तम स्त्रियोंने बोंसुरीकी ध्वनिके साथ मनोहर गीत गाया,
 करतालके साथ-साथ अनेक वाद्योंके समूह गर्जना करने लगे । 'राजा जनकका लक्ष्मीशाली
 पुत्र जयवन्त हो रहा है' वन्दीजनोका यह जोरदार शब्द प्रतिध्वनि करता हुआ गूँजने लगा
 ॥६१-६३॥ उद्यानसे उठे हुए इस श्रोत्रहारी शब्दने रात्रिके समय अयोध्यावासी समस्त लोगोंको
 निद्रारहित कर दिया ॥६४॥ ऋषियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली इस हर्षध्वनिको सुनकर जैन लोग
 परम हर्षको प्राप्त हुए और मिथ्यादृष्टि लोग विषादसे युक्त हो गये ॥६५॥ उस शब्दको सुनकर
 सीता भी इस प्रकार जाग उठी मानो अमृतसे ही सींची गई हो, उसके समस्त अङ्ग रोमाञ्चसे
 व्याप्त हो गये तथा उसका बोंया नेत्र फड़कने लगा ॥६६॥ वह विचारने लगी कि यह जनक
 कौन है जिसका कि पुत्र जयवन्त हो रहा है । यह अत्यन्त उन्नत शब्द बार-बार सुनाई दे रहा
 है ॥६७॥ राजा जनक कनकका बड़ा भाई और मेरा पिता है । मेरा भाई उत्पन्न होते ही हरा

१. वध्यं म० । वन्द्या क० । २. भूतमात्रमति म० । ३. यात्यन्त व० । ४. उच्चैः । ५. नारमे स०,
 म० दुन्दुभयः । ६. वंशस्वसानुगं म० । ७. विपन्नाश्च म० ।

ध्वात्वेति सोदरस्नेहसुसंप्लावितमानसा । मुक्तकण्ठं स्रोदासी परिदेवनकारिणी ॥६६॥
 ततो रामोऽभिशासाः प्रोवाच मधुराक्षरम् । कस्माद् रोदिपि वैदेहि भ्रातृशोकेन कर्पिता ॥७०॥
 भवत्या यद्यसौ भ्राता शो ज्ञातास्मो न संशयः । अथवान्यः क्वचित् कोऽपि पण्डिते शोचितेन किम् ॥७१॥
 कारणं यदतिक्रान्तं मृतमिष्टं च बान्धवम् । हृतं विनिर्गतं नष्टं न शोचन्ति विचक्षणाः ॥७२॥
 कातरस्य विपादोऽस्ति द्युते 'प्राकृतस्य च । न कदाचिद्विपादोऽस्ति विक्रान्तस्यै बुधस्य च ॥७३॥
 एवं तयोः समालापं दम्परयोः कुर्वतोः क्षपा । कृपयैव गता शीघ्रं जातमङ्गलनिस्वना ॥७४॥
 ततो दशरथः कृत्वा प्रत्यङ्गं वस्तु सादरः । नगरीतो विनिष्क्रान्तः ससुतः साङ्गनाजनः ॥७५॥
 इतश्चेतश्च विस्तीर्णां पश्यन् खेचरवाहिनीम् । ययौ स विस्मयापन्नः सामन्तशतपूरितः ॥७६॥
 इच्छां चक्रे च देवेन्द्रपुरतुल्यं विनिर्मितम् । क्षणाद्विद्याधरैः स्थानं तुङ्गप्राकारगोपुरम् ॥७७॥
 पताकातोरणैश्चित्रं रत्नैश्च कृतमण्डनम् । प्रविशेश तदुद्यानं साञ्जुलोकसमाङ्गलम् ॥७८॥
 नत्वा स्तुत्वा च तत्रासौ गुरुं गुणगुरुं नृपः । ददर्शोदयने भागोश्चन्द्रयानस्य दोक्षणम् ॥७९॥
 नभश्चरैः समं पूजां कृत्वा सुमहतीं गुरोः । एकपार्श्वे निविष्टोऽसौ सर्वबान्धवसङ्गतः ॥८०॥
 श्रीप्रभामण्डलोऽप्येकं पार्श्वमाश्रित्य खेचरैः । समस्तैः सहितस्तस्यौ किञ्चिच्छोकमिवोद्भवन् ॥८१॥
 खेचरा भूचरश्चैते सुनयश्चान्तिकं स्थिताः । शुश्रुवुर्गुरुतो धर्ममनगारं तथेतरम् ॥८२॥
 चरितं निरगाराणां शूराणां शान्तमीहितम् । शिवं सुदुर्लभं सिद्धं सारं क्षुद्रभयावहम् ॥८३॥

गया था सो यह वही तो नहीं है ? ॥६८॥ ऐसा विचार कर भाईके स्नेहसे जिसका मन व्याप्त हो रहा था ऐसी सीता विलाप करती हुई गला फाड़कर रोने लगी ॥६९॥

तदनन्तर सुन्दर शरीरके धारी रामने मधुर अक्षरोमे कहा कि हे वैदेहि ! भाईके शोकसे विषश हो क्यों रही हो ॥७०॥ यदि यह तुम्हारा भाई है तो कल मालूम करोगे इसमें संशय नहीं है और यदि कहीं कोई दूसरा है तो हे पण्डिते ! शोक करनेसे क्या लाभ है ? ॥७१॥ क्योंकि जो चतुर जन है वे वीते हुए, भरे हुए, हरे हुए, गये हुए अथवा गुमे हुए इष्टजनका शोक नहीं करते हैं ॥७२॥ हे वल्लभे ! विषाद उसका किया जाता है जो कातर होता है अथवा बुद्धिहीन होता है । इसके विपरीत जो शूरवीर बुद्धिमान् होता है उसका विषाद नहीं किया जाता ॥७३॥ इस प्रकार दम्पतीके वार्तालाप करते-करते रात्रि वीत गई सो मानो दयासे ही शीघ्र चली गई और प्रातःकाल सम्बन्धी मङ्गलमय शब्द होने लगे ॥७४॥

तदनन्तर राजा दशरथ अङ्गसम्बन्धी कार्य कर आदरसहित पुत्रो और स्त्रीजनोके साथ नगरीसे बाहर निकले ॥७५॥ सैकड़ो सामन्त उनके साथ थे । वे जहाँ-तहाँ फैली हुई विद्याधरोकी सेनाको देखते हुए आश्चर्यचकित होते जा रहे थे ॥७६॥ उन्होंने क्षणभरमे ही विद्याधरोके द्वारा निर्मित ऊँचे कोट और गोपुरोसे सहित इन्द्रपुरीके समान स्थान देखा ॥७७॥ तदनन्तर उन्होंने पताकाओं और तोरणोंसे चित्रित, रत्नोसे अलङ्कृत एवं मुनिजनोसे व्याप्त उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें प्रवेश किया ॥७८॥ वहाँ जाकर राजा दशरथने गुणोसे श्रेष्ठ सर्वभूतहितनामा गुरुको नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर सूर्योदयके समय राजा चन्द्रगामिका दीक्षामहोत्सव देखा ॥७९॥ उन्होंने विद्याधरोके साथ गुरुको बहुत बड़ी पूजा की और उसके वाद वे समस्त भाई-बन्धुओंके साथ एक ओर बैठ गये ॥८०॥ कुछ शोकको धारण करता हुआ भामण्डल भी समस्त विद्याधरोंके साथ एक ओर आकर बैठ गया ॥८१॥ विद्याधर और भूमिगोचरी गृहस्थ तथा मुनिराज सभी लोग पास-पास बैठकर गुरुदेवसे मुनि तथा गृहस्थ धर्मका व्याख्यान सुन रहे थे ॥८२॥ गुरुदेव कह रहे थे कि मुनियोका धर्म शूरवीरोंका धर्म है, अत्यन्त शान्त दशारूप है,

भव्यजीवा यमासाद्य लभन्ते संशयोऽभिमतम् । सम्यग्दर्शनसम्पन्ना गीर्वाणैन्द्रसुख महत् ॥८४॥
 केचित् केवलमासाद्य लोकालोकप्रकाशनम् । लोकप्राग्भारमारुह्य भजन्ते नैर्घृतं सुखम् ॥८५॥
 तिर्यग्भारकटुःखाभिज्जवालाभिः परिपूरितः । संसारो मुच्यते येन तं पन्थानं महोत्तमम् ॥८६॥
 सर्वप्राणिहितोऽवोचन्मन्द्रगंजितनिस्वनः । प्रह्लादं सर्वचित्तानां जनयन्विदित्वाखिलः ॥८७॥
 सन्देहतापविच्छेदि तद्वचोऽबु मुनीन्द्रजम् । कर्णाञ्जलिपुटैः पीतं प्राणिभिः प्रीतमानसैः ॥८८॥
 ततो दशरथोऽपृच्छत् संजाते वचनान्तरे । चन्द्रकीर्त्तेः खगेन्द्रस्य वैराग्यं नाथ किंकृतम् ॥८९॥
 सीता तत्र विशुद्धाक्षी ज्ञातुमिच्छुः सहोदरम् । शुश्रूषया मनश्चक्रे विनीतात्यन्तनिश्चलम् ॥९०॥
 शुद्धात्मा भगवान्नुचे श्रृणु राजन् विचित्रताम् । जीवानां निर्मितामेतां^१ कर्मभिः स्वयमर्जितैः ॥९१॥
 संसारे सुखिरं भ्रान्त्वा जीवोऽयमतिदुःखितः । कर्मानिलेरितः प्राप्तश्चन्द्रेण^२ धृतिमण्डलः ॥९२॥
 अर्पितः पुष्पवत्यै च स्त्रीचिन्ताकुलतारकः । स्वसारं च समालोक्य गाढाकल्पकमागतः ॥९३॥
 जनकः कृत्रिमाश्रयेन हृतश्चापस्वयंवर । जाता विदेहजा चिन्तां परां भामण्डलोजगम् ॥९४॥
 अस्मरच्च भवं पूर्वं मूर्च्छितः पुनरश्वसात् । पृष्ठश्चन्द्रेण चावोचदिति पूर्वभवक्रियाम् ॥९५॥
 भरतस्थे विदग्धास्थे पुरे कुण्डलमण्डितः । अधार्मिकोऽहरत् कान्तां पिङ्गलस्य मनःप्रियाम् ॥९६॥

मङ्गलरूप है, अत्यन्त दुर्लभ है, सिद्ध है, साररूप है और बुद्धजनोंको भय उत्पन्न करनेवाला है ॥८३॥ इस मुनिधर्मको पाकर सम्यग्दृष्टि भव्यजीव निःसन्देह स्वर्गका महासुख प्राप्त करते हैं ॥८४॥ और कितने ही लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त कर लोकके अग्रभाग पर आरूढ़ हो मोक्षका सुख प्राप्त करते हैं ॥८५॥ तिर्यञ्च और नरक गतिके दुःखरूपी अग्निकी ज्वालाओसे भरा हुआ यह संसार जिससे छूटता है वही मार्ग सर्वोत्तम है ॥८६॥ ऐसे मार्गका कथन उन मुनिराजने किया था । वे मुनिराज समस्त प्राणियोंका हित करनेवाले थे, गम्भीर गर्जनाके समान स्वरको धारण करनेवाले थे, समस्त जीवोंके चित्तमे आह्लाद उत्पन्न करनेवाले थे तथा समस्त पदार्थोंको जाननेवाले थे ॥८७॥ जिनके चित्त प्रसन्नतासे भर रहे थे ऐसे समस्त लोगोंने सन्देहरूपी सन्तापको नष्ट करनेवाले मुनिराजके वचनरूपी जलका अपने-अपने कर्णरूपी अञ्जलिपुटसे खूब पान किया ॥८८॥

तदनन्तर जब वचनोंमें अन्तराल पड़ा तब राजा दशरथने पूछा कि हे नाथ ! विद्याधरोके राजा चन्द्रगतिका वैराग्य किस कारण हुआ है ? ॥८९॥ वही पासमे बैठी निर्मल दृष्टिकी धारक सीता अपने भार्दको जानना चाहती थी इसलिए श्रवण करनेकी इच्छासे नष्ट हो उसने मनको अत्यन्त निश्चल कर लिया ॥९०॥ तब विशुद्ध आत्माके धारक भगवान् सर्वभूतहित मुनिराज बोले कि हे राजन् ! अपने द्वारा अर्जित कर्मोंके द्वारा निर्मित जीवोंकी इस विचित्रताको सुनो ॥९१॥ कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हुआ यह भामण्डलका जीव दीर्घकाल तक संसारमे भ्रमण कर अत्यन्त दुःखी हुआ है । अन्तमें जब भामण्डल पैदा हुआ तब वह राजा चन्द्रगतिको प्राप्त हुआ । चन्द्रगतितने पालन-पोषण करनेके लिए अपनी पुष्पवती भार्याको सौंपा । जब यह तरुण होकर स्त्रीविषयक चिन्ताको प्राप्त हुआ तब अपनी वहिन सीताका चित्रपट देख अत्यन्त व्यथाको प्राप्त हुआ ॥९२-९३॥ सीताकी भंगनी करनेके लिए मायामयी अश्वके द्वारा राजा जनकका हरण हुआ अन्तमें सीताका धनुष-स्वयंवर हुआ और उसने स्वयंवरमे राजा दशरथके पुत्र रामको वर लिया । इस घटनासे भामण्डल परम चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥९४॥ अकस्मात् इसे पूर्व भवका स्मरण हुआ जिससे यह मूर्च्छित हो गया । सचेत होनेपर राजा चन्द्रगतितने इसका कारण पूछा तब वह अपने पूर्व भवकी बातों इस प्रकार कहने लगा ॥९५॥ कि मैं भरत क्षेत्रके विदग्धनामा

वाल्लेन्दुहृतसर्वस्वो विपयात् स निराकृतः । श्रमणाश्रममासाद्य प्राप व्रतमनामिपम् ॥६७॥
 धर्मध्यानगतः कृत्वा कार्ल कलुपवर्जितः । जनकस्य विदेहायाः ससहायस्तनुं श्रितः ॥६८॥
 अर्ण्यात् पिङ्गलः प्राप्नो दृष्ट्वा शून्यकुटीरकम् । कोटरानलजीर्णागदाहदुःखं समाप्तवान् ॥६९॥
 यदर्थं दुःखितोऽप्राकीर्णोत्राशुकृतदुर्दिनः । दृष्ट्वा स्यात् पुण्डरीकाक्षीं भ्रमेल्युन्मत्तविभ्रमः ॥१००॥
 हा कान्त इति क्लृप्तश्च विलापमकरोदिति । प्रभावती सवित्री तां तातं चक्रध्वजं च तम् ॥१०१॥
 विभ्रूतिमतिदुःखं च बान्धवांश्च सुमानसान् । परित्यज्य मयि प्रीत्या विदेशमसि^५ सङ्गता ॥१०२॥
 रूचाहारकुवन्नत्वं मदर्थं सेवितं त्वया । मामुत्सृज्य क्व यातासि सर्वावयवसुन्दरि ॥१०३॥
 खिन्नोऽसौ धरणीं दुःखं भ्रान्त्वा सगिरिकाननाम् । वियोगवह्निना दग्धः सोऽकण्ठस्तपसि स्थितः ॥१०४॥
 ततो देवत्वमासाद्य चिन्तामेवमुपागमत् । तिर्यग्योनिं किमेता सा कान्ता सम्यक्त्ववर्जिता ॥१०५॥
 स्वभावाज्जैवसम्पन्ना भूयो वा मातुषी भवेत् । जीवितान्ते जिन्नं स्यूत्वा किं वा देवत्वमागता ॥१०६॥
 इति ध्यायन् विनिरिचिच्य स्तब्धदृष्टिः प्रकोपवान् । कासौ शशुर्दुरास्मेति ज्ञात्वा कुचिसमाश्रितम् ॥१०७॥
 प्रसूतमेककं कृत्वा शान्तः कर्मनियोगतः । बालं सुमोच जीवेहि वदन् विद्यालघूकृतम् ॥१०८॥

नगरमे कुण्डलमण्डित नामका राजा था, मैं बड़ा अधर्मी था इसलिए मैंने उसी नगरमे रहनेवाले पिङ्गलनामक ब्राह्मणकी मनोहर स्त्रीका हरण किया था ॥६६॥ मैं राजा अनरण्यके राज्यमे उपद्रव किया करता था इसलिए उसके सेनापति बालचन्द्रने मेरी सर्व सम्पदा छीनकर मुझे देशसे निकाल दिया । अन्तमें मैं भटकता हुआ मुनियोंके आश्रममे पहुँचा और वहाँ मैंने अनामिप अर्थात् मांस त्यागका व्रत धारण किया ॥६७॥ उसके फलस्वरूप धर्मध्यानसे सहित हो तथा कलुषतासे रहित होकर मैंने मरण किया और भरकर राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें जन्म धारण किया । जिस स्त्रीका मैंने हरण किया था भाग्यकी वात कि वह भी उसी विदेहाके गर्भमें उसी समय आकर उत्पन्न हुई ॥६८॥

पिङ्गलने जब जङ्गलसे लौटकर कुटिया सूनी देखी तो उसे इतना तीव्र दुःख हुआ कि मानो उसका शरीर कोटरकी अग्निसे फुलस ही गया हो ॥६९॥ वह उसके बिना पागल जैसा हो गया, उसके नेत्रोसे लगातार दुर्दिनकी भोंति आँसुओकी वर्षा होने लगी तथा दुःखी होकर वह जो भी दिखता था उसीसे पूछता था क्या तुमने मेरी कमललोचना प्रिया देखी है ? ॥१००॥ वह हा कान्ते ! इस प्रकार चिन्ताता हुआ विलाप करने लगा तथा कहने लगा कि तुम मुझमें प्रीति होनेके कारण प्रभावती माता, चक्रध्वज पिता, विशाल विभूति और प्रेमसे भरे भाइयोंको छोड़कर विदेशमे आई थीं ॥१०१-१०२॥ तुमने मेरे पीछे रूखा-सूखा भोजन और अशोभनीय वस्त्र ग्रहण किये हैं फिर भी हे सर्वावयवसुन्दरि ! मुझे छोड़कर तुम कहाँ चली गई हो ? ॥१०३॥ खेदस्त्रिभूत तथा वियोगरूपी अग्निसे जला हुआ पिङ्गल पहाड़ों और चनोसे सहित पृथिवीमे दुःखी होकर चिरकाल तक भटकता रहा । अन्तमे तप करने लगा परन्तु उस समय भी उसे स्त्रीकी उत्कण्ठा सताती रहती थी ॥१०४॥

तदन्तर देवपर्यायको पाकर वह इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि क्या मेरी वह प्रिया सम्यक्त्वसे रहित होकर तिर्यञ्च्योनिकी प्राप्त हुई है ॥१०५॥ अथवा स्वभावसे सरल होनेके कारण पुनः मातुषी हुई है या आयुके अन्त समयमें जिनेन्द्रदेवका स्मरण कर देव पर्यायको प्राप्त हुई है ? ॥१०६॥ ऐसा विचार कर तथा सब निश्चय कर उसने अपनी दृष्टि स्थिर की तथा कुपित होकर यह विचार किया कि इसे अपहरण करनेवाला दुष्ट शत्रु कहाँ है ? कुछ समयके विचारके बाद उसे मालूम हो गया कि वह शत्रु भी इसीके साथ विदेहा रानीकी कुचिमे ही विद्यमान है ॥१०७॥ रानी विदेहाने बालक और बालिकाको जन्म दिया सो वैरका बदला लेनेके

ज्योत्स्नाकृताट्टहासायां रात्रौ प्राप्तः पतंसवया । तदा स्मरसि किं नेदं पुष्पवत्यै समर्पितः ॥१०६॥
 प्राप्नो भवत्प्रसादेन विद्याधरविधिर्मया । नूनं माता विदेहा मे सा च सीता सहोदरी ॥११०॥
 इत्युक्ते विस्मयं प्राप्ता सर्वा वैद्याधरी सभा । चन्द्रायणश्च संविन्नो न्यस्य भामण्डले श्रियम् ॥१११॥
 माता पिता च ते वत्स दुःखं शोकेन तिष्ठति । तयोर्नेत्रोत्सवं यच्छ्लेष्येवमुक्त्वा समागतः ॥११२॥
 जातस्य नियतो मृत्युस्ततो गर्भस्थितिः पुनः । इति भीतो भवाद्देव चन्द्रः प्रात्रज्यमासवान् ॥११३॥
 अत्रान्तरे-विदेहाजः^१ सशयं परिपृच्छति । स्नेहश्चन्द्रायणादीनां मयि कस्मात् परः प्रभो ॥११४॥
 ततः सर्वहितोऽत्रोचन्निबोध धृतिमण्डल । यथा पिता च माता च तव पूर्वभवे स्थितौ ॥११५॥
 दारुप्रामे तु विप्रोऽभूद् विमुचिस्तस्य भामिनी । अनुकोशातिभूतिश्च तनयः सरसा स्तुपा ॥११६॥
 ऊर्जा मात्रा सहप्राप्तः कथानाख्योऽन्यदा द्विजः । अहरत् सरसां सारं धनमन्तर्गतं च यत् ॥११७॥
 अतिभूतिश्च तद्देवोः शोका बभ्राम मेदिनीम् । ततो निष्पुरुषे गेहे शेषं स्वमपि लुण्ठितम् ॥११८॥
 विमुचिर्दक्षिणाकांची देशान्तरगतः पुरा । श्रत्वा कुलकुटं भग्नं निवृत्तस्वरयान्वितः ॥११९॥
 जौगणवस्त्राशेषाद्भामनुकोशां सुविह्वलाम् । सान्त्वयित्वा तया सार्धंमुयां चान्नेष्टुमुद्यतः ॥१२०॥
 प्रजाभिः पृथिवीपृष्ठे कथ्यमानं समन्ततः । अवधिज्ञानकर्णैर्जगद् येनावभासितम् ॥१२१॥

लिए वह देव बालकको उठा ले गया परन्तु कर्मोदयसे उसके परिणाम शान्त हो गये जिससे उसने उस बालकको लघुपूर्णा विद्यासे लघु कर 'जीते रहो' इन शब्दोंका उच्चारण कर आकाशसे छोड़ा ॥१०८॥ जिसमे चोदनी अट्टहास कर रही थी ऐसी रात्रिमें आकाशसे पड़ते हुए उस बालकको आपने पकड़ा था और अपनी रानी पुष्पवतीके लिए सौंपा था । क्या यह आपको स्मरण नहीं है ? ॥१०६॥ मैंने आपके प्रसादसे विद्याधरपना प्राप्त किया । यथार्थमें विदेहा मेरी माता है वह सीता मेरी वहिन है ॥११०॥ भामण्डलके ऐसा कहनेपर विद्याधरोकी समस्त सभा आश्चर्यको प्राप्त हुई तथा चन्द्रगति संसारसे भयभीत हो भामण्डलके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तथा यह कहकर यहाँ चला आया कि हे वत्स ! तेरे माता-पिता शोकके कारण दुःखसे रह रहे हैं सो उनके नेत्रोको आनन्द प्रदान कर ॥१११-११२॥

तदनन्तर जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है और जिसका मरण होता है वह गर्भमें स्थित होता है, ऐसा विचार कर चन्द्रगति संसारसे भयभीत हो वैराग्यको प्राप्त हुआ ॥११३॥ इसी बीचमे भामण्डलने सर्वभूतहित मुनिराजसे पूछा कि हे प्रभो ! चन्द्रगति आदिका मुझपर बहुत भारी स्नेह किस कारण था ॥११४॥ इसके उत्तरमे मुनिराजने कहा कि हे भामण्डल ! तेरे माता-पिता पूर्व भवमें जिस प्रकार थे सो कहता हूँ सुन ॥११५॥

दारुग्राममे एक विमुचि नामका ब्राह्मण था उसकी स्त्रीका नाम अनुकोशा था और पुत्रका नाम अतिभूति था । अतिभूतिकी स्त्रीका नाम सरसा था ॥११६॥ किसी समय उसके घर अपनी ऊरी नामक माताके साथ कथान नामका एक ब्राह्मण आया सो उसने अतिभूतिकी स्त्री सरसा तथा घरके भीतरका सारभूत धन दोनोंका हरण किया अर्थात् सरसा और धनको लेकर कहीं भाग गया ॥११७॥ इस निमित्तसे अतिभूति बहुत दुःखी हुआ और स्त्रीकी खोजमे पृथिवीपर भ्रमण करने लगा । इधर उसके चले जानेसे घर पुरुषरहित हो गया सो बाकी वचा धन भी चोर ले गये ॥११८॥ विमुचि ब्राह्मण दक्षिणाकी इच्छा करता हुआ पहले ही देशान्तर चला गया था । वहाँ जब उसने सुना कि हमारा कुल-परम्परासे चला आया घर नष्ट हो गया है तब वह शीघ्र ही लौटकर वापिस आया ॥११९॥ आकर उसने देखा कि उसकी स्त्री-अनुकोशा अत्यन्त विह्वल हो रही है और उसके शरीरपर जीर्ण-शीर्ण फटे चिथड़े ही शेष रह-गये हैं । तब उसने उसे सान्त्वना दी और कथानकी माता ऊरीके साथ पुत्रको ढूँढनेके लिए गया ॥१२०॥ उसने पृथिवी

तमाचार्यं परिग्राहः पुरे सर्वारिनामनि । प्रष्टुं किल महाशोको नष्टचित्तस्तुपात्मजः ॥१२२॥
 दद्याद्गणेश्वरीमूर्द्धि श्रुत्वा च विविधां स्थितम् । तीव्रं संवेगमासाद्य विमुचिर्मुनिर्तात गतः ॥१२३॥
 पार्श्वे कमलकान्ताया आर्याया सुसमाहिता । सममूर्खानुकोशापि प्रव्रज्य तपसि स्थिता ॥१२४॥
 प्रयोऽपि ते शुभध्यानाः कृत्वाकालमलोलुपाः । लौकान्तिकं गता लोकं नित्यालोकमनाकुलम् ॥१२५॥
 अतिभूतिप्रभृतयो हिसावाद्दश शंसकाः । द्वेषकाः संयतानां च कुप्याना दुर्गति गताः ॥१२६॥
 मृगोर्वं सरसा प्राप्ता बलाहकनगोरसि । व्याघ्रमीता च्युता यूथामृता दावानलाहता ॥१२७॥
 जाता मनस्विनां देव्याः सुता चित्तोत्सवाह्वया । दुःखदानप्रवीणस्य प्रशमात् पापकर्मणः ॥१२८॥
 कथानः क्रमशो भूत्वा पारसीकः क्रमेलकः । मृत्वा पिङ्गलनामामृद्धमकेशस्य नन्दनः ॥१२९॥
 हंसस्ताराचमरसि सोऽतिभूतिः क्रमाद्भूत् । श्येनैर्विल्लससर्वाङ्गश्रैत्यस्य पतितोऽन्तकः ॥१३०॥
 अध्याप्यमानं गुरुणा यशोमित्रं पुनः पुनः । अश्रौपीदहर्हतां स्तोत्रं मुक्तवानथ जीवितम् ॥१३१॥
 दशवर्षसहस्रायुः किन्नरोऽभून्नगोत्तरे । विदग्धनगरे च्युत्वा जातः कुण्डलमण्डितः ॥१३२॥
 अहरत् पिङ्गलः कन्यां तथा कुण्डलमण्डितः । यद्भ्रात्र्यं पुरादृत्तः सम्बन्धः परिकीर्तितः ॥१३३॥
 योऽसौ विमुचिरित्यासौत् सोऽयं चन्द्रगतिर्नृपः । अनुकोशा तु जायास्य जाता पुष्पवती पुनः ॥१३४॥
 कथानोऽयं सुरो हर्ता सरसा हृद्योत्सवा । उरी जाता विदेहा तु सोऽतिभूतिः प्रमाह्वयः ॥१३५॥

तलपर भ्रमण करते हुए लोगोंसे सुना कि सर्वारिपुर नामा नगरमे एक आचार्य है जिन्होंने अपने अवधिज्ञानसे इस जगत्को प्रकाशित कर रक्खा है सो वह उनसे पुत्रकी वार्ता पूछनेके उद्देश्यसे उनके पास गया । विमुचि महाशोकसे भरा था और पुत्र तथा पुत्रवधुका पता न लगने से अत्यन्त दुःखी था ॥१२१-१२२॥ वह आचार्य महाराजकी तप ऋद्धि देखकर तथा संसारकी नाना प्रकारकी स्थिति सुनकर तीव्र वैराग्यको प्राप्त हुआ और उन्हींके पास दीक्षा लेकर मुनि श्रेया गया ॥१२३॥ विमुचिकी स्त्री अनुकोशा और कथानकी माता उरी इन दोनों ब्राह्मणियोंने भी कमलकान्ता नामक आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर तप धारण कर लिया ॥१२४॥ विमुचि, अनुकोशा और उरी ये तीनों प्राणी महान्निष्ठह, धर्म ध्यानसे मरकर निरन्तर प्रकाशसे युक्त तथा आकुलतारहित ब्रह्मलोक नामक स्वर्गमें उत्पन्न हुए ॥१२५॥ अतिभूति तथा कथान दोनों ही हिसा धर्मके समर्थक तथा मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले थे । इसलिए खोदे ध्यानसे मरकर दुर्गतिमे गये ॥१२६॥ अतिभूतिकी स्त्री सरसा बलाहक नामक पर्वतकी तलहटीमे मृगी हुई सो व्याघ्रसे भयभीत हो मृगोके भुण्डसे विछुडकर दावानलमें जल मरी ॥१२७॥ तदनन्तर दुःख देनेमें प्रवीण पाप कर्मके शान्त होनेसे मनस्विनी देवीके चित्तोत्सवा हुई ॥१२८॥ और कथान मरकर क्रमसे घोड़ा तथा ऊँट हुआ । फिर मरकर धूमकेशका पुत्र पिङ्गल हुआ ॥१२९॥ अतिभूति भव भ्रमण कर क्रमसे ताराक्ष नामक सरोवरके तीरपर हंस हुआ सो किसी समय श्येन अर्थात् बाज पक्षियोंने इसका समस्त शरीर नाच डाला जिससे घायल होकर जिनमन्दिरके समीप पड़ा ॥१३०॥ वहाँ गुरु यशोमित्र नामक शिष्यको चार-चार अर्हन्तभगवान्का स्तोत्र पढ़ा रहे थे सो सुनकर हंसने प्राण छोड़े ॥१३१॥ उसके फलस्वरूप वह नगोत्तर नामक पर्वतपर दश हजार वर्षकी आयुवाला किन्नर देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर विदग्धनगरमें राजा कुण्डलमण्डित हुआ ॥१३२॥ पूर्वभवके संस्कारसे चित्तोत्सवा कन्याका पिङ्गलने अपहरण किया और उसके पाससे कुण्डलमण्डित राजाने अपहरण किया । इन सबका जो पूर्व भवका सम्बन्ध था वह पहले कहा जा चुका है ॥१३३॥ इनमें जो विमुचि ब्राह्मण था वह चन्द्रगति राजा हुआ, उसकी अनुकोशा नामकी जो स्त्री थी वही पुष्पवती नामकी फिरसे स्त्री हुई ॥१३४॥ कथान अपहरण करनेवाला देव हुआ, सरसा चित्तोत्सवा हुई, उरी विदेहा हुई और अतिभूति भामण्डल हुआ ॥१३५॥

ततो दशरथः श्रुत्वा तं वृत्तान्तमशेषतः । भामण्डलं समाश्लिष्य वाष्पपूर्णनिरासणः ॥१३६॥
 अद्भुतैर्जितमूर्धानो जातरोमोद्गमा मृशम् । आनन्दवाष्पलोलाक्षः सभायामभवङ्गनाः ॥१३७॥
 उद्गोर्णमाननेनैव प्रीत्या तं वीक्ष्य सोदरम् । मृगीव रुदती स्नेहाक्षधावोद्घृतबाहुका ॥१३८॥
 हा भ्रातः प्रथमं दृष्टो भयाद्यासीत्तिथान्दिनी । तमाश्लिष्य चिरं सीता रुदित्वा घृतिमागता ॥१३९॥
 समापितः स रामेण संभ्रमालिङ्गितश्चिरम् । लक्ष्मणेन तथान्येन बन्धुलोकेन सादरम् ॥१४०॥
 नमस्कृत्य मुनि श्रेष्ठं ततः खेचरभूचराः । उद्यानात् प्रमदापूर्णां निरीयुः सुविराजिताः ॥१४१॥
 भामण्डलेन संमन्य द्रुतं दशरथो ददौ । लेखं जनकराजस्य नीतं गगनयाधिना ॥१४२॥
 प्रेषित भानुमार्गेण तस्य हंसघृतं वरम् । यान विद्याधरैर्वीरैर्भूरिभिः परिवारितम् ॥१४३॥
 प्रभामण्डलमादाय ततो भृत्यातिकान्तया । तुष्टो दशरथोऽयोध्यां सुत्रामसदृशोऽविशत् ॥१४४॥
 अक्षीणसर्वकोशोसातुपचारं परं नृपः । प्रीतो भामण्डले चक्रं सर्वलोकसमन्वितः ॥१४५॥
 रम्ये सुविपुले तुंगे वायुघानविभूषिते । गृहे दशरथोऽदिष्टे तस्थौ भामण्डलः सुव्रम् ॥१४६॥
 दारिद्र्यान्मोचितो लोकः परमोत्सवजन्मना । दानेन वाञ्छिताधिक्यं प्राप्तेन धरणीतले ॥१४७॥
 शला पवनवेगेन जनको लेखहारिणा । सहसा वर्द्धितो दिष्ट्या पुत्रागमनजन्मना ॥१४८॥
 प्रवाच्य चार्षितं लेखं सुदृढप्रत्ययः परम् । प्रमोदं जनकः प्राप रोमाञ्छाञ्चितविग्रहः ॥१४९॥
 भद्रं किं किमयं स्वन्वः स्याज्जाग्रप्रत्ययोऽथवा । एहि दौकस्व दौकस्व तौवत्वाद्य परिष्वजे ॥१५०॥

तदनन्तर इस समस्त वृत्तान्तको सुनकर जिनके नेत्र ओंसुखोंसे भर गये थे ऐसे राजा दशरथने भामण्डलका आलिङ्गन किया ॥१३६॥ उस समय सभामे जितने लोग बैठे थे सभीके मस्तक आश्चर्यसे चकित रह गये, सभीके शरीरमें बहुत भारी रोमाञ्छ निकल आये और सभीके नेत्र आनन्दके ओंसुखोंसे चञ्चल हो उठे ॥१३७॥ मुखकी आकृति ही जिसे प्रकट कर रही थी ऐसे भाईको बड़े प्रेमसे देखकर सीता स्नेहवशा मृगीकी तरह रोती हुई, भुजाएँ ऊपर उठा दौड़ी और हे भाई ! मैं तुम्हे आज पहले ही पहल देख रही हूँ, यह कहकर उससे लिपट गई और चिरकाल तक रुदन कर धैर्यको प्राप्त हुई ॥१३८-१३९॥ राम, लक्ष्मण तथा अन्य बन्धुओंने भी सहसा उठकर भामण्डलका आलिङ्गन किया तथा आदरसहित उससे वार्तालाप किया ॥१४०॥

तदनन्तर उन श्रेष्ठ मुनिराजको नमस्कार कर सब विद्याधर और भूमिगोचरी मनुष्य उपवनसे वाहर निकले । उस समय वे हर्षसे परिपूर्ण थे तथा अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥१४१॥ भामण्डलके साथ सलाह कर राजा दशरथने शीघ्र ही आकाशगामी विद्याधरके हाथ राजा जनकके पास पत्र भेजा ॥१४२॥ भामण्डलका उत्तम विमान आकाश-मार्गसे आ रहा था, हंसोंके द्वारा धारण किया गया था तथा बहुतसे विद्याधर वीर उसे घेरे हुए थे ॥१४३॥ तदनन्तर भामण्डलको लेकर राजा दशरथने इन्द्रके समान बड़ी विभूतिसे अयोध्यामे प्रवेश किया ॥१४४॥ अक्षीण कोशके धनी राजा दशरथने भामण्डलके आनेपर प्रसन्न हो सब लोगोंके साथ मिलकर बड़ा उत्सव किया ॥१४५॥ भामण्डल राजा दशरथके द्वारा बताया हुए रमणीय, विशाल, ऊँचे तथा वापी और वगीचासे सुशोभित महलमे मुखसे ठहरा ॥१४६॥ उस परमोत्सवके समय राजा दशरथने इतना अधिक दान दिया कि पृथ्वीतलके दरिद्र मनुष्य इच्छासे अधिक धन पाकर दरिद्रतासे मुक्त हो गये ॥१४७॥ उधर पवनके समान शीघ्रगामी पत्रवाहक विद्याधरने पुत्रके आगमनका समाचार सुनाकर राजा जनकको सहसा हर्षित कर दिया ॥१४८॥ राजा जनक दिये हुए पत्रको वाँचकर तथा उसकी सत्यताका दृढ़ विश्वास कर परम प्रमोदको प्राप्त हुए । उनका सारा शरीर हर्षसे रोमाञ्चित हो गया ॥१४९॥ वे उस विद्याधरसे पूछने लगे कि हे भद्र ! क्या

इत्युक्त्वा नन्दापेण तरत्तारकलोचनः । साक्षात्पुत्रमिव प्राप्तं लेखहारं स सपत्न्ये ॥१५१॥
 नम्रतापरिहारेण देहस्थं वस्त्रभूषणम् । ससम्भ्रमं दृष्ट्वा तस्मै मुदा वृत्तमिवाचरन् ॥१५२॥
 समेति बन्धुलोकोऽस्य थावद्विष्यामिबद्धकं । तावत्तद्धानमायातं छाद्यद्वरगं रुचा ॥१५३॥
 अपृच्छत्तस्य वृत्तान्तमवृषश्च पुनः पुनः । उक्तं विद्याधरैस्तस्य यथावदतिविस्तरम् ॥१५४॥
 ततो यानं समारूढ्य स्तनस्त्वैर्बन्धुभिः समम् । निमेषेण परिप्राप्तो विनीतां तूर्यवैदिताम् ॥१५५॥
 भवतीथाम्बरादाद्यु पुत्रमालिङ्ग्य निर्भरम् । सुखमीलितनेत्रोऽसौ चर्णां मूर्च्छासुपागतः ॥१५६॥
 प्रदुग्ध्य च विशालेन वक्षुषा वाष्पवारिणा । आंसेचनकर्मैश्चिष्टं तनयं पाणिना स्पृशन् ॥१५७॥
 माता तं मूर्च्छिता दृष्ट्वा परिष्वज्य प्रबोधिनी । आचक्रन्द सुकारुण्यं तिरश्चामपि कुर्वती ॥१५८॥
 परिदेवनमेवं च चक्रे पुत्रकं हा कयम् । हतोऽसि जातमात्रस्त्वं केनाप्युत्तमवैरिणा ॥१५९॥
 त्वदीचाचिन्तया देहो दग्धोऽयं बह्निवृत्त्यया । भ्रष्टदर्शनतोयेन चिरात्त्रिवापितोऽद्य मे ॥१६०॥
 धन्या पुष्पवती सुखी या तेषानि शोशवे । क्रीडता धूसराण्यके निहितानि सुसुम्बितम् ॥१६१॥
 चन्दनेन विलिप्तस्य कुङ्कुमस्यासकाञ्चितम् । दग्धतः शोशवं दृष्टं कौमारं ते तथा वपुः ॥१६२॥
 नेत्राभ्यामस्रमुत्सृज्य स्तनार्भ्यां च पयश्चिरम् । सुपुत्रंसङ्गमानन्दं विदेहा परमं गता ॥१६३॥

यह स्वप्न है ? अथवा जागृत दशामे होनेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान है ! आओ, आओ मैं तुम्हारा आलिङ्गन करूँ ॥१५०॥ इतना कहकर आनन्दके आँसुओंसे जिनके नेत्रोंकी पुतलियाँ चञ्चल हो रही थीं ऐसे राजा जनकने उस पत्रवाहक विद्याधरका ऐसा आलिङ्गन किया मानो साक्षात् पुत्र ही आ गया हो ॥१५१॥ उन्होंने इस हर्षसे नृत्य करते हुए की तरह उस विद्याधरके लिए अपने शरीरपर स्थित समस्त वस्त्राभूषण दे दिये । शरीरपर केवल उतने ही वस्त्र शेष रहने दिये जिससे कि वे नग्न न दिखे ॥१५२॥ हर्षकी वृद्धि करनेवाले राजा जनकके बन्धुवर्ग जब तक इकट्ठे होते हैं तब तक अपनी कान्तिसे आकाशको आच्छादित करता हुआ भामण्डलका विमान वहाँ आ पहुँचा ॥१५३॥ राजा जनकने अवृत्त हो बार-बार भामण्डलका वृत्तान्त पूछा और विद्याधरोने सब वृत्तान्त ज्योंकान्त्यों बढ़े विस्तारसे कहा ॥१५४॥

तदनन्तर राजा जनक समस्त भाई-बन्धुओंके साथ विमानपर आरूढ़ हो निमेषमात्रमें अयोध्या जा पहुँचे । उस समय अयोध्या तुरहीके मधुर शब्दसे शब्दायमान हो रही थी ॥१५५॥ आकाशसे शीघ्र ही उतरकर उन्होंने पुत्रका गाढ़ आलिङ्गन किया । आलिङ्गनजन्य सुखसे उनके नेत्र निमीलित हो गये और क्षण भरके लिए वे मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥१५६॥ सचेत होनेपर उन्होंने जिनसे अश्रु-जल भर रहा था ऐसे विशाल लोचनोंसे वृत्तिकर पुत्रका अवलोकन किया तथा हाथसे उसका स्पर्श किया ॥१५७॥ माता विदेहा भी पुत्रको देखकर तथा आलिङ्गन कर हर्षातिरेकसे मूर्च्छित हो गईं और सचेत होनेपर ऐसा रुदन करने लगी कि जिससे तिर्यञ्चोको भी दया उत्पन्न हो रही थी ॥१५८॥ वह विलाप करने लगी कि हाय पुत्र ! तू उत्पन्न होते ही किसी विकट वैरीके द्वारा क्यों अपहृत हो गया था ? ॥१५९॥ मेरा यह शरीर अग्निके समान तेरे देखनेकी चिन्तासे अब तक जलता रहा है । आज चिरकालके बाद तेरे दर्शनरूपी जलसे शान्त हुआ है ॥१६०॥ पुष्पवती बड़ी ही धन्य और भाग्यशालिनी उत्तम स्त्री है जिसने कि बाल्य अवस्थामें क्रीड़ासे धूलधूसरित तेरे अङ्ग अपनी गोदमें रक्खे हैं तथा चन्दनसे लिप्त और केशरके तिलकसे सुशोभित तेरे मुखका चुम्बन किया है एवं शोशव अवस्थाको धारण करनेवाले तेरे कुमारकालीन शरीरको देखा है ॥१६१-१६२॥ माता विदेहाके नेत्रोंसे आँसू और स्तनोंसे चिरकाल तक दूध निकलता रहा । वह उत्तम पुत्रका सङ्ग पाकर परम आनन्दको प्राप्त हुई ॥१६३॥

१. वृत्तमिवा-म० । २. थावद्विद्यामिबद्धकः म० । ३. तूर्यवैदिता ख० । ४. 'तादसेचनकं वृते वास्त्यन्तो यस्य दर्शनात्' ।

अर्हच्छासनदेवीव जूम्भैरावतनामनि । सा तत्र लोचने कृत्वा तस्यौ मग्ना सुखाम्बुधौ ॥१६४॥
 मासमात्रमुपित्वातो बन्धुसङ्गममोदिना । पद्मो भामण्डलेनोचे विनयं विभ्रता^१ परम् ॥१६५॥
 वैदेह्याः शरणं देव त्वमेवोत्तमवान्धवः । छन्देऽस्त्या वर्ततां येन नो यात्युद्देगमेपका ॥१६६॥
 स्वसारं च समाख्यं स्नेहादेनां सुचेष्टिताम् । उपादिशद्सौ भूयो भूयः प्रवरमानसः ॥१६७॥
 मातालिन्त्यागदत् सीतां सुते इवसुरयोः प्रिये । परिवर्गे च तच्छ्रियाः श्लाघ्यतां येन गच्छसि ॥१६८॥
 सर्वानामन्य विन्यस्य कनके मिथिलेशिताम् । गृहीत्वा पितरौ यातः स्थानं भामण्डलो निजम् ॥१६९॥

इन्द्रवज्रा

वीक्षस्व माहात्म्यमिदं कृतस्य धर्मस्य पूर्वं मगधाधिराज ।
 विद्याधरेन्द्रो यदवापि बन्धुः सीता च पत्नी गुणरूपपूर्णा ॥१७०॥

उपजातिः

अधिष्ठते देवगणैश्च चापे सकन्दे सरंगदादियुक्ते ।
 लब्धे सुरैरप्यतिदुर्लभे ये पद्मो लक्ष्मीनिलयश्च भृत्यः ॥१७१॥

उपेन्द्रवज्रा

इदं जनो यः सुविशुद्धचेताः शृणोति भामण्डलबन्धुयोगम् ।
 अभीष्टयोगानरुजश्चिराय रविप्रभोजसौ लभते शुभात्मा ॥१७२॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यश्रेणे पद्मचरिते भामण्डलसमागमामिधानं नाम त्रिंशत्तमं पर्व ॥३०॥

जिस प्रकार ऐरावत क्षेत्रमें जूम्भा नामकी जिनशासनकी सेवक देवी रहती है उसी प्रकार वह भामण्डलपर दृष्टि लगाकर अर्थात् उसे देखती हुई सुखरूपी सागरमें निमग्न होकर रहने लगी ॥१६४॥ तदनन्तर एक मास तक अयोध्यामें रहनेके बाद भाई-बन्धुओंके समागमसे प्रसन्न एवं परम विनयको धारण करनेवाले भामण्डलने श्रीरामसे कहा कि ॥१६५॥ हे देव ! सीताके आप ही शरण हो और आप ही इसके सर्वोत्तम वान्धव हो । आप इसके हृदयमें इस प्रकार विद्यमान रहे कि जिससे यह उद्देगको प्राप्त न हो ॥१६६॥ उत्कृष्ट हृदयके धारक भामण्डलने उत्तम चेष्टाओंसे सुशोभित वहिनका स्नेहवश आलिङ्गन कर उसे बार-बार उपदेश दिया ॥१६७॥ माता विदेहाने भी सीताका आलिङ्गन कर कहा कि हे बेटी ! तू अपने सास ससुरको प्रिय हो, तथा परिजनके साथ ऐसा व्यवहार कर कि जिससे प्रशंसाको प्राप्त हो ॥१६८॥ तदनन्तर भामण्डल सब लोगोंसे पूछकर तथा मिथिलाका राज्य कनकके लिए सौंपकर माता पिताको साथ ले अपने स्थानपर चला गया ॥१६९॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! पूर्वं भवमें किये हुए धर्मका यह माहात्म्य देखो । धर्मके माहात्म्यसे ही रामने विद्याधरोका राजा भामण्डल जैसा बन्धु प्राप्त किया, गुण तथा रूपसे परिपूर्ण सीता जैसी पत्नी प्राप्त की तथा देवोंके समूहसे अधिष्ठित कवच, हल, गदा आदिसे युक्त एवं देवोंके द्वारा दुर्लभ धनुष प्राप्त किये । लक्ष्मीका भाण्डार लक्ष्मण जैसा सेवक प्राप्त किया ॥१७०-१७१॥ जो मनुष्य अत्यन्त विशुद्ध हृदयसे भामण्डलके इस इष्ट समागमको मुनता है सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह शुभात्मा मनुष्य चिरकाल तक इष्ट जनोके साथ समागम और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७२॥

इस प्रकार आर्षेणामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें भामण्डलके समागमका वर्णन करनेवाला तीसरा पर्व समाप्त हुआ ॥३०॥

एकत्रिंशत्तमं पर्व

उवाच श्रेणिको भूप. सवन्धुरनरैरण्यजः । इमां विभूतिं सम्प्राप्य चक्रे किं गणनायक ॥१॥
पुरातनं च वृत्तान्तं रामलक्ष्मणयोस्तयोः । तत्रैव विदितं सर्वं तन्नो ब्रूहि महायशः ॥२॥
इति पृष्टो महातेजा जगाद मुनिपुङ्गवः । निरवद्यं तथा तत्त्वं यथा सर्वशुभापितम् ॥३॥
स्वसंशयमशेषं राजा दशरथोऽन्यदा । प्रणम्य साधुमप्राचीत् सर्वभूतहितं हितम् ॥४॥
मया जन्मानि भूरीणि परिप्राप्तानि याणि तु । वेद्यं क्वमपि नो तेषां तत्सर्वं विदितं त्वया ॥५॥
तान्यहं ज्ञातुमिच्छामि भगवन्नुच्यतामिति । भवत्पसादतो मोहं निराकर्तुमहं यजे ॥६॥
श्रोतुं समुद्यतस्यैवं^१ भवान्^२ दशरथस्य तु । सर्वभूतहितः साधुरिदं वचनमब्रवीत् ॥७॥
शृणु राजन् प्रवचयामि यन्मां पृच्छसि सन्मते । त्वया पर्यव्य संसारे मतिरासादिता यथा ॥८॥
न त्वयैकेन संसारो भ्रान्तोऽन्यैरपि संसृतः^३ । चिन्वानैः कर्मभिः कर्मदुःखसंजननो महान् ॥९॥
अस्मिन् जगत्त्रये राजन् जन्तूनां स्वहितैषिणाम् । स्थितयस्तिष्ठ उद्दिष्टा उत्तममध्यममथ्याः ॥१०॥
^४अभाष्यी च तथा^५ भाष्यी सैद्धी^६ च गतिपूत्तमा । पुनरावृत्तिनिर्मुक्ता कल्याणी जिनदेशिता ॥११॥
सेयं सिद्धगतिः शुद्धा सनातनसुखावहा । इन्द्रियव्रणरोगातैर्मोहेनान्धैर्न दृश्यते ॥१२॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि हे गणनायक ! इष्टजनोसे सहित, राजा अनरण्यके पुत्र राजा दशरथने इस विभूतिको पाकर क्या किया ? ॥१॥ हे महायशके धारक ! राम और लक्ष्मणका पुरातन वृत्तान्त आपको ही विदित है इसलिए वह सब वृत्तान्त मुझसे कहिए ॥२॥ इस प्रकार पूछे गये महातेजस्वी मुनिराजने कहा कि हे राजन् ! इनका जैसा वृत्तान्त सर्वज्ञदेवने कहा है वैसा कहता हूँ तू सुन ॥३॥ वे कहने लगे कि किसी समय राजा दशरथने समस्त पदार्थोंको जाननेवाले सर्वभूतहित नामक हितकारी मुनिराजको प्रणाम कर उनसे अपना संशय पूछा ॥४॥ उन्होंने कहा कि हे स्वामिन् ! मैंने बहुतसे जन्म धारण किये हैं पर मैं उनमेंसे एक भी भवको नहीं जानता जब कि आपके द्वारा सब विदित हैं ॥५॥ हे भगवन् ! मैं उन्हें जानना चाहता हूँ सो कहिए । आपके प्रसादसे मुझे मोह नष्ट करनेके लिए मैं आपकी पूजा करता हूँ ॥६॥ इस प्रकार भवान्तर सुननेके लिए उद्यत राजा दशरथसे सर्वभूतहित मुनि निम्नाङ्कित वचन कहने लगे ॥७॥

उन्होंने कहा कि हे राजन् ! सुन । हे सद्बुद्धिके धारक ! तुमने जो पूछा है वह सब मैं कहूँगा । तुमने इस संसारमें समन्तात् भ्रमण कर जिस प्रकार सद्बुद्धि प्राप्त की है वह सब मैं निवेदन करूँगा ॥८॥ दुःख देनेवाले इस महान् संसारमें केवल तुमने ही भ्रमण नहीं किया है किन्तु कर्मोंका संचय करनेवाले अन्य लोगोंने भी कर्मोंद्वयसे इसमें भ्रमण किया है ॥९॥ हे राजन् ! इस जगत्त्रयमें अपना हित चाहनेवाले प्राणियोंकी दशाएँ उत्तम मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकारकी वर्णित की गई हैं ॥१०॥ उनमेंसे अभव्य जीवकी दशा जघन्य है, भव्यकी मध्यम है और सिद्धोंकी उत्तम है । जिनेन्द्रभगवान्ने सिद्धगतिको पुनरागमनसे रहित तथा कल्याणकारिणी बतलाया है ॥११॥ यह सिद्धगति शुद्ध है तथा सनातन सुखको देनेवाली है ।

१. दशरथः । २. विदितं म० । ३. समुद्यतस्यैव म० । ४. पूर्वपर्यायान् । ५. संसरणविपयीकृतः । ६. अभव्यत्येयम् अभाष्यी । ७. भव्यत्येयं भाष्यी । ८. सिद्धानामिषं सैद्धी ।

श्रद्धास्ववेगहीनानां हिंसादिष्वनिवर्तिनाम् । चतुर्गतिकसवर्ता गतिरुग्रतमोरजाः ॥१३॥
 अभयानां गतिः त्रिलोका विनाशपरिवर्जिता ! भयानां तु परिश्रेया गतिर्निवृत्तिभाविनी ॥१४॥
 धर्मादिद्रव्यपर्यन्तं लोकालोकमशेषतः । पृथिवीप्रभृतीन् कात्यानाश्रिताश्वेतानामृतः ॥१५॥
 जीवराशिरनन्तोऽर्थं विद्यते नास्य संक्षयः । दृष्टान्तः सिकताकाशचन्द्रादित्यकरादिकः ॥१६॥
 'अनाद्यमन्तनिर्मुक्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् । स्वकर्मनिचयोपेतं नानायोगिनिकृताटनम् ॥१७॥
 सिद्धाः सिद्धयन्ति सेत्स्यन्ति कालेऽन्तपरिवर्जिते । जिनदृष्टेन धर्मेण नैवान्येन कथञ्चन ॥१८॥
 यः सन्देहकलङ्केन निश्चितः पापकर्मणा । 'अभावितस्य धर्मेण का तस्य श्रद्धानता ॥१९॥
 कुतः श्रद्धाविमुक्तस्य धर्मो धर्मफलानि च । अत्यन्तदुःखमज्ञानं^१ सम्यक्स्वरहितात्मनाम् ॥२०॥
 अत्युग्रकर्मनिर्माके^२ वेष्टितानां समन्ततः । मिथ्याधर्मानुरक्तानां स्वाहिताद्दूर^३वर्तिनाम् ॥२१॥
 सेनापुरेऽथ दीपिन्या उपास्तितानाम^४ भावनः । सा च मिथ्याभिमानेन परिपूर्णा निरगलम् ॥२२॥
 'अश्रद्धानां संरंभमत्सरच्चेडधारिणी । दुर्भावा सततं साधुनिन्दनासकशब्दिना ॥२३॥
 प्रयच्छति स्वयं नात्र यच्छन्तं नानुमन्यते । निवारयति यत्नेन त्रिद्यमानं सुभूर्यपि ॥२४॥

इन्द्रियरूपी व्रणरोगसे पीड़ित तथा मोहसे अन्धे मनुष्य इसे नहीं देख सकते हैं ॥१२॥ जो मनुष्य श्रद्धा और संवेगसे रहित हैं तथा हिंसादि पाँच पापोंसे निवृत्त नहीं हैं उनकी चतुर्गतिमें भ्रमण करनेवाली गति अर्थात् दशा होती है । उनकी यह गति अत्यन्त उग्र तमोगुण और रजोगुणसे युक्त रहती है ॥१३॥ अभय जीवोंकी गति अतिशय दुःखपूर्ण तथा विनाशसे रहित है और भय जीवोंकी गति मोक्ष प्राप्त करनेवाली है अर्थात् अभय जीव सदा चतुर्गतिमें ही भ्रमण करते हैं और भय जीवोंमें किन्हींका निर्वाण भी हो जाता है ॥१४॥ 'जहाँ तक धर्माधर्मादि द्रव्य पाये जाते हैं उसे लोक कहते हैं और वाकी समस्त आकाश अलोक कहलता है । संसारके समस्त प्राणी पृथिवी आदि पटकायको धारण करनेवाले हैं ॥१५॥ यह जीवराशि अनन्त है । इसका क्षय नहीं होता है । इसके लिए बालूके कण, आकाश अथवा चन्द्रमा सूर्य आदिकी किरणें दृष्टान्त हैं अर्थात् जिस प्रकार बालूके कणोंका अन्त नहीं है, आकाशका अन्त नहीं है और चन्द्र तथा सूर्यकी किरणोंका अन्त नहीं है उसी प्रकार जीवराशिका भी अन्त नहीं है ॥१६॥ चर अचर पदार्थों अर्थात् त्रस स्थावर जीवोंसे सहित ये तीनों लोक अनादि अनन्त हैं, स्वकीय कर्मोंके समूहसे सहित है तथा नाना योनियोंके जीव इनमें भ्रमण करते रहते हैं ॥१७॥ आज तक जितने सिद्ध हुए हैं, जो वर्तमानमें सिद्ध हो रहे हैं और जो अनन्त काल तक सिद्ध होंगे वे जिनेंद्रदेवके द्वारा देखे हुए धर्मके द्वारा ही होंगे अन्य किसी प्रकारसे नहीं ॥१८॥ जो पाप कर्मके कारण संशयरूपी कलङ्कसे व्याप्त है तथा धर्मकी भावना अर्थात् संस्कारसे रहित है उसके सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ? ॥१९॥ जो मनुष्य श्रद्धासे रहित है उसके धर्म और धर्मके फल कहाँसे प्राप्त हो सकते हैं ? जिनकी आत्मा सम्यग्दर्शनसे रहित है, जो अत्यन्त उग्र कर्मरूपी कौचलीसे सब ओरसे वेष्टित है, जो मिथ्या धर्मसे अनुरक्त हैं और जो आत्महितसे दूर रहते हैं उन प्राणियोंको अत्यन्त दुःख देनेवाला अज्ञान ही प्राप्त होता है ॥२०-२१॥

अथानन्तर हस्तिनापुर नगरमें एक उपास्ति नामका गृहस्थ था । उसकी दीपिनी नामकी स्त्री थी । वह दीपिनी मिथ्या अभिमानसे पूर्ण थी, श्रद्धासे रहित थी, क्रोध तथा मात्सर्यरूपी विषको धारण करनेवाली थी, दुष्ट भावोंसे युक्त थी, उसके शब्द सदा साधुओंकी निन्दा करनेमें तत्पर रहते थे । वह न कभी स्वयं किसीको आहार देती थी और न देते हुए किसी दूसरेकी

१. अनादिमन्त-म० । २. असंस्कृतस्व-धर्मभावनारहितस्येति यावत् । ३. विज्ञानं म० । ४. निर्माके वेष्टिताना म० । ५. दुःखवर्तिना । ६. गृहस्थः इति । ७. अश्रद्धानात् म० ।

एवमादिमहादोषा कुर्तार्यपरिभाविता । कालमेत्याभ्रमद्भौमे निष्पारे भवसागरे ॥२५॥
 उपास्तितर्देहि देहीति समभ्यस्याक्षरद्वयम् । पुण्यकर्मांशुभावेन पुरेऽन्द्रकपुराह्वये ॥२६॥
 सुतोऽमृद् भद्रधारिण्योर्भाग्यवान् बहुबान्धवः । धारणो नामतत्तस्य पत्नी नयनसुन्दरी ॥२७॥
 देशकालप्रसन्नेभ्यः साधुभ्यः शुद्धभावतः । उल्वासौ पारणा सम्यक्काले संत्यज्य विग्रहम् ॥२८॥
 विदेहे धातकीखण्डे मेरोरुत्तरतः कुरौ । भुक्त्वा पत्यत्रयं भोगं समारूढस्त्रिविष्टपम् ॥२९॥
 च्युतोऽन्तः पुष्कलावत्यां नगर्यां नन्दिघोषतः । वसुधायां समुत्पन्नो नामतो नन्दिर्वर्धनः ॥३०॥
 नन्दिघोषोऽन्यदा धर्मं श्रुत्वोद्यानं प्रबुद्धवान् । नन्दिर्वर्धनमाधाय पृथिवीपरिपालने ॥३१॥
 यशोधरमुनेः पार्वे प्रमज्ज्य सुमहत्तपः । कृत्वा स्वर्गं समारूढस्तनुं त्यक्त्वा यथाविधि ॥३२॥
 गृहधर्मसमाप्तको नमस्कारपरायणः । पूर्वकोटीं महाभोगान् शुकत्वा श्रीनन्दिर्वर्धनः ॥३३॥
 संन्यासेन तनुं त्यक्त्वा प्रयातः पञ्चमं दिवम् । ततश्च्युतो विदेहेऽस्मिन् गिरिराजस्य पश्चिमे ॥३४॥
 स्थिते शशिपुरे स्थाने विजयाद्वनगोचमे । सूर्यज्ञयोऽभवद् विद्युल्लंतायां रत्नमालिनः ॥३५॥
 अन्यदा सिंहनगरं रत्नमाली महाबलः । प्रस्थितो विग्रहं कर्तुं यत्रासौ वज्रलोचनः ॥३६॥
 रथैः प्रभास्वरैर्दिव्यैः पदातिगजवाजिभिः । नानाशस्त्रकृतध्वान्तैः सामन्तैः सुमहाबलैः ॥३७॥

अनुभोदना करती थी । यदि कोई दानादि सत्कार्योमें प्रवृत्त होता था तो उसे वह प्रयत्नपूर्वक मना करती थी । इत्यादि अनेक महादोषोसे युक्त थी और कुर्तार्यकी भावनासे युक्त थी । इस प्रकार समय व्यतीत कर वह भयङ्कर तथा पाररहित संसार सागरमें भ्रमण करने लगी ॥२२-२५॥ इसके विपरीत उपास्तित 'देहि' 'देहि' अर्थात् 'देओ' 'देओ' इन दो अक्षरोंका अच्छी तरह अभ्यास कर—अत्यधिक दान देकर पुण्य कर्मके प्रभावसे अन्द्रकपुरनामा नगरमें मद्रनामा गृहस्थ और उसकी धारिणीनामा स्त्रीके धारण नामका भाग्यशाली एवं अनेक बन्धुजनोंसे युक्त पुत्र हुआ । उसकी नयनसुन्दरी नामकी स्त्री थी ॥२६-२७॥ वह योग्य देश तथा कालमें प्राप्त हुए साधुओंके लिए शुद्धभावसे आहार देता था । जिसके फलस्वरूप अन्तमें समाधिपूर्वक शरीर का त्यागकर धातकीखण्डद्वीप सम्बन्धी विदेह क्षेत्रमें मेरु पर्वतकी उत्तर दिशामें विद्यमान कुरुक्षेत्रमें आर्य हुआ । वहाँ तीन पत्य तक भोग भोगकर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥२८-२९॥ वहाँसे च्युत होकर पुष्कलावती नगरीमें राजा नन्दिघोष और वसुधा रानीके नन्दिर्वर्धन नामका पुत्र हुआ ॥३०॥ एक दिन राजा नन्दिघोष जल्कृष्ट धर्म श्रवण कर प्रबोधको प्राप्त हुआ और नन्दिर्वर्धनको पृथिवी-पालनका भार सौंप यशोधर मुनिराजके समीप दीक्षा लेकर महातप करने लगा । तथा अन्तमें विधिपूर्वक शरीर त्यागकर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥३१-३२॥

इधर नन्दिर्वर्धन गृहस्थका धर्म धारण करनेमें लीन एवं पञ्चनमस्कार मन्त्रकी आराधना करनेमें तत्पर था । वह एक करोड़ पूर्वतक महाभोगोको भोगकर तथा संन्याससे शरीर छोड़कर पञ्चम स्वर्गमें गया । वहाँसे च्युत होकर इसी विदेह क्षेत्रमें सुमेरु पर्वतके पश्चिमकी ओर विजयार्थ पर्वतपर स्थित शशिपुरनामा नगरमें राजा रत्नमाली और रानी विद्युल्लताके सूर्यजय नामका पुत्र हुआ ॥३३-३५॥

अथानन्तर एक समय महा बलवान् राजा रत्नमाली युद्ध करनेके लिए उस सिंहपुर नगर की ओर चला जहाँ कि राजा वज्रलोचन रहता था ॥३६॥ वह देदीप्यमान सुन्दर रथ, पैदल सेना, हाथी, घोड़े तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंसे अन्धकार उत्पन्न करनेवाले अत्यन्त बलवान्

१. चन्द्रपुराह्वये म० । २. मद्रनामा पुरुषः, तस्य धारिणी नाम्नी स्त्री तयोः । ३. प्रयत्नेभ्यो म० । ४. स्वर्गम् । ५. पृथुलावत्यां ज० । ६. सुमेरोः ।

तं दृष्टोष्ठं धनुःपाणिं कवचावृतविग्रहम् । ^१दग्धुकाममरिस्थानं क्रोधादानेयविद्यया ॥३८॥
 रथाग्राखण्डमायान्तं वेगिनं भीषणाकृतिम् । नभस्यं सहसा कश्चिदमरोभिदधाविति ॥३९॥
 रत्नमालिन् किमारव्यामिदं संरंभमुत्सृज । विवृष्यस्व वदान्येष वृत्तान्तं तव पूर्वकम् ॥४०॥
 इहासीद् भारते वास्ये मांसादोऽथमकर्मकृत् । गान्धार्या भूतिरुर्वीभृदुपमन्युः पुरोहितः ॥४१॥
 साधोः कमलगर्भस्य श्रुत्वा ^२व्याकरणं च सः । नाचरामि पुनः पापमिति व्रतमुपाददे ॥४२॥
 पञ्चपत्न्योपमं स्वर्गे तेनायुः समुपाजितम् । उपमन्यूपदेशेन ^४भस्मसाङ्गावमाहृतम् ॥४३॥
 मुञ्चते सुकृतं चासाववस्कन्देन चारिभिः । प्रपत्य हिंसितः साकमुपमन्युः ^५पुरोधसा ॥४४॥
 पुरोहितो गजो जातो युद्धेऽसौ जर्जरकृतः । सम्प्राप्य ^६जाण्यमप्राप्तमितरैर्दुःखभाजनैः ॥४५॥
 पुनस्तत्रैव गान्धार्या भूतिपुत्रस्य धीमतः । देव्यां योजनगन्धार्थां पुत्रोऽभूदरिसूदनः ॥४६॥
 दृष्ट्वा कमलगर्भं च पूर्वं जन्म समस्मरत् । प्रव्रज्यासौ ततो मृत्वा ^७शतारंजेऽहं सुरोऽभवम् ॥४७॥
 स त्वं “भूतिमृगो जातो मन्दारण्ये दुराकृतिः । अकामनिर्जरा तस्य दावदग्धस्य ^८भूकृता” ॥४८॥
 कम्बोजेन सताकारि यत्प्रया कर्म दाहणम् । ^९विलङ्गाख्येन मृतस्त्वासीच्छर्करानरकं गतः ॥४९॥
^{१०}मया स्नेहासुवन्धेन ततस्त्वं सम्प्रबोधितः । अयमुद्दृष्ट्य जातोऽसि रत्नमाली खगेश्वरः ॥५०॥

सामन्तोसे सहित था-॥३७॥ जो क्रोधके कारण ओंठ डस रहा था, जिसके हाथमे धनुष था, जिसका शरीर कवचसे आच्छादित था, जो आग्नेयविद्यासे शत्रुका स्थान जलाना चाहता था, जो रथके अग्रभागपर आरूढ़ था, जो वेगशाली था एवं भयङ्कर आकारका धारक था। ऐसे उस रत्नमालीको आकाशमे स्थित देख सहसा किसी देवने इस प्रकार कहा ॥३८-३९॥ कि हे रत्नमालिन्! तूने यह क्या आरम्भ कर रक्खा है? क्रोधको छोड़ और स्मरण कर, मैं तेरा पूर्व वृत्तान्त कहता हूँ ॥४०॥

इसी भरत क्षेत्रकी गान्धारीनामा नगरीमें एक भूति नामका राजा था। उपमन्यु उसके पुरोहितका नाम था। राजा और पुरोहित दोनों ही मांसभोजी तथा नीचकार्य करनेवाले थे ॥४१॥ एक बार कमलगर्भनामा मुनिका व्याख्यान सुनकर राजा भूतिने व्रत लिया कि अब मैं ऐसे पापका आचरण फिर कभी नहीं करूँगा ॥४२॥ इस व्रतके प्रभावसे उसने इतने पुण्यका सञ्चय किया कि उससे स्वर्गकी पौच पत्य प्रमाण आयुका बन्ध हो सकता था, परन्तु उपमन्यु पुरोहितके उपदेशसे उसका यह सब पुण्य भस्म-भावको प्राप्त हो गया अर्थात् नष्ट हो गया। उसने उस पुण्यभावको छोड़ दिया। उसी समय शत्रुओंने आक्रमण कर पुरोहितके साथ-साथ उसे मार डाला ॥४३-४४॥ पुरोहितका जीव मरकर हाथी हुआ सो युद्धमे घायल हो अन्य दुःखी जीवोंको जिसका मिलना दुर्लभ था ऐसे पञ्च नमस्कार भन्त्रको पाकर उसी गान्धारीके राजा भूतिके बुद्धिमान पुत्रकी योजनगन्धा नामा स्त्रीके अरिसूदन नामका पुत्र हुआ ॥४५-४६॥ कमलगर्भ मुनिराजके दर्शन कर अरिसूदनको पूर्व जन्मका स्मरण हो आया जिससे विरक्त होकर उसने दीक्षा ले ली और मरकर शतार नामक ग्यारहवें स्वर्ग मे देव हुआ। इस तरह मैं वही पुरोहितका जीव देव हूँ और तू राजा भूतिका जीव मरकर मन्दारण्यनामा वनमे मृग हुआ सो वहाँ दावानलमे जलकर उसने अकामनिर्जरा की उसके फलस्वरूप वह विलङ्ग नामका नीच पुरुष हुआ। उस पर्यायमे तूने जो दाहण कार्य किये—तोत्र पाप किये। उनके फलस्वरूप तू शर्कराप्रभा नामक दूसरे नरक गया ॥४७-४९॥ तदनन्तर स्नेहके संस्कारसे मैंने वहाँ

१ दग्धुं कामं 'दुं काममनसोरपि' इति मलोपः दग्धकामम० । २ जगद । ३ व्याख्यानम् । ४ उपमन्यूपदेशेन व्रतं त्यक्तम् । ५ उपमन्युः पुरोधसा म० । ६ जप्य म० । ७ शतारस्वर्ग । ८ भूतिनाम-
 नृपः । ९ दृष्टदग्धोत्प म०, ख० । १० नीचपुत्रेण । ११ विलङ्गाख्ये वने मृतः सन् शर्करानामनरकं
 प्राप्तः । १२ महा- म० ।

पर्याप्तानि न किं तानि दुःखानांत्युदितश्च सः । सूर्यज्ञयसुतं राज्ये निधाय कुलनन्दनम् ॥५१॥
 वृत्तान्तश्रवणात्समात्परं निर्वेदभीषुषा । सूर्यज्ञयेन सहितं सत्कर्मोदयचेतसा ॥५२॥
 रत्नमाली पुनर्नानादुर्गातिव्रस्तमानसः । यथौ शरणमाचार्यं सौम्यं तिलकसुन्दरम् ॥५३॥
 सूर्यज्ञयस्तपः कृत्वा महाशुक्रमुपागमत् । च्युतोऽनरण्यराजर्षेः सुतो दशरथोऽभवत् ॥५४॥
 स्वल्पेन सुकृतेन त्वमुपास्तिप्रमुखैर्भवेः । न्यग्रोथबीजवद्बृद्धिं सम्प्राप्तोऽसि शुभोदयात् ॥५५॥
 नन्दिवर्धनकाले तैर् नन्दिवोपपिता च यः । सोऽहं प्रवैयकाद् भ्रष्टः सर्वभूतहितोऽभवम् ॥५६॥
 यो भूतिरूपमन्युश्च ३ तावेतौ तद्दशालुगौ । जनको कनकक्षेत्रि जातौ सुकृतचेतसा ॥५७॥
 संसारे न परः कश्चिन्नात्मीयः कश्चिदज्ञसा । सैषा शुभाशुभैर्जन्तोर्द्वर्तपरिवर्तना ॥५८॥
 उदाहृतमिदं श्रुत्वा विनीतो वीतसंशयः । अनरण्यसुतो जातः प्रबुद्धः संयमोन्मुखः ॥५९॥
 सर्वादरसमेतश्च सम्पूज्य चरणौ गुरोः । प्रगम्य च विशुद्धात्मा प्रविवेश सुकोशलम् ॥६०॥
 एवं च मानसे चक्रे सार्वभूमेश्वरं पदम् । पद्याय सुधिये दत्त्वा माधवीनां श्रये गतिम् ॥६१॥
 धर्मात्मा सुस्थिरो रामखिससुद्रां वसुन्धरात् । अनुपालयितुं शक्तो भ्रातृभिः परिवारितः ॥६२॥
 चिन्तयत्येवमेवास्मिन् राज्यमोहपराद्मुखे । सुक्यर्थोऽहितचेतस्के श्रीमद्दशरथे नृपे ॥६३॥
 तिरोधान गता क्वापि स्वच्छन्द्योत्सनापटा शरत् । चन्द्रास्याहिमभोतेव सरीरुहनिरीक्षणा ॥६४॥
 प्राप्तः प्रालेयसंपातं विच्छायांकृतनीरजम् । हेमन्तो जडवातेन व्याकुलीकृतविष्टपः ॥६५॥

जाकर तुमै सम्प्रोधा जिसके प्रभावसे निकल कर तू यह रत्नमाली विद्याधर हुआ है ॥५०॥
 तूने क्या वे दुःख नहीं पाये है ? इस प्रकार देवके कहते ही रत्नमालीका मन नाना दुर्गातियोसे
 भयभीत हो गया । इस वृत्तान्तके सुननेसे रत्नमालीका पुत्र सूर्यजय भी परम वैराग्यको प्राप्त हो
 गया इसलिए उस पुण्यात्माके साथ ही साथ राजा रत्नमाली, सूर्यजयके पुत्र कुलनन्दको राज्य
 देकर तिलकसुन्दरनामा प्रशान्त आचार्यकी शरणमे पहुँचा ॥५१-५३॥ तदनन्तर सूर्यजय तप कर
 महाशुक्र स्वर्गमें गया और वहाँसे च्युत होकर राजर्षि अनरण्यके दशरथ नामका पुत्र हुआ ॥५४॥
 सर्वभूतहित मुनि कहते हैं कि तू थोड़े ही पुण्यके द्वारा उपास्ति आदि भगोंमे चटवीजकी तरह
 शुभोदयसे बुद्धिको प्राप्त हुआ है ॥५५ तू राजा दशरथ उपास्तिका जीव है और नन्दिवर्धनकी
 पर्यायमे जो तेरा पिता नन्दिघोष था वह तपकर प्रवैयक गया और वहाँसे च्युत होकर मैं सर्वभूत-
 हित हुआ हूँ ॥५६॥ तथा उसके अनुकूल रहनेवाले जो भूति और उपमन्युके जीव थे वे पुण्यके
 प्रभावसे क्रमशः राजा जनक एवं कनक हुए हैं ॥५७॥ वास्तवमें इस संसारमें न तो कोई पर है
 और न अपना है । शुभाशुभ कर्मोंके कारण जीवका यह जन्म-मरणरूप परिवर्तन होता रहता
 है ॥५८॥ इस प्रकार पूर्व भवका वृत्तान्त सुन अनरण्यका पुत्र राजा दशरथ प्रतिबोधको प्राप्त
 हुआ तथा सब प्रकारका संशय छोड़ विनीत हो संयम धारण करनेके समुत्सुक हुआ ॥५९॥
 सम्पूर्ण आदरके साथ उसने गुरुके चरणोंकी पूजा की, उन्हें प्रणाम किया और तदनन्तर निर्मल
 हृदय हो नगरमें प्रवेश किया ॥६०॥ उसने मनमें विचार किया कि यह महामण्डलेश्वरका पद
 बुद्धिमान् रामके लिए देकर मैं मुनिव्रत धारण करूँ ॥६१॥ धर्मात्मा तथा स्थिर चित्तका धारक
 राम अपने भाइयोंके साथ जिसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिणमें तीन समुद्र हैं ऐसी इस भरत
 क्षेत्रकी पृथ्वीका पालन करनेमें समर्थ है ॥६२॥ इस प्रकार राज्यके मोहसे विमुख और मुक्तिके
 लिए चित्त धारण करनेवाले राजा दशरथ ऐसा विचार कर रहे थे कि उसी समय निर्मल चाँदनी
 ही जिसका वस्त्र थी, चन्द्रमा ही जिसका मुख था और कमल ही जिसके नेत्र थे ऐसी शरद्-
 ऋतुरूपी स्त्री हिमसे डरकर ही मानो कहीं जा छिपी ॥६३॥-६४॥ और लगातार हिमके पड़नेसे

स्फुटिताधरपादान्ताः पृष्ठन्यस्तपटच्चराः । दन्तवीणाकृतस्वाना रुचञ्चयाकुलमूर्धजाः ॥६६॥
 तित्तिरच्छदनच्छायक्रोडजङ्घा विभावसोः । सततासेवनात् कुचिपूरणाद्यूनचेतसः ॥६७॥
 शरीरच्छायया तुल्याः प्रपकत्रपुपत्वचः । दुर्गेहिनीवचःशखैरत्यन्तं^१ तष्टमानसाः ॥६८॥
^२काष्ठाद्यानपनासका दिवाभास्करतापिताः । कुठारादिधराः स्कन्धो दधानाः किणककेशी ॥६९॥
 शाकाम्लखलकाद्यन्तपरिपूरितकुचयः । दुष्कं नयन्ति तत्कालं^३ दुष्कुटीपु धनोक्तिताः ॥७०॥
 वरप्रासादयातास्तु शीतसङ्गमहारिभिः । सवीताङ्गा वरैर्वस्त्रैर्धूपामोदानुवन्धिभिः ॥७१॥
 पद्मरसं स्वादुसम्पन्नं हेमरुक्मादिपात्रगम् । भुञ्जानाः सुरभिस्निग्धमाहारं निजलीलया ॥७२॥
 कुङ्कुमप्रविलिस्ताङ्गा असितागुरुधूपिताः । अक्षीणधननिश्चिन्ता गवाचकृतवीक्षणः ॥७३॥
 गीतनृत्यादिसम्प्राप्ता विनोद परमं सदा । साल्यभूषणसम्पन्नाः सुभाःपितकथोद्यताः ॥७४॥
 विनीताभिः कलाज्ञाभिः सुरुपाभिः समं नराः । क्रीडन्ति वरनारीभिः तदा पुण्यानुभावतः ॥७५॥
 पुण्येन लभ्यते सौख्यमपुण्येन च दुःखिताः^४ । कर्मणामुचितं लोकः सर्वं फलमुपायतुते ॥७६॥
 तदा दशरथो भीतो भृशं संसारवासतः । “निर्वृत्यालिङ्गनाकांची विरक्तो भोगवस्तुतः^५ ॥७७॥
 द्वाःस्थमाज्ञापयन्मृत्निम्यस्तजातुकरं द्रुतम् । भद्राह्वय स्वतामन्तान् मन्त्रिभिः सहितानिति ॥७८॥
 नियुज्यात्मसमं द्वारे शासनं तेन तत्कृतम् । आगतास्ते नमस्कृत्य यथास्थानमवस्थिताः ॥७९॥

जिसने कमलोंको कान्तिरहित कर दिया था तथा शीतल वायुसे जिसने समस्त संसारको व्याकुल बना दिया था ऐसा हेमन्त काल आ पहुँचा ॥६५॥ जिनके ओठ तथा पैरोंके किनारे फट गये थे, जो पीठपर पुराने चिथड़े धारण किये हुए थे, जिनके दन्त वीणाके समान शब्द कर रहे थे, जिनके भस्तकके वाल खूबे तथा विखरे हुए थे, निरन्तर अग्निके तापनेसे जिनकी गोद तथा जँघे तीतरके पङ्कके समान मटमैली हो गई थीं, जिनका चित्त पेट भरनेकी चिन्तासे दुःखी रहता था, जो शरीरकी कान्तिसे पके हुए त्रपुषफलके बल्कलके समान श्यामवर्ण थे, दुष्ट भार्याके वचनरूपी शस्त्रोंसे जिनका हृदय छिल गया था, जो लकड़ी आदिके लानेमे लगे रहते थे, जो दिनभर सूर्यके द्वारा तपाये जाते थे, जो कुल्हाड़ी आदि हथियारोंको धारण करते थे तथा जो घट्ट पड़ जानेसे कठोर कर्णोंको धारण करते थे तथा जो शाकभाजी आदिसे पेट भरते थे, ऐसे निर्धन मनुष्य जीर्ण-शीर्ण कुटियोंमें उस हेमन्तकालको बड़े कष्टसे व्यतीत करते थे ॥६६-७०॥ और इनसे विपरीत जो अक्षीण धनके कारण निश्चिन्त थे वे उत्तमोत्तम महलोंमे रहते थे, शीतके समागमको हरनेवाले तथा धूपकी सुगन्धिसे सुवासित उत्कृष्ट वस्त्रोंसे उनके शरीर ढके रहते थे, स्वर्ण तथा चाँदी आदिके पात्रमें रखे हुए, ऊह रसके स्वादिष्ट, सुगन्धित तथा स्निग्ध आहारको लीलापूर्वक ग्रहण करते थे, उनके शरीर केशरसे लिप्त तथा कालागुरुकी धूपसे सुवासित रहते थे, उनके नेत्र भरोखोंकी ओर भौंका करते थे, वे गीत, नृत्य आदि परम विनोदको प्राप्त होते रहते थे, माळा तथा आभूषणोंसे युक्त रहते थे, सुभापितोंके कहनेमें तत्पर रहते थे और विनीत, कलानियुग तथा सुन्दर रूपकी धारक उत्तम स्त्रियोंके साथ पुण्योदयसे क्रीड़ा करते थे ॥७१-७५॥ आचार्य कहते हैं कि इस संसारमें पुण्यसे सुख प्राप्त होता है और पापसे दुःख मिलता है । प्राणी अपने कर्मके अनुरूप ही सब प्रकारका फल प्राप्त करते हैं ॥७६॥

तदनन्तर उस समय संसारवाससे अत्यन्त भयभीत राजा दशरथ, मुक्तिरूपी स्त्रीके आलिङ्गनकी आकांक्षा करते हुए भोगवस्तुओंसे विरक्त हो गये ॥७७॥ जिसने पृथिवीपर घुटने और हस्त टेककर नमस्कार किया था ऐसे द्वारपालको उन्होंने तत्काल आज्ञा दी कि हे भद्र ! मन्त्रियोंसे सहित अपने सामन्तोंको बुला लाओ ॥७८॥ द्वारपालने द्वारपर अपने ही समान

१. नष्ट-ख० । २. काष्ठादानयताशक्या म० । ३. तत्कालं म० । ४. दुःखिनो भावो दुःखिता । ५. मुक्तिकान्ताश्लेषणामिलाषी । ६. भोगवस्तुन- ख०, ज०, व० ।

नाथाज्ञापय किं कृत्यमिति चोक्तेन भृश्रुता । विनीता जगते संसत् प्रव्रजामीति निश्चितम् ॥८०॥
 ततस्तन्मन्त्रिणोऽत्रोचन् गण्यमानाश्च पार्थिवाः । नाथ किं कारणं जातं मतावस्थां तवाधुना ॥८१॥
 जगादासौ समक्षं भो नन्वेतत्सकलं जगत् । शुष्कं वृणमिवाजलं दहते मृत्युवह्निना ॥८२॥
 अग्राह्य यद्भवयानां भवयानां ग्रहणोचितम् । सुरासुरनमस्कार्यं प्रशस्यं शिवस्तीख्यदम् ॥८३॥
 त्रिलोके प्रकटं सूक्ष्म विशुद्धमुपमोष्णितम् । श्रुतं तन्मुनितो जैतं श्रुतमद्य मयाचिरात् ॥८४॥
 परमं सर्वभावानां सम्यक्त्वमतिनिर्मलम् । गुरुपाद्प्रसादेन प्राप्तोऽहं वर्त्म निवृत्ते ॥८५॥
 नानाजन्ममहावर्ता मोहपङ्कसमाकुलाम् । कुतर्कग्राहसम्पूर्णा महादुःखोर्मिसन्तताम् ॥८६॥
 मृत्युकल्लोलसयुक्तां कुट्टिजलनिभराम् । समाक्रन्दमहारात्रां विधर्मजववाहिनीम् ॥८७॥
 भवापगां मम स्मृत्वा नरकाम्भोधियामिनीं । पश्यताङ्गानि कम्पन्ते वित्रासेन समन्ततः ॥८८॥
 वृथावोचत मां किंकिदात्मानं मोहिता वृशम् । तमसः प्रकटे देशे कुतः स्थानं रवौ सति ॥८९॥
 अभिपिबन्त मे पुत्रं प्रथमं राज्यपालने । त्वरितं येन निर्विघ्नं प्रविशामि तपोवनम् ॥९०॥
 इत्युक्ते निश्चितं ज्ञात्वा महाराजस्य मन्त्रिणः । सामन्ताश्च परं शोकं प्राप्ता विनतमस्तकाः ॥९१॥
 लिखन्तो भूमिमङ्गुल्या वाष्पाकुलनिरीक्षणाः । क्षणेन निष्प्रभाभृतास्तस्थूर्वाँन समाश्रिताः ॥९२॥
 प्राणेशं निश्चितं श्रुत्वा निर्ग्रन्थव्रतसंश्रयम् । एकीभूतं शुचं प्राप्तं सर्वमन्तःपुरं परम् ॥९३॥

दूसरे पुरुषको नियुक्त कर राजाज्ञाका पालन किया । सामन्त और मन्त्रीगण आकर तथा नमस्कार कर यथास्थान बैठ गये ॥७६॥ उन्होंने राजासे कहा कि हे नाथ ! आज्ञा दीजिए, क्या कार्य है ? तब राजाने विनयसे भरी सभासे कहा कि मैंने निश्चय किया है कि 'दीक्षा धारण कर्त्त' ॥८०॥ तदनन्तर मन्त्रियो तथा गण्यमान-प्रमुख राजाओंने कहा कि हे नाथ ! इस समय आपकी ऐसी बुद्धिके उत्पन्न होनेमे क्या कारण है ? ॥८१॥ तब राजाने कहा कि अये ! यह समस्त संसार सूखे वृणके समान निरन्तर मृत्युरूपी अग्निसे जल रहा है इस बातको आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं ॥८२॥ आज मैंने अभी-अभी मुनिराजके मुखसे जिनेन्द्रप्रणीत उस शास्त्रका श्रवण किया है कि जिसे अभव्य जीव ग्रहण नहीं कर सकते, जो भव्य जीवोंके ग्रहण करनेके योग्य है, सुर और असुर जिसे नमस्कार करते हैं, जो प्रशस्त है, मोक्षसुखको देनेवाला है, तीन लोकमे प्रकट है, सूक्ष्म है । विशुद्ध है तथा उपमासे रहित है ॥८३-८४॥ समस्त भावों मे सम्यक्त्व भाव ही उत्कृष्ट तथा निर्मल भाव है, यही मुक्तिका मार्ग है । गुरु चरणोंके प्रसादसे आज मैंने उसे प्राप्त किया है ॥८५॥ जिसमे नाना जन्मरूपी बड़े-बड़े भँवर उठ रहे हैं, जो मोहरूपी कोचड़से भरी है, कुतर्करूपी भंगरमच्छासे व्याप्त है, महादुःखरूपी तरङ्गोंसे युक्त है, मृत्युरूपी कल्लोलोंसे सहित है, मिथ्यात्वरूपी जलसे भरी है, जिसमें रुदनरूपी भयङ्कर शब्द हो रहा है, जो विधर्म अर्थात् मिथ्याधर्मरूपी वेगसे बह रही है तथा नरकरूपी समुद्रके पास जा रही है, ऐसी संसाररूपी नदीका स्मरण कर देखो । भयसे मेरे अङ्ग सब ओरसे कम्पित हो रहे हैं ॥८६-८८॥ आप लोग मोहके वशीभूत हो व्यर्थ ही कुछ मत कहिए अर्थात् मुझे रोकिए नहीं क्योंकि प्रकट स्थानमे सूर्यके विद्यमान रहते अन्धकारका निवास कैसे हो सकता है ? ॥८९॥ आप लोग मेरे प्रथम पुत्रका शीघ्र ही राज्याभिषेक कीजिए जिससे मैं निर्विघ्न हो तपोवन मे प्रवेश कर सकूँ ॥९०॥ ऐसा कहनेपर महाराजका हृद् निश्चय जानकर मन्त्री तथा सामन्तवर्ग परम शोकको प्राप्त हुए । सभीके मस्तक नीचे हो रहे ॥९१॥ वे अङ्गुली से भूमिको खोदने लगे, उनके नेत्र आसुओंसे व्याप्त हो गये और सभी क्षणभरमे प्रभाहीन हो चुपचाप बैठ रहे ॥९२॥ प्राणनाथ निश्चितरूपसे निर्ग्रन्थ व्रतको धारण करनेवाले हैं' यह सुनकर

विनोदान्-प्रस्तुतान्मुक्त्वा धाम्पूरितलोचनाः । भूषणस्वनभूयिष्ठं रंरुदुः प्रमदाङ्गनाः ॥६४॥
 [पितरः तादृशं दृष्ट्वा भरतः प्रतिबुद्धवान् । अचिन्तयदहो कष्ट दुःखदं स्नेहबन्धनम् ॥६५॥
 अव्यापारेण तातस्य किमेतेन प्रबोधिनः । चिन्ता राज्यगता कास्य प्रव्रज्यां कर्तुमिच्छतः ॥६६॥
 आपृच्छया न मे किञ्चिदकार्यमाशु विशाम्यहम् । तपोवनं महादुःखसंसारचयकारणम् ॥६७॥
 देहेनापि किमेतेन व्याधिगेहेन नाशिता । बान्धवेषु तु कावस्था स्वकर्मफलभोगिषु ॥६८॥
 जन्तुरेकक एवायं भवपादपसङ्कले । मोहान्धो दुःखविपिने कुस्ते परिवर्तनम् ॥६९॥
 ततः कलाकलापज्ञा भरतस्येक्षितादिभिः । केकया चिन्तितं ज्ञात्वा दधाना शोकमुत्तमम् ॥७०॥
 कथं मे न भवेद्भर्त्ता न च पुत्रो गुणालयः । एतयोर्वारणे कुर्वे कमुपायं सुनिश्चितम् ॥७१॥
 एव चिन्तामुपेतायाः परमं व्याकुलात्मनः । तस्या वरोऽभवच्चित्ते गात्वा च त्वरित ततः ॥७२॥
 प्रीत्या परमया दृष्ट्वा सावधं नराधिपम् । जगादार्थासने स्थित्वा तेजसा पुरुषान्विता ॥७३॥
 सर्वेषां भूयुतां नाथ पत्नीनां च पुरस्वया । मनीषितं ददामीति यदुक्त्वाहं प्रसादिना ॥७४॥
 वरं सम्प्रति तं यच्छ मद्य सत्यसमुज्ज्वला^१ । दानेन तेऽखिलं लोकं कीर्तिर्भ्रमति निर्मला ॥७५॥
 ततो दशरथोऽजोचद् ब्रूहि त्व दक्षिणां प्रिये । प्रार्थयस्व यद्विष्टं ते यच्छायायेव वराशये ॥७६॥

समस्त अन्तःपुर एकत्रित हो परम शोकको प्राप्त हुआ ॥६३॥ स्त्रियोंने जो विनोद प्रारम्भ कर रखे थे उन्हें छोड़कर आँसुओंसे नेत्र भर लिये तथा आभूषणोंका अत्यधिक शब्द करती हुई वे रुदन करने लगी ॥६४॥

पिताको विरक्त देख भरत भी प्रतिबोधको प्राप्त हुआ । वह विचार करने लगा कि अहो ! यह स्नेहका बन्धन बड़ा कष्टकारी तथा दुःखसे छेदने योग्य है ॥६५॥ वह सोचने लगा कि सम्यग्ज्ञानको प्राप्त हुए पिताको इस अव्यापार अर्थात् नहीं करने योग्य चिन्तासे क्या प्रयोजन है ? जब ये दीक्षा ही लेना चाहते हैं तब इन्हें राज्यकी चिन्ता क्यों होनी चाहिए ? ॥६६॥ मुझे किसीसे पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मैं तो तीव्र दुःखसे भरे संसारके क्षयका कारण जो तपोवन है उसमें शीघ्र ही प्रवेश करता हूँ ॥६७॥ रोगोंके घरस्वरूप इस नश्वर शरीरसे भी मुझे क्या प्रयोजन है ? फिर भाई-बन्धु जो अपने-अपने कर्मका फल भोग रहे हैं उनसे क्या प्रयोजन हो सकता है ? ॥६८॥ मोहसे अन्धा हुआ यह प्राणी अकेला ही जन्मरूपी वृत्तोंसे व्याप्त इस दुःखदायी अटवीमें भ्रमण करता रहता है ॥६९॥

तदनन्तर कलाओंके कलापको जाननेवाली केकयी चेष्टाओंसे भरतका अभिप्राय जानकर अत्यधिक शोक करने लगी ॥७०॥ वह सोचने लगी कि भर्ता और गुणी पुत्र दोनो ही मेरे नहीं हो रहे हैं अर्थात् दोनो ही दीक्षा धारण करनेके लिए उद्यत हैं । इन दोनोको रोकनेके लिए मैं किस निश्चित उपायका अवलम्बन करूँ ? ॥७१॥ इस प्रकार चिन्ताको प्राप्त तथा अत्यन्त व्याकुल हृदयको धारण करनेवाली केकयाके मनमें शीघ्र ही स्वीकृत वर भ्रूंगनेकी बात याद आ गई ॥७२॥ वह अपने विचारोंसे दृढ़ राजा दशरथके पास बड़ी प्रसन्नतासे गई और बहुत भारी तेजके साथ अर्द्धासनपर बैठकर बोली कि हे नाथ ! आपने उस समय प्रसन्न होकर समस्त राजाओं और पत्नियोंके सामने कहा था कि 'जो दू चाहेगी दूंगा' । सोःहे नाथ ! इस समय वह वर मुझे दीजिए । सत्यधर्मके कारण उज्ज्वल तथा निर्मल जो आपकी कीर्ति है, वह दानके प्रभावसे समस्त संसारमें फैल रही है ॥७३-७५॥ तदनन्तर राजा दशरथने कहा कि हे प्रिये ! तू अपना अभिप्राय बता । हे उत्कृष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाली प्रिये ! जो तुझे इष्ट हो सो

इत्युक्ते मुञ्चती वाष्पमवोचञ्ज्वातनिश्चया । कथं नाथ त्वया चेतः कृतं निष्कुरमीदृशम् ॥१०७॥
 वद किं कृतमस्माभिर्भेनासि त्यक्त्वमुद्यतः । ननु जीवितमायत्तमस्माकं त्वयि पार्थिव ॥१०८॥
 अत्यन्तं दुर्धरोद्दिष्टा प्रमथ्या जिनसत्तमैः । कथमाश्रयितुं बुद्धिस्तामद्य भवता कृता ॥१०९॥
 देवेन्द्रसदृशैर्भौमैरिदं ते लालित वपुः । कथं वक्ष्यतिर् जीवेश श्रामण्यं विविध परम् ॥११०॥
 एवमुक्ते जगादासौ कान्ते सत्वस्य को भरः । वाञ्छितं वद कर्तव्यं स्वयं यात्स्यामि साम्प्रतम् ॥१११॥
 इत्युक्त्वा लिखती क्षोणीं प्रदेशिन्या नतानना । जगाद नाथ पुत्राय मम राज्यं प्रदीयताम् ॥११२॥
 ततो दशरथोऽनोचद्विप्रे कास्मिन्नपत्रपा । न्यासस्त्वया मयि न्यस्तः साम्प्रतं गृह्यतामसौ ॥११३॥
 एवमस्तु शुचं मुञ्च निरर्णोऽहं त्वया कृतः । किं वा कदाचिदुक्तं ते मया जनितमन्यया ॥११४॥
 पद्म लक्षणसयुक्तमाह्वयं च कृतानतिम् । ऊचे विनयसम्पन्न किञ्चिद्विगतमानसः ॥११५॥
 वत्स पूर्वं रणे घोरे कलापारंगयानया । कृतं केकयथा साधु सारथ्यं मम दत्तया ॥११६॥
 तदा तुष्टेन पत्नीनां भूसृतां च पुरो मया । मनीषितं प्रतिज्ञातं नातं न्यासत्वमेतया ॥११७॥
 देहि पुत्रस्य मे राज्यमिति तं याचतेऽयुना । किमप्याकृतमापन्ना निरपेक्षा मनस्विनी ॥११८॥
 प्रतिज्ञाय तदेदानीं ददांम्यस्यै न चेन्मतम् । प्रमथ्यां भरतः कुर्यात् संसारात्स्वनिश्चितः ॥११९॥
 इयं च पुत्रशोकेन कुर्यात् प्राणविवर्जनम् । भ्रमेच्च मम लोकेऽस्मिन्नकीर्तिर्वितथोद्भवा ॥१२०॥

मोंग अभी देता हूँ ॥१०६॥ राजाके इस प्रकार कहनेपर जिसने उसका निश्चय जान लिया था ऐसी केकयी अँसू डालती हुई बोली कि हे नाथ ! आपने ऐसा कठोर चित्त किस कारण किया है ? वताइए, हमलोगोंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि जिससे आप हमलोगोंको छोड़नेके लिए उद्यत हुए हैं । हे राजन् ! आप तो यह जानते ही हैं कि हमारा जीवन आपके आधीन है ॥१०७-१०८॥ जिनेन्द्रभगवान्के द्वारा कही हुई दीक्षा अत्यन्त कठिन है उसे धारण करनेकी आज आपने बुद्धि क्यों की ? ॥१०९॥ हे प्राणवल्लभ ! आपका यह शरीर इन्द्रके समान भोगोंसे पालित हुआ है सो अत्यन्त कठिन नाना प्रकारका मुनिपना कैसे धारण करेगा ? ॥११०॥

केकयीके इस प्रकार कहनेपर राजा दशरथने कहा कि प्रिये ! समर्थके लिए क्या भार है ? तू तो केवल अपना मनोरथ बता । जो मुझे करना है उसे मैं अब अवश्य ही प्राप्त होऊँगा ॥१११॥ पतिके इस प्रकार कहनेपर प्रदेशिनीनामा अङ्गुलिसे पृथिवीको खोदती हुई केकयीने मुख नीचा कर कहा कि हे नाथ ! मेरे पुत्रके लिए राज्य प्रदान कीजिए ॥११२॥ तब दशरथने कहा कि हे प्रिये ! इसमें लज्जाकी क्या बात है ? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोड़ी थी सो इस समय जैसा तुम चाहती हो वैसा ही हो । शोक छोड़ो, आज तुमने मुझे ऋण मुक्त कर दिया । क्या कभी मैंने तुम्हारा कहा अन्यथा किया है ? ॥११३-११४॥ उसी समय उन्होंने उत्तम लक्ष्मणोसे युक्त नमस्कार करते हुए विनयी रामको बुलाकर कुछ खिन्न चित्तसे कहा ॥११५॥ कि हे वत्स ! कलाकी पारगामिनी इस चतुर केकयीने पहले भयंकर युद्धमें अच्छी तरह मेरे सारथिका काम किया था ॥११६॥ उस समय संतुष्ट होकर मैंने पत्नियों तथा राजाशोके सामने प्रतिज्ञा की थी 'जो यह चाहे सो दूँ' । परन्तु उस समय-इसने वह वर मेरे पास न्यासरूपमें रख छोड़ा था ॥११७॥ अब किसीकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली यह तेजस्विनी किसी खास अभिप्रायसे उस चरको इस प्रकार मोंग रही है कि 'मेरे पुत्रके लिए राज्य दीजिये' ॥११८॥ उस समय प्रतिज्ञा कर इस समय यदि इसके लिए इसकी इच्छात्वरूप वर नहीं देता हूँ तो संसारके आलम्बनसे उन्मुक्त होकर भरत दीक्षा ले लेगा ॥११९॥ और यह पुत्रके शोकसे प्राण छोड़ देगी तथा असत्य व्यवहारके कारण उत्पन्न हुई मेरी अपकीर्ति इस संसारमें सर्वत्र

मर्यादा न च नामेयं यद्विहायायज्ञं क्षमम् । राज्यलक्ष्मीवधुसङ्गं कनीयान् प्राप्यते सुतः ॥१२१॥
 भरतस्याखिले राज्ये दत्ते स त्वं सलक्ष्मणः । क्र गच्छेत्परमं तेजो दधानः, क्षत्रगोचरम् ॥१२२॥
 तदहं वत्स नो वेद्वि किं करोमीति^१ पण्डित । अत्यंतदुःखवेगोरुचिन्तावातान्तरस्थितः ॥१२३॥
 ततः पद्मो जगादैवं विभ्रद्विनयमुत्तमम् । सद्भावप्रतीचितेत्स्क्रः पाद्व्यस्तनिरीक्षणः ॥१२४॥
 तात रक्षात्मनः सत्यं त्यजास्मत्परिचिन्तनम् । शक्रस्यापि श्रिया किं मे त्वय्यकीर्तिमुपागते ॥१२५॥
 जातेन ननु पुत्रेण तत्कर्तव्यं गृहैपिणा । येन नो पितरौ शोकं कनिष्ठमपि गञ्जतः ॥१२६॥
 पुनाति त्रायते चायं पितरं येन शोकतः । एतत्पुत्रस्य पुत्रत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१२७॥
 सभानुरक्षणी यावत्क्षयेयं वर्तते तयोः । तावद्भवं निहन्मीति^३ कठोरौकृतमानसः ॥१२८॥
 सौधाद्रवतरन्वेगाल्लोकहाकारनादितः । निरुद्धो भरतः पित्रा स्नेहविकलवचेतसा ॥१२९॥
 उपविश्याङ्कमारोप्य परिष्वज्य सन्तुग्बितम् । इति चाभिदधे भूमौ^२ तिष्ठानुवर्षणः पितुः ॥१३०॥
 राज्यं पालय वत्स त्वमहं यामि तपोवनम् । स जगौ न भजे राज्यं प्रात्रयं तु करोम्यहम् ॥१३१॥
 भज तावत्सुखं पुत्र सारं मनुजजन्मनः । नवेन वयसा कान्तः वृद्धः सम्प्रव्रजिष्यसि ॥१३२॥
 इत्थुक्तेऽभिदधे तात किं मोहयसि मां वृथा । मृत्युः प्रतीक्षते नैव बालं तरुणमेव वा ॥१३३॥
 गृहाश्रमे महावत्स श्रूयते धर्मसञ्चयः । अशक्यः कुनरैः कर्तुं कुरुते राज्यसंगतः ॥१३४॥

फैल जावेगी ॥१२०॥ साथ ही यह मर्यादा मी नहीं है कि समर्थ वड़े पुत्रको छोड़कर छोटे पुत्रको राज्य-लक्ष्मीरूपी स्त्रीका समागम प्राप्त कराया जाय ॥१२१॥ जब भरतके लिए समस्त राज्य दे दिया जायगा तब क्षत्रिय-सम्बन्धी परम तेजको धारण करनेवाले तुम लक्ष्मणके साथ कहाँ जाओगे ? यह मैं नहीं जानता हूँ । तुम पण्डित-निपुण पुरुष हो । अतः बताओ कि इस दुःखपूर्ण वहुत भारी चिन्ताकी वातके मध्यमे स्थित रहनेवाला मैं क्या करूँ ? ॥१२२-१२३॥

तदनन्तर उत्तम अभिप्रायके कारण जिनका चित्त अतिशय प्रसन्न था और जो अपनी दृष्टि पैरो पर लगाये हुए थे ऐसे रामने उत्तम चिनयकी धारण करते हुए इस प्रकार कहा कि हे पिता जी ! आप अपने सत्य-व्रतकी रक्षा कीजिए और मेरी चिन्ता छोड़िए । यदि आप अपकीर्तिको प्राप्त होते हैं तो मुझे इन्द्रकी लक्ष्मीसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२४-१२५॥ निश्चयसे उत्पन्न हुए तथा घरकी इच्छा रखनेवाले पुत्रको वही कार्य करना चाहिए कि जिससे माता-पिता किञ्चित् भी शोकको प्राप्त न हो ॥१२६॥ जो पिताको पवित्र करे अथवा शोकसे उसकी रक्षा करे यही पुत्रका पुत्रपना है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१२७॥

इधर जब तक पिता-पुत्रके बीच सभाको अनुरक्त करनेवाली यह कथा चल रही थी तब तक मैं संसारको नष्ट करूँ ऐसा दृढ़ निश्चयकर भरत महलसे नीचे उतर पड़ा । यह देख लोग हाहाकार करने लगे । पिताने स्नेहसे दुःखी चित्त होकर उसे रोका । वह पिताका आह्लाकारी था अतः रुककर सामने पृथिवीपर खड़ा होना चाहता था; परन्तु पिताने उसे गोदमें बैठकर उसका आलिङ्गन किया, चुम्बन किया और इस प्रकार कहा कि हे पुत्र ! तू राज्यका पालन कर । मैं तपोवनके लिए जा रहा हूँ । इसके उत्तरमे भरतने कहा कि मैं राज्यकी सेवा नहीं करूँगा, मैं तो दीक्षा धारण कर रहा हूँ ॥१२८-१२९॥ यह सुनकर पिताने कहा कि हे पुत्र ! अभी तू नवीन वयसे सुन्दर है अतः मनुष्य-जन्मका सारभूत जो सुख है उसकी उपासना कर । पीछे वृद्ध होनेपर दीक्षा धारण करना ॥१३०॥ पिताके इस प्रकार कहने पर भरतने कहा कि हे पिता जी ! मुझे व्यर्थ ही कथो मोहित कर रहे हो । मृत्यु बालक अथवा तरुणकी प्रतीक्षा नहीं करती ॥१३१॥ इसके उत्तरमे पिताने कहा कि हे पुत्र ! गृहस्थाश्रममे भी तो धर्मका संचय सुना

इत्युक्तोऽभिदधे तात हर्षोऽकवशवर्तिनः । कामक्रोधादिपूर्णस्य का मुक्तिर्गृहसेविनः ॥१३५॥
मुनीनां वत्स केपाद्भिन्नवैकैकेन जायते । नैव मुक्तिस्ततो धर्मं कुरु सधन्यवस्थितः ॥१३६॥
इत्युक्तोऽभिदधे तात यद्यप्येवं तथापि किम् । गृहधर्मेण तस्मिन् हि मुक्त्यभावः सुनिश्चितः ॥१३७॥
अपि चानुक्रमान्मुक्तिर्न मर्मान्स्थस्य लोचिता । गरुडः किं पतद्भानां वेगेन सदृशो भवेत् ॥१३८॥
कामार्चिषा परं दाहं व्रजन्तः कुत्सिता नराः । जिह्वाधमाङ्गकार्याणि कुर्वन्ते न च निर्वृतिः ॥१३९॥
निश्चिन्त्यते हि कामाग्नौ भोगसर्पिर्पिथा यथा । गितरां वृद्धिमायाति तापकृत्स तथा तथा ॥१४०॥
सुक्त्वा भोगान् दुस्त्वादान् दुरचान् क्षणभंगिनः । नियतं दुर्गतिं याति पापात् परमदुःखदम् ॥१४१॥
अनुमन्यस्व मां तात नितान्तं जन्मभूरुक्कम् । करोमि विधिनारण्ये तपोनिर्वृत्तिकारणम् ॥१४२॥
अथ गृहेऽपि लभ्येत श्रेयो जनक नैर्द्वैतम् । त्वमेव कुरुषे कस्मादस्य त्यागं महामते ॥१४३॥
तार्यते दुःखतो यस्मात्तपश्चाभ्यनुमोदते । एतच्चातस्य तातत्वं प्रवदन्ति विचक्षणः ॥१४४॥
जीवितं वनितामिदं पितरं मातरं धनम् । भ्रातरं च परित्यज्य-याति जीवोऽयमेककः ॥१४५॥
सुचिरं देवभोगेऽपि यो न तृप्तो हताशकः । स कथं तृप्तिमागच्छेन्मनुष्यभवभोगकैः ॥१४६॥
पिता तद्वचनं श्रुत्वा हृष्टरोमा प्रमोदतः । जगाद वत्स धन्योऽसि विद्वद्वो मन्व्यकेसरी ॥१४७॥

जाता है । यद्यपि लुद्ध मनुष्य इसे नहीं कर सकते है पर जो उत्तम पुरुष है वे तो राज्य पाकर भी करते ही है ॥१३४॥ पिताके इस प्रकार कहने पर भरतने कहा कि हे पिता जी ! जो इन्द्रियोके वशीभूत है तथा काम क्रोधादिसे परिपूर्ण है ऐसे गृहसेवी मनुष्यकी मुक्ति कैसे हो सकती है ? ॥१३५॥ इसके उत्तरमे पिताने कहा कि हे वत्स ! एक भवमे मुक्ति किन्हीं चिरले ही मुनियोंको प्राप्त होती है । अधिकांश मुनियोंको मुक्ति नहीं मिलती । इसलिए घरमे रहकर ही धर्म धारण करो ॥१३६॥ पिताके इस प्रकार कहनेपर भरतने कहा कि हे पिता जी ! यद्यपि ऐसा है तथापि गृहस्थाश्रमसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि उससे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती यह बिलकुल निश्चित है ॥१३७॥ और दूसरी बात यह है कि मेरी मुक्ति अनुक्रमसे नहीं होगी । मैं तो इसी भवसे प्राप्त करूंगा । अनुक्रमसे होनेवाली मुक्ति दूसरे हीके योग्य है । क्या गरुड वेगसे अन्य पक्षियोंके समान होता है ? ॥१३८॥ लुद्ध मनुष्य कामरूपी-ज्वालासे परम दाहको प्राप्त होते हुए जिह्वा और स्पर्शन इन्द्रिय-सम्बन्धी कार्य करते हैं पर उनसे उन्हें सन्तोष प्राप्त नहीं होता ॥१३९॥ कामरूपी अग्निमे ज्यों-ज्यों भोगरूपी घी डाला जाता है त्यों-त्यों वह अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होती है और सन्तापको उत्पन्न करती है ॥१४०॥ प्रथम तो ये भोग बढ़ी कठिनाईसे प्राप्त होते है फिर इनकी रक्षा करना कठिन है । ये देखते-देखते क्षण भरमें नष्ट हो जाते हैं और इनको भोगनेवाला व्यक्ति पापके कारण नियमसे परम दुःख देनेवाली दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥१४१॥ हे पिता जी ! मैं संसारसे अत्यन्त भयभीत हो चुका हूँ इसलिए मुझे अनुमति दीजिए । जिससे मैं वनमें जाकर विधिपूर्वक मोक्षका कारण जो तप है उसे कर सकूँ ॥१४२॥ हे पिता जी ! यदि मोक्ष-सम्बन्धी सुख घरमे भी मिल सकता है तो फिर आप ही इसका त्याग क्यों कर रहे है ? आप तो महा बुद्धिमान् है ॥१४३॥ जो पुत्रको दुःखसे तारे और तपकी अनुमोदना करे यही तातका तातपना है ऐसा विद्वान् लोग कहते है ॥१४४॥ यह जीव आयु, स्त्री, मित्रादि इष्टजन, पिता, माता, धन और भाई आदिको छोड़कर अकेला ही जाता है ॥१४५॥ जो अभागा चिरकाल तक देवोंके भोग भोगने पर भी सन्तुष्ट नहीं हो सका वह मनुष्य भवके तुच्छ भोगोंसे किस प्रकार सन्तोष प्राप्त करेगा ? ॥१४६॥

पिता दशरथ भरतके उक्त वचन सुनकर गद्गद हो गये । हर्षसे उनके शरीरमे रोमाञ्च

तथापि धीर नो भङ्गः कदाचित्पण्यस्य मे । त्वया कृतो विनीतानां भवान् हि शिरसि स्थितः ॥१४८॥
 शृणु सारथ्यतुष्टेन सयाजौ^१ जीवसंशये । प्रतिज्ञातं जनन्यांस्ते वाक्छिन्नं नृपसाक्षिकम् ॥१४९॥
 ऋणतां तच्चिरं नीतमद्याहं^२ याचितोऽनया । राज्यं प्रयच्छ्य पुत्रस्य ममेति बहुमानतः ॥१५०॥
 स त्वं निष्कण्टकं तात राज्यं शक्रोपमं कुरु । असत्यसंधां^३ कीर्तिमं माभ्रमीक्षिष्विषं जगत् ॥१५१॥
 इयं च तव शोकेन परमेणाभितापिता । माता त्रियेत सौख्येन सततं लालिताङ्गिका ॥१५२॥
 न करोति यतः पातं पित्रोः शोकमहोदधौ । अपत्यत्वमपत्यस्य तद्वदन्ति सुमेधसः ॥१५३॥
 ततः पशोऽपि तत्पाणौ गृहीत्वैवमभाषत । प्रेमनिर्भरया पश्यन् इच्छ्या मधुरनिस्वनः ॥१५४॥
 तातेन आतरुक्त यत्कोऽन्यस्तद्वादिदुं क्षमः । नहि सागररत्नानामुपपत्तिः सरसो भवेत् ॥१५५॥
 वयस्तपोऽधिकारे ते जायतेऽद्यापि नोचितम् । कुरु राज्यं पितुः कीर्तिरुद्यातु शशिनिरमला ॥१५६॥
 इयं च शोकेतस्नाह्ना माता यद्याति पञ्चताम् । न तद्युक्त महाभोगे नन्दने त्वाद्दशे सति ॥१५७॥
 पितुः पालयितुं सत्यं त्यजामोऽपि वयं तनुम् । कथं त्वं तु कृतं प्राज्ञः श्रियं न प्रतिपद्यसे ॥१५८॥
 नद्यां गिरावरण्ये वा तत्र वास करोम्यहम् । तत्र कश्चिन्न जानाति कुरु राज्यं यथेप्सितम् ॥१५९॥
 भागं सर्वं परित्यज्य पन्थानमपि सञ्चितः । न करोमि पृथिव्यां ते काञ्चिदपीडां गुणालय ॥१६०॥
 माश्वनीदीर्घमुष्णं च मुञ्च तावद्भवाद्भयम् । कुरु वाक्यं पितुः क्षोणीं रच न्यायपरायणः ॥१६१॥

निकल आये । वे बोले कि हे वत्स ! तू धन्य है, सचमुच ही तू प्रतिबोधको प्राप्त हुआ है और तू उत्तम भन्य है ॥१४८॥ फिर भी हे धीर ! तूने कभी भी मेरे स्नेहका भंग नहीं किया । तू विनयी मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ है ॥१४८॥ सुन, एकबार युद्धमे मेरे प्राणोंका संशय उपस्थित हुआ था । उस समय तेरी माताने सारथिका कार्य कर मेरी रक्षा की थी । उससे सन्तुष्ट होकर मैंने अनेक राजाओंके समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि 'यह जो कुछ चाहेगी वह दूँगा' ॥१४९॥ मेरे ऊपर इसका यह बहुत पुराना ऋण था सो इसने आज मुझसे भोगा है । इसने बड़े सम्मानके साथ कहा है कि मेरे पुत्रके लिए राज्य दीजिए ॥१५०॥ इसलिए हे पुत्र ! तू इन्द्रके समान यह निष्कण्टक राज्य कर जिससे असत्य प्रतिज्ञाके कारण मेरी अकीर्ति समस्त संसारमे भ्रमण नहीं करे ॥१५१॥ और जिसका शरीर सुखसे निरन्तर पालित हुआ है ऐसी यह तेरी माता इस महाशोकसे दुःखी होकर प्राण छोड़ देगी ॥१५२॥ अपत्य अर्थात् पुत्रका अपत्यपना यही है कि जो माता-पिताको शोकरूपी महासागरमें नहीं गिरने देता है ऐसा चिद्वज्जन कहते हैं ॥१५३॥

तदनन्तर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए रामने भी उसका हाथ पकड़कर मधुर शब्दोंमे इस प्रकार कहा कि हे भाई ! पिताजीने जो कहा है वह दूसरा कौन कह सकता है ? सो ठीक ही है क्योंकि समुद्रके रत्नोंकी उत्पत्ति सरोवरसे नहीं हो सकती ॥१५४-१५५॥ अभी तेरी अवस्था तप करनेके योग्य नहीं है । इसलिए राज्य कर जिससे पिताकी चन्द्रमाके समान निर्मल कीर्ति फैले ॥१५६॥ जिसका शरीर शोकसे सन्तप्त हो रहा है ऐसी यह तेरी माता तेरे समान भाग्यशाली पुत्रके रहते हुए यदि मरणको प्राप्त होती है तो यह ठीक नहीं होगा ॥१५७॥ पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिए हम शरीरको भी छोड़ सकते हैं । फिर तू बुद्धिमान् होकर भी लक्ष्मीको क्यों नहीं प्राप्त हो रहा है ? ॥१५८॥ मैं किसी नदीके किनारे पर्वत, अथवा वनमें नहीं निवास करूँगा जहाँ कोई जान नहीं सकेगा इसलिए तू इच्छानुसार राज्य कर ॥१५९॥ हे गुणोंके आलय । मैं अपना सब भाग छोड़ मार्गका ही आश्रय ले रहा हूँ । मैं पृथ्वी पर तुझे कुछ भी पीड़ा नहीं पहुँचाऊँगा ॥१६०॥ इसलिए लम्बी और गरम सांस मत ले, संसारका भय छोड़, पिताकी बात

१. युद्धे, मयासौ म० । २. प्रापितोऽनया म० । ३. असत्यसंधान- म० । ४. महाभोगे ख० । ५. भोगं म० ।

इच्छाकृपां कुलं श्रीमद्भूपयामलविभ्रमम् । अत्यन्तविपुलं आतः शशी ब्रह्मकुलं यथा ॥१६२॥
 भ्राजते प्रायमानः सन् वाक्य तत्पितृकस्य यत् । लब्धवर्णैरिद्रं भ्रातृभ्रातृवं परिकीर्तितम् ॥१६३॥
 इत्युक्त्वा भावतः पादौ शिरसा भूलत्प्रुशा । पितुः प्रणम्य तत्प्राश्र्वात्सर्गितो लक्ष्मणान्वितः ॥१६४॥
 अत्रान्तरे वृपो मूर्च्छां सम्प्राप्तोऽपि न केनचित् । ज्ञातः स्तम्भसमायुक्तवपुः पुस्तसमाकृतिः ॥१६५॥
 स तूर्णं धनुराद्राय गत्वा नत्वा च मातरम् । आपृच्छथ तां च गच्छामि तावदन्यमहीमिति ॥१६६॥
 सखीत्व मूर्च्छया तस्या दुःखज्ञाननिवारणात् । क्षणं कृतं परिप्राप्तसंज्ञा चात्माकुलेक्षणा ॥१६७॥
 ऊचेऽपराजिता^१ हा त्वं वत्स क प्रस्थितोऽसि माम् । कस्मात्प्रजसि सच्चेट चिप्त्वा शोकमहोदधौ ॥१६८॥
 मनोरथसतैः पुत्र त्वं प्राप्नो दुर्लभो मया । प्रारोह इव शाखाया मातुरालम्बनं सुतः ॥१६९॥
 परिदेवनमेवं तां कुर्वन्ती हृदयङ्गमम् । जगाद प्रणतः पद्मो मातृभक्तिपरायणः ॥१७०॥
 अम्ब मा गाद् विपादं त्व दक्षिणस्यामह दिशि । निरूप्य संश्रयं योग्यं नेष्यामि त्वां विसंशयम् ॥१७१॥
 तातेन पृथिवी दत्ता जननीवरदानतः । भरतायेति ते^२ कर्णजाहं नूनमुपागतम् ॥१७२॥
 अन्ते तस्या महारण्ये विन्ध्याद्रौ मलयैऽथवा । अन्यस्मिन् चार्णवस्यान्ते पश्य मातः कृतं पदम् ॥१७३॥
 मयि स्थिते समापेऽस्मिन् लोके भास्करसमते । बाञ्जैश्वर्यमयी कान्तिर्भरतेन्दोर्न जायते ॥१७४॥
 ततः प्रहृती माता जगादत्यन्तदुःखिता । पुत्रं विनतमाश्लिष्य स्नेहकातरलोचना ॥१७५॥

मान और न्यायमे तत्पर रहकर पृथ्वीकी रक्षा कर ॥१६१॥ हे भाई ! जिस प्रकार चन्द्रमा ग्रहोके समूहको अलंकृत करता है उसी प्रकार तू इच्छाकृओंके इस लक्ष्मीसम्पन्न, निर्मल एवं अत्यन्त विशाल कुलको अलंकृत कर ॥१६२॥ जो पिताके वचनकी रक्षा करता हुआ देदीप्यमान होता है वही भाईका भाईपन है ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥१६३॥ इतना कहकर राम पृथ्वीतलका स्पर्श करनेवाले शिरसे भावपूर्वक पिताके चरणोंमे प्रणाम कर लक्ष्मणके साथ उनके पाससे चले गये ॥१६४॥ इसी वीचमें यद्यपि राजा दशरथ मूर्च्छाको प्राप्त हो गये तो भी किसीको इसका पता नहीं चला क्योंकि वे जिस खम्भासे टिककर बैठे हुए थे मूर्च्छाके समय भी पुतलेके समान उसी खम्भासे टिके बैठे रहे ॥१६५॥ राम शीघ्र ही धनुष उठा कर माताके पास गये और प्रणाम कर पूछने लगे कि मैं अन्य पृथ्वी अर्थात् देशान्तरको जाता हूँ ॥१६६॥ रामकी बात सुनकर माताको मूर्च्छा आ गई सो मानो दुःखका ज्ञान रोककर उसने सखीका कार्य किया । तदनन्तर क्षणभरके बाद जब मूर्च्छा दूर हुई तथा चैतन्य प्राप्त हुआ तब ओंखोंमें आँसू भरकर माता अपराजिता (कौसल्या) बोली कि हाय वत्स ! तू कहाँ जा रहा है ? हे उत्तम चेष्टाके धारक पुत्र ! तू मुझे शोकरूपी महासागरमें डालकर क्यों छोड़ रहा है ? ॥१६७-१६८॥ हे पुत्र ! तू बड़ा दुर्लभ है, सैकड़ों मनोरथोंके बाद मैंने तुम्हे पाया है । जिस प्रकार शाखाका आलम्बन प्रारोह अर्थात् पाया होता है उसी प्रकार माताका आलम्बन पुत्र होता है ॥१६९॥ इस प्रकार हृदयमें चुभनेवाला विलाप करती हुई माताको प्रणाम कर मातृभक्तिमें तत्पर रहनेवाले रामने कहा कि माता ! तुम विपादको प्राप्त मत होओ । मैं दक्षिण दिशामें योग्य स्थान देखकर तुम्हें ले जाऊँगा । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१७०-१७१॥ 'पिताने, केकयी माताको वरदान देनेके कारण पृथ्वी भरतके लिए दे दी है' यह समाचार निश्चित ही आपके कर्णमूल तक आ गया होगा ॥१७२॥ अब यह पृथिवी जहाँ समाप्त होती है उसके अन्तमे किसी महाअटवीमें, विन्ध्याचलमें, मलयपर्वतपर अथवा समुद्रके निकट किसी अन्य देशमें हे माता ! अपना स्थान बनाऊँगा ॥१७३॥ सूर्यके समान जब तक मैं इस देशके समीप ही रहूँगा तब तक भरतरूपी चन्द्रमाकी आज्ञा ऐश्वर्यसे सम्पन्न नहीं हो सकेगी ॥१७४॥

तदनन्तर जो अत्यन्त दुःखी थी और जिसके नेत्र स्नेहसे कातर हो उठे थे ऐसी माता

१. कौशल्या, रामजननी । २. कर्णयोर्मूलमिति कर्णजाटम् ।

तनयाद्यैव मे गन्तुमुचितं भवतो समम् । कथं त्वाहमपश्यन्ती प्राणान् धारयितुं क्षमा ॥१७६॥
 पिता नाथोऽथवा पुत्रः कुलस्त्रीणां त्रयी गतिः । पितातिक्रान्तकालो मे नाथो दीक्षासमुत्सकः ॥१७७॥
 जीवितस्य त्वमेवैकः साम्प्रतं भेऽजलम्बनम् । त्वयापि रहिता साह वद गच्छामि कां गतिम् ॥१७८॥
 सोऽब्रुवच्छुपलैरम्ब चित्तिरत्यन्तकर्मशा । भवत्या विपमा पद्मधां गंतुं सा शक्यते कथम् ॥१७९॥
 तस्मादेकक एवाह विधाय सुखमाश्रयम् । यानेन केनचिन्नेत्ये भवन्तीं त्यजनं कुतः ॥१८०॥
 यथा स्पृशामि ते मातः पादावेप तथा ध्रुवम् । आगमिष्यामि नेतुं त्वां मुञ्च कार्यविचक्षणे ॥१८१॥
 एवमुक्ते विमुक्तः सन् परिसान्त्व्य सुभाषितैः । पुनश्च पितरं प्राप्तप्रबोधं प्रणिपत्य सः ॥१८२॥
 शेषं मातृजनं त्वत्वा परिसान्त्व्य सुभाषितैः । अविपणमहाचेताः सर्वन्यायविचक्षणः ॥१८३॥
 आतृबन्धुपरिवृद्धं कृत्वा सम्भाषणं तथा । सीतायाः सदनं प्राप्तः प्रेमनिर्भरमानसः ॥१८४॥
 प्रिये त्वं तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यहं पुरान्तरम् । ततो जगाद् साध्वी सा यत्र त्वं तत्र चाप्यहम् ॥१८५॥
 मन्त्रिणो नृपतीन् सर्वांन् परिवर्गं च सादरम् । आपृच्छच्छेकत्रैर्गोऽपि भाषणाह्लापताकुलः ॥१८६॥
 ग्रीत्वा संवर्धितं भूयः कृताह्लिनमादृतम् । मित्रवर्गं सवाप्यात् पुनरुक्तं न्यवर्तयत् ॥१८७॥
 क्षिग्धेन चक्षुषा पश्यन् प्रधानान्वाजिवारणान् । निरगच्छत्पितुर्गोहान्मन्दरस्थिरमानसः ॥१८८॥

रोती हुई, नम्रीभूत पुत्रका आलिङ्गनकर बोली कि हे पुत्र ! मेरा आज ही तेरे साथ चला जाना उचित है क्योंकि तुम्हें बिना देखे मैं प्राण धारण करनेके लिए कैसे समर्थ हो सकूंगी ? ॥१७५-१७६॥ पिता, पति अथवा पुत्र ये तीन ही कुलवती स्त्रियोंके आधार हैं । इनमें मेरे पिता तो अपना समय पूरा कर चुके हैं और पति दीक्षा लेनेके लिए उत्सुक हैं इस प्रकार इस समय मेरे जीवनका आधार एक तू ही है सो यदि तू भी मुझे छोड़ रहा है तो, बता मैं किस दशाको प्राप्त होऊँ ॥१७७-१७८॥ यह सुन रामने कहा कि हे माता ! पृथ्वी पत्थरोंसे अत्यन्त कठोर है आप इस ऊँची-नीची पृथ्वीपर पैरोंसे किस प्रकार चल सकोगी ? ॥१७९॥ इसलिये मैं अभी अकेला ही जाता हूँ फिर सुखकारी कोई स्थान ठीककर किसी यानके द्वारा आपको वहाँ ले जाऊँगा अतः आपका छोड़ना कैसे हुआ ? ॥१८०॥ हे माता ! मैं आपके चरणोंका स्पर्श कर कहता हूँ कि मैं आपको ले जानेके लिए अवश्य ही आऊँगा । हे कार्यके समझनेमें निपुण माता ! इस समय मुझे छोड़ दे ॥१८१॥ रामके ऐसा कहनेपर माताने उन्हें छोड़ दिया और अनेक हितकारी वचन कहकर उन्हें सान्त्वना दी । अब तक पिता दशरथ प्रबोधको प्राप्त हो चुके थे इसलिये रामने पुनः पास जाकर उन्हें प्रणाम किया ॥१८२॥ अपराजिताके सिवाय अन्य माताओंको नमस्कार कर अनेक मधुर वचनोंसे उन्हें सान्त्वना दी, भाई-बन्धुओंका आलिङ्गन कर उनके साथ मधुर संभाषण किया और तदनन्तर जिनका उदार हृदय विषादसे रहित था, तथा जो सर्व प्रकारके न्यायमें निपुण थे ऐसे राम हृदयको प्रेमसे भरकर सीताके महलमें पहुँचे ॥१८३-१८४॥ राम बोले—कि हे प्रिये ! तुम यहीं पर रहो मैं दूसरे नगरको जाता हूँ । तदनन्तर उस पतिव्रताने एक ही उत्तर दिया कि 'जहाँ आप रहेंगे वहीं मैं भी रहूँगी' ॥१८५॥

इसके पश्चात् रामने समस्त मन्त्रियोंसे, राजाओंसे तथा परिवारके अन्य लोगोंसे बड़े आदरके साथ पूछा । 'नगरमें जो बुद्धिमान् मनुष्य थे उनके साथ बड़ी तत्परतासे वार्तालाप किया ॥१८६॥ इस समय प्रीतिवश बहुतेसे मित्र इकट्ठे हो गये थे जो बार-बार आलिङ्गन कर रहे थे, आदरसे भरे हुए थे तथा जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे । रामने अनेक बार कहकर उन्हें वापिस लौटाया ॥१८७॥ तदनन्तर जिनका मन मेरु पर्वतके समान स्थिर था ऐसे राम,

१. त्वं म० । २. परिसान्त्व्य म० । ३. गत्वा म०, ज्ञात्वा क०, ख० । ४. ज्ञानकीन्यस्तविस्तारिलो-
 चनप्रश्रयान्वितः म०, ज०, क०, ख० एषु पुस्तकेषु इतोमे 'प्रिये त्वं तिष्ठ' इत्यादिश्लोकौ नास्त्येव ।
 ५. चक्षेवर्गोऽपि म० । ६. भीषणाह्लाप म० । ७. भारत म० ।

आहुतीकम् हुत^१ चारु^२ सामन्ता वाजिवारणम् । पद्मेन न गृहीतास्ते परमन्यायवेदिना ॥१८६॥
 विदेशगमनोद्युक्तं दृष्ट्वा तं जानकी भृशम् । श्रीमदंशुकसंवीता विकसत्प्रबल्लोचना ॥१९०॥
 प्रणम्य श्वसुरं श्वश्रूरापृच्छ्य च सुहृज्जनम् । विनीतानुजयौ नाथं पौलोमीवं सुराधिपम् ॥१९१॥
 दृष्ट्वा तमुद्यतं गन्तुं स्नेहनिर्भरमानसः । लक्ष्मणोऽचिन्तयत् क्रोधं बहुजनलक्षकम्^३ ॥१९२॥
 अन्यायमीदृशं कर्तुं कथं तातेन वाञ्छितम् । स्वार्थसंसक्तनित्याशं धिक् स्वैरणमनपेक्षितम् ॥१९३॥
 अहो महादुःखोऽयं ज्यायान् पुरुषसत्तमः । सुनेरपीदृशं स्वान्तं दुष्करं जातु जायते ॥१९४॥
 किमद्यैव करोम्यन्यां सृष्टिसुसुज्य दुर्जनाम्^४ । भरतस्य बलादाहो करोमि विमुखां प्रियम् ॥१९५॥
 विधातुरद्य^५ सामर्थ्यं भनक्ति चिरमूर्जितम् । निरुद्धय पादयोर्ज्येष्ठं करोमि श्रीसमुसुकम् ॥१९६॥
 न युक्तमथवा चिर्न जातक्रीधानुगत्य मे । क्रोधः करोति मोहान्धमपि दीक्षासुपाश्रितम् ॥१९७॥
 किमनेन विचारेण कृतेनानुचितेन मे । ज्येष्ठस्तातश्च जानाति साम्प्रतासाम्प्रतं बहु ॥१९८॥
 सितकीर्तिसमुपत्तिर्विधातव्या हि नः पितुः । तूर्णोमेवानुगच्छामि ज्यायान्सं साधुकारिणम् ॥१९९॥
 प्रशमय्य स्वयं कोपमित्यादाय शरासनम् ।^६ प्रणम्यापृच्छ्य चारोपं जन्म गुरुपुरस्सरम् ॥२००॥
 महाविनयसम्पन्नो मार्गयोग्यकृताकृतिः । लक्ष्मीनिलयवचस्कः पद्मस्यानुपदं ययौ ॥२०१॥
 पितरौ परिवर्गेण सहितौ तनयान्वितौ । वर्षेव कुत्राणौ तौ धाराभिर्नयनामस्ता ॥२०२॥

मुख्य-मुख्य घोड़ों तथा हाथियोंको स्नेह पूर्ण दृष्टिसे देखते हुए पिताके घरसे बाहर निकल पड़े ॥१८८॥ यद्यपि सामन्त लोग शीघ्र ही सुन्दर बोड़े और हाथी ले आये परन्तु परम न्यायके जाननेवाले रामने उन्हें ग्रहण नहीं किया ॥१८९॥ पतिको विदेश गमनके लिए उद्यत देख, जिसके शरीरपर सुन्दर वस्त्रका आवरण था जिसके नेत्र फूले हुए कमलके समान थे ऐसी सीता भी, सास रवसुरको प्रणामकर तथा मित्र जनोसे पूछकर, जिस प्रकार इन्द्राणी इन्द्रके पीछे चलती है उसी प्रकार रामके पीछे चलने लगी ॥१९०-१९१॥

तदनन्तर जिसका चित्त स्नेहसे भरा हुआ था ऐसे लक्ष्मणने जब रामको जाते हुए देखा तो नेत्रोमें झलकते हुए क्रोधको धारण करता हुआ वह चिन्ता करने लगा कि अहो ! पिताजी ऐसा अन्याय क्यों करना चाहते हैं ? जिसमे निरन्तर स्वार्थ साधनकी ही आशा लगी रहती है तथा जिसमें दूसरेकी कुछ भी अपेक्षा नहीं की जाती ऐसे स्त्री स्वभावको धिक्कार हो ॥१९२-१९३॥ अहो ! बड़े भाई राम महानुभाव हैं तथा पुरुषोमें अत्यन्त श्रेष्ठ है । इनके समान दुर्लभ हृदय तो मुनिके भी जब कभी ही होता है ॥१९४॥ क्या दुर्जनोंको छोड़कर आज ही दूसरी सृष्टि रच डालूँ या बलपूर्वक लक्ष्मीको भरतसे विमुख कर दूँ ? ॥१९५॥ मैं आज विधाताकी बलवती सामर्थ्यको नष्ट करता हूँ और चरणोमें पड़कर बड़े भाईको लक्ष्मीमे उत्सुक करता हूँ ॥१९६॥ अथवा क्रोधके वशीभूत हो मुझे ऐसा विचार करना उचित नहीं है क्योंकि क्रोध दीक्षा धारण करनेवाले मुनिको भी मोहसे अन्धा बना देता है ॥१९७॥ मुझे इस अनुचित विचार करनेसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि बड़े भाई राम तथा पिता ही 'यह कार्य उचित है अथवा अनुचित' यह अच्छी तरह जानते हैं ॥१९८॥ हमें पिताकी उज्ज्वल कीर्ति ही उत्पन्न करनी चाहिए अतः मैं चुपचाप उत्तम कार्य करनेवाले बड़े भाईके ही साथ जाता हूँ ॥१९९॥ इस प्रकार लक्ष्मण स्वयं ही क्रोध शान्तकर, धनुष लेकर तथा पिता आदि समस्त जनोसे पूछकर भी रामके पीछे चलने लगा । उस समय लक्ष्मण महा विनयसे सम्पन्न था, मार्गके योग्य उसकी वेष भूषा थी, तथा उसका वक्षःस्थल लक्ष्मीका घर था ॥२००-२०१॥ उस समयका दृश्य बढ़ा ही करुण था । सीताके साथ राम लक्ष्मण आगे बढ़े जाते थे और माता पिता परिवार तथा

१. चारु म० । २. सामन्तान् म० । ३. नयनलक्षणम् म० । ४. दुर्जनात् म० । ५. मय म० । ६. प्रशाम्य म० ।

परिस्रान्वनसूत्रिभ्यां प्राप्ताभ्यां निश्चयं परम् । कृच्छ्राञ्जिवर्तिता ताभ्यां प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥२०३॥
 निवर्त्यमानबन्धूनां समूहेनान्विताविमौ । राजगोहाद्विनिष्क्रान्तौ देवाविव सुरालयात् ॥२०४॥
 वर्तते किमिदं मातः कस्येदं भतमीदृशम् । अभाययेथं पुरी कष्टमयथा सकला सही ॥२०५॥
 यामोऽनेन समं दुःखमेताभ्यां सह गम्यते । महाशक्ताविमौ कृच्छ्राद्वरणीधरगङ्गारात् ॥२०६॥
 पश्य शीता कथं याति नाथेनैवानुमोदिता । अस्याः सुविहितं सर्वं पतिभ्राता करिष्यति ॥२०७॥
 अहो परमधन्येयं जानकी रूपशालिनी । विनयांशुकसंधीता भर्तारं यानुगच्छति ॥२०८॥
 अस्माकमपि नारीणामेवैव भवताद् गतिः । उदाहरणभूतेयं भर्तृदेवतयोपिताम् ॥२०९॥
 पश्य मातरमुज्ज्वला नेत्रांशुप्लाविताननाम् । एष लक्ष्मीधरो गन्तुमुद्युक्तो ज्यायसा समम् ॥२१०॥
 अहो प्रीतिरहो भक्तिरहो शक्तिरहो ज्ञमा । अहो विनयसम्भारः श्रीमतोऽस्य विराजते ॥२११॥
 भरतस्य किमाकृतं कृतं दशरथेन किम् । रामलक्ष्मणयोरेषा का मनीषा व्यवस्थिता ॥२१२॥
 कालः कर्मेश्वरो दैव स्वभावः पुरुषः क्रिया । नियतिर्वा करोत्येवं विचित्रं कः समीहितम् ॥२१३॥
 वर्ततेऽनुचितं बाढ कं गता स्थानदेवता । एवमादिस्तदा जज्ञे ध्वनिर्जनसमूहतः ॥२१४॥
 कुमारभ्यां समं गन्तुमुत्सुके सकले जने । पुरी शून्यगृद्धा जाता नष्टशेषसमुत्सवा ॥२१५॥
 पुष्पप्रकरसंपूर्णाः समस्ता द्वारभूमयः । पिच्छलत्व समानीताः शोकपूर्णजनाश्रुभिः ॥२१६॥

शेष दो पुत्रोंके साथ धारा-प्रवाह ऑसुओंसे मानो वर्षा कर रहे थे ॥२०२॥ परन्तु दोनों भाई
 दृढ़ निश्चयको प्राप्त थे और सान्त्वना देनेमें अत्यन्त निपुण थे इसलिए उन्होंने बार-बार चरणोंमें
 गिरकर माता-पिताको बड़ी कठिनाईसे वापिस किया ॥२०३॥ उन्होंने भाई-बन्धुओंको बहुत
 लौटाया फिर भी वे लौटे नहीं । अन्तमें जिस प्रकार स्वर्गसे देव बाहर निकलते हैं उसी प्रकार
 दोनों भाई राजमहलसे बाहर निकले ॥२०४॥ 'हे माता ! यह क्या हो रहा है ? यह ऐसा
 किसका मत था ? अर्थात् किसके कहनेसे यह सब हुआ है ? यह नगरी बड़ी अभागिन है
 अथवा नगरी ही क्यों समस्त पृथिवी अभागिन है ॥२०५॥ अब हम इनके साथ ही चलेंगे,
 इनके साथ रहनेसे सब दुःख दूर हो जायगा । ये दोनों ही दुःख रूपी पर्वतकी गुहासे उद्धार
 करनेसे अत्यन्त समर्थ है ॥२०६॥ देखो, यह सीता कैसी जा रही है ? पतिने इसे साथ चलने
 की अनुमति दे दी है । देवर इसका सब काम ठीक कर देगा ॥२०७॥ अहो ! जो विनय रूपी
 वस्त्रसे आवृत होकर पतिके पीछे-पीछे जा रही है ऐसी यह रूपवती जानकी अत्यन्त धन्य है—
 बड़ी भाग्यवती है ॥२०८॥ हमारी स्त्रियोंकी भी ऐसी ही गति हो । यह पतिव्रता स्त्रियोंके लिए
 उदाहरण स्वरूप है ॥२०९॥ अहो ! देखो, जिसका मुख ऑसुओंसे भीग रहा है ऐसी माताको
 छोड़कर यह लक्ष्मण वड़े भाईके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ है ॥२१०॥ अहो ! इस लक्ष्मण
 की प्रीति धन्य है, भक्ति धन्य है, शक्ति धन्य है, ज्ञमा धन्य है और विनयका समूह धन्य
 है ॥२११॥ भरतका क्या अभिप्राय था ? और राजा दशरथने यह क्या कर दिया ? राम लक्ष्मण
 के भी यह कौन-सी बुद्धि उत्पन्न हुई है ? ॥२१२॥ यह सब काल, कर्म, ईश्वर, दैव, स्वभाव,
 पुरुष, क्रिया अथवा नियति ही कर सकती है । ऐसी विचित्र चेष्टाको और दूसरा कौन कर सकता
 है ? ॥२१३॥ यह सब बड़ा अनुचित हो रहा है । इस स्थानके देवता कहाँ गये ? उस समय
 लोगोंकी भीड़से इस प्रकारके शब्द निकल रहे थे ॥२१४॥

उस समय समस्त लोग रामलक्ष्मणके साथ जानेके लिए उत्सुक हो रहे थे इसलिए नगरीके
 समस्त घर सूने हो गये थे तथा नगरीका समस्त उत्सव नष्ट हो गया था ॥२१५॥ समस्त घरोंके
 दरवाजाकी जो भूमियाँ पहले फूलोंके समूहसे व्याप्त रहती थीं वे उस समय शोकसे भरे

जनस्योत्सार्यमाणस्य वैश्विन्यो नरोत्तमैः । वीचयः सागरस्येव विद्योभ्यन्ते महानिलैः ॥२१७॥
 भक्तिभिः पूज्यमानोऽपि सम्भाषणसमुच्चतः । दक्षिण्यपरमः पद्मो मेने विद्वं पदे पदे ॥२१८॥
 असक्त इव तं द्रष्टुमसमञ्जसमोदशम् । मन्दं मन्दांशुसङ्घातो रविरस्तमुपागमत् ॥२१९॥
 रविणा द्विवसस्यान्ते त्यक्ताः सर्वमरीचयः । २ ज्येष्ठवक्रधरेणैव सम्पदो मुक्तिमिच्छता ॥२२०॥
 दधाना परमं रागशुचिताम्बरयोगिनी । अन्विषाय रवि सन्ध्या सीता दाशरथिं यथा ॥२२१॥
 ततो विशेषविज्ञानविध्वंसनविधायिना । रामव्रज्योद्भवैनेव तमसा व्याततं जगत् ॥२२२॥
 अनुभयातुकामस्य कर्तुं लोकस्य वञ्चनम् । मसीतीं तावदेशस्य^३ स्थानं प्राप्नोत्प्राप्तुखे ॥२२३॥
 भवान्तकस्य भवनं नित्यालङ्कृतपूजितम् । चन्दनाम्भोऽनुल्लिखनं^४ त्रिद्वारं तुङ्गतोरणम् ॥२२४॥
 दर्पणाद्विभूषं तत्ससीतीं समदक्षिणम् । प्रविष्टावनपेक्षीं तौ यथाविधि विशारदौ ॥२२५॥
 तृतीये तु जनो द्वारे प्रतिहारोण रुध्यते । कर्मणा मोहनीयेन शिवमिच्छन् कुटश्चिवत् ॥२२६॥
 स्थापयित्वा धनुर्वमं पुण्डरीकनिनेक्षणौ । जिनेन्द्रवदनं दृष्ट्वा तौ वरं धृतिमागतौ ॥२२७॥
 मणिपीठस्थितं सौम्यं प्रलम्बितसुजह्वयम् । श्रीवत्सभासुरोरस्कं व्यक्तनिर्गुणपलक्षणम् ॥२२८॥

मनुष्योंके आँसुओंसे पङ्किल अर्थात् कर्दम युक्त हो गई थीं ॥२१६॥ जिस प्रकार महापवनसे समुद्रकी लहरें क्षोभको प्राप्त होती हैं उसी प्रकार उत्तम मनुष्योंके द्वारा दूर हटाये गये लोगोंकी पङ्क्तियों क्षोभको प्राप्त हो रही थीं ॥२१७॥ लोग पद-पदपर भक्तिवशा रामकी पूजा करते थे और भक्तिवशा उनके साथ वार्तालाप करनेके लिए उद्यत होते थे सो अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक राम उसे विन्न मानते थे ॥२१८॥

तदनन्तर धीरे-धीरे जिसकी किरणें मन्द पड़ गई थीं ऐसा सूर्य अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो वह इस अनुचित कार्यको देखनेके लिए असमर्थ होनेसे ही अस्त हो गया था ॥२१९॥ जिस प्रकार मुक्तिकी इच्छा करनेवाले प्रथम चक्रवर्ती भरतने सब सम्पत्तियों छोड़ दी थीं उसी प्रकार दिनके अन्तमे सूर्यने सब किरणें छोड़ दीं ॥२२०॥ जिस प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट प्रेमको धारण करनेवाली तथा उचित-अम्बर अर्थात् योग्य वस्त्रसे सुशोभित सीता रामके पीछे जा रही थी उसी प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट लालिमा और उचित-अम्बर अर्थात् अभ्यस्त आकाशके समागमको प्राप्त सन्ध्या सूर्यके पीछे जा रही थी ॥२२१॥ तदनन्तर वस्तुवोके विशेष ज्ञानको नष्ट करनेवाले अन्धकारसे समस्त जगत् व्याप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो रामके जानेसे उत्पन्न शोकसे ही व्याप्त हो गया हो ॥२२२॥ तत्पश्चात् पीछे चलनेके लिए उत्सुक मनुष्योंको धोखा देनेके लिए सीता सहित वे दोनों कुमार सायंकालके समय अरहनाथ भगवानके मन्दिरमें पहुँचे ॥२२३॥ संसारको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का वह मन्दिर सदा अलङ्कृत रहता था, लोग उसकी निरन्तर पूजा करते थे, चन्दनके जलसे वहाँकी भूमि लिप्त रहती थी, उसमें तीन दरवाजे थे, ऊँचा तोरण था और दर्पणादि मङ्गल द्रव्योंसे वह विभूषित रहता था । सो अतिशय बुद्धिमान् तथा अन्यकी अपेक्षासे गहिरा राम-लक्ष्मणने सीताके साथ प्रदक्षिणा देकर उस मन्दिरमें विधिपूर्वक प्रवेश किया ॥२२४-२२५॥ दो दरवाजे तक तो सब मनुष्य चले गये परन्तु तीसरे दरवाजे पर द्वारपालने उन्हें उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार की मोक्षकी इच्छा करनेवाले मिथ्यादृष्टिको मोहनीय कर्म रोक देता है ॥२२६॥ कमलके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण, अपने धनुष तथा कवच एक ओर रख भगवान्के दर्शन कर परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥२२७॥ तदनन्तर जो मणिमयी चौकीपर विराजमान थे, सौम्य थे, जिनकी दोनों भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं, जिनका वक्षस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे

३. पङ्क्तयः । विरुपिण्यो म० । २. प्रथमचक्रवर्तिना भरतेन । ३. तौ + अरेशस्य = अरनाथस्य स्थानं मन्दिरम् । ४. चन्दनाम्भोजलितम्

सम्पूर्णचन्द्रवदं विबुद्धकमलेक्षणम् । अस्मर्यमाणनिर्माणविन्वमष्टादशं जिनम् ॥२२१॥
 प्रणम्य सर्वभावेन समभ्यर्च्य च सादरौ । स्थितो तत्र विभावर्था चिन्तयन्तौ सुहृज्जनम् ॥२२०॥
 तत्र तावुपितौ ज्ञात्वा मातरः पुत्रवत्सलाः । पत्यु वाष्पाकुलाः स्नेहात् परिवृष्य पुनः पुनः ॥२२१॥
 पुत्राभ्यां सह सम्मन्य दर्शने वृत्तिवर्जिताः । दोलारूढसमात्मानो जग्मुर्दशरथं पुनः ॥२२२॥
 सर्वांसामेव शुद्धीनां मनःशुद्धिः प्रशस्यते । अन्यथालिङ्ग्यतेऽपत्यमन्यथालिङ्ग्यते पतिः ॥२२३॥
 ततस्ता गुणलावण्यरूपवेषमहोदयाः । जग्मुर्मधुरवादिन्यः प्रियं मन्दरनिश्चलम् ॥२२४॥
 कुलपोतं निमज्जन्तं प्रिय शोकमहाणवे । संधारय ससौमित्रिं विनिवर्तय राघवम् ॥२२५॥
 सोऽनोचन्न ममायतं जगद्वात्र विकारिकम् । प्रमाणं चेन्मदीयेच्छा सुखमेवास्तु जन्तुषु ॥२२६॥
 जन्ममृत्युजराव्याधैर्मात्म कश्चिद्विवाध्यताम् । नाना कर्मस्थितौ त्वस्यां को नु शोचति कोविद् ॥२२७॥
 पर्याप्तिसिन्धुः सृष्टानामिष्टानां दर्शनेषु वा । बान्धवानां सुखानां च जीवितस्य धनस्य च ॥२२८॥
 असमाप्तेन्द्रियसुखं कदाचित्स्थितिसंक्षये । पक्षी वृक्षमिव त्यक्त्वा देहं जन्तुर्गमिष्यति ॥२२९॥
 १पुत्रवत्सो भवत्योऽत्र निवर्तयत सत्सुतौ । २उपसुद्धं सुविश्रब्धाः पुत्रभोगोदयद्युतिम् ॥२३०॥
 त्यक्त्वाव्याधिकारोऽहं निवृत्तः पापचेष्टितात् । भवादुःखं मयं प्राप्तः करोमि चरितं मुनेः ॥२३१॥

सुशीलित था, जिनके समस्त लक्षण स्पष्ट दिखाई देते थे, जिनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, जिनके नेत्र विकसित कमलके समान थे, और जिनके प्रतिविम्बकी रचना भुलाई नहीं जा सकती थी। ऐसे अठारहवें अरनाथ जिनेन्द्रको सर्व भाव अर्थात् मन वचन कायसे प्रणाम कर तथा उनकी पूजा कर आदरसे भरे हुए राम-लक्ष्मण मित्रजनोंकी चिन्ता करते हुए रात्रिके समय उसी मन्दिरमें स्थित रहे ॥२२८-२३०॥ पुत्र वत्सल माताओंको जब पता चला कि राम-लक्ष्मण अर-जिनेन्द्रके मन्दिरमें ठहरे हैं तब वे तत्काल दौड़ी आईं। उस समय उनके नेत्र ऑसुओंसे व्याप्त थे। उन्होंने बार-बार पुत्रोंका आलिङ्गन किया और बार-बार उनके साथ मन्त्रणा-सलाह की। उन्हें पुत्रोंको देखते-देखते छुट्टि ही नहीं होती थी और संकल्प-विकल्पके कारण उनकी आत्मा हिंडोले पर चढ़ी हुईके समान चञ्चल हो रही थी। अन्तमें वे पुनः राजा दशरथके पास चली गईं ॥२३१-२३२॥ आचार्य कहते हैं कि सब शुद्धियोंमें मनकी शुद्धि ही सबसे प्रशस्त है। स्त्री पुत्र और पति दोनोंका आलिङ्गन करती है परन्तु परिणाम जुदे-जुदे रहते हैं ॥२३३॥

तदनन्तर गुण लावण्यरूप वेष आदि महा अभ्युदयको धारण करनेवाली चारों मिष्टवादिनी रानियों मेरुके समान निश्चल पतिके पास गईं और बोलीं कि हे वत्सलभ । शोकरूपी समुद्रमें डूबते हुए इस कुलरूपी जहाजको रोको और लक्ष्मण सहित रामको चापिस बुलाओ ॥२३४-२३५॥ इसके उत्तरमें राजा दशरथने कहा कि यह विकार रूप जगत् मेरे आधीन नहीं। मेरी इच्छानुसार यदि काम हो तो मैं तो चाहता हूँ कि समस्त प्राणियोंमें सदा सुख ही रहे ॥२३६॥ जन्म जरा और मरणरूपी व्याधियोंके द्वारा किसीका घात नहीं हो परन्तु कर्मोंकी स्थिति नाना प्रकारकी है अतः कौन विवेकी शोक करे ॥२३७॥ बान्धवादि क इष्ट पदार्थोंके देखनेमें किसीको छुट्टि नहीं है सांसारिक सुख, धन और जीवनके विषयमें भी किसीको सन्तोष नहीं है ॥२३८॥ कदाचित् इन्द्रिय सुखकी पूर्णता न हो और आयु समाप्त हो जावे तो यह प्राणी जिस प्रकार पक्षी एक वृक्षको छोड़कर दूसरे वृक्षपर चला जाता है उसी प्रकार एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है ॥२३९॥ आप लोग पुत्रवाली हैं अर्थात् आपके पुत्र हैं इसलिए गुणी पुत्रोंको लौटा लो और निश्चित होकर पुत्र भोगका अभ्युदय भोगो ॥२४०॥ मैं तो राज्यका अधिकार छोड़ चुका हूँ, इस पाप पूर्ण चेष्टासे निवृत्त हो गया हूँ और संसारसे तीव्र भय प्राप्त कर चुका

आर्याच्छन्दः

एवं निश्चितचित्तो दशरथनृपतिस्समप्रमौदासोन्यम् ।

भेजे रविसमतेजाः सकलकुभावाभिलाषदोषविमुक्तः ॥२४२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथप्रव्रज्यामिधानं
नामैकत्रिंशत्तमं पर्व ॥३१॥



हूँ इसलिए मुनिव्रत धारण करूँगा ॥२४१॥ इस प्रकार जिन्होंने अपने चित्तमे दृढ़ निश्चय कर लिया था, जो सूर्यके समान तेजस्वी थे और जो समस्त मिथ्याभावोकी अभिलाषारूपी दोषसे रहित थे ऐसे राजा दशरथने सब प्रकारकी उदासीनता धारण कर ली ॥२४०॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा कथित
पद्मचरितमें राजा दशरथके वैराग्यका वर्णन करनेवाला
इकतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३१॥

द्वात्रिंशत्तमं पर्व

अथ तत्र क्षणं नीत्वा निद्रान्तौ घृतकङ्कटौ । अर्धरात्रे महाध्वान्ते निश्शब्दे शान्तमानवे ॥१॥
 विधाय जानकीं मध्ये जिनं नत्वा सकार्युको । सुवेपौ प्रस्थितौ दीपैः पश्यन्ताविव कामिनः ॥२॥
 कश्चित् सुरतखिन्नाहो बाहुपञ्जरवर्तिनीम् । कृत्वा प्राणसमां निद्रामतिगाढां निपेवते ॥३॥
 कृत्वापराधकः पूर्वं कोपिनी कश्चिदङ्गनाम् । प्रत्याययत्यलीकेन शपथेन पुनः पुनः ॥४॥
 अपरो मानमुत्सृज्य कान्तया स्मरतसया । कृतकं कोपमायातः सुवाग्भिः परिसाल्यते ॥५॥
 सुरतायासखिन्नाहो देहे कस्यचिदङ्गना । लीना तत्त्वमिव प्राप्ता गाढां निद्रां निपेवते ॥६॥
 नवसङ्गमनां कश्चिज्जायां विमुखवर्तिनीम् । कृच्छ्रात् प्रस्तावमानीय सम्भाषयति संमदी ॥७॥
 कर्मैचित्पूर्ववैगुण्यं कथयत्यङ्गनाखिलम् । अपरो वेदयत्यस्मै विलम्बः कृतमाननः ॥८॥
 कश्चित् परगृहं प्राप्ते धूर्तः सङ्कुचिताङ्गकः । उद्गासयति मार्जारं वातायनकृतस्थितिम् ॥९॥
 अपरः कृतसंकेता शून्यदेवकुलान्तरे । कुलटामाकुलीभूतो सुहृत्स्थाय वीक्षते ॥१०॥
 चिरादुपगतं कश्चिद् घनरोपाभिसारिका । ताडयत्युत्तरीयेण बध्वा मेखलया खलम् ॥११॥
 अभिसारिकया साकमन्यः प्राप्य समागमम् । शूनोऽपि पदशब्देन याति त्रासमनुत्तमम् ॥१२॥

अथानन्तर राम-लक्ष्मण उस मन्दिरमे कहीं क्षण एक निद्रा लेकर अर्ध रात्रिके समय जब घोर अन्धकार फैल रहा था, लोगोंका शब्द मिट गया था, और मनुष्य शान्त थे तब जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर कवच धारण कर तथा धनुष उठाकर चले । वे सीताको वीचमे करके चल रहे थे । दोनों ही उत्तम वेषके धारक थे तथा दीपक हाथमे लिये थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानो मण्डपादि स्थानोमे कामी जनोको देख ही रहे थे ॥१-२॥ उन्होंने देखा कि जिसका शरीर संभोगसे खिन्न हो रहा है ऐसा कोई पुरुष अपनी प्राणवह्नभाको भुजारूप पञ्जरके मध्य रखकर अत्यन्त गाढ निद्राका सेवन कर रहा है ॥३॥ अपराध करनेवाले किसी पुरुषने पहले तो अपनी स्त्रीको कुपित कर दिया और पीछे बार-बार मूठी शपथके द्वारा उसे विश्वास दिला रहा है ॥४॥ कोई एक पुरुष कृत्रिम कोपकर जुदा बैठे हैं और उसकी स्त्री कामसे संतप्त हो उसे मधुर वचनोंसे शान्त कर रही है ॥५॥ सुरतके श्रमसे जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसी कोई स्त्री पतिके शरीरमे इस तरह लीन होकर गाढ निद्रा ले रही है जिस तरह कि मानो वह पतिके साथ अमेदको ही प्राप्त हो चुकी हो ॥६॥ कोई एक पुरुष लज्जाके कारण विमुख बैठे नवोढा पत्नीको बड़ी कठिनार्थसे अनुकूल कर हर्ष पूर्वक उसके साथ वार्तालाप कर रहा है ॥७॥ कोई एक स्त्री अपने पतिके लिए उसके द्वारा पहले किये हुए सब अपराध बता रही है और वह उसे मनाकर निश्चिन्ततासे उसका समाधान कर रहा है ॥८॥ कोई एक धूर्त पुरुष अपने शरीरको संकुचित कर दूसरेके घर पहुँचा है और वहाँ भरोखेमें बैठे थिलावको वहाँसे हटा रहा है ॥९॥ किसी पुरुषने अपनी कुलटा प्रेमिकाको सूते मठमे आनेका संकेत दिया था पर उसने आनेमें विलम्ब किया इसलिए वह व्याकुल हो बार-बार उठकर उसे देख रहा है ॥१०॥ किसी अभिसारिकाका प्रेमी देरसे आया था इसलिए वह अत्यन्त कुपित हो उसे मेखलासे बाँधकर उत्तरीय वस्त्रसे पीट रही है ॥११॥ और कोई एक मनुष्य अभिसारिकाके साथ समागम प्राप्तकर कुत्तेके

इति^१ निर्यूहदेशेषु मण्डपेषु च कामिनाम् । शृण्वन्ती^२ र्धाक्ष्यमाणौ च^३ वृत्तान्तौ जग्मतुः शनैः ॥१३॥
 अबहारेण^४ निर्गम्य पुरीतः पश्चिमेन ती । आश्रितौ मार्गयोगेन दक्षिणौ दक्षिणौ दिशम् ॥१४॥
 त्रियामान्ते ततोऽपष्टे सामन्ता वेगवाहिनः । राघवेण समं गन्तुमुत्सुका भक्तिनिर्भराः ॥१५॥
 यथाश्रुति परिज्ञाय बन्धुवञ्जनकारिणः । समीपं रामदेवस्य प्रापुर्मन्थरगामिनः ॥१६॥
 ते चक्षुर्गोचरीवृत्त्य समेतौ रामलक्ष्मणौ । महाविनयसम्पन्नाः पद्भ्यामेव डुडौकिरे ॥१७॥
 प्रणिपत्य च आवेन सक्रम समन्धरादिरे । धावत्तावन्महासैन्यं तद्गवेषार्थमाययौ ॥१८॥
 प्रशशंसुश्च ते सीतामिति निर्मलचेतसः । वयमस्याः प्रसादेन राजपुत्रौ समागताः ॥१९॥
 अयास्यद्यदि नैताभ्यां सममेपा सुमन्धरा । ततः कथमिव प्राप्स्यामेती पवनरहसौ ॥२०॥
 इयं नः सुसती माता परमप्रियकारिणी । एतस्याः सदृशी नान्या प्रशस्तास्ति चित्ताविह ॥२१॥
 तौ सीतागतिचिन्तान्त्वान्मन्दमन्दं नरोत्तमौ । गव्युत्तिमात्रमध्वान सुखयोगेन जग्मतुः ॥२२॥
 सस्यानि बहुरूपाणि पश्यन्तीं क्षितिमण्डले । सरासि कञ्जरम्याणि तस्त्रंश्च गगनस्पृशः ॥२३॥
 आर्य्यमाणपर्यन्तौ वैगवद्विनिराधिपैः^५ । घनागमे नदैर्गङ्गाकालिन्दीप्रवहाविव ॥२४॥
 ग्रामखेटमटत्र्येषु घोषेषु नगरेषु च । लोकेन पूजितौ वीरौ भोजनादिभिरुत्तमौ ॥२५॥
 केचिदध्वजखेटेन सामन्ता ब्रजतोस्तयोः । पश्चाद्ज्ञापियत्त्वेन विद्वत्ता ज्ञातनिश्चयाः ॥२६॥

भी पैरकी आहट सुनकर अत्यधिक भयको प्राप्त हो रहा है ॥१२॥ इस प्रकार बाह्य भरोखो और मण्डपोमे कामीजनोको देखते तथा उनके वृत्तान्तको सुनते हुए राम और लक्ष्मण धीरे-धीरे जा रहे थे ॥१३॥ वे अतिशय सरल थे और वे नगरीके पश्चिम द्वारसे बाहर निकलकर आगे मिलनेवाले मार्गसे दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥१४॥

इधर जब भक्तिसे भरे तथा रामके साथ जानेके लिए उत्सुक सामन्तोंको कानोकान यह पता चला कि राम तो बन्धुजनोको धोखा देकर चले गये हैं तब वे प्रातःकाल होनेके पूर्व जय कुङ्क-कुङ्क अंधेरा था वेगसे धोड़े दौड़ाकर मन्थर गतिसे चलनेवाले रामके पास जा पहुँचे ॥१५-१६॥ जब उन्हें साथ-साथ चलनेवाले राम-लक्ष्मण नेत्रोसे दिखने लगे तब वे महाविनयसे युक्त हों पैदल ही चलने लगे ॥१७॥ सामन्त लोग भावपूर्वक प्रणामकर जब तक उनके साथ यथा क्रमसे वार्तालाप करते हैं तब तक उन्हें खोजनेके लिए बड़ी भारी सेना वहाँ आ पहुँची ॥१८॥ अत्यन्त निर्मल चित्तके धारक सामन्त लोग सीताकी इस प्रकार स्तुति करने लगे कि हम लोग इसके प्रसादसे ही राजपुत्रोको प्राप्त कर सके हैं ॥१९॥ यदि यह इनके साथ धीरे-धीरे नहीं चलती तो हम पवनके समान वेगशाली राजपुत्रोको किस तरह प्राप्त कर सकते ? ॥२०॥ यह माता अत्यन्त सती तथा हम सबका बहुत भारी भला करनेवाली है । इस पृथिवीपर इसके समान दूसरी पवित्र स्त्री नहीं है ॥२१॥ मनुष्योंमे उत्तम रामलक्ष्मण सीताकी गतिका ध्यानकर गव्युति प्रमाण मार्गको ही सुखसे तय कर पाते थे ॥२२॥ वे पृथिवीमण्डलपर नाना प्रकारके धान, कमलोसे सुशोभित तालाव और गगनचुम्बी वृक्षोंको देखते हुए जा रहे थे ॥२३॥ जिस प्रकार वर्षा ऋतुमे गङ्गा और यमुनाके प्रवाह अनेक नदियोंसे मिलते रहते हैं वसी प्रकार राम-लक्ष्मणके पर्यन्त भाग भी अनेक वेगशाली राजाओंसे मिलते रहते थे ॥२४॥ ग्राम, खेट, मटव, घोष तथा नगरोंमे लोग उन उत्तम वीरोका भोजनादि सामग्रीके द्वारा सत्कार करते थे ॥२५॥ दोनों ही भाई आगे बढ़ रहे थे, और सामन्त लोग मार्गके खेटसे दुःखी हो रहे थे । जब उन्हें इस बातका दृढ़ ज्ञान हो गया कि राम-लक्ष्मण लौटनेवाले नहीं हैं तब वे उनसे कहे

१. गवाक्षप्रदेशेषु । २. वीक्ष्यमाणौ म० । ३. वृत्तान्तौ म० । ४. लघुनाहारेण, अपहारेण (१) म० । ५. वेगवशिर्जाराधिपैः म० । ६. पनागमेनदी गंगा म० ।

अपरे त्रयया केचिद्गीत्यान्ये भक्तिरपरः । अद्भजन् विनयात् पद्मयां दृष्ट्वा दुःखस्य मानसम् ॥२७॥
 ततो हरिगजनातसङ्कुलारावभैरवाम् । परियात्राटवी प्राप्तौ लीलाया रामलक्ष्मणौ ॥२८॥
 तस्यां बहुलशर्वायं तुल्यध्वान्तां महानगैः । निम्नङ्गां शर्वरीमेतौ शवराश्रितरोधसाम् ॥२९॥
 तस्या रोधसि विश्रम्य नानास्वातुफलोचिते । कांश्चिन्न्यवर्तयद्भूपान् पद्मः सुप्रतिबोधनः ॥३०॥
 महतापि प्रयत्नेन निवृत्ता नापरे नृपाः । पद्मेन सहितं गन्तुं किल सञ्जातनिश्रयाः ॥३१॥
 ततस्ते निम्नङ्गां दृष्ट्वा महानीलावभासिनीम् । चण्डवेगोर्मिसंघातनिर्मितोदरनिश्रिताम् ॥३२॥
 उन्मज्जत्प्रबलप्राहकृतकलोलसङ्कुलाम् । वीचीमालासमाघातनिपतन्मृदुरोधसम् ॥३३॥
 महाद्विकन्दरास्फालप्रतिसूत्कारनादिनीम् । उद्वर्तमानमीनांगस्फुरझास्कररोधिषम् ॥३४॥
 उद्वृत्तनक्रसूत्कारजातदूरगशीकराम् । उड्डीयमाननिश्शेषभयपूर्णपतन्नङ्गाम् ॥३५॥
 सन्त्रासकम्पमानाङ्गा जगुरामं सलक्ष्मणम् । समुत्तारय नाथास्मानपि पद्मप्रसादवान् ॥३६॥
 भृत्यानां भक्तिपूर्णाणां प्रसादं कुरु लक्ष्मण । देवि ते कुरुते वाक्यं जानकि ब्रूहि लक्ष्मणम् ॥३७॥
 पद्मवादिगदन्तस्ते कृपणा बहु तां नदीम् । ह्रुदौकिरे प्रसन्नश्च नानाचेष्टाविधायिनः ॥३८॥
 ततस्ताम् राववोऽत्रोचद्विश्रब्धो रोधसि स्थितः । अयुना विनिवर्तध्वं भद्रा भीममिदं वनम् ॥३९॥
 अस्माभिः सह युष्माकमियानैवैष सङ्गमः । एषा नद्यवधिजाता भवतीत्युक्त्वयजिता ॥४०॥

विना ही लौट गये ॥२६॥ भक्तिमें तत्पर रहनेवाले कितने ही सामान्त लज्जासे और कितने ही भयसे अपने मनको दुःखी कर विनय पूर्वक उनके साथ पैदल चल रहे थे ॥२७॥

तदनन्तर रामलक्ष्मण लीला पूर्वक परियात्रा नामकी उस अटवीमें पहुँचे जो कि सिंह और हस्तिसमूहके उच्च शब्दोंसे भयंकर हो रही थी ॥२८॥ उस अटवीमें बड़े-बड़े वृक्षोंसे कृष्ण-पक्षकी निशाके समान घोर अन्धकार व्याप्त था । वहीं, जिसके किनारे अनेक शबर अर्थात् भील रहते थे ऐसी एक शर्वरी नामकी नदी थी । रामलक्ष्मण वहाँ पहुँचे ॥२९॥ नाना प्रकारके मधुर फलोंसे युक्त उस नदीके तटपर विश्रामकर रामने समझा-बुझाकर कितने ही राजाओंको तो वापिस लौटा दिया ॥३०॥ पर जिन्होंने रामके साथ जानेका निश्चय ही कर लिया था ऐसे अन्य अनेक राजा बहुत भारी प्रयत्न करनेपर भी नहीं लौटे ॥३१॥

तदनन्तर जो नदी महानील मणिके समान सुशोभित हो रही थी, अत्यन्त वेगशाली लहरोंके समूहसे जिसका मध्य भाग व्याप्त था, जो उखरते हुए बलवान् मगरमच्छोंकी टक्करसे उत्पन्न होनेवाली तरङ्गोंसे व्याप्त थी, लहरोंके समूहका आघातपर जिसके कोमल किनारे उसीमें दृढ़-दृढ़कर गिर रहे थे, बड़े-बड़े पर्वतोंकी गुफाओंमें टकरानेसे जिसमें 'सू'शब्द हो रहा था, जिसमें ऊपर तैरनेवाली मछलियोंके शरीरमें सूर्यकी किरणें प्रतिबिम्बित हो रही थी, जिसमें उत्पात करनेवाले नाकोंकी सूत्कारसे जलके छँटे दूर-दूर तक उड़ रहे थे, और जिसके पाससे समस्त पक्षी भयभीत होकर उड़ गये थे ऐसी उस नदीको देखकर सब सामान्तोंके शरीर भयसे काँपने लगे । वे लक्ष्मण सहित रामसे बोले कि 'हे नाथ ! हम लोगोंको भी नदीसे पार उतारो । हे पद्म ! प्रसन्न होओ, हे लक्ष्मण ! भक्तिसे भरे हुए हम सेवकोंपर प्रसन्नता करो । हे देवि ! लक्ष्मण तुम्हारी बात मानते हैं इसलिये इनसे कह दो' ॥३२-३७॥ इत्यादि अनेक शब्दोंका उच्चारण करते हुए वे दीन सामान्त उस नदीमें क्रुद्ध पड़े तथा नाना प्रकारको चेष्टाएँ करते हुए वहने लगे ॥३८॥ तब किनारेपर निश्चिन्ततासे खड़े हुए रामने उन सबसे कहा कि हे भले पुरुषो ! अब तुम लौट जाओ । यह वन बहुत भयङ्कर है ॥३९॥ हमलोगोंके साथ तुम्हारा

१. एतन्नामाटवी । २. काश्चित्प्रावर्तयद् म० । ३. महीन्द्र. म० । ४. [प्राप्ते सूत्कार म० । ५. मियानैवैव म० ।

ततैन भरतः स्वामी सर्वेषां यो निवेदितः । विसाध्वसास्तमावृत्य तिष्ठत चित्तिपालिनः ॥४१॥
 ततस्ते पुनरित्यूक्तुर्नाथात्मकं भवान् गतिः । प्रसादं कुरु मा त्वाक्षरस्मान् काह्वयकोविद ॥४२॥
 निराश्रयाकुलीभूता स्वयेयं रहिता प्रजा । बद्ध कं शरणं यातु सद्यः कस्तवापरः ॥४३॥
 व्याघ्रसिंहगजेन्द्रादिव्यालज्जालसमाकुले । वसामो भवता सार्धमरण्ये न विना दिवि ॥४४॥
 न नो निर्वर्तते चित्त प्रतिग्रामः कथं वयम् । महत्तरत्वमेतेन ह्यपीकेष्वर्जितं ननु ॥४५॥
 किं नो गृहेण किं भोगैः किं दारैः किं नु बन्धुभिः । भवता नरत्वेन मुक्तानां पापकर्मणाम् ॥४६॥
 क्रीडास्वपि त्वया देव वञ्चिता स्मो न जातुचित् । सम्मानेनाधुना कस्माज्जातोऽत्यन्तनिष्ठुरः ॥४७॥
 कोऽपराधो बद्धास्माकं भवच्चरणरेणुना । परमां वृद्धिमेतानां भक्तानां श्रुत्यवत्सल ॥४८॥
 अहो जानकि लक्ष्मीश रञ्जितोऽयं शिरोज्जलिः । प्रसाद्यतमीशं नः प्रसादी भवतोरयम् ॥४९॥
 सीता लक्ष्मीशरञ्चैवमुच्यमानौ सुदक्षिणौ । तस्थतुः पद्मपादाग्रन्यस्तनेत्रौ निरुत्तरौ ॥५०॥
 ततः पद्मो जगादेदं भवतामुत्तरं स्फुटम् । निवर्तध्वमयं भद्रा यातोऽस्मि सुखमाम्यत्तम् ॥५१॥
 इत्युक्त्वा निरपेक्षौ तौ परमोत्साहसङ्गतौ । अवतेरतुरत्यन्तगम्भीरां तां महापगाम् ॥५२॥
 उत्तीर्णः सरित पद्मो जानकी विकचेक्षणाम् । करेण सुखमादाय पद्मिनीमिव दिग्गजः ॥५३॥
 अम्भोविहारविज्ञानव्रुधयोः सा तयोर्धुनी । नामिदृक्त्वां वभूवोद्वां क्रीडामाचरतोश्चिरम् ॥५४॥

इतना ही समागम था । अब हमारे और तुम्हारे बीचमें यह नदी सीमा बन गई है इसलिए उत्सुकतासे रहित होओ ॥४०॥ पिताने तुम सबके लिए भरतको राजा बनाया है सो तुम सब निर्भय होकर उसीके शरणमें रहो ॥४१॥

तदनन्तर उन्होंने फिर कहा कि हे नाथ ! हमारी गति तो आप ही है इसलिए हे दयानिपुण ! प्रसाद करो और हमलोगोंको नहीं छोड़ो ॥४२॥ तुम्हारे बिना यह प्रजा निराधार होकर व्याकुल हो रही है आप ही कहे किसकी शरणमें जावे ? आपके समान दूसरा है ही कौन ? ॥४३॥ हम आपके साथ व्याघ्र, सिंह, गजेन्द्र आदि दुष्ट जीवोंके समूहसे भरे हुए वनमें रह सकते हैं पर आपके बिना स्वर्गमें भी नहीं रहना चाहते ॥४४॥ हमारा चित्त ही नहीं लौटता है फिर हम कैसे लौटें ? यह चित्त ही तो इन्द्रियोंमें प्रधान है ॥४५॥ जब आप जैसे नर-रत्न हमें छोड़ रहे हैं तब हम पापी जीवोंको घरसे क्या प्रयोजन है ? भोगोंसे क्या मतलब है ? स्त्रियोंसे क्या अर्थ है ? और बन्धुओंकी क्या आवश्यकता है ? ॥४६॥ हे देव ! क्रीडाओंमें भी कभी आपने हम लोगोंको सम्मानसे वञ्चित नहीं किया फिर इस समय अत्यन्त निष्ठुर क्यों हो रहे हो ? ॥४७॥ हे श्रुत्यवत्सल ! हमलोग आपके चरणोंकी धूलिसे ही परम वृद्धिको प्राप्त हुए हैं । वताइये, हमारा क्या अपराध है ? ॥४८॥ रामसे इतना कहकर उन्होंने सीता और लक्ष्मणको भी संबोधित करते हुए कहा कि हे जानकि ! हे लक्ष्मण ! मैं आप दोनोंके लिए हाथ जोड़कर मस्तकपर लगता हूँ आप हमारे विषयमें स्वामीको प्रसन्न क्रीजिए क्योंकि ये आप दोनोंपर प्रसन्न हैं—आपकी बात मानते हैं ॥४९॥ लोग सीता तथा लक्ष्मणसे इस प्रकार कह रहे थे और अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक वे दोनों रामके चरणकमलोंके आगे दृष्टि लगाये हुए चुपचाप खड़े थे—‘क्या उत्तर दिया जाय’ यह उन्हें सूझ नहीं पड़ता था ॥५०॥

तदनन्तर रामने कहा कि हे मद्रपुरुषो ! आप लोगोंके लिए यही एक स्पष्ट उत्तर है कि अब आप यहाँसे लौट जाइये, मैं जाता हूँ, आप लोग अपने घर सुखसे रहें ॥५१॥ इतना कहकर किसीकी अपेक्षा नहीं करनेवाले दोनों भाई बड़े भारी उत्साहसे उस अतिशय गहरी महा नदीमें उतर पड़े ॥५२॥ जिस प्रकार दिग्गज अपने कर (सूँड़) में कमलिनीको लेकर तैरता है उसी प्रकार राम विकसित नेत्रोंवाली सीताको हाथमें लेकर नदीको पार कर रहे थे ॥५३॥ दोनों ही

१. तनोति वर्तते म० । २. लक्ष्मण । ३. नामिप्रमाणजल ।

तदातिशोभते सीता पद्महस्ततलस्थिता । सुधीरा श्रीरिवोत्तुहशतपद्मगृहस्थिता ॥५५॥
 पारगः सीतया सार्धं लक्ष्मणेन च स क्षणात् । वृक्षैरन्तर्निमायातश्चेतस्तंभनविग्रहः ॥५६॥
 विप्रलापं ततः कृत्वा महान्त साश्रुलोचनाः । भवनाभिसुखीभूताः केचिच्छ्लेष्ण भुञ्जतः ॥५७॥
 तदाशान्द्यस्तनेत्रास्तु केचिद्युस्तमया इव । तस्थुः प्राप्यापरे मूर्च्छां निपेनुर्धरणीतले ॥५८॥
 विबोध्य केचिदत्रोत्तुर्धिकं ससारमसारकम् । श्रिमोगान्भोगिर्भोगाभान् भङ्गुरान्मीतिभाविनः ॥५९॥
 ईदृशामपि शूराणां यत्रावस्थेयमीदृशी । तत्र ग्रहणमस्मास्तु किमेरण्डप्रफल्गुणु ॥६०॥
 विभोगमरणव्याधिजराव्यसनभाजनम् । जलदुद्बुद्धनिस्सारं कृतत्वं धिक् शरीरकम् ॥६१॥
 भाग्यवन्तो महासत्त्वास्ते नराः श्लाघ्यचेष्टिताः । कपिभ्रूमङ्गुरां लक्ष्मीं ये तिरस्कृत्य दीक्षिताः ॥६२॥
 इति निर्वेदमापन्ना बहवो नरसत्तमाः । प्रज्जयाभिसुखीभूता ब्रह्मयुस्तत्र रोधसि ॥६३॥
 अथेचाञ्चकिरे तुङ्गं विशालं शुभमालयम् । परिवीतमतिरयाममहानोकहमालया ॥६४॥
 अनुसन्नुश्च तं नानापुष्पजातिसमाकुलम् । मकरन्दरसास्वाद्गुञ्जत्सम्भ्रान्तपद्पदम् ॥६५॥
 दृढशुश्रु विविकेषु वैशेषु समवस्थितान् । साधून् स्वाध्यायससक्तमानसान् पुस्ततेजसः ॥६६॥
 क्रमेण ताज्ञमस्यन्तः शनैर्मस्तकपाणयः । विविशुजिननाथस्य भव्रवं भृशमुज्ज्वलम् ॥६७॥
 रम्येष्वद्दिनितम्बेषु काननेषु सरिस्तु च । तत्र काले मही प्रायो भूपितासीविजनालयैः ॥६८॥

जल-क्रीड़ाके ज्ञानमें निपुण थे अतः चिरकाल तक उत्तम क्रीड़ा करते हुए जा रहे थे । उनके लिए वह नदी नाभि प्रमाण गहरी हो गई थी ॥५४॥ उस समय रामकी हृथेलीपर स्थित वैश्यालिनी सीता ऐसी सुशोभित हों रही थी मानो ऊँचे उठे हुए कमलरुही धरमें स्थित लक्ष्मी ही हो ॥५५॥ इस प्रकार जिनका शरीर चित्तको रोकनेवाला था ऐसे राम सीता और लक्ष्मणके साथ नदीको पारकर क्षणभरमें वृक्षोंसे अन्तर्हित हो गये ॥५६॥

तदनन्तर जिनके नेत्रोंसे आँसू भर रहे थे ऐसे कितने ही राजा बहुत भारी विलाप कर अपने भवनकी ओर उन्मुख हुए ॥५७॥ कितने ही लोग उसी दिशामें नेत्र लगाये हुए मिट्टी आदि के पुतलोंके समान खड़े रहे । कितने ही मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥५८॥ और कितने ही प्रबोधको प्राप्त होकर कहने लगे कि इस असार संसारको धिक्कार है तथा सोंपके शरीरके समान भय उत्पन्न करनेवाले नरवर भोगोंको धिक्कार है ॥५९॥ जहाँ इन जैसे शूर वीरोंकी भी यह अवस्था है वहाँ एरण्डके समान निःसार हमलोंकी तो गिनती ही क्या है ? ॥६०॥ वियोग, मरण, व्याधि और जरा आदि अनेक कष्टोंके पात्र तथा जलके बबूलेके समान निःसार इस कृतघ्न शरीरको धिक्कार है ॥६१॥ उत्तम चैष्टाके धारक जो मनुष्य वानरकी भौहके समान चञ्चल लक्ष्मीकी छोड़कर दीक्षित हो गये हैं वे महाशक्तिके धारक भाग्यवान् हैं ॥६२॥ इस प्रकार वैराग्यको प्राप्त हुए अनेक उत्तम मनुष्य दीक्षा लेनेके समुत्सुक हो नदीके उसी तटपर घूमने लगे ॥६३॥

तदनन्तर उन्होंने हरे भरे वृक्षांकी पङ्क्तिसे घिरा हुआ एक ऊँचा, विशाल तथा शुभ मन्दिर देखा ॥६४॥ मन्दिरका वह स्थान नाना प्रकारके पुष्पोंकी जातियोंसे व्याप्त था तथा मकरन्दरसके आस्वादसे पूँजते हुए भ्रमर वहाँ भ्रमण कर रहे थे ॥६५॥ उन लोगोंने वहाँ एकान्त स्थानोंमें बैठे हुए, स्वाध्यायमें लीन तथा विशाल तेजके धारक मुनियोंको देखा ॥६६॥ मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर सब लोगोंने उन्हें धीरे-धीरे यथा क्रमसे नमस्कार किया । तदनन्तर अत्यन्त उज्ज्वल जिनमन्दिरमें प्रवेश किया ॥६७॥ उस समय भूमि प्रायः कर पर्वतोंके सुन्दर नितम्बोंपर, वनोंमें तथा नदियोंके तटोंपर बने हुए जिनमन्दिरोंसे विभूषित थी ॥६८॥

तत्र कृत्वा नमस्कारं जिनानां शुभ्रभावानाः । १रत्नसम्भवगम्भीरं संयतेन्द्रं द्रुढैकिरे ॥६६॥
 प्रणम्य शिरसा सत्यं संवेगभरवाहिनः^२ । नाथोत्तारय संसारादस्मादिति बभाषिरे ॥७०॥
 सत्यकेतुगणीशेन तथास्त्रिजति कृतध्वनौ । जम्बुस्ते परमं तोषं निर्गताः स्मो भवादिति ॥७१॥
 ३विदग्धो विजयो मेरुः क्रूरः संग्रामलोलुपः । श्रीनागदमनो धीरः शठः शत्रुदमो धरः ॥७२॥
 विनोदः कण्टकः सत्यः कठोरः प्रियवर्धनः । एवमाद्या नृपा धर्मं नैर्घ्रन्त्यं समशिश्रियन् ॥७३॥
 साधनानि भटास्तेषां गृहीत्वा नगरं गताः । द्रुतमर्पयितुं दीनाः पुत्रादीनां त्रपान्विताः^४ ॥७४॥
 अणुव्रतानि संगृह्य केचिन्नियमधारिणः । आराधयितुमुद्युक्ता बोधिवुद्धिविभूषणाः ॥७५॥
 सम्यग्दर्शनमात्रेण सन्तोषमपरे गताः । श्रुत्वातिविमलं धर्मं जिनानां जितजन्मनाम् ॥७६॥
 सामन्तैर्बहुभिर्गत्वा भरताय निवेदितः । वृत्तान्तो सुस्थितश्चायं ध्यायन् किमपि दुःखितः ॥७७॥
 अध्यानत्पर्यराजस्य ५तनयः सुप्रबोधनः । राज्याभिपिञ्जनं कृत्वा भरतस्य सुचेतसः ॥७८॥
 किञ्चित्प्रवृत्तवियोगेन सन्तप्तं चित्तमुद्वहन् । शोकाग्भोधिविभगनेन परिवर्गेण वीक्षितः ॥७९॥
 कृतसान्त्वनमप्युच्चैर्विलपत्स समाकुलम् । अन्तःपुरं परित्यज्य नगरीतो विनिर्गतः ॥८०॥
 गुरुपूजां परां कृत्वा द्वासप्ततिनृपान्वितः । सर्वभूतहितस्यान्ते शिश्रिये श्रमणश्रिया ॥८१॥
 अथाप्येकविहारस्य शुभं ध्यानमभीप्सतः । मानसं पुत्रशोकेन कल्पं तस्य जन्यते ॥८२॥
 अन्यदा योगमाश्रित्य दध्यावेव विचक्षणः । धिक् स्नेह भवदुःखानां मूलं बन्धमिमं मम ॥८३॥

वहाँ उज्ज्वल भावनाको धारण करनेवाले सब लोग जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कारकर समुद्रके समान गम्भीर मुनिराजके पास गये ॥६६॥ वहाँ जाकर वैराग्यको धारण करनेवाले सब लोगोंने शिर झुकाकर मुनिराजको नमस्कार किया और तदनन्तर यह कहा कि हे नाथ । हम लोगोको इस संसार-सागरसे पार कीजिये ॥७०॥ इसके उत्तरमे मुनियोकै अधिपति सत्यकेतु आचार्यने ब्योही 'तथास्तु' यह शब्द कहा त्योंही 'अब तो हम संसारसे पार हो गये' यह कहते हुए सब लोग परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७१॥ विदग्ध, विजय, मेरु, क्रूर, संग्रामलोलुप, श्रीनागदमन, धीर, शठ, शत्रुदम, धर, विनोद, कण्टक, सत्य, कठोर और प्रियवर्धन आदि अनेक राजाओंने दिग्म्वर दीक्षा धारण की ॥७२-७३॥ इनके जो सेवक थे वे हाथी घोड़ा आदि सेनाको लेकर उनके पुत्रोको सौंपनेके लिए शीघ्र ही नगरकी ओर गये । उस समय वे सेवक अत्यन्त दीन तथा लज्जासे युक्त हो रहे थे ॥७४॥ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले कितने ही लोग अणुव्रत ग्रहणकर निर्मन्थसुद्राके धारकोकी सेवा करनेके लिए उद्यत हुए ॥७५॥ तथा कितने ही लोग संसारको जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का अत्यन्त निर्मल धर्म श्रवणकर मात्र सम्यग्दर्शन से ही सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७६॥ अनेक सामन्तोंने जाकर यह समाचार भरतके लिए सुनाया सो भरत कुछ ध्यान करता हुआ सुखसे बैठे था परन्तु यह समाचार सुन दुःखी हुआ ॥७७॥

अथानन्तर सम्यक् प्रबोधको प्राप्त हुए राजा दशरथ स्वस्थ चित्तको धारण करनेवाले भरतका राज्याभिषेक कर रामके वियोगसे कुछ सन्तप्त चित्तको धारण करते हुए, सान्त्वना देने पर भी जो अत्यन्त विलाप कर रहा था ऐसे व्याकुल अन्तःपुरको छोड़ नगरीसे बाहर निकले । उस समय शोकरूपी सागरमे डूबे हुए परिजन उनकी ओर निहार रहे थे ॥७८-८०॥ नगरीसे निकलकर वे सर्वभूतहित नामक गुरुके समीप गये और वहाँ बहुत भारी गुरु पूजाकर बहत्तर राजाओंके साथ दीक्षित हो गये ॥८१॥ यद्यपि मुनिराज दशरथ एकाकी विहार करते हुए सदा शुभ ध्यानकी इच्छा रखते थे तथापि पुत्र शोकके कारण उनका मन क्लृप्त हो जाता था ॥८२॥ एक दिन योगारूढ होकर बुद्धिमान् दशरथ विचार करने लगे कि संसार सम्बन्धी दुःखों

१. सागर इव गम्भीरस्तम् । २. वादिनः म० । ३. निदग्धो म० । निर्दग्धो क०, ख० ।

४. त्रपान्विताः म० । ५. दशरथः ।

अन्यजन्मसु ये दारा पितृभ्रातृसुतादयः । क गतास्ते ममानादौ संसारे गणनोष्मिताः ॥८३॥
 अनेकशो मया प्राप्ता विविधा विषया दिवि । नरकानलदाहाश्च सप्राप्ता भोगहेतवः ॥८५॥
 अन्योन्यभक्षणोदीनि सिद्धंक्त्वे च चिरं मया । प्राप्तानि दुःखशल्यानि बहुरूपासु योनियु ॥८६॥
 श्रुताः सङ्गीतनिस्वाना वंशवीणानुगायिनः^१ । भूयश्च परमाक्रन्दश्चित्तदारणकारिणः ॥८७॥
 स्तनेष्वप्यत्सरसां पाणिर्लोलितो नेत्रहारिषु । पुनः कुठारघातेन दुर्वृत्तेन पृथक्कृतिः ॥८८॥
 आस्वादितं महावीर्यमन्नं सुरभि पद्मरसम् । त्रपुरासादिकललं पुनश्च नरकावनी ॥८९॥
 वीचितं परमं रूपं मनोद्भवणकारणम् । पुनश्चात्यन्तवित्रासकारण दत्तवेषथु ॥९०॥
 आघ्रातः स चिरामोदो गन्धो मुदितषट्पदः । पुनश्च पृतिरत्यन्तमुद्गासितमहाजनः ॥९१॥
 आलिङ्गिता मनश्चोर्यो नार्यो लीलाविभूषणाः । पुनश्च कृटशात्मस्यः तीक्ष्णकण्ठकसङ्काटाः ॥९२॥
 किं न स्पृष्टं न किं दृष्टं किं प्रातं न किं श्रतम् । सुहुरास्वादितं किं न भवे दासेन कर्मणाम् ॥९३॥
 न सा चित्तिर्न तत्तोर्यो नासौ वद्विर्न सोऽनिलः । देहतां यो न मे प्राप्सो भवे संक्रामतश्चिरम् ॥९४॥
 त्रैलोक्ये स न जीवोऽस्ति यो न प्राप्सः सहस्रशः । पितादितां मम स्थानं न तद्यत्रोपितोऽस्मि न ॥९५॥
 अभ्रुवं देहभोगादिशरणं नास्ति विद्यते । सप्तारोऽय चतुःस्थान एकोऽहं दुःखसुकुप्सु ॥९६॥

का मूल कारण तथा मुझे बन्धनमे डालनेवाले स्नेहको धिक्कार है ॥८३॥ अन्य जन्मोमे जो मेरे स्त्री, पिता, भाई तथा पुत्र आदि सम्बन्धी थे वे सब कहीं गये ? यथार्थमें इस अनादि संसारमे सभी सम्बन्धी इतने हो चुके है कि उनकी गणना नहीं की जा सकती ॥८४॥ मैंने अनेकों बार स्वर्गमे नाना प्रकारके विषय प्राप्त किये हैं और भोगोंके निमित्त नरकाग्निके सन्ताप भी सहन किये है ॥८५॥ तिर्यञ्च पर्यायमे मैंने चिरकाल तक परस्पर एक दूसरेका खाया जाना आदि दुःख उठाये हैं । इस प्रकार नाना योनियोंमें मैंने दुःख रूपी अनेक शल्य प्राप्त किये हैं ॥८६॥ मैंने बाँसुरी वीणा आदि मधुर बाजोंका अनुगमन करनेवाले सङ्गीतके शब्द सुने हैं और हृदयको विदाण करनेवाले तीव्र रुदनके शब्द भी अनेक बार श्रवण किये हैं ॥८७॥ मैंने अपना हाथ अप्सराओके सुन्दर स्तनोंपर लड़ाया है और कभी कुठारकी तीक्ष्ण धारासे उसके टुकड़े-टुकड़े भी किये है ॥८८॥ मैंने महाशक्ति वर्धक, सुगन्धित छहरसोसे युक्त आहार ग्रहण किया है और नरककी भूमिमें राँगा सीसा आदिका कलल भी बार-बार पिया है ॥८९॥ मनको द्रवीभूत करनेवाला अत्यन्त सुन्दर रूप देखा है और अत्यन्त भयका कारण तथा कम्पन उत्पन्न करनेवाला घृणित रूप भी अनेक बार देखा है ॥९०॥ जिसकी सुवास चिरकाल तक स्थित रहती है ऐसा भ्रमरको आनन्दित करनेवाला मनोहर गन्ध सूँघा है और जिसे देखते ही महाजन दूर हट जाते हैं ऐसा तीव्र दुर्गन्ध उत्पन्न करनेवाला सड़ा कलेवर भी बार-बार सूँघा है ॥९१॥ मनको चुरानेवाली तथा लीला रूपी आभूषणोसे सुशोभित स्त्रियोंका आलिङ्गन किया है और तीक्ष्ण कण्ठोसे व्याप्त सेमरके मायामयी बुझोंका भी बार-बार आलिङ्गन किया है ॥९२॥ कर्मोंका दास बनकर मैंने इस संसारमे क्या नहीं किया है ? क्या नहीं देखा है ? क्या नहीं सूँघा है ? क्या नहीं सुना है ? और बार-बार क्या नहीं खाया है ? ॥९३॥ न वह पृथिवी है, न वह जल है, न वह अग्नि है और न वह वायु है जो चिर कालसे संसारमे भ्रमण करते हुए मेरी शरीर-दशा को प्राप्त नहीं हुआ है ॥९४॥ तीनों लोकोमे वह जीव नहीं है जो हजारो बार मेरा पिता आदि नहीं हुआ हो और वह स्थान भी नहीं है जहाँ मैंने निवास नहीं किया हो ॥९५॥ शरीर भोग आदि अनित्य है, कोई किसीका शरण नहीं है, यह संसार चतुर्गति रूप है, मैं अकेला ही दुःख भोगता हूँ, यह शरीर अशुचि है तथा उससे मैं जुदा हूँ, इन्द्रियों कर्मोंके आनेका द्वार है,

अशुचेः कायतोऽन्योऽह द्वारमक्षाणि कर्मणाम् । संवरो वारण तेषा निर्जरा जायते ततः ॥६७॥
 लोको विचित्ररूपोऽयं दुर्लभा बोधित्तमा । स्वास्थ्यातोऽयं जिनैर्धर्मः कृच्छ्रेणाधिगतो मया ॥६८॥
 ध्यानेन मुनिदृष्टेन विशुद्धेनैवमादिना । आर्तध्यानमसौ धीरः क्रमेण निरनीयशब् ॥६९॥
 येषुच्छ्रितसितच्छत्रो वरस्तम्बैरमाश्रितः । महाजिधु पराजित्ये शत्रूनत्यन्तमुद्धतान् ॥७०॥
 विपमानथिकुर्वाणः परीपहणान् भृशम् । शान्तस्तेष्वेव देशेषु निर्धन्यो विजहार सः ॥७१॥
 नाथे तथा स्थिते तस्मिन् विदेशे च गतेऽङ्गजे । परं सुमित्रया सत्रा शोकं भेजेऽपराजिता ॥७२॥
 ते दृष्ट्वा दुःखिते वाढमज्ज्वास्तलोचने^१ । भरताभ्यां श्रियं मेने भरतो विपदारुणाम् ॥७३॥
 अथैवं दुःखमापन्ने भृशं ते वीक्ष्य केकया । पश्चादुत्पन्नकारुण्यात् पुत्रमेवमभापत ॥७४॥
 पुत्र राज्ञं स्वया लब्धं प्रणताखिलराजकम् । पद्मलक्ष्मणनिर्मुक्तमलमेतन्न शोभते ॥७५॥
 विना ताभ्यां विनीताभ्यां किं राज्यं का सुखासिका । का वा जनपदे शोभा तव का वा सुवृत्तता ॥७६॥
 राजपुत्र्या समं वाञ्छी क्व तौ यातां सुखैधितौ । विमुक्तवाहनौ मार्गं पाषाणादिभिराकुले ॥७७॥
 मातरी दुःखिते पृते तयोर्गुणसमुद्रयोः । विरहे मापता^२ मृत्युमज्जपरिदेवते ॥७८॥
 तस्मादानय तौ क्षिप्रं समं ताभ्यां महासुखः । सुचिरं पालय चोर्णामेवं सर्वं विराजते ॥७९॥
 ब्रज तावत्स्वमारुह्य नुरङ्ग जातरंहसम् । आत्रजाम्यहमभ्येषा सुपुत्रानुपदं तव ॥८०॥
 इत्युक्तो धृतिमासाद्य साध्वैवमिति सत्त्वनः । सम्भ्रान्तोऽध्वसहस्रेण भरतस्तत्पथं श्रितः ॥८१॥

कर्मोंको रोक देना संवर है, संवरके बाद कर्मोंकी निर्जरा होती है, यह लोक विचित्र रूप है, उत्तम रत्नत्रयकी प्राप्ति होना दुर्लभ है, और जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहा हुआ यह धर्म मैंने बड़े कष्टसे पाया है ॥६६-६८॥ इस प्रकार मुनियोंके द्वारा अनुभूत विशुद्ध ध्यानसे धीरवीर दशरथ मुनिने क्रमसे पूर्वोक्त आर्तध्यानको नष्ट कर दिया ॥६९॥ जिनके ऊपर सफेद छत्र फिर रहा था तथा जो उत्तम हाथीपर सवार थे ऐसे राजा दशरथने पहले जिन देशोंमें महायुद्धोंके बीच अत्यन्त उद्धत शत्रुओंको जीता था अब उन्हीं देशोंमें वे अत्यन्त शान्त निर्धन्य मुनि होकर विषम परिपहोंको सहते हुए विहार कर रहे थे ॥१००-१०१॥

तदनन्तर पतिके मुनि हो जाने और पुत्रके विदेश चले जानेपर अपराजिता (कौशल्या) सुमित्राके साथ परम शोकको प्राप्त हुई ॥१०२॥ जिनके नेत्रोंसे निरन्तर अश्रु भरते रहते थे ऐसी दोनो विमाताओंको दुःखी देखकर भरत, भरत चक्रवर्तीकी लक्ष्मीके समान विशाल राज्यलक्ष्मी को विपके समान वारुण मानता था ॥१०३॥ अथानन्तर इस तरह उन्हीं अत्यन्त दुखी देख केकयीके मनमें दया उत्पन्न हुई जिससे प्रेरित होकर उसने अपने पुत्र भरतसे इस प्रकार कहा कि हे पुत्र ! यद्यपि तूने जिसमें समस्त राजा नम्रीभूत है ऐसा राज्य प्राप्त किया है तथापि वह राम और लक्ष्मणके बिना शोभा नहीं देता है ॥१०४-१०५॥ नियमसे भरे हुए उन दोनो भाइयोंके बिना राज्य क्या है ? देशकी शोभा क्या है ? और तेरी धर्मज्ञता क्या है ? ॥१०६॥ सुख पूर्वक वृद्धिको प्राप्त हुए दोनो बालक, बिना किसी वाहनके पाषाण आदि विषम मार्गमें राजकुमारी सीताके साथ कहाँ भटकते होंगे ? ॥१०७॥ गुणोंके सागर स्वरूप उन दोनोंकी ये माताएँ अत्यन्त दुःखी हैं, निरन्तर विलाप करती रहती हैं सो उनके विरहमें मृत्युको प्राप्त न हो जावें ॥१०८॥ इसलिए तू शीघ्र ही उन दोनोंको वापिस ले आ । उन्हींके साथ सुखपूर्वक चिरकाल तक पृथिवीका पालन कर । ऐसा करनेसे ही सबकी शोभा होगी ॥१०९॥ हे सुपुत्र ! तू वेगशाली घोड़ेपर सवार होकर जा और मैं भी तेरे पीछे ही आती हूँ ॥११०॥

माताके इस प्रकार कहनेपर भरत बहुत प्रसन्न हुआ वह 'साधु-साधु ठीक-ठीक' इस

कृत्वा पुरस्तरान् पद्मपार्थात् प्रत्यागताञ्जरान् । पवनाथसमारूढः स यथै शृशमुस्तुकः ॥११२॥
 प्रास्रश्च तामरण्यानीमनेकपंकुलाकुलाम् । नानावृक्षावृतादित्यां गिरिगङ्गाभीषणाम् ॥११३॥
 वन्धयित्वा महावृक्षैरुडुपानां^१ सुसहतीः^२ । तां^३ पुनीमुत्तारासीं क्षणेन सहवाहनः ॥११४॥
 इतो दृष्टवितो दृष्टीं पुरुषीं सह योपिता । इति पृच्छन्स शृण्वंश्च जगामानन्यमानसः ॥११५॥
 अथ तौ परमारण्ये विश्रान्तौ सरसस्तटे । ससीतौ भरतोऽपश्यत् पार्थन्यस्तशरासनौ ॥११६॥
 प्रभूतदिवसप्राप्तं ताभ्यां सीतान्यपेक्षया । पटुभिर्दिनैस्तमुद्देशं भरतः प्रतिपन्नवान् ॥११७॥
 अवतीर्य सुरङ्गाच्च मार्गं लोचनगोचरम् । गत्वा पद्भ्यां^४ समाश्लिष्य पादौ^५ पद्मस्य मूर्च्छितः ॥११८॥
 ततो विबोधितस्तेन कृत्वा सम्भाषणं क्रमात् । मूर्द्धाङ्गलिर्जगादैव पद्मं विनतविग्रहः ॥११९॥
 विडम्बनमिदं कस्मान्नाथ मे भवता कृतम् । पर राज्यापदेशेन न्यायसर्वस्व कोविद् ॥१२०॥
 आस्तां तावदिदं राज्यं जीवितेनापि किं मम । भवता विप्रयुक्तस्य गुरुचेष्टितकारिणा ॥१२१॥
 उत्तिष्ठ स्वपुरीं यामः प्रसादं कुरु मे प्रभो । राज्यं पालय निश्चेषं यच्छं मेऽतिसुत्रासिकाम् ॥१२२॥
 भवामि छत्रदारस्ते ऋशुघ्नश्चमराश्रितः । लक्ष्मणः परमो मन्त्री सर्वं सुविहितं ननु ॥१२३॥
 पश्चात्तापानलेनालं सन्तप्ता जननी मम । तत्र लक्ष्मीधरस्यापि वर्तते शोककारिणी ॥१२४॥
 प्रवीत्येवमसौ यावत्कैकया तावदागता । वेगिनं रथामारुह्य सामन्तशतमध्वगा ॥१२५॥

प्रकारके शब्द कहने लगा तथा शीघ्र ही एक हजार घोड़ोंसे युक्त हो रामके मार्गमें चल पड़ा ॥१११॥ वह रामके पाससे लौटकर आये हुए लोगोंको आगेकर बढ़ी उत्कण्ठासे पवनके समान शीघ्रगामी घोड़ेपर सवार होकर चला ॥११२॥ तथा कुछ ही समयमें उस महाअटवीमें जा पहुँचा जो हाथियोंके समूहसे व्याप्त थी, नाना वृक्षोंसे जहाँ सूर्यका प्रवेश रुक गया था तथा जो पर्वत और गर्तोंसे अत्यन्त भयंकर थी ॥११३॥ सामने भयंकर नदी थी सो वृत्तोंके बड़े-बड़े लट्टोंसे नावोंके समूहको बाँधकर उनका पुल बना वाहनोके साथ-साथ क्षण भरमें पार कर गया ॥११४॥ वह मार्गमें मिलनेवाले लोगोंसे पूछता जाता था कि क्या यहाँ आप लोगोंने एक स्त्रीके साथ दो पुरुष देखे है और उनके उत्तरको एकाग्र मनसे सुनता हुआ आगे बढ़ता जाता था ॥११५॥

अथानन्तर जो सवन वनमें एक सरोवरके तीरपर विश्राम कर रहे थे तथा जिनके पास ही धनुष रक्खे हुए थे ऐसे सीता सहित रामलक्ष्मणको भरतने देखा ॥११६॥ रामलक्ष्मण, सीताके कारण जिस स्थानपर बहुत दिनमें पहुँच पाये थे भरत उस स्थानपर छह दिनमें ही पहुँच गया ॥११७॥ वह घोड़ेसे उतर पड़ा और जहाँसे राम दिख रहे थे उतने मार्गमें पैदल ही चलकर उनके समीप पहुँचा तथा उनके चरणोंका आलिङ्गन कर मूर्च्छित हो गया ॥११८॥ तदनन्तर रामने सचेत किया सो क्रमसे वार्तालाप कर नम्रीभूत हो हाथ जोड़ शिरसे लगाकर इस प्रकार कहने लगा कि हे नाथ ! राज्य देकर आपने मेरी यह क्या विडम्बना की है ? आप ही न्यायके जाननेवाले अतिशय निपुण हो ॥११९-१२०॥ उत्तम चेष्टाओंके धारण करनेवाले आपसे पृथक् रहकर मुझे यह राज्य तो दूर रहे जीवनसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२१॥ हे प्रभो ! ठठो, अपनी नगरीको चले, मुझपर प्रसन्नता करो, समस्त राज्यका पालन करो और मुझे सुखकी अवस्था देओ ॥१२२॥ मैं आपका छत्र धारक होऊँगा, शत्रुघ्न चमर डोलेंगा और लक्ष्मण उत्कृष्ट मन्त्री होगा, ऐसा करनेसे ही सब ठीक होगा ॥१२३॥ मेरी माता पश्चात्तापरुषी अग्निसे अत्यन्त संतप्त हो रही है तथा आपकी और लक्ष्मणकी माता भी निरन्तर शोक कर रही है ॥१२४॥ जब तक भरत इस प्रकार कह रहा था तब तक सैकड़ों सामन्तोंके मध्य गमन करने-

दृष्ट्वा परमशोभेन निर्भरीकृतमानसा । हाकारमुखरा चेतावलिंग्य रुदिता चिरम् ॥१२६॥
 ततोऽखलरितशङ्के विप्रलपेऽतिखेदिता । क्रमात्सम्भाषणं कृत्वा केकयैवमसापत ॥१२७॥
 पुत्रोत्तिष्ठ पुरी यामः कुरु राज्यं सहानुजः । ननु त्वया विहीनं मे सकलं विपिनायते ॥१२८॥
 भरतः शिञ्जणीयोऽथ तवात्यन्तमर्वाषिणः । खौणिन नष्टबुद्धेर्मे क्षमस्व दुरनुष्ठितम् ॥१२९॥
 ततः पद्मो जगादैवं किं न वेत्सि त्वमम्बिके । क्षत्रिया ननु कुर्वन्ति सकृत्कार्यमनन्यथा ॥१३०॥
 उक्त तातेन यत्सत्य तत्कर्मैष्यं मया त्वया । भरतेन च दुष्कीर्तिर्माभूदस्य जगत्त्रये ॥१३१॥
 पुनश्चोवाच भरत भ्रातर्मां गा विचित्ताम् ७ । शङ्कस्ते यद्यनाचारान्नायं मदनुमोदनात् ॥१३२॥
 इत्युक्त्वा पुनरप्यस्य पद्मो राज्याभिषेचनम् । चकार कानने रम्ये समर्चं सर्वभूभृताम् ॥१३३॥
 प्रणम्य केकयां सान्त्व सम्भाष्य च पुनः पुनः । भ्रातरं च परिष्वज्य प्राहिणोत् सोऽतिकृच्छृतः ॥१३४॥
 तौ विधाय यथायोग्यमुपचारं सलीतयोः । रामलक्ष्मणयोर्घातौ मातापुत्रौ यथागतम् ॥१३५॥
 परिध्वस्ताखिलद्वेषं सर्वप्रकृतिसौख्यदम् । चकार भरतो राज्यं प्रजासु जनकोपमः ॥१३६॥
 राज्ये तथाविधेऽप्यस्य धृतिर्नाभूदपि क्षणम् । दुस्सहं दधमानस्य शोकशयलं मनस्विनः ॥१३७॥
 त्रिकालमरनाथस्य चन्द्रारुर्भोगमन्दधीः । ययौ श्रोतुं च सद्धर्मं चैत्यमन्येयतां धृति ॥१३८॥

वाली केकयी वेगशाली रथपर सवार हो वहाँ आ पहुँची ॥१२५॥ राम लक्ष्मणको देखकर उसका हृदय बहुत भारी शोकसे भर गया । हा हा कार करती हुई वह दोनोका आलिङ्गन कर चिर काल तक रोती रही ॥१२६॥

तदनन्तर जो विलाप करती-करती अत्यन्त खिन्न हो गई थी ऐसी केकयी अश्रुरूपी नदीकी धारा दृटनेपर क्रमसे वार्तालाप कर इस प्रकार बोली कि हे पुत्र ! उठो, नगरीको चले, छोटे भाइयोके साथ राज्य करो, तुम्हारे बिना मुझे यह सब राज्य वनके समान जान पड़ता है ॥१२७-१२८॥ तुम अतिशय बुद्धिमान् हो, यह भरत तुम्हारी शिक्षाके योग्य है अर्थात् इसे शिक्षा देकर ठीक करो, खोपनाके कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गई थी अतः मेरे इस कुकृत्यको क्षमा करो ॥१२९॥ तदनन्तर रामने कहा कि हे माता ! क्या तुम यह नहीं जानती हो कि क्षत्रिय स्वीकृत कार्यको कभी अन्यथा नहीं करते हैं—एक धार कार्यको जिस प्रकार स्वीकृत कर लेते हैं उसी प्रकार उसे पूर्ण करते हैं ॥१३०॥ पिताने जो सत्य वचन कहा था उसको पूर्ति मुझे तुम्हें तथा भरत-सभीको करनी चाहिये । 'पिताकी अपकीर्ति जगत्त्रयमे न फैले' इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है ॥१३१॥ केकयीसे इतना कहकर उन्होंने भरतसे कहा कि हे भाई ! तू वैचित्य अर्थात् द्विविधाको प्राप्त मत हो । यदि तू अनाचारसे उरता है तो यह अनाचार नहीं है क्योंकि मैं स्वयं इस कार्यकी तुम्हें अनुमति दे रहा हूँ ॥१३२॥ इतना कहकर रामने मनोद्वार वनमें सब राजाओंके समक्ष भरतका पुनः राज्याभिषेक किया ॥१३३॥ तदनन्तर केकयीको प्रणामकर सान्त्वना देते हुए बार-बार सम्भाषण कर और भाईका आलिङ्गन कर बड़े कष्टसे सनको वापिस बिदा किया ॥१३४॥ इस प्रकार माता और पुत्र अर्थात् केकयी और भरत, सीता सहित रामलक्ष्मणका यथा योग्य उपचार कर जैसे आये थे वैसे लौट गये ॥१३५॥

अथानन्तर भरत, पिताके समान, प्रजापर राज्य करने लगा । उसका राज्य समस्त शत्रुओंसे रहित तथा समस्त प्रजाको सुख देनेवाला था ॥१३६॥ तेजस्वी भरतने अपने मनमें असहनीय शोकरूपी शल्यको धारण कर रहा था इसलिए ऐसे व्यवस्थित राज्यमें भी उसे क्षणभरके लिए संतोष नहीं होता था ॥१३७॥ वह तीनों काल अरनाथ भगवान्की वन्दना करता था भोगोंसे सदा उदास रहता था और सभीचीन धर्मका श्रवण करनेके लिए मन्दिर जाता था

तत्राचार्यो द्युतिर्नाम स्वपरगमपारगः । महता साधुसधेन सततं कृतसेवनः ॥१३६॥
 अग्रतोऽग्रहं तस्य चकार भरतः सुधीः । पद्मदर्शनमात्रेण करिष्ये मुनितामिति ॥१४०॥
 कृतावग्रहमेवं तसुवाच भगवान् द्युतिः । कुर्वन् मयूरचूडानां नर्तनं धीरया गिरा ॥१४१॥
 भव्य भो यावदायाति पद्मः पद्मनिरीक्षणः । तावद्गृहस्थधर्मेण भ्रवासपरिकर्मकः ॥१४२॥
 अत्यन्तदुस्सहा चेष्टा निर्ग्रन्थानां महात्मनाम् । परिकर्म विशुद्धस्य जायते सुखसाधना ॥१४३॥
 उपरिष्टान् करिष्यामि काले तप इति ब्रुवन् । अनेको मृत्युमायाति नरोतिजडमानसः ॥१४४॥
 अनर्घ्यरत्नसदृश तपो दिग्वाससामिति । एवमप्यक्षम वक्नु परस्तस्योपमा कुतः ॥१४५॥
 कनीयांस्तस्य धर्मोऽयमुक्तोऽय गृहिणां जिनैः । अप्रमादी भवेत्स्मिन्नितो बोधदायिनि ॥१४६॥
 यथा रत्नाकरद्वीप मानवः कश्चिदागतः । रत्नं यत्किञ्चिदादत्ते यात्यस्य तदनर्घताम् ॥१४७॥
 तथास्मिन्नियमद्वीपे शासने धर्मचक्रिणाम् । य एव नियमः कश्चिद् ग्रहीतो यात्यनर्घताम् ॥१४८॥
 अर्हिसारत्नमादाय विपुलं यो जिनाधिपम् । भक्त्यार्चयत्यसौ नृनाके परमां वृद्धिमश्नुते ॥१४९॥
 सत्यम्रतधरः क्षमिर्भयः करोति जिनार्चनम् । भक्त्यादेयवाक्योऽसौ सत्कीर्तिव्याप्तविष्टपः ॥१५०॥
 अदत्तादाननिर्मुक्तो जिनेन्द्रान् यो नमस्यति । जायते रत्नपूर्णानां निधीनां स विभुर्नरः ॥१५१॥
 यो रतिं परनारोपु न करोति जिनाश्रितः । सोऽथ गच्छति सौभाग्यं सर्वनेत्रमलिम्बुचः ॥१५२॥
 जिनानर्चति यो भक्त्या कृतावधिपरिग्रहः । लभतेऽसावतिस्कोतान् लाभान् लोकस्य पूजितः ॥१५३॥

यही इसका नियम था ॥१३८॥ वहाँ स्व और पर शास्त्रोंके पारगामी तथा अनेक मुनियोंका संघ जिनकी निरन्तर सेवा करता था ऐसे द्युति नामके आचार्य रहते थे ॥१३९॥ उनके आगे बुद्धिमान भरतने प्रतिज्ञा की कि मैं रामके दर्शन मात्रसे मुनिव्रत धारण करूँगा ॥१४०॥ तदनन्तर अपनी गम्भीर वाणीसे मयूर समूहको वृत्त्य कराते हुए भगवान् द्युति भट्टारक इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनेवाले भरतसे बोले ॥१४१॥ कि हे भव्य ! कमलके समान नेत्रोंके धारक राम जब तक आते तब तक तू गृहस्थ धर्मके द्वारा अभ्यास कर ले ॥१४२॥ महात्मा निर्ग्रन्थ मुनियोंकी चेष्टा अत्यन्त कठिन है पर जो अभ्यासके द्वारा परिपक्व होते हैं उन्हें उसका साधन करना सरल हो जाता है ॥१४३॥ 'मैं आगे तप करूँगा' ऐसा कहनेवाले अनेक जड़बुद्धि मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं पर तप नहीं कर पाते हैं ॥१४४॥ निर्ग्रन्थ मुनियोंका तप अमूल्य रत्नके समान है' ऐसा कहना भी अशक्य है फिर उसकी अन्य उपमा तो ही क्या सकती है ? ॥१४५॥ गृहस्थोंके धर्मको जिनेन्द्र भगवान्ने मुनिधर्मका छोटा भाई कहा है सो बोधिको प्रदान करनेवाले इस धर्ममें भी प्रमाद रहित होकर लीन रहना चाहिये ॥१४६॥ जैसे कोई मनुष्य रत्नद्वीप में गया वहाँ वह जिस किसी भी रत्नको उठाता है वही उसके लिए अमूल्यताको प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार धर्मचक्रकी प्रवृत्ति करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्के शासनमें जो कोई इस नियमरूपी द्वीपमें आकर जिस किसी नियमको ग्रहण करता है वही उसके लिए अमूल्य हो जाता है ॥१४७-१४८॥ जो अत्यन्त श्रेष्ठ अर्हिसारूपी रत्नको लेकर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह स्वर्गमें परम वृद्धिको प्राप्त होता है ॥१४९॥ जो सत्य व्रतका धारी होकर मांलाओं से भगवान्की अर्चा करता है उसके वचनोंको सब ग्रहण करते हैं तथा उज्ज्वल कीर्तिसे वह समस्त संसारको व्याप्त करता है ॥१५०॥ जो अदत्तादान अर्थात् चोरीसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करता है वह रत्नोंसे परिपूर्ण निधियोंका स्वामी होता है ॥१५१॥ जो जिनेन्द्र भगवान्की सेवा करता हुआ परस्त्रियोमें प्रेम नहीं करता है वह सबके नेत्रोंको हरण करनेवाला परम सौभाग्यको प्राप्त होता है ॥१५२॥ जो परिग्रहकी सीमा नियतकर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र

१. स्वकीयपरकीयशास्त्रपारगामी । २. प्रतिगाम् । ३. प्राप्ताभ्यासः । ४. स्वर्ग । ५. नदीना म० (?) । ६. सर्वजनमनोहरः ।

आहारदानपुण्येन जायते भोगनिर्भरः । विदेशमपि यातस्य सुखिता तस्य सर्वदा ॥१५४॥
 अभीतिदानपुण्येन जायते भयवर्जितः । महासङ्कटयातोऽपि निरुपद्रवविग्रहः ॥१५५॥
 जायते ज्ञानदानेन विशालसुखभाजनम् । कलाणवामृतं चासौ गण्डूपं कुरुते नरः ॥१५६॥
 यः करोति विभावयार्माहारपरिवर्जनम् । सर्वारम्भप्रवृत्तोऽपि यत्यसौ सुखदां गतिम् ॥१५७॥
 वन्दन यो जिनेन्द्राणां त्रिकालं कुरुते नरः । तस्य भावविशुद्धस्य सर्वं नश्यति दुष्कृतम् ॥१५८॥
 सामोदैर्भुजलोद्भूतैः पुष्पैर्यो जिनमर्चति । विमानं पुष्पकं प्राप्य स क्रीडति यथेप्सितम् ॥१५९॥
 भावपुष्पैर्जिनं यस्तु पूजयत्यतिनिर्मलैः । लोकस्य पूजनीयोऽसौ जायतेऽर्चन्तसुन्दरः ॥१६०॥
 धूपं यश्चन्दनाद्युभ्राशुवादिप्रभव सुधीः । जिनानां दौकथत्येव जायते सुरभिः सुरः ॥१६१॥
 यो जिनेन्द्रालये दीपं ददाति शुभभावतः । स्वयम्प्रभशरीरोऽसौ जायते सुरसञ्जनि ॥१६२॥
 छत्रचामरलम्बूपताकादर्पणादिभिः । भूषयित्वा जिनस्थानं याति विस्मयिनीं श्रियम् ॥१६३॥
 समालम्ब्य जिनान् गन्धैः सौरभ्यव्याप्तदिङ्मुखैः । सुरभिः प्रमदानन्दो जायते दयितः पुमान् ॥१६४॥
 अभिषेकं जिनेन्द्राणां कृत्वा सुरभिवारिणा । अभिषेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते ॥१६५॥
 अभिषेकं जिनेन्द्राणां विधाय चौरधारया । विमाने चौरधवले जायते परमद्युतिः ॥१६६॥
 दधिकुम्भैर्जिनेन्द्राणां यः करोत्यभिषेचनम् । दध्याभङ्गट्टमे स्वर्गं जायते स सुरोत्तमः ॥१६७॥
 सर्पिया जिननाथानां कुरुते योऽभिषेचनम् । कान्तिद्युतिप्रभावाद्भ्यो विमानेशः स जायते ॥१६८॥

जिनेन्द्र भगवान्की अर्चा करता है वह अतिशय विस्तृत लाभोको प्राप्त होता है तथा लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१५३॥ आहार-दानके पुण्यसे यह जीव भोग-निर्भर होता है अर्थात् सब प्रकारके भोग इसे प्राप्त होते हैं । यदि यह परदेश भी जाता है तो वहाँ भी उसे सदा सुख ही प्राप्त होता है ॥१५४॥ अभयदानके पुण्यसे यह जीव निर्भय होता है और बहुत भारी संकटमें पड़कर भी उसका शरीर उपद्रवसे शून्य रहता है ॥१५५॥ ज्ञानदानसे यह जीव विशाल सुखों का पात्र होता है और कलारूपी सागरसे निकले हुए अमृतके कुल्ले करता है ॥१५६॥ जो मनुष्य रात्रिमें आहारका त्याग करता है वह सब प्रकारके आरम्भमें प्रवृत्त रहनेपर भी सुखदायी गतिको प्राप्त होता है ॥१५७॥ जो मनुष्य तीनों कालमें जिनेन्द्रभगवान्की वन्दना करता है उसके भाव सदा शुद्ध रहते हैं तथा उसका सब पाप नष्ट हो जाता है ॥१५८॥ जो पृथिवी तथा जलमें उत्पन्न होनेवाले सुगन्धित फूलोंसे जिनेन्द्रभगवान्की अर्चा करता है वह पुष्पक विमानको पाकर इच्छानुसार क्रीड़ा करता है ॥१५९॥ जो अतिशय निर्मल भावरूपी फूलोंसे जिनेन्द्रदेवको पूजा करता है वह लोगोंके द्वारा पूजनीय तथा अत्यन्त सुन्दर होता है ॥१६०॥ जो बुद्धिमान् चन्दन तथा कालागुरु आदिसे उत्पन्न धूप जिनेन्द्रभगवान्के लिए चढ़ाता है वह मनोह्र देव होता है ॥१६१॥ जो जिनमन्दिरमें शुभ भावसे दीपदान करता है वह स्वर्गमें देदीप्यमान शरीरका धारक होता है ॥१६२॥ जो मनुष्य छत्र, चमर, फन्नुस, पताका तथा दर्पण आदिके द्वारा जिनमन्दिरको विशुषित करता है वह आश्चर्यकारक लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥१६३॥ जो मनुष्य सुगन्धिसे दिशाओको व्याप्त करनेवाली गन्धसे जिनेन्द्रभगवान्का लेपन करता है वह सुगन्धिसे युक्त, स्त्रियोंको आनन्द देनेवाला प्रिय पुरुष होता है ॥१६४॥ जो मनुष्य सुगन्धित जलसे जिनेन्द्रभगवान्का अभिषेक करता है वह जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ अभिषेक को प्राप्त होता है ॥१६५॥ जो दूधकी धारासे जिनेन्द्रभगवान्का अभिषेक करता है वह दूधके समान धवल विमानसे उत्तमकान्तिका धारक होता है ॥१६६॥ जो दहीके कलशासे जिनेन्द्रभगवान्का अभिषेक करता है वह दहीके समान फर्सवाले स्वर्गमें उत्तम देव होता है ॥१६७॥ जो घीसे जिनदेवका अभिषेक करता है वह कान्ति द्युति और प्रभावसे युक्त विमानका स्वामी

अभिषेकप्रभावेण श्रयन्ते बहवो ब्रुवाः । पुराणेऽनन्तवीर्याद्या १द्युमूलब्धाभिषेचनाः ॥१६६॥
 भक्त्या बन्धुपहारं यः कुरुते जिनसङ्गनि । सम्प्राप्नोति परां भूतिमारोग्य स सुमानसः ॥१७०॥
 गीतनर्तनवादित्रैर्यः करोति महोत्सवम् । जिनसङ्गन्यसौ स्वर्गं लभते परमोत्सवम् ॥१७१॥
 भवनं यस्तु जैनेन्द्रं निर्मापयति मानवः । तस्य भोगोत्सवः शक्यः केन वक्तुं सुचेतसः ॥१७२॥
 प्रतिमां यो जिनेन्द्राणां कारयत्यचिरादसौ । सुरासुरोत्तमसुखं प्राप्य याति परं पदम् ॥१७३॥
 व्रतज्ञानतोदानैर्यान्युपात्तानि देहिनः । सर्वैस्त्रिष्वपि कालेषु पुण्यानि भुवन्त्रये ॥१७४॥
 एकस्मादपि जैनेन्द्रविम्बाद् भावेन कारितात् । यत्पुण्यं जायते तस्य न सम्मान्यतिमात्रतः ॥१७५॥
 फल यदेतदुद्दिष्टं स्वर्गं सम्प्राप्य जन्तवः । चक्रवर्त्यादितां लब्ध्वा तन्मर्त्यत्वेपि भुञ्जते ॥१७६॥
 धर्ममेवं विधानेन यः कश्चित्प्राप्य मानवः । संसारार्णवमुत्तीर्य त्रिलोकाग्नेऽवतिष्ठते ॥१७७॥
 फलं ध्यानाच्चतुर्थस्य १पद्यस्थोद्यानमात्रतः । २अष्टमस्य तदारम्भे गमने दशमस्य तु ॥१७८॥
 द्वादशस्य ततः किञ्चिन्मध्ये पक्षोपवासजम् । फलं मासोपवासस्य लभते चैत्यदर्शनात् ॥१७९॥
 चैत्याङ्गणं समासाद्य याति पापमासिकं फलम् । फलं वर्षोपवासस्य प्रविश्य द्वारमश्नुते ॥१८०॥
 फल प्रदक्षिणीकृत्य भुङ्क्ते वर्षशतस्य तु । दृष्ट्वा जिनास्थमानोति फलं वर्षसहस्रजम् ॥१८१॥
 अनन्तफलमानोति स्तुतिं कुर्वन् स्वभावतः । नहि भक्तेजिनेन्द्राणां विद्यते परमुत्तमम् ॥१८२॥
 कर्म सक्त्या जिनेन्द्राणां ह्य भरत गच्छति । ज्ञानकर्मो पदं याति यस्मिन्ननुपम सुखम् ॥१८३॥

देव होता है ॥१६८॥ पुराणमें सुना जाता है कि अभिषेकके प्रभावसे अनन्तवीर्य आदि अनेक विद्वज्जन, स्वर्गकी भूमिमें अभिषेकको प्राप्त हुए हैं ॥१६६॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जिनमन्दिरमें रङ्गावलि आदि का उपहार चढ़ाता है वह उत्तम हृदयका धारक होकर परम विभूति और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७०॥ जो जिनमन्दिरमें गीत, नृत्य तथा वादित्रोंसे महोत्सव करता है वह स्वर्गमें परम उत्सवको प्राप्त होता है ॥१७१॥ जो मनुष्य जिनमन्दिर बनवाता है उस सुचेताके भोगोत्सवका वर्णन कौन कर सकता है ? ॥१७२॥ जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमा बनवाता है वह शीघ्र ही सुर तथा असुरोंके उत्तम सुख प्राप्तकर परम पदको प्राप्त होता है ॥१७३॥ तीनों कालों और तीनों लोकोंमें व्रत, ज्ञान, तप और दानके द्वारा मनुष्यके जो पुण्य-कर्म संचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमाके बनवानेसे उत्पन्न हुए पुण्यकी बराबरी नहीं कर सकते ॥१७४-१७५॥ इस कहे हुए फलको जीव स्वर्गमें प्राप्तकर जब मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न होते हैं तब चक्रवर्ती आदिका पद पाकर वहाँ भी उसका उपभोग करते हैं ॥१७६॥ जो कोई मनुष्य इस विधिसे धर्मका सेवन करता है वह संसार-सागरसे पार होकर तीन लोकके शिखरपर विराजमान होता है ॥१७७॥ जो मनुष्य जिनप्रतिमाके दर्शनका चिन्तन करता है वह चेलाका, जो उद्यमका अभिलाषी होता है वह तेलका, जो जानेका आरम्भ करता है वह चौलाका, जो ज्ञाने लगता है वह पाँच उपवासका, जो कुछ दूर पहुँच जाता है वारह उपवासका, जो बीचमें पहुँच जाता है वह पन्द्रह उपवासका, जो मन्दिरके दर्शन करता है वह मासोपवासका, जो मन्दिरके आँगनमें प्रवेश करता है वह छहमासके उपवासका, जो द्वारमें प्रवेश करता है वह वर्षोपवासका, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्षके उपवासका, जो जिनेन्द्रदेवके मुखका दर्शन करता है वह हजार वर्षके उपवासका और जो स्वभावसे स्तुति करता है वह अनन्त उपवासके फलको प्राप्त करता है । यथार्थमें जिनभक्तिसे बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है ॥१८५-१८२॥ आचार्य द्युति कहते हैं कि हे भरत ! जिनेन्द्रदेवकी भक्तिसे कर्म ज्ञयको प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्म क्षीण हो जाते हैं वह अनुपम सुखसे सम्पन्न परम पदको प्राप्त होता

वृत्त्युक्तेऽन्यन्तसङ्गतिः प्रणम्य चरणौ गुरोः । जग्राह भरतो धर्मं सागारं सुविधानतः ॥१८३॥
 बहुश्रुतोऽतिधर्मज्ञो विनीतः श्रद्धयान्वितः । विशेषतो द्वादी दानं स साधुषु यथोचितम् ॥१८४॥
 सम्यग्दर्शनरत्नं स हृदयेन सदा वहन् । चकार विपुलं राज्यं साधुचेष्टापरायणः ॥१८५॥
 प्रतापश्चानुरागश्च समस्तां तस्य मेदिनीम् । वभ्राम प्रतिघातेन रहितां गुणवारिधेः ॥१८७॥
 अध्वर्युं तस्य पत्नीनां शतं देवीसमत्विपाम् । न तत्रासक्तिमायाति शतपत्रं यथाऽम्भसि ॥१८८॥

उपजातिः

चिन्तास्य नित्यं मगधाधिपासीत् कदा नु लप्स्ये निरगारदीचाम् ।
 तपः करिष्यामि कदा नु घोरे संनिर्वृत्तिको विहरन् पृथिव्याम् ॥१८९॥

इन्द्रवज्रा

धन्या मनुष्या धरणीतले ते ये सर्वसङ्ग्राम् परिवर्ज्य धीराः।
 दग्धाखिलं कर्म तपोबलेन प्राप्ताः पदं निर्वृत्तिसौख्यसारम् ॥१९०॥

उपजातिः

तिष्ठामि पापो भवदुःखमग्नः पश्यन्नपीडं क्षणिकं समस्तम् ।
 पूर्वाह्णदण्डोऽत्र जनोऽपराह्णे न दृश्यते कश्चिद्दहोऽस्मि मूढः ॥१९१॥

इन्द्रवज्रा

व्यालाञ्जलाद् वा विपतोऽनलाद् वा वज्राद् विमुक्तादहितेन शखात् ।
 शूलाद् वराद् वा मरणं जनोऽयं प्राप्नोति दीनाननबन्धुमन्ये ॥१९२॥

है ॥१८३॥ ऐसा कहनेपर अत्यन्त समीचीन भक्तियुक्त भरतने गुरुके चरणोको नमस्कार कर विधिपूर्वक गृहस्थ धर्म ग्रहण किया ॥१८४॥ अनेक शाखांका ज्ञाता, धर्मके मर्मको जाननेवाला, विनयवान् और श्रद्धा गुणसे युक्त भरत अब साधुओंके लिए विशेष रूपसे यथायोग्य दान देने लगा ॥१८५॥ उत्तम आचरणके पालनमें तत्पर रहनेवाला भरत हृदयमें सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको धारण करता हुआ विशाल राज्यका पालन करता था ॥१८६॥ गुणोंके सागरस्वरूप भरतका प्रताप और अनुराग दोनों ही बिना किसी रुकावटके समस्त पृथिवीमें भ्रमण करते थे ॥१८७॥ उसके देवियोंके समान कान्तिको धारण करनेवाली डेढ़ सौ स्त्रियाँ थीं फिर भी वह उनमें आसक्तिको प्राप्त नहीं होता था । जिस प्रकार कमल जलमें रहकर भी उसमें आसक्त नहीं होता है उसी प्रकार वह उन स्त्रियोंके बीच रहता हुआ भी उनमें आसक्त नहीं था ॥१८८॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! भरतके मनमें सदा यही चिन्ता विद्यमान रहती थी कि मैं निर्भय दीक्षा कव धारण करूँगा और परिग्रहसे रहित हो पृथिवीपर विहार करता हुआ घोर तप कव करूँगा ? ॥१८९॥ पृथिवीतलपर वे धीर-वीर मनुष्य धन्य हैं जो सर्व परिग्रहका त्यागकर तथा तपोबलसे समस्त कर्मोंको भस्म कर सन्तोषरूपी सुखसे श्रेष्ठ मोक्ष पदको प्राप्त हो चुके हैं ॥१९०॥ एक मैं पापी हूँ जो समस्त जगत्को क्षणभङ्गुर देखता हुआ भी संसारके दुःखमें मग्न हूँ । इस संसारमें जो मनुष्य पूर्वाह्न कालमें देखा गया है वही अपराह्न कालमें नहीं दिखाई देता फिर भी आश्चर्य है कि मैं मूढ़ बना हूँ ॥१९१॥ दीन हीन सुखको धारण करनेवाले बन्धुजनोके बीचमें वैठा हुआ यह प्राणी सर्पसे, जलसे, विषसे, अग्निसे, वज्रसे, शत्रुके

उपजातिः

बहुप्रकारैर्भरणैर्जनोऽयं प्रतर्क्यते दुःखसहस्रभागी ।
 क्षीरणवस्येव तटे प्रसुप्तो मत्तोऽतिवेगप्रसृतोभिंजालैः ॥१६३॥
 विधाय राज्यं घनपापदिग्धो हा कं प्रपत्ये नरकं तु घोरम्^१ ।
 शरासिचक्रागनगान्धकारं किं वा तु तिर्यक्त्वमनेकयोनिम् ॥१६४॥
 लब्ध्वापि जैनं समयं यदेतन्मनो मदीयं^२ दुरितानुबद्धम् ।
 करोति नो निस्पृहतासुपेत्य विमुक्तिदत्तं निरगारधर्मम् ॥१६५॥
 एवं च चिन्तां सततं प्रपन्नो दुष्कर्मविध्वंसनहेतुभूताम् ।
 पुराणनिर्ग्रन्थकथाप्रसक्तो ददर्श राजा न रधिं न चन्द्रम् ॥१६६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथरामभरतानां प्रव्रज्यावनप्रस्थानराज्याभिधानं
 नाम द्वात्रिंशत्तमं पर्व ॥३२॥

द्वारा छोड़ें हुए शस्त्रसे, अथवा तीक्ष्ण शूलसे मरणको प्राप्त हो जाता है ॥१६२॥ यह प्राणी अनेक प्रकारके मरणांसे हजारो प्रकारके दुःख भोगता हुआ भी निश्चिन्त बैठा है सो ऐसा जान पड़ता है मानो कोई मत्त मनुष्य वेगसे फैलनेवाली लहरोके समूहसे निर्भय हो लवणसमुद्रके तटपर सोया है ॥१६३॥ हाय हाय, मैं राज्य कर तीव्र पापसे लिप्त होता हुआ जहाँ बाण, खड्ग, चक्र आदि शस्त्र, तथा शालमली आदि वृक्षां और पहाड़ोंके कारण घोर अन्धकार व्याप्त है ऐसे किस भयंकर नरकमें पहुँगा अथवा अनेक योनियोंसे युक्त तिर्यञ्च पर्यायको प्राप्त होऊँगा ? ॥१६४॥ मेरा यह मन जैनधर्मको पाकर भी पापोंसे लिप्त हो रहा है तथा निःस्पृहताको प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करानेमें समर्थ मुनिधर्मको धारण नहीं कर रहा है ॥१६५॥ इस प्रकार जो पापकर्मके नाशमे कारणभूत चिन्ताको निरन्तर प्राप्त था तथा जो प्राचीन मुनियोंकी कथामें सदा लीन रहता था ऐसा राजा भरत न सूर्यकी ओर देखता था न चन्द्रमाकी ओर ॥१६६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें राजा दशरथकी दीक्षा, रामका वनगमन और भरतके राज्याभिषेकका वर्णन करनेवाला बत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३२॥



त्रयस्त्रिंशत्तशमं पर्व

ततो जनोपभोग्यानां प्रदेशानां समीपतः । रमणीयान् परिप्राप पद्मस्तापससश्रयान् ॥११॥
तापसा जटिलास्तत्र नानावल्कलधारिणः । सुस्वादुफलसम्पूर्णाः पादपा ह्रव भूरयः ॥२॥
विशालपत्रसञ्ज्ञाना मठकाः सवितर्हिंकाः । पलाशोदुम्बरैधानां पूलिकाभिर्युताः क्वचित् ॥३॥
अंकुष्टपच्यबीजेन शुष्यता पूरिताङ्गणाः । वर्तयद्भिः सुविश्रब्धैः रोमन्थं राजिता मृगैः ॥४॥
सजटैर्बहुभिर्मुक्ता रटङ्गिः सततं पट्ट । ललितोच्छ्रितपुच्छेण तार्णकेन कृताजिराः ॥५॥
पठद्भिर्विशदं युक्ताः शारिकाशुककौशिकैः । वीरुधां पुष्परम्याणां छायासु समवस्थितैः ॥६॥
कन्याभिर्घटकैः स्वादु वारिणा आसृतेचित्तैः । पूर्णालवालकैर्बालैस्तर्हिभिः कृतराजना ॥७॥
फलैर्बहुविधैः पुष्पैर्वासितैः स्वादुवारिभिः । सादरैः स्वागतस्वानैः सार्धदानैस्तथाशनैः ॥८॥
सम्भाषणैः कृतीदानैः शयनैर्मृदुपल्लवैः । तापसैरुपचारैस्ते पूजिता श्रमहारिभिः ॥९॥
“आतियेयाः स्वभावेन ते हि सर्वत्र तापसाः । रूपेणैवं प्रकारेषु विशेषेण सुवृत्तयः ॥१०॥
उपिक्वा गच्छतां तेषां यद्युर्मर्गेण तापसाः । पाषाणानपि तद्रूपं द्रवीकृत्याव किमन्यकैः ॥११॥
शुष्कपत्राशिनस्तत्र तापसा वायुपाथिनः । सीतारूपहतस्वान्ता धृति दूरेण तत्पुत्रुः ॥१२॥

अथानन्तर राम मनुष्योंके उपभोगके योग्य स्थानोंसे हटकर तपस्वियोंके सुन्दर आश्रममें पहुँचे । वहाँ वृक्षोंके समान जटिल अर्थात् जटाधारी (पद्मे जड़ोंसे युक्त), नाना प्रकारके वल्कलोकी धारण करनेवाले और स्वादिष्ट फलोसे युक्त बहुतसे तापस रहते थे ॥१-२॥ उस आश्रममें अनेक मठ बने हुए थे जो विशाल पत्तोंसे छाये थे । सबके आगे बैठनेके लिए चबूतरे थे, जो एक ओर कहीं रखी हुई पलाश तथा ऊमरकी लकड़ियोंकी गड्डियोंसे सहित थे ॥३॥ बिना जोते बोये अपने आप उत्पन्न होनेवाले धान उनके आँगनोंमें सूख रहे थे तथा निश्चिन्ततासे रोमन्थ करते हुए हरिणोंसे वे सुरोभित थे ॥४॥ निरन्तर जोर-जोरसे रटनेवाले जटाधारी वालकोसे युक्त गायोंके बड़ड़े अपनी सुन्दर पूँछ ऊपर उठाकर उन मठोंके आँगनोंमें चौकड़ियाँ भर रहे थे ॥५॥ फूलोंसे सुन्दर लताओंकी छायामें बैठकर स्पष्ट उच्चारण करनेवाले तोता मैना तथा उल्लक आदि पक्षियोंसे वे मठ सहित थे ॥६॥ कन्याओंने भाई समझ कर वहाँ द्वारा मधुर जलसे जिनकी क्यारियाँ भर दी थीं ऐसे छोटे-छोटे वृक्ष उन मठोंकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥७॥ उन तपस्वियोंने नाना प्रकारके मधुर फल, सुगन्धित पुष्प, सीठा जल, आदरसे भरे स्वागतके शब्द, अर्थके साथ दिये गये भोजन, मधुर संभाषण, कुटीका दान और कोमल पत्तोंकी शय्या आदि थकावटको दूर करनेवाले उपचारसे उनका बहुत सन्मान किया ॥८-९॥ तापस लोग स्वभावसे ही सर्वत्र अतिथि-सत्कार करनेमें निपुण थे फिर इस प्रकारके सुन्दर पुरुषोंके मिलनेपर तो उनका वह गुण और भी अधिक प्रकट हो गया था ॥१०॥ रामलक्ष्मण वहाँ बसकर जब आगे जाने लगे तब वे तापस उनके मार्गमें आ गये सो ठीक ही है क्योंकि उनका रूप पाषाणोंको भी द्रवीभूत कर देता था फिर औरोंकी तो बात ही क्या थी ? ॥११॥ उस आश्रममें जो तापस रहते थे उन्होंने सुन्दर रूप कहाँ देखा था ? वे सूखे पत्ते खाकर तथा वायुका पानकर जीवन बिताते थे इसलिए सीताका रूप देखते ही उनका चित्त हरा गया जिससे उन्होंने धीरजको

१. वितर्हिंकासहिताः । २. अंकुष्टपच्यमानेन म० । ३. वालस्तर्हिभिः म० । ४. कृतराजिनः म० ।
५. अतिथिपु साधवः ।

तानुजस्तापसा बृद्धाः सान्त्ववाचा पुनः पुनः । तिष्ठतं यदि नास्माकमाश्रमे शृणुतं ततः ॥१२॥
 सर्वातिथ्यसेमातास्त्रप्यटवीषु विचक्षणौ । विश्रम्भं जातु मा गातां नारीष्विव नदांष्विव ॥१३॥
 तापसप्रमदा दृष्ट्वा पद्मं पद्मनिरीक्षणम् । लक्ष्मणं च जडुः सर्वं कर्तव्यं शून्यविग्रहाः ॥१५॥
 काश्चिदुत्कण्ठया युक्तास्तन्मार्गाहितलोचनाः । ब्रजन्यन्यापदेशेन सुदूरं विह्वलात्मिकाः ॥१६॥
 मधुरं नुवते काश्चिद्भवन्तोऽस्माकमाश्रमे । किं न तिष्ठन्तु सर्वं नः करिष्यामो यथोचितम् ॥१७॥
 अतीत्य श्रीनित्तं कोशानरण्यानी जनोत्थिता । महानोकहसन्धुक्ता हरिशार्दूलसङ्कुला ॥१८॥
 समिफलप्रसूनार्थं तापसा अपि तां सुवम् । न ब्रजन्ति महाभोमां दर्भसूचीभिराचिताम् ॥१९॥
 चित्रकूटं, सुदुर्लब्धं च प्रविशालो महाधरः । भवद्भिः किं न विज्ञातः प्रकोपं येन गञ्जुतः ॥२०॥
 तापस्योऽवरयमस्माभिर्गन्तव्यमिति चोदिताः । कृच्छ्रेण ता न्यवर्तन्त कुर्वाणास्तत्कर्यां चिरम् ॥२१॥
 ततस्ते भूमहीध्राप्रभ्रातसुकर्कशम् । महातरुसमारूढवह्नीजालसमाकुलम् ॥२२॥
 क्षुद्रतिक्रुद्धशार्दूलनखविं चतपादपम् । सिंहाहतद्विपोद्गर्गापरकमौक्तिकपिच्छलम् ॥२३॥
 उन्मत्तवारणस्कन्धतट्टस्कन्धमहातरुम् । नैसरिध्वनिविग्रस्तसमुत्कीर्णकुरङ्गकम् ॥२४॥
 सुसाजगरनिश्वासवायुपुरितगह्वरम् । वराहयूथपोताग्रविपमीकृतपल्लवम् ॥२५॥
 महामहिषशृङ्गाप्रभन्नवलमीकसानुकम् । ऊर्ध्वीकृतमहामोगसञ्चरत्रोगिभीषणम् ॥२६॥

दूर छोड़ दिया ॥१२॥ बृद्ध तपस्वियोंने शान्त वचनोंसे उनसे वार-वार कहा कि यदि आप लोग हमारे आश्रममें नहीं ठहरते हैं तो भी हमारे वचन सुनिये ॥१३॥ यद्यपि ये अटवियों सर्व प्रकारके आतिथ्य-सत्कारसे सहित हैं तो भी नारियों और नदियोंके समान इनका विश्वास नहीं कीजिये । आप स्वयं बुद्धिमान हैं ॥१४॥ तपस्वियोंकी स्त्रियोंने कमलके समान नेत्रोंवाले राम और लक्ष्मणको देखकर अपने सब काम छोड़ दिये । उनका सर्व शरीर शून्य पड़ गया ॥१५॥ उत्कण्ठासे भरी कितनी ही विह्वल स्त्रियाँ उनके मार्गमें नेत्र लगाकर किसी अन्य कार्यके वहाने बहुत दूर तक चली गई ॥१६॥ कोई स्त्रियाँ मधुर शब्दोंमें कह रही थीं कि आप लोग हमारे आश्रममें क्यों नहीं रहते हैं ? हम आपका सब कार्य यथा योग्य रीतिसे कर देंगी ॥१७॥ यहाँसे तीन कोश आगे चलकर मनुष्योंके संचारसे रहित, बड़े-बड़े वृक्षोंसे भरी तथा सिंह, व्याघ्र आदि जन्तुओंसे व्याप्त एक महाअटवी है ॥१८॥ वह अत्यन्त भयंकर है तथा डामकी सूचियोंसे व्याप्त है । ईधन तथा फल-फूल लानेके लिए तपस्वी लोग भी वहाँ नहीं जाते हैं ॥१९॥ आगे अत्यन्त दुर्लभ, तथा बहुत भारी चित्रकूट नामका पर्वत है सो क्या आप जानते नहीं है जिससे क्रोधको प्राप्त हो रहे हैं ॥२०॥ इसके उत्तरमें राम-लक्ष्मणने कहा कि हे तपस्वियो ! हम लोगोंको अवश्य ही जाना है । इस प्रकार कहने पर वे बड़ी कठिनाईसे लौटीं और लौटते हुई भी चिरकाल तक उन्हींको कथा करती रहीं ॥२१॥

अथानन्तर उन्होंने ऐसे महावनमें प्रवेश किया कि जो पृथिवी और पर्वतोंके अग्रभाग के चट्टानोंके समूहसे अत्यन्त कर्कश था तथा बड़े-बड़े वृक्षोंपर चढ़ी हुई लताओंके समूहसे जो व्याप्त था ॥२२॥ जहाँ भूखसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए व्याघ्र नखोंसे वृक्षोंको क्षत-विक्षत कर रहे थे । जो सिंहोंके द्वारा मारे गये हाथियोंके गण्डस्थलसे निकले रुधिर तथा मोतियोंकी कीच से युक्त था ॥२३॥ जहाँ उन्नत हाथियोंने अपने स्कन्धोंसे बड़े-बड़े वृक्षोंके स्कन्ध छील दिये थे । जहाँ सिंहोंकी गर्जनासे भयभीत हुए मृग इधर-उधर दौड़ रहे थे ॥२४॥ जहाँ सोये हुए अज-गरोँकी श्वासोच्छ्वास वायुसे गुफाएँ भरी हुई थीं । तथा सूकर समूहके मुखके अग्रभागके आघात से छोटे-छोटे जलाशय ऊँचे-नीचे हो रहे थे ॥२५॥ बड़े-बड़े भैंसाओंके सींगोंके अग्रभागसे जहाँ

तरकुत्तसारङ्गरुधिरभ्रान्तमचिकम् । कण्टकासक्तपुच्छप्रप्रताम्यचमरीगणम् ॥२७॥
 दर्पसंपूरितश्चाविन्मुक्तसूचीविचित्रितम् । विषपुष्परजोप्राणघूर्णितानेकजन्तुकम् ॥२८॥
 खल्लखङ्गसमुद्दीढतरुस्कन्धच्युतद्रवम् । उद्भ्रान्तगवयघ्रातभग्नपल्लवजालकम् ॥२९॥
 नानापक्षिकुलकूरकृजितप्रतिनादितम् । शाखासृगकुलक्रान्तचलद्राम्रभारपादपम् ॥३०॥
 तीव्रवेगगिरिक्षोतःशतनिर्दारितचैमम् । वृक्षाप्रविस्फुरत्स्फीतदिवाकरकरोत्करम् ॥३१॥
 नानापुष्पगलाकीर्ण विचित्रामोदवासितम् । विविधौषधिसम्पूर्णं वनसस्यसमाकुलम् ॥३२॥
 क्वचिन्नोल क्वचिप्रीतं क्वचिद्रक्तं हरित्क्वचित् । पिञ्जरच्छायमन्यत्र विविश्रुर्विपिनं महत् ॥३३॥
 तत्र ते चित्रकूटस्य निम्नैरेष्वतिचारुषु । क्रीडन्तो दर्शयन्तश्च सद्गस्तूनि परस्परम् ॥कुलकं (द्वादशभिः)
 फलानि स्वाहुहारीणि स्वदमानाः पदे पदे । गायन्तो मधुरं हारि किन्नरीणां त्रपाकरम् ॥३५॥
 पुष्पैर्जलस्थलोद्भूतैर्मुपयन्तः परस्परम् । सुगन्धिभिर्द्रवैरङ्गं लिम्पन्तस्तत्सम्भवैः ॥३६॥
 उद्यानमिव निर्याता विकसलान्तिलोचनाः । स्वच्छन्दकृतसंस्काराः सत्वलोचनतस्कराः ॥३७॥
 लतागृहेषु विश्रान्ता मुहुर्नयनहारिषु । कृतनानाकयासङ्गा किञ्चिन्नर्मविधायिनः ॥३८॥
 व्रजन्तो लीलया युक्ता निसर्गादतिरम्यया । पर्यटन्तो वन चारु त्रिदशा इव नन्दनम् ॥३९॥
 पद्मनैः पञ्चभिर्मासैस्तुष्टेशमतीत्य ते । जनैः समाकुलं प्रापुर्देशमत्यन्तसुन्दरम् ॥४०॥

वामियोंके शिखर खुद गये थे तथा जो बड़े-बड़े फण ऊँचे उठाकर चलनेवाले सोंपोंसे भयङ्कर था ॥२६॥ जहाँ भेड़ियोंके द्वारा मारे गये मृगोंके रुधिरपर मस्त्रिखर्यों भिन-भिना रहीं थीं और कटीली भाड़ियोंमें पूँछके बाल उलझ जानेसे जहाँ चमरी मृगोंके झुण्ड वेचैन हो रहे थे ॥२७॥ जो अहङ्कारसे भरी सेहियोंके द्वारा छोड़ी हुई सूचियोंसे चित्रविचित्र था तथा विषपुष्पोंकी परागके सँघनेसे जहाँ अनेक जन्तु इधर-उधर घूम रहे थे ॥२८॥ जहाँ गोंडा हाथियोंके गण्ड-स्थलोंके आघातसे खण्डित हुए वृक्षोंके तनोंसे पानी भर रहा था तथा इधर-उधर दौड़ते हुए गवय-समूहने जहाँ वृक्षोंके पल्लव तोड़ डाले थे ॥२९॥ जहाँ नाना पक्षियोंके समूहकी क्रूरध्वनि गूँज रही थी तथा वानर समूहके आक्रमणसे जहाँ वृक्षोंके ऊर्ध्वभाग हिल रहे थे ॥३०॥ तीव्र वेग से वहनेवाले सैकड़ों पहाड़ी भरनोंसे जहाँ पृथिवी विदीर्ण हो गई थी तथा वृक्षोंके अग्रभागपर जहाँ सूर्यकी किरणोंका समूह देदीप्यमान होता था ॥३१॥ जो नाना प्रकारके फूलों और फलोंसे व्याप्त था, विचित्र प्रकारकी सुगन्धिसे सुवासित था, नाना औषधियोंसे परिपूर्ण था, और जङ्गली धान्योंसे युक्त था ॥३२॥ जो कहीं नीला था, कहीं पीला था, कहीं लाल था, कहीं हरा था, और कहीं पिङ्गल वर्ण था ॥३३॥ वे तीनों महानुभाव वहाँ चित्रकूटके सुन्दर निर्मरोंमें क्रीड़ा करते, सुन्दर वस्तुएँ परस्पर एक दूसरेको दिखाते, स्वादिष्ट मनोहर फल खाते, पद-पदपर किन्नरियोंको लज्जित करनेवाला हृदयहारी मधुर गान गाते, जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए पुष्पों से परस्पर एक दूसरेको भूषित करते और वृक्षोंसे निकले हुए सुगन्धित द्रवसे शरीरको लिप्त करते हुए इस प्रकार भ्रमणकर रहे थे मानो उद्यानकी सैर करनेके लिए ही निकले हों। उनके सुन्दर नेत्र विकसित हो रहे थे, वे इच्छानुसार शरीरकी सजावट करते थे तथा प्राणियोंके नेत्रों का अपहरण करते थे ॥३४-३७॥ वे बार-बार नेत्रोंको हरण करनेवाले निकुञ्जोंमें विश्राम करते थे, नाना प्रकारकी कथावाता करते थे और तरह-तरहकी क्रीड़ाएँ करते थे ॥३८॥ स्वभावसे ही अत्यन्त सुन्दर लीलाके साथ गमन करते हुए वे उस सुन्दर वनमें इस प्रकार भ्रमण कर रहे थे जिस प्रकार कि नन्दन वनमें देव ॥३९॥ इस प्रकार एक पक्ष कम पाँच मासमें वे उस स्थान को पारकर मनुष्योंसे भरे हुए अत्यन्त सुन्दर अवनती देशमें पहुँचे। वह देश गायोंकी गरदनो

गोघण्टारवसम्पूर्णं नानासस्योपशोभितम् । अवन्तीविषयं स्फीतं ग्रामपत्तनसङ्कुलम् ॥४१॥
 मार्गं तत्र कियन्तं चिदतिक्रम्य जनोष्णितम् । विषयैकान्तमापुस्ते प्रथुं स्वाकारधारिणः ॥४२॥
 जायान् न्यग्रोधजां श्रित्वा विश्रान्तास्ते परस्परम् । जगुः कस्माद्ग्रं देशो दृश्यते जनवर्जितः ॥४३॥
 सस्यानि कृष्टपच्यानि दृश्यन्तेऽर्जातिभूरिशः । उद्यानपादपाश्र्वेभ्यः फलैः पुष्पैश्च शोभिताः ॥४४॥
 पुण्ड्रेक्षुवाटसम्पन्ना ग्रामास्तुङ्गवनिस्थिताः । सरांस्यच्छिन्नपद्मानि युक्तानि विविधैः खगैः ॥४५॥
 अभ्यायं घटकैर्भग्नैः शकटैश्च विसङ्कटः । करण्डैः कुण्डकैर्दण्डैः कुण्डिकाभिः कटासनैः ॥४६॥
 विकीर्णास्तण्डुला माषां मुद्गाः सर्पादयस्तथा । वृद्धोचोयं मृतो जीर्णगोप्यस्योपरि तिष्ठति ॥४७॥
 देशोऽयमतिविस्तीर्णः शोभने न जनोष्णितः । अत्यन्तविषयासङ्गो यथा दीक्षासमाश्रितः ॥४८॥
 ततोऽत्यन्तमृदुस्पर्शे निषण्णं रत्नकम्बले । देशोद्वासकृतालाप राम पार्श्वस्थकासुकम् ॥४९॥
 पद्मगर्भदमाभ्या पाणिभ्यां पूजितेहिता । द्वाग्विभ्रमयितुं सक्ता सीता प्रेमासुदीर्घिका ॥५०॥
 उत्सार्य चोरुलमां तां सादरक्रमकोविदः । सवाहयितुमासको लक्ष्मणो ज्यायसोदितः ॥५१॥
 निरूपय क्वचित्तावद् ग्रामं नगरमेव वा । घोषं वा लक्ष्मण क्षिप्रं श्रान्तेयं हि प्रजावती ॥५२॥
 ततोऽन्यस्यातितुङ्गस्य वृक्षस्योर्ध्वसमाश्रितः । दृश्यते किञ्चिदत्रेति पद्मोनेच्यत लक्ष्मणः ॥५३॥
 सोबोचद्देव पश्यामि रूपपर्वतसन्निभान् । शारदाभ्रसमुत्तुङ्गैः शृङ्गजालैर्विराजितान् ॥५४॥

मे बँचे घण्टाओंके शब्दसे परिपूर्ण था, नाना प्रकारके धान्यके सुशोभित था, विस्तृत था और ग्राम तथा नगरोसे व्याप्त था ॥४०-४१॥

तदनन्तर सुन्दर आकारको धारण करनेवाले वे तीनों, कितना ही मार्ग उल्लंघनकर एक अतिशय विस्तृत ऐसे स्थानमें पहुँचे जिसे मनुष्य छोड़कर भाग गये थे ॥४२॥ एक वट वृक्षकी छायामें बैठकर विश्राम करते हुए वे परस्पर कहने लगे कि यह मनुष्योंसे रहित क्यों दिखाई देता है ? ॥४३॥ यहाँ अनेको धानके पके खेत दिखाई दे रहे हैं, बगीचोंके ये वृक्ष फलों और फूलोंसे सुशोभित हैं ॥४४॥ ऊँची भूमिपर बसे गाँव पौडों और ईखोंके बागोंसे युक्त है, जिनके कमलोंको किसीने तोड़ा नहीं है ऐसे सरोवर नाना प्रकारके पक्षियोंसे युक्त हैं ॥४५॥ यह मार्ग फूटे घड़ों, गाड़ियों, पिटारों, कूड़ों, कुण्डिकाओं और चटाई आदि आसनोंसे व्याप्त है ॥४६॥ यहाँ चावल, उड़द, मूँग तथा सूप आदि बिखरे हुए हैं और इधर यह बूढ़ा बैल मरा पड़ा है तथा इसके ऊपर फटी पुरानी गोन लदी हुई है ॥४७॥ यह इतना बड़ा देश मनुष्योंसे रहित हुआ ठीक उस तरह शोभित नहीं होता जिस प्रकार कि कोई दीक्षा लेनेवाला साधु विषयोकी आसक्तिमें पड़कर शोभित नहीं होता ॥४८॥

तदनन्तर देशके ऊजड़ होनेकी चर्चा करते हुए राम अत्यन्त कोमल स्पर्शवाले रत्नकम्बल पर बैठ गये और पास ही उन्होंने अपना धनुष रख लिया ॥४९॥ जो प्रशस्त चेष्टाकी धारक और प्रेमरूपी जलकी मानो वापिका ही थी ऐसी सीता कमलके भीतरी दलके समान कोमल हाथोंसे शीघ्र ही रामको विश्राम दिलाने अर्थात् उनके पाद मर्दन करनेके लिए तैयार हुई ॥५०॥ तब आदरपूर्ण क्रमको जाननेवाला लक्ष्मण, बड़े भाईकी आज्ञा प्राप्त कर जोंबोंसे लगी सीताको अलग कर स्वयं पादमर्दन करने लगा ॥५१॥ रामने लक्ष्मणसे कहा कि हे भाई ! तेरी यह भावज बहुत थक गई है इसलिए शीघ्र ही किसी गाँव, नगर अथवा अहीरोको बस्तीको देखो ॥५२॥ तब लक्ष्मण एक बड़े वृक्षकी शिखरपर चढ़ा रामने उससे पूछा कि क्या यहाँ कुछ दिखाई देता है ? ॥५३॥ लक्ष्मणने कहा कि हे देव ! जो चोंदीके पर्वतके समान हैं, शरद् ऋतुके

प्राग्भारसिंहकर्णस्थजिनविभ्योपलक्षितान् । प्रासादान् परमोद्यानान्^१ प्रचलद्धवलध्वजान् ॥५५॥
 ग्रामांश्चायत्तवार्षिभिः सत्सैश्च कृतवेष्टनान् । नगराणि च गन्धर्वपुरैर्विभ्रन्ति तुल्यताम् ॥५६॥
 दृष्टिगोचरमात्रे तु सन्नवेशाः सुभूरयः । दृश्यन्ते न पुनः कश्चिदेकोऽप्यालोच्यते जनः ॥५७॥
 समं किं परिवर्षेण विनष्टा^२ स्युरिह प्रजाः । उपानोताः किमु म्लेच्छैर्विन्दवं क्रूरकर्मभिः ॥५८॥
 एकस्तु पुरुषाकारो दृश्यते चातिदूरतः । स्थाणुर्नं पुरुषो य तु नस्तु सैव चलाकृतिः ॥५९॥
 याः येप किमुतायाति पश्याम्यागच्छतीत्यथम् । तावदायातु मार्गेण जानाम्येनं विशेषतः ॥६०॥
 अयं मृग इवोद्दिग्गो द्रुतमायाति मानवः । रूचोर्द्धमूर्धजो ढीनो मलोपहतविग्रहः ॥६१॥
 कूर्वाञ्छादितवक्त्रको वसानश्रीरखण्डकम् । स्फुटिताग्निः स्रवत्वेदो दर्शयन् पूर्वदुष्कृतम् ॥६२॥
 आनयेममितः क्षिप्रमिति पत्रेन भाषितः । अवतीर्य गतस्तस्य सविस्मय इवान्तिकम् ॥६३॥
 दृष्ट्वा तं पुरुषो हृष्टरोमा विस्मयपूरितः । विलम्बितगतिः किञ्चिदकरोदिति मानसे ॥६४॥
 समाकम्पितवृत्तोऽग्रमवतीर्य समागतः । किमिन्द्रो वरुणो दैत्यः किं नागः किन्नरो नरः ॥६५॥
 वैवस्वतः शशाङ्को नु बह्विवैश्रवणो नु किम् । भास्क्रो नु भुवं प्राप्तः कोऽग्रयुक्तमविग्रहः ॥६६॥
 इति ध्यायन् महाभीत्या मुकुलोक्त्य लोचने । निश्चेष्टावयवो भूमौ पपाताव्यक्तचेतनः ॥६७॥
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्र त्व मा भैषारिति भाषितः । प्रत्यागतदृष्टिर्नीतो लक्ष्मणेनान्तिकं गुरोः^३ ॥६८॥

वाङ्मूर्च्छेकै समान ऊँचे शिखरोंसे सुशोभित हैं, जो उपरितन अग्र भागपर जिन-प्रतिमाओंसे सहित हैं, उत्तमोत्तम बगीचोंसे युक्त हैं तथा जिनपर सफेद ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसे जिनमन्दिरों को देख रहा हूँ ॥५४-५५॥ लम्बी-चौड़ी वापिकाओं तथा धानके हरे-भरे खेतोंसे घिरे गाँव और गन्धर्वनगरोंकी तुलना धारण करनेवाले नगर भी दिखाई दे रहे हैं। इस प्रकार बहुत भारी वसतिगाँव दिखाई दे रही हैं परन्तु उनमें आदमी एक भी नहीं दिखाई देता ॥५६-५७॥ क्या यहाँकी प्रजा अपने समस्त परिवारके साथ नष्ट हो गई है अथवा क्रूर कर्म करनेवाले म्लेच्छोंने उसे बन्दी बना लिया है ? ॥५८॥ बहुत दूर, एक पुरुष जैसा आकार दिखाई देता है जो ठूँठ नहीं है पुरुष ही मालूम होता है क्योंकि उसकी प्रकृति बञ्चल है ॥५९॥ परन्तु यह जा रहा है या आ रहा है इसका पता नहीं चलता। कुछ देर तक गौरसे देखनेके बाद लक्ष्मणने कहा कि 'यह आ रहा है' यही जान पड़ता है, अच्छा, मार्गपर आने दो तभी इसे विशेषतासे जान सकूँगा ॥६०॥ लक्ष्मणने फिर देखकर कहा कि यह पुरुष मृगके समान भयभीत होकर शीघ्र ही आ रहा है, इसके शिरके बाल रूखे तथा खड़े हैं, दीन है, इसका शरीर मैलसे दूषित है, लम्बी दाढ़ीसे इसका वक्षःस्थल ढक रहा है, यह फटे चिथड़े पहिने है, इसके पैर फटे हुए हैं, पसीना भर रहा है और पूर्वोपार्जित पाप कर्मको दिखा रहा है ॥६१-६२॥ रामने लक्ष्मणसे कहा कि इसे शीघ्र ही यहाँ बुलाओ। तब लक्ष्मण नीचे उतरकर आश्वर्यके साथ उसके पास गया ॥६३॥ लक्ष्मणको देखकर उस पुरुषको रोमाञ्च उठ आये। वह आश्वर्यसे भर गया और अपनी गति कुछ धीमी कर मनमें इस प्रकार विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह जो वृत्तको कम्पित करनेवाला नीचे उतरकर आया है सो क्या इन्द्र है ? या वरुण है ? या दैत्य है ? या नाग है ? या किन्नर है ? या मनुष्य है ? या यम है ? या चन्द्रमा है ? या अग्नि है ? या कुबेर है ? या पृथिवी पर आया सूर्य है ? अथवा उत्तम शरीरका धारी कौन है ? ॥६५-६६॥ इस प्रकार विचार करते-करते उसके नेत्र महाभयसे बन्द हो गये, शरीर निश्चेष्ट पड़ गया और वह मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६७॥ यह देख लक्ष्मणने कहा कि भद्र ! उठ-उठ डर मत। कुछ देर बाद जब चैतन्य हुआ तब लक्ष्मण उसे रामके पास ले गया ॥६८॥

पापकर्मपरिच्छिद्यैरिव निरङ्कुशैः । तत्र दुःखसहस्राणि प्राप्यन्ते पुरुषाधमैः ॥६६॥
 भवन्तमेव पृच्छामि त्वादशैर्विषयातुरैः । क्रियते पापसंसक्तैः क्रीडशं हितमात्मनः ॥१००॥
 इन्द्रियप्रभवं सौख्यं किम्पाकसदृशं कथम् । अहन्यहन्युपादाय मन्यसे हितमात्मनः ॥१०१॥
 हितं करोत्यसौ स्वस्थ भूतानां यो दयापरः । द्रीक्षितो गृहयातो वा बुधो निर्मलमानसः ॥१०२॥
 कृतं तैरात्मनः श्रेयो ये महाव्रततत्परः । अथवाणुव्रतैर्युक्तः शेषा दुःखस्य भाजनम् ॥१०३॥
 परलोकादि^१हैतस्त्वं कृत्वा सुकृतमुत्तमम् । इहलोकेऽप्युना पापं कृत्वा यास्यसि दुर्गात्मि ॥१०४॥
 अमो निरागसः क्षुद्रा वराकाः क्षितिशायिनः । अनाथा लोलनयना नित्योद्विग्ना वने मृगाः ॥१०५॥
 आरण्यतृणपानीयकृतविप्रहधारिणः । अनेकदुःखसंछन्ना. पूर्वदुष्कृतभोगिनः ॥१०६॥
 रात्रावपि न विन्दन्ति निद्रां चकितचेतसः । साध्वाचारैर्न युक्तं ते कुलजैर्हिसितुं नरैः ॥१०७॥
 अतो ब्रवीमि राज्ञस्त्वां यदाच्छस्यात्मनो हितम् । त्रिधा हिंसां परित्यज्य कुर्वहिंसां प्रयत्नतः ॥१०८॥
 उद्वैरित्युपदेशोद्यैर्यदासौ प्रतिबोधितः । तदा प्रणतिमायातः फलैरिव महोरुहः ॥१०९॥
 उच्यते प्रसूतः संसेजानुपीडितभूतलः । प्रणनामोत्तमाह्वेन सुसाधुं रचिताञ्जलिः ॥११०॥
 निरीच्य सौम्यया दृष्ट्वा तमेवं चाभ्यनन्दयत । दृष्ट्वाध्योऽयं वीक्षितः सिद्धो मुनिस्त्यक्तपरिग्रहः ॥१११॥
 शकुन्तयो मृगाश्चाभी धन्या वननिवासिनः । शिलातलनिपण्ण ये पश्यन्तीमं समाहितम् ॥११२॥
 अतिधन्योऽहमप्यद्य सुक्तः पापेन कर्मणा । यदेतं त्रिजगद्वन्द्वं प्राप्तः साधुसमागमम् ॥११३॥

वनसे आच्छादित हैं और अत्यन्त खारे जलसे भरी नदियोंसे युक्त हैं ॥६८॥ जो पाप कार्योंसे संकलेशको प्राप्त होते रहते हैं तथा जो हाथियोंके समान निरङ्कुश अर्थात् स्वच्छन्द रहते हैं ऐसे नीच पुरुष उन पृथिवियोंमे हजारों दुःख प्राप्त करते हैं ॥६६॥ मैं आपसे ही पूछता हूँ कि तुम्हारे समान विषयोंसे पीड़ित तथा पापोंमे लीन मनुष्य आत्माका कैसा हित करते हैं ? ॥१००॥ किंपाक फलके समान जो इन्द्रियजन्य सुख है उसे प्रतिदिन प्राप्त कर तू आत्माका हित मान रहा है ॥१०१॥ अरे ! आत्माका हित तो वह करता है जो प्राणियोंपर दया करनेमे तत्पर रहता हो, विवेकी हो, निर्मल अभिप्रायका धारक हो, मुनि हो अथवा गृहस्थ हो ॥१०२॥ आत्माका कल्याण तो उन्होंने किया है जो महाव्रत धारण करनेमे तत्पर रहते हैं अथवा जो अणुव्रतोंसे युक्त होते हैं, शेष मनुष्य तो दुःखके ही पात्र हैं ॥१०३॥ तू परलोकमें उत्तम पुण्य कर यहाँ आया है और अब इस लोकमे पाप कर दुर्गातिको जायगा ॥१०४॥ ये वनके निरपराधी, छुद्र, दयनीय मृग, जो अनाथ हैं, चञ्चल नेत्रोंके धारक हैं, निरन्तर उद्विग्न रहते हैं, जङ्गलके तृण और पानी से वने शरीरको धारण करते हैं, अनेक दुःखोंसे व्याप्त हैं, पूर्व भवमे किये पापको भोग रहे हैं और भयभीत होनेके कारण जो रात्रिमे भी निद्राको नहीं प्राप्त होते हैं; उत्तम आचारके धारक कुलीन मनुष्योंके द्वारा मारे जानेके योग्य नहीं हैं ॥१०५-१०७॥ इसलिए हे राजन् ! मैं तुम्हसे कहता हूँ कि यदि तू अपना हित चाहता है तो मन वचन कायसे हिंसा छोड़कर प्रयत्नपूर्वक अहिंसाका पालन कर ॥१०८॥ इस प्रकार हितकारी उपदेशात्मक वचनोंसे जब राजा सम्बोधित गया तब वह फलोसे वृत्तके समान नम्रताको प्राप्त हो गया ॥१०९॥ वह घोड़ेसे उतरकर पैदल चलने लगा तथा पृथिवीपर घुटने टेक, हाथ जोड़ शिर झुकाकर उसने उन उत्तम मुनिराजको नमस्कार किया ॥११०॥ सौम्य दृष्टिसे दर्शन कर उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया कि अहो ! आज मैंने परिग्रहहित प्रशंसनीय तपस्वी मुनिराजके दर्शन किये ॥१११॥ वनमे निवास करने वाले ये पक्षी तथा हरिण धन्य हैं जो शिलातलपर विराजमान इन ध्यानस्थ मुनिका दर्शन करते हैं ॥११२॥ आज जो मैं त्रिभुवनके द्वारा वन्दनीय इस साधु समागमको प्राप्त हुआ हूँ सो धन्य

बन्धुस्नेहमयं बन्धं क्षित्वा ज्ञाननक्षैरयम् । केसरां व विनिष्क्रान्तः प्रभुः संसारपञ्जरात् ॥११४॥
 अनेन साधुना परमं वशीकृतमनोरिपुम् । नाग्न्योपकारयोगेन शीलस्थानं प्रपाल्यते ॥११५॥
 अहं पुनरतृप्तात्मा तावदस्मिन् गृहाश्रमे । अणुव्रतविधौ रम्ये करोमि परमां धृतिम् ॥११६॥
 इति सन्नित्य जग्राह तस्मात्साधोगृहस्थितिम् । चकारावग्रहं^१ चैवं भावप्लावितमानसः ॥११७॥
 देवदेवं जिनं मुक्त्वा परमात्मानमच्युतम् । निर्ग्रन्थोऽयं महाभागाल् नमाम्यपरानिति ॥११८॥
 प्रीतिवर्धनसंज्ञस्य मुनेस्तस्य महादरः । चकार महती पूजामुपवासं समाहितः ॥११९॥
 उपासोऽनस्य चाख्यातं परम साधुना हितम् । यत्समाराध्य मुच्यन्ते संसाराद् भव्यदेहिनः ॥१२०॥
 सागारं निरगारं च द्विधा चारित्रमुत्तमम् । सावलम्बं गृहस्थानां निरपेक्षं खवाससाम् ॥१२१॥
 दर्शनस्य विशुद्धिश्च तपोज्ञानसमन्विता । प्रथमाद्यनुयोगारं च प्रसिद्धा जिनशासने ॥१२२॥
 सुदुष्करं विगोहानां चारित्रमवधार्य सः । पुनः पुनर्मति चक्रेऽणुव्रतेष्वेव पार्थिवः ॥१२३॥
 निधानमधहेनेव प्राप्तं बिभ्रदनुत्तमम् । धर्मध्यानमसौ बुद्ध्वा परमां धृतिमागतः ॥१२४॥
 नितान्तक्रूरकार्यामुपशांतो महीपतिः । इति प्रमोदमायातः सयतोऽपि विशेषतः ॥१२५॥
 गते साधौ तपोयोग्य स्थान सुकृतसत्रिणि । विभूत्या परया युक्तः सुखामः सुखतर्पितः ॥१२६॥
 विहितानिधिसन्मानोऽपरेषुः कृतपारणः । प्रणम्य चरणौ साधोः स्वस्थानमविशन्नुपः ॥१२७॥

हो गया हूँ, पाप कर्मसे छूट गया हूँ ॥११३॥ ये प्रभु सिंहके समान ज्ञानरूपी नखोंके द्वारा बन्धुओंके स्नेहरूपी बन्धनको छोड़कर संसाररूपी पिंजड़ेसे बाहर निकले हैं ॥११४॥ देखो, इन साधुके द्वारा मनरूपी शत्रुको वशाकर नग्नताके उपकारसे शील स्थानकी किस प्रकार रक्षा की जा रही है ? ॥११५॥ किन्तु मेरी आत्मा अभी तृप्त नहीं हुई है । अतः मैं इस गृहस्थाश्रममें रहकर रमणीय अणुव्रतके पालनमें ही सन्तोष धारण करता हूँ ॥११६॥

इस प्रकार विचार कर उसने उन मुनिराजसे गृहस्थ धर्म अङ्गीकार किया और भावसे प्लावित मन होकर इस प्रकार प्रतिज्ञा की कि मैं देवाधिदेव तथा गुणोसे अच्युत परमात्मा जिनेन्द्रदेव और उदार अभिप्रायके धारक निर्ग्रन्थ मुनियोंको छोड़कर अन्य किसीको नमस्कार नहीं करूँगा ॥११७-११८॥ इस प्रकार उसने बड़े आदरसे उन प्रीतिवर्धन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की और स्थिरचित्त होकर उस दिनका उपवास किया ॥११९॥ समीपमें बैठे हुए राजा वज्रकर्णको मुनिराजने उस परम हितका उपदेश दिया कि जिसकी आराधना कर भव्य प्राणी संसारसे मुक्त हो जाते हैं ॥१२०॥ उन्होंने कहा कि उत्तम चरित्रके दो भेद हैं एक सागार और दूसरा अनागार । इनमेंसे पहला चारित्र वाह्य वस्तुओंके आलम्बनमें सहित है तथा गृहस्थोंके होता है और दूसरा चारित्र वाह्य वस्तुओंकी अपेक्षासे रहित है तथा आकाशरूपी वस्त्रके धारक मुनियोंके ही होता है ॥१२१॥ उन्होंने यह भी बताया कि तप तथा ज्ञानके संयोगसे दर्शनमें विशुद्धता उत्पन्न होती है । साथ ही साथ उन्होंने जिनशासनमें प्रसिद्ध प्रथमानुयोग आदिका वर्णन भी किया ॥१२२॥ यह सब सुननेके बाद भी राजाने निर्ग्रन्थ मुनियोंका चरित्र अत्यन्त कठिन समझकर अणुव्रत धारण करनेका ही वार-वार विचार किया ॥१२३॥ यह जानकर राजा परम संतोषको प्राप्त हुआ कि मुझे उल्लूक धर्म ध्यान क्या प्राप्त हुआ मानो किसी निर्धनको उत्तम खजाना ही मिल गया ॥१२४॥ अत्यन्त क्रूर कार्य करनेवाला यह राजा शान्त हो गया है यह देख मुनिराज भी बहुत हर्षको प्राप्त हुए ॥१२५॥ तदनन्तर पुण्यरूपी यज्ञके धारक मुनिराज तपके योग्य दूसरे स्थान पर चले गये और राजा परम विभूतिसे युक्त हो वहीं रहा आया । उसे उत्तम लाभकी प्राप्ति हुई थी इसलिए सुखसे संवृत्त था ॥१२६॥ दूसरे दिन अतिथिका

वहन् परमभावेन वज्रकर्णः सदा गुरुम् । बभूव वीतसन्देहश्चिन्तामैवमुपागतः ॥१२८॥
भूरयो भूत्वा विपुण्योऽहं सिंहोदरमहीश्रुतः । अकृत्वा विनयं भोगान् कथं सेवे 'निकारिणः ॥१२९॥
इति चिन्तयतस्तस्य प्रसन्नोऽन्तरात्मना । विधिना श्रेयमाणस्य मतिरेवं समुद्गतः ॥१३०॥
कारयाम्यूर्मिका स्वार्णीं सुव्रतस्वामिबिम्बिनीम् । दधामि दक्षिणाङ्गुष्ठे तां नमस्कारभागिनीम् ॥१३१॥
घटिता सा ततस्तेन पाणिभासुरपीठिका । पिनद्धा चातिहृष्टेन नयप्रवणचेतसा ॥१३२॥
स्थित्वा सिंहोदरस्याग्रे कृत्वाङ्गुष्ठं पुरः कृती । प्रतिमां तां महाभागो नमस्यति स सन्ततम् ॥१३३॥
रन्ध्रविन्यस्तचित्तेन वैरिणा कथितेऽन्यदा । वृत्तान्तेऽत्र परं कोप पापः सिंहोदरोऽजामत् ॥१३४॥
माययाह्वयचैवं दशाङ्गनगरस्थितम् । वधार्थमुद्यतो मानी मत्तो विक्रमसम्पदा ॥१३५॥
बृहद्गतितनूजस्तु प्रगुणेनैव चेतसा । प्रवृत्तोऽश्वतेनास्य विनीतो गन्तुमन्तिकम् ॥१३६॥
दण्डपाणिरुवाचैकः पीवरोदारविग्रहः । कुङ्कुमस्थासकोद्गासी तमागल्यैवमुक्तवान् ॥१३७॥
यदि भोगशरीराभ्यां मुनिर्विण्णोऽसि पार्थिव । तत उज्जयिनीं गच्छ नोचेन्नो गन्तुमर्हसि ॥१३८॥
क्रुद्धः सिंहोदरो यत्ते वधं कर्तुं समुद्यतः । अनमस्कारदोषेण कुरु राजन्नभीप्सितम् ॥१३९॥
एवं स गदितो दध्यौ केनाप्येप दुरात्मना । मात्सर्यहृतचित्तेन भेदः कर्तुमभीप्सितः ॥१४०॥
त विसर्पमदाभोद्ं किञ्चित्खेदमुपागतम् । सोऽपृच्छकोऽसि किनामा कुतो वासि समागतः ॥१४१॥

सत्कार कर उसने पारणा की और फिर मुनिराजके, चरणोंको प्रणाम कर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥१२७॥

अथानन्तर जो परम भक्ति-भावसे गुरुको सदा हृदयमें धारण करता था तथा जिसे किसी प्रकारका सन्देह नहीं था ऐसा राजा वज्रकर्ण इस प्रकार चिन्ता करने लगा ॥१२८॥ कि मैं पुण्यहीन, राजा सिंहोदरका सेवक होकर यदि उसको विनय नहीं करता हूँ तो वह दमन करेगा—दण्ड देवेगा तब इस दशामें भोगोंका सेवन किस प्रकार करूँगा ॥१२९॥ इस प्रकार चिन्ता करते-करते भाग्यसे प्रेरित राजा वज्रकर्णको अपनी स्वच्छ अन्तरात्मासे यह बुद्धि उत्पन्न हुई ॥१३०॥ कि मैं मुनिसुव्रत भगवान्की प्रतिमासे युक्त एक स्वर्णकी अंगूठी बनवा कर दाहिने हाथके अंगूठामें धारण करूँ तो मेरा नमस्कार उसीको कहलावेगा ॥१३१॥ इस प्रकार विचारकर उस नोतिनिपुण राजाने, जिसकी पीठिका हाथमें सुशोभित थी ऐसी अंगूठी बनवाई और अत्यन्त हर्षित होकर धारण की ॥१३२॥ अब वह बुद्धिमान्, राजा सिंहोदरके आगे खड़ा होकर तथा अंगूठेको आगे कर सदा उस प्रतिमाको नमस्कार करने लगा ॥१३३॥ किसी एक दिन छिद्रान्वेषी वैरीने यह समाचार सिंहोदरसे कह दिया जिससे वह पापी परम कोपको प्राप्त हुआ ॥१३४॥ तदनन्तर पराक्रमरूपी सम्पदासे मत्त मानी सिंहोदर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गया और उसने दशांगपुरमें रहनेवाले वज्रकर्णको छलसे अपने यहाँ बुलाया ॥१३५॥ बृहद्गतिका पुत्र वज्रकर्ण सरल चित्त था इसलिए वह सौ घुड़सवार साथ ले उसके पास जानेके लिए तैयार हो गया । उसी समय जिसके हाथमें लाठी थी, जिसका मोटा तथा ऊँचा शरीर था और जो केशरके तिलकसे सुशोभित हो रहा था ऐसा एक पुरुष आकर उससे इस प्रकार बोला ॥१३६-१३७॥ कि हे राजन् ! यदि तुम भोग और शरीरसे उदासीन हो चुके हो तो तुम उज्जयिनी जाओ अन्यथा जाना योग्य नहीं है ॥१३८॥ हे राजन् ! तुम सिंहोदरको नमस्कार नहीं करते हो इस अपराधसे वह क्रुद्ध होकर तुम्हारा वध करनेके लिए तैयार हुआ है । अतः जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करो ॥१३९॥ उस पुरुषके ऐसा कहने पर वज्रकर्णने विचार किया कि किसी ईर्ष्यालु दुष्ट मनुष्यने भेद करना चाहा है अर्थात् मुझमें और सिंहोदरमें फूट डालनेका उद्योग किया है । इस प्रकार

कथं वा तव मन्त्रोऽयं विदितोऽप्यन्तदुर्गमः । एतद्भद्रं समाचक्ष्व ज्ञातुमिच्छाम्यशेषतः ॥१४२॥
 सोऽत्रोचत् कुन्दनगरे वणिग्धनपरायणः । समुद्रसङ्गमो नामा यमुना तस्य भामिनी ॥१४३॥
 विद्युज्ज्वालाकुले काले प्रसूता जननी च माम् । वन्धुभिर्विद्युदङ्गाख्या मयि तेन नियोजिता ॥१४४॥
 क्रमाच्च यौवनं विभ्रदवन्तीनगरीमिमाम् । आगतोऽस्त्यर्थंलामाय युक्तो वाणिज्यविद्यया ॥१४५॥
 वैद्ययां कामलतां दृष्ट्वा कामवाणेन ताडितः । न रात्रौ न दिवा यामि निर्वृतिं परमाकुलः ॥१४६॥
 एकां रात्रिं वसामिति तया कृतसमागमः । प्रीत्या दृढतरं बद्धो यथा वागुरया मृगः ॥१४७॥
 जनकेन ममासख्यैर्यद्वद्वैरजितं धनम् । तन्मयास्य सुपुत्रेण पद्भिर्मसैर्विनाशितम् ॥१४८॥
 पद्मे द्विरेफवत् सक्तः कामतद्गतमानसः । साहसं कुरुते किं न मानवो योपितां कृते ॥१४९॥
 अन्यदा सा पुरः सख्या निन्दन्ती कुण्डलं निजम् । श्रुता मयेति भारेण किं कर्णस्यामुना मम ॥१५०॥
 धन्या सा श्रीधरा देवी महासौभाग्यभाविनी । यस्यास्तद्वाजते कर्णे मनोज्ञं रत्नकुण्डलम् ॥१५१॥
 चिन्तितं च मया तच्चेदपहृत्य सकुण्डलम् । आशां न पूरयाम्यस्तदा किं जीवितेन मे ॥१५२॥
 ततो जिहार्पया तस्य दयितं प्रोद्य जीवितम् । गतोऽहं भवन रात्रौ रजन्त्या तमसावृतः ॥१५३॥
 पृच्छन्ती श्रीधरा तस्य मया सिंहोदरं ध्रुता । निर्द्रां न लभसे कस्मान्नायोद्विग्न इवायुना ॥१५४॥
 सोऽत्रोचहेवि निर्द्रा मे कृतो व्याकुलचेतसः । न मारितो रिपुरावन्नमस्कारपराद् मुखः ॥१५५॥

विचार कर उसने जिसे अत्यधिक हर्ष हो रहा था तथा जो किञ्चित् खेदको प्राप्त था ऐसे उस दूतसे पूछा कि तू कौन है ? कहींसे आया है ? ॥१४०-१४१॥ और इस अत्यन्त दुर्गम मन्त्रका तुम्हें कैसे पता चला है ? हे भद्र ! यह कह मैं सब जानना चाहता हूँ ॥१४२॥

वह बोला कि कुन्दनगरमें धनसञ्चय करनेमें तत्पर एक समुद्रसंगम नामक वैश्य रहता था । उसकी स्त्रीका नाम यमुना था । मैं उन्हींका पुत्र हूँ । चूँकि मेरी माताने मुझे उस समय जन्म दिया जो विजलीकी ज्वालाओंसे व्याप्त रहता है इसलिये वन्धुजनोने मेरा विद्युदङ्ग नाम रक्खा ॥१४३-१४४॥ क्रमसे यौवनको धारण करता हुआ मैं व्यापारकी विद्यासे युक्त हो धनोपार्जन करनेके लिए इस उज्जयिनी नगरीमें आया था ॥१४५॥ सो यहाँ कामलता नामक वैश्याको देख कर कामवाणसे ताड़ित हुआ जिससे व्याकुल होकर न दिनमें चैनको पाता हूँ और न रात्रिमें ॥१४६॥ 'मैं एक रात उसके साथ समागम कर रह लूँ' इस प्रीतिने मुझे इस प्रकार अत्यन्त मजबूत बौध रक्खा जिस प्रकार कि जाल किसी हरिणको बौध रखता है ॥१४७॥ मेरे पिताने अनेक वर्षोंमें जो धन सञ्चित किया था मुझ सुपूत ने उसे केवल छह माहमें नष्ट कर दिया ॥१४८॥ जिस प्रकार भ्रमर कमलमें आसक्त रहता है उसी प्रकार मेरा मन कामसे दुःखी हो उस वैश्यामें आसक्त रहता था सो ठीक ही है क्योंकि यह पुरुष रित्रयोंके लिए कौन-सा साहस नहीं करता है ? ॥१४९॥ एक दिन मैंने सुना कि वह वैश्या सखीके सामने अपने कुण्डलकी निन्दा करती हुई कह रही है कि कानोंके भारस्वरूप इस कुण्डलसे मुझे क्या प्रयोजन है ? वह महा-सौभाग्यका उपभोग करनेवाली श्रीधरा रानी धन्य है जिसके कानमें वह रत्नमयी मनोहर कुण्डल शोभित होता है ॥१५०-१५१॥ मैंने सुनकर विचार किया कि यदि मैं उस उत्तम कुण्डलको चुरा कर इसकी आशा पूर्ण नहीं करता हूँ तो मेरा जीवन किस काम का ? ॥१५२॥ तदनन्तर उस कुण्डलको अपहरण करनेकी इच्छासे मैं अपने प्रिय जीवनकी उपेक्षा कर रात्रिके समय अन्धकारसे आवृत होकर राजाके घर गया ॥१५३॥ वहाँ मैंने रानी श्रीधराको सिंहोदरसे यह पूछती हुई सुना कि हे नाथ ! आज नींदको क्यों नहीं प्राप्त हो रहे हो तथा उद्विग्नसे क्यों माख्य होते हो ? ॥१५४॥ उसने कहा कि हे देवि ! जब तक मैं नमस्कारसे विमुख रहनेवाले

अपमानेन दग्धस्य व्याकुलस्वार्णचिन्तया^१ । अजितप्रत्यनीकस्य विद्राक्रान्तावलस्य च ॥१५६॥
 सशल्यस्य दरिद्रस्य भीरोक्ष भवदुःखतः । निद्रा कृपापरीतेव सुदूरेण पलायते ॥१५७॥
 निहन्तास्मि न चेदेनं नमस्कारपराङ्मुखम् । वज्रकर्णं ततः किं मे जीवितेन हतौजसः ॥१५८॥
 ततोऽहं कुलिशेनैव हृदये कृतताडनः । रहस्यरत्नमादाय त्यक्त्वा कुण्डलश्रेणीयु ॥१५९॥
 धर्मोद्यतमनस्कस्य सततं सांख्यसेविनः । भवतोऽन्तिकमायातो ज्ञात्वा कुरु निवर्तनम् ॥१६०॥
 नागैरञ्जनशैलामैः प्रचरद्गण्डभित्तिभिः । ससिन्धु महावेगैर्भटैश्च कवचावृतैः ॥१६१॥
 तदाज्ञापनया मार्गो निरुद्धोऽयं पुरोऽखिलः । सामन्तैः परमं क्रूरैर्भवन्तं हन्तुमुद्यतैः ॥१६२॥
 प्रसादं कुरु गच्छाशु प्रतीप धर्मवत्सल । पतामि पादयोरेव तव भद्रचर्चनं कुरु ॥१६३॥
 अर्थं प्रत्येषि नो राजन् ततः पश्यैतदागतम् । धूलीपटलसंच्छन्नं परचक्र महारवम् ॥१६४॥
 तावत्परागत दृष्ट्वा साधन कुलिशश्रवैः । समेतो विद्युदङ्गेन निवृत्तो वेगिवाहनः ॥१६५॥
 प्रविश्य च पुरं दुर्गं सुवीरः प्रत्यवस्थितैः । विधाय वज्रिर्तारोधं मामन्ताश्चावतस्थिरैः ॥१६६॥
 प्रविष्टं नगरं श्रुत्वा वज्रकर्णं रुपा ज्वलन् । सिहोदरः समायातः सर्वसाधनसंयुतः ॥१६७॥
 पुरस्थाल्यन्तदुर्गात्वात् साधनस्यकातरः । न स तद्ग्रहणे बुद्धिं चकार सहसा न्युपः ॥१६८॥
 समावास्थ समीपे च त्वरितं प्राहिणोन्नरम् । वज्रकर्णं स गत्वेति बभाणाल्यन्तनिष्कुरम् ॥१६९॥

शत्रु वज्रकर्णको नहीं मारता हूँ तब तक मेरा चित्त व्याकुल है अतः निद्रा कैसे आ सकरी है ? ॥१५६॥ जो अपमानसे जल रहा हो, जो ऋणकी चिन्तासे व्याकुल हो, जो शत्रुको नहीं जीत सका हो, जिसकी रानी विटपुरुषके चक्रमें पड़ गई हो, जो शल्यसे सहित दरिद्र हो तथा जो संसारके दुःखसे भयभीत हो ऐसे मनुष्यसे दयायुक्त होकर ही मानो निद्रा दूर भाग जाती है ॥१५६-१५७॥ यदि मैं नमस्कारसे विमुख रहनेवाले इस वज्रकर्णको नहीं मारता हूँ तो मुझ निस्तेजको जीवनेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१५८॥

तदनन्तर यह सुनकर जिसके हृदयमें मानो वज्रकी ही चोट लगी थी ऐसा मैं इस रहस्य-रूपी रत्नको लेकर और कुण्डलकी भावना छोड़कर आपके पास आया हूँ क्योंकि आपका मन्संदा धर्ममें तत्पर रहता है तथा आप सदा साधुओंकी सेवा करते हैं । हे नाथ ! यह जान कर आप लौट जाइए उज्जैन मत जाइए ॥१५६-१६०॥ उसकी आज्ञा पाकर नगरका यह समस्त मार्ग, जिनके गण्डस्थलसे भद्र भर रहा है ऐसे अञ्जनगिरिके समान आभावाले हाथियों, महावेगशाली घोड़ों, कवचोंसे आवृत योद्धाओं तथा आपको मारनेके लिए उद्यत क्रूर सामन्तोंसे घिरा हुआ है ॥१६१-१६२॥ अतः हे धर्मवत्सल ! प्रसन्न होओ, शीघ्र ही उल्टा वापिस जाओ, मैं आपके चरणोंमें पड़ता हूँ आप मेरा बचन मानो ॥१६३॥ हे राजन् ! यदि आपको विश्वास नहीं हो तो देखो, धूलीके समूहसे व्याप्त तथा महा कलंकल शब्द करता हुआ यह शत्रुका ढल आ पहुँचा है ॥१६४॥ इतनेमें शत्रुदलको आया देख वज्रकर्ण विद्युदङ्गके साथ वेगशाली घोड़ेसे वापिस लौटा ॥१६५॥ और अपने दुर्गमें नगरमें प्रवेश कर धीरताके साथ युद्धकी तैयारी करता हुआ स्थित हो गया । बड़े-बड़े सामन्त गोपुरोंको रोक कर खड़े हो गये ॥१६६॥

तदनन्तर वज्रकर्णको नगरमें प्रविष्ट सुन, क्रोधसे जलता हुआ सिहोदर अपनी सर्व सेनाके साथ वहाँ आया ॥१६७॥ वज्रकर्णका नगर अत्यन्त दुर्गम था । इसलिए सेनाके न्यसे भयभीत हो राजा सिहोदरने उसपर तत्काल ही आक्रमण करनेकी इच्छा नहीं की ॥१६८॥ किन्तु सेनाको समीप ही ठहराकर शीघ्र ही एक दूत भेजा । वह दूत वज्रकर्णके पास जाकर बड़ी

१. ऋणसम्बन्धिचिन्तया । २. भवदुःखितः म० । ३. विश्वासं नो करोषि । ४. वज्रकर्णः म० । ५. समवस्थितः म० । ६. प्रतोलीरोध ।

जिनशासनवर्गेण सदावष्टयमानसः । ऐश्वर्यकटकस्त्वं मे जातः सद्भाववर्जितः ॥१७०॥
 कुटुम्बभेदेने दृष्टैः श्रमगैर्दुर्विचेष्टितैः । प्रोत्साहितो गतोऽस्येतामवस्थां नयवर्जितः ॥१७१॥
 सुंक्षे देश मया दत्तमर्हन्तं च नमस्यति । अहो ते परमा माया जातेयं दुष्टचेतसः ॥१७२॥
 आगच्छाद्य ममाभ्यासां प्रणामं कुरु सन्मतिः । अन्यथा परयं यातोऽसि मृत्युना सह सद्गतम् ॥१७३॥
 ततस्तद्वचनान्गृत्वा दूतोऽवददिदं पुनः । एवं वज्रश्रुतिनाथं अवीति कृतनिश्चयः ॥१७४॥
 नगरं साधनं कोपं गृहाण विषय विभो । धर्मद्वारं सभार्यस्य यच्छ मे केवलस्य वा ॥१७५॥
 कृता मया प्रतिज्ञेयं सुब्बाभ्येनां मृतोऽपि न । द्रविणस्य भगवान् स्वामी शरीरस्य तु नो मम ॥१७६॥
 इत्युक्तोऽप्यपरिच्यक्रोधः सिंहोदरः पुरः । कृत्वा रोधमिमं देशमुदवासायदुःखजलम् ॥१७७॥
 इदं ते कथितं देव देशोद्वासनकारणम् । गच्छामि साम्प्रतं शून्यग्रामधानमितोऽन्तिकम् ॥१७८॥
 तस्मिन् विमानतुल्येषु दृष्टमानेषु समष्टु । मदीया दुःकृती दग्धा तृणकाष्ठविनिर्मिता ॥१७९॥
 तत्र गोपायितं सूर्पं घटं पिष्टमेव च । आनयामि कुर्मः प्रेरितः क्रूरवाक्यया ॥१८०॥
 गृहोपकरणं भूरि शून्यग्रामेषु लभ्यते । आनयस्व त्वमेवेति सा तु मां भापते मुहुः ॥१८१॥
 अथवात्यन्तमेवेदं तथा मे जनितं हितम् । देव कोऽपि भवान् दष्टो मया येन सुकर्मणा ॥१८२॥
 इत्युक्ते कर्णाक्षिष्टः पथिकं वीच्य दुःखितम् । पशोऽस्मै रत्नसंयुक्तं ददौ काञ्चनसूत्रकम् ॥१८३॥
 प्रतीतः प्रणिपत्यास्ती तदादाय त्वरान्वितम् । प्रतियातो निजं धाम बभूव च नृपोपमः ॥१८४॥

निष्ठुरतासे बोला ॥१६६॥ कि जिन शासनके वर्गसे जिसका मन सदा अहङ्कार पूर्ण रहता है तथा जो समीचीन भावोंसे रहित है ऐसा तू मेरे ऐश्वर्यका कण्टक बन रहा है ॥१७०॥ कुटुम्बों के भेदन करनेमें चतुर, तथा खोटी चेष्टाओंसे युक्त मुनियोंके द्वारा प्रोत्साहित होकर तू इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है, स्वयं नीतिसे रहित है ॥१७१॥ मेरे द्वारा प्रदत्त देशका उपभोग करता है और अरहन्तको नमस्कार करता है। अहो, तुम दुष्ट हृदयकी यह वड़ी माया ॥१७२॥ तू सुबुद्धि है अतः शीघ्र ही मेरे पास आकर प्रणामकर अन्यथा देख, अभी मृत्युके साथ समागम को प्राप्त होता है ॥१७३॥

तदनन्तर वज्रकर्णका उत्तर ले दूतने वापिस जाकर सिंहोदरसे कहा कि हे नाथ ! निश्चय को धारण करनेवाला वज्रकर्ण इस प्रकार कहता है कि हे विभो ! नगर, सेना, खजाना और देश सब कुछ ले लो पर भार्या सहित केवल मुझे धर्मका द्वार प्रदान कीजिए अर्थात् मेरी धर्मा-राधानमें बाधा नहीं डालिए ॥१७४-१७५॥ मैंने जो यह प्रतिज्ञा की है कि मैं अरहन्त देव और निर्ग्रन्थ गुरुको छोड़ अन्य किसीको नमस्कार नहीं करूँगा सो भरते-भरते इस प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ूँगा। आप मेरे धनके स्वामी हैं शरीरके नहीं ॥१७६॥ इतना कहनेपर भी सिंहोदरने क्रोध नहीं छोड़ा और नगरपर घेरा डालकर तथा आग लगाकर इस देशको उजाड़ दिया ॥१७७॥ इस प्रकार हे देव ! मैंने आपसे इस देशके ऊजड़ होनेका कारण कहा है अब यहाँ पास ही अपने उजड़े गोंधको जाता हूँ ॥१७८॥ उस गोंधमें विमानके तुल्य जो अच्छे-अच्छे महल थे वे जल गये और उनके साथ तृण तथा काष्ठसे निर्मित मेरी दूटी फूटी कुटिया भी जल गई ॥१७९॥ उस कुटियामें एक जगह सूपा घट तथा भटका छिपाकर रखे थे सो दुष्ट वचन बोलनेवाली स्त्री से प्रेरित हो उन्हें लेने जा रहा हूँ ॥१८०॥ 'सूते गोंधोमें घर गृहस्थीके बहुतसे उपकरण मिल जाते हैं इसलिए तू भी उन्हें ले आ' इस प्रकार वह वार-वार मुझसे कहती रहती है ॥१८१॥ अथवा उसने मेरा यह बहुत भारी हित किया है कि हे देव ! पुण्योदयसे मैं आपके दर्शन कर सका हूँ ॥१८२॥ इस प्रकार उस पथिकको दुःखी देख दयासे स्वयं दुःखी होते हुए रामने उसके लिए अपना रत्नजटित स्वर्णसूत्र दे दिया ॥१८३॥ वह पथिक उसे लेकर तथा विश्वास पूर्वक

१. पश्य जातोऽसि मृत्युना सहसंगतः ज०, व० । २. वज्रकर्णः । ३. जनरहितमकरोत् ।
 १५

अथावोचत्तत. पद्मो^१ लक्ष्मणाय दिवाकरः । नैदाघो यावदस्यन्तं दुस्सहस्त्वं न गच्छति ॥१८५॥
 तावदुत्तिष्ठ गच्छावः पुरस्यास्यान्तिकं भुवम् । जानकीयं तृपाश्रान्ता कुर्वाहारविधिं द्रुतम् ॥१८६॥
 एवमित्युदिते याता^२ दशरान्नगरस्य ते । समीपे चन्द्रभालस्य चैत्यालयमनुत्तमम् ॥१८७॥
 तस्मिन् सजानकांरामः प्रणम्यावस्थितः सुखम् । तदाहारोपलम्भाय लक्ष्मणः सचसुर्गतः ॥१८८॥
 विशन् सिंहोदरस्यासौ शिबिरं रक्षिमानवैः^३ । निरुद्धः कृतनिस्वानैः समीरण इवाद्रिभिः ॥१८९॥
 'इमकैर्दुष्कुलोत्पन्नैः किं विरोधेन मे समम् । इति सञ्चित्य यातोऽसौ नगरं तेन पण्डितः ॥१९०॥
 गोपुरं च समासीददनेकभट्टरक्षितम् । यस्योपरि स्थितः साहाद्ब्रजकर्णः प्रयत्नवान् ॥१९१॥
 ऊचिरे तस्य श्रुत्यास्तं कस्त्वमेतः कुतोऽपि वा । किमर्थं वेति सोऽनोचद्दूरात्प्राप्सोन्नलभस्या ॥१९२॥
 ततस्तं बालकं कान्तं दृष्ट्वा विस्मयसङ्गतः । आगच्छ प्रविश चिप्रमिति वज्रश्रवा जगौ ॥१९३॥
 ततस्तुष्टः प्रयातोऽसौ समीपं कुलिशश्रुतेः । विनीतवेषसम्पन्नो वीक्षित सादर नरैः ॥१९४॥
 जगाद् वज्रकर्णश्च नरमासमय द्रुतम् । अन्नं प्रसाधितं मद्य भोज्यतां रक्षितादरः ॥१९५॥
 सोऽनोचन्नात्र भुञ्जेऽहमिति मे गुरुन्तिके । तमादौ भोजयाम्यन्नं नयाम्यस्याहमन्तिकम् ॥१९६॥
 एवमस्त्विति सम्भाष्य त्र्योऽन्नमतिपुष्कलम् । अदीदपद् वर तस्मै चारुव्यञ्जनपानकम् ॥१९७॥
 लक्ष्मीधरस्तदादाय गतो द्विगुणरंहसा । भुक्तं च तैः क्रमेणैतत्सृष्टिं च परमां गताः ॥१९८॥

उन्हें प्रणामकर अपने घर वापिस लौट गया और राजाके समान सम्पन्न हो गया ॥१८४॥

अथानन्तर रामने कहा कि हे लक्ष्मण ! यह ग्रीष्मकालका सूर्य जव-तक अत्यन्त दुःसह अवस्थाको प्राप्त नहीं हो जाता है तब-तक उठो इस नगरके समीपवर्ती प्रदेशमें चले । यह जानकी प्यासे पीड़ित है इसलिए शीघ्र ही आहारकी विधि मिलाओ ॥१८५-१८६॥ इस प्रकार कहनेपर वे तीनों दशरान्नगरके समीप चन्द्रभग भगवानके उत्तम चैत्यालयमें पहुँचे ॥१८७॥ वहाँ जिनेन्द्र-देवको नमस्कार कर सीता सहित राम तो उसी चैत्यालयमें सुखसे ठहर गये और लक्ष्मण धनुष लेकर आहार प्राप्तिके लिए निकला ॥१८८॥ जब वह राजा सिंहोदरकी छावनीमें प्रवेश करने लगा तब रक्षक पुरुषोंने जोरसे ललकार कर उसे उस तरह रोका जिस तरह कि पर्वत वायुको रोक लेते हैं ॥१८९॥ 'इन नीच कुली लोगोंके साथ विरोध करनेसे मुझे क्या प्रयोजन है' ऐसा विचार कर वह बुद्धिमान् लक्ष्मण नगरकी ओर गया ॥१९०॥ जब वह अनेक योद्धाओंके द्वारा सुरक्षित उस गोपुर द्वार पर पहुँचा जिसपर कि साहाद् वज्रकर्ण बड़े प्रयत्नसे बैठा था ॥१९१॥ तब उसके श्रुत्योंने कहा कि तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो ? और किसलिए आये हो ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं बहुत दूरसे अन्न प्राप्त करनेकी इच्छासे आया हूँ ॥१९२॥ तदनन्तर उस बालकको सुन्दर देख आश्चर्यचकित हो वज्रकर्णने कहा कि आओ, शीघ्र प्रवेश करो ॥१९३॥ तत्पश्चात् सन्तुष्ट होकर लक्ष्मण विनीत वेषमें वज्रकर्णके पास गया । वहाँ सब लोगोंने उसे बड़े आदरसे देखा ॥१९४॥ वज्रकर्णने एक आप्त पुरुषसे कहा कि जो अन्न मेरे लिए तैयार किया गया है वह इसे शीघ्र ही आदरके साथ खिलाओ ॥१९५॥ यह सुन लक्ष्मणने कहा कि मैं यहाँ भोजन नहीं करूँगा । पास ही मैं मेरे गुरु अग्रज ठहरे हुए हैं पहले उन्हें भोजन कराऊँगा इसलिए मैं यह अन्न उनके पास ले जाता हूँ ॥१९६॥ 'एवमस्तु-ऐसा ही हो' कहकर राजाने उसे उत्तमोत्तम व्यञ्जन और पेय पदार्थोंसे युक्त बहुत भारी अन्न दिला दिया ॥१९७॥ लक्ष्मण उसे लेकर दूने वेगसे रामके पास गया । सचने उसे यथा क्रमसे खाया और खाकर परम तृप्तिको प्राप्त हुए ॥१९८॥

१. लक्ष्मणोऽयं म० । २. जाता म० । ३. रक्ष्यमानतैः म० । ४. निरुद्धकृतिनिस्वानैः म० ।

५. द्रुमकैः म० ।

तत्सुष्टोऽवदत् पद्मः पश्य लक्ष्मण भद्रताम् । वज्रकर्णस्य येनेदं कृतं परिचयाद् विना ॥१६६॥
 जामात्रेऽपि सुसम्पन्नमीदृगन्तं न दीयते । पानकानामहो शैत्यं व्यञ्जनानां च शृष्टता ॥२००॥
 अनेनामृतकल्पेन भुक्तेनान्नेन मार्गजः । नैदाघोऽपहृतः सद्यः श्रमोऽस्माकं समन्ततः ॥२०१॥
 चन्द्रबिम्बमिवाचूर्ण्य शालयोऽभी विनिर्मिताः । धवलत्वेन विभ्राणा मार्वदं भिन्नसिक्थकाः ॥२०२॥
 दुग्धैव दीधितोरिन्दोः कृतमेतच्च पानकम् । नितान्तमच्छ्रतायुक्तं सौरभाकृष्टपदम् ॥२०३॥
 शृतचीरमिदं जातं कक्षधेनुस्तनादिब । रसनामीदृशी व्यक्तिस्यञ्जनेषु सुदुस्तरा ॥२०४॥
 अणुव्रतधरः साधुर्बर्णितः पथिकेन सः । अतिथीनां करोत्यन्यः संविभार्गं क ईदृशम् ॥२०५॥
 शुद्धाम्ना श्रूयते सोऽयमनन्यप्रणतिः सुधीः । भवार्तिमयनं नार्थं जिनेन्द्रं यो नमस्यति ॥२०६॥
 इदकशालगुणोपेतो यद्येषोऽस्माकमग्रतः । सिद्धत्यरातिना रुद्धस्ततो नो जीवितं वृथा ॥२०७॥
 अपराधविमुक्तस्य साधुसेवापितात्मनः । समस्ताश्चास्य सामन्ता एकनाथाविरोधिनः ॥२०८॥
 तोषामनामिर्मं नूनं सिंहोदरकुभूसृता । भरतोऽपि न शक्नोति रक्षितुं नूतनेशतः ॥२०९॥
 तस्मान्दन्त्यपरित्राणरहितस्यास्य सन्मतेः । क्षिप्रं कुरु परित्राणं ब्रज सिंहोदरं वद ॥२१०॥
 इदं वाच्यमिदं वाच्यमिति किं शिष्यते भवाद् । उत्पन्नः प्रज्ञया साकं प्रभयेव महामणिः ॥२११॥
 गुणोच्चारणसत्रीतः कृत्वा शिरसि शासनम् । यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा प्रणम्य प्रमदान्वितः ॥२१२॥

तदनन्तर रामने सन्तुष्ट होकर कहा कि हे लक्ष्मण ! वज्रकर्णकी भद्रता देखो जो इसने परिचयके बिना ही यह किया है ॥१६६॥ ऐसा सुन्दर भोजन तो जमाईके लिए भी नहीं दिया जाता है । अहो ! पेय पदार्थोंकी शीतलता और व्यञ्जनोंकी मधुरता तो सर्वथा आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है ॥२००॥ इस अमृत तुल्य अन्नके खानेसे हमारा मार्गसे उत्पन्न हुआ गर्मीका समस्त श्रम एक साथ नष्ट हो गया है ॥२०१॥ जो कोमलताको धारण कर रहे हैं, जिनका एक-एक सीत अलग-अलग है, और जो सफेदीके कारण ऐसे जान पड़ते हैं मानो चन्द्रमाके बिम्बको चूर्ण कर ही बनाये गये हैं ऐसे ये धानके चावल हैं ॥२०२॥ जो अत्यन्त स्वच्छतासे युक्त है तथा जो अपनी सुराग्निसे भ्रमरोंको आकृष्ट कर रहा है ऐसा यह पानक, जान पड़ता है चन्द्रमाकी किरणोंको दुहकर ही बनाया गया है ॥२०३॥ यह घी और दूध तो मानो कामधेनुके स्तनसे ही उत्पन्न हुआ है अन्यथा व्यञ्जनोंमें रसोंकी ऐसी व्यक्तता कठिन ही है ॥२०४॥ पथिकने यह ठीक ही कहा था कि वह सत्पुरुष अणुव्रतोंका धारी है अन्यथा अतिथियोंका ऐसा सत्कार दूसरा कौन करता है ? ॥२०५॥ जो संसारकी पीड़ाको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार करता है उनके सिवाय किसी दूसरेको नमस्कार नहीं करता ऐसा वह बुद्धिमान् शुद्ध आत्माका धारक सुना जाता है ॥२०६॥ ऐसे शील और गुणोंसे सहित होने पर भी यदि यह हम लोगोंके आगे शत्रुसे घिरा रहता है तो हमारा जीवन व्यर्थ है ॥२०७॥ यह अपराधसे रहित है, अपने आपको सदा साधुओंकी सेवामें तत्पर रखता है तथा इसके समस्त सामन्त अपने इस अद्वितीय स्वामीके अनुकूल हैं ॥२०८॥ दुष्ट राजा सिंहोदरके द्वारा पीड़ित हुए इस वज्रकर्णकी रक्षा करनेके लिए भरत भी समर्थ नहीं है क्योंकि वह अभी नवीन राजा है ॥२०९॥ इसलिए अन्य रक्षकोंसे रहित इस बुद्धिमान्की रक्षा शीघ्र ही करो, जाओ और सिंहोदरसे कहो ॥२१०॥ 'यह कहना, यह कहना' यह तुम्हें क्या शिक्षा दी जाय क्योंकि जिस प्रकार महामणि प्रभाके साथ उत्पन्न होता है उसी प्रकार तुम भी ब्रह्माके साथ ही उत्पन्न हुए हो ॥२११॥

अथानन्तर अपने गुणोंकी प्रशंसा सुन जिसे लज्जा उत्पन्न हो रही थी ऐसा लक्ष्मण रामकी

विनीतं धारयन् वेपमनुपाद्राय कार्मुकम् । प्रयातो रयसम्पन्नो लक्ष्मणः कम्पितक्षितिः ॥२१३॥
 द्यूः सरक्षकैः पृष्टः कतरस्य पुमान् भवान् । सोऽजोचद् भरतस्याहमेतो दूतस्य कर्मणा ॥२१४॥
 क्रमेणार्तात्य शिविरं भूरि प्राप्नो नृपास्पदम् । अविशद्देदितो द्वाःस्थै सदः सिहोदरस्य सः ॥२१५॥
 प्रस्पष्टमिति चोवाच मन्यमानस्तृणं नृपम् । ज्येष्ठभ्रातृवचोवाहं सिहोदरं विनोद्य माम् ॥२१६॥
 आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्तमिति सदगुणः । यथा किल किमेतेन विरोधेन विहेतुना ॥२१७॥
 ततः सिहोदरोऽवादीन्मनः कर्कशमुद्बहन् । दूत श्रुतां विनीतेशमिति मद्बचनाद् भवान् ॥२१८॥
 यथा किलाविनीतानां श्रुत्यानां विनयाहती । कुर्वन्ति स्वामिनो यत्नं विरोधः कोऽत्र दृश्यते ॥२१९॥
 वज्रकर्णो दुरात्मायं मानी नैकृतिकः परः । पिशुनः क्रोधनः क्षुद्रः सुहृन्निन्दापरायणः ॥२२०॥
 आलस्योपहतो मूढो वायुग्रहगृहीतधीः । विनयाचारनिर्मुक्तो दुर्विदग्धो दुरीहितः ॥२२१॥
 एतं मुब्रह्मन्त्वमीं दोषा दमेन मरणेन वा । तसुपायं करोम्यस्य स्वैरमत्रास्थितां त्वया ॥२२२॥
 ततो लक्ष्मणोऽजोचत् किमत्र प्रत्युरोत्तरैः । कुरुतेऽयं हितं यस्मात् क्षम्यतां सर्वमस्य तत् ॥२२३॥
 इत्युक्तः प्रकटक्रोधः सन्निधदूरपराङ्मुखः । सिहोदरोऽवदत्तारं वीक्ष्य सामन्तसंहतिम् ॥२२४॥
 न केवलमसौ मानी हतात्मा वज्रकर्णकः । तत्कार्यवाञ्छया प्राप्नो भवानपि तथाविधः ॥२२५॥
 पापाणैर्नैव ते गात्रमिदं दूतं विनिर्मितम् । न नाममीपदप्येति दुष्ट्यः कोशलापतेः ॥२२६॥

आज्ञा शिरोधार्य कर 'जैसी आपकी आज्ञा' यह कहकर तथा प्रणाम कर हर्षित होता हुआ चला । वह उस समय विनीत वेपको धारण कर रहा था, धनुष साथमें नहीं ले गया था, वेगसे सम्पन्न था और पृथ्वीको कँपाता हुआ जा रहा था ॥२१२-२१३॥ रत्नक पुरुषोंने देखकर उससे पूछा कि आप किसके आदमी हैं ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं राजा भरतका आदमी हूँ और दूतके कार्यसे आया हूँ ॥२१४॥ क्रम-क्रमसे बहुत बड़ी छावनीको उल्लंघ्य कर वह राजाके निवास-स्थानमें पहुँचा और द्वारपालोंके द्वारा खबर देकर राजा सिहोदरकी सभामें प्रविष्ट हुआ ॥२१५॥ वहाँ जाकर राजाको वृणके समान तुच्छ समझते हुए उसने स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रकार कहा कि हे सिहोदर ! तू मुझे वड़े भाईका सन्देशवाहक समझ ॥२१६॥ उत्तमगुणोंको धारण करनेवाले राजा भरत आपको इस प्रकार आज्ञा दंते हैं कि इस निष्कारण वैरसे क्या लाभ है ? ॥२१७॥

तदनन्तर कठोर मनको धारण करनेवाला सिहोदर बोला कि हे दूत ! तू मेरी ओरसे अयोध्याके राजा भरतसे इस प्रकार कहो कि अविनीत सेवकोंको विनयमें लानेके लिए स्वामी प्रयत्न करते हैं इसमें क्या विरोध दिखाई देता है ? ॥२१८-२१९॥ यह वज्रकर्ण दुष्ट है, मानी है, मायावी है, अत्यन्त नीच है, क्रोधी है, क्षुद्र है, मित्रकी निन्दा करनेमें तत्पर है, आलस्यसे युक्त है, मूढ है, वायु अथवा किसी पिशाचने इसकी बुद्धि हर ली है, यह विनयाचारसे रहित है, पण्डितमन्य है, और दुष्ट चेष्टाओंसे युक्त है । ये दोष इसे या तो दमनसे छोड़ सकते हैं या मरणसे, इसलिए इसका उपाय करता हूँ इस विषयमें आप चुप बैठिये ॥२२०-२२२॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि इस विषयमें उत्तर-प्रत्युत्तरोंसे क्या प्रयोजन है ? चूँकि यह सबका हित करता है अतः इसका यह सब अपराध क्षमा कर दिया जाय ॥२२३॥ लक्ष्मणके इस प्रकार कहते ही जिसका क्रोध उबल पड़ा था, और जो सन्धिसे चिमुख था ऐसा सिहोदर अपने सामन्तोंकी ओर देख गरजकर बोला कि न केवल यह दुष्ट वज्रकर्ण ही मानी है किन्तु उसके कार्यकी इच्छासे आया हुआ यह दूत भी वैसा ही मानी है ॥२२५॥ अरे दूत ! जान पड़ता है तेरा यह शरीर पापाणसे ही बना है अयोध्यापतिका यह दुष्ट श्रुत्य, रश्म मात्र भी नम्रताको

तत्र देशे नरा नूनं मर्व एव भवद्विधाः । स्थालीपुलाकथमैण पराञ्चं ज्ञायते ननु ॥२२७॥
 इत्युक्ते कोपमायातः किञ्चिद्बलधीरोऽवदत् । साम्यहेतोरहं प्राप्तो न ते कर्तुं नमस्कृतित्म् ॥२२८॥
 बहुनात्र किमुक्तेन हरे सक्षेपतः शृणु । प्रतीच्छ सन्धिमद्यौ मरणं वा समाश्रय ॥२२९॥
 इत्युक्ते परिपत्सवीं परं क्षोभमुपागता । नानाप्रकारदुर्वाण्या नानाचेष्टाविधायिनी ॥२३०॥
 आकृष्य क्षुरिकां केचिन्निस्त्रिशानपरे भटाः । वधार्थमुद्यतास्तस्य कोपकामितमूर्ख्यः ॥२३१॥
 वेगनिर्मुक्तहुङ्काराः परस्परसमाकुलाः । ते तं समन्ततो द्रुममृशका इव पर्वतम् ॥२३२॥
 अप्राप्तानेव धीरोऽसौ क्रियालाघवपण्डितः । विक्षेप चरणाघातैर्दूरं ताम् विह्वलान् समभ ॥२३३॥
 जघान जानुना कांश्चिद्विप्रेणापरान् भ्रमन् । कांश्चिन्मुष्टिप्रहारेण चकार शतशर्करान् ॥२३४॥
 कचेतु कांश्चिदाकृष्य निपात्य धरणीतले । पादेनाचूर्णयत् कांश्चिदंसघातैरपातयत् ॥२३५॥
 कांश्चिद्वन्योन्यघातेन परिचूर्णितमस्तकान् । चकार जंघया कांश्चिद्वरं प्राप्तविमूर्च्छनान् ॥२३६॥
 एवमेकाकिना तेन परिपत्सा तथाविधा । महाबलेन विध्वंसं नीता भयसमाकुला ॥२३७॥
 एवं विध्वंसयन् यावन्निष्कान्तो भवनाजिरम् । तावद्योधयशतैरन्यैः लक्ष्मणः परिवेष्टितः ॥२३८॥
 सामन्तैरथ सन्नद्धैर्वारणैः ससिभी रथैः । परस्परविमर्देन बभूवाकुलता परा ॥२३९॥
 नानाशस्त्रकरेभ्येषु लक्ष्यालिङ्गितविग्रहः । चकार चेष्टितं वीरः श्रमालेण्विव केसरी ॥२४०॥

प्राप्त नहीं है—अर्थात् इसने विलकुल भी नमस्कार नहीं किया ॥२२६॥ सचमुच ही उस देशके सब लोग तेरे ही जैसे हैं जिस प्रकार बटलोईके दो चार सीध जाननेसे सब सीधोंका ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार तेरे द्वारा वहाँके सब लोगोका परोक्ष ज्ञान हो रहा है ॥२२७॥

सिंहोदरके इस प्रकार कहने पर कुछ क्रोधको प्राप्त हुआ लक्ष्मण बोला कि मैं साम्यभाव स्थापित करनेके लिए यहाँ आया हूँ तुम्हें नमस्कार करनेके लिए नहीं ॥२२८॥ सिंहोदर । इस विषयमे बहुत कहनेसे क्या ? संक्षेपसे सुन, या तो तू सन्धि कर या आज ही मरणका आश्रय ले ॥२२९॥ यह कहते ही समस्त सभा परम क्षोभको प्राप्त हो गई, नाना प्रकारके दुर्वचन बोलने लगी तथा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगी ॥२३०॥ जिनके शरीर क्रोधसे कोप रहे थे ऐसे कितने ही योधा छुरी खींचकर और कितने ही योधा तलवारे निकालकर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥२३१॥ जो वेगसे हुंकार छोड़ रहे थे तथा जो परस्पर अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे उन योद्धाओंने लक्ष्मणको चारों ओरसे उस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मच्छर किसी पर्वतको घेर लेते हैं ॥२३२॥ शीघ्रतासे कार्य करनेमें निपुण धीर-वीर लक्ष्मणने जो पासमे नहीं आ पाये थे ऐसे उन योद्धाओंको चरणोंकी चपेटसे विह्वल कर एक साथ दूर फेंक दिया ॥२३३॥ शीघ्रतासे घूमते हुए लक्ष्मणने कितने ही लोगोको घुटनोसे, कितने ही लोगोको कोहनोसे, और कितने ही लोगोको मुट्टियोंके प्रहारसे शतखण्ड कर दिया अर्थात् एक-एकके सौ-सौ टुकड़े कर दिये ॥२३४॥ कितने ही लोगोके बाल खींचकर तथा पृथिवी पर पटक कर उन्हें पैरोसे चूर्ण कर डाला और कितने ही लोगोको कन्धेके प्रहारसे गिरा दिया ॥२३५॥ कितने ही लोगोको परस्पर भिड़ाकर उनके शिर एक दूसरेके शिरकी चोटसे चूर्ण कर डाले और कितने ही लोगोको जङ्घाके प्रहारसे मूर्च्छित कर दिया ॥२३६॥ इस प्रकार महाबलवान् एक लक्ष्मणने सिंहोदरकी उस सभाको भयभीत कर विध्वस्त कर दिया ॥२३७॥

इस प्रकार सभाको विध्वस्त करता हुआ लक्ष्मण जब भवनसे बाहर आङ्गणमे निकला तब सैकड़ों अन्य योद्धाओंने उसे घेर लिया ॥२३८॥ तदनन्तर युद्धके लिए तैयार खड़े हुए सामन्तो, हाथियो, घोड़ों और रथोंके द्वारा उत्पन्न परस्परकी धक्काधूसीसे बहुत भारी आकुलता उत्पन्न हो गई ॥२३९॥ हाथोमे नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले उन सामन्तोके साथ वीर

ततोऽनेकपमाद्यः प्राद्वपेण्यघनाङ्कतिम् । स्वयं सिंहोदरो रोद्धुं लक्ष्मीनिलयमुद्यतः ॥२४१॥
 तस्मिन् रणशिरोयाते किञ्चिद्द्वैर्यमुपागताः । दूरगाः पुनराजग्मुः सामन्ता लक्ष्मणं प्रति ॥२४२॥
 घनानामिव सङ्घास्ते ब्रुवन्तं शशिनं यथा । वातूल इव तानेष तूलाशीनिवाकिरत् ॥२४३॥
 उदारभटकामिन्यो गण्डविन्यस्तपाणयः । जगुराकुलताभाजः प्रविशोलविलोचनाः ॥२४४॥
 पश्यतेन महाभीमं सस्यः पुरुवमेककम् । वेष्टितं बहुभिः क्रूरैरसाप्रतमिदं परम् ॥२४५॥
 अन्यास्तत्रोत्तरे कोऽपि केनार्यं परिभूयते । पश्यतानेन विक्रान्ता बहवो विह्वलीकृताः ॥२४६॥
 आस्तृणानमथो दृष्ट्वा लक्ष्मणोऽभिसुखं बलम् । विहस्य वारणस्तंभं महान्तमुदमूलयत् ॥२४७॥
 ततः सरभसस्तत्र सान्द्रहुङ्कारभाषणः । जञ्जृभे लक्ष्मणः क्रद्वे यथोच्चैराशुशुचणिः ॥२४८॥
 विस्मितो गोपुगाप्रथो दशाङ्गनगराधिपः । पाण्ववर्तिभिरित्यूचे सामन्तैर्विकचेचणैः ॥२४९॥
 कोऽप्येव पुरुषो नाथ पश्य सैहोदरं बलम् । भग्न्ध्वजरथच्छत्रं करोति परमद्यतिः ॥२५०॥
 एष ब्रह्मधनुच्छायमध्यवर्ती सुविह्वलः । आवर्त इव निचिसो आभ्यतीर्माहितोदरः ॥२५१॥
 इतश्चेतश्च विस्तीर्णमेतत्सैन्यं पलायते । एतस्मात्प्रासमागत्य सिहान् मृगकुलं यथा ॥२५२॥
 वदन्त्यन्योन्यमत्रैते सामन्ता दूरवतिनः । अवतारय सन्नाहं मण्डलाग्रो विभुच्यताम् ॥२५३॥

लक्ष्मण ऐसी चेष्टा करने लगा जैसी कि शृगालोके साथ सिंह करता है ॥२४०॥ तदनन्तर वर्षा ऋतुके मेघके समान आकारको धारण करनेवाले हाथीपर सवार होकर सिंहोदर स्वयं लक्ष्मणको रोकनेके लिए उद्यत हुआ ॥२४१॥ जो सामन्त पहले दूर भाग गये थे वे सिंहोदरके रणाग्रमे आते ही कुल्ल-कुल्ल धैर्य धारणकर फिरसे चापिस आ गये ॥२४२॥ जिस प्रकार मेघोंके झुण्ड चन्द्रमाको घेरते हैं उसी प्रकार उन सामन्तोंने लक्ष्मणको घेरा परन्तु जिस प्रकार तीव्र वायु रुईके ढेरको उड़ा देती है उसी प्रकार उसने उन सामन्तोंको उड़ा दिया—दूर भगा दिया ॥२४३॥ जिन्होंने गालोंपर हाथ लगा रखे थे, जो अत्यन्त आकुलताको प्राप्त थीं, तथा जिनके नेत्र भयसे चञ्चल हो रहे थे ऐसी उत्तम योद्धाओंकी खियों परस्परमे कह रही थी कि हे सखियों ! इस महा-भयङ्कर पुरुषको देखो ! इस एकको बहुतसे क्रूर सामन्तोंने घेर रक्खा है यह अत्यन्त अनुचित बात है ॥२४४-२४५॥ उन्हींमे कुल्ल खियों इस प्रकार कह रहीं थीं कि यद्यपि यह अकेला है फिर भी इसे कौन परिभूत कर सकता है ? देखो, इसने अनेक योद्धाओंको चपेटकर विह्वल कर दिया है ॥२४६॥

अथानन्तर सामने सेनाको इकट्ठी होती देख लक्ष्मणने हँसकर हाथी बाँधनेका एक बड़ा खम्भा उखाड़ा ॥२४७॥ और जिस प्रकार वनमें जोरदार अग्नि वृद्धिज्ञत होती है उसी प्रकार सघन हुंकारोंसे भयङ्करताको प्राप्त करता हुआ लक्ष्मण उस सेनापर वेगसे दूट पड़ा ॥२४८॥ दशाङ्गपुरका राजा वज्रकर्ण गोपुरके अग्रभाग पर बैठानैठा इस दृश्यको देख आश्चर्यसे चकित हो गया । जिनके नेत्र हर्षसे विकसित हो रहे थे ऐसे सभीपवर्ती सामन्तोंने उससे कहा कि हे नाथ ! देखो, परम तेजको धारण करनेवाला यह कोई पुरुष सिंहोदरकी सेनाको नष्ट कर रहा है । उसने उसकी सेनाके ध्वज, रथ तथा छत्र आदि सभी तोड़ डाले हैं ॥२४९-२५०॥ तलवारों और धनुषोंकी छायाके बीच खड़ा हुआ यह सिंहोदर, अत्यन्त विह्वल हो भँवरमे पड़े हुए के समान इधर-उधर घूम रहा है ॥२५१॥ जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर मृग समूह इधर-उधर भागता फिरता है उसी प्रकार सिंहोदरकी सेना इससे भयभीत होकर इधर-उधर भागती फिरती है ॥२५२॥ ये दूर खड़े हुए सामन्त परस्पर कर रहे हैं कि कवच उत्तार दो, तलवार छोड़

कायुक्तं क्षिप मुञ्चाएवं वारणाऽनवतीर्णताम् । गर्दां निरस्य गतायां साकारैरिवमुञ्जतम् ॥२५७॥
 आलोक्य शखसङ्घातं क्षुत्वा वा रभसान्वितः । क्रोप्येव पुरुषोऽस्माकमायतदतिदाह्यः ॥२५८॥
 अपसर्पामृतो देशाद्देहि मार्गमहो भट । वारणं सारयैतस्माक्किमत्र स्तंभितोऽपि ते ॥२५९॥
 अयं प्रातोऽयमायातो दुःसूत स्यन्दनं त्यज । तुरङ्गाश्चोत्रय क्षिप्रं घातिता स्मो न संशयम् ॥२५७॥
 एवमादिकृतालापाः कैचित्सङ्घट्टमागताः । परित्यज्य भद्राकल्पमेते पण्डकवद् स्थिताः ॥२५८॥
 किमेव रमते युद्धे कोऽपि त्रिदशसम्भव । विद्याधरो नु वान्यस्य कस्येयं शक्तिरो दृशो ॥२५९॥
 कालो नाम यमो वायुः कोऽपि लोके प्रकल्प्यते । सोऽयं किमु भवेच्चण्डो^१ विद्युद्गुण्डचलाचलः ॥२६०॥
 कृत्वेदमीदृशं सैन्यं पुनरेव करिष्यति । किमित्येवं मनोऽस्माक नाय शङ्कामुपागतम् ॥२६१॥
^२निरीक्षस्त्वेनमुत्पत्य संग्रामे रोमहर्षणे । सिंहोदरं समाकृष्य विह्वलं वरवारणात् ॥२६२॥
 गले तदंशुक्रेनैव प्राध्वक्त्व^३ सुविस्मितः । एष यान्ति पुरःकृत्वा^४ वलीवर्दं यथा वशम् ॥२६३॥
 एवमुक्तः स^५ तैरुक्ते स्वस्या भवत मानवाः । देवाः शान्तिं करिष्यन्ति किमत्र बहुचिन्तया ॥२६४॥
 स्थिता^६ मूर्धसु हर्म्याणां दृशान्नगराङ्गनाः । परं विस्मयमापन्ना जगुरेवं परस्परम् ॥२६५॥
 सखि परयास्य वीरस्य चेष्टितं परमाद्भुतम् । येनैकेन नरेन्दोऽयमानोतोंऽशुकव्रन्वचम् ॥२६६॥
 अहो कान्तिरमुष्येयं घृतिश्चातिशतान्विता । अहो शक्तिरियं कोऽयं भवेद् पुरुषसत्तमः ॥२६७॥
 भूतोऽयं भविता वापि पुण्यवत्याः सुयोषितः । पतिः कस्याः प्रशस्तायाः समस्तजगतीश्वरः ॥२६८॥
 सिंहोदरमहिष्योऽयं बृद्ध्यालसमन्विताः । रुदत्यः पादयोः पेतुर्लक्ष्मणस्यातिविह्वलाः ॥२६९॥

दो, धनुष फेक दो, घोड़ा छोड़ दो, हाथीसे नीचे उतर जाओ, गदा गड्डुमे गिरा दो, ऊँचा शब्द मत करो, शखोंका समूह देखकर यह अतिशय भयङ्कर पुरुष वेगसे कहीं हमारे ऊपर न आ पड़े; इस स्थानसे हट जाओ, अरे भट ! रास्ता दे, हाथीको यहाँसे दूर हटा, चुपचाप क्यों खड़ा है ? अरे दुष्ट सारथि ! देख, यह आया, यह आया, रथ छोड़, घोड़े जल्दी बढ़ा, मारे गये इसमें संशय नहीं, इत्यादि वार्तालाप करते हुए, संकटमें पड़े कितने ही योद्धा, योद्धाओंका वैष छोड़ कर नपुंसकोंके समान एक ओर स्थित हैं ॥२५३-२५८॥ क्या युद्धमें यह कोई देव क्रीड़ा कर रहा है अथवा विद्याधर, वायु नामका कोई व्यक्ति संसारमें प्रसिद्ध है सो क्या यह वही है ? यह अन्यन्त तीक्ष्ण और विजलीके समान चञ्चल है ॥२५९-२६०॥ सेनाको इस प्रकार नष्ट भ्रष्ट करके अब यह आगे क्या करेगा ? हे नाथ ! इस प्रकार हमारा मन शङ्काको प्राप्त हो रहा है ॥२६१॥ देखो, रोमाञ्चकारी युद्धमें उल्लसकर भयभीत सिंहोदरको हाथीसे खींचकर उसीके बखसे गलेमें बाँध लिया है और यह वैलकी तरह वशकर उसे आगे कर आश्चर्यसे चकित होता हुआ आ रहा है ॥२६२-२६३॥ इस प्रकार सामन्तोंके कहनेपर वज्रकर्णने कहा कि हे मानवो ! स्वस्थ होओ, देव शान्ति करेंगे, इस विषयमें बहुत चिन्ता करनेसे क्या लाभ है ? ॥२६४॥ महलोंके शिखरों पर बैठे दृशाङ्गनगरकी स्त्रियों परम आश्चर्यको प्राप्त हो परस्पर इस प्रकार कह रही थीं ॥२६५॥ कि हे साथी ! इस वीरकी परम अद्भुत चेष्टा देखो जिसने अकेले ही इस राजाको बखसे बाँध लिया ॥२६६॥ धन्य इसकी कान्ति, धन्य इसका अतिशय पूर्ण तेज, और धन्य इसकी शक्ति । अहो ! यह उत्तम पुरुष कौन होगा ? ॥२६७॥ यह किस भाग्यशालिनी गुणवती वीका पति है ? अथवा आगे होगा ? यह समस्त पृथिवीका स्वामी है ॥२६८॥

अथानन्तर बृद्ध और बालकोसे सहित सिंहोदरकी रानियाँ भयसे अत्यन्त विह्वल हो रोती

१ मा पतदतिदाह्यः म० । २. अपसर्पाम० । ३. योषवेषम् । ४. नपुंसकवत् स्थिताः । ५. भवेच्चण्डो (?) म० । ६. त्ययेद- म० । ७. निरीक्षस्व + एनम् । ८. वद्भवा । ९. परः कृत्वा ज०, ल० । १०. वज्रकर्णः । ११. हर्म्याणां प्रासादाना मूर्धसु पृष्ठेपु ।

ऊञ्जुश्च देव मुञ्चैनं भर्तृभिर्चां प्रयच्छ नः । अथ भृत्तिभृत्योऽयं तवाज्ञाकरणोद्यतः ॥२७०॥
 सोऽवोचत् पश्यतोदार द्रुमखण्डमिम पुरः । अत्र नीत्वा दुराचारमेतमुञ्जुम्बयाम्यहम् ॥२७१॥
 करुण बहु कुर्वन्त्यः पुनः साञ्जल्योऽवदन् । रुष्टोऽसि यदि देवास्मान् जहि निर्धार्यतामयम् ॥२७२॥
 प्रसादं कुरु मा दुःखं दर्शय प्रियसम्भवम् । ननु योषित्सु कारुण्यं कुर्वन्ति पुरुषोत्तमाः ॥२७३॥
 पुरो मोचयामि सेवध्वं स्वस्थतामित्यसौ वदन् । ययौ चैत्यालयं यत्र ससीतो राघवः स्थितः ॥२७४॥
 अवोचल्लक्ष्मणः पद्मं सोऽयं वज्रश्रतेररिः । आनीतोऽस्याधुना देव कृत्यं चतु तु यन्मया ॥२७५॥
 ततः सिंहोदरो मूर्ध्नां करकुड्मलयोगिना । पपात् वेपमानाङ्गः पद्मस्य क्रमपद्मयोः ॥२७६॥
 जगाद् च न देव त्वां वेद्मि कोऽसीति कान्तिमान् । परेण तेजसा युक्तो महींप्रपत्तिसन्निभः ॥२७७॥
 मानवो भव देवो वा गम्भीरपुरुषोत्तम । अत्र किं बहुमिः प्रोक्तैरहमाज्ञाकरस्तव ॥२७८॥
 गृह्णातु रुचितस्तुभ्यं राज्यमिन्द्रायुधश्रुतिः । अहं तु पादशुश्रूषां करोमि सततं तव ॥२७९॥
 ३धवभिर्चां प्रयच्छेति योपितोऽन्यस्य पादयोः । रुदृत्यः प्रणिपत्योञ्जुः कुर्वन्त्यः करुणं बहु ॥२८०॥
 देवि खैणात्त्वमस्माकं कारुण्यं कुरु शोभने । इत्युदित्वा च सीतायाः पतितास्ताः क्रमाब्जयोः ॥२८१॥
 ततः सिंहोदरं पद्मो जगाद् विनवाननम् । कुर्वन् वापीषु हंसानां मेघवादोद्भव भयम् ॥२८२॥
 शक्रायुधश्रुतिर्यत्ते ब्रवीति कुरु तरुधीः । एवं ते जीवितं मन्ये प्रकारोऽन्यो न विद्यते ॥२८३॥
 आहूतोऽथ हितैः पुग्भिः कृतदृष्ट्यादिवर्धनः । वज्रकर्णः परीवारसहितश्रैत्यमागमत् ॥२८४॥
 स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य मूर्धपणिर्जिनालयम् । स्तुत्वा ननाम चन्द्रामं भक्तिदृष्टस्तनूरुहः ॥२८५॥

हुई लक्ष्मणके चरणोंमें आ पड़ी ॥२६६॥ वे बोलीं कि हे देव ! इसे छोड़ो, हमारे लिए पतिकी भिक्षा देओ, आजसे यह आपका आज्ञाकारी भृत्य है ॥२७०॥ लक्ष्मणने कहा कि देखो यह सामने ऊँचा वृक्षखण्ड है वहाँ ले जाकर इस दुराचारीको उसपर लटकाऊँगा ॥२७१॥ तदनन्तर बहुत करुण रुदन करती तथा बार-बार हाथ जोड़ती हुई बोलीं कि हे देव ! यदि रुष्ट हो तो हम लोगोंको मारो और इसे छोड़ दो ॥२७२॥ प्रसन्नता करो, हम लोगोको पतिका दुःख न दिखाओ उत्तम पुरुष स्त्रियों पर दया करते ही है ॥२७३॥ तब लक्ष्मणने कहा कि अच्छा आगे चलकर छोड़ देगे आप लोग स्वस्थताको प्राप्त होओ । इस प्रकार कहता हुआ लक्ष्मण उस चैत्यालयमें गया जहाँ कि सीता सहित राम ठहरे हुए थे ॥२७४॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने रामसे कहा कि यह वज्रकर्णका शत्रु है इसे मैं ले आया हूँ । अब हे देव ! जो करना हो सो आज्ञा करो ॥२७५॥ तब जिसका शरीर काँप रहा था ऐसा सिंहोदर हाथ जोड़ मस्तकसे लगा रामके चरणकमलोंमें गिरा ॥२७६॥ और बोला कि हे देव ! आप कौन हैं ? यह मैं नहीं जानता । आप कान्तिमान् हैं उत्कृष्ट तेजसे युक्त है और सुमेरुके समान स्थिर हैं ॥२७७॥ हे गम्भीर पुरुषोत्तम ! आप मनुष्य रहो चाहे देव ! इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ ॥२७८॥ वज्रकर्ण आपको रुचता है सो वह यह राज्य ग्रहण करे मैं तो सदा आपके चरणोंकी शुश्रूषा ही करता रहूँगा ॥२७९॥ सिंहोदरकी स्त्रियों भी अत्यन्त करुण विलाप करती हुई, रामके चरणों में प्रणाम कर बोलीं कि हमारे लिए पतिकी भिक्षा दीजिए ॥२८०॥ 'हे देवि ! तुम तो स्त्री हो अतः हे शोभने ! हम पर दया करो' इस प्रकार कहकर वे सीताके चरणकमलोंमें भी पड़ीं ॥२८१॥

तदनन्तर वापिकायोंमें स्थित हँसोको मेघध्वनिसे होनेवाला भय उत्पन्न करते हुए रामने नीचा मुखकर बैठे हुए सिंहोदरसे कहा ॥२८२॥ कि हे सुधी ! तुम्हें वज्रकर्ण जो कहे सो कर ! इसी तरह तेरा जीवन रह सकता है और दूसरा उपाय नहीं है ॥२८३॥ तदनन्तर जिसकी भाग्य-वृद्धि हो रही थी ऐसा वज्रकर्ण हितकारी पुरुषोके द्वारा बुलाया गया जो परिवार सहित उस चैत्यालयमें आया ॥२८४॥ उसने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा जिनालयकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं

ततश्च विनयी गत्वा स्तुत्वा तौ भ्रातरौ क्रमात् । अपृच्छद् वपुरारोग्यं सीतां च विधिकोविदः ॥२८६॥
 भद्र ते कुशलानाद्य कुशलं नः समन्ततः । इति तं राघवोऽवोचन्नितान्तं मधुरध्वनिः ॥२८७॥
 सङ्क्षेपं तयोर्थावद् वर्तते शुभलीलयोः । चारुवेषोऽय सैन्येन विद्युद्ग्नः समागतः ॥२८८॥
 स तयोः प्रणतिं कृत्वा स्तुत्वा च क्रमपण्डितः । समीपे वज्रकर्णस्य सन्निविष्टः प्रतापवान् ॥२८९॥
 विद्युद्ग्नः सुधी सोऽय वज्रकर्णसुहृत्परः । इति शब्दः समुत्तस्थौ तदा सदसि मांसलः ॥२९०॥
 पुनश्च राघवोऽवोचत् कृत्वा स्मितसितं मुखम् । वज्रकर्ण ! समीचीना तव दृष्टिरियं परा ॥२९१॥
 कुमरैस्त्वव धीरेषा मनागपि न कम्पिता । उत्पातवातसङ्घातैः मन्दरस्येव चूलिका ॥२९२॥
 ममापि सहसा दृष्ट्वा न ते मूर्खायमानतः । अहो परमिदं चारु तव शान्तं विचेष्टितम् ॥२९३॥
 अथवा शुद्धतत्त्वस्य किमु पुलोऽस्ति दुस्तरम् । धर्मानुरागचित्तस्य सम्यग्दृष्टेशेषतः ॥२९४॥
 प्रणम्य त्रिजगद्गन्धं जिनेन्द्रं परमं शिवम् । तुङ्गेन शिरसा तेन कथमन्यः प्रणम्यते ॥२९५॥
 मकरन्दरसास्वादलब्धधवणो मधुव्रतः^३ । रासभस्य पदं पुच्छे प्रमचोऽपि करोति किम् ॥२९६॥
 बुद्धिमानसि धन्योऽसि द्वाधास्यासन्नभयताम् । चन्द्रादपि सिता कीर्तिस्त्वव भ्राम्यति विष्टपे ॥२९७॥
 विद्युद्ग्नोऽप्ययं मित्रं परं ते विदितं मया । भन्योऽयमपि यः सेवां तव कर्तुं समुद्यतः ॥२९८॥
 सद्गतगुणसत्कीर्तय लज्जामुपागतः । किञ्चित्ताननोऽवोचच्छुनाशीरायुधश्रवाः ॥२९९॥
 अत्रावसीदतो देव प्रासस्य व्यसनं महत् । सङ्गातोऽसि महाभाग त्वं मे^५ परमबान्धवः ॥३००॥

फिर भक्तिसे रोमाञ्चित हो चन्द्रप्रभ भगवान्को नमस्कार किया ॥२८५॥ तत्पश्चात् विधि-
 विधानके जानकार वज्रकर्णने विनयपूर्वक जाकर राम लक्ष्मण दोनो भाइयोकी क्रमसे स्तुति की
 और सीतासे शरीर-सम्बन्धी आरोग्य पूछा ॥२८६॥ तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर ध्वनिमें
 उससे कहा कि हे भद्र ! आज तो तेरी कुशलसे ही हम सबकी कुशल है ॥२८७॥ इस प्रकार
 शुभलीलाके धारक राम और वज्रकर्णके बीच जब-तक यह वार्तालाप चलता है तब-तक सुन्दर
 वेपका धारक विद्युद्ग्न सेनाके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥२८८॥ क्रमके जाननेमें पण्डित प्रतापी
 विद्युद्ग्न राम लक्ष्मणको प्रणाम कर वज्रकर्णके पास आ बैठा ॥२८९॥ उसी समय सभामे यह
 जोरदार शब्द गूँजने लगा कि यह बुद्धिमान् विद्युद्ग्न वज्रकर्णका परम मित्र है ॥२९०॥

तदनन्तर रामने मन्द हास्यसे मुखको धवल कर वज्रकर्णसे कहा कि हे वज्रकर्ण ! तेरी यह
 दृष्टि अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥२९१॥ जिस प्रकार मेरुपर्वतकी चूलिका, प्रलयकालकी वायुके आघातसे
 कम्पित नहीं होती, उसी प्रकार तेरी यह बुद्धि मिथ्या मतोंसे रज्जमात्र भी कम्पित नहीं हुई
 ॥२९२॥ मुझे देखकर भी तेरा यह मस्तक नम्रीभूत नहीं हुआ सो तेरी यह चेष्टा अत्यन्त मनोहर
 तथा शान्त है ॥२९३॥ अथवा शुद्ध तत्त्वके जानकार पुरुषको क्या कठिन है ? खासकर धर्मा-
 नुरागी सम्यग्दृष्टिके मनुष्य को ॥२९४॥ जिस उन्नत शिरसे तीन लोकके द्वारा बन्दनीय परम
 कल्याणस्वरूप जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार किया जाता है उसी शिरसे दूसरे लोगोंको कैसे
 प्रणाम किया जाय ? ॥२९५॥ मकरन्द रसके आस्वादनमें निपुण भौरा उन्मत्त होने पर भी क्या
 गधेके पूँछपर अपना स्थान जमाता है ? ॥२९६॥ तुम बुद्धिमान हो, धन्य हो, निकट भव्यपना
 धारण कर रहे हो और चन्द्रमासे भी अधिक धवल तुम्हारी कीर्ति संसारमें भ्रमण कर रही है
 ॥२९७॥ मुझे मालूम है कि यह विद्युद्ग्न भी तुम्हारा मित्र है । सो यह भी भव्य है जो कि
 तुम्हारी सेवा करनेके लिये उद्यत रहता है ॥२९८॥

अथानन्तर यथार्थ गुणोंके कथनसे जो लज्जाको प्राप्त था तथा जिसका मुख कुल्ल नीचेकी
 ओर झुक रहा था ऐसा वज्रकर्ण बोला कि हे देव ! यद्यपि आपकी यहाँ रहते बहुत कष्ट हुआ है

१. सुमेरो । २. निपुणः । ३. भ्रमरः । ४. वज्रकर्णः । ५. मे त्वं म० ।

नियमस्त्वर्षसादेन ममायं जीवतोऽधुना । पालितो मम भाग्येन^३ त्वमानीतो नरोत्तमः ॥३०१॥
 वदन्नैवमसा ऊचे लक्ष्मणेन विचक्षणः । वदाभिरुचितं यत्ने क्षिप्रं सम्पादयाम्यहम् ॥३०२॥
 सोऽनोक्तं सुहृदं प्राप्य भवन्तमतिदुर्लभम् । न किञ्चिदस्ति लोकेऽस्मिन्निदं तु प्रवदाभ्यहम् ॥३०३॥
 तृणस्यापि न बान्ध्वामि पीढां जिनमताश्रितः । अतो विमुच्यतामेव मम सिंहोदरप्रभुः ॥३०४॥
 इत्युक्ते लोकवक्त्रेभ्यः साधुकारः समुद्ययौ । प्रासङ्गैरेवपि पश्याथं मतिं घत्ते शुभामिति ॥३०५॥
 अपकारिणि कारुण्यं यः करोति स सज्जनः । मध्ये कृतोपकारे वा प्रीतिः कस्य न जायते ॥३०६॥
 एवमस्त्विति भापित्वा लक्ष्मणेन तयोः कृता । हस्तग्रहणसम्पन्ना प्रीतिः समयपूर्विका ॥३०७॥
 उज्जयिन्या ददावर्धं वज्रकर्णाय शुद्धधीः । सिंहोदरो हृतं पूर्वं विपयोद्वासने च यत् ॥३०८॥
 चतुरङ्गस्य देशस्य गणिकांतां धनस्य च । विभागं समभागेन निजस्याप्यकरोदसौ ॥३०९॥
 बाहूदगतप्रसादेन तां वेश्यां तच्च कुण्डलम् । लेभे सेनाधिपत्यं च विद्युदङ्गः सुविश्रुतः^४ ॥३१०॥
 वज्रकर्णस्ततः कृत्वा रामलक्ष्मणयोः पराम् । पूजामानाययत्किप्रमट्टौ दुहितरो वराः ॥३११॥
 "सजायो दश्यते ज्यायानिति तास्तेन ढौकितः । लक्ष्मीधरं कृतोदारविभूवाविनयान्विताः ॥३१२॥
 नृपाः सिंहोदराद्याश्च द्रुः परमकन्यकाः । एवं सन्निहितं तस्य कुमारीणां शतत्रयम् ॥३१३॥
 ढौकित्वा वज्रकर्णस्ताः समं सिंहोदरादिभिः । जगाद् लक्ष्मणं देव त्वेता वनिता इति ॥३१४॥

तो भी हे महाभाग ! आप मेरे परम बान्धव हुए हैं ॥२८६-३००॥ इस समय मेरे जीवित रहते हुए मेरे इस नियमका पालन आपके ही प्रसादसे हुआ है और मेरे भाग्यसे ही आप पुरुषोत्तम यहाँ पधारे है ॥३०१॥ इस प्रकार कहते हुए बुद्धिमान् वज्रकर्णसे लक्ष्मणने कहा कि जो तेरी अभिलाषा हो वह कह मैं शीघ्र ही पूर्ण कर दूँ ॥३०२॥ यह सुनकर वज्रकर्णने कहा कि आप जैसे अत्यन्त दुर्लभ मित्रको पाकर इस ससारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है । अतः मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं जिनमतका धारक होनेसे यह नहीं चाहता हूँ कि तृणको भी पीड़ा हो । इसलिए यह मेरा स्वामी राजा सिंहोदर छोड़ दिया जाय ॥३०३-३०४॥ वज्रकर्णके इतना कहते ही लोगोंके मुखसे 'धन्य धन्य' शब्द निकल पड़ा । देखो यह भद्र पुरुष शत्रुके ऊपर भी शुभ बुद्धि धारण कर रहा है ॥३०५॥ अपकारीके ऊपर जो दया करता है वही सज्जन है । वैसे मध्यस्थ अथवा उपकार करनेवाले पर किसे प्रेम उत्पन्न नहीं होता ॥३०६॥

तदनन्तर 'एवमस्तु' कह लक्ष्मणने हाथ मिलाकर तथा कभी शत्रुता नहीं करेगे, इस प्रकार शपथ दिलवाकर दोनोकी मित्रता करा दी ॥३०७॥ निर्मल बुद्धिके धारक सिंहोदरने उज्जयिनीका आधा भाग तथा देशको उजाड़ करते समय जो कुछ पहले हरा था वह सब वज्रकर्णके लिए दे दिया ॥३०८॥ अपनी चतुरङ्ग सेना, देश, गणिका तथा धनका भी उसने बराबर-बराबर आधा भाग कर दिया ॥३०९॥ जिनभक्तिके प्रसादसे अतिशय प्रसिद्ध विद्युदङ्गने भी वह वेश्या, वह रत्नमयी कुण्डल और सेनापतिका पद प्राप्त किया ॥३१०॥ तदनन्तर वज्रकर्णने राम-लक्ष्मणकी परम पूजा कर शीघ्र ही अपनी आठ पुत्रियाँ बुलवाई ॥३११॥ जूँकि बड़े भाई राम स्त्रीसे सहित दिखाई देते थे इसलिए उसने उत्तम आभूषणोंको धारण करनेवालीं तथा विनयसे युक्त अपनी पुत्रियाँ लक्ष्मणको व्याह दीं ॥३१२॥ इनके सिवाय सिंहोदर आदि राजाओंने भी उत्तमोत्तम कन्याएँ दीं । इस तरह सब मिलाकर लक्ष्मणको तीन सौ कन्याएँ प्राप्त हुईं ॥३१३॥ उन सबको खड़ी कर वज्रकर्णने सिंहोदर आदि राजाओंके साथ लक्ष्मणसे कहा कि हे देव ! ये आपकी स्त्रियाँ हैं ॥३१४॥

१. जीविताधुना क०, ख०, ज० । २. पालिता क० । ३. भागेन म० । ४. सुविश्रुतः म० ।

५. 'तव ज्यायान् ज्येष्ठो भ्राता रामः सजायो सबल्लभो दश्यते अतस्त्वमपि सजाया भव' इति निर्दिश्य तेन ता दुहितरो लक्ष्मणं प्रापिता इति भावः ।

लक्ष्मीधरस्ततोऽञ्जीवद् दारसङ्गं करोम्यहम् । न तावन्न कृतं यावत् पदं भुजबलार्जितम् ॥३१५॥
 पद्मश्च तानुवाचैवं नास्माकं वसतिः क्वचित् । भरतस्याधिराज्येऽस्मिन् देशे स्वर्गतलोपमे ॥३१६॥
 देशान् सर्वान् समुल्लङ्घ्य करिष्याम्यालयं ततः । आश्रित्य चन्दनगिरिं दक्षिणार्णवमेव वा ॥३१७॥
 एकां वेलामिह ततो जनन्यौ नेतुमुत्सुके । आगन्तव्यं मयावश्यं द्रागयोध्यामनेन वा ॥३१८॥
 काले तत्रैव नेष्यन्ते कन्यका अपि भो नृपाः । अज्ञाननिलयस्यास्य कीदृशो दारसङ्ग्रहः ॥३१९॥
 एवमुक्ते कुमारीणां तद्बुन्दं शशुभे न च । आकुलं पङ्कजवनं हिमवाताहतं यथा ॥३२०॥
 प्रियस्य विरहे प्राणान् त्यक्त्यामो यदि तत्पुनः । अवाप्त्यार्मः कुतोऽनेन समागमरसायनम् ॥३२१॥
 प्राणांश्च धारयन्तानां कैतवं मन्यते जनः । दृष्टते च समिद्धेन मनो विरहवह्निना ॥३२२॥
 सुमहान् शृगुरेकत्र व्याघ्रोऽग्न्यत्रातिदारुणः । अहो कष्टं कमाधारं ब्रजामोऽत्यन्तदुस्सहः ॥३२३॥
 अथवा विरहव्याघ्रं सङ्गमाशयविषया । संस्तंभ्य धारयिष्यामः शरीरमिति साम्प्रतम् ॥३२४॥
 एवं विचिन्तयन्तीभिः सार्धं ताभिर्महीभृतः । गता यथागतं कृत्वा रामादीनां यथोचितम् ॥३२५॥
 सच्चेष्टाः पूज्यमानास्ताः पितृवर्गेण कन्यकाः । नानाविनोदनासकास्तत्स्थुस्तद्गतमानसाः ॥३२६॥
 भानायितः पिता भूत्या सबन्धुर्देशमात्मनः । विद्युद्ग्नं चक्रे च परमः सङ्गमोत्सवः ॥३२७॥
 परमेश्च निशीथे तौ नत्वा चैत्यालयात्ततः । शनैर्निर्गत्य पादाभ्यां स्वेच्छया सुधियो ययुः ॥३२८॥
 चैत्यालयं प्रभाते सं दृष्ट्वा शून्यं जनोऽखिलः । रहितारोपकर्तव्यो विर्तानहृदयस्थितः ॥३२९॥

तदनन्तर उसके उत्तरमें मैं लक्ष्मणने कहा कि मैं जब तक अपने बाहुबलसे अर्जित स्थान प्राप्त नहीं कर लेता हूँ तब तक स्त्री समागम नहीं करूँगा ॥३१५॥ रामने भी उनसे इसी प्रकार कहा कि अभी हमारा कहीं निश्चित निवास नहीं है । स्वर्गके समान भरतके राज्यमें जो देश हैं उन सबको पार कर हम मलयगिरि अथवा दक्षिण समुद्रके आस-पास अपना घर बनावेंगे । वहाँ उत्कण्ठासे भरी अपनी माताओंको ले जानेके लिए एक बार हम अथवा लक्ष्मण अवश्य ही अयोध्या आवेंगे । हे राजाओ ! उसी समय आपकी इन कन्याओंको ले जावेंगे । तुम्हीं कहो जिसके रहनेका ठिकाना नहीं उसका स्त्री-संग्रह कैसा ? ॥३१६-३१६॥ इस प्रकार कहने पर वह कन्याओंका समूह तुपाय वायुसे आहत कमलवनके समान आकुल होता हुआ शोभित नहीं हुआ ॥३२०॥ कन्याएँ विचार करने लगीं कि यदि हम पतिके विरहमें प्राण छोड़ देवेगी तो फिर इसके साथ समागमरूपी रसायनको कैसे प्राप्त कर सकेंगी ? ॥३२१॥ और यदि प्राण धारण करती हैं तो लोग कपट मानते हैं तथा देहोप्यमान विरहानलसे मन जलता है ॥३२२॥ अहो ! एक ओर तो बड़ी भारी ढालू चट्टान है और दूसरी ओर अत्यन्त निर्दय व्याघ्र है । अतः अत्यन्त दुःखसे भरी हुई हम किस आधारको प्राप्त हों ? ॥३२३॥ अथवा इस समय हम समागमकी अभिलाषारूपी विद्यासे विरहरूपी व्याघ्रको कीलकर शरीर धारण करेंगी ॥३२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई उन कन्याओंके साथ राजा लोग राम आदिका यथोचित सत्कार कर जैसे आये थे वैसे चले गये ॥३२५॥ जिनकी उत्तम चेष्टा थी, पितृवर्ग जिनका निरन्तर सत्कार करता था और जो नाना प्रकारके विनोदमें आसक्त थीं ऐसी कन्याएँ लक्ष्मणमें मन लगा कर रह गईं ॥३२६॥ तदनन्तर विद्युद्ग्नने भाई-बान्धवोंसे सहित पिताको दबड़े ठाट-वाटसे अपने देशमें बुलाया और पहुँचनेपर उनके समागमका बहुत भारी उत्सव किया ॥३२७॥

अथानन्तर बुद्धिमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ-साथ घनघोर आधी रातके समय भगवान्को नमस्कार कर चुपके-चुपके चैत्यालयसे निकलकर इच्छानुसार पैदल चले गये ॥३२८॥ प्रभात होनेपर चैत्यालयको शून्य देख सबलोग अपना-अपना कर्तव्य भूलकर शून्य हृदय हो

समं कुलिशं कर्णेन जाता प्रीतिरनुचराः । सिंहोदरस्य सम्मानगत्यागमनवर्धिता ॥३३०॥

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

स्वैरं स्वैरं जनकतनयां तौ च सञ्चारयन्तौ स्थायं स्थायं विक्रटसरसौ काननानां तलेषु ।

पायं पायं रसमभिमतं स्वादुभाजां फलानां क्रीडं क्रीडं सुरसवचनं चारुचेष्टासमेतम् ॥३३१॥

प्राप्तौ नानारचनभवनोत्तुङ्गशृङ्गाभिरामं रम्योद्यानावततवसुधं चैत्यसङ्घातपूतम् ।

^१नाकच्छायं सततजनितात्युत्सवोदारपौरं श्रीमत्स्वानं रविसमरुचिर्ख्यातिमल्कवराख्यम् ॥३३२॥

इत्यार्षे रविवेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते वज्रकर्णोपाख्यानं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३३३॥

गये ॥३२६॥ सिंहोदरकी वज्रकर्णके साथ जो उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई थी वह पारस्परिक सम्मान तथा आने-जानेसे वृद्धिको प्राप्त हुई ॥३३०॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राम लक्ष्मण सीताको धीरे-धीरे उसकी इच्छानुसार चलाते हुए, विशाल सरोवरोंसे युक्त वनोंके मध्यमें ठहरते हुए, स्वादिष्ट फलोंका इच्छित रस पीते हुए, तथा उत्तम वचन और सुन्दर चेष्टाओंके साथ क्रीड़ा करते हुए, कूबरनामक उस देशमें पहुँचे जो नाना प्रकारके भवनोंके ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे सुन्दर था, जिसकी वसुधा मनोहर उद्यानोंसे व्याप्त थी, जो मन्दिरोंके समूहसे पवित्र था, स्वर्गके समान कान्तिवाला था, जहाँके नगरवासी लोग निरन्तर होनेवाले उत्सवोंसे उत्कृष्ट-थे, श्रीमानोंके शब्दसे युक्त था तथा सूर्यके समान कान्ति और प्रसिद्धिसे युक्त था ॥३३१-३३२॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविवेणाचार्य रचित पद्मचरितमें वज्रकर्णका वर्णन करनेवाला तैत्तिरीय पर्व समाप्त हुआ ॥३३३॥

चतुस्त्रिंशत्तमं पर्व

परम सुन्दरे तत्र फलपुष्पभरानते । गुञ्जदभ्रमरसङ्घाते मत्तकोकिलनादिते ॥१॥
 कानने सीतया साकमग्रजन्मा स्थितः सुखम् । अन्तिकं सलिलार्थी तु लक्ष्मणः सरसी गतः ॥२॥
 भ्रान्तान्तरे सुरुपाढ्यो नेत्रतस्करविभ्रमः । एकोऽपि सर्वलोकस्य हृदयेषु समं वसन् ॥३॥
 महाविनयसम्पन्नः कान्तिनिर्म्मरपर्वतः । धरवारणमारुढश्चास्पादात्तमध्वगः ॥४॥
 तामेव सरसीं रम्यां क्रीडनाहितमानसः । प्राप्तः करयाणमालाढ्यो जनस्तन्नगराधिपः ॥५॥
 महत्तः सरसस्तस्य दृष्ट्वा तं तारवर्तिनम् । नीलोत्पलचयश्यामं लक्ष्मणं चारुलक्षणम् ॥६॥
 ताडितः कामबाणेन स जनोज्ज्वलन्तमाकुलः । मनुष्यमन्नवीदेकमयमानीयतामिति ॥७॥
 गश्वा कृत्वाञ्जलीर्द्वेषः स तमेवमभापत । पृथ्वय राजपुत्रस्ते प्रसादात् सङ्गमिच्छति ॥८॥
 को द्योप इति सखिन्य दधानः कौतुकं परम् । जगाम लीलया चार्च्या समीपं तस्य लक्ष्मणः ॥९॥
 उत्तीर्णं स जनो नागात् पद्मशय्येन पाणिना । करे लक्ष्मणमालम्ब्य प्राविशद् गृहमाम्बरम् ॥१०॥
 एकासने च तेनातिप्रतीतः सहितः स्थितः । अपृच्छञ्च सखे कस्त्वं कुतो वा समुपागतः ॥११॥
 सोऽश्रोब्ध विप्रयोगान्मे ज्येष्ठो दुःखेन तिष्ठति । तावन्नयासि तस्याद्यं कथयिष्यामि ते तत् ॥१२॥
 ततः शाश्वतोदनः सूप उपदर्शनव घृतम् । अपूपा घनबन्धानि व्यञ्जनानि पयो दधि ॥१३॥

अथानन्तर जो फल और फूलोंके भारसे नत हो रहा था, जहाँ भ्रमरोंके समूह गूँज रहे थे और जहाँ मत्त कोकिलाएँ शब्द कर रही थीं ऐसे अत्यन्त सुन्दर वनमे राम तो सुखसे विराजमान थे और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए समीपवर्ती सरोवरमे गये ॥१-२॥ इसी अवसरमें जो अत्यन्त सुन्दर रूपसे सहित था, जिसके विभ्रम नेत्रोंको चुरानेवाले थे, जो एक होनेपर भी सर्व लोगोंके हृदयमें एक साथ निवास करता था, महाविनय सम्पन्न था। कान्तिरूपी निर्म्मरके उत्पन्न होनेके लिए पर्वतस्वरूप था, उत्तम हाथीपर सवार था। मनोहर पैदल सैनिकोंके बीच चल रहा था, जिसका मन क्रीड़ा करनेमें लीन था। जिसका कल्याणमाला नाम था तथा जो उस नगरका स्वामी था, ऐसा एक पुरुष उसी सरोवरमे क्रीड़ा करनेके लिए आया ॥३-५॥ सो उस महासरोवरके तटपर विद्यमान, नील कमलके समूहके समान श्याम और सुन्दर लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मणको देख वह मनुष्य कामबाणसे ताडित होकर अत्यन्त आकुल हो गया। फलस्वरूप उसने अपने एक आदमीसे कहा कि इस पुरुषको ले आओ ॥६-७॥ वह चतुर मनुष्य जाकर तथा हाथ जोड़कर लक्ष्मणसे इस प्रकार बोला कि 'आइये, यह राजकुमार प्रसन्नतासे आपके साथ मिलना चाहता है' ॥८॥ 'क्या द्योप है' इस प्रकार विचारकर परम कौतुकको धारण करते हुए लक्ष्मण सुन्दर लीलासे उसके पास गये ॥९॥ तदनन्तर वह राजकुमार हाथीसे उतरकर तथा कमलके समान कोमल हाथसे लक्ष्मणको पकड़ अपने वस्त्र निर्मित तम्बूमें भीतर चला गया ॥१०॥ वहाँ अत्यन्त विश्रस्त हो एक ही आसनपर लक्ष्मणके साथ सुखसे बैठा। कुछ समय बाद उसने लक्ष्मणसे पूछा कि हे सखे! तुम कौन हो? और कहाँसे आये हो? ॥११॥ लक्ष्मणने कहा कि मेरे वियोगसे मेरे बड़े भाई दुःखी होंगे इसलिए मैं पहले उनके पास भोजन ले जाता हूँ पश्चात् तुम्हारे लिए सब समाचार कहूँगा ॥१२॥

अथानन्तर शालिके चावलोंका भात, दाल, ताजा घृत, पुप, घेवर, नानाप्रकारके व्यञ्जन, दूध, दही, अनेक प्रकारके पानक, शकर और खोंडके लड्डू, पूडियाँ, कचौडियाँ, साधारण पूडियाँ,

१. रामः । २. दृष्टा म० । ३. वस्त्रनिर्मितम् । ४. उपदेशनवं म० । ५. 'वेवर' इति प्रसिद्धानि ।

पानकानि विचित्राणि शर्कराखण्डमोदकाः^१ । शष्कुल्यो घृतपूर्णानि पूरिका गुडपूर्णिकाः ॥१४॥
 वस्त्रालङ्कारमाल्यानि लेपनप्रभृतीनि च । अमत्राणि च चित्राणि हस्तमार्जनकानि च ॥१५॥
 सर्वमेतत् समासैन्नपुरुषैः सुमहाजपैः । भाविनानाथितं तेन जनैरान्तिकमात्मनः ॥१६॥
 अन्तरङ्गः प्रतीहारी जनस्य वचनात् ततः । गत्वा सीतान्वितं पद्मं प्रणम्यैवमभापत ॥१७॥
 अमुष्मिन् वस्त्रभवने भ्राता ते देव तिष्ठति । पृतन्नगरनाथश्च विज्ञापयति सादरः ॥१८॥
 प्रसादं कुरु तच्छ्रद्धया शीतलेयं मनोहरा । तस्मादियन्तमध्वानं स्वेच्छ्रद्धया गन्तुमर्हथ ॥१९॥
 इत्युक्ते सीतया सार्धं ज्योत्स्नयेव निशाकरः । पद्मः समाययौ विभ्रन् मत्तद्विरद्विभ्रमम् ॥२०॥
 दूरादेव समालोक्य लक्ष्मणेन समं ततः । अभ्युत्थानं चकारास्य जनः प्रत्युद्गतिं तथा ॥२१॥
 सीतया सहितस्तस्थौ पद्मोऽज्यन्तवरासने । अर्घदानादिसन्मानं प्राप्तश्च जनकपितृम् ॥२२॥
 ततः कर्मणि निर्दुत्ते स्वैरं स्नानाशनादिके । समुत्सार्थाखिलं लोकमात्मा नीतस्तुरीयताम् ॥२३॥
 दूतः पितुः सकाशान्मे प्राप्त इत्युपदेशनः^२ । प्रयत्नपरमं कथयां प्रविश्यान्मन्वगोचराम् ॥२४॥
 नानाप्रहरणान् वीरान् नियुज्य द्वारि भूयसः । प्रविष्टो योऽत्र^३ मध्योऽती ममेति कृतभाषणः ॥२५॥
 सद्भावज्ञापने लज्जां दूरीकृत्य सुमानसः । व्यपाटयदसौ तेषां समक्षं कञ्चुकं जनः ॥२६॥
 स्वर्गादिव ततोऽपसद् काऽप्यस्ती वरकन्यका । उपयातेव पातालात् किञ्चिज्जानतानना ॥२७॥
 तत्कान्त्यां भवनं लिप्तं लग्नानिलमिवाभवत् । उद्योतमिव चन्द्रेण लज्जास्मितसितांशुभिः ॥२८॥

गुडमिश्रित पूडियों, वस्त्र, अलंकार, मालाएँ, लेपन आदि की सामग्री, नानाप्रकारके बर्तन और हाथ धोनेका सामान, यह सब सामग्री निकटवर्ती शीघ्रगामी पुरुष भेजकर उसने अपने पास मँगवा ली ॥१३-१६॥ तदनन्तर उसकी आज्ञा पाकर अन्तरङ्ग द्वारपाल वहाँ गया जहाँ सीता सहित राम विराजमान थे, सो उन्हें प्रणाम कर वह इस प्रकार बोला ॥१७॥ कि हे देव ! उस तम्बूमें आपके भाई विराजमान हैं वहाँ इस नगरका राजा भी विद्यमान है सो वह आदरके साथ प्रार्थना करता है कि चूँकि इस तम्बूकी छाया शीतल तथा मनको हरण करनेवाली है इसलिये प्रसन्न होइए और इतना मार्ग स्वेच्छासे चलकर आप यहाँ पधारिये ॥१८-१९॥ प्रतिहारीके इतना कहने पर मत्त हाथीकी शोभाको धारण करते हुए रामचन्द्र सीताके साथ चल पड़े उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो चाँदनीके सहित चन्द्रमा ही हों ॥२०॥ रामको दूरसे ही आते देख राजकुमारने लक्ष्मणके साथ खड़े होकर तथा कुछ आगे जाकर उनका स्वागत किया ॥२१॥ राम सीताके साथ अत्यन्त उत्कृष्ट आसन पर विराजमान हुए तथा राजकुमारके द्वारा प्रदत्त अर्घदान आदि सन्मानको प्राप्त हुए ॥२२॥ तदनन्तर इच्छानुसार स्नान, भोजन आदि समस्त कार्य समाप्त होने पर राजकुमारने अन्य सब लोगोको दूर कर दिया । वहाँ राम, लक्ष्मण, सीता तीन और चौथा राजकुमार ये ही चार व्यक्ति रह गये ॥२३॥ 'मेरे पिताके पाससे दूत आया है' ऐसा कहता हुआ वह राजकुमार प्रयत्नपूर्वक सजाये हुए एक दूसरे कमरेमे गया । वहाँ उसने नाना-प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले अनेक योद्धाओंको द्वार पर नियुक्त कर यह आदेश दिया कि यहाँ जो कोई प्रवेश करेगा वह मेरे द्वारा वध्य होगा ॥२४-२५॥

तदनन्तर यथार्थ भावके प्रकट करनेमें जो लज्जा थी उसे दूर कर उस सुचेताने राम लक्ष्मण और सीताके सामने बीचका आवरण फाड़ डाला ॥२६॥ तत्पश्चात् आवरणके दूर होते ही ऐसा लगने लगा मानो स्वर्गसे ही कोई उत्तम कन्या नीचे आकर पड़ी है । अथवा पातालसे ही निकली है । उस कन्याका मुख लज्जाके कारण कुछ-कुछ नम्रीभूत हो रहा था ॥२७॥ उसकी

१. मोदकान् म० । २. पात्राणि । ३. समासन्नपुरुषैः क०, ख० । ४. समहाजपैः म० । ५. इत्यु-पदेशतः क०, ख०, प्रसन्नः परमो-म० । ६. मध्योऽती समेति म०, ख० ।

लेकहंताश्रितं त्रस्ताश्रद्धुषी समचूकचन् । लक्ष्मीरिव स्थिता साक्षात् श्रीरिवोष्मिक्तपङ्कजा ॥२६॥
 गृहं प्लावितुमारब्धामिव लावण्यवारिधौ । उत्कीर्णामिव रत्नानां रजसा काञ्चनस्य वा ॥३०॥
 कल्लोला इव निर्जग्मुः स्तनभ्र्यां कान्तिवारिणः । तरङ्गा इव सङ्गाता मध्ये त्रिवलिराजिते ॥३१॥
 'चण्डातर्कं समुद्भिद्य जयनस्य धनं महः । निर्जगामापरं छातं जीमूतं शशिनो यथा ॥३२॥
 सुचिरं प्रथितं लोके चञ्चलवायशोमलम् । गृहजीमूतवर्तिन्या निर्धौतमिव विद्युत्ता ॥३३॥
 भत्यन्तस्मिन्धया तन्म्यां रामराज्या विराजिता । नितम्बाजातया हैमान् महानीलत्विपा यथा ॥३४॥
 ततोऽसौ सहस्रामुकनररूपा सुलोचना । दौकिता जानकी तेन श्रुतिश्रीरिव लज्जया ॥३५॥
 भन्ते लक्ष्मणस्तत्र परिव्रजतो मनोमुदा । अवस्थां कामपि प्रापञ्चलमन्थरलोचनः ॥३६॥
 ततो विशुद्धया बुद्धया पयस्तामित्यभापत । दधाना विविधं वेपं का ल्वं क्रीडसि कन्यके ॥३७॥
 ततोऽशुक्लेन संवीय गात्रं प्रवरभाषिणी । जगाद देव ! वृत्तान्तं श्रणु सद्भाववेदिनम् ॥३८॥
 बालिखिल्य इति ख्यातः पुरस्यास्य पतिः सुधीः । सदाचारपरो नित्यं मुनिवह्लोकवत्सलः ॥३९॥
 पृथिवीति म्रिया तस्य गर्भाधानमुपागत । म्लेच्छाधिपतिना चासौ गृहीतः संयुगे नृपः ॥४०॥

कान्तिसे लिप्त हुआ कपड़ेका तम्बू ऐसा दीखने लगा मानो उसमें आग ही लग गई हो तथा लज्जासे युक्त मन्द मुसकानकी किरणोंसे लिप्त होने पर ऐसा जान पड़ने लगा मानो उसमें चन्द्रमा का ही प्रकाश फैल गया हो ॥२८॥ उसे देख, चतुर हंसोंने चिरकाल तक भयभीत हो अपने नेत्र संकुचित कर लिये । वह कन्या ऐसी जान पड़ती थी मानो कमलको छोड़कर साक्षात् लक्ष्मी ही वहाँ आ बैठी हो ॥२९॥ उसकी कान्तिसे वह घर ऐसा मालूम होता था मानो सौन्दर्यके सागरमें उसने तैरना ही शुरू किया हो अथवा रत्नों और स्वर्णकी परागसे मानो आच्छादित ही किया गया हो ॥३०॥ उसके स्तनोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो कान्तिरूपी जलके कल्लोल ही निकल रहे हों और त्रिवलिसे शोभित मध्यभागमें ऐसा लगता था मानो तरङ्गे ही उठ रही हों ॥३१॥ जिस प्रकार मेघके पतले आवरणको लोप कर चन्द्रमाका प्रकाश बाहर फूट पड़ता है उसी प्रकार लहंगाको भेदकर उसके नितम्बस्थलका सघन तेज बाहर फूट पड़ा था ॥३२॥ वह घर, एक मेघके समान जान पड़ता था और उसमें बैठी हुई वह कन्या विजलीके समान प्रतिभासित होती थी । ऐसा लगता था कि लोकमें चञ्चलताके कारण विजलीके यशमें जो मल चिरकालसे लगा हुआ था उसने उसे विलकुल ही धो डाला था ॥३३॥ वह स्वर्णनिर्मित की तरह देदीयमान नितम्बस्थलसे ज्येष्ठ महानीलमणिके समान श्याम, अत्यन्त चिकनी एवं पतली रोमराजिसे सुशोभित थी ॥३४॥

तदनन्तर जिसने सहसा पुरुषका वेष छोड़ दिया था तथा जिसके नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे, ऐसी वह कन्या सीताके पास आ बैठी जिससे वह उस प्रकार सुशोभित होने लगी जिस प्रकारकी लज्जासे रतिकी श्री सुशोभित होती है ॥३५॥ लक्ष्मण उसके पास ही बैठे थे, सो कामसे युक्त हो किसी अनिर्वचनीय अवस्थाको प्राप्त हुए । उस समय उनके चञ्चल नेत्र धीरे-धीरे चल रहे थे ॥३६॥ तदनन्तर निर्मल बुद्धिसे युक्त रामने उससे इस प्रकार कहा कि हे कन्ये ! विविध वेपको धारण करनेवाली तू कौन है ? जो इस तरह क्रीड़ा करती है ? ॥३७॥ इसके उत्तरमें मधुर भाषण करनेवाली कन्याने वस्त्रसे शरीर ढँक कर कहा कि हे देव ! सद्भावको सूचित करनेवाला मेरा वृत्तान्त सुनिये ॥३८॥

इस नगरका स्वामी 'बालिखिल्य' इस नामसे प्रसिद्ध है जो अतिशय बुद्धिमान्, मुनियोंके समान निरन्तर सदाचारका पालन करनेवाला और लोगोंके साथ स्नेह करने वाला है ॥३९॥ उसकी

१. 'लहंगा' इति प्रसिद्ध जीवजम् । २. चञ्चलवायसोमलं (१) म० । ३. कन्या म० । ४. रति श्रीरिव म० ।

उक्तं च स्वामिना तस्य सिंहोदरमहीभृता । पुत्रश्चेद् भविता गर्भे कर्ता राज्यमसाविति ॥४१॥
 ततोऽहं पापिनी जाता मन्त्रिणा वसुवृद्धिना^१ । सिंहोदराय पौंस्नेन कथिता राज्यकांक्षया ॥४२॥
 नीता कल्याणमालास्थ्यां जनन्या रहितार्थिकाम्^२ । प्रायो^३ माङ्गलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते ॥४३॥
 मन्त्री माता च मे वेत्ति कन्येयमिति नापरः । ह्यन्तं कालमधुना भवन्तः पुण्यवीक्षिताः ॥४४॥
 दुःखं तिष्ठति मे तातः प्राप्तश्चारकवासिताम् । सिंहोदरोऽपि नो सक्तस्तस्य कर्तुं विमोचनम् ॥४५॥
 यद्ब्रह्मविणं किञ्चिद्देशे समुपजायते । तन्म्लेच्छस्वामिने सर्वं प्रेष्यते-दुर्गामायुषे ॥४६॥
 वियोगवह्निनात्यन्तं तप्यमाना ममाग्निका । जाता कलावशेषेव चन्द्रमूर्तिगर्तप्रभा ॥४७॥
 इत्युक्त्वा दुःखभारेण पीडिताशेषगात्रिका । सद्यो विच्छायातां प्राप्ता मुक्तकण्ठं रुद सा ॥४८॥
 अत्यन्तमधुरैर्वाक्यैः पद्मेनाशवासिता ततः । सीतया च निधायान्ने कुर्वन्त्या मुखधावनम् ॥४९॥
 सुमित्रासुशुना चोक्ता शुच विस्त्रज सुन्दरि । कुरु राज्यमनेनैव वेपेणोचितकारिणी ॥५०॥
 शुभे काश्चित्पतीचस्व दिवसान् धैर्यसङ्गताम् । म्लेच्छेनग्रहणं किं मे पितरं पश्य मोचितम् ॥५१॥
 इत्युक्ते परमं तोष ताते मुक्त इवागताः । समुल्लसितसर्वाङ्गा कन्यका धृतिपूरिता ॥५२॥
 तत्र ते कानने रम्ये विवित्रालापविभ्रमः । देवा इव सुखं तस्थुः स्वच्छन्दा दिवसत्रयम् ॥५३॥
 ततः सुसजने काले रजन्यां रामलक्ष्मणौ । ससीतौ रन्ध्रमाश्रित्य निष्कान्ती काननालयात् ॥५४॥

प्रियाका नाम पृथिवी है । जिस समय पृथिवी गर्भाधानको प्राप्त हुई उसी समय राजा बालखिल्य का म्लेच्छ राजाके साथ युद्ध हुआ, सो युद्धमे म्लेच्छ राजाने उसे पकड़ लिया ॥४०॥ राजा सिंहोदर बालखिल्यके स्वामी हैं सो उन्होंने कहा कि बालखिल्यकी रानी गर्भवती है यदि उसके गर्भमें पुत्र होगा तो वह राज्य करेगा ॥४१॥ तदनन्तर दुर्भाग्यसे पुत्र न होकर मैं पापिनी पुत्री उत्पन्न हुई परन्तु वसुवृद्धि मन्त्रीने राज्यकी आकांक्षासे सिंहोदरके लिए पुत्र उत्पन्न होनेकी खबर दी ॥४२॥ माताने मेरा कल्याणमाला यह अर्थहीन नाम रक्खा, सो ठीक ही है क्योंकि लोग प्रायः मङ्गलमय व्यवहारमें ही प्रवृत्त होते हैं ॥४३॥ अब तक मन्त्री और मेरी माता ही जानती है कि यह कन्या है दूसरा नहीं । आज पुण्योदयसे आप लोगोके दर्शन हुए ॥४४॥ बन्दीगृहके निवास को प्राप्त हुए हमारे पिता बहुत कष्टमे हैं । सिंहोदर भी उन्हें छुड़ानेके लिए समर्थ नहीं है ॥४५॥ इस देशमे जो कुछ धन उत्पन्न होता है वह सब दुर्गकी रक्षा करनेवाले म्लेच्छ राजाके लिए भेज दिया जाता है ॥४६॥ वियोगरूपी अग्निसे अत्यन्त सन्तापको प्राप्त हुई मेरी माता सुखकर कला मात्रसे अवशिष्ट चन्द्रमाके समान कान्तिहीन हो गई है ॥४७॥ इतना कहकर दुःखके समान भारसे जिसका समस्त शरीर पीड़ित हो रहा था ऐसी वह कल्याणमाला शीघ्र ही कान्तिरहित हो गई तथा गला फाड़कर रोने लगी ॥४८॥

तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर शब्दोंमे उसे सान्त्वना दी, सीताने गोदमे बैठकर उसका मुँह धोया और लक्ष्मणने कहा कि हे सुन्दरि ! शोक छोड़ो, इसी वेपसे राज्य करो, तुम उचित कार्य कर रही हो ॥४९-५०॥ हे शुभे ! हे कल्याणरूपिणि ! धैर्यके साथ कुछ दिन तक प्रतीक्षा करो । मेरे लिए म्लेच्छराजका पकड़ना कौनसी बात है ? तुम शीघ्र ही अपने पिताको छुड़ा देखोगी ॥५१॥ इस प्रकार कहने पर उसे इतना सन्तोष हुआ मानो पिता छूट ही गया हो । उस कन्याके समस्त अङ्ग हर्षसे उल्लसित हो उठे और वह कान्तिसे भर गई ॥५२॥ तदनन्तर उस मनोहर वनसे नाना प्रकारका वार्तालाप करते हुए वे सब तीन दिन तक देवाँके समान स्वतन्त्र हो सुखसे रहे ॥५३॥ तत्पश्चात् रात्रिके समय जब सब लोग सो गये तब सीता सहित

१. सुवृद्धिना म० । च सुवृद्धिना क०, ख० । २. रहितार्थिकं म० । ३. प्रातौ म० । ४. प्रेष्यते म० । ५. सुसजने म० ।

विबुद्धा तानपश्यन्ती कन्या व्याकुलमानसा । हाकारमुखरा शोकं परमं समुपागता ॥५५॥
 महापुरुषयुक्तं ते स्तेनयित्वा मनो मम । गन्तुं निद्रासमेताया निवृणोति मनस्विनी ॥५६॥
 कृच्छ्रन्नियम्य शोकं च चरवारणवर्तिनी । प्रविश्य कूवरं तस्थौ पूर्ववद्दीनमानसा ॥५७॥
 ततः कल्याणमालाया रूपेण विनयेन च । हृतचित्ताः क्रमेणैते प्राप्नुमैकनिम्नगाम् ॥५८॥
 उर्चायं विहितक्रीडास्तां मुखेन मनोहरान् । बहून् देशानतिक्रम्य प्राप्ता त्रिन्धयमहादवीम् ॥५९॥
 स्कन्धावारमहासार्थपरिक्षुण्णेन^१ वर्त्मना । प्रयान्तः पथिकैर्गोपैः कीनाशैश्च निवारिताः ॥६०॥
 क्वचित्सालादिभिर्वृक्षैर्लतालिङ्गितमूर्तिभिः । तद्वनं शोभतेऽत्यन्तं स्वामोघं नन्दनं यथा ॥६१॥
 कचिद्वावेन^२ निर्दग्धप्रान्तस्थितमहीरुहम् । न शोभते यथा गोत्रं दुष्पुत्रेण कलङ्कितम् ॥६२॥
 अथात्रोचत् ततः सीता कर्णिकारवनान्तरे । वामतोऽय स्थितो ध्वाङ्क्षो मूर्ध्नि^३ कण्टकिनस्तरोः ॥६३॥
^४वासमानो सुहुः क्रूरं कलहं कथयत्यरम् । अन्योऽपि चौरवृत्तस्थो जयं शसति वायसः ॥६४॥
 तस्मात् तावत् प्रतीक्षेतां सुहुतं कलहात् परम् । जयोऽपि नैव मे चित्ते प्रतिभात्यतिसुन्दरः ॥६५॥
 ततः क्षणं विलम्बयैती प्रयातौ पुनरुद्यतौ । तदेव च पुनर्जातं निमित्तं निकटेऽन्तरे ॥६६॥
 ब्रुवत्या अपि सीताया अबकण्यं वचस्ततः । प्रवृत्तौ गन्तुमग्रे च श्लेच्छानां सैन्यमुद्रतम् ॥६७॥
 तौ निरीक्षयैव निर्भीतावायान्तौ वरकामुर्कौ । क्षणेनैकेन तस्सैन्यं कान्दिशीकं पलायितम् ॥६८॥

राम, लक्ष्मण, छिद्र पाकर वनके उस तम्बूसे बाहर निकल गये ॥५४॥ जागने पर जब कन्याने उन्हें नहीं देखा तब उसका मन बहुत ही व्याकुल हुआ । वह हाहाकार करती हुई परम शोककी प्राप्त हुई ॥५५॥ वह मनस्विनी मन ही मन यह कह रही थी कि हे महापुरुष ! मेरा मन चुराकर तथा मुझे सोती छोड़ क्या तुम्हें जाना उचित था ? तुम बड़े निर्दय हो ॥५६॥ अन्तमें बड़े दुःखसे शोकको रोककर तथा उत्तम हाथीपर सवार हो उसने कूवर नगरमें प्रवेश किया और वहाँ पहलेके समान दीन हृदयसे वह निवास करने लगी ॥५७॥

अथानन्तर कल्याणमालाके रूप और विनयसे जिनके चित्त हरे हो गये थे ऐसे राम, सीता तथा लक्ष्मण क्रम-क्रमसे नर्मदा नदीको प्राप्त हुए ॥५८॥ क्रीडा करते हुए उस नदीको पारकर तथा अनेक सुन्दर देशोंको उल्लंघन कर वे विन्ध्याचलकी महाअटवीमें पहुँचे ॥५९॥ वे बड़ी भारी सेनाके संचारसे खुदे हुए मार्गसे जा रहे थे, इसलिए मार्गमें चलनेवाले ग्वालों तथा हलवाहकोने उन्हें रोका कि इस मार्गसे आगे न जाओ पर वे रुके नहीं ॥६०॥ बहुत भारी सुगन्धिसे भरा हुआ यह वन कहीं तो लताओंसे आलिङ्गित सागौन आदिके वृक्षोंसे नन्दनवनके समान अत्यन्त सुशोभित है और कहीं ढावानलके कारण समीप स्थित वृक्षोंके जल जानेसे कुपुत्रके द्वारा कलंकित गोत्रके समान सुशोभित नहीं है, इस प्रकार कहते हुए वे आगे बढ़ रहे थे ॥६१-६२॥ तदनन्तर कुछ आगे बढ़नेपर सीताने कहा कि देखो, कनेर वनके बीचमें वाई ओर कटीले वृक्षकी चोटीपर बैठे कौआ चार-चार क्रूर शब्द कर रहा है सो 'शीघ्र ही कलह होनेवाली है' यह कह रहा है और इधर चौर वृक्षपर बैठे दूसरा कौआ 'हम लोगोंकी विजय होगी' यह सूचित कर रहा है ॥६३-६४॥ इसलिए आपलोग मुहूर्तमात्र प्रतीक्षा कर ले क्योंकि कलहान्तर जय प्राप्त करना भी मेरे मनमें बहुत अच्छा नहीं जँचता ॥६५॥ तदनन्तर क्षण भर विलम्ब कर वे पुनः आगे गये तो कुछ ही अन्तर पर वही निमित्त फिर हुआ ॥६६॥ यद्यपि सीता कह रही थी फिर भी उसका कहा अनसुना कर राम-लक्ष्मण आगे बढ़ते गये । कुछ दूरी पर उन्हें श्लेच्छोंकी सेना मिली, सो उत्तम धनुषके धारक तथा निर्भय राम-लक्ष्मणको आते देख वह सेना भयभीत हो

१. निद्रां समेतायां म० । २. नर्मदा । ३. परिक्षुण्णेन (?) म० । ४. हलिभिः । ५. निर्दग्धं प्रान्त म० । ६. कण्टकितस्तरो म० । ७. शब्दं कुर्वन् । ८. परः म० ।

भवगत्य ततस्तस्मात् सन्नह्यान्धे समागताः । प्रावृद्धमेघसमानेन तेऽपि हासेन निजिताः ॥६६॥
 ततस्तेऽत्यन्तविरत्रतां म्लेच्छाः पतितकार्मुकाः । कुबन्तः परम राव गत्वा पत्ये न्यवेद्यन् ॥७०॥
 ततोऽसौ परमं क्रोधं वहश्चापं च दारुणम् । निर्जगाम महासैन्यः शस्त्रसन्तमसावृतः ॥७१॥
 काकोनदा इति ख्याता म्लेच्छरास्ते धरणीतले । दारुणाः सर्वमांसादो दुर्जयाः पार्थिवैरपि ॥७२॥
 तैरावृतां दिशं प्रेक्ष्य पुरो धनकुलासितैः । धनुरारोपयत् कोप किञ्चिन्नक्ष्मीधरो भजन ॥७३॥
 तथा चास्फालितं सर्ववनाकम्पितं यथा । उवरश्च वनसत्त्वानां जज्ञे प्रकट्वेपथुः ॥७४॥
 सन्दधानं शरं वीच्य लक्ष्मणं व्रन्तचेतसः । वभ्रमुश्रुक्रतां प्राप्ता म्लेच्छा निश्चक्षुषो यथा ॥७५॥
 ततः साध्वससम्पूर्णो म्लेच्छानामधिपो भृशम् । अवतीर्य रथादेतौ प्रणम्य रचिताञ्जलिः ॥७६॥
 अब्रवीदस्ति कौशाम्बी नगरी प्रथिता प्रभुः । आहिताग्निद्विजस्तत्र नाम्ना विश्वानलः शुचिः ॥७७॥
 प्रतिसन्ध्येति तंजाया जातोऽहं तनयस्तयोः । रौद्रभूतिरिति ख्यातः शस्त्रयुतकलान्वितः ॥७८॥
 वास्यात् प्रभृति दुष्कर्मान्त्यानुष्ठानकोविदः । प्राप्तश्रौच्यं कदाचिच्च शूले भेतुमभीप्सितः ॥७९॥
 धिननैकेन तत्राहं श्रद्धधानेन साधुना । मोचितो वेपमानाङ्गः त्यक्त्वा देशमिहागतः ॥८०॥
 प्राप्तः कर्मानुभावेन काकोनदजनेशताम् । अष्टस्तिष्ठामि सद्वृत्तात् पशुभिः समतां गतः ॥८१॥
 इयन्तं यस्य मे कालं सैन्याढ्या अपि पार्थिवाः । चक्षुषो गोचरोभावमासन् शक्ता न सेवितुम् ॥८२॥
 सोऽहं दर्शनमात्रेण कृतो देवेन विकल्पः । धन्योऽस्मि वीक्षितौ येन भवन्तौ पुष्टपोत्तमौ ॥८३॥

ज्ञानभरमे भाग गई ॥६७-६८॥ तदनन्तर भागती सेनासे समाचार जानकर दूसरे म्लेच्छ तैयार हो सामने आये परन्तु वर्षाकालीन मेघके समान श्याम लक्ष्मणने उन्हें हँसते-हँसते पराजित कर दिया ॥६९॥ तदनन्तर जो अत्यन्त भयभीत थे, जिन्होंने धनुष छोड़ दिये थे और जो जोरसे चिल्ला रहे थे ऐसे उन म्लेच्छोंने जाकर अपने स्वामीसे निवेदन किया ॥८०॥ तब परम क्रोध और भयंकर धनुषको धारण करता हुआ म्लेच्छोका स्वामी निकला । बड़ी भारी सेना उसके साथ थी और वह शस्त्ररूपी अन्धकारसे आच्छादित था ॥७१॥ वे म्लेच्छ पृथिवीपर 'काकोनद' इस नामसे प्रसिद्ध थे, अत्यन्त भयंकर थे, सब जन्तुओंका मांस खाने वाले थे और राजाओंके द्वारा भी दुर्जेय थे ॥७२॥ जब लक्ष्मणने देखा कि आगेकी दिशा मेघसमूहके समान श्यामवर्ण म्लेच्छोसे आच्छादित हो रही है तब उन्होंने कुछ कुपित हो धनुषकी डोरी चढ़ा ली ॥७३॥ और उस प्रकारसे उसका आस्फालन किया कि समस्त वन काँप उठा तथा जंगली जानवरोंको काँपकाँपी उत्पन्न करनेवाला उवर उत्पन्न हो गया ॥७४॥ लक्ष्मणको डोरीपर बाण चढ़ाते देख जिनका चित्त भयभीत हो गया था ऐसे वे म्लेच्छ नेत्रहीनके समान चक्राकार घूमने लगे ॥७५॥ तदनन्तर अत्यन्त भयसे भरा म्लेच्छोंका स्वामी रथसे उतर कर हाथ जोड़ता हुआ इनके पास आया और प्रणाम कर बोला कि एक कौशाम्बी नामकी प्रसिद्ध नगरी है निरन्तर अग्निमे होम करने वाला विश्वानल नामका पवित्र ब्राह्मण उसका स्वामी है । विश्वानलकी स्त्रीका नाम प्रतिसंध्या है । मैं उन्हीं दोनोंका पुत्र हूँ, रौद्रभूति नामसे प्रसिद्ध हूँ, शस्त्र तथा जुएके कलाका पारगामी हूँ ॥७६-७८॥ मैं बाल्य अवस्थासे ही निरन्तर खोटे काय करनेमें निपुण था । किसी समय चोरीके अपराधमें पकड़ा गया और मुझे शूलीपर चढ़ानेका निश्चय किया गया ॥७९॥ शूलीका नाम सुनते ही मेरा शरीर काँप उठा तब विश्वास रखनेवाले एक भले धनिकने जमानत देकर मुझे छुड़ावा दिया । तदनन्तर देश छोड़कर मैं यहाँ आ गया ॥८०॥ 'कर्मोंके प्रभावसे इन काकोनद म्लेच्छोंकी स्वामिताकी प्राप्ति हो गया हूँ तथा सदाचारसे अश्रु हो पशुओंके समान यहाँ रहता हूँ ॥८१॥ इतने समय तक बड़ी-बड़ी सेनाओंसे युक्त राजा भी जिसके दृष्टिगोचर होनेके लिए समर्थ नहीं हो सके उस मुझको आपने दृष्टिमात्रसे ही दीन कर दिया । मैं धन्य हूँ जिससे

शासनं यच्छ्रुतां नाथो किं करोमि यथोचितम् । शिरसा पादुके किं वा बहे पावनपण्डिते ॥८३॥
 विन्ध्योऽयं निधिमिः पूर्णो वरयोपिच्छतैस्तथा । मुजिष्यमिच्छतां देवौ मामतो निवृत्तं परम् ॥८५॥
 इत्युक्त्वा प्रणतिं कुर्वन् पुनरातिं परां गतः । पपात विह्वलो भूमौ छिन्नमूलस्तर्क्यथा ॥८६॥
 कष्टावस्थां ततः प्राप्तं तमेवं राधवोऽवदत् । कृपालतापरिवृत्तकवीरकल्पमहातरुः ॥८७॥
 उतिष्ठोत्तिष्ठ मा भैषीर्वाल्लिखित्वं विवन्धनम् । कृत्वाऽऽनय द्रुतं प्राप्य सन्मानं परमं सुधीः ॥८८॥
 तस्यैवाभिमतो भूत्वा सचिवः सज्जनान्वितः । विहाय सङ्गतिं श्लेच्छैर्विपचस्य हितोऽभवत् ॥८९॥
 एतत् चेत् कुरुपे सर्वमन्यथात्वविवर्जितम् । ततस्ते विद्यते शान्तिरथैव त्रियसेऽन्यथा ॥९०॥
 एवं प्रभो करोमीति कृत्वा प्रणतिमाहृतः । महारथसुतं गत्वा मुमोच विनयान्वितः ॥९१॥
 अभ्यङ्गोद्गोर्ध्वं सुस्नातं भोजयित्वा स्वल्ङ्कृतम् । आरोप्य स्यन्दने नेतुमारंभे तं तदन्तिकम् ॥९२॥
 स दध्मौ नीयमानः सन् विस्मयं परमं गतः । इतोऽपि गहनावस्थां प्राप्नो मेऽथ भविष्यति ॥९३॥
 कार्यं श्लेच्छो महाशत्रुः कुकर्मत्यन्तनिर्दयः । क चायमतिस्नमानो न मन्येऽद्यासुधारणम् ॥९४॥
 इति दौ नमना गच्छन् सहसा पद्मलक्ष्मणी । दृष्ट्वा परां धृतिं प्राप्तोऽवतीर्य सनमस्कृतिः ॥९५॥
 अश्रवीत् तौ युवां नाथावागतावतिसुन्दरी । मम पुण्यानुभावेन मुक्तो येनास्मि बन्धनात् ॥९६॥
 गच्छ विप्रं निर्जं धाम लभस्वाभीष्टसङ्गमम् । तत्र नौ ज्ञास्यसीत्युक्ते वाल्लिखित्यः सुधीर्गतः ॥९७॥

पुरुषोमे उत्तम आप महानुभावोंके दर्शन किये ॥८२-८३॥ हे नाथ ! आज्ञा दीजिए मैं क्या योग्य सेवा करूँ ? क्या पवित्र करनेसे निपुण आपकी पादुकाएँ शिर पर धारण करूँ ? ॥८४॥ यह विन्ध्याचल निधियों तथा उत्तमोत्तम सैकड़ों स्त्रियोंसे परिपूर्ण है इसलिए हे देव ! मुझसे किसी अच्छे भारी राजस्वकी इच्छा प्रकट करो ॥८५॥ इतना कहकर प्रणाम करता हुआ वह पुनः परम पीड़ाको प्राप्त हुआ और विह्वल हो कटे वृत्तके समान भूमि पर गिर पड़ा ॥८६॥

तदनन्तर जो वीरजनोंके लिए दयारूपी लतासे आलिङ्गित कल्पवृत्तके समान थे ऐसे राम दुःखमय अवस्थाको प्राप्त हुए श्लेच्छ राजासे इस प्रकार बोले कि हे सुवृद्धि ! उठ-उठ, डर मत, वाल्लिखिल्यको बन्धन रहित कर तथा उत्तम सन्मानको प्राप्त करा कर शीघ्र ही यहाँ ला ॥८७-८८॥ उसीका इष्ट मन्त्री जो सज्जनोंकी संगति कर और श्लेच्छोंकी संगति छोड़, देशका हितकारी हो ॥८९॥ यदि तू यह सब काम ठीक-ठीक करता है तो उससे तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी अन्यथा आज ही मारा जायगा ॥९०॥ 'हे प्रभो ! ऐसा ही करता हूँ' इस प्रकार कहकर उसने बड़े आदरसे रामको प्रणाम किया और विनयके साथ जाकर महारथके पुत्र वाल्लिखिल्यको छोड़ दिया ॥९१॥

तदनन्तर जिसे तेल उबटन लगाकर अच्छी तरह स्नान कराया गया था और भोजन कराकर जिसे अलंकारोंसे अलंकृत किया गया था । ऐसे वाल्लिखिल्यको रथपर बैठाकर वह रामके पास ले जानेके लिए उद्यत हुआ ॥९२॥ जो इस तरह आदरके साथ लाया जा रहा था ऐसा वाल्लिखिल्य परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और मन ही मन सोचता जाता था कि प्रायः अब मेरी अवस्था इससे भी गहन होगी ॥९३॥ कहाँ तो यह कुकर्म करनेवाला अत्यन्त निर्दय महावैरी श्लेच्छ ? और कहाँ यह भारी सम्मान ? जान पड़ता है कि आज प्राण नहीं बचेगे ॥९४॥ इस प्रकार वाल्लिखिल्य दीन चित्त होकर जा रहा था कि सहसा राम-लक्ष्मणको देखकर वह परम सन्तोषको प्राप्त हुआ । उसने रथसे उतरकर नमस्कार करते हुए कहा कि हे नाथ ! मेरे पुण्योदयसे अतिशय सुन्दर रूपको धारण करनेवाले आप दोनों महानुभाव पधारें हैं इसीलिए मैं बन्धनसे मुक्त हुआ हूँ ॥ ९५-९६॥ राम लक्ष्मणने उससे कहा कि शीघ्र ही अपने घर जाओ और इष्टजनोंके साथ

कृत्वा सुनिभृतं श्रुत्वा तस्य विश्वानलाङ्गजम् । यातौ सीतान्वितौ स्वेष्टं कृतिनौ रामलक्ष्मणौ ॥६८॥
 वालिखिल्यस्तु सम्प्राप्तः समं रौद्रविभूतिना । स्वपुरस्यान्तिकां क्षोणी स्मरन् बान्धवचेष्टितम् ॥६९॥
 प्रत्यासन्नं ततः कृत्वा विभूत्या परयान्वितम् । पितरं निरगात्तुष्टा पुरात् कल्याणमालिनी ॥१००॥
 प्रतीतां सनमस्कारां तां समाधाय मस्तके । निजयाने पुनः कृत्वा प्रविष्टः कूबरं नृपः ॥१०१॥
 पृथिवीं महिषी तोपसञ्जातपुलका क्षणात् । पुरातनी तनुं भेजे कान्तिसागरवर्तिनीम् ॥१०२॥
 सिंहोदरप्रभृतयो नृपा प्रभृतयोऽखिलाः । गुणैः कल्याणमालायाः परम् विस्मयं गताः ॥१०३॥

उपजातिवृत्तम्

यद्रौद्रभूतिः सुचिरं विचित्रं समार्जयच्चौर्यपरायणः स्वम् ।
 अनेकदेशप्रभवं विशालं तद्वालखिल्यस्य गुहं विवेश ॥१०४॥
 जातेऽस्य वाग्वर्तिनि रौद्रभूती वशीकृतं म्लेच्छसुदुर्गभूमौ ।
 सिंहोदरोऽपि प्रतिपन्नशङ्कः स्नेहं ससन्मानमलञ्चकार ॥१०५॥
 सोऽयं समासाद्य परं विभूतिं प्रसादतो राघवसत्तमस्य ।
 महारथी प्राणसमासमेतो रविर्यथैवं शरदा रराज ॥१०६॥

इत्याषे रविषेयाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते वालिखिल्योपाख्यानं नाम चतुस्त्रिंशत्तम पर्व ॥३४॥

समागम प्राप्त करो । वहाँ पहुँचने पर तुम हम लोगोको जान सकोगे^१ । इस प्रकार कहनेपर बुद्धि-
 मान् वालखिल्य अपने घर चला गया ॥६७॥

तदनन्तर विश्वानलके पुत्र रौद्रभूतिको वालखिल्यका निश्चल मित्र बनाकर अतिशय
 कुशल राम-लक्ष्मण सीताके साथ अपने इष्ट स्थानको चले गये ॥६८॥ बान्धवजनौकी चेष्टाका
 स्मरण करता हुआ वालखिल्य, रौद्रभूतिके साथ जब अपने नगरकी समीपवर्ती भूमिमें पहुँचा
 तब निकटवर्ती पिताको परम विभूतिसे युक्तकर पुत्री कल्याणमालिनी सन्तुष्ट हो उसका सत्कार
 करनेके लिए नगरसे बाहर निकली ॥६९-१००॥ तदनन्तर नमस्कार करती हुई पुत्रीको पहिचान
 कर राजा वालखिल्यने उसका मस्तक सँघा फिर अपने रथपर बैठाकर कूबर नगरमें प्रवेश किया
 ॥१०१॥ वालखिल्यकी रानी पृथिवीके शरीरमें हर्षातिरेकसे रोमाञ्च निकल आये और वह
 कान्तिरूपी सागरमें वर्तमान अपने पुराने शरीरको क्षण भरमें पुनः प्राप्त हो गई ॥१०२॥
 सिंहोदर आदि समस्त राजा कल्याणमालाके गुणांसे परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥१०३॥ रौद्रभूतिने
 चिरकाल तक चोरीमें तत्पर रहकर नाना देशोंमें उत्पन्न जो विविध प्रकारका विशाल धन
 इकट्ठा किया था वह सब वालखिल्यके घरमें प्रविष्ट हुआ ॥१०४॥ जब म्लेच्छोकी सुदुर्गम
 भूमिको वश करनेवाला रौद्रभूति वालखिल्यका आज्ञाकारी हो गया तब शङ्काको प्राप्त हुआ।
 सिंहोदर भी सम्मान सहित उसके साथ बहुत स्नेह करने लगा ॥१०५॥ इस प्रकार महारथी वाल-
 खिल्य राम-लक्ष्मणके प्रसादसे परम विभूतिको पाकर अपनी प्राण प्रियासे इस तरह सुशोभित
 होने लगा जिस तरह कि शरद्ऋतुसे सूर्य सुशोभित होता है ॥१०६॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध रविषेयाचार्य विरचित पद्मचरितमें वालिखिल्यका वर्णन
 करनेवाला चौतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३४॥

पञ्चत्रिंशत्तमं पर्व

अथ ते त्रिदशभिर्बुधाः काननं नन्दनोपमम् । विहरन्तः सुखं प्राप्ता देशमत्यन्तमुज्ज्वलम् ॥१॥
 मध्ये यस्य नदी भाति प्रसिद्धजलवाहिनी । तापीति विश्रुता नानापक्षिबर्गानुनादिता ॥२॥
 अरण्ये तत्र निस्तोत्रे सिताऽत्यन्तश्रमान्विता । जगाद् राघवं नाथ कण्ठशोषो ममोत्तमः ॥३॥
 यथा भवशतैः विब्रह्मो भव्यो दर्शनमहंतः । वाञ्छत्येवमहं तीव्रतृणयाऽऽकुलिता जलम् ॥४॥
 इत्युक्त्वा चार्यमाणापि निपण्णा सुतरोरध- । रामेण जगदे देवि विषादं मागमः शुभे ॥५॥
 आसन्नोऽयं महाप्रामो दृश्यते विकटालयः । उत्तिष्ठाशु प्रयामोऽत्र शिशिरं वारिं पास्यति ॥६॥
 एवमुक्ते तथा स्वैरं स्वैरं प्रस्थितया समम् । प्राप्तौ तावरुणग्रामं महाधनकुटुम्बिकम् ॥७॥
 आहिताग्निर्द्विजस्तत्र कपिलो नाम विश्रुतः । गेहे तस्यावर्तानीं तौ यथाक्रममुपागते ॥८॥
 अत्राग्निहोत्रशालायाम्पनीय श्रमं क्षणम् । तद्ब्राह्मण्या जलं दत्तं पपौ सीता सुशीतलम् ॥९॥
 यावद् तिष्ठन्ति ते तत्र द्विजस्तावदरण्यतः । विस्वाश्वत्थपलाशैधौमारवाही समागतः ॥१०॥
 दावानलसमं यस्य मानसं नित्यकोपिनः । कालकूटविपं वाक्यमुल्लसदृशं मुखम् ॥११॥
 कमण्डलुशिखाकूर्चवालसूत्रादिभिः परम् । विभ्रान्तः कुटिलं वेपमुल्लङ्घ्यति भजन् किल ॥१२॥
 दृष्ट्वा तान् कुपितोऽत्यन्तश्रुकुटीकुटिलाननः । उवाच ब्राह्मणीं वाचा तस्मिन् सुतीक्ष्णया ॥१३॥

अथानन्तर देवोंके समान शोभाको धारण करनेवाले वे तीनों, नन्दन वनके समान सुन्दर वनमें सुखसे विहार करते हुए एक ऐसे अत्यन्त उज्वल देशमें पहुँचे, जिसके मध्यमें प्रसिद्ध जलको बहानेवाली, पक्षी समूहसे शब्दायमान तापी नामकी प्रसिद्ध नदी सुशोभित है ॥१-२॥ वहाँके निर्जल वनमें जब सीता अत्यन्त थक गई तब रामसे बोली कि नाथ ! मेरा कण्ठ विलकुल सूख गया है ॥३॥ जिस प्रकार सैकड़ों जन्म धारण करनेसे खेदको प्राप्त हुआ भव्य, अरहन्त भगवान्के दर्शन चाहता है उसी प्रकार तीव्र पिपासासे आकुलित हुई मैं जल चाहती हूँ ॥४॥ इतना कहकर वह रोकनेपर भी एक उत्तम वृत्तके नीचे बैठ गई । रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभे ! विषादको प्राप्त मत होओ ॥५॥ यह पास ही बड़े-बड़े महलोंसे युक्त बड़ा भारी ग्राम दिखाई दे रहा है, उठो, शीघ्र ही चलो, वहीं शीतल पानी पीना ॥६॥ इस प्रकार कहने पर धीरे-धीरे चलती हुई सीताके साथ चलकर वे दोनों, जहाँ अनेक धनिक कुटुम्ब रहते थे, ऐसे अरुण ग्राममें पहुँचे ॥७॥ वहाँ प्रतिदिन होम करनेवाला एक कपिल नामका ब्राह्मण रहता था सो वे दोनों यथा क्रमसे प्राप्त हुए, उसीके घर उदरे ॥८॥ यहाँ यज्ञ-शालामें क्षण भर विश्राम कर सीताने उसकी ब्राह्मणीके द्वारा दिया शीतल जल पिया ॥९॥ वे सब वहाँ ठहर ही रहे थे कि इतनेमें बैल, पीपल और पलाशकी लकड़ियोंका भार लिये ब्राह्मण जङ्गलसे वापिस आ पहुँचा ॥१०॥ निरन्तर क्रोध करनेवाले उस ब्राह्मणका मन दावानलके समान था, वचन कालकूटके समान थे, और मुख उल्लूके सदृश था ॥११॥ वह हाथमें कमण्डलु लिये था, उसने शिर पर बड़ी चोटी रख छोड़ी थी, मुख पर लम्बी चौड़ी दाढ़ी बड़ा ली थी और कन्धेपर यज्ञोपवीतका सूत्र धारण किया था, इन सब चीजोंसे वह अत्यन्त कुटिल वेपको धारण कर रहा था तथा उल्लू वृत्तिसे अपनी जीविका चलाता था ॥१२॥ उन्हें देखते ही उसका क्रोध उमड़ पड़ा, उसका मुख भौंहोंसे अत्यन्त कुटिल हो गया और वह ब्राह्मणीसे इस प्रकार बोला, मानो तीक्ष्ण वचनोंसे

अयि पापे किमित्येपामिह दत्तं प्रवेशनम् । ग्रयच्छाम्यद्य ते दुष्टे बन्धं गोरपि दुस्सहम् ॥१४॥
 परयेमे निस्त्रपा घृष्टाः केपि पांशुलपाण्डुकाः । अग्निहोत्रकुटीं पापा कुर्वन्त्युपहृतां मम ॥१५॥
 ततः सीताऽब्रवीत् पद्ममार्यपुत्र कुकर्मणः । अत्येदमास्पदं दग्धं परमाक्रोशकारिणः ॥१६॥
 वरं पुष्पफलच्छन्नैः पादपैरुपशोभिते । सरोमिश्रातिविमलैः पद्मादिपिहितैर्वने ॥१७॥
 सारङ्गैरुपितं सार्धं क्रीडन्निर्जयेच्छ्रया । श्रूयते नेदशं तत्र नितान्तं परहं वचः ॥१८॥
 अस्मिन् राघव नाकाभे देशे धनसमुज्वले । समस्तो निष्ठुरो लोको ग्रामवासी विशेषतः ॥१९॥
 विप्रस्य रूच्या वावा क्षोभितोऽसौ ततोऽखिलः । ग्रामः समागतो दृष्ट्वा तेषां रूपं सुरोपमम् ॥२०॥
 अब्रवीद् ब्राह्मणैकान्ते^३ पथिकाः क्षणमेककम् । तिष्ठन्तु किमिमे दोषं कुर्वन्ति विनयान्विताः ॥२१॥
 ततो निर्भस्त्य सकलं तं लोकं कोपलोहितः । वभापे तौ द्विजः प्राप सारमेयो गजाविव ॥२२॥
 निष्कामत परं गेहान्मदीयादपवित्रको । एवमादिवचोघातैर्लक्ष्मीमान् कुपितस्ततः ॥२३॥
 ऊर्ध्वपादमघोघ्रीवं कृत्वा तं ब्राह्मणाधमम् । अब्रह्मण्यं प्रकृजन्तं शोणितारुणलोचनम् ॥२४॥
 अमथित्वा क्षितौ यावदास्फलयितुमुद्यतः । रामेण वारितस्तावदिति कारुण्यधारिणा ॥२५॥
 सौमित्रे किमिदं कृत्वा प्रारब्धं भवतेदृशम् । मारितेन किमेतेन जीवत्येते ते ननु ॥२६॥
 सुखैर्न त्वरितं श्रुत्वा यावत्प्राणैर्न मुच्यते । अयशः परमेतस्मिहभ्यते केवलं मृते ॥२७॥
 अमणा ब्राह्मणा गावः पशुस्त्रीवालवृद्धकाः । सदोषा अपि अर्राणां नैते बन्धाः किलोदिताः ॥२८॥

उसे झील ही रहा हो ॥१२॥ उसने कहा कि हे पापिन ! तूने इन्हें यहाँ प्रवेश क्यों दिया है ? अरी दुष्टे ! मैं आज तुम्हें पशुसे भी अधिक दुःसह बन्धनमें डालता हूँ ॥१४॥ देख, जिनका शरीर धूलिसे धूसर हो रहा है, ऐसे ये निर्लज्ज, पापी, ढीठ व्यक्ति मेरी यज्ञ शालाको दूषित कर रहे हैं ॥१५॥

तदनन्तर सीताने रामसे कहा कि हे आर्यपुत्र ! इस कुकर्मा तथा अतिशय अपशब्द कहनेवाले इस ब्राह्मणका यह अधम स्थान छोड़ो ॥१६॥ फूलों और फलोंसे आच्छादित वृक्षों तथा कमल आदिसे युक्त अत्यन्त निर्मल सरोवरोसे सुशोभित वनमें स्वेच्छासे साथ-साथ क्रीड़ा करनेवाले हरिणोंके साथ निवास करना अच्छा, जहाँ इस प्रकारके अत्यन्त कठोर शब्द सुनाई नहीं पड़ते ॥१७-१८॥ हे राघव ! स्वर्गके समान आभावाले इस अतिशय सुन्दर देशमें समस्त लोग निष्ठुर हैं और खासकर ग्रामवासी तो अत्यन्त निष्ठुर हैं ही ॥१९॥ ब्राह्मणके रूक्ष वचनोंसे क्षोभको प्राप्त हुआ समस्त गाँव उनका देवतुल्य रूप देखकर वहाँ आ गया ॥२०॥ गाँवके लोगोंने कहा कि हे ब्राह्मण ! यदि ये पथिक तेरे सकानमें एक ओर क्षण भरके लिए ठहर जाते हैं तो क्या दोगे उपपन्न कर दोगे ? ये सब बड़े विनयी जान पड़ते हैं ॥२१॥ उसने क्रोधसे लाल होकर सब लोगोंको डाँटते हुए, राम-लक्ष्मणसे कहा कि तुम लोग अपवित्र हो, अतः मेरे घरसे निकलो । ब्राह्मणका राम-लक्ष्मणके प्रति रोष दिखाना ऐसा ही था जैसा कि कोई एक कुत्ता दो हाथियोंके प्रति रोष दिखाता है—उन्हें देखकर भौंकता है । तदनन्तर उसके इस प्रकारके वचन सन्बन्धी आधातसे लक्ष्मणको क्रोध आ गया, वे रुधिरके समान लाल-लाल नेत्रोंके धारक तथा अमाङ्गलिक अपशब्द बकनेवाले उस नीच ब्राह्मणको ऊर्ध्वपाद और अधोघ्रीव कर घुमाकर ज्यो ही पृथिवी पर पड़ाइनेके लिए उद्यत हुए त्यों ही करुणके धारी रामने उन्हें यह कहते हुए रोका ॥२२-२५॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम इस बेचारे दीन प्राणी पर यह क्या करने जा रहे हो ? यह तो जीवित रहते हुए भी मृतकके समान हैं, इसके मारनेसे क्या लाभ है ? ॥२६॥ जब तक यह निष्पाण नहीं होता है तब तक इस छुद्रको शीघ्र ही छोड़ दो । इसके मारने पर केवल अपयश ही प्राप्त होगा ॥२७॥ मुनि, ब्राह्मण, गाय, पशु, स्त्री, बालक और वृद्ध ये सदोष होने पर

इत्युक्त्वा मोचयित्वा तं कृत्वा लक्ष्मणमग्रतः । सीतयाऽनुगतो रामः कुटीराभिरगात्ततः ॥२६॥
 धिग् धिग् नीचसमासङ्गं दुर्वचःश्रुतिकारणम् । मनोविकारकरणं महापुरुषवर्जितम् ॥३०॥
 वर तरुतले शीते दुर्गमे विपिने स्थितम् । परित्यज्याखिलं ग्रन्थं विद्वत् भुवने वरम् ॥३१॥
 वरमाहारमुत्सृज्य भ्रमणं सेवितुं सुखम् । अवज्ञातेन वान्यस्य गृहे क्षणमपि स्थितम् ॥३२॥
 कृलेषु सरितामद्रेः कुक्षिष्वत्यन्तहारिषु । स्थास्यामो न पुनर्भूयः प्रवेक्ष्यामः खलालयम् ॥३३॥
 निन्दन्नेवं खलासङ्गमभिमानं पर वहन् । निर्गत्य ग्रामतः पद्मो वनस्य पदवीं श्रितः ॥३४॥
 वनकालस्ततः प्राप्नो नीलयन्त्रखिलं नभः । पद्मगञ्जितसन्तानप्रतिनादितगह्वरः ॥३५॥
 ग्रहनक्षत्रपटलमुपगुह्य समन्ततः । सरावविद्युदुद्योतं जहासेव नभःस्फुटम् ॥३६॥
 ग्रीष्मदामरक घोरं समुसार्थं घनाघनः । जगज्जं विद्युदङ्कुल्या प्रीपितानिव तर्जयन् ॥३७॥
 नभोऽन्धकारितं कुर्वन् धाराभिर्नीलतोयदः । अभिपेक्तुं समारमे सीतां गज इव श्रियम् ॥३८॥
 तिम्रन्तस्ते ततोऽभ्यर्णं पृथुन्यग्रोधपादपम् । उपसस्रुः पुरो गेहसमानस्कन्धमुन्नतम् ॥३९॥
 इभकर्णो गणस्तेयामभिभूतोऽथ तेजसा । गत्वा स्वामिनमित्यूचे नत्वा विन्ध्यर्वनाश्रितम् ॥४०॥
 आगत्य नाकतः केऽपि मदांये नाथ सन्न नि । स्थिता यैस्तेजसैर्वाहं तस्माद्बुद्वासितो द्रुतम् ॥४१॥
 श्रुत्वा तद्वचनं स्मित्वा विनायकपतिः समम् । वभूभिः प्रस्थितो गन्तुं न्यग्रोधं वरलीला ॥४२॥

भी शूर वीरोके द्वारा वध्य नहीं हैं, ऐसा कहा गया है ॥२८॥ इतना कहकर रामने उसे छोड़ाया और लक्ष्मणको आगेकर वे सीता सहित उस ब्राह्मणकी कुटियासे बाहर निकल आये ॥२६॥ 'जो दुर्वचन सुननेका कारण है, मनमें विकार उत्पन्न करनेवाला है और महापुरुष जिसे दूरसे ही छोड़ देते हैं ऐसी नीच मनुष्योंकी संगतिको धिक्कार है ॥३०॥ शीत ऋतुके समय दुर्गम वनमें वृत्तके नीचे बैठे रहना अच्छा है, समस्त परिग्रह छोड़कर संसारमें भ्रमण करते रहना अच्छा है और आहार छोड़कर सुख पूर्वक मर जाना अच्छा है परन्तु तिरस्कारके साथ दूसरेके घरमें एक क्षण भी रहना अच्छा नहीं है ॥३१-३२॥ 'हम नदियोंके तटों और पर्वतोंकी अतिशय मनोहर गुफाओंमें रहेंगे परन्तु अब फिर दुर्जनोके घरमें प्रवेश नहीं करेंगे' इस प्रकार दुर्जन संसर्गकी निन्दा करते तथा परम अभिमानको धारण करते हुए रामने गौंवासे निकलकर वनका मार्ग लिया ॥३३-३४॥

तदनन्तर समस्त आकाशको नीला करता और तीव्र गर्जनाके समूहसे गुफाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ वर्षा काल आया ॥३५॥ उस समय ग्रह और नक्षत्रोंके पटलको सब ओरसे झिपाकर कड़कती हुई बिजलीके प्रकाशके वहाने आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥३६॥ ग्रीष्म कालके भयंकर विस्तारको दूर हटाकर मेघ गरज रहा था और बिजली रूपी अंगुलीके द्वारा ऐसा जान पड़ता था मानो प्रवासी मनुष्योंको डोंट ही दिखा रहा हो ॥३७॥ धाराओंके द्वारा आकाशको अन्धकार युक्त करता हुआ श्यामल मेघ, सीताका अभिपेक करनेके लिए उस तरह तैयार हुआ जिस तरह हाथी लक्ष्मीका अभिपेक करनेके लिए तैयार होता है ॥३८॥ तदनन्तर वे भीगते हुए एक निकटवर्ती ऐसे विशाल वटवृत्तके नीचे पहुँचे कि जिसका स्कन्ध घरके समान सुरक्षित था तथा जो अत्यन्त ऊँचा था ॥३९॥

अथानन्तर उनके तेजसे अभिभूत हुआ इभकर्ण नामका यक्ष, विन्ध्याचलके वनमें रहनेवाले अपने स्वामीके पास जाकर तथा नमस्कार कर इस प्रकार बोला कि हे नाथ ! स्वर्गसे आकर कोई ऐसे तीन महानुभाव मेरे घरमें ठहरे हैं जिन्होंने अपने तेजसे अभिभूत कर मुझे शीघ्र ही घरके बाहर कर दिया है ॥४०-४१॥ इभकर्णके वचन सुनकर मन्दाहास्य करता हुआ

१. सीते म०, व० । २. भावे क्तः, विहरणमित्यर्थः । ३. सेविते म० । ४. निन्दन्नेव म० । ५. प्रीपिता-मिव म० । ६. इभकर्णनामपेयो यक्षः । ७. भूतोऽपि व०, म० । ८. विन्ध्यमुपाश्रितम् ।

अधीश्वरः स यक्षाणा महाविभवसङ्गतः । रम्यकाननसंसक्तः क्रीडन्पुनसंज्ञकः ॥४३॥
 वृरादेव च तौ दृष्ट्वा महारुगौ गणाधिपः । प्रयुज्यावधिमञ्जालीद् बलनारायणाविति ॥४४॥
 ततस्तदनुभावेन वात्सल्येन च भूयसा । क्षणेन नगरी तेषां तेन रम्या विनिर्मिता ॥४५॥
 ततस्ते सुखसम्पन्नं सुसाः किल सुचारुणा । प्रभाते गीतशब्देन प्रबोधं समुपागताः ॥४६॥
 तल्पेऽवस्थितमात्मानमपरशय् रत्नराजिते । प्रासादं च महारम्यं बहुभूमिकमुज्ज्वलम् ॥४७॥
 देहोपकारणव्यग्रं परिवर्गं च सादरम् । नगरं च महाशब्दशालगोपुरशोभितम् ॥४८॥
 तेषां महानुभावानां दृष्टेऽस्मिन् सहसा पुरे । न मनो विस्मयं प्राप तद्धि क्षुद्रविचेष्टितम् ॥४९॥
 अशेषवस्तुसम्पन्नास्तत्र ते चारुचेष्टिताः । अवस्थानं सुखं चक्रुरमरा इव भोगिनः ॥५०॥
 यथाधिपेन रामस्य पुरी यस्मात् प्रकल्पिता । ततो महींतले ख्यातिं गता रामपुरीति सा ॥५१॥
 प्रतीहारा भटाः शूरा अमात्याः सस्रयो गजाः । पीराश्च विविधास्तस्यामयोध्यामिवाभवन् ॥५२॥
 कुशाग्रनगरोऽर्जुणं गणिन पृष्टवानिति । तयोर्नाथं तथाभूतो स द्विजः किमु चेष्टितः ॥५३॥
 उवाच च गणस्वामी शृणु श्रेणिक स द्विजः । प्रयातः प्रातरुथाय दात्रहृत्तो वनस्थलीम् ॥५४॥
 अमंशं समिर्दाधर्थमकस्माद् ध्वलोचनः । नातिदूरे पुरी पृथ्वीमपरशय् विस्मिताननः ॥५५॥
 असिताभिः सिताभिश्च पताकाभिर्विराजिताम् । शरन्मेघसमानैश्च भवनैरतिभासुरैः ॥५६॥

यक्षराज, अपनी स्त्रियोंके साथ लीलापूर्वक उस वटवृक्षके पास जानेके लिए चला ॥४२॥ यहाँका वह अधिपति महावैभवसे युक्त था, रम्य वनोंमें क्रीड़ा करता आ रहा था और 'पूतन' नामसे सहित था ॥४३॥ यक्षराजने अत्यन्त सुन्दर रूपके धारक राम-लक्ष्मणको दूरसे ही देख अवधि ज्ञान जोड़कर जान लिया कि ये बलभद्र और नारायण हैं ॥४४॥ तदनन्तर उनके प्रभात्र एवं बहुत भारी वात्सल्यसे उसने उनके लिए क्षण भरमें एक सुन्दर नगरीकी रचना कर दी ॥४५॥ तत्पश्चात् वे वहाँ सुखसे सोये और प्रातःकाल अतिशय मनोहर संगीतके शब्दसे प्रबोधको प्राप्त हुए ॥४६॥ उन्होंने अपने आपको रत्नोसे सुशोभित शय्यापर अवस्थित देखा, अनेक खण्डका अत्यन्त रमणीय उज्ज्वल महल देखा, आदरके साथ शरीरकी सेवा करनेमें व्यग्र सेवकोंका समूह देखा और महाशब्द प्राकार तथा गोपुरोसे शोभित नगर देखा ॥४७-४८॥ सहसा इस नगरको देखने पर उन महानुभावोंका मन आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ सो ठीक ही है क्योंकि यह सब चमत्कार क्षुद्र चेष्टा थी ॥४९॥ सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाले राम सीता और लक्ष्मण समस्त वस्तुओंसे युक्त हो देवोंके समान भोग भोगते हुए उस नगरीमें सुखसे रहने लगे ॥५०॥ चूँकि वह नगरी यक्षराजने रामके लिए बनाई थी इसलिए महींतल पर रामपुरी इसी नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई ॥५१॥ द्वारपाल, भट, शूरवीर, मन्त्री, घोड़े, हाथी तथा नाना प्रकारके नगरवासी जिस प्रकार अयोध्यामें थे उसी प्रकार इस रामपुरीमें भी थे ॥५२॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे नाथ ! राम लक्ष्मणके साथ उस प्रकारका व्यवहार करनेवाले उस कपिल ब्राह्मणका क्या हाल हुआ ? सो कहिये ॥५३॥ तब गौतम स्वामी बोले कि हे श्रेणिक ! सुन, वह ब्राह्मण प्रभात काल उठकर तथा हँसिया हाथमें लेकर वनकी ओर चला ॥५४॥ वह इन्धन आदिकी प्राप्तिके लिए इधर-उधर घूम रहा था कि अकस्मात् ही दृष्टि ऊपर उठाने पर उसने एक विशाल नगरी देखी । देखकर उसका मुख आश्चर्यसे चकित हो गया ॥५५॥ वह नगरी सफेद तथा अन्य रङ्गोंकी अनेक पताकाओं और शरद् ऋतुके मेघोंके समान अतिशय देदीप्यमान भवनोसे सुशोभित थी ॥५६॥ नगरीके मध्यमें सफेद कमल रूपी क्षत्रसे सहित एक बड़ा भवन था जो ऐसा जान पड़ता था मानो कैलासका बचा ही हो ॥५७॥ यह सब देख,

पुण्डरीकात्पत्रेण मध्ये समुपलक्षितम् । महाप्रासादमेकं च कैलासस्यैव शावकम् ॥५७॥
 अविन्तयच्च द्यौरैषा अटव्यासीन्मृगाश्रिता । यस्यां समित्कुशाद्यर्थं दुःखं पर्यटयं सद्ग्रा ॥५८॥
 अकस्मात् सेयमुत्तुङ्गशृङ्गमालोपशोभितैः । रत्नपर्वतसंकाशैर्विराजति पुरी गृहेः ॥५९॥
 सरांस्यभूनि रम्याणि पद्माद्रिपिहितानि च । दृश्यन्ते यानि नो पूर्वं मया दृष्टानि जातुचित् ॥६०॥
 उद्यानानि सुरम्याणि सेवितानि जनैर्भृशम् । दृश्यन्ते देवधामानि लक्षितानि महाध्वजैः ॥६१॥
 वारणैः ससिभिर्गोभिर्महिषीभिश्च सङ्कटा । अस्योपकण्ठधरणी घण्टादिस्वनपूरिता ॥६२॥
 किमेषा नगरी नाकादवतार्या भवेदिह । पातालाद्बुद्धताहोषित् कस्यापि शुभकर्मणः ॥६३॥
 स्वप्नमेवं तु पश्यामि मायेयं वत कस्यचित् । किमु गन्धर्वनगरं पितृव्याकुलितोऽस्मि किम् ॥६४॥
 उपालिङ्गमिदं किं स्यात् प्रायेणस्यान्तिकस्य मे । इति सञ्चिन्तयन् प्राप्तो विवादं परमं द्विजः ॥६५॥
 दृष्ट्वा च प्रमदमेकां नानालङ्कारधारिणीम् । अपृच्छदुपचल्येयं भद्रे कस्य पुरीत्यसौ ॥६६॥
 सा जगौ जातु पद्मस्य पुरीयं किं न ते श्रुता । यस्य लक्ष्मीधरो भ्राता सीता च प्राणवह्मसा ॥६७॥
 एतत् पश्यसि यद् विप्र पुर्यां मध्ये महागृहम् । शरद्भ्रसमच्छायमत्रासौ पुरुषोत्तमः ॥६८॥
 लोको दुर्लभदर्शनं सर्वानेनातिदुर्विधः । यच्छ्रुता वाल्मिह्यं द्रव्यं जनितः पार्थिवोपमः ॥६९॥
 विप्रोऽबोचदुपायेन केन पश्यामि सुन्दरि । पद्मं सद्भावतः पृष्ट्वा निवेदयितुमर्हसि ॥७०॥
 इत्युक्त्वा समिधाभारं निचिष्य भुवि साञ्जलिः । पपात पादयोस्तस्याः सा कस्य न मनोहरा ॥७१॥

वह ब्राह्मण विचार करने लगा कि क्या यह स्वर्ग है ? अथवा मृगोंसे सेवित वही अटवी है ? जिसमें मैं ईन्धन तथा कुशा आदिके लिए निरन्तर दुःख पूर्वक भटकता रहता था ॥५८॥ यह नगरी ऊँचे-ऊँचे शिखरोंकी मालासे शोभायमान, तथा रत्नमयी पर्वतोंके समान दीखनेवाले भवनोसे अकस्मात् ही सुरोभित हो रही है ॥५९॥ यहाँ कमल आदिसे आच्छादित जो ये मनोहर सरोवर दिखाई दे रहे हैं वे मैंने पहले कभी नहीं देखे ॥६०॥ यहाँ मनुष्योंके द्वारा सेवित सुरम्य उद्यान और बड़ी-बड़ी ध्वजाओसे युक्त मन्दिर दिखाई पड़ते हैं ॥६१॥ इस नगरकी निकटवर्ती भूमि, हाथियो, घोड़ों, गायों और भैंसोंसे संकीर्ण तथा घण्टा आदिके शब्दोंसे पूर्ण है ॥६२॥ क्या यह नगरी यहाँ स्वर्गसे अवतीर्ण हुई है ? अथवा किसी पुण्यात्माके प्रभावसे पातालमे निकली है ॥६३॥ क्या मैं ऐसा स्वप्न देख रहा हूँ ? अथवा यह किसीकी माया है ? या गन्धर्वका नगर है ? अथवा मैं स्वयं पित्तसे व्याकुलित हो गया हूँ ? ॥६४॥ अथवा क्या मेरा निकट कालमे मरण होनेवाला है सो उसका चिह्न प्रकट हुआ है ? इस प्रकार विचार करता हुआ वह ब्राह्मण अत्यधिक विवादको प्राप्त हुआ ॥६५॥ उसी समय उसे नाना अलंकार धारण करनेवाली एक स्त्री दिखी सो उसके पास जाकर उसने पूछा कि हे भद्रे ! यह किसकी नगरी है ? ॥६६॥ उसने कहा कि यह रामकी नगरी है, क्या तुमने कभी सुना नहीं ? उन रामकी कि लक्ष्मण जिनके भाई हैं और सीता जिनकी प्राणप्रिया है ॥६७॥ हे ब्राह्मण ! नगरीके बीचमे जो यह शरद् ऋतुके मेघके समान कान्तिवाला बड़ा भवन देख रहे हो इसीमें वे पुरुषोत्तम रहते हैं ॥६८॥ जिनका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसे इन पुरुषोत्तमने मन वाल्मिह्य द्रव्य देकर सभी दूरिद्र मनुष्योंको राजाके समान बना दिया है ॥६९॥ ब्राह्मणने कहा कि हे सुन्दरि ! मैं किस उपायसे रामके दर्शन कर सकता हूँ ? मैं तुमसे सद्भावसे पूछ रहा हूँ अतः वतलानेके योग्य हो ॥७०॥ इतना कहकर उस ब्राह्मणने ईन्धनका भार पृथिवी पर रख दिया और स्वयं हाथ जोड़कर उस स्त्रीके चरणोंमे गिर पड़ा, सो ठीक ही है क्योंकि वह स्त्री किसका मन नहीं हरती थी ? ॥७१॥

ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा-सुमाया नाम यच्छिणी । जगाद् विप्रं परमं त्वयेदं साहसं कृतम् ॥७२॥
 अस्याः पुरः सप्तासत्रां कथं त्वं भुवमागतः । आरक्षकैरल घोरैर्नृनं नश्यति वीक्षितः ॥७३॥
 अस्या द्वारत्रयं पुर्वाः दुष्प्रवेशं सुरैरपि । अशून्यं सर्वदा वारैः रक्षकैः सुनियामकैः ॥७४॥
 सिंहवारणशार्दूलतुल्यवक्त्रैर्महोऽज्ज्वलैः । एभिर्विभीषिता सृष्ट्यं मानुषा थान्यसंशयम् ॥७५॥
 पूर्वद्वारमदो यत्तु तस्य पश्यसि यान् बहिः । प्रासादानन्तिकानेतान् ब्रलाकाच्छादनच्छूर्वीन् ॥७६॥
 मणितोरणरम्येषु विविधध्वजराजिषु । अर्हतामिन्द्रवन्द्यानाममीषु प्रतिघातनाः ॥७७॥
 सामायिक पुरस्कृत्य तासां यस्तवनं नरः । नमोऽर्हत्सिद्धनिस्वानपूर्वं पठति भावतः ॥७८॥
 गुरुपदेशयुक्तोऽसौ सम्यग्दर्शनरक्षितः । विशतीन्द्रककुब्जद्वारं हन्यते त्वनमस्कृतिः ॥७९॥
 अणुव्रतधरो यो ना गुणशालविभूषितः । तं रामः परया प्रीत्या वाञ्छितेन समर्चति ॥८०॥
 ततस्तस्या वचः श्रुत्वा द्विजोऽसावमृतोपमम् । जगाम परमं हर्षं लब्धोपायं धनागमे ॥८१॥
 नमस्कारं च कृत्वाऽस्या भूयो भूयस्तुतिं तथा । रोमाञ्चार्चितसर्वाङ्गः परमाद्भुतभाषितः ॥८२॥
 मुनेश्चारिन्नशूरस्य गत्वासन्न कृताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसाऽष्टच्छृङ्खलतधरक्रियाम् ॥८३॥
 ततस्तेन समुद्दिष्ट धर्मं सधनिवासिनाम् । स जप्राहानुयोगांश्च शुश्राव चतुरः सुवीरः ॥८४॥
 धनलोभाभिभूतस्य धर्मं सुश्रूषतोऽस्य सः । ग्रहणे परमार्थस्य परिणाममुपागतः ॥८५॥
 अवगम्य ततो धर्मं द्विजोऽत्रोचत् सुमानसः । नाथ तोऽत्रोपदेशेन चक्षुर्धर्मालितं मम ॥८६॥

तदनन्तर दयासे आकृष्ट हुई उस सुमाया नामकी यक्षीने ब्राह्मणसे कहा कि तूने यह बड़ा साहस किया है ॥७२॥ तू इस नगरीकी समीपवर्ती भूमिमें कैसे आ गया ? यदि भयंकर पहरेदार तुझे देख लेते तो तू अवश्य ही नष्ट हो जाता ॥७३॥ इस नगरीके तीन द्वारोंमें तो देवोंको भी प्रवेश करना कठिन है क्योंकि वे सदा सिंह, हाथी और शार्दूलके समान मुखवाले तेजस्वी, वीर तथा कठोर नियन्त्रण रखनेवाले रक्षकोंसे अशून्य रहते हैं । इन रक्षकोंके द्वारा डरवाये हुए मनुष्य निःसन्देह मरणको प्राप्त हो जाते हैं ॥७४-७५॥ इनके सिवाय जो वह पूर्व द्वार तथा उसके बाहर समीप ही बने हुए बगलके पङ्क्तिके समान कान्तिवाले सफेद-सफेद भवन तू देख रहा है वे मणिमय तोरणोंसे रमणीय तथा नाना ध्वजाओंकी पङ्क्तिके सुशोभित जिन-मन्दिर हैं । उनमें इन्द्रोंके द्वारा बन्दनीय अरहन्त भगवाणकी प्रतिमाएँ हैं जो मनुष्य सामायिक कर तथा 'अर्हत् सिद्धेभ्यो नमः' अर्थात् 'अरहन्त तथा सिद्धोंको नमस्कार हो' इस प्रकार कहता हुआ भाव पूर्वक उन प्रतिमाओंका स्तवन पढ़ता है तथा निर्ग्रन्थ गुरुका उपदेश पाकर सम्यग्दर्शन धारण करता है वही उस पूर्वद्वारमें प्रवेश करता है । इसके विपरीत जो मनुष्य प्रतिमाओंको नमस्कार नहीं करता है वह मारा जाता है ॥७६-७८॥ जो मनुष्य अणुव्रतका धारी तथा गुण और शीलसे अलङ्कृत होता है, राम उसे बड़ी प्रसन्नतासे इच्छित वस्तु देकर संतुष्ट करते हैं ॥८०॥

तदनन्तर उसके अमृत तुल्य वचन सुनकर तथा धन प्राप्तिका उपाय प्राप्तकर वह ब्राह्मण परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८१॥ उसका समस्त शरीर रोमाञ्चोंसे सुशोभित हो गया तथा उसका हृदय अत्यन्त अद्भुत भावोंसे युक्त हो गया । वह उस स्त्रीको नमस्कार कर तथा वाग्-द्वार उसकी स्तुति कर चारित्र्य पालन करनेमें शूर-वीर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि बॉध शिरसे प्रणाम कर उसने उनसे अणुव्रत धारण करनेवालोंकी क्रिया पूछी ॥८२-८३॥ तदनन्तर उस चतुर बुद्धिमान् ब्राह्मणने मुनिराजके द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म अङ्गीकृत किया तथा अनुयोगोंका स्वरूप सुना ॥८४॥ पहले तो वह ब्राह्मण धनके लोभसे अभिभूत होकर धर्म श्रवण करना चाहता था पर अब वास्तविक धर्म ग्रहण करनेके भावको प्राप्त हो गया ॥८५॥ मुनिराजसे धर्मका स्वरूप

तृपार्तेनेव सत्तोयं छायेवाश्रयकांक्षिणा । ध्रुवार्तेनेव मिष्टासं रोगिणेव सुमेपजम् ॥८७॥
 दुष्पथप्रतिपन्नेन वर्सेवैप्सितदेशगम् । यानपात्रमिवाम्बोधौ व्याकुलेन निमज्जताम् ॥८८॥
 मयेदं शासन जैनं सर्वदुःखविनाशनम् । लब्धं भवत्प्रसादेन दुर्लभं पुरुषाधमै ॥८९॥
 त्रैलोक्येऽपि न मे कश्चिन्नवता विद्यते समः । येनाथमीदृशो मार्गो तोपितो जिनदेशनः ॥९०॥
 इत्युक्त्वा शिरसा पादौ वन्दित्वाऽञ्जलिर्यागिना^१ । गुहं प्रदक्षिणीकृत्य द्विजः स भवनं गतः ॥९१॥
 जगाद् वाऽतिदृष्टस्तां प्रसन्नविकचेक्षणः । दयिते परमाश्रयं गुरोरथ मया श्रुतम् ॥९२॥
 श्रुतं तव न तत्पित्रा जनकेनाथ वा पितुः । किं वाऽत्र बहुभिः प्रोक्तैर्गोत्रेणापि न ते श्रुतम् ॥९३॥
 दृष्टं ब्राह्मणि यातेन यदरण्यं मयाद्भुतम् । तद्गुरोरुपदेशेन नेदानी विस्मयाय मे ॥९४॥
 किं किं भो ब्राह्मण ब्रूहि दृष्टं किंवा स्वया श्रुतम् । उक्तोऽवोचन्न श्वनोमि हर्षात्कथयितुं प्रिये ॥९५॥
 आदरेणानुयुक्तश्च कौतुकिन्या पुनः पुनः । विप्रोऽवोचत् शृण्वार्यं यन्मया श्रुतमद्भुतम् ॥९६॥
 समिदर्यं प्रयातेन वनं तस्य सर्मापत^२ । दृष्टा पुरी मया रम्या यत्रासीद् गहनं वनम् ॥९७॥
 तदास्मन्ने मया चैका दृष्टा नारी विभूषिता । नूर्गं सा देवता^३ कापि मनोहरणभाषिता ॥९८॥
 दृष्टा च सा मयात्यातं तया रामपुरीति च । ददाति श्रावकेभ्योऽत्र किल रामो महद्वनम् ॥९९॥

जानकर जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध हो गया था, ऐसा वह ब्राह्मण बोला कि हे नाथ ! आज आपके उपदेशसे तो मेरे नेत्र खुल गये हैं ॥८८॥ जिस प्रकार प्याससे पीडित मनुष्यको उत्तम जल मिल जाय, आश्रयकी इच्छा करनेवाले पुरुषको छाया मिल जाय, भूखसे पीडित मनुष्यको मिष्टान्न मिल जाय, रोगीके लिए उत्तम औषधि मिल जाय, कुमार्गमें भटकते हुएको इच्छित स्थान पर भेजनेवाला मार्ग मिल जाय, और बड़ी व्याकुलतासे ससुद्रमें डूबनेवालोंको जहाज मिल जाय, उसी प्रकार आपके प्रसादसे सर्व दुःखोंको नष्ट करनेवाला यह जैन शासन मुझे प्राप्त हुआ है । यह जैन शासन नीच मनुष्योंके लिए सर्वथा दुर्लभ है ॥८९-९०॥ चूंकि आपने यह ऐसा जिन-श्रद्धार्थित मार्ग मुझे दिखलाया है इसलिए तीन लोकमें भी आपके समान मेरा हितकारी नहीं है ॥९०॥ इस प्रकार कहकर तथा अञ्जलिबद्ध शिरसे मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर प्रदक्षिणा देता हुआ वह ब्राह्मण अपने घर चला गया ॥९१॥

तदनन्तर जिसके नेत्र कमलके समान विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यन्त हर्षसे युक्त था ऐसा वह ब्राह्मण घर जाकर अपनी स्त्रीसे बोला कि हे प्रिये ! आज मैंने गुरुसे परम आश्रय सुना है ॥९२॥ ऐसा परम आश्रय कि जिसे तेरे पिताने, पिताके पिताने अथवा बहुत कहनेसे क्या तेरे गोत्र भरने नहीं सुना होगा ॥९३॥ हे ब्राह्मणि ! वनमें जाकर जो अद्भुत वात मैंने देखी थी अब वह गुरुके उपदेशसे आश्रय करनेवाली नहीं रही ॥९४॥ ब्राह्मणीने कहा कि हे ब्राह्मण ! तुमने क्या-क्या देखा है और क्या-क्या सुना है ? सो कहो । ब्राह्मणीके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मण बोला कि हे प्रिये ! मैं हर्षके कारण कहनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ९५॥ तदनन्तर कौतुकसे भरी ब्राह्मणीने जब आदरके साथ बार-बार पूछा तब वह विप्र बोला कि हे आर्य ! जो आश्रय मैंने सुना है वह सुन ॥९६॥

मैं लकड़ियों लानेके लिए जङ्गल गया था सो उसके समीप ही जहाँ सघन वन था वहाँ एक मनोहर नगरी दिखी ॥९७॥ मैंने उस नगरीके पास एक-आभूषणोंसे विभूषित स्त्री देखी । जान पड़ता है कि मनोहर भाषण करनेवाली वह कोई देवी होगी ॥९८॥ मैंने उससे पूछा तो उसने कहा कि यह रामपुरी नामकी नगरी है, यहाँ राजा रामचन्द्र श्रावकोंके लिए बहुत भारी

ततो गत्वा मया साधोजिनेन्द्रवचनं श्रुतम् । आत्मा मे तर्पितस्तेन कुदष्टिपरितापितः ॥१००॥
 मुनयो यं समाश्रित्य तप्यन्ते सुधियस्तपः । त्यक्त्वा परिग्रहं सर्वं मुक्त्यालिङ्गनलालसाः ॥१०१॥
 सोऽहं हर्षो मया लब्धस्त्रैलोक्यैकमहानिधिः । अमी यतो बहिर्भूताः क्लिश्यन्त्ये त्वन्यवादिनः ॥१०२॥
 यथाभूतो मुनेर्धर्मः श्रुतो धर्मेण तादृशः । ब्राह्मण्यै कथितः सर्वो मलवर्जितचेतसा ॥१०३॥
 ब्राह्मणी विनिशम्यैतं सुशर्मा वाक्यमब्रवीत् । मयापि त्वत्प्रसादेन लब्धो धर्मो जिनोदितः ॥१०४॥
 विधेः पश्य मया योग मोहाद् विषफलार्थिना । वीच्छेनापि त्वया लब्धमहं ज्ञामरसायनम् ॥१०५॥
 मयासीमन्दर्धीभाजा मणिहस्तगतो यथा । निजाङ्गणगतः साधुरपमानमुपाहृतः ॥१०६॥
 उपवासपरिश्रान्तश्रमणं तं निरम्बरम् । निराकृत्यान्नवेलायां मार्गोऽन्यस्थैव वीक्षितः ॥१०७॥
 अहन्तं समतिक्रम्य पाकशासनवन्दितम् । उमोत्तिष्कन्त्यन्तरादीनां शिरसा प्रणतिः कृता ॥१०८॥
 अहिंसानिमलं सारमहं हर्षैरसायनम् । अज्ञानात् समतिक्रम्य विषमं भक्षितं विषम् ॥१०९॥
 मानुषद्वीपमासाद्य त्यक्त्वा साधुपरीक्षितम् । धर्मरत्नं कृतः कष्ट विभोतकपरिग्रहः ॥११०॥
 सर्वमक्षप्रवर्तेषु दिवारात्रौ च भोजिषु । अब्रतेषु विशीलेषु दत्तं फलविवर्जितम् ॥१११॥
 यं किलातिथिवेलायामागतं विभयोचितम् । यो नार्चयति दुर्बुद्धिस्तस्य धर्मो न विद्यते ॥११२॥
 परित्यक्तोत्सवतिथिः सर्वस्वैकान्तनिस्पृहः । निकेतरहितः सोऽयमतिथिः श्रमणः स्मृतः ॥११३॥
 येषां न भोजनं हस्ते नाप्यासन्नपरिग्रहः । ते तारयन्ति निर्मन्थाः पाणिपात्रपुटाशिनः ॥११४॥

घन देते हैं ॥६६॥ तदनन्तर मैंने मुनिराजके पास जाकर जिनेन्द्र भगवान्के वचन सुने उससे मेरी आत्मा जो कि मिथ्या दर्शनसे संतप्त थी अत्यन्त सन्तुष्ट हो गई ॥१००॥ मुक्तिके आलिङ्गनकी लालसा रखनेवाले बुद्धिमान मुनि जिस धर्मका आश्रय ले समस्त परिग्रहका त्यागकर तप करते हैं वह अरहन्तका धर्म मैंने प्राप्त कर लिया । वह धर्म तीनों लोकोंकी महानिधि है, इससे बहिर्भूत जो अन्यवादी है वे व्यर्थ ही क्लेश उठाते हैं ॥१०१-१०२॥ तदनन्तर उस धर्मात्माने मुनिराजसे जैसा वास्तविक धर्म सुना था वह सब शुद्ध हृदयसे उसने ब्राह्मणीके लिए कह दिया ॥१०३॥ उसे सुन सुशर्मा ब्राह्मणी ब्राह्मणसे बोली कि मैंने भी तुम्हारे प्रसादसे जिनेन्द्र प्रतिपादित धर्म प्राप्त कर लिया है ॥१०४॥ मेरा यह भाग्यका योग तो देखो कि जो मोह वश विषफलकी इच्छा कर रहे थे तथा जिसे तद्विषयक रञ्जमात्र भी इच्छा नहीं थी ऐसे तुमने अहन्तका नामरूपी रसायन प्राप्त कर लिया ॥१०५॥ जिस प्रकार किसी मूर्खके हाथमें मणि आ जाय और वह तिरस्कार कर उसे दूर कर दे उसी प्रकार मुझ मूर्खके गृहाङ्गणमें साधु आये और मैंने उनका अपमान कर उन्हें दूर कर दिया ॥१०६॥ उस दिन आहारके समय उपवाससे खिन्न दिगम्बर मुनि घर आये सो उन्हें हटा कर मैंने दूसरे साधुका मार्ग देखा ॥१०७॥ जिन्हें इन्द्र भी नमस्कार करता है ऐसे अहन्तको छोड़कर मैंने ज्यौतिषी तथा व्यन्तरादिक देवोंको शिर मुका-मुकाकर नमस्कार किया ॥१०८॥ अहन्त भगवान्का धर्मरूपी रसायन अहिंसासे निर्मल तथा सारभूत है सो उसे छोड़कर मैंने अज्ञान वश विषम विषका भक्षण किया है ॥१०९॥ बड़े खेदकी बात है कि मैंने मनुष्य द्वीपको पाकर साधुओं द्वारा परीक्षित धर्मरूपी रत्न तो छोड़ दिया और उसके बदले बड़े-बड़े अङ्गीकार किया ॥११०॥ जो इन्द्रियोंके विषयोमें प्रवृत्त है, रात दिन इच्छा-नुसार खाते हैं, व्रत रहित हैं तथा शीलसे शून्य हैं, ऐसे साधुओंके लिए मैंने जो कुछ दिया वह सब निष्फल गया ॥१११॥ जो दुर्बुद्धि मनुष्य आहारके समय आये हुए अतिथिका अपनी सामर्थ्यके अनुसार सन्मान नहीं करता है—उसे आहार आदि नहीं देता है उसके धर्म नहीं है ॥११२॥ जिसने उत्सवकी तिथिका परित्याग कर दिया है, जो सर्व प्रकारके परिग्रहसे बिल्कुल निःस्पृह है तथा घरसे रहित है ऐसा साधु ही अतिथि कहलाता है ॥११३॥ जिनके हाथमें न

स्वशरीरेऽपि निस्संगा ये लुभ्यन्ति न जातुचित् । ते निष्परिग्रहा ज्ञेया सुकिलक्षणभूयिताः ॥११५॥
 एवमुद्गरतसद्दृष्टिः कृदष्टिमलवज्जिता । सुशर्मा श्रुत्यभे परधौ भरणीव दुधे परम् ॥११६॥
 पादमूले ततो नीत्वा गुरोस्तस्यैव सादरम् । अणुवतानि सामोदा ब्राह्मणी तेन लम्बिता ॥११७॥
 विज्ञाय कपिलं रक्त परमं जिनशासने । कुलान्याशोविप्रोग्राणि विप्राणां भेजिरे शमम् ॥११८॥
 मुनिसुव्रतनाथस्य सम्प्राप्य सुदृढं मतम् । बभूवुः श्रावकास्तीव्रा ऊर्ध्वरचैव सुवृद्धयः ॥११९॥
 कर्मभारगुरुभूता भागोत्तानित्तमस्तकाः । स्तोत्रेण नरकं घोरं न याता स्मः प्रमादिनः ॥१२०॥
 अज्ञातमिदमप्राप्तं जन्मान्तरशतेष्वपि । जिनेन्द्रशासनं ब्रह्म कृच्छ्रात् प्राप्तं सुनिर्मलम् ॥१२१॥
 ध्यानश्रुत्युत्थिणाविद्धे मनःकृत्विक्षुसमाहिताः । स्वकर्मसमिधो भावसर्पिणा जुहुमोऽधुना ॥१२२॥
 इति केचित् समाधाय मनः संवेगनिर्भराः । विरक्ताः सर्वसंगेभ्यो बभूवुः भ्रमणोत्तमाः ॥१२३॥
 सगारधर्मरक्तस्तु कपिलः परमक्रियः । कदाचिद् ब्राह्मणोमूचे सदभियावर्तिनाम् ॥१२४॥
 कान्ते रामपुरी किं नो ब्रजामोऽथ तमूर्जितम् । विशुद्धचेष्टितं द्रष्टुं रामं राजीवलोचनम् ॥१२५॥
 आशापरायणं नित्यसुपायगतमानसम् । दारिद्र्यवारिधौ मग्नमाद्यूनं कुञ्चिपूरणे ॥१२६॥
 जनसुचारयत्येव किल भव्यानुकम्पकः । इति कीर्तिभ्रमत्यस्य निर्मलाह्लादकारिणी ॥१२७॥
 उत्तिष्ठैवं गृह्णाणैवं प्रिये पुष्पकरण्डकम् । करोम्यहमपि स्कन्धे सुकुमारमिमं शिशुम् ॥१२८॥

भोजन है न जो अपने पास परिग्रह रखते हैं तथा जो हस्तरूपी पात्रमें भोजन करते हैं ऐसे निर्ग्रन्थ साधु ही संसार समुद्रसे पार करते हैं ॥११४॥ जो अपने शरीरमें भी निःस्पृह हैं तथा जो कभी बाह्य विषयोमें नहीं लुभाते और मुक्तिके लक्षण अर्थात् चिह्न स्वरूप दिग्मन्त्र मुद्रासे विभूषित रहते हैं उन्हें निर्ग्रन्थ जानना चाहिये ॥११५॥ इस प्रकार जिसे सन्म्यदर्शन उत्पन्न हुआ था तथा जो मिथ्या दर्शनरूपी मलसे रहित थी ऐसी सुशर्मा नामकी ब्राह्मणी पतिके साथ युधु प्रहके साथ भरणी नक्षत्रके समान सुशोभित हो रही थी ॥११६॥

तदनन्तर उस ब्राह्मणने हर्षसे ब्राह्मणीको उन्हीं गुरुके पादमूलमें ले जाकर तथा आदर संहित नमस्कार कर अणुव्रत ग्रहण कराये ॥११७॥ जो पहले आशीविप सौंपके समान अत्यन्त उग्र थे ऐसे ब्राह्मणोंके कुल, कपिलको जिनशासनमें अनुरक्त जान कर शान्तिभावको प्राप्त हो गये ॥११८॥ उनमें जो सुवृद्धि थे वे मुनिसुव्रत भगवान्का अत्यन्त सुदृढ मत प्राप्त कर श्रावक हो गये तथा इस प्रकार बोले कि हम लोग कर्मोंके भारसे वज्रनदार थे, अहङ्कारसे हमारे मस्तक ऊपर उठ रहे थे और हम निरन्तर प्रमादसे युक्त रहते थे परन्तु अब जिनधर्मके प्रसादसे भयङ्कर नरकमें नहीं जावेंगे ॥११९-१२०॥ इस जिनशासनको हमने सैकड़ों जन्मोंमें भी नहीं जाना, न प्राप्त किया किन्तु आज अतिशय निर्मल यह जिनशासन रूपी ब्रह्म वड़े कष्टसे प्राप्त किया है ॥१२१॥ अब हम मनरूपी होताके साथ मिलकर भाव रूपी धीके साथ अपनी कर्मरूपी समिधाओंको ध्यानरूपी देदीयमान अग्निमें होमिगे ॥१२२॥ इस प्रकार मनको स्थिर कर संवेगसे भरे हुए कितने ही ब्राह्मण सर्वपरिग्रहसे विरक्त हो उत्तम मुनि हो गये ॥१२३॥ परन्तु कपिल श्रावकधर्ममें आसक्त रहकर ही उत्तम आचरण करता था । एक दिन वह उत्तम अभिप्राय रखनेवाली ब्राह्मणी से बोला ॥१२४॥ कि हे प्रिये ! आज हम लोग, अतिशय बलवान्, विशुद्ध चेष्टाके धारक तथा कमलके समान नेत्रोंसे युक्त उन श्रीरामके दर्शन करनेके लिए रामपुरी क्यों नहीं चले ? ॥१२५॥ वे भव्य जीवोपर अनुकम्पा करनेवाले हैं तथा जो निरन्तर आशामें तत्पर रहता है, जिसका मन निरन्तर धनोपार्जनके उपाय जुटानेमें ही लगा रहता है, जो दरिद्रतारूपी समुद्रमें मग्न है, और पेट भरना भी जिसे कठिन है ऐसे दरिद्र मनुष्यका वे उद्धार करते हैं, इस प्रकार आनन्ददायिनी उनकी निर्मल कीर्ति सर्वत्र फैल रही है ॥१२६-१२७॥ हे प्रिये ! ठठो, यह फूलोंका पिटारा तुम ले

१. याताः स्म म०, ज० । २. कमललोचनम् । ३. जन्मदरिद्रम् । इति ज० पुस्तके टिप्पणम् ।

एवमुक्त्वा तथा कृत्वा दग्धती सम्पदान्त्रितौ । स्वशक्त्या गान्तुमुद्युक्तौ शुद्धवेपथ्विभूषितौ ॥१२६॥
 ब्रजतोक्ष तयोरुभ्या तत्तस्थुः पद्मगाः पथि । दध्नकरालवक्त्राश्च वेतालास्तरहासिनः ॥१३०॥
 एवमादीनि वस्तुनि भीषणान्यबलोक्य तौ । निष्कम्पहृदयौ भूत्वा स्तुतिमेतामुपागतौ ॥१३१॥
 नमस्त्रिलोकबंध्यो जिनेभ्यः सतत त्रिधा । उत्तर्णभवपङ्केभ्यो दातृभ्यः परमं शिवम् ॥१३२॥
 एतयोः स्तुवतोरैवं विदित्वा जिनभक्तिताम् । भेजिरे प्रशमं यथास्तौ च प्राप्नौ जिनालयम् ॥१३३॥
 ततो नमो निपद्याया इत्युक्त्वा रचिताङ्गली । कृत्वा प्रदक्षिण स्तोत्रमुदचीचरतमिदम् ॥१३४॥
 विहाय लौकिकं मार्गं महादुर्गतिदुःखदम् । भवन्तं शरणं नाथ चिरेण समुपागतः ॥१३५॥
 चतुर्भिर्विंशति युक्तामचरणां महात्मनाम् । उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्वन्दे भूतभविष्यताम् ॥१३६॥
 पञ्चस्वैरावताख्येषु भरताख्येषु पञ्चसु । जिनाश्रमामि वास्येषु तान्नामामि जिनांस्त्रिधा ॥१३७॥
 यैः संसारसमुद्रस्य कृते तरणतारणे । त्रिकालं सर्ववास्येषु तान्नामामि जिनां स्त्रिधा ॥१३८॥
 मुनिसुवतनाथाय तस्मै भगवते नमः । त्रैलोक्ये शासनं यस्य सुविशुद्धं प्रकाशते ॥१३९॥
 इति कृत्वा स्तुतिं जानुमस्तकस्पृष्टभूतलौ । नेमतुस्तौ जिनं भक्त्या परिहृष्टतनुकौ ॥१४०॥
 ततोऽसौ कृनकर्तव्यो रचैः सौम्यैः प्रियंबदेः । अनुज्ञातः सम पत्न्या द्रष्टुं हृदिर्नमुद्युक्तौ ॥१४१॥
 राजमार्गोऽद्विसकाशान् प्राप्तादान् विमलत्वियः । ब्राह्मण्यै दर्शयन् याति दिव्यनारीसमाकुलान् ॥१४२॥

लो और मै इस सुकुमार वक्त्रेको कन्धे पर रख लेता हूँ ॥१२८॥ इस प्रकार कह कर तथा वैसा ही कर हर्षसे भरे दोनो दम्पती जानेके लिए तत्पर हुए । अपनी शक्तिके अनुसार वे निर्मल वेषसे विभूषित थे ॥१२९॥ जब वे चले तो उनके मार्गमें उग्र सर्प विभूषित थे ॥१२९॥ जब वे चले तो उनके मार्गमें उग्र सर्प फणा तानकर खड़े हो गये तथा जिनके मुख डोंटोसे विकराल थे और जो जोर-जोरसे हँस रहे थे ऐसे वेताल मार्गमें आड़े आ गये ॥१३०॥ परन्तु इन सब भयङ्कर वस्तुओंको देखकर भी उनके हृदय निष्कम्प रहे । वे निश्चल चित्त होकर यही स्तुति पढ़ते जाते थे कि ॥१३१॥ 'जो त्रिलोक द्वारा वन्दनीय है, जो भयङ्कर संसाररूपी कर्दमसे पार हो चुके हैं तथा जो उल्लूख मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान्को मन, वचन, कायसे सदा नमस्कार हो' ॥१३२॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए उन दोनोंकी जिन-भक्तिको जान कर यत्न शान्त हो गये और वे रामपुरीके जिनालयमें पहुँच गये ॥१३३॥ तदनन्तर 'भगवान्की वसतिके लिए नमस्कार हो' यह कहकर दोनोने हाथ जोड़े और प्रदक्षिणा देकर दोनो ही यह स्तुति पढ़ने लगे ॥१३४॥ हे नाथ ! महादुर्गतिके दुःख देनेवाले लौकिक मार्गको छोड़कर हम चिरकालके बाद आपकी शरणमें आये हैं ॥१३५॥ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके वर्तमान तथा भूत-भविष्यत् सम्बन्धी तीर्थङ्करोको चौबीसीको हम नमस्कार करते हैं । पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रोंमें जो तीर्थङ्कर हैं, हो चुके हैं अथवा होंगे उन सबको हम मन, वचन, कायसे नमस्कार करते हैं ॥१३६-१३७॥ जो संसार समुद्रसे स्वयं पार हुए हैं तथा जिन्होंने दूसरोको पार किया है ऐसे समस्त क्षेत्रों सम्बन्धी तीर्थङ्करोको हम त्रिकाल नमस्कार करते हैं ॥१३८॥ उन मुनिसुवत भगवान्को नमस्कार हो जिनका निर्मल शासन तीनों लोकोंमें प्रकाशमान हो रहा है ॥१३९॥ इस प्रकार स्तुति कर घुटनो और मस्तकसे पृथिवीतलका स्पर्श करते हुए उन्होंने जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया । उस समय भक्तिके कारण उन दोनोंके शरीरमें रोमाञ्च उठ रहे थे ॥१४०॥

तदनन्तर वन्दनाका कार्य पूर्ण कर चुकनेके बाद शान्त तथा मधुरभाषी रत्नकोने जिसे आह्ला दे दी थी ऐसा कपिल ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ रामके दर्शन करनेके लिए चला ॥१४१॥ वह, राजमार्गमें पर्वतोंके समान ऊँचे, निर्मल कान्तिके धारक, तथा दिव्य स्त्रियोंसे भरे जो

ऊचे च कुन्दसंकाशैः सर्वकामगुणान्वितैः । राजते भवनैर्यस्य पुरीर्यं स्वर्गसन्निभा ॥१४३॥
 तस्यैतद्भवनं भद्रे प्रान्तप्रासादवेष्टितम् । अभिरामस्य रामस्य पुर्यां मध्ये विराजते ॥१४४॥
 भ्रुवन्निति महाहृष्टः स विवेश च तदगृहम् । दृष्ट्वा च लक्ष्मणं दूराद्भृशमाकुलतां गतः ॥१४५॥
 दृष्ट्वा सञ्जातकम्पश्च सोऽप्यमिन्द्रीवरप्रभः । व्यथितो दुर्विदग्धोऽहं चित्रैर्येन तदावधैः ॥१४६॥
 कर्णयोरतिदुःखानि भापितानि महाखले । तानि कृत्वा तदा पापे जिह्वे निस्सर साम्प्रतम् ॥१४७॥
 किं करोमि न्व गच्छामि विवरं प्रविशामि किम् । अस्मिन् शरणहीनस्य भवेच्छरणमद्य कः ॥१४८॥
 अवस्थितोऽयमत्रेति यदि मे विदितो भवेत् । समुल्लव्योत्तरामाशां देशत्यागः कृतो भवेत् ॥१४९॥
 एवमुद्देगमापन्नो विहाय ब्राह्मणीं द्विजः । प्रपलायितुमुद्युक्तो लक्ष्मणेन विलोकितः ॥१५०॥
 स्मित्वा च स जगादायं कृतो विप्रः समागतः । वनसंबन्धितात्मेव किमित्याकुलतामितः ॥१५१॥
 समाश्वासितमं नीत्वा नुतमानय तं द्विजम् । पर्यामस्तावदेतस्य चैष्टित किमयं वदेत् ॥१५२॥
 न भेतव्यं न भेतव्यं निवर्तस्वेति चोदितः । अधिगम्य समाशवासं निवृत्तः स्वलितकमः ॥१५३॥
 उपसृत्य भयं त्यक्त्वा प्रसृतो धवलाम्बरः । पुष्पाञ्जलिस्तयोरग्रे स्थित्वा स्वस्तीत्यशब्दयत् ॥१५४॥
 ततो लब्धासनार्सानो निकटस्थाङ्गो द्विजः । ऋग्भिः स्तवनद्वन्द्वानिरस्तौपीद् रामलक्ष्मणौ ॥१५५॥
 ततः पद्मो जगादैवं तां न कृत्वा विमानताम् । वद साम्प्रतमागत्य कस्मात् पूजयसि द्विजः ॥१५६॥
 सोऽब्रवीन्न मया ज्ञातं त्वं प्रच्छन्नमहेश्वरः । मोहाद्विमानितस्तेन भस्मच्छन्न इवानिलः ॥१५७॥

महल मिलते थे उन्हें अपनी स्त्रीके लिए दिखाता जाता था ॥१४२॥ उसने स्त्रीसे कहा कि हे भद्रे ! कुन्दके समान उज्वल तथा सर्व मनोरथोको पूर्ण करनेवाले गुणोंसे सहित, भवनोसे जिनकी यह स्वर्ग तुल्य नगरी सुशोभित हो रही है उन मनोहर रामका यह भवन समीपवर्ती अन्य महलोसे घिरा कैसा सुन्दर जान पड़ता है ? ॥१४३-१४४॥ इस प्रकार कहते हुए उस अतिशय हर्षित ब्राह्मणने रामके भवनमें प्रवेश किया । वहाँ वह दूर से ही लक्ष्मणको देखकर अत्यन्त आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१४५॥ उसके शरीरमें कँपकँपी छूटने लगी । वह विचार करने लगा कि नील कमलके समान प्रभावाला यह वही पुरुष है जिसने उस उसय मुझ मूर्खको नाना प्रकार के वधसे दुखी किया था ॥१४६॥ उसकी बोलती बन्द हो गई । वह मन ही मन अपनी जिह्वासे कहने लगा हे महादुष्टे ! हे पापे ! उस समय तो तूने कानोके लिए अत्यन्त दुःखदायी वचन कहे अब चुप क्यों है ? बाहर निकल ॥१४७॥ वह मन ही मन विचार करने लगा कि क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किस विलमें घुस जाऊँ ? आज मुझ शरणहीनका यहाँ कौन शरण होगा ? ॥१४८॥ यदि मुझे माख्म होता कि यह यहाँ ठहरा है तो मैं उत्तर दिशाको लोंघकर देशत्याग ही कर देता ॥१४९॥ इस प्रकार उद्देगको प्राप्त हुआ वह ब्राह्मण, ब्राह्मणीको छोड़ भागनेके लिए तैयार हुआ ही था कि लक्ष्मणने उसे देख लिया ॥१५०॥ हँसकर लक्ष्मणने कहा कि यह ब्राह्मण कहाँसे आया है ? जान पड़ता है कि इसका पोषण वनमें ही हुआ है, यह इस तरह आकुलताको क्यों प्राप्त हुआ है ? ॥१५१॥ सान्त्वना देकर उस ब्राह्मणको शीघ्र ही लाओ हम इसकी चेष्टाको देखेंगे तथा सुनेंगे कि यह क्या कहता है ? ॥१५२॥ 'नहीं डरना चाहिये, नहीं डरना चाहिये, लौटो', इस प्रकार कहने पर वह सान्त्वनाको प्राप्त कर लड़खड़ाते पैरों वापिस लौटा ॥१५३॥

तदनन्तर रवेत वस्त्रको धारण करनेवाला वह ब्राह्मण पास जाकर निर्भय हो राम लक्ष्मणके सम्मुख गया तथा अञ्जलिमें पुष्प रखकर उनके सामने खड़ा हो 'स्वस्ति' शब्दका उच्चारण करने लगा ॥१५४॥ तदनन्तर जो प्राप्त हुए आसनपर बैठा था और पास ही जिसकी स्त्री वैठी थी ऐसा वह ब्राह्मण स्तवन करनेमें समर्थ ऋचाओंके द्वारा रामलक्ष्मणकी स्तुति करने लगा ॥१५५॥ स्तुतिके बाद रामने कहा कि हे ब्राह्मण ! उस समय हमलोगोंका वैसा तिरस्कार कर अब इस समय आकर पूजा क्यों कर रहे हो सो तो बताओ ॥१५६॥ ब्राह्मणने कहा हे देव !

स्त्रित्तरेया जगन्नाथ लोके स्थावरजङ्गमे । धनवान् पूज्यते नित्यं यथादित्यो हिमायमे ॥१५८॥
 अबुना त्वं मया ज्ञातः सोऽसि नान्यः कदाचन । द्रविणानीह पूज्यन्ते न भवान् पद्म पूज्यते ॥१५९॥
 नित्यमर्थयुतं देव मानयन्ति जना जनम् । त्यजन्यर्थपरित्यक्तं निष्प्रयोजनसौहृदम् ॥१६०॥
 यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः । यस्यार्थाः सपुमोहोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥१६१॥
 अर्थेन विप्रहीनस्य न मित्र न सहोदरः । तस्यैवार्थसमेतस्य परोऽपि स्वजनायते ॥१६२॥
 सार्थो धर्मो यो युक्तो सो धर्मो यो दयान्वितः । सा दया निर्मला ज्ञेया मांसं यस्यां न भुज्यते ॥१६३॥
 मांसाशनासिद्घृचानां सर्वेषां प्राणधारिणाम् । अन्या मूलेन सम्पन्ना प्रशस्यन्ते निवृत्तयः ॥१६४॥
 राजन् विचित्ररूपोऽयं लोको मानुषलक्षितः । मादशो ज्ञायते नैव यथाभूतोऽत्र यो जनः ॥१६५॥
 आस्तां तावद्भगवानत्र वन्द्यते ये भवद्विधैः । पराभवं विमूढेभ्यो लभन्ते तेऽपि साधवः ॥१६६॥
 पूर्वं सनत्कुमारः क्वि ते ज्ञातो न चक्रमुत् । महर्द्धयः सुरा यस्य रूपं द्रष्टुमिहागताः ॥१६७॥
 सोऽपि श्रामण्यमासाद्य सम्प्राप्तः परिभूतताम् । पर्यटन्न क्वचिद्धेभे भिचामाचारकोविदः ॥१६८॥
 वनस्पत्युपजीविन्या तर्पितः सोऽन्यदा मुनिः । पञ्चाश्वर्यगुणैश्वर्यमाद्दे विजये पुरे ॥१६९॥
 सुभूमश्चक्रमुद् भूत्वा करं कटकभास्वरम् । केयूरभूषितभुजो वदरार्थमदौक्यत् ॥१७०॥
 वदरं नैकमन्यस्मै निःस्त्रोऽलावदात्ततः । अनभिज्ञो विशेषस्य विशेषं कम्वाप्तवान् ॥१७१॥

मैंने नहीं जाना था कि आप प्रच्छन्न महेश्वर हो इसीलिए भस्मसे आच्छादित अनिके समान मोहवश मुझसे आपका अनादर हो गया ॥१५७॥ हे जगन्नाथ ! चराचर विश्वकी यही रीति है कि शीत ऋतुमें सूर्यके समान धनवानकी ही सदा पूजा होती है ॥१५८॥ यद्यपि इस समय मैं जानता हूँ कि आप वही है अन्य नहीं फिर भी आपकी पूजा हो रही है सो हे पद्म ! यहाँ यथार्थमें धनकी ही पूजा हो रही है आपकी नहीं ॥१५९॥ हे देव ! लोग निरन्तर धनवान् मनुष्यका ही सन्मान करते हैं और जिसके साथ मित्रताका प्रयोजन जाता रहा है ऐसे धनहीन मनुष्यको छोड़ देते हैं ॥१६०॥ जिसके पास धन है उसके मित्र हैं, जिसके पास धन है उसके बान्धव है, जिसके पास धन है लोकमें वह पुरुष है और जिसके पास धन है वह पण्डित है ॥१६१॥ जब मनुष्य धनरहित हो जाता है तब उसका न कोई मित्र रहता है न भाई ! पर वही मनुष्य जन-धनसहित हो जाता है तो अन्य लोग भी उसके आत्मीय बन जाते हैं ॥१६२॥ धन वही है जो धर्मसे सहित है, धर्म वही है जो दयासे सहित है और निर्मल दया वही है जिसमें मांस नहीं खाया जाता ॥१६३॥ मांस भोजनसे दूर रहनेवाले समस्त प्राणियोंके अन्य त्याग चूँकि मूलसे सहित रहते हैं इसलिए ही उनकी प्रशंसा होती है ॥१६४॥ हे राजन् ! यह मनुष्य लोक विचित्र है इसमें मेरे जैसे लोगोंको तो कोई जानता ही नहीं है ॥१६५॥ अथवा आपकी बात जाने हीजिये आप जैसे लोग जिनकी वन्दना करते हैं वे साधु भी मूर्ख पुरुषोंसे पराभव प्राप्त करते हैं ॥१६६॥ क्या आप नहीं जानते कि पहले एक ऐसे सनत्कुमार चक्रवर्ती हो गये हैं जिनका रूप देखनेके लिए बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंको धारण करनेवाले देव आये थे परन्तु वे भी मुनिपद धारणकर पराभवको प्राप्त हुए । आचार-शास्त्रके जाननेमें निपुण वे मुनिराज भ्रमण करते रहे परन्तु उन्हें कहीं भिन्ना नहीं मिली ॥१६७-१६८॥ फिर अन्य समय विजयपुर नगरमें वनस्पतिसे आजीविका करनेवाली एक स्त्रीने आहार देकर उन्हें सन्तुष्ट किया और पञ्चाश्वर्यरूपी गुणोंका ऐश्वर्य प्राप्त किया ॥१६९॥ जिनकी सुजा वाजुवन्दसे विभूषित थी ऐसे सुभूमने चक्रवर्ती होकर अपना वलयविभूषित हाथ वेरके लिए बढ़ाया परन्तु यह दृष्टि है यह समझकर उनके लिए किसीने एक वेर भी नहीं दिया सो ठीक ही है क्योंकि विशेषको नहीं

अथमन्यद्व विवशो जनैः स्वकृतभोगिभिः । न योऽवगम्यते यत्र न स तत्र जनोऽर्च्यते ॥१७२॥
 न कृता मन्दभागो न कस्माद्भयागतक्रिया । तदा मयेति मेऽद्यापि तप्यते मानस मृगम् ॥१७३॥
 रूपमेवमलं कान्तं युष्माकमवलोकयन् । भृशं क्रुद्धोऽपि को नाम न ययावतिविस्मयम् ॥१७४॥
 पृथमुक्त्वा शुचा ग्रस्तं रुदन्त कपिलं गिरा । शुभयासान्त्वयद् रामः सुशर्माणं च जानकी ॥१७५॥
 ततो हेमघटाभोगिः किङ्करी राघवाज्ञया । कपिल. श्रावक प्रीत्या स्नापितः सह भार्यया ॥१७६॥
 परमं भोजितश्रावणं ब्रह्मै रत्नैश्च भूषितः । सुभूरिघनमादाय जगाम निजमालयम् ॥१७७॥
 जनानां विस्मयकरं सर्वोपकरणान्वितम् । भोगं यद्यपि यातोऽयं तथापि सुविचक्षणः ॥१७८॥
 सन्मानविशिखीर्विद्धो द्यौं गुणमहोरगैः । उपचारहतात्मासौ धृति न लभते द्विजः ॥१७९॥
 दृष्वौ चाहं पुरा यत्र स्कन्धन्यस्तैन्धमारकः । यथा शोषितदेह. स तृपितोऽन्यन्तदुर्विधः ॥१८०॥
 प्राप्ते तत्रैव जातोऽस्मि परय यद्वाधिपोपमः । रामदेवप्रसादेन चिन्तादुःखविवर्जितः ॥१८१॥
 आसीन्मे शीर्णपतितमनेकच्छिद्रजर्जरम् । काकाद्यष्टुच्चिसंलिप्त गृह गोमयवर्जितम् ॥१८२॥
 अयुना धेनुमिन्व्याप्तं बहुप्रासादसङ्कुलम् । रामदेवप्रसादेन प्राकारपरिमण्डलम् ॥१८३॥
 हा मया पुण्डरीकाक्षौ श्रावरो गृहमागतौ । निर्भस्मितौ विना दोषं तौ मृगाङ्गनिभानवौ ॥१८४॥

जाननेवाला मनुष्य किसी विशेषको कव प्राप्त हुआ है ? ॥१७०-१७१॥ यह अथवा और कोई-सभी लोग, स्वकृत कर्मको भोगनेवाले मनुष्योंसे विवश हैं । जिस मनुष्यका जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ उसकी अर्चा नहीं होती ॥१७२॥ मुझ मन्दभाग्यने उस समय आपकी आतिथ्य-क्रिया क्यों नहीं की ? यह विचारकर आज भी मेरा मन अत्यन्त सन्तापको प्राप्त है ॥१७३॥ आपके अतिराय सुन्दर रूपको देखनेवाला मनुष्य ही अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं होता किन्तु आपके प्रति अत्यन्त क्रोध प्रकट करनेवाला पुरुष भी ऐसा कौन है जो अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ हो ॥१७४॥ इस प्रकार कहकर वह कपिल ब्राह्मण शोकाक्रान्त हो रोने लगा, तब रामने शुभ वचनोंसे उसे सान्त्वना दी और सीताने उसकी स्त्री सुशर्माको समझाया ॥१७५॥

तदनन्तर रामकी आज्ञासे किंकरोने भार्या सहित कपिल श्रावकको सुवर्ण घटोमें रक्खे हुए जलसे प्रीतिपूर्वक स्नान कराया ॥१७६॥ उत्कृष्ट भोजन कराया और वस्त्र तथा रत्नोंसे उसे अलंकृत किया । तदनन्तर वह बहुत भारी घन लेकर अपने घर वापिस गया ॥१७७॥ यद्यपि वह बुद्धिमान ब्राह्मण, लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाले तथा सर्व प्रकारके उपकरणोंसे युक्त भोगो-पभोगके पदार्थोंको प्राप्त हुआ था, तो भी चूँकि वह सम्मानरूपी वाणोसे विद्ध था, गुणरूपी महासर्पोंसे डसा गया था और सेवा-शुश्रूषाके कारण उसकी आत्मा दब रही थी, इसलिए वह सन्तोष को प्राप्त नहीं होता था । भावार्थ—रामने तिरस्कारके बदले उसका सत्कार किया था, अपने अनेक गुणोंसे उसे वशीभूत किया था और स्नान, भोजन, पान आदि सेवा-शुश्रूषासे उसे सुखी किया था इसलिए वह रात-दिन इसी शोकमें पड़ा रहता था कि देखो कहीं तो मैं दुष्ट कि जिसने इन्हें एक रात घर भी नहीं ठहरने दिया और कहीं ये महापुरुष जिन्होंने इस प्रकार हमारा उपकार किया ? ॥१७८-१७९॥ वह विचार करने लगा कि मैं पहले जिस गाँवमें इतना अधिक दरिद्र था कि कन्धेपर लकड़ियोंका गट्टा रखकर भूखा-ग्यासा दुबल शरीर इधर-उधर भटकता था आज उसी गाँव में मैं रामके प्रसादसे यन्त्रराजके समान हो गया हूँ तथा सब चिन्ता और दुःखोंसे छूट गया हूँ ॥१८०-१८१॥ पहले मेरा जो घर जीर्ण-शीर्ण होकर गिर गया था, अनेक छिद्रोंसे जर्जर था, काक आदि पक्षियोंकी अशुचिसे लिप्त था तथा जिससे कभी गोबर भी नहीं लगता था, वही घर आज श्री-रामके प्रसादसे अनेक गाँवोंसे व्याप्त है, नाना महलोंसे संकीर्ण तथा प्राकार-कोटसे घिरा हुआ है ॥१८२-१८३॥ हाय, वड़े खेदकी बात है कि मैंने

१. जातोऽयं म० । २. द्यौं म० ।

१६

यद्ग्रीष्मातपतसाङ्गौ समं देव्या विनिर्गतौ । तन्मे प्रतिष्ठितं शल्यं हृदये प्रचलत् सदा ॥१८५॥
 तावन्मे नास्ति दुःखस्य ह्येदो यावद्विदं गृहम् । परित्यज्य निरारम्भः प्रव्रजिष्याम्यसंशयम् ॥१८६॥
 उपलभ्यास्य वैराग्यं बन्धुवर्गः ससम्भ्रमः । धाराभिरूत्ससर्जासं दीनः साकं सुशर्मणा ॥१८७॥
 निरीच्य स्वजनं विप्रो निर्मग्नं शोकसागरे । अपेक्षापेतया बुद्ध्या निर्जगाद् शिवोत्सुकः ॥१८८॥
 विचित्रस्वजनस्नेहैरत्युत्तुङ्गमनोरथैः । मूढोऽयं दहते लोकः किं न ज्ञानीय भो जनाः ॥१८९॥
 इति संवेगमापन्नः प्रियां दुःखेन मूर्च्छिताम् । विहाय बन्धुलोकं च बहुविकलवकारिणम् ॥१९०॥
 अष्टादश सहस्राणि धेनूनां सिततेजसाम् । रत्नपूर्णं च भवनं दासीयोपित्समाकुलम् ॥१९१॥
 सुशर्मायां समारोप्य तनयं द्रविणं तथा । बभूव कपिलः साधुनिरारम्भो निरम्बरः ॥१९२॥
 सद्धानन्दमतेः शिष्यः सुप्रतीतस्तपोधनः । चकार गुरुतां तस्य गुणशीलमहार्णवः ॥१९३॥

वियोगिनीवृत्तम्

विजहार महातपास्ततः कपिलश्चारुचरित्रवीवधः^२ ।

परमार्थनिविष्टमानसः श्रमणश्रीपरिवीतविग्रहः ॥१९४॥

य इदं कपिलानुकीर्तनं पठति प्रहसतिः शृणोति वा ।

उपवाससहस्रसम्भवं लभतेऽसौ रविभासुरः फलम् ॥१९५॥

इत्यार्षे रविपेयाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते कपिलोपाख्यानं नाम पञ्चत्रिंशत्तमं पर्व ॥३५॥

कमलके समान नेत्रोके धारक तथा चन्द्रतुल्य मुखसे सुशोभित, घर आये हुए उन दोनो भाइयों का अपराधके बिना ही तिरस्कार किया ॥१८४॥ प्रीष्म ऋतुके आतापसे जिनके शरीर सन्तप्त हो रहे थे ऐसे दोनों भाई देवी अर्थात् सीताके साथ घरसे बाहर निकले, वह मेरे हृदयमें सदा शल्यकी तरह गड़ा हुआ चञ्चल हो उठता है ॥१८५॥ निःसन्देह मेरे दुःखका अन्त तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि मैं घर छोड़कर निरारम्भ हो दीक्षा नहीं ले लेता हूँ ॥१८६॥

तदनन्तर कपिलके वैराग्यका समाचार जानकर इसके षवड़ाये हुए दीन-हीन भाई बन्धु, सुशर्मा ब्राह्मणीके साथ अश्रुधारा बहाने लगे ॥१८७॥ मोक्ष प्राप्त करनेमें उत्सुक कपिल, अपने परिजनको शोकरूपी सागरमें निमग्न देख निरपेक्ष बुद्धिसे बोला कि हे मानवो ! बड़े-बड़े मनोरथोंसे युक्त कुटुम्बी जनोंके विचित्र स्नेहसे मोहित हुआ यह प्राणी निरन्तर जलता रहता है, यह क्या तुम नहीं जानते ? ॥१८८-१८९॥ इस प्रकार संवेगको प्राप्त हुआ कपिल ब्राह्मण दुःखसे मूर्च्छित स्त्री तथा बहुत दुःखका अनुभव करनेवाले बन्धुजनोंको छोड़कर, अठारह हजार सफेद गायें, रत्नोंसे परिपूर्ण तथा दास-दासियोंसे युक्त भवन, पुत्र और समस्त धन सुशर्मा ब्राह्मणीके लिए सौंपकर आरम्भ रहित दिगम्बर साधु हो गया ॥१९०-१९२॥ सद्धानन्द मतिके शिष्य तथा गुण और शीलके महासागर अतिशय तपस्वी मुनि, उसके गुरु हुए थे अर्थात् उनके पास उसने दीक्षा ली थी ॥१९३॥ तदनन्तर जो निर्मल चारित्ररूपी काँवरको धारण करते थे, जिनका मन सदा परमार्थमें लगा रहता था, और जिनका शरीर निर्ग्रन्थ व्रत रूपी लक्ष्मीसे आलिङ्गित था ऐसे महातपस्वी कपिल मुनिराज पृथिवी पर विहार करने लगे ॥१९४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य अहंकार रहित हो कपिलकी इस कथाको पढ़ता अथवा सुनता है वह सूर्यके समान देदीप्यमान होता हुआ एक हजार उपवासका फल प्राप्त करता है ॥१९५॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध रविपेयाचार्य कथित पद्मचरितमें कपिलका वर्णन करनेवाला पैतीसवों पर्व समाप्त हुआ ॥३५॥

षट्त्रिंशत्तमं पर्व

ततोऽनुक्रमतः १ काले विकालप्रतिमे गते । घोराण्धकारसंरुद्धे विद्युच्चकितभीषणे ॥१॥
जातायां सुप्रसन्नयां शरदि प्रीतिनिर्भरः । ऊचे यक्षाधिपः पदं प्रस्थातुं कृतमानसम् ॥२॥
क्षन्तव्यं देव यत्किञ्चिदस्माकमिति दुष्कृतम् । विधातुं शक्यते केन योग्यं सर्वं भवाद्दशाम् ॥३॥
इत्युक्ते रामदेवोऽपि तमूचे गुह्यकाधिपम् । त्वयापि निखिला स्वस्य क्षन्तव्या परतन्त्रता ॥४॥
सुतरां तेन वाक्येन जातः सत्तमभावनः । यक्षाणामधिपो नत्वा सम्भाष्य विपुलक्रियम् ॥५॥
हारं स्वयंप्रभामिच्छं ददौ पद्माय सोऽद्भुतम् । उद्यद्दिनकराकारे २हरये मणिकुण्डले ॥६॥
चूडामणिं सुकल्याणं सीतायै विलसत्प्रभम् । महाविनोददृशं च वीणार्माप्सितनादिनीम् ॥७॥
स्वेच्छया तेषु यातेषु यन्त्रराजः पुरीकृताम् । मायां समहरत्किञ्चिद्धानः शोकितामिव ॥८॥
बलदेवोऽपि कर्तव्यकरणञ्च ससम्मदः । अमन्यत परिप्राप्तमुदार शिविमारमनः ॥९॥
पर्यटन्तो मही स्वैरं नानारसफलाशिनः । विचित्रसङ्ख्यासक्ताः रममाणः सुरा इव ॥१०॥
उल्लङ्घ्य सुमहारण्यं द्विपसिंहसमाकुलम् । जनोपभुक्तमुद्देशं वैजयन्तपुरं गताः ॥११॥
ततोऽस्तमागते सूर्ये दिक्चक्रे तमसावृते । नक्षत्रमण्डलाकीर्णं सङ्गते गगनाङ्गणे ॥१२॥
अपरोत्तरदिग्भागे क्षुद्रलोकमयावहे । ययामिरुचिते देशे ते पुरो निकटे स्थिताः ॥१३॥
अथात्र नगरे राजा प्रसिद्धः पृथिवीधरः । इन्द्राणी महिषी तस्य योपिद्गुणसमन्विता ॥१४॥

तदनन्तर घोराण्धकारसे व्याप्त और विजलीकी चमकसे भीषण वर्षा काल, दुष्कालके समान जब क्रम-क्रमसे व्यतीत हो गया तथा स्वच्छ शरद् ऋतु आ गई तब रामने वहाँसे प्रस्थान करनेका विचार किया उसी समय यक्षोंका अधिपति आकर रामसे कहता है कि हे देव ! हमारी जो कुछ झुटि रह गई हो वह क्षमा कीजिये क्योंकि आप जैसे महातुभावोंके योग्य समस्त कार्य करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥१-३॥ यक्षाधिपतिके ऐसा कहने पर रामने भी उससे कहा कि आप भी अपनी समस्त परतन्त्रताको क्षमा कीजिये अर्थात् आपको इतने समय तक मेरी इच्छानुसार जो प्रवृत्ति करनी पड़ी है उसके लिए क्षमा कीजिये ॥४॥ रामके इस वचनसे यक्षाधिप अत्यन्त प्रसन्न हुआ । उसने बहुत काल तक वार्तालाप कर नमस्कार किया, रामके लिए स्वयंप्रभ नामका अद्भुत हार दिया । लक्ष्मणके लिए उगते सूर्यके समान देदीप्यमान दो मणिमय कुण्डल दिये, और सीताके लिए महामाङ्गलिक देदीप्यमान चूडामणि तथा महाविनोद करनेमें समर्थ एवं इच्छानुसार शब्द करनेवाली वीणा दी ॥५-७॥ तदनन्तर जब वे इच्छानुसार वहाँसे चले गये तब यन्त्रराजने कुछ शोकयुक्त हो अपनी नगरी सम्बन्धी माया समेट ली ॥८॥ इधर राम भी कर्तव्य कार्य करनेसे हर्षित हो ऐसा मान रहे थे कि मानो मुझे उल्लङ्घ मोक्ष ही प्राप्त हो गया है ॥९॥

अथानन्तर स्वेच्छानुसार पृथिवीमे विहार करते, नाना रसके स्वादिष्ट फल खाते, विचित्र कयाँ करते और देवोंके समान रमण करते हुए वे तीनों, हाथी और सिंहोंसे व्याप्त महावनको पारकर मनुष्योंके द्वारा सेवित वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे ॥१०-११॥ तदनन्तर जब सूर्य अस्त हो गया, दिशाओंका समूह अन्धकारसे आवृत हो गया और आकाशरूपी अँगन नक्षत्रोंके समूहसे व्याप्त हो गया तब वे लुद्ध मनुष्योंको भय उत्पन्न करनेवाले पश्चिमोत्तर दिग्भागमें नगरके समीप ही किसी इच्छित स्थानमें ठहर गये ॥१२-१३॥ अथानन्तर इस

तनया वनमालेति तयोः रत्नसुन्दरी । वास्यात् प्रमृति सा रक्ता लक्ष्मणस्य गुणश्रुतेः ॥१५॥
 श्रुत्वानरण्यपुत्रस्य प्रव्रज्यासमये वचः । रक्षितुं क्वापि नियातं रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥१६॥
 ध्यात्वेन्द्रनगरेशस्य बालमित्राय सुनवे । सुन्दराद्यातिथोग्याय पितृभ्यां सा निरूपिता ॥१७॥
 तं च विज्ञाय वृत्तान्तं हृदयस्थितलक्ष्मणा । विरहाद्भयमापन्ना चिन्तामेवमुपागता ॥१८॥
 अंशुक्रेण वरं कण्ठं विवेष्टयासज्य पादपे । मृत्युं प्राप्तास्मि नान्येन पुरुषेण समागमम् ॥१९॥
 विधिच्छलेन केनापि गत्वारण्यं दिनक्षये । भ्रुवमधैव यास्यामि मृत्युं विघ्नविवर्जितम् ॥२०॥
 प्रयाहि भगवन् भानो संप्रेषय निशां द्रुतम् । कृताञ्जलिरियं वीना पादयोः प्रपत्तामि ते ॥२१॥
 शर्वरी भण्यतां यात्वा काञ्चन्तो दुःखभागिनी । संवत्सरसमं वेत्ति दिनं द्वाग्गम्यतामिति ॥२२॥
 इति सञ्चित्य सा बाला गतेऽर्दतं तिग्मतेजसि । सोपवाला समासाद्य पितृभ्यामनुमोदनम् ॥२३॥
 प्रवरं रथमारुह्य सखीजनसमावृता । जगाम परया लक्ष्म्या वनदेवी किलाचिंतुम् ॥२४॥
 यस्यां रात्रौ वनोद्देशे यत्र ते प्रथमं स्थिताः । तस्यामेव तमेवैवा गता दैवनियोगतः ॥२५॥
 अरण्यदेवतापूजा तस्मिन् किल विनिर्मिता । सुतश्च सकलो लोको निराशङ्कः कृतक्रियः ॥२६॥
 निरशब्दपदनिक्षेपातितो वनमृगीव सा । निष्कम्प्य शिविरात् तस्मात् प्रतस्थे भयवर्जिता ॥२७॥
 ततस्तस्याः समाप्राय गन्ध परमसौरभम् । एवं सुदुः सुमित्राया दम्प्यौ सम्मदसुदृहम् ॥२८॥
 ज्योतीरेखेव कायेषा मूर्तिरत्रोपलक्ष्यते । क्रुमार्यां श्रेष्ठया भाग्यमनया कुलजातया ॥२९॥

नगरका राजा पृथिवीधर नामसे प्रसिद्ध था उसकी रानीका नाम इन्द्राणी था जो कि खियोंके योग्य समस्त गुणोंसे सहित थी ॥१४॥ उन दोनोंके वनमाला नामकी अत्यन्त सुन्दरी पुत्री थी । वनमाला बाल्य अवस्थासे ही लक्ष्मणके गुण श्रवण कर उनमें अनुरक्त थी ॥१५॥ इसके माता पिताने सुना कि राम अपने पिता दशरथके वीक्षा लेनेके समय कथित वचनोंका पालन करनेके लिए लक्ष्मणके साथ कहीं चले गये हैं तब उन्होंने इन्द्र नगरके राजाके बालमित्र नामक अत्यन्त योग्य सुन्दर पुत्रके लिए वनमाला देनेका निश्चय किया ॥१६-१७॥ जिसके हृदयमें लक्ष्मण विद्यमान थे ऐसी वनमालाने जब यह समाचार सुना तो वह विरहसे भयभीत हो इस प्रकार चिन्ता करने लगी ॥१८॥ कि वस्त्रसे कण्ठ लपेट वृक्षपर लटक कर भले ही मर जाऊँगी परन्तु अन्य पुरुषके साथ समागमको प्राप्त नहीं होऊँगी ॥१९॥ मैं किसी कार्यके वहाने सायंकालके समय वनमे जाकर आज ही निर्विघ्न रूपसे मृत्यु प्राप्त करूँगी ॥२०॥ हे भगवन् मृत्यु ! आप जाओ और रात्रिको जल्दी भेजो । मैं अतिशय दीन हो हाथ जोड़कर आपके चरणोंमे पड़ती हूँ । जाकर रात्रिसे कहो कि मुन्हारी आकांक्षा करती हुई यह दुःखिनी दिनको वर्षके समान समझती है इसलिए जल्दी जाओ ॥२१-२२॥ इस प्रकार विचार कर उपवास धारण करनेवाली वह बाला, सूर्यास्त होनेपर माता पित्तका आज्ञा प्राप्तकर उत्तम रथपर सवार हो सखी जनोके साथ वैभव पूर्वक वनदेवीकी पूजा करनेके लिए गई ॥२३-२४॥

भाग्यकी बात कि जिस रात्रिमे तथा वनके जिस प्रदेशमे राम सीता और लक्ष्मण पहलेसे जाकर ठहरे थे उसी रात्रिमे उसी स्थान पर वनमाला भी आ पहुँची ॥२५॥ वहाँ उलने वन देवताकी पूजा की । तदनन्तर जब सब लोग अपना-अपना कार्य पूरा कर निःशङ्क हो सो गये तब जिसके पैर रखनेका भी शब्द नहीं हो रहा था ऐसी वनमाला वनकी मृगीकी नाई उस शिविरसे निकल निर्भय हो आगे चली ॥२६-२७॥ तत्पश्चात् वनमालाके शरीरसे निकलनेवाली अत्यन्त मनोहर सुगन्धको सूँघकर हर्षित हो लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे ॥२८॥ कि 'यहाँ कोई ज्योतिकी रेखाके समान मूर्ति दिखाई पड़ती है, हो सकता है कि वह कोई उच्च

महता शोकभारेण परिपीडितमानसा । अपश्यन्ती परं दुःखवारणोपायमुन्मनाः ॥३०॥
 भजातस्मिन्निता नूनमेपात्मानं जिघांसति । पश्यामि तावदेतस्याष्ट्रेऽभन्तर्हितो भवन् ॥३१॥
 इति सन्नित्य निरशब्दो भूत्वा वटतरोरवः । तस्यौ कल्पद्रुमस्येव त्रिदशः कौतुकान्वितः ॥३२॥
 तमेव पादपं सापि प्रासा हंसवधूगतिः । नतेव स्तनभारेण चन्द्रवक्त्रा तनूदरो ॥३३॥
 लक्ष्मणस्तां तथाभूतां दृष्ट्वाचिन्तयदुक्तिभिः । वेधि तावदिमां सम्यक् कुतः क्लृप्तं भविष्यति ॥३४॥
 अंशुक्रेनाम्बुवर्णेन कृत्वा पाशं तु कन्यका । जगादैवं गिरा योगिमनोहरणयोग्यया ॥३५॥
 पतत्तस्मिन्निवासिन्यः शृणुताहो सुदेवताः । भवतीभ्यो नमाम्येवा प्रसादः क्रियतां मयि ॥३६॥
 वाच्यो मद्रवनादेवं भवन्तांभिः प्रयत्नतः । कुमारो लक्ष्मणो दृष्ट्वा वनेऽस्मिन् विचरन् ध्रुवम् ॥३७॥
 यथा त्वद्विहरे बाला वनमाला सुदुःखिता । त्वयि मानसमारोप्य प्रेतलोकमुपागता ॥३८॥
 अंशुक्रेन समालम्ब्य स्वं सा न्यग्रोधपादपे । त्वन्निमित्तमसूत्रं तन्वां त्यजन्त्यस्मान्गिरांश्चिता ॥३९॥
 एवमुक्तं त्वया नाथ यदि मे नात्र जन्मनि । समागमः कृतोऽन्यत्र प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥४०॥
 एव निगद्य शाब्दायां समर्पयति पाशकम् । सम्भ्रान्तश्च समालिङ्ग्य सौमित्रिदिदमवबोत् ॥४१॥
 अयि मुग्धे सुकण्ठेऽस्मिन् मद्भुजालिङ्गनोचिते । कस्माद्दंशुकपाशोऽयं त्वया सुमुखि सज्ज्यते ॥४२॥
 अहं स लक्ष्मणो मुख पाशं परमसुन्दरि । यथाश्रुतं निरीक्षस्व न चेत्प्रत्येपि वालिके ॥४३॥
 इत्युक्त्वा पाशमेतस्याः करात् सान्त्वनकोविदः । जहार लक्ष्मणः फेनपुञ्जं तामरसादिव ॥४४॥

कुलीन श्रेष्ठ कुमारी हो ॥२६॥ बहुत भारी शोकके भारसे इसका मन पीड़ित हो रहा है और दुःख दूर करनेका दूसरा उपाय नहीं देखती हुई यह बेचैन हो रही है ॥३०॥ निश्चित ही यह मनचाही वस्तुके न मिलनेसे आत्मघात करना चाहती है अतः छिपकर इसकी चेष्टा देखता हूँ ॥३१॥ इस प्रकार विचार कर कौतुक भरे लक्ष्मण चुपचाप वटवृक्षके नीचे उस प्रकार खड़े हो गये जिस प्रकार कि कल्प वृक्षके नीचे कोई देव खड़ा होता है ॥३२॥ तदनन्तर जिसकी चाल हंसीके समान थी, जो स्तनोंके भारसे झुकी हुई सी जान पड़ती थी, जिसका मुख चन्द्रमाके समान था तथा जिसका उदर अत्यन्त कृश था ऐसी वनमाला भी उसी वृक्षके नीचे पहुँची ॥३३॥ उसे उस प्रकारकी देख लक्ष्मणने विचार किया कि इसके शब्दोंसे ठीक-ठीक माहूम तो कहे कि इसे किससे कार्य है ? ॥३४॥ तदनन्तर जलके समान स्वच्छ वर्णवाले वस्त्रसे फाँसी बनाकर वह कन्या योगियोंका भी मन हरण करनेमें समर्थ वाणीसे इस प्रकार कहने लगी कि अहो इस वृक्षके निवासी देवताओ ! सुनिये, मैं आपके लिए नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥३५-३६॥ कुमार लक्ष्मण इस वनमें अवश्य ही विचरण करते होंगे सो उन्हें प्रयत्न पूर्वक देखकर आप लोग मेरी ओरसे उनसे कहे ॥३७॥ कि तुम्हारे विरहमें कुमारी वनमाला अत्यन्त दुखी होकर तथा तुम्हींमें मन लगाकर मृत्यु लोकको प्राप्त हुई है ॥३८॥ वट-वृक्षपर कपड़ेसे अपने आपको टोंगकर तुम्हारे निमित्त प्राण छोड़ती हुई उस कृशाङ्गीको हमने देखा है ॥३९॥ और यह कह गई है कि हे नाथ ! यद्यपि मेरे इस जन्ममें आपने समागम नहीं किया है तो अन्य जन्ममें प्रसन्नता करनेके योग्य हो ॥४०॥

इतना कह कर वह ज्यों ही शाखा पर फाँसी बाँधती है त्योंही धवड़ाये हुए लक्ष्मणने उसका आलिङ्गन कर यह कहा कि हे मूर्ख ! यह कण्ठ तो मेरी भुजाके आलिङ्गन के योग्य है, हे सुमुखि ! तू इसमें यह वस्त्र की फाँसी क्यों सजा रही है ? ॥४१-४२॥ मैं वही लक्ष्मण हूँ, हे परम सुन्दरि ! यह फाँसी छोड़ो, हे वालिके ! यदि तुम्हें विश्वास न हो तो जैसा मुन रक्खा हो वैसा देख लो ॥४३॥ इस प्रकार कह कर सान्त्वना देनेमें निपुण लक्ष्मणने जिस प्रकार कोई

ततोऽस्ती त्रपया युक्ता दृष्ट्वा मन्थरचक्षुषा । लक्ष्मणं नेत्रचौरेण रूपेण परिलक्षितम् ॥४५॥
 परं विस्मयमापन्ना चिन्तामेवमुपागता । ईषद्वेपथुना युक्ता नवसङ्गमजन्मना ॥४६॥
 किमयं वनदेवीभिः प्रसादो जनितो मम । कारुण्यमुपयाताभिः सन्देशवचनैः परम् ॥४७॥
 सोऽयं यथाश्रुतो नाथः सन्प्राप्तो दैवयोगतः । भवेद्येन मम प्राणाः प्रयान्तो विनिवारिताः ॥४८॥
 इति सन्नित्यन्तनी सा किञ्चित्प्रस्वेदधारिणी । लक्ष्मीधरसमाश्लेषं लब्ध्वात्यन्तमराजत ॥४९॥
 ततो मृदुमहामोदकुसुमोदारसंस्तरे । प्रबुद्धो राघवश्चक्षुर्लक्ष्मणार्थमुदीरयन् ॥५०॥
 अपश्यंश्च समुत्थाय परच्छ जनकाल्मजाम् । प्रदेशे लक्ष्मणो देवि नैतस्मिन् दृश्यते कुतः ॥५१॥
 प्रदोषे संस्तरं कृत्वा सोऽस्माकं पुष्पपल्लवैः । आसीदनतितदूरस्थः कुमारो ह्यत्र नेच्यते ॥५२॥
 नाथ बाह्वायतां तावदिति तस्यां कृतध्वनौ । क्रमादत्युच्चया वाचा वचो ब्याहृतवानिति ॥५३॥
 पृष्ट्वागच्छं क्व यातोऽसि भद्र लक्ष्मण लक्ष्मण । प्रयच्छ वचनं तात चरितं बालकानुज ॥५४॥
 भयमायामि देवेति दत्त्वास्मै संभ्रमी वचः । वनमालासमेतोऽस्तौ ज्येष्ठस्यान्तिकमागतः ॥५५॥
 अर्थारत्रे तदा स्पष्टे निशानाथः समुद्ययौ । ववौ कुमुदगर्भाश्लेषाद्युः सामोदशीतलः ॥५६॥
 ततः पल्लवकान्ताभ्यां हस्ताभ्यां रचिताङ्गलिः । अंशुकावृतसर्वाङ्गा त्रपाविनमितानना ॥५७॥
 ज्ञातनिरशेषकर्तव्या विभ्राणा विनयं परम् । बालावन्दत रामस्य सीतायाश्च क्रमद्वयम् ॥५८॥
 सद्धितीयं ततो दृष्ट्वा सीता लक्ष्मणमब्रवीत् । कुमार सह चन्द्रेण समवायस्त्वया कुतः ॥५९॥
 कथं जानासि देवीति पद्मेनोक्ता जगद् सा । चेष्टया देव जानामि शृणु तुव्यप्रवृत्तया ॥६०॥

कमलसे फेनको दूर करता है उसी प्रकार उसके हाथ से फौसी छीन ली ॥४४॥ तदनन्तर नेत्रोंको चुरानेवाले रूपसे सुशोभित लक्ष्मणको मन्थर दृष्टिसे देख कर वह कन्या लज्जासे युक्त हो गई ॥४५॥ नवसमागमके कारण कुछ-कुछ कौपती हुई वनमाला परम आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगी ॥४६॥ कि कन्या मेरे सन्देश वचनोसे परम दयालुताको प्राप्त हुई वनदेवियोंने ही मुझ पर यह प्रसन्नता की है ? ॥४७॥ जिन्होंने मेरे निकलते हुए प्राण रोके है ऐसे ये प्राणनाथ दैवयोगसे ही यहाँ आ पहुँचे हैं ॥४८॥ इस प्रकार विचार करती और कुछ-कुछ पसीनाको धारण करती हुई वनमाला लक्ष्मणका आलिङ्गन पाकर अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥४९॥

तदनन्तर इधर कोमल तथा महासुगन्धित फूलोंको उत्कृष्ट शय्या पर पड़े रामकी जब निद्रा हटी तो उन्होंने लक्ष्मणकी ओर दृष्टि डाली । लक्ष्मणको न देखकर वे उठे और सीतासे पूछने लगे कि देवि ! यहाँ लक्ष्मण क्यों नहीं दिखाई देता ? ॥५०-५१॥ सायंकालके समय तो वह फूल तथा पत्तोंसे हमारी शय्याकर यहीं पासमें सोया था पर अब यहाँ दिखाई नहीं दे रहा है ॥५२॥ सीताने उत्तर दिया कि हे नाथ ! आवाज देकर चुलाइए । तब रामने यथाक्रमसे उच्च-वाणीमें इस प्रकार शब्द कहे कि हे लक्ष्मण ! तू कहीं चला गया, आओ-आओ, हे तात ! हे बालक ! हे अनुज ! कहीं हो, आवाज देओ ॥५३-५४॥ रामकी आवाज सुन लक्ष्मणने हड़बड़ा कर उत्तर दिया कि देव ! यह आता हूँ । इस प्रकार उत्तर देकर वे वनमालाके साथ अग्रजके समीप आ पहुँचे ॥५५॥ उस समय स्पष्ट ही आधी रात थी, चन्द्रमाका उदय हो चुका था और कुमुदोंके गर्भसे मिलकर सुगन्धित तथा शीतल वायु वह रही थी ॥५६॥ तदनन्तर जिसने कमलके समान सुन्दर हाथोंसे अङ्गलि बँध रखी थी, चन्द्रसे जिसका सर्व शरीर आवृत था, लज्जासे जिसका मुख नम्रीभूत हो रहा था, जो समस्त कर्तव्यको जानती थी तथा परम विनयको धारण कर रही थी ऐसी वनमालाने आकर राम तथा सीताके चरणयुगलको नमस्कार किया ॥५७-५८॥ तदनन्तर लक्ष्मणको स्त्री सहित देख सीताने कहा कि हे कुमार ! तुमने तो चन्द्रमाके साथ मित्रता कर ली ॥५९॥ रामने सीतासे कहा कि हे देवि ! तुम किस प्रकार जानती हो ?

ज्योत्स्नया सहितश्चन्द्रो यस्मिन् काले समागतः । लक्ष्मीधरोऽपि तत्रैव सहितो बाल्यानाया ॥६१॥
 यथा ज्ञापयसि स्पष्टमेवमेतदिति श्रुत्वा । लक्ष्मीधरोऽन्तिके तस्यौ हिया किञ्चित्तानन ॥६२॥
 उल्लुङ्घनेत्रराजीवाः प्रमोदापिंतचेतसः । प्रसन्नवक्त्रतारेशाः सुशीला विस्मान्निताः ॥६३॥
 कथाभिः स्मितयुक्ताभिः याताभिः स्थानयुक्ताम् । ते तत्र त्रिदशच्छाया नष्टनिद्राः सुखं स्थिताः ॥६४॥
 सत्योऽत्र वनमालायाः समये बोधमांगताः । शयनीयं तथा शून्यं दृष्ट्युच्चस्तमानसाः ॥६५॥
 ततोऽभ्रपूर्णनेत्राणां गवेषय्याकुलाः भवान् । तासां हाकारशब्देन प्रबोधं भेजिरे भटाः ॥६६॥
 उपलभ्य च वृत्तान्तं सन्नह्यारूढसप्तयः । शूराः पदातयश्चान्ये कुन्तकामुंकापाणयः ॥६७॥
 दिशः सर्वाः समास्तीर्य दधातुद्वभ्रान्तमानसाः । भीतिभीतिसमायुक्ताः सर्मारस्येव शावकाः ॥६८॥
 ततः कैरपि ते दृष्टाः समेता वनमालया । निवेदिताश्च शेषस्य जनस्य जववाहनैः ॥६९॥
 ज्ञातनिशेषवृत्तान्तैस्तैरल सम्मदान्वितैः । पृथिवीधराजस्य कृतं दिष्ट्याभिवर्धनम् ॥७०॥
 उपायारम्भमुक्तस्य त्वाद्य नगरं प्रभो । जगाम प्रकटीभावं महारत्ननिधिः स्वयम् ॥७१॥
 पपात वनसो वृष्टिर्विना मेघसमुद्भवात् । परिकर्मविनिर्मुक्तं सस्यं क्षेत्रात् समुद्गतम् ॥७२॥
 जामाता लक्ष्मणोऽप्येते वर्तते निकटे पुरः । जीवितं हातुमिच्छन्त्या सन्नतो वनमालया ॥७३॥
 पश्यश्च सीतया साकं परमो भवतः प्रियः । शच्येव सहितो देवेन्द्रोऽयमत्र विगजते ॥७४॥
 वदतामिति श्रुयानां वचनैः प्रियशंसिभिः । सुखनिर्भरचेतस्को मुमूर्च्छं नृपतिः क्षणम् ॥७५॥

इसके उत्तरमे सीताने कहा कि हे देव ! मैं समान प्रवृत्त चेष्टासे जानती हूँ सुनिये ॥६०॥ जिस समय चन्द्रमा चन्द्रिका अर्थात् चोदनीके साथ आया उसी समय लक्ष्मण भी इस बालके साथ आया है इससे स्पष्ट है कि इसकी चन्द्रमाके साथ मित्रता है ॥६१॥ जैसा आप समझ रही हैं बात स्पष्ट ही ऐसी है इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण लज्जासे कुछ नतानन हो पास ही मे बैठ गये ॥६२॥ इस तरह जिनके नेत्रकमल विकसित थे, जो आनन्दसे विभोर थे, जिनके मुख रूपी चन्द्रमा अत्यन्त प्रसन्न थे, जो सुशील थे, आश्चर्यसे सहित थे, देवोंके समान कान्तिके धारक थे तथा जिनकी निद्रा नष्ट हो गई थी ऐसे वे सब, स्थानकी अनुकूलताको प्राप्त मन्दहास्य युक्त कथाएँ करते हुए वहाँ सुखसे विराजमान थे ॥६३-६४॥ यहाँ समयपर जब वनमालाकी सखियों जागीं तो शय्याको सूनी देख भयभीत हो गई ॥६५॥ तदनन्तर जिनके नेत्र ओंछुओंसे व्याप्त थे तथा जो वनमालाकी खोजके लिए छटपटा रहीं थी ऐसी उन सखियोंकी हाहाकारसे योद्धा जाग उठे ॥६६॥ तथा सब समाचार जानकर तैयार हो कुछ तो घोड़ोंपर आरूढ़ हुए और कुछ भाले तथा धनुष हाथमें ले पैदल ही चलनेके लिए तैयार हुए ॥६७॥ इस प्रकार जिनके चित्त धवड़ा रहे थे, जो भय और प्रीतिसे युक्त थे तथा जो शीघ्र गतिमें वायुके बच्चोंके समान जान पड़ते थे ऐसे योद्धा समस्त दिशाओंको आच्छादित कर दौड़े ॥६८॥

तदनन्तर कितने ही योद्धाओंने वनमालाके साथ बैठे हुए उन सबको देखा और देख कर शीघ्रगामी वाहनोसे चलकर शेषजनोंके लिए इसकी खबर दी ॥६९॥ तदनन्तर समस्त समाचारको ठीक-ठीक जानकर जो अत्यधिक हर्षित हो रहे थे ऐसे कुछ योद्धाओंने पृथिवीधर राजाके लिए भाग्य वृद्धिकी सूचना दी ॥७०॥ उन्होंने कहा कि हे प्रभो ! उपायारम्भसे रहित होनेपर भी आज आपके नगरमें स्वयं ही महारत्नोका खजाना प्रकट हुआ है ॥७१॥ आज आकाशसे विना मेघके ही वर्षा पड़ी है तथा जोतना बखेरना आदि क्रियाओंके विना ही खेतसे धान्य उत्पन्न हुआ है ॥७२॥ आपका जामाता लक्ष्मण नगरने निकट ही वर्तमान है तथा प्राण छोड़नेकी इच्छा करनेवाली वनमालाके साथ उसका भिलाप हो गया है ॥७३॥ सीता सहित राम भी जो कि आपको अत्यन्त प्रिय हैं इन्द्राणी सहित इन्द्रके समान यहीं सुशोभित हो रहे हैं ॥७४॥ इस प्रकार कहनेवाले भृत्योंके प्रिय सूचक वचनोंसे जिसके हृदयमें सुखका

ततः प्रबुद्धचित्तेन परं प्रमदमीयुया । दत्तं बहुयत्नं तेभ्यः स्मितशुक्लमुखेन्दुना ॥७६॥
 अचिन्तयच्च हीं सात्रु सज्जानां दुहितुर्मम । अनिश्चितगतिः प्राप्तो यद्य सुमनोरथः ॥७७॥
 सर्वैतामेव जीवानां धनमिष्टसमागमः । जायते पुण्ययोगेन यच्चात्मसुखकारणम् ॥७८॥
 योजनानां शतेनापि परिच्छिन्ने श्रुतान्तरे । इष्टो मुहूर्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागिभिः ॥७९॥
 ये पुण्येन त्रिनिर्मुक्ताः प्राणिनो ह्युखभागिनः । तेषां हस्तमपि प्राप्तमिष्टवस्तु पलायते ॥८०॥
 अरण्यानां गिरेर्भूधिन विपमे पथि सागरे । जायन्ते पुण्ययुक्तानां प्राणिनामिष्टसङ्गमाः ॥८१॥
 इति सञ्चिन्त्य जायथै तं वृत्तान्तमशेषतः । उत्थाप्याकथयत्तोपादचरैः कृच्छ्रनिर्गतैः ॥८२॥
 पुनः पुनरष्टच्छत् सा सुमुखी स्वप्नशङ्कया । सज्जातनिश्चयादाप स्वसवेद्यां सुखासिकाम् ॥८३॥
 ततो रामाधरच्छाये समुद्यति दिवाकरे । प्रेमसम्पूरितो राजा सर्वबान्धवसङ्गतः ॥८४॥
 वरवारणमारुह्य धृत्या परमया युतः । प्रतस्थे परमं द्रष्टुमुत्सुकः प्रियसङ्गमम् ॥८५॥
 माता च वनमालायाः पुत्रैरेष्टाभिरन्विता । आरुह्य शिविका रम्यां प्रियस्य पदवीं श्रिता ॥८६॥
 अनन्तरं नृपादेशात् कशिपुः प्रचुरं हितम् । गन्धमारुवा दिवाशेषमनीयत मनोहरम् ॥८७॥
 ततो दूरात् समालोक्य संकुल्लेच्छणपङ्कजम् । अवतीर्य गजाद् राजा डुढीके राममाद्री ॥८८॥
 परिप्लव्य महाप्रात्या सहितं लक्ष्मणेन तम् । अष्टच्छत् कुशलं कृष्टिं जानकीं च सुमानसः ॥८९॥

भरना फूट पड़ा था ऐसा राजा पृथिवीपर हर्षातिरेकसे क्षण भरके लिए मूर्च्छित हो गया ॥७५॥ तदनन्तर सचेत होनेपर जो परम हर्षको प्राप्त था तथा जिसका मुख रूपी चन्द्रमा मन्द मुस्कानसे धवल हो रहा था ऐसे राजाने उन श्रुत्योके लिए बहुत भारी धन दिया ॥७६॥ वह विचार करने लगा कि अहो, मेरी पुत्रीका वड़ा भाग्य है कि जिससे उसका यह अनिश्चित मनोरथ स्वयं ही पूर्ण हो गया ॥७७॥ समस्त जीवोंको धन, इष्टका समागम तथा जो भी आत्मसुखका कारण है वह सब पुण्य योगसे प्राप्त होता है ॥७८॥ जिसके बीचमें सौ योजनका भी अन्तर प्रसिद्ध है वह इष्ट वस्तु पुण्यात्मा जीवोंको मुहूर्तमात्रमें प्राप्त हो जाती है ॥७९॥ इसके विपरीत जो प्राणी पुण्यसे रहित हैं वे निरन्तर दुखी रहते हैं तथा उनके हाथमें आई हुई भी इष्ट वस्तु दूर हो जाती है ॥८०॥ अटवियोंमें बीचमें, पहाड़की चोटोपर विषम मार्ग तथा समुद्र के मध्यमें भी पुण्यशाली मनुष्योंको इष्ट समागम प्राप्त होते रहते हैं ॥८१॥ इस प्रकार विचारकर उसने स्त्रीको उठाया और उसके लिए हर्षातिरेकके कारण कष्टसे निकलनेवाले वचनोंके द्वारा सब समाचार कहा ॥८२॥ उस सुमुखीने 'कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ' इस आशङ्कासे बार-बार पूछा और उत्पन्न हुए निश्चय से वह स्वसवेद्य सुखको प्राप्त हुई ॥८३॥

तदनन्तर जब स्त्रीके ओठके समान लाल-लाल कान्तिको धारण करनेवाला सूर्य उदित हो रहा था । तब प्रेमसे भरा, सर्व बन्धुजनोसे सहित, परम कान्तितसे युक्त और परम प्रिय समागम देखनेके लिए उत्सुक राजा पृथिवीधर उत्तम हाथीपर सवार हो चला ॥८४-८५॥ आठो पुत्रोंसे सहित वनमालाकी माता भी मनोहर पालकीपर सवार हो पतिके मार्गमें चली ॥८६॥ इसके पीछे राजाकी आज्ञानुसार सेवकोंके द्वारा अत्यधिक हितकारी वस्त्र तथा गन्ध माला आदि समस्त मनोहर पदार्थ ले जाये जा रहे थे ॥८७॥

तदनन्तर दूरसे ही विकसित नेत्रकमलोंके धारी रामको देखकर राजा पृथिवीधर हाथी से उतरकर आदरके साथ उनके पास पहुँचा ॥८८॥ तत्पश्चात् विधि विधानके वेत्ता तथा शोभा हृदयके धारक राजाने बड़े प्रेमसे राम लक्ष्मणका आलिङ्गनकर उनसे तथा सीतासे कुशल समा-

तद्देव्यपि तयोः पृष्ट्वा क्षेमं क्षुस्तिग्यलोचना । निखिलाचारनिष्णाता जानकीं परिष्वजे ॥६०॥
 उपचारो यथायोग्य तयोस्तैरपि निर्मितः । आचार्यक हिते याता वस्तुन्यत्र प्रतिष्ठितम् ॥६१॥
 वीणावेणुमृदङ्गादिसहितो गीतनिःस्वनः । क्षुब्धार्णवसमो जज्ञे वन्दिवृन्दानुनादितः ॥६२॥
 उत्सवः स महाज्ञातः पूजिताखिलसङ्गतः । नृत्यञ्चोक्तक्रमन्यासादातिकम्पितभूतलः ॥६३॥
 दिशस्त्प्रीतिनादेन प्रतिशब्दसमन्विताः । चक्रुः परस्परालापिव सम्मदनिर्भराः ॥६४॥
 शनैः प्रसन्नतां याते तस्मिन्नथ महोत्सवे । शरीरकर्म तैः सर्वं कृतं स्नानाशनादिकम् ॥६५॥
 ततः सतिद्विपारूढसामन्तशतवेष्टितौ । सारङ्गोपमपादातमहाचक्रपरिच्छदौ ॥६६॥
 पुरःप्रवृत्तसोत्साहराजस्थपृथिवीधरौ । विदग्धसूतलोकेन कृतमङ्गलनिस्वनौ ॥६७॥
 हारराजितवचस्कावनर्षाद्युक्तधारिणौ । हरिचन्दनदिग्धाङ्गावारूढौ रथमुत्तमम् ॥६८॥
 नानारत्नांशुसम्पर्कसमुद्भूतेन्द्रकामुंकी । शशाङ्कभास्कराकारावशक्यगुणवर्णनौ ॥६९॥
 सौधमैशानदेवाम्नौ जानकीसहितौ पुरम् । कुवाणौ विस्मयं तुङ्गं प्रविष्टौ रामलक्ष्मणौ ॥१००॥
 वरमालाधरौ गन्धबद्धपट्पदमण्डलौ । सम्पूर्णचन्द्रवदनौ विनीताकारधारिणौ ॥१०१॥
 यत्नेषु कृते तस्मिन्ललामे पुष्टमेदने । रेमाते परमं भोगं सुज्ञानौ निजयेच्छ्या ॥१०२॥

चार पूजा ॥६॥ जिसके नेत्रोंसे स्नेह टपक रहा था तथा जो सब प्रकारका आचार जाननेमें निपुण थी ऐसी रानीने भी राम-लक्ष्मणसे कुशल पूछकर सीताका आलिङ्गन किया ॥६०॥ उन सवने भी राजा रानीका यथायोग्य सत्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि वे इस विषयमें अति-शय निपुणताको प्राप्त थे ॥६१॥ तदनन्तर जो वीणा बँसुरी मृदङ्ग आदिके शब्दसे सहित था, जो लोभको प्राप्त हुए समुद्रकी तुलना धारण कर रहा था और जिसमें बन्दीजनोंके द्वारा उच्चारित विरुदाबलीका नाद गूँज रहा था ऐसा सङ्गीतका शब्द होने लगा ॥६२॥ जिसमें आये हुए समस्त इष्टजनोंका सत्कार हो रहा था, तथा नृत्य करनेवाले मनुष्योंके चरण निक्षेपसे जिसमें भूतल काँप रहा था ऐसा वह महान् उत्सव सम्पन्न हुआ ॥६३॥ तुरहीके शब्दसे जिनमें प्रतिध्वनि गूँज रही थी ऐसी दिशाएँ हर्षसे ओत-प्रोत हो मानो परस्पर वार्तालाप ही कर रहीं थी ॥६४॥ अथानन्तर धीरे-धीरे जब वह महोत्सव शान्त हुआ तब उन्होंने स्नान भोजन आदि शरीर सम्बन्धी सब कार्य किये ॥६५॥

तदनन्तर जो हाथी घोड़ों पर बैठे हुए सैकड़ों सामन्तोंसे घिरे थे, मृगतुल्य पैदल सिपाहियोंका बड़ा दल जिनके साथ था, उत्साहसे भरा राजा पृथिवीधर जिनके आगे-आगे चल रहा था, चतुर वन्दीजन जिनके आगे मङ्गल ध्वनि कर रहे थे, जिनके वचन-स्थल हारोंसे सुशोभित थे, जो अमूल्य वस्त्र धारण किये हुए थे, जिनके शरीर हरिचन्दनसे लिप्त थे, जो उत्तम रथ पर सवार थे, जिनके नात्ता रत्नोंकी किरणोंके सम्पर्कसे इन्द्रधनुष उठ रहे थे, चन्द्र और सूर्यके समान जिनके आकार थे, जिनके गुणोंका वर्णन करना अशक्य था, सौधर्म तथा ऐशानेन्द्रके समान जिनकी कान्ति थी, जो अत्यधिक आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे, जिनके गलेमें वरमालाएँ पड़ी थीं, सुगन्धिके कारण जिनके आस-पास भ्रमरोंने मण्डल बंध रक्खे थे, जिनके मुख चन्द्रमाके समान थे तथा जो विनीत आकारको धारण कर रहे थे ऐसे राम-लक्ष्मणने नगरमें प्रवेश किया ॥६६-१०१॥ जिस प्रकार पहले, यत्नके द्वारा निर्मित नगरमें इच्छानुसार भोग भोगते हुए वे रमण करते थे उसी प्रकार राजा पृथिवीधरके नगरमें भी वे इच्छानुसार उच्छृष्ट

१. तद्देव्यपि म० । २. हितो याता ज० । ३. नृत्यलोक म० । ४. सम्मदनिर्भराः म० ।

पुष्पिताश्रावृत्तम्

इति वनराहनान्यपि प्रयाताः सुकृतसुसंस्कृतचेतसो मनुष्याः ।
 भक्तिपरमगुणानुपाश्रयन्ते रविरुचयः सहसा पद्मार्थलाभान् ॥१०३॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यश्रोत्रे पद्म-पुराणे-पद्मायने वनमालामिधानं नाम
 पटत्रिंशत्तमं पर्व ॥३६॥



भोग भोगते हुए रमण करने लगे ॥१०२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिनके चित्त पुण्यसे सुसंस्कृत हैं तथा जो सूर्यके समान दीप्तिके धारक हैं ऐसे मनुष्य सधन वनोंमें पहुँचकर भी सहसा उत्कृष्ट गुणोंसे युक्त पदार्थोंको प्राप्त कर लेते हैं ॥१०३॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितमें वनमालाका वर्णन करनेवाला छत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३६॥

सप्तत्रिंशत्तमं पर्व

अन्यदाथ सुखासीनं समुदीरिततत्कथम् । राघवाल्हङ्कृतास्यानं राजानं पृथिवीधरम् ॥१॥
 दूराध्वपरिखिन्नाङ्गो लेखवाहः समाययौ । प्रणम्य च समासीनो द्रुतं लेखं समाप्यत् ॥२॥
 गृह्णित्वासौ ततो राज्ञा बाह्यनामकलक्षितः । लेखकायापितः साधुं सन्धिविग्रहवेदिने ॥३॥
 स विमुच्यानुवाच्यैनं चायितो राजचक्षुषा । लिपितुञ्जुर्विधौ चारुहिरत्यवाचयदुच्चगीः ॥४॥
 स्वस्तिस्वस्तिकोदारप्रभावनमतिकर्मणे । श्रीमते नतराजानामतिवीर्याय शर्मणे ॥५॥
 श्रीनन्द्यावर्तनगरान्नगराज इवोत्थितः । ख्यातः पञ्चमहाशब्दः शस्त्रशास्त्रविशारदः ॥६॥
 राजाधिराजतास्त्रिष्टः प्रतापवशिताहितः । अनुरञ्जितसर्वकमः समुद्यन्नास्करद्युतिः ॥७॥
 अतिवीर्यः समस्तेषु कर्तव्येषु महानयः । राजमानगुणः श्रीमानतिवीर्यः क्षितीश्वरः ॥८॥
 आज्ञापयति नगरे विजये पृथिवीधरम् । अचरैर्लेखसंक्रान्तैः कुशलप्रदनपूर्वकम् ॥९॥
 यथा मे केचिदेतस्मिन् सामन्ता धरणीतले । सकोपनाहनास्ते मे वर्तन्ते पार्ष्ववर्तिनः ॥१०॥
 आयान्बहुविधा म्लेच्छाश्वतुरङ्गसमन्विताः । नानाशास्त्रकरा वाक्यमर्चन्ति समभूतयः ॥११॥
 वराञ्जननगाभानां करिणामष्टभिः शतैः । समीरशावतुल्यानां सहस्रैर्वीजिनां त्रिभिः ॥१२॥
 महाभोगो महातेजा मद्गुणाङ्गष्टमानसः । राजा विजयशार्दूलः सोऽथ प्राप्नो ममान्तिकम् ॥१३॥

अथानन्तर एक दिन राजा पृथ्वीधर सभामण्डपमें मुखसे विराजमान थे, पास ही मे राम भी सभाको अलङ्कृत कर रहे थे तथा उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा चल रही थी कि इतनेमे दूर मार्गसे आनेके कारण जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसा एक पत्रवाहक आया और राजाको प्रणाम कर बैठनेके बाद उसने शीघ्र ही एक पत्र समर्पित किया ॥१-२॥ वह पत्र जिसे दिया जाता था उसके नामसे अङ्कित था । राजाने पत्रवाहकसे पत्र लेकर सन्धिविग्रहको अच्छी तरह जाननेवाले लेखक (मुन्शी) के लिए सौंप दिया ॥३॥ वह लेखक सब लिपियोंके जाननेमें निपुण था, राजाके नेत्र द्वारा सम्मान प्राप्त कर उसने वह पत्र खोला । एक बार स्वयं वोंचा और फिर उच्च स्वरसे इस प्रकार वोंच कर सुनाया ॥४॥ उसमे लिखा था कि जो इन्द्रके समान उदार प्रभावका धारक तथा बुद्धिमान् है लक्ष्मीमान् है, तथा नम्रीभूत राजाओंके लिए मुख देनेवाला है ऐसा राजा अतिवीर्य स्वस्तिरूप है मङ्गलरूप है ॥५॥ जो नगराज अर्थात् सुमेरुके समान (उदार) है, प्रसिद्ध है, महायशका धारी है, शस्त्रमे निपुण है, राजाधिराजपनासे आलिङ्गित है, जिसने अपने प्रतापसे शत्रुओंको वश कर लिया है, जिसने समस्त पृथिवीको अनुरञ्जित कर लिया है, उगते हुए सूर्यके समान जिसकी कान्ति है, जो अतिशय पराक्रमी है, समस्त कार्यमें महानीतिज्ञ है, और जिससे अनेक गुण शोभायमान हो रहे हैं ऐसा श्रीमान् अतिवीर्य राजा नन्द्यावर्तपुरसे विजयनगरमे वर्तमान राजा पृथिवीधरको लेखमें लिखित अक्षरोंसे कुशल समाचार पूछता हुआ आज्ञा देता है कि इस पृथिवी तल पर मेरे जो सामन्त है वे खजाना और सेनाके साथ मेरे पास हैं ॥६-१०॥ जिनके हाथमें नाना प्रकारके शस्त्र देवीप्यमान हैं तथा जो एक सदृश विभूतिके धारक हैं ऐसे म्लेच्छ राजा अपनी-अपनी चतुरङ्ग सेनाके साथ यहाँ आ गये हैं ॥११॥ जो महाभोगी और महाप्रतापी है तथा जिसका मन हमारे गुणोंसे आकर्षित है ऐसा राजा विजयशार्दूल भी अंजनगिरिके समान आभावाले आठ

१. समर्पयत् म० । २. बाह्यनामाङ्कलक्षितः म० । ३. साधुः सन्धि म० । ४. वापितो म०, ख० ।
 ५. इव स्थितः ख० ।

मृगध्वजो रणोर्मिश्र कलभः केसरी तथा । अङ्गा महीभृतः पद्मिरीम करदिनां शतैः ॥१३॥
 प्रत्येकं पञ्चभिः ससिंहस्यैश्च समावृताः । प्राप्ताः कृतमहोत्साहा नयपण्डितदुङ्घवैः ॥१५॥
 उत्साहयन् छलोद्भूतं नयशास्त्रविशारदम् । पञ्चालाधिपमात्मार्थकारिणं ज्ञातकारणम् ॥१६॥
 द्विरदानां सहस्रेण तैर्ययूनां च ससभिः । पौण्ड्रचमापतिरालीनः प्रतापं परमं वहन् ॥१७॥
 साधनेन तदग्रेण सम्प्राप्तो मगधाधिपः । पूर्यमाणो नृपैर्वाहो रैवो नदशतैरिव ॥१८॥
 सहस्रैरागतोऽष्टाभिर्दन्तिना जलद्विपाम् । अरवीयेन सुकेशश्च दुर्लभान्तेन वज्रधृक् ॥१९॥
 सुभद्रो मुनिभद्रश्च साधुभद्रश्च नन्दनः । तुल्या वज्रधरस्यैते सम्प्राप्ता यवनाधिपाः ॥२०॥
 अवार्यवीर्यसंप्राप्तः सिंहवीर्यो महीपतिः । वाङ्गः सिंहरथश्चेतौ मातुलौ बलशालिनौ ॥२१॥
 पदातिभो रथैर्नामैः स्थूरीप्रष्टैः प्रतिष्ठितैः । वत्सस्वामी समायातो मारिदत्तोतिभूरिभिः ॥२२॥
 आंबहः ओष्ठिलो राजा सौवीरो धीरमन्दिरः । प्राप्तौ दुर्वदसंख्येन साधनेनान्विताविनौ ॥२३॥
 एतेऽन्ये च महासत्त्वा राजानः श्रुतशासनाः । अक्षौहिणोभिरायाता दशभिस्त्रिदशोपमाः ॥२४॥
 अर्माभिरनुयातोऽहं प्रस्थितो भरतं प्रति । त्वामुदीक्षे यतो लेखदर्शनानन्तरं ततः ॥२५॥
 आगन्तव्यं त्वया प्रीत्या कार्याम्रेक्षितया तथा । पर्यामोऽज्यादरेण त्वां यथा वर्षं कृपीबलाः ॥२६॥
 एवं च वाचिते लेखे न थावत्पृथिवीधरः । किञ्चिद्दूचे सुमित्रायाः सूनुस्तावद्भापत ॥२७॥

सौ हाथियों और वायुके पुत्रके समान चपल तीन हजार घोड़ोंके साथ आज हमारे पास आ गया है ॥१२-१३॥ बहुत भारी उत्साहके देनेवाले तथा नीति निपुण बुद्धिके धारक जो मृगध्वज, रणोर्मि, कलभ, और केसरी नामके अङ्ग देशके राजा हैं वे भी प्रत्येक छह सौ हाथियों तथा पाँच हजार घोड़ोंसे समावृत हो आ पहुँचे हैं ॥१४-१५॥ जो छलपूर्ण युद्ध करनेमें निपुण है, नीति शास्त्रका पारगामी है, प्रयोजन सिद्ध करनेवाला है तथा युद्धकी सब गतिविधियोंका जानकार है ऐसे पञ्चाल देशके राजाको उत्साहित करता हुआ पौण्ड्रदेशका परम प्रतापी राजा, दो हजार हाथियों और सात हजार घोड़ोंके साथ आ गया है ॥१६-१७॥ जिस प्रकार रेवा नदीके प्रवाह में सैकड़ों नदियों आकर मिलती है इसी प्रकार जिसमें अन्य अनेक राजा आ-आकर मिल रहे हैं ऐसा मगध देशका राजा भी पौण्ड्राधिपतिसे भी कहीं अधिक सेना लेकर आया है ॥१८॥ वज्रको धारण करनेवाला राजा सुकेश, मेघके समान कान्तिको धारण करनेवाले आठ हजार हाथियों और जिसका अन्त पाना कठिन है ऐसी घोड़ोंकी सेनाके साथ आ पहुँचा है ॥१९॥ जो इन्द्रके समान पराक्रमके धारी हैं, ऐसे सुभद्र, मुनिभद्र, साधुभद्र और नन्दन नामक भवनोंके राजा हैं वे भी आ गये हैं ॥२०॥ जो अवार्य वीर्यसे सम्पन्न है, ऐसा राजा सिंहवीर्य, तथा वाङ्ग देशका राजा सिंहरथ ये दोनों मेरे मामा हैं सो बहुत भारी सेनासे सुशोभित होते हुए आये हैं ॥२१॥ वत्स देशका राजा मारिदत्त बहुत भारी पदाति, रथ, हाथी और उत्तमोत्तम घोड़ोंके साथ आया है ॥२२॥ अम्बष्ठ देश का राजा ओष्ठिल और सुवीर देशका स्वामी धीरमन्दिर ये दोनों असंख्यात सेनाके साथ आ पहुँचे हैं ॥२३॥ तथा इनके सिवाय जो और भी महापराक्रमी एवं देवोंकी उपमा धारण करने वाले अन्य राजा हैं वे मेरी आज्ञा श्रवणकर सेनाओंके साथ आ चुके हैं ॥२४॥ इन सब राजाओं को साथ लेकर मैंने अयोध्याके राजा भरतके प्रति प्रस्थान किया है, सो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, अतः तुम्हें पत्र देखनेके बाद तुरन्त ही यहाँ आना चाहिए। तुम्हारी मुझमें प्रीति ही ऐसी है कि जिससे आप दूसरे कार्यके प्रति दृष्टि भी नहीं डालेंगे। जिस प्रकार किसान वर्षाको बड़े आदरसे देखते हैं, उसी प्रकार हम भी तुम्हें बड़े आदरसे देखते हैं ॥२५-२६॥ इस प्रकार पत्र

अतिवीर्यं तथाबुद्धौ भरतस्य विचेष्टितम् । तव कीदृगिति ज्ञातं भद्रस्य दूतस्य ते ॥२८॥
 एवं वायुगतिः पृथो जगाद् निखिलं मम । विदितं राजचरितमन्तरङ्गो ह्यर्थ परः ॥२९॥
 इच्छामि विशदं श्रोत्रुमित्युक्ते पुनरब्रवीत् । शृणु चित्तं समाधाय भवतश्चेत्कुतूहलम् ॥३०॥
 श्रुतबुद्धिरिति ख्यातो दूतः श्रुतविशारदः । प्रहितः स्वाभिनास्माकं गत्वा भरतमब्रवीत् ॥३१॥
 दूतोऽस्मि शक्रतुल्यस्य प्रणताखिलभूतः । अतिवीर्यनरेन्द्रस्य नयन्यासमनीषिणः ॥३२॥
 सप्रप्य साध्वसं यस्मान्नरकैसरिणः परम् । भजन्ते रिपुसारङ्गा न निद्रां वसतिष्वपि ॥३३॥
 विनीता पृथिवी यस्य चतुरम्भोधिमैखला । आज्ञां पाणिगृहीतेव कुर्वते परिपालिता ॥३४॥
 आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्तमिति सत्क्रियः । वर्णैर्मदास्यविन्यस्तैरुज्जितात्मा समन्ततः ॥३५॥
 यथा भज सभागत्य भृत्यतां भरत द्रुतम् । अयोध्यां वा परित्यज्य भज पारमुदन्वतः ॥३६॥
 ततः क्रोधपरीताङ्गः शत्रुघ्नश्चण्डया गिरा । जगाद् निष्प्रतीकारो दावानल इवोत्थितः ॥३७॥
 भजत्येव तथा देवो भरतस्तस्य भृत्यताम् । यथा सङ्गायते युक्तमिदं तावत्प्रभाषितम् ॥३८॥
 विनीतां च परित्यज्य सचिवेषु प्रभुभुं वभम् । यात्येवोदन्वतः पारं वशीकुर्वन् क्रमानवान् ॥३९॥
 वचस्त्वां ज्ञापयामीति नितरां तस्य भोचितम् । रासमस्य यथा मत्तवारणधिपगर्जितम् ॥४०॥
 सूचयत्यथा तस्य मृत्युमेतद्वचः स्फुटम् । उत्पातभूतमेतो वा स नूनं वायुवर्यताम् ॥४१॥

बोचे जानेपर राजा पृथिवीधर जब तक कुछ नहीं कह पाये कि तब तक उसके पहले ही लक्ष्मण ने कहा कि हे भद्र ! हे समीचीन बुद्धिके धारक दूत ! तुझे मालूम है कि राजा अतिवीर्यके उस तरह रुष्ट होनेमें भरतकी कैसी चेष्टा कारण है अर्थात् अतिवीर्य और भरतमें विरोध होने का क्या कारण है ? ॥२७-२८॥ इस प्रकार लक्ष्मणके पूछनेपर उस वायुगति नामक दूतने कहा कि मैं चूँकि राजाका अत्यन्त अन्तरङ्ग व्यक्ति हूँ अतः मुझे सब मालूम है ॥२९॥ इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि तो मैं सुनना चाहता हूँ । इस प्रकार कहे जानेपर वायुगति दूत बोला कि यदि आपको कुतूहल है तो चित्त स्थिर कर सुनिए मैं कहता हूँ ॥३०॥ उसने कहा कि एक वार हमारे राजा अतिवीर्यने श्रुतबुद्धि नामका निपुण दूत भरतके पास भेजा, सो उसने जाकर भरतसे कहा कि जो इन्द्रके समान पराक्रमी है । जिसे समस्त राजा नमस्कार करते हैं तथा जो नयके प्रयोग करनेमें अत्यन्त निपुण है ऐसे राजा अतिवीर्यका मैं दूत हूँ ॥३१-३२॥ जो मनुष्योंमें सिंहके समान है तथा जिससे भयभीत होकर शत्रु रूप मृग अपनी वसतिकाश्रामे निद्राको प्राप्त नहीं होते ॥३३॥ चार समुद्र ही जिसकी कर्दमेखला है, ऐसी समस्त पृथिवी श्लोकके समान वड़ी विनयसे जिसकी आज्ञाका पालन करती है, जो उत्तम क्रियाओंका आचरण करनेवाला है तथा सब ओरसे जिसकी आत्मा अत्यन्त वलिष्ठ है, ऐसे राजा पृथिवीपर मेरे मुखमें स्थापित किये हुए अक्षरोंसे आपको आज्ञा देते हैं कि हे भरत ! तू शीघ्र ही आकर मेरी दासता स्वीकृत कर अथवा अयोध्या छोड़कर समुद्रके उस पार भाग जा ॥३४-३६॥

तदनन्तर जिसका शरीर क्रोधसे व्याप्त हो रहा था तथा उठी हुई दावानलके समान जिसका प्रतिकार करना कठिन था ऐसा शत्रुघ्न तीक्ष्ण वाणीसे बोला कि अरे दूत ! राजा भरत उसकी भृत्यताको उस तरह अभी हाल स्वीकृत करते हैं कि जिस तरह उसका यह कहना ठीक सिद्ध हो जाय ? अयोध्या छोड़नेकी बात कही सो अभ्युदयको धारण करनेवाले राजा भरत अयोध्याको मन्त्रियों पर छोड़ छुद्र मनुष्योंकी वश करनेके लिए अभी हाल समुद्रके पार जाते हैं ॥३७-३९॥ परन्तु मैं तुम्हें कह रहा हूँ कि जिस प्रकार मदनोन्मत्त हाथीके प्रति गधेकी गर्जना उचित नहीं जान पड़ती, उसी प्रकार भरतके प्रति तेरे स्वामीकी यह गर्जना विलकुल ही उचित नहीं है ॥४०॥ अथवा उसके यह वचन स्पष्ट ही उसकी मृत्युको सूचित करते हैं । जान पड़ता है

१. भद्रास्य दूत सन्मते ब० । भद्रस्य इतस्य ते म० (?) । २. यात्येवोन्नतः म० ।

वैराग्यादथवा ताते तपोवनमुपागते । नरेन्द्रेण समाविष्टो ग्रहेण खलवेष्टितः ॥४२॥
 यद्यप्युपशमं यातस्ताताग्निर्मुक्तिकाम्यया । तथापि निर्गतस्तस्मात्कुल्लिखस्तं दहाम्यहम् ॥४३॥
 सिंहे करीन्द्रकीलालपङ्कलोहितकेसरे । शान्तेऽपि शावकस्तस्य कुरते करिपातनम् ॥४४॥
 इत्युन्वत्वा दह्यमानोऽखेणुकान्तरभीषणम् । जहास तेजसास्थानं असमानः इवाखिलम् ॥४५॥
 जगाद च क्रुदुत्स्य तावदस्य विधीयताम् । खलीकारोऽप्यर्वायस्य सत्यह्वार इव द्रुतम् ॥४६॥
 इत्युक्ते पादयोर्दूतो गृहीत्वा कुपितैर्भटैः । सारमेय इवागर्स्वा ह्यन्यमानः कृतध्वनिः ॥४७॥
 आकृष्टो नगरीमध्यं यावन्मुक्तश्च दुःखितः । दग्धो दुर्वचनैर्धूर्त्वाधूसरो निरगात्ततः ॥४८॥
 ततः सागरगम्भीरः परमार्थविशारदः । अपूर्वं दुर्वचः श्रुत्वा किञ्चिन्कोपमुपागतः ॥४९॥
 केकयानन्दनः श्रीमान्मुप्रभानन्दनान्वितः । विनिर्नापुरिं पुर्यां निर्यातः सचिवान्वितः ॥५०॥
 श्रुत्वा तं मिथिलाधीशः कनकः पुरुसाधनः । प्राप सिंहोदराद्याश्च राजानो भक्तितत्पराः ॥५१॥
 चक्रेण महता युक्तो भरतः प्रस्थितस्ततः । नन्द्यावर्तं प्रजा रञ्जन् पितेव न्यायकोविदः ॥५२॥
 अतिवीर्योऽपि दूतेन खलीकारप्रदर्शितः । परमं क्रोधमानीतः क्षुब्धाकूपारभीषणः ॥५३॥
 भरतायाग्निरोचिष्णुर्गर्तुं संविदधे मतिम् । सामन्तैर्वेष्टितः सर्वैः कृतानेकमहाङ्घ्रतैः ॥५४॥
 ततो ललाटभागेन युवचन्द्राङ्कृतिः श्रितः । वनमालापितुः संज्ञां कृत्वा स्वैरं बलोऽन्रदत् ॥५५॥

किं वह उल्पातरूपी भूतसे प्रस्त है अथवा वायुरोगके वशीभूत है ॥४१॥ अथवा वैराग्यके योगसे पिता राजा दशरथके तपोवनके लिए चले जाने पर दुष्टोंसे घिरा तुम्हारा राजा ग्रहसे आक्रान्त हो गया है ॥४२॥ यद्यपि मोक्षकी आकांक्षासे पितारूपी अग्नि शान्त हो चुकी है तथापि मैं उस अग्निसे निकला हुआ एक तिलगा हूँ, सो तेरे राजाको अभी भस्म करता हूँ ॥४३॥ बड़े-बड़े हाथियोंके रुधिररूपी पङ्कसे जिसकी गरदनके बाल लाल हो रहे थे ऐसे सिंहके शान्त हो जाने पर भी उसका वज्रा हाथियोंका विघात करता ही है ॥४४॥ इस प्रकार जलते हुए वॉसोके बड़े वनके समान भयङ्कर वचन कह कर तेजसे समस्त सभाको असता हुआ शत्रुज्व जौरसे हँसा ॥४५॥ और बोला कि वयानेके समान अल्पवीर्य (अतिवीर्य) के इस क्रुदुतका तिरस्कार शीघ्र ही किया जाय ॥४६॥ शत्रुज्वके इस प्रकार कहते ही क्रोधसे भरे थोड़ाओंने उस दूतके दोनों पैर पकड़ कर उसे घसीटना शुरू किया जिससे वह पीटे जानेवाले अपराधी कुत्तेके समान काँय-काँय करने लगा ॥४७॥ इस तरह नगरीके मध्यतक घसीट कर उसे छोड़ दिया । तदनन्तर दुःखी दुर्वचनोसे जला और धूलिसे धूसर हुआ वह दूत वहाँसे चला गया ॥४८॥

तदनन्तर जो समुद्रके समान गम्भीर थे, परमार्थके जाननेवाले थे तथा जो दूतके पूर्वोक्त अपूर्वं वचन सुनकर कुछ क्रोधको प्राप्त हुए थे ऐसे श्रीमान् राजा भरत, शत्रुज्व भाई और मन्त्रियोंको साथ ले, शत्रुका प्रतिकार करनेके लिए नगरीसे बाहर निकले ॥४९-५०॥ वह सुनकर मिथिलाका राजा कनक बड़ी भारी सेना लेकर भरतसे आ मिला तथा भक्तिमें तत्पर रहनेवाले सिद्धोदर आदि राजा भी आ पहुँचे ॥५१॥ इस प्रकार जो पिताके समान प्रजाकी रक्षा करते थे, तथा जो न्याय-नीतिमें निपुण थे ऐसे राजा भरत बड़ी भारी सेनासे युक्त हो नन्द्यावर्त नगरकी ओर चले ॥५२॥

उधर अपने अपमानको दिखानेवाले दूतने जिसे अत्यन्त कुपित कर दिया था, जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान भयंकर था, जो अग्निके समान दमक रहा था तथा अनेक बड़े-बड़े आश्चर्यपूर्ण-कार्य करनेवाले सामन्त जिसे घेरे थे ऐसा राजा अतिवीर्यने भी भरतके प्रति चढ़ाई करनेका निश्चय किया ॥५३-५४॥ तदनन्तर ललाटसे तरुण चन्द्रमाकी आकृतिके धारण करने-

युक्तमेवातिवीर्यस्य भरते कर्तुमीदृशम् । पितुर्वैन समो भ्राता ज्येष्ठोऽसावपमानितः ॥५६॥
 आगच्छाम्यहमित्युक्त्वा लेखवाहं महीधरः । प्रतिप्रेष्याकरोमंत्रं रामेण पृथिवीधरः ॥५७॥
 अतिवीर्योऽतिदुर्वारश्छुधना तं व्रजाम्यहम् । पूर्वं महीधरेणोक्ते पद्मो विश्रब्धमग्रवीत् ॥५८॥
 अज्ञातैरिदमस्माभिः साधनीयं प्रयोजनम् । ततो न महता कृत्य संरंभेण तु पार्थिव ॥५९॥
 तिष्ठ त्वमिह कुर्वाणः सुप्रयुक्तमहं तव । पुत्रजामातुभिः सार्धमन्तं तस्य व्रजाम्यरेः ॥६०॥
 इत्युक्त्वा रथमारुह्य परं सारबलान्वितैः । महीधरसुतैः साकं ससीतो लक्ष्मणान्वितः ॥६१॥
 नन्दावर्तपुरीं रामो गन्तुं प्रवृत्ते जवी । प्राप्तश्चावस्थितस्तस्य पुरस्य निकटंतरे ॥६२॥
 तसुकृत्ये कृते तत्र सम्बन्धितनयैः सह । रामलक्ष्मणयोर्मन्त्रः सीतायाश्चेत्यवर्तत ॥६३॥
 जगाद जानकी नाथ भवतः सन्नियौ मम । वक्ष्ये नैवाधिकारोऽस्ति किं तारा भान्ति भस्करे ॥६४॥
 तथापि देव भायेऽहं प्रेरिता हितकाम्यया । जातो वशलतातोऽपि मणिः संश्रुते ननु ॥६५॥
 अतिवीर्योऽतिवीर्योऽयं महासाधनसगतः । क्रूरकर्मा कथं शक्यो जेतुं भरतभूभृता ॥६६॥
 भूतस्तस्त्रिजयै तावदुपायाश्चित्यतां द्रुतम् । सहस्रारभ्यमाण हि कार्यं व्रजति संशयम् ॥६७॥
 त्रिलोकेऽप्यस्ति नासाध्यं भवतो लक्ष्मणस्य वा । किन्तु प्रस्तुतमत्यक्त्वा समारब्धं प्रशस्यते ॥६८॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽञ्जोचस्किमेवं देवि भापसे । पश्य रवो निहितं पापमणुवीर्यं मया रणे ॥६९॥
 रामपादरजःपूतशिरसे मे सुरैरपि । न शक्यते पुरः स्थातुं क्षुद्रवीर्ये तु का कथा ॥७०॥

वाले रामने वनमालाके पिता राजा पृथिवीधरको संकेत कर स्वेच्छानुसार कहा कि जिसने पिताके समान बड़े भाईको अपमानित किया है ऐसे भरत पर अतिवीर्यका ऐसा करना उचित ही है ॥५५-५६॥ तदनन्तर मैं अभी आता हूँ इस प्रकार कहकर राजा पृथिवीधरने दूतको तो विदा किया और रामके साथ बैठकर इस प्रकार सलाह की कि 'अतिवीर्यका निराकरण करना सरल नहीं है इसलिए मैं छलसे जाता हूँ। राजा पृथिवीधरके इस प्रकार कहने पर रामने विश्वासपूर्वक कहा कि हम लोगोंको यह कार्य अज्ञात रूपसे चुपचाप करना योग्य है अतः हे राजन् ! बड़े आडम्बरकी आवश्यकता नहीं है ॥५७-५८॥ आप सुचारु रूपसे अपना काम करते हुए यहीं रहिये मैं आपके पुत्र तथा जँवाईके साथ शत्रुके सम्मुख जाता हूँ ॥६०॥ इस प्रकार कहकर राम, लक्ष्मण और सीताके साथ रथपर सवार हो श्रेष्ठ सेना सहित राजा पृथिवीधरके पुत्रोंको साथ ले नन्दावर्तपुरीकी ओर चले तथा वेगसे चलकर नगरीके निकट जाकर ठहर गये ॥६१-६२॥ वहाँ स्नान भोजन आदि शरीर सम्बन्धी कार्य कर चुकनेके बाद राम लक्ष्मण, तथा सीताकी पृथिवीधरके पुत्रोंके साथ निम्न प्रकार सलाह हुई ॥६३॥ सलाहके बीच सीताने रामसे कहा कि हे नाथ ! यद्यपि आपके समीप मुझे कहनेका अधिकार नहीं है क्योंकि सूर्यके रहते हुए क्या तारा शोभा देते हैं ? ॥६४॥ तथापि हे देव ! हितकी इच्छासे प्रेरित हो कुछ कह रही हूँ सो ठीक ही है क्योंकि वंशकी लतासे उत्पन्न हुआ मणि भी तो ब्राह्म होता है ॥६५॥ सीताने कहा कि यह अतिवीर्य, अत्यन्त बलवान्, बड़ी भारी सेनासे सहित तथा क्रूरता पूर्ण कार्य करनेवाला है सो भरतके द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥६६॥ अतः शीघ्र ही उसके जीतनेका उपाय सोचिये क्योंकि सहसा प्रारम्भ किया हुआ कार्य संशयमे पड़ जाता है ॥६७॥ यद्यपि तीन लोकमें भी ऐसा कार्य नहीं है जो आप तथा लक्ष्मणके असाध्य हो किन्तु जो कार्य प्रकृत कार्यको न छोड़कर प्रारम्भ किया जाता है वही प्रशंसनीय होता है ॥६८॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे देवि ! ऐसा क्या कहती हो तुम कल ही अणुवीर्य (अतिवीर्य) को रणमें मेरे द्वारा मरा हुआ देख लेना ॥६९॥ रामकी चरण-भूलिसे जिसका शिर पवित्र है ऐसे मेरे

न यावदथवा याति भानुरस्तं कुतूहली । वीच्यतां तावदधैव क्षुद्रवीर्यस्य पञ्चताम् ॥७१॥
 युवगर्वसमाधमाता सम्बन्धितनया अपि । एतदेव वचोऽमुञ्जप्रतिशब्दमिवोज्ञतम् ॥७२॥
 ततः पद्मो निवार्यतां भ्रूमङ्गेन महामनाः । अश्ववील्लक्ष्मणं धैर्यादधि गण्डूपयज्ञिन ॥७३॥
 युक्तमुक्तमलं तात जानक्या वस्तु पुष्कलम् । स्फुटीकृतं तु नात्यन्तमत्यासादनभीतया ॥७४॥
 अस्था । शृणु यदाकृतमतिवीर्यो बलोद्धतः । भरतेन स नो शक्यो वशीकर्तुं रणाजिरे ॥७५॥
 भागो न भरतस्तस्य दशभोऽपि भवत्यतः । तस्य दावानलस्यार्यं किं करोति महागजः ॥७६॥
 दन्तिभिरत्र समृद्धस्य समृद्धोऽपि तुरङ्गमैः । भरतो नैव शक्तोऽस्य तथा विन्ध्यस्य केसरी ॥७७॥
 भरतस्य जये नात्र संशयोऽपि समीचयते । एकान्तस्तु कुतो वापि स्याज्जन्तुप्रलयस्तथा ॥७८॥
 कष्टमेकक्रयोर्जाते विरोधे कारण विना । पक्षद्वयं मनुष्याणां जायते विवशक्षयम् ॥७९॥
 दुरात्मनातिवीर्येण भरते च वशीकृते । जायते रघुगोत्रस्य कलङ्कः पश्य कीदृशः ॥८०॥
 नेच्यते सन्धिधरप्यत्र शत्रुघ्नेन च मानिना । शैशवेन कृतं दोषं शत्रावत्युद्धते शृणु ॥८१॥
 विभावर्यां तमिस्रायां किलावस्कन्ददायिना । रौद्रभूतिसमेतेन शत्रुघ्नेन चरिष्युना ॥८२॥
 निद्रावशीकृतान् वीरान् बहून् कृत्वा मृतचतान् । हस्तिनश्च दुरारोहान् प्रगल्हाननिर्भरान् ॥८३॥
 चतुःपष्टिसहस्राणि वाजिनां वातरंहसाम् । शतानि सप्त चेभानामङ्गनाद्रिसमस्त्रिपाम् ॥८४॥
 बाह्यस्थानि पुरस्यास्य नीतानि दिवसैस्त्रिभिः । भरतस्थान्तिकं किं ते न श्रुतानि जनांस्यतः ॥८५॥

सामने देव भी खड़े होनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर अणुवीर्यकी तो बात ही क्या है ? ? ॥७०॥
 अथवा कुतूहलसे भरा सूर्य जब तक अस्त नहीं होता है तब तक आज ही अणुवीर्यकी मृत्यु देख
 लेना ॥७१॥ तरुण लक्ष्मणके गर्वसे फूले राजा पृथिवीधरके पुत्रोने भी प्रतिवचनिके समान यही
 जोरदार शब्द कहे ॥७२॥

तदनन्तर धैर्यसे समुद्रको कुल्लेके समान तुच्छ करनेवाले महामना रामने भ्रुकुटिके भंगसे
 पृथिवीधरके पुत्रोंको रोककर लक्ष्मणसे कहा कि हे तात ! सीताने सब बात बिलकुल ठीक कही
 है केवल रहस्य खुल न जाय इससे भयभीत हो खुलासा नहीं किया है ॥७३-७४॥ उसका जो
 अभिप्राय है वह सुनो । यह कह रही है कि चूँकि अतिवीर्य बलसे उद्धत है अतः भरतके द्वारा
 रणाङ्गणसे वश करनेके योग्य नहीं है ॥७५॥ भरत उसके दशवें भाग भी नहीं है वह दावानलके
 समान है अतः यह महागज उसका क्या कर सकता है ? ॥७६॥ यद्यपि भरत घोड़ोंसे समृद्ध
 है पर अतिवीर्य हाथियोंसे समृद्ध है अतः जिस प्रकार सिंह विन्ध्याचलका कुछ नहीं कर सकता
 उसी प्रकार भरत भी अतिवीर्यका कुछ नहीं कर सकता ॥७७॥ वह भरतको जीत लेगा इसमें
 कुछ भी संशय नहीं है अथवा दो मे से किसीकी जीत होगी पर उससे प्राणियोका विनाश तो
 होगा ही ॥७८॥ जब विना कारण ही दो व्यक्तियोंमें परस्पर विरोध होता है तब दोनों पक्षके
 मनुष्योंका विचश होकर क्षय होता ही है ॥७९॥ और यदि दुष्ट अतिवीर्यने भरतको
 वश कर लिया तो फिर देखो रघुवंशका कैसा अपयश उत्पन्न होता है ? ॥८०॥
 इस विषयमें सन्धि भी होती नहीं दिखती क्योंकि मानी शत्रुघ्नेने लक्ष्मणके कारण अत्यन्त
 उद्धत शत्रुके बहुत दोष—अपराध किये हैं सुनो, रौद्रभूतिके साथ मिलकर शत्रुघ्नेने अन्धेरी रातमें
 छापा मार-मार कर उसके बहुतसे निद्रानिभग्न वीरोंको तथा जिनपर चढ़ना कठिन था और
 जिनसे मदके निर्भर भर रहे थे ऐसे बहुतसे हाथियोंको मारा । पवनके समान वेगशाली चौंसठ
 हजार घोड़े और अज्जनगिरिके समान आभावाले सात सौ हाथी जो कि इसके नगरके बाहर
 स्थित थे तीन दिन तक चुराकर भरतके पास ले गया सो क्या लोगोंके मुँहसे तुमने सुना नहीं

दृष्ट्वा कलिङ्गराजस्ताम् गाढशल्यान् बहुन्मृषान् । जीवेन च विनिर्मुक्तान् हतं ज्ञात्वा च साधनम् ॥८६॥
सम्प्राप्तः परमं क्रोधमप्रमत्तः समन्ततः । वैरिनिर्यातनं कृत्वा बुद्धौ रणमुदीचयते ॥८७॥
दृग्दोषाय परित्यज्य भरतो मानिनां वरः । हेतु तस्मिन् नान्यं प्रयुक्ते बुद्धिमानपि ॥८८॥
अथ त्वं साधयत्येवं केनैतन्न प्रतीयते । शक्तिस्ते प्रभवेत्तात तीर्थांशोरपि यातने ॥८९॥
किन्त्वयं वर्ततेऽत्रैव प्रवेशे भरतोऽधुना । निर्गत्य च तथायुक्तं प्रकटीकरणं ननु ॥९०॥
अज्ञाता एव ये कार्यं कुर्वन्ति पुरुषाद्भुतम् । तेऽतिश्लाघ्या यथायन्तं निवृष्य जलदा गताः ॥९१॥
इति मंत्रयमाणस्य रामस्य मतिरुद्गता । अतिवीर्यप्रहोपाये ततो मंत्रः समापितः ॥९२॥
प्रमादरहितस्तत्र कृतप्रवरसङ्घतः । सुखेन शर्वरीं नीत्वा रामः स्वजनसङ्गतः ॥९३॥
आवासास्त्रिगिर्तोऽपश्यदार्थिकाजनलक्षितम् । जिनेन्द्रभवनं भक्त्या प्रविशेश च साक्षुलिः ॥९४॥
नमस्कारं जिनेन्द्राणां विधायायजनस्य च । सकारो वरधर्मायां गणपाल्याः सशस्त्रिकाम् ॥९५॥
स्थापयित्वा कृतीं सीतां कृत्वात्मानं च । वर्णिनीम् । स्त्रियेपधारिभिः साधुं सूर्यैर्लक्ष्मणादिभिः ॥९६॥
कृत्वा पूजां जिनेन्द्राणां बहुमङ्गलभूषिताम् । नरेन्द्रभवनद्वारं प्रतस्थे लीलायान्वितः ॥९७॥
सुरेन्द्रगणिकातुल्यं वीच्य तं वर्णिनीं जनम् । सर्वैः पौरजनो लग्नः पश्चाद्गन्तुं सविस्मयः ॥९८॥
सर्वलोकस्य नेत्राणि मनसि च सुचेष्टिताः । हरन्त्यस्ता नृपागारं प्राप्ता द्वारि सुमण्डनाः ॥९९॥

है ? ॥८२-८५॥ कलिङ्गाधिपति अतिवीर्यने जब देखा कि बहुतसे राजाओंको गहरी शल्य लगी हुई है तथा कितने ही राजा निष्पान हो गये हैं और साथ ही बहुत-सी सेनाका अपहरण हुआ है तब वह परम क्रोधको प्राप्त हुआ । अब वह सब ओरसे सावधान है और बुद्धिमें वैरीसे बदला लेनेका विचार कर रणको प्रतीक्षा कर रहा है ॥८६-८७॥ भरत मानियोमें श्रेष्ठ है तथा बुद्धिमान् भी इसलिए वह उसके जीतनेमें एक युद्धरूपी उपायको छोड़कर अन्य उपाय प्रयोगमें नहीं लाना चाहता ॥८८॥ यद्यपि तुम इसे ठीक कर सकते हो यह किसे प्रतीति नहीं है ? अथवा हे तात ! इसकी बात जाने दो तुम्हें तो सूर्यको भी गिरानेकी शक्ति है किन्तु भरत इसी प्रदेशमें विद्यमान है अर्थात् यहाँसे बहुत ही निकट है सो इस समय उस तरह अयोध्यासे निकल कर प्रकट होना उचित नहीं है ॥८९-९०॥ जो लोग अज्ञात रहकर मनुष्योंको आश्चर्यमें डाल देनेवाला भारी उपकार करते हैं वे चुपचाप बरस कर गये हुए रात्रिके मेघोंके समान अत्यन्त प्रशंसनीय हैं ॥९१॥ इस प्रकार सलाह करते-करते रामको, अतिवीर्यके वश करनेका उपाय सूझ आया और उसके बाद सलाहका काम समाप्त हो गया ॥९२॥

अथानन्तर आत्मीयजनोंके साथ मिले हुए रामने, प्रमाद रहित हो उत्तमोत्तम कथाएँ कहते हुए सुखसे रात्रि व्यतीत की ॥९३॥ दूसरे दिन डेरेसे निकलकर रामने आर्थिकाओसे सहित जिनमन्दिर देखा सो हाथ जोड़कर बड़ी भक्तिसे उसमें प्रवेश किया ॥९४॥ भीतर प्रवेशकर जिनेन्द्र भगवान् तथा आर्थिकाओंको नमस्कार किया । वहाँ आर्थिकाओंकी जो वरधर्मा नामकी गणिनी थी उसके पास सीताको रक्खा तथा सीताके पास ही अपने सब शस्त्र छोड़े । तदनन्तर अतिशय चतुर रामने अपने आपका नृत्यकारिणीका वेश बनाया और साथ ही अत्यन्त सुन्दर रूपको धारण करनेवाले लक्ष्मण आदिने भी स्त्रियोंके वेष धारण किये ॥९५-९६॥ तत्पश्चात् जिनेन्द्र भगवान्की मङ्गलमयी पूजाकर सबलोगोंके साथ रामने लीलापूर्वक राजमहलके द्वारकी ओर प्रस्थान किया ॥९७॥ इन्द्रनर्तकी की तुलना करनेवाली उन नर्तकियोंको देखकर आश्चर्यसे भरे समस्त नगरवासी उनके पीछे लग गये ॥९८॥ तदनन्तर उत्तम चैष्ट्राओं और सुन्दर आभूषणोंको धारण करनेवाली वे नृत्यकारिणीं सब लोगोंके नेत्र और मनको हरतीं हुईं राजमहलके द्वारपर पहुँचीं ॥९९॥

१. नृत्यकारिणीम् । २. तुल्यं वीक्षितुं वर्णिनीं जनः म० ।

ते चतुर्विंशतिर्भक्त्या जिनैन्द्रा भक्तितत्परैः । वन्द्यन्तेऽस्माभिरित्येवं तेवातेवा ध्वनि पुरः ॥१००॥
 कृत्वा पुराणवस्तूनि गातुमुक्कृल्लोचनाः । गम्भीरभारतीतानासकाश्चारण्योपितः ॥१०१॥
 ध्वनिमश्रुतपूर्वं तं श्रुत्वा तासां नराधिपः । आजगाम गुणाकृष्टः काष्ठभार इवोत्रके ॥१०२॥
 ततो रेचकमादाय ललिदाङ्गविवर्तनम् । नृपस्याभिमुखीभावं जगाम वरवर्चनं ॥१०३॥
 सस्मितालोकितैस्तस्या विनालद्रूसमुद्गमैः । गमकानुगतैः कर्मैस्तनभारस्य हारिणः ॥१०४॥
 मन्थरैश्चाससञ्चारैर्जघनस्य घनस्य च । तथा बाहुलताहारैः सुलीलकरपङ्क्तैः ॥१०५॥
 पाद्म्यासैर्लघुसुष्टविमुक्तवरिणोत्तलैः । आशु सम्पादितैः स्थानैः केशपाशविवर्तनैः ॥१०६॥
 त्रिकस्य चलनैर्भागान्नसन्दर्शितात्मभिः । कामवाणैरिमैर्लोकैः सकलः समताल्यत ॥१०७॥
 मूर्च्छनाभिः स्वर्गप्रमैर्यथास्थानं नियोजितैः । नर्तकी सा जगौ वक्षु परिलीनसखीस्वरम् ॥१०८॥
 यत्र यत्र समुदये नर्तकी कुक्ते स्थितिम् । तत्र तत्र समा सखां नयनानि प्रयच्छति ॥१०९॥
 तस्या रूपेण चक्षूपि स्वरेण श्रवणेन्द्रियम् । मनांसि तद्दृश्येनापि वदन्ति सदसो हृदम् ॥११०॥
 उक्कृल्लुसुखराजीवा सामन्ता दानतत्परः । वभूवुर्निरलङ्कारा सव्यानस्वरधारिणः ॥१११॥
 आतोद्यानुगतं नृत्य तत्तस्यास्त्रिदशानपि । वर्गाकुर्वीत कैवास्या सुहरेष्वन्यजन्गुपु ॥११२॥

तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित थे तथा जो भारतीकी गम्भीर तान खींचनेमें आसक्त थीं ऐसी उन नृत्यकारिणी स्त्रियोंने 'भक्तिमे तत्पर रहनेवाली हम सब चौबीस तीर्थ-करोंकोभक्ति पूर्वक नमस्कार करती हैं, यह कहकर सब प्रथम 'तेवा-लेवा' यह अव्यक्त ध्वनि की फिर पुराणोमे प्रतिपादित वस्तुओका गाना शुरू किया ॥१००-१०१॥ उन नृत्यकारिणियों की अश्रुतपूर्व ध्वनि सुनकर गुणोंसे खिचा राजा अतिवीर्य उनके पास इस तरह आ गया जिस तरह कि पानीमे गुण अर्थात् रस्सीसे खिचा काष्ठका भार खींचनेवालेके पास आता है ॥१०२॥ तदनन्तर फिरकी लेकर सुन्दर अङ्गोको मोड़ती हुए श्रेष्ठ नर्तकी राजाके सम्मुख गई ॥१०३॥ वहाँ उसका मन्द-मन्द सुसकानके साथ देखना, मौहोंका चलाना, विज्ञ मनुष्य ही जिसे समझ पाते थे ऐसे सुन्दर स्तनोंका कँपाना, धीमी-धीमी सुन्दर चालसे चलना, स्थूल नितम्बका मट-काना, भुजा रूप लताओका चलाना, उत्तम लीलाके साथ हस्त रूपी पल्लवोंका किराना, जिनमें शीघ्रतासे स्पर्शकर पृथिवीतल छोड़ दिया जाता था ऐसे पैर रखना, शीघ्रतासे नृत्यकी अनेक मुद्राओका बदलना, केशपाशका चलाना, कटिकी अस्थिका हिलाना, तथा नाभि आदि शरीर के अवयवोंका दिखलाना आदि कामके वाणोंसे समस्त मनुष्य ताड़े गये थे ॥१०४-१०७॥ वह नर्तकी, जिनका यथास्थान प्रयोग किया गया था ऐसी मूर्च्छनाओं, स्वरो तथा ग्रामो-स्वरोके समूहसे सखियोंके स्वरको अपने स्वरमे मिलाकर बहुत सुन्दर गा रही थी ॥१०८॥ वह नृत्यकारिणी जिस-जिस स्थानमे ठहरती थी सारी सभा उसी-उसी स्थानमे अपने नेत्र लगा देती थी ॥१०९॥ सारी समाके नेत्र उसके रूपसे, कान मधुर स्वरसे और मन, रूप तथा स्वर दोनों से मजबूत बँध गये थे ॥११०॥ जिनके मुख कमल विकसित थे ऐसे सामन्त लोग उन नर्तकियों को पुरस्कार देते-देते अलङ्काररहित हो गये थे उनके शरीरपर केवल पहिननेके वस्त्र ही ढकी रह गये थे ॥१११॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक! गायन वादनसे सहित उस नृत्य-कारिणीका वह नृत्य देवोंको भी वश कर सकता था फिर जिनका हरा जाना सरल बात थी

१. तेवा तेवा इत्यनुकरणशब्दम् । २. नानाशक्त्याश्चारण म० । ३. स्वष्ट म० । ४. विवर्तने म० । ५. इमैः इति छान्दसिक सवोगः । ६. च सदेशी म० । ७. संख्याना वरधारिणी म० । ८. आताप्यानुगत (१) म० । ९. समरेष्वन्य ख० ।

विधाय वृषभादीनां चरितस्य प्रकीर्तनम् । संक्षेपेण वशीकृत्य समिति^१ सकलां शृशम् ॥११३॥
 खंगातेन समुद्युक्ता राजानमिति नर्तकी । दधाना परमां वीसिसुपालब्धुं^२ सुदुत्सहम् ॥११४॥
 अतिवीर्यं किमेतत्तु दुष्टं व्यवसितं महत् । नचर्हानमिदं वस्तु तेनात्र त्वं निर्योजितः ॥११५॥
 किमिति स्वखिनाशाय केकथानन्दनस्वया । शान्तचेता । श्रृगालेन केसरीव प्रकोपितः ॥११६॥
 एवं गतेऽपि विश्राणः परमं विनयं द्रुतम् । सस्प्रसादय तं गत्वा यदि ते जीवितं प्रियम् ॥११७॥
 जाता विशुद्धत्रंशेषु वरक्रीडनभूमयः । माभूवन् विधवा भद्र तवैता वरयोपितः ॥११८॥
 पुतास्वया परित्यक्ता विमुक्ताशेषभूपणाः । भ्रुवं पुरा न शोभन्ते ताराश्रन्द्रमसा यथा ॥११९॥
 निवर्तय द्रुतं चित्तमशुभध्यानतत्परम् । उत्तिष्ठ ब्रज निर्माणो^३ नमस्य भरतं सुधीः ॥१२०॥
 एव कुरु न चेदेव कुरुषे पुरुषाधम । ततोऽधैव विनष्टोऽसि संशयोऽत्र न विद्यते ॥१२१॥
 जीवत्येवानरण्यस्य पौत्रे राज्यं समीहसे । चकासति रवौ पापलक्ष्मीर्दोषाकरस्य का ॥१२२॥
 पतितस्वयाद्य नो रूपे मरणं ते समुद्गतम् । शलभस्यैव मूढस्य दुष्टपक्षस्य प्रियद्युतेः ॥१२३॥
 टेवेन भरतेनामा गरुडेन महात्मना । अलग्नादीधमो भूत्वा प्रतिस्पर्धनमिच्छति ॥१२४॥
 ततो निर्गर्सन स्वस्य भरतस्य च शंसनम् । निशम्य संसदा साकमभूत्ताज्जणो नृपः ॥१२५॥
 विरक्ता च सभात्यन्तपरं रुन्धितमानसा^४ । जुघूर्णाणिववेलेव भूतरङ्गसमाकुला ॥१२६॥

ऐसे अन्य मनुष्योंकी तो यात ही क्या थी ? ॥११२॥ इस तरह संक्षेपसे ऋषभ आदि तीर्थंकरों के चरित्रका क्रीतेन कर जब उस नर्तकीने समस्त सभाको अत्यन्त वशीभूत कर लिया तब वह सङ्गीतसे परम दीप्तिको धारण करती हुई राजाको इस प्रकारका असह्य उलाहना देनेके लिए तत्पर हुई ॥११३-११४॥ उसने कहा कि हे अतिवीर्य ! यह तेरी अतिशय दुष्ट चेष्टा क्या है ? तेरा यह कार्य नीतिसे रहित है, किसने तुम्हें इस कार्यमें लगाया है ? ॥११५॥ जिस तरह शृङ्गाल सिंहको कुपित करता है उस तरह तूने शान्त चित्त भरतको अपना नाश करनेके लिए इस तरह क्यों कुपित किया है ? ॥११६॥ इतना सब होनेपर भी यदि तुम्हें अपना जीवन प्यारा है तो शीघ्र ही परम विनयको धारण करता हुआ जाकर भरतको प्रसन्न कर ॥११७॥ हे भद्र ! विशुद्ध कुलमे उत्पन्न तथा उत्तम क्रीड़ाकी भूमि स्वरूप तेरी ये स्त्रियाँ विधवा न हों ॥११८॥ तुम्हसे रहित होनेपर जिनने समस्त आभूषण छोड़ दिये हैं ऐसी ये उत्तम स्त्रियाँ चन्द्रमासे रहित ताराओंके समान निश्चित ही शोभित नहीं होगी ॥११९॥ इसलिए अशुभ ध्यानमें जाने वाले अपने चित्तको शीघ्र ही लौटा, उठ, जा और मानरहित हो भरतको नमस्कार कर । तू बुद्धिमान् है ॥१२०॥ अतः ऐसा कर । हे अधम पुरुष ! यदि तू ऐसा नहीं करता है तो आज ही नष्ट हो जायगा इसमें संशय नहीं है ॥१२१॥ अनरण्यके पीता भरतके जीवित रहते ही तू राज्य चाहता है सो सूर्यके देदीप्यमान रहते चन्द्रमाकी क्या शोभा है ? ॥१२२॥ जिस प्रकार कान्ति के लोमी तथा कमजोर पङ्खोंवाले मूर्ख शलभका मरण आ पहुँचता है उसी प्रकार हमलोगोंके रूपपर आसक्त तथा खोटे सहायकोंसे युक्त तुम्हें मूढ़का आज मरण आ पहुँचा है ॥१२३॥ तू जलके सोंपके समान तुच्छ होकर भी गरुड़के समान जो महात्मा राजा भरत है उनके साथ ईर्ष्या करना चाहता है ॥१२४॥

तदनन्तर नृत्यकारिणीके मुखसे अपना तर्जन और भरतकी प्रशंसा सुनकर राजा अति-वीर्य सभाके साथ लाल-लाल नेत्रोंका धारक हो गया अर्थात् क्रोधवश उसके नेत्र लाल हो गये ॥१२५॥ जिसका मन अत्यन्त रुद्ध हो गया था जिसका प्रेम समाप्त हो चुका था और जो भ्रुकुटिरूपी तरङ्गोंसे व्याकुल थी ऐसी सारी सभा समुद्रकी वेलाके समान क्षोभको प्राप्त हुई ॥१२६॥

१ सम्मति म० । २. मुपलब्धुं म० । ३. मानरहितः । ४. अलग्नादीं जलजालः । ५. परपक्षत-मानसा म० ।

अतिवीर्यो रूपा कम्पो यावज्जग्राह सायकम् । तावदुत्पत्य नर्तक्या सविलासकृतभ्रमम् ॥१२७॥
 मण्डलाग्रं समाहित्व्य वीक्षमाणेषु राजसु । जीवग्राहं विपण्णात्मा केशेषु जगृहे हृदम् ॥१२८॥
 उद्यम्य नर्तकी खल्व् पश्यन्ती नृपसंहतिम् । जगादाविनयो योऽत्र स मे वध्यो विसंशयम् ॥१२९॥
 परित्यज्यातिवीर्यस्य पञ्च विनयमण्डनाः । भरतस्य द्रुतं पादौ नमत प्रियजीविताः ॥१३०॥
 भरतो जयति श्रीमान् गुणस्फीतांशुमण्डलः । दशस्यन्दनवंशेशुर्लोकानन्दकरः परः ॥१३१॥
 लक्ष्मीकुमुद्वती यस्य विकासं भजते त्राम् । द्विपत्तपननिर्मुक्ता कुर्वतः परमाद्भुतम् ॥१३२॥
 उज्जगाम ततो लोकवक्त्रेभ्य इति निस्वरः । अहो वृत्तमिदं चित्रमिन्द्रजालोपमं महत् ॥१३३॥
 यस्य चारणकन्यानामिदमीदृग्विचैष्टितम् । भरतस्य स्वयं तस्य शक्तिः शक्तं जयेदपि ॥१३४॥
 न विद्यः स किमस्माकं क्रुद्धो नाथः करिष्यति । अथवा सप्रणामेषु देवो यास्यति मार्दवम् ॥१३५॥
 ततः करिणमाह्वय राघवः सातिवीर्यकः । सहितः परिवर्गेण ययौ जिनवरालयम् ॥१३६॥
 अवतीर्य गजात्तत्र प्रविश्य प्रमदान्वितः । चक्रे सुमहती पूजां कृतमङ्गलनिस्वनः ॥१३७॥
 वरधर्मापि सर्वेण सहैतौपरम् । राघवेण ससीतेन नीता तुष्टेन पूजनम् ॥१३८॥
 अतिवीर्योऽत्र पद्मेन लक्ष्मणाय समर्पितः । तस्यासौ वधमुद्युक्तः कर्तुमौच्यत^२ सीताया ॥१३९॥
 मावीवधोऽस्य लक्ष्मीमन् कन्धरां निष्ठुराशय । केशेषु मागृहीर्गाढं कुमारं भज सौम्यताम् ॥१४०॥
 को दोषः कर्मसामर्थ्याद्यदायान्त्वापदं नराः । रक्षया एव तथाप्येते द्यतमत्सिद्धताम्^३ ॥१४१॥

क्रोधसे कौपते हुए अतिवीर्यने ज्योंही तलवार उठाई त्योंही नर्तकीने विलासपूर्वक विभ्रम दिखाते हुए उल्लू कर तलवार छीन ली और सब राजाओंके देखते-देखते अतिवीर्यको जीवित पकड़ कर मजबूतीसे उसके केश बांध लिये ॥१२७-१२८॥ नर्तकीने तलवार उठा कर राजाओंकी ओर देखते हुए कहा कि यहाँ जो भी अचिनय करेगा वह निःसन्देह मेरे द्वारा वध होगा ॥१२९॥ यदि आप लोगोंको अपना जीवन प्यारा है तो अतिवीर्यका पक्ष छोड़कर विनयरूपी आभूषणसे युक्त हो शीघ्र ही भरतके चरणोंमें नमस्कार करो ॥१३०॥ जो लक्ष्मीसे युक्त है, गुण ही जिसकी विस्तृत किरणोंका समूह है, जो लोगोंको परम आनन्दका देनेवाला है, जिसकी लक्ष्मीरूपी कुमुदिनी शत्रुरूपी सूर्यसे निर्मुक्त होकर परम विकासको प्राप्त हो रही है तथा जो अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य कर रहा है ऐसा दशरथके वंशका चन्द्रमा भरत जयवन्त है ॥१३१-१३२॥

तदनन्तर लोगोंके मुखसे इस प्रकारके शब्द निकलने लगे कि अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है, यह तो बहुत भारी इन्द्रजालके समान है ॥१३३॥ जिसकी नृत्यकारिणियोंको यह ऐसी चेष्टा है उस भरतकी शक्तिका क्या ठिकाना ? वह तो इन्द्रको भी जीत लेगा ॥१३४॥ न जाने वह राजा भरत कुपित होकर हमारा क्या करेगा ? अथवा प्रणाम करनेवालों पर वह अवश्य ही मार्दवभावको प्राप्त होगा ॥१३५॥ तदनन्तर राम अतिवीर्यको पकड़ हाथी पर सवार हो अपने परिजनके साथ जिनमन्दिर गये ॥१३६॥ वहाँ उन्होंने हाथीसे उतर कर बड़े हर्षसे मन्दिरके भीतर प्रवेश किया और मङ्गलमय शब्दोंका उच्चारण कर बड़ी भारी पूजा की ॥१३७॥ मन्दिरमें सर्वसंधके साथ जो वरधर्मा नामकी गणिनी ठहरी हुई थी रामने सीताके साथ सन्तुष्ट होकर उनकी भी उत्तम पूजा की ॥१३८॥ यहाँ रामने अतिवीर्यको लक्ष्मणके लिए सौंप दिया और वे उसका वध करनेके लिए उद्यत हुए तब सीताने कहा कि हे लक्ष्मीधर ! निष्ठुर अभिप्रायके धारी हो इसकी ग्रीवा मत छोड़ो और न जोरसे इसके केश ही पकड़ो । हे कुमार ! सौम्यताको प्राप्त होओ ॥१३९-१४०॥ इस वेचारेका क्या दोष है ? यद्यपि मनुष्य कर्मोंकी सामर्थ्यसे आपत्तिको प्राप्त होते है तथापि सज्जनताको धारण करनेवाले मनुष्य उनकी रक्षा ही करते है ॥१४१॥

इतरोऽपि खलोकर्वु साधूनां नोचितो जनः । किमुतायं नरेशानां सहस्राणां प्रपूजितः ॥१४२॥
 कुर्वेनं मुक्त भद्र भवतायं वशीकृतः । जानानः स्वस्य सामर्थ्यं कानुगच्छति साम्प्रतम् ॥१४३॥
 गृहीत्वा समयेनास्य सन्मानमुपलभिमताः । विमुच्यन्ते पुनर्भूयो मयादिभ्यं चिरन्तनी ॥१४४॥
 ह्युक्तो मस्तके कृत्वा कराराजीवकुन्दमलम् । जगाद् लक्ष्मणो देवि यद्ब्रवीति त्रयैव तत् ॥१४५॥
 भास्तां स्वामिनि ते वाक्यात्तावदस्य विमोचनम् । सुराणामप्यभुं पूज्यं कुर्वीथं स्वप्यसादतः ॥१४६॥
 पवं प्रशान्तसंरम्भे सद्यो लक्ष्मीधरे स्थिते । अतिवीर्यो विबुद्धारमा स्तुत्वा पद्मभभापत ॥१४७॥
 साधु साधु त्वया चित्रं कृतमीदृग्विचैष्टितम् । कटाचिदप्यनुत्पन्ना ममाद्य मतिरुद्रता ॥१४८॥
 विमुक्तहारमुकुटं दृष्ट्वा तं करुणान्वितः । विश्रब्धं राघवोऽनोचत् सौम्याकारपरिग्रहः ॥१४९॥
 मा ब्रवीरङ्ग दैन्यं त्वं धत्स्व धैर्यं पुरातनम् । महतामेव जायन्ते सम्पदो विपदन्विताः ॥१५०॥
 न चात्र काचिदापत्ते नन्धावर्ते क्रमागते । भरतस्य वशो भूत्वा कुन् राज्यं यथेप्सितम् ॥१५१॥
 अतिवीर्यस्ततोऽनोचन्न मे राज्येऽधुना स्पृहा । राज्येन मे फलं वचमधुनान्यत्र सज्ज्यते ॥१५२॥
 आसीन्मया कृता बांछा हिमवत्सागरावधि । जेतु वसुन्धरा येन विभ्रता मानुसुत्तमम् ॥१५३॥
 सोऽहं स्वमानमुन्मूल्य भूत्वा सारविजितः । कुर्यां प्रणतिमन्यस्य कथं पुरुषतां वधत् ॥१५४॥
 पदखण्डा वैरिणि क्षोणी पालितेयं महानरैः । न त्सास्तेऽप्यहं प्रायैः पद्मभिस्तु किमेतकैः ॥१५५॥
 जन्मान्तरकृतस्यास्य बलितां परय कर्मणः । क्षायाहानिमहं येन राहुणेन्दुरिवाहृतः ॥१५६॥

जो सज्जन पुरुष हैं उन्हें साधारण मनुष्यको भी दुःखी करना उचित नहीं है फिर यह तो हजारों राजाओंका पूज्य है इसकी बात ही क्या है ? ॥१४२॥ हे भद्र ! इसे आपने वश कर ही लिया है अतः इसे छोड़ दो । अपनी सामर्थ्यको जानता हुआ यह अब कहीं जायगा ? ॥१४३॥ प्रबल शत्रुओंको पकड़ कर तदनन्तर सन्धिके अनुसार सन्मान कर उन्हें छोड़ दिया जाता है यह चिरकालकी मर्यादा है ॥१४४॥

सीताके इस प्रकार कहने पर लक्ष्मणने हस्तकमल जोड़ मस्तक पर लगाते हुए कहा कि हे देवि ! आप जो कह रही हैं वह वैसा ही है ॥१४५॥ हे स्वामिनि, आपकी आज्ञासे इसका छोड़ना तो दूर रहा इसे आपके प्रसादसे ऐसा कर सकता हूँ कि यह देवताओंका भी पूज्य हो जाय ॥१४६॥

इस प्रकार शीघ्र ही लक्ष्मणके शान्त होने पर प्रतिवोधको प्राप्त हुआ अतिवीर्य रामकी स्तुतिकर कहने लगा ॥१४७॥ कि आपने जो यह अद्भुत चेष्टा की सो बड़ा भला किया । मेरी जो मुद्धि कभी उत्पन्न नहीं हुई वह आज उत्पन्न हो गई ॥१४८॥ इतना कह उसने हार और मुकुट उतार कर रख दिये । यह देख सौम्य आकारको धारण करनेवाले दयालु रामने विश्वास दिलाते हुए कहा कि हे भद्र ! तू दोनताको प्राप्त मत हो, पहले जैसा धैर्य धारण कर, विपत्तियोंसे सहित सम्पदाएँ महापुरुषोंको ही प्राप्त होती हैं ॥१४९-१५०॥ अब मुझे कोई आपत्ति नहीं है ! इस क्रमागत नन्धावर्तनगरमे भरतका आज्ञाकारी होकर इच्छानुसार राज्य कर ॥१५१॥

तदनन्तर अतिवीर्यने कहा कि अब मुझे राज्यकी इच्छा नहीं है । राज्यने मुझे फल दे दिया है । अब दूसरे ही अवस्थामें लगना चाहता हूँ ॥१५२॥ उल्टे मानको धारण करते हुए मैंने हिमवान्से लेकर समुद्र तककी सारी पृथिवी जीतनेकी इच्छा की थी सो मैं अपने मानको उखाड़कर निःसार हो गया हूँ अब मैं पुरुषत्वको धारण करता हुआ अन्यको नमस्कार कैसे कर सकता हूँ ? ॥१५३-१५४॥ जिन महापुरुषोंने इस छद्मखण्डकी पृथिवीकी रक्षा की है वे भी सन्तोषको प्राप्त नहीं हुए फिर मैं इन पाँच गोंवोंसे कैसे संतुष्ट हो सकता हूँ ? ॥१५५॥ जन्मान्तरमे किये हुए इस कर्मकी बलवत्ता तो देखो कि जिस प्रकार राहु चन्द्रमाको कान्ति

मानुष्यकमिदं जातं सारमुक्त मयाधुना । सुराणामपि वातैवा किमन्यत्राभिधीयताम् ॥१५७॥
 सोऽहं पुनर्भवाद्भोःस्त्वया सम्प्रतिबोधितः । तथाविधां भजे चेष्टां यया मुक्तिरवाप्यते ॥१५८॥
 इत्युक्त्वा क्षमयित्वा तं परिवर्गसमन्वितम् । गत्वा केसरविक्रान्तो मुनिं श्रुतिधरश्रुतिम् ॥१५९॥
 कराब्जकुहमलाङ्गेन विधाय शिरसा नतिम् । जगद नाथ बान्ध्वाभि दीक्षां दैगम्बरीमिति ॥१६०॥
 आचार्येणैवमित्युक्ते परित्यज्यांश्चकादिकम् । केशलुब्धं विधायासौ महाव्रतधरोऽभवत् ॥१६१॥
 आत्मार्थनिरतस्त्यक्तरागद्वेषपरिग्रहः । विजहार क्षिति धीरो यत्रास्तमितवास्थ्यसौ ॥१६२॥
 क्रूरश्वपदयुक्तेषु गहनेषु वनेषु सः । चकार वसतिं निर्भोग्द्वारेषु च भूभृताम् ॥१६३॥

उपजातिः

विमुक्तनिश्चेषपरिग्रहाशं गृहीतचारित्रभरं सुशीलम् ।
 नानातपःशोषितदेहमुद्धं महामुनिं तं नमतातिवीर्यम् ॥१६४॥
 रत्नत्रयापादितचारुभूपं दिगम्बर साधुगुणावतसम् ।
 सम्प्रस्थितं योग्यवरं विमुक्तेर्महामुनिं तं नमतातिवीर्यम् ॥१६५॥
 इदं परं चेष्टितमातिवीर्यं शृणोति यो यश्च सुधीरधीते ।
 प्राप्नोति वृद्धिं सदसोऽपि मध्ये रविप्रभोऽसौ व्यसन न लोकः ॥१६६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्ये प्रोक्ते पद्मचरितेऽतिवीर्यनिष्कमयाभिधानं नाम सप्तत्रिंशत्तमं पर्व ॥३७॥

रहित कर देता है उसी प्रकार इसने मुझे कान्तिरहित—निस्तेज कर दिया ? ॥१५६॥ जिस मनुष्य पर्यायके लिए देव भी चर्चा करते हैं औरोकी तो बात ही क्या है उस मनुष्य पर्यायको मैंने अब तक निःसार खोया ॥१५७॥ अब मैं दूसरा जन्म धारण करनेसे भयभीत हो चुका हूँ इसलिए आपसे प्रतिबोध पाकर यह चेष्टा करता हूँ कि जिससे मुक्ति प्राप्त होती है ॥१५८॥ इस प्रकार कहकर तथा परिजन सहित रामसे क्षमा कराकर सिंहके समान शूर वीरताको धारण करता हुआ अतिवीर्य श्रुतिधर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि युक्त शिरसे नमस्कार कर बोला कि हे नाथ । मैं दैगम्बरी दीक्षा धारण करना चाहता हूँ ॥१५९-१६०॥ 'एवमस्तु' इस प्रकार आचार्यके कहते ही वह वस्त्रादिका त्यागकर तथा केश लोचकर महाव्रतका धारी हो गया ॥१६१॥ आत्माके अर्थमें तत्पर, तथा राग द्वेष आदि परिग्रहसे रहित होकर वह धीर-वीर पृथिवीमें विहार करने लगा । विहार करते-करते जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वहीं वह ठहर जाता था ॥१६२॥ सिंह आदि दृष्ट जानवरोंसे युक्त सघन वनों तथा पर्वतोंकी गुफाओंमें वह निर्भय होकर निवास करता था ॥१६३॥ जिसने समस्त परिग्रहकी आशा छोड़ दी थी, जिसने चारित्रका भार धारण किया था, जो उत्तम शीलसे युक्त था, नाना प्रकारके तपसे जिसने अपना शरीर सुखा दिया, तथा जो स्वयं शुभ रूप था उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६४॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूपी मनोहर आभूषणोंसे जो सहित थे, दिखाएँ ही जिनके अम्बर—चन्द्र थे, मुनियोंके अट्टाईस मूल गुण ही जिनके आभरण थे, जिन्होंने कर्मरूपी शत्रुओंको हरनेके लिए प्रस्थान किया था, और जो मुक्तिके योग्य वर थे उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अतिवीर्य मुनिके इस उत्कृष्ट चरितको जो बुद्धिमान सुनता है अथवा पढ़ता है वह सभीके बीच बुद्धिको प्राप्त होता है तथा सूर्यके समान प्रभाको धारण करता हुआ कभी कष्ट नहीं पाता ॥१६६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें राजा अतिवीर्यकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला सैतीसवों पर्व समाप्त हुआ ॥३७॥

अष्टत्रिंशत्तमं पर्व

अथ पञ्चोऽतिवीर्यस्य तनय नयकोविदः । विजयस्यन्दनाभिष्यम्भपिञ्जतिपुत्रेः पदे ॥१॥
 दृशिताशेषविचोऽसावरविन्दातनुधुवम् । स्वसारं रतिमालाख्यां लक्ष्मणाया न्यवेदयत् ॥२॥
 एवमस्त्रिभ्यमोष्टायां तस्यां पद्मेन लक्ष्मणः । लक्ष्मीमिवाङ्गमायातां ज्ञात्वा सप्रमदोऽभवत् ॥३॥
 ततः कृत्वा जिनेन्द्राणां पूजां विस्मयदायिनीम् । इयाय विजयस्थानं लक्ष्मणाद्यन्वितो बलः ॥४॥
 द्वाचां श्रुत्वातिवीर्यस्य नर्तकीग्रहहेतुकाम् । शत्रुघ्नं हाससध्वानं निपिध्य भरतोऽवदत् ॥५॥
 अतिवीर्यो महाधन्यस्तस्य किं भद्र हास्यते । त्यक्त्वा यो विषयान् कष्टान् परां शान्तिसुपाश्रितः ॥६॥
 प्रभात्र तपसः पश्य त्रिदशेष्वपि दुर्लभम् । मुनिर्यो रिपुरासीन्नः सम्प्राप्तोऽनौ प्रणम्यताम् ॥७॥
 श्लाघामित्यतिवीर्यस्य यावत्कुर्वन् स तिष्ठति । विजयस्यन्दनस्तावत्प्राप्तः सामन्तमध्यगः ॥८॥
 प्रणम्य भरतायासौ स्थितः सङ्क्षयया चगम् । ज्यायसीं रतिमालाया नाम्ना विजयसुन्दरीम् ॥९॥
 उपनिन्द्ये शुभां कन्यां नानालङ्कारधारिणीम् । कोशं च विदुलं सार साधनं च प्रसन्नदृक् ॥१०॥
 कन्यामेकासुपादाय केकयानन्दनस्ततः । तस्यैवानुमत्तं सर्वं स्थितिरेषा महात्मनाम् ॥११॥
 कौतुकोक्कलिकार्कणमानसोऽथ महाजवैः । अश्वैः प्रवृत्ते द्रष्टुमतिवीर्यदिगम्बरम् ॥१२॥
 कासौ महामुनिः कासाविति पृच्छन्सुभावनः । एषोऽयमित्यमु भृत्यैः कथ्यमानमियाय सः ॥१३॥

अथानन्तर न्यायके वेत्ता श्रीरामने अतिवीर्यके पुत्र विजयरथका उसके पिताके पद पर अभिपेक किया ॥१॥ उसने अपना सब धन दिखाया और माता अरविन्दाकी पुत्री अपनी रत्नमाला नामक वहिन लक्ष्मणके लिए देनी कही सो रामने उसे 'एवमस्तु' कहकर स्वीकृत किया रत्नमालाको पा, मानो लक्ष्मी ही गोदमे आई है, यह जानकर लक्ष्मण अधिक प्रसन्न हुए ॥२-३॥ तदनन्तर लक्ष्मण आदिसे सहित राम, जिनेन्द्र भगवान्की आश्वर्यदायिनी पूजा कर राजा पृथ्वीधरके विजयपुर नगर वापिस आये ॥४॥ नर्तकीके पकड़नेके कारण राजा अतिवीर्यने द्वाचा धारण की है यह सुनकर शत्रुघ्न हास्य करने लगा सो भरतने मनाकर कहा ॥५॥ कि हे भद्र ! जो कष्टकारी विषयोंको छोड़ कर परम शान्तिको प्राप्त हुआ है ऐसा अतिवीर्य महाधन्य है उसकी तू क्या हँसी करता है ? ॥६॥ जो देवोंके लिए भी दुर्लभ है ऐसा तपका प्रभाव देख । जो हमारा शत्रु था अब मुनि होने पर वह हमारे नमस्कार करने योग्य गुरु हो गया ॥७॥ इस प्रकार अतिवीर्यकी प्रशंसा करता हुआ भरत जब तक बैठा था तब तक अनेक सामन्तोंके साथ विजयरथ वहाँ आ पहुँचा ॥८॥ वह भरतको प्रणाम कर उत्तम वार्ता करता हुआ चणभर बैठा । तदनन्तर उसने रतिमालाकी बड़ी वहिन विजयसुन्दरी नामकी शुभ कन्या जो कि नाना अलङ्कारोंको धारण कर रही थी भरतके लिए समर्पित की । साथ ही बड़ी प्रसन्न दृष्टिसे बहुत भारी खाजना और उत्तम सेना भी प्रदान की ॥९-१०॥ तदनन्तर उस अद्वितीय कन्याको पा कर भरत बहुत प्रसन्न हुआ उसने विजयरथकी इच्छानुकूल सब कार्य स्वीकृत किया सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंकी यही रीति है ॥११॥

अथानन्तर जिसका मन कौतुक और उत्कण्ठासे व्याप्त था ऐसा भरत महावेगशाली घोड़ेसे अतिवीर्य मुनिराजके दर्शन करनेके लिए चला ॥१२॥ वह उत्तम भावनासे सहित था तथा पूछता जाता था कि वे महामुनि कहां हैं ? और सेवक कहते

ततो विपमपापाणविवहात्यन्तदुर्गमम् । नानाद्रुमसमाकीर्णं कुसुमामोदवासितम् ॥१४॥
 तज्जेन कथितं रम्य पर्वतं श्वापदाकुलम् । आरुरोहावतीर्याश्वाङ्घ्रिनीताकारमण्डितम् ॥१५॥
 रोपतोपविनिक्तुं प्रशान्तकरणं विभुम् । शिलातलनिपण्णं तमेकसिंहमिवाभयम् ॥१६॥
 अतिवीर्यमुनिं दृष्ट्वा सुघोरतपसि स्थितम् । शुभध्यानगतात्मानं ज्वलन्तं श्रमणश्रिया ॥१७॥
 उःफुल्लनयनो लोकः सर्वो हृष्टतनूरुहः । विस्मय परमं प्राप्तो ननाम रचिताञ्जलिः ॥१८॥
 कृत्वास्य महतीं पूजां भरतः श्रमणप्रियः । प्रणम्य पादयोरुचे भक्त्या विनतविग्रहः ॥१९॥
 नाथ शूरस्वमेवैकः परमार्थविशारदः । येनेयं दुर्धरा दीक्षा धृता जिनवरोदिता ॥२०॥
 विशुद्धकुलजातानां पुत्रपाणां महात्मनाम् । ज्ञातससारसाराणामोदगेव विचेष्टितम् ॥२१॥
 मनुष्यलोकमासाद्य फलं यदभिवान्कथ्यते । तदुपात्तं त्वया साधो वयमस्यतदुःखिनः ॥२२॥
 चन्तव्यं दुरितं किञ्चिदस्माभिस्स्वयीहितम् । कृतार्थोऽसि नमस्तुभ्य प्राप्तयातिप्रतीच्यताम् ॥२३॥
 ह्युक्त्वा साञ्जलिं कृत्वा महासाधोः प्रदक्षिणाम् । अवतारणं कथां मौनीं कुर्वाणो धरणीधारात् ॥२४॥
 स्थूरीपृष्ठं समारुह्य पूर्यमाणः सहस्रशः । सामन्तैः प्रस्थितोऽयोध्यां विभवान्मोघिमध्यगः ॥२५॥
 महासायनसामन्तमण्डलस्यान्तरे स्थितः । शुशुभेऽसौ यथा जम्बूद्वीपोऽन्यद्वीपमध्यगः ॥२६॥
 क गतास्ता नु नर्तक्यः कृतलोकानुरञ्जनाः । स्वजीवितेऽपिनिलोभा विदुषुर्वा सवि प्रियम् ॥२७॥

जाते थे कि ये आगे विराजमान हैं ॥१३॥ तदनन्तर जो ऊँचे नीचे पापाणोंके समूहसे अत्यन्त दुर्गम था, नाना प्रकारके वृक्षांसे व्याप्त था, फूलोंकी सुगन्धिसे सुवासित था, और जङ्गली जानवरोंसे युक्त था ऐसे जानकार सेवकोंके द्वारा बताये हुए पर्वतपर भरत चढ़ा और घोड़ेमें उतरकर विनीत वेषसे शोभित होता हुआ अतिवीर्य मुनिराजके दर्शनके लिए चला । ॥१४-१५॥ वे मुनिराज हर्ष-विषादसे रहित थे, शान्त इन्द्रियोंके धारक थे, विभु थे, शिलातल पर विराजमान थे, एक सिंहके समान निर्भय थे, घोर तपमें स्थित थे, शुभ ध्यानमें लीन थे और मुनिपनेकी लक्ष्मीसे देदीप्यमान थे ॥१६-१७॥ मुनिराजके दर्शनकर सबलोगोंके नेत्र विकसित हो गये और सबके शरीरमें हर्षसे रोमाञ्च निकल आये । सभीने परम आश्चर्यको प्राप्त हो अञ्जलि जोड़कर उन्हें नमस्कार किया ॥१८॥ जिसे मुनि बहुत प्रिय थे ऐसे भरतने उन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की, चरणोंमें प्रणाम किया और फिर भक्तिसे नतशरीर होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ ! जिसने यह जिनेन्द्र-प्रतिपादित कठिन दीक्षा धारण की है ऐसे एक आप ही शूरवीर हो तथा आप ही परमार्थके जाननेवाले हो ॥१९-२०॥ विशुद्ध कुलमें उत्पन्न तथा संसारके सारको जाननेवाले महापुरुषोंकी ऐसी ही चेष्टा होती है ॥२१॥ मनुष्य लोक पाकर जिस फलकी इच्छा की जाती है हे साधो ! वह फल आपने पा लिया पर हम अत्यन्त दुखी हैं ॥२२॥ हे नाथ ! हमलोगोंसे आपके विषयमें जो कुछ अनिष्ट-पाप रूप चेष्टा हुई है उसे क्षमा कीजिए । आप कृतकृत्य हैं, अतिशय पूज्यताको प्राप्त हुए आपके लिए हमारा नमस्कार है ॥२३॥ इस प्रकार महासुनिराज अतिवीर्यसे कहकर तथा अञ्जलि सहित प्रदक्षिणा देकर उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा करता हुआ भरत पर्वतसे नीचे उतरा ॥२४॥ तदनन्तर हजारों सामन्त जिसके साथ थे तथा जो विभव रूपी समुद्रके बीचमें गमन कर रहा था ऐसा भरत हस्तिनीके पृष्ठ पर सवार हो अयोध्याके लिए वापिस चला ॥२५॥ बड़ी भारी सेना और सामन्तोंके बीचमें स्थित भरत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अन्य द्वीपोंके मध्यमें स्थित जम्बूद्वीप ही हो ॥२६॥ भरत प्रसन्न चित्तसे इस प्रकार विचार करता जाता था कि जिन्होंने अपने जीवनका भी लोभ छोड़कर हमारा इष्ट किया ऐसी लोगोंको अनुरञ्जित करने-

पुरः कृत्वातिवीर्यस्य महीयां परमां स्तुतिम् । नर्तकीभिः कृतं कर्म चित्रमेतद्दहो परम् ॥२८॥
 स्त्रीणां कृतोऽथवा शक्तिरीढया विष्टपेऽखिले । जिनशासनदेवीभिर्नूतमेतदनुष्ठितम् ॥२९॥
 चिन्तयन्नयमित्यादि सुयसत्त्वेन चेतसा । जगाम धरणीं पश्यन्नानासत्यसमाकुलाम् ॥३०॥
 व्याप्तशोपजगत्कीर्तिः प्रभाव परमं दधत् । सशङ्खेनो विवेशासौ विनीतां परमोदयः ॥३१॥
 साकं विजयसुन्दर्यां तस्थौ तत्र रतिं भजन् । सुलोचनापरिष्करो यथा जलदनिस्वनः ॥३२॥
 आनन्दं सर्वलोकस्य कुर्वाणौ रामलक्ष्मणौ । कञ्चित्कालं पुरे स्थित्वा पृथिवीधरभूष्टतः ॥३३॥
 जानक्या सह सन्मन्य कर्तव्याहितमानसौ । भूयः प्रस्थातुमुद्युक्तौ समुद्देशमभोषितम् ॥३४॥
 वनमाला ततोऽनोचल्लक्ष्मणं चारुलक्षणा । सवाप्ये विभ्रती नेत्रे तरत्तरलतारके ॥३५॥
 भवश्यं यदि भोक्तव्या मन्दभाग्याहकं त्वया । पुरैव रक्षिता कस्मान्मुमूर्षन्ती वद् प्रिय ॥३६॥
 सौमित्रिरगदद् भद्रे विषादं मा गमः प्रिये । अत्यल्पेनैव कालेन पुनरेमि वरानने ॥३७॥
 सत्यगदर्शनहीना यां गतिं यान्ति सुविभ्रमे । ब्रजेथ तां पुनः क्षिप्रं न चेदेमि तवान्तिकम् ॥३८॥
 नराणां मानदग्धानां साधुनिन्दनकारिणाम् । प्रिये पापेन लिप्येऽहं यदि नायामि तेऽन्तिकम् ॥३९॥
 रक्षितव्यं पितृवृन्त्यमस्माभिः प्राणवल्लभे । दक्षिणोदन्वतः कूलं गन्तव्यं निर्विचारणम् ॥४०॥
 मलयोपत्यकां प्राप्य कृत्वा परममालयम् । नेष्यामि भवतीमेत्य वरोरु धृतिमान्ब्रज ॥४१॥
 समर्थैः सान्त्वयित्वेति वनमालां सुभापितैः । भजे लाङ्गलिनः पारवं सुमित्राङ्गुलिसम्भवः ॥४२॥

वाली वे नर्तकियों कहा गई होगी ? ॥२७॥ राजा अतिवीर्यके सामने हमारी परम स्तुति कर उन नर्तकियोने जो काम किया । अहो ! वह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥२८॥ अथवा समस्त संसारमें स्त्रियोंकी ऐसी शक्ति कहाँ है ? निश्चयसे यह कार्य जिनशासनकी देवियोंने किया है । तदनन्तर जो नाना प्रकारके धान्यसे युक्त पृथिवीको देख रहा था, जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त थी, जो परम प्रभावको धारण कर रहा था और जो उत्कृष्ट अभ्युदयसे युक्त था ऐसे भरतने शत्रुघ्नके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ॥२९-३१॥ वहाँ विजयसुन्दरीके साथ प्रीतिको धारण करता हुआ भरत सुलोचना सहित मेघस्वर (जयकुमार) के समान सुखसे रहने लगा ॥३२॥

अथानन्तर सब लोगोंको आनन्द उत्पन्न करते हुए राम-लक्ष्मण कुछ समय तक तो राजा पृथिवीधरके नगरमें रहे फिर जानकीके साथ सलाह कर आगेका कार्य निश्चित करते हुए इच्छित स्थान पर जानेके लिए उद्यत हुए ॥३३-३४॥ तदनन्तर जो सुन्दर लक्षणोंसे युक्त थी और आँसुओंसे भीगे चञ्चल कर्नानिकाओवाले नेत्र धारण कर रही थी ऐसी वनमाला लक्ष्मणसे बोली कि हे प्रिय ! यदि मुझ मन्दभाग्याको तुम्हें अवश्य ही छोड़ना था तो पहले ही भरनेसे क्यों बचाया था सो कहो ॥३५-३६॥ तब लक्ष्मणने कहा कि हे भद्रे ! हे प्रिये ! हे वरानने ! विषादको प्राप्त मत होओ । मैं बहुत ही थोड़े समय बाद फिर आ जाऊँगा ॥३७॥ हे उत्तम विलासोको धारण करनेवाली प्रिये ! यदि मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास वापिस न आऊँ तो सत्यगदर्शनसे हीन मनुष्य जिस गतिको प्राप्त होते हैं उसी गतिको प्राप्त होऊँ ॥३८॥ हे प्रिये ! यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ तो साधुओंकी निन्दा करनेवाले अहंकारी मनुष्योंके पापसे लिप्त होऊँ ॥३९॥ हे प्राणवल्लभे ! हमें पिताके वचनकी रक्षा करनी है और विना कुछ विचार किये दक्षिण समुद्रके तट जाना है ॥४०॥ वहाँ मलयाचलकी उपत्यकामें जाकर उत्तम भवन बनाऊँगा और फिर तुम्हें ले जाऊँगा । हे सुन्दर जौवोवाली प्रिये ! तब तक धैर्य धारण करो ॥४१॥ इस प्रकार उत्तम शब्दोंसे युक्त शपथोंके द्वारा वनमालाको शान्तकर लक्ष्मण रामके पास जा पहुँचे ॥४२॥

१. अयोध्याम् । २. जयकुमारः, मेघस्वर इति तत्सैवापर नाम । ३. मलयोपत्यका म० । ४. मान्रत म० । ५. शपथैः । समग्रैः म० ।

ततः सुप्तजने काले विदितौ तौ न केनचित् । निर्गन्थ नगराद्गन्तु प्रवृत्तौ सह सीतया ॥४३॥
 प्रभाते तद्विनिर्मुक्तं पुरं दृष्ट्वाखिलो जनः । परमं शोकमापन्नः कृच्छ्रेणाधारयसनुम् ॥४४॥
 वनमाला गृहं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन विवर्जितम् । समयेषु समालम्ब्य जीवितं शोकिनी स्थिता ॥४५॥
 विहरन्तौ ततः क्षोणीं लोकविस्मयकारिणौ । सुमुदाते महासत्त्वौ ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥४६॥
 युवत्युज्ज्वलवल्लीनां मनोनयनपल्लवान् । ताचनङ्गतुपारेण दहन्तावाद्यतुः शनैः ॥४७॥
 कस्य पुण्यवतो गोत्रमेताभ्यां समलंकृतम् । सुजाता जननी सैका लोके यैतावतीजनत् ॥४८॥
 धन्येय वनिवैताभ्यां सम या चरति चितिम् । ईदृश यदि देवानां रूप देवास्ततः स्फुटम् ॥४९॥
 कृतः समागतावेतौ ब्रजतो वा क्व सुन्दरौ । वाञ्छितः किमिमौ कर्तुं सृष्टिरीहगिय कथम् ॥५०॥
 सख्योऽनेन पथा दृष्टौ पुण्डरीकनिरीक्षणौ । ब्रजन्तौ सहितौ नायां क्वचिच्चन्द्रनिभाननौ ॥५१॥
 यदिमौ शोभिनीं मुग्धे मनुष्यावथवा सुरौ । तत्किमर्थं स्वया शोको धार्यते गतलज्जया ॥५२॥
 अयि मूढे न पुण्येन नितान्तं भूरिणा विना । लभ्यते सुचिरं द्रष्टुमेवविधनराकृतः ॥५३॥
 निवर्तस्व भज स्वास्थ्य स्वस्तं वसनमुद्धर । मा नैपीलौंचने खेदमतिमात्रप्रसारिते ॥५४॥
 नेत्रमानसचौराभ्यां दृष्टाभ्यामपि बाञ्छिके । निष्ठुराभ्यां किमेताभ्यां काभ्यामपि धृतिं भज ॥५५॥
 इत्याद्यालापससक्तं कुर्वाणावबलाजनम् । रेमाते शुद्धचित्तौ तौ स्वेच्छाविहृत्कारिणौ ॥५६॥
 नानाजनपदाकीर्णां पर्यट्व धरिणीमिमौ । क्षेमाञ्जलिसमाख्यानं सम्प्राप्तौ परमं पुरम् ॥५७॥
 उद्याने निकटे तस्य जलदोल्करसन्निभे । अवस्थिताः सुखेनैते यथा सौमनसे सुराः ॥५८॥

तदनन्तर जब सब लोग सो गये तब किसीके बिना जाने ही राम लक्ष्मण और सीताके साथ नगरसे निकल कर आगेके लिए चल पड़े ॥४३॥ जब प्रभात हुआ तब नगरको उनसे रहित देख समस्त जन परम शोकको प्राप्त हुए तथा वड़े कष्टसे शरीरको धारण कर सके ॥४४॥ वनमाला भी घरको लक्ष्मणसे रहित देख बहुत शोकको प्राप्त हुई तथा लक्ष्मणके द्वारा की हुई शपथोंका आश्रय ले जीवित रही ॥४५॥ तदनन्तर महान् धैर्यके धारक राम लक्ष्मण पृथ्वी पर विहार करते हुए परम आनन्दको प्राप्त हुए । उन्हें देख लोगोंको आश्चर्य उत्पन्न होता था ॥४६॥ वे तरुण स्त्रीरूपी उज्ज्वल लताओंके मन और नेत्ररूपी पल्लवोंको कामरूपी तुपारसे जलाते हुए धीरे-धीरे विहार करते थे ॥४७॥ 'हे सखि ! इन दोनोंने किस पुण्यात्माका कुल अलंकृत किया है ? वह कौन-सी भाग्यशालिनी माता है जिसने इन दोनोंको जन्म दिया है ? ॥४८॥ यह स्त्री धन्य है जो इनके साथ पृथ्वी पर विहार कर रही है । यदि ऐसा रूप देवोंका होता है तो निश्चित ही ये देव हैं ॥४९॥ ये सुन्दर पुरुष कहींसे आये हैं ? कहीं जा रहे हैं ? और क्या करना चाहते हैं इनकी यह ऐसी रचना कैसे हो गई ? ॥५०॥ जिनके नेत्र कमलके समान तथा मुख चन्द्रमाके तुल्य हैं ऐसे दो पुरुष एक स्त्रीके साथ इस मार्गसे जा रहे थे सो हे सखियो ! तुमने देखे ॥५१॥ हे मुग्धे ! ये अतिशय सुशोभित व्यक्ति मनुष्य हों अथवा देव, तू निर्लज्ज होकर शोक किस लिए धारण कर रही है ? ॥५२॥ अयि मूर्ख ! ऐसे मनुष्योंका रूप बहुत भारी पुण्यके बिना चिरकाल तक देखनेको प्राप्त नहीं होता ॥५३॥ इसलिये लौट जा, स्वस्थ हो, नीचे खिसके हुए वस्त्रको संभाल और अत्यधिक पसारे हुए नेत्रोंको खेद मत प्राप्त करा ॥५४॥ अरी बाले ! नेत्र और मनको चुरानेवाले इन कठोर पुरुषोंके देखनेसे क्या प्रयोजन है ? धीरज धर ॥५५॥ इस प्रकार स्त्रीजनोंको वार्तालाप करनेमें तत्पर करते हुए शुद्धचित्तके धारक वे दोनों स्वेच्छासे विहार कर रहे थे ॥५६॥ इस प्रकार नाना देशोंसे व्याप्त पृथिवी में विहार करते हुए वे क्षेमाञ्जलि नामके परम सुन्दर नगरमें पहुँचे ॥५७॥ उस नगरके निकट ही वे मेघसमूहके समान सुन्दर एक उद्यानमें सुखपूर्वक इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि

भ्रमं वरगुणं भुक्त्वा लक्ष्मणेनोपसाधितम् । माध्वीकं सीतया सार्धमसेवत हलायुधः ॥५६॥
 'प्रासाद्रगिरिमालाभिस्ततो हृतनिरीक्षणः । लक्ष्मणः पद्मतोऽनुज्ञां प्राप्य प्रथययाचित्ताम् ॥६०॥
 दधानः प्रवरं मात्वं पीताम्बरधरः शुभः । स्वैरं क्षेमाञ्जलिं द्रष्टुं प्रतस्थे चावविभ्रमः ॥६१॥
 नानालतोपगृहानि काननानि वराप्यसौ । सरितः स्वच्छतोयाश्च शुभ्राश्रमससैकताः ॥६२॥
 विचित्रधातुरङ्गांशु परिकीडनपर्वतान् । देवधामानि तुहानि कृपान् वापीः सभाः प्रपाः ॥६३॥
 लोकं च विविधं पर्यन् दृश्यमानः सविस्मयम् । विवेश नगरं धीरो नानान्यापारमङ्गलम् ॥६४॥
 शृणु शृण्वति तत्रायं प्रधानविशिखागतम् । अश्रुणोत्पीरतः शब्दमिति विश्रब्धभापितम् ॥६५॥
 पुरुषः कोऽन्वसौ लोके धो मुक्तां राजपाणिना । शक्तिं प्रसह्य शूरेन्दो जितपद्मा^२ गृहीप्यति ॥६६॥
 स्वर्गं राज्यं ददामीति राजा चेत्यतिपद्यते । तथापि नानया कृत्यं कथया शक्तियातया ॥६७॥
 जातश्राभिमुखः शक्तेः प्राणैश्च परिवर्जितः । किं करिष्यति कन्यास्य राज्यं वा त्रिदशालये ॥६८॥
 समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्यः प्रियं जगति जावितम् । तदर्थमितरत् सर्वमिति को नावगच्छति ॥६९॥
 श्रुत्वैवं कौतुकी कञ्चिदथ पप्रच्छ मानवम् । भद्र ! का जितपद्मेयं यदर्थं भापते जनः ॥७०॥
 सोऽबोचन्मृग्युकन्यासावतिपण्डितमानिनी । किं न ते विदिता सर्वलोकविख्यातकीर्तिका ॥७१॥
 एतन्नगरनाथस्य राज्ञः शत्रुन्दमश्रुतेः । कनकाभासमुत्पन्ना हुहिता गुणशालिनी ॥७२॥
 यतोऽनया जित पद्मं कान्त्या वदनजातया । पद्मा च सर्वगात्रेण जितपद्मोदिता ततः ॥७३॥

सौमनस वनमें देव ठहर जाते हैं ॥१५८॥ वहाँ लक्ष्मणके द्वारा तैयार किया उत्तम भोजन ग्रहण कर रामने सीताके साथ दाखोंका मधुर पेय दिया ॥१५९॥

तदनन्तर बड़े-बड़े महल रूपी पर्वतोंकी पंक्तियोंसे जिनके नेत्र हरे गये थे ऐसे लक्ष्मण विनय पूर्वक रामसे आज्ञा प्राप्तकर इच्छानुसार क्षेमाञ्जलि नगर देखनेके लिए चले । उस समय वे उत्तम मालाएँ और पीतवस्त्र धारण किये हुए थे तथा सुन्दर विलाससे सहित थे ॥६०-६१॥ नाना लताओंसे आलिङ्गित उत्तमोत्तम वनों, स्वच्छ जलसे भरी तथा शुक्लमेघोंके समान उज्वल तटोंसे शोभित नदियों, नाना प्रकारकी धातुओंसे रङ्ग-विरङ्गे क्रीड़ा-पर्वतों, ऊँचे-ऊँचे जिन-मन्दिर, कुओं, वापिकाओं, सभाओं, पानीयशालाओं और अनेक प्रकारके मनुष्योंको देखते हुए उन्होंने नाना प्रकारके व्यापार-कार्योंसे युक्त नगरमें बड़ी धीरतासे प्रवेश किया । लोग उन्हें बड़े आश्चर्यसे देख रहे थे ॥६२-६४॥ जब ये नगरके प्रधान मार्गमें पहुँचे तब उन्होंने किसी नगरवासीसे निश्चिन्ततापूर्वक कहा हुआ यह शब्द सुना ॥६५॥ वह किसी से कह रहा था कि अरे सुनो-सुनो, संसारमें ऐसा कौन शूरवीर पुरुष है जो राजाके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहकर 'जितपद्मा' कन्याको ग्रहण करेगा ? ॥६६॥ यदि राजा यह भी कहे कि मैं स्वर्गका राज्य देता हूँ तो भी शक्तिके सम्बन्ध रखनेवाली इस कथासे क्या प्रयोजन है ? ॥६७॥ यदि कोई शक्ति मेलनेके लिए सन्मुख हुआ और प्राणोंसे रहित हो गया तो यह कन्या और स्वर्ग का राज्य उसका क्या कर लेगा ? ॥६८॥ 'संसारमें समस्त वस्तुओंसे जीवन ही प्यारा है और उसीके लिए अन्य सब प्रयत्न हैं यह कौन नहीं जानता है ? ॥६९॥

अथानन्तर इस प्रकारके शब्द सुनकर लक्ष्मणने कौतुक वश किसी मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र ! यह जितपद्मा कौन है ? जिसके लिए लोग इस प्रकार वार्ता कर रहे हैं ॥७०॥ इसके उत्तरमें उस मनुष्यने कहा कि जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त है तथा जो अपने आपको अति पण्डित मानती है ऐसी इस कालकन्याकी क्या तुम नहीं जानते ? ॥७१॥ यह इस नगरके राजा शत्रुन्दमनकी कनकाभा रानीसे उत्पन्न गुणवती पुत्री है ॥७२॥ चूँकि इसने मुखकी कान्तिसे

नवयौवनसम्पन्ना कलालङ्कारधारिणी । पुसोऽपि त्रिदशान् द्वेष्टि मनुष्येषु कथात्र का ॥७४॥
 उच्चारयति नो शब्दमपि पुल्लिङ्गवर्तिनम् । व्यवहारः समस्तोऽस्याः पुरुषार्थविवर्जितः ॥७५॥
 अदः पश्यसि कैलाससदृशं भवनं वरम् । अत्र तिष्ठत्यसौ कन्या शतसेवनलालिता ॥७६॥
 शक्ति यः पाणिना मुक्तो पित्रास्याः सहते नरः । वृणुते तमियं दग्ध-समीहा कृच्छ्रशालिनी ॥७७॥
 लक्ष्मीधरः समाकर्ण्य सकोपस्मयविस्मयः । दध्यौ सा कीदृशी नाम कन्या यैवं समीहते ॥७८॥
 दुष्टचेष्टामिमां तावत्कन्यां पश्यामि गर्विताम् । अहो पुनरभिप्रायः प्रौढोऽयमनया कृतः ॥७९॥
 ध्यायन्निति महोच्चेती राजमार्गेण चारुणा । विमानाभान् महाशब्दान् प्रासादाविधुषाण्डुरान् ॥८०॥
 दन्तिनो जलदाकारांस्तुरङ्गांश्चलचामरान् । बलभीर्नृत्यशालांश्च पश्यन् मन्थरचक्षुषा ॥८१॥
 नानानिर्व्यूहसम्पन्न विचित्रध्वजशोभितम् । शुभ्राभ्रराशिसङ्काश प्राप शबुन्दमालयम् ॥८२॥
 भास्वन्नक्तिशतकीर्णं तुङ्गप्राकारयोजितम् । द्वारं तस्य हृदौकैऽसौ शकचापाभतोरणम् ॥८३॥
 शस्त्रिहृन्दद्वृते तस्मिन्नानोपायनसङ्कुले । निर्गच्छन्निर्विशङ्गिश्च सामन्तैरतिसङ्घटे ॥८४॥
 द्वाःस्थेन प्रविशन्नेष बभापे सौम्यया गिरा । कस्त्वमज्ञापितो भद्र विशसि चितिपालयम् ॥८५॥
 सोऽञ्जोचद्वन्द्वमिच्छामि राजानं गच्छ वेदय । स्वपदेऽन्यमसौ कृत्वा गत्वा राज्ञे न्यवेदयत् ॥८६॥
 दिदृक्षुस्वां महाराज पुमान्निन्दीवरप्रभः । राजीवलोचनः श्रीमान् सौम्यो द्वारेऽवतिष्ठते ॥८७॥

कमलको अथवा सर्व शरीरसे लक्ष्मीको जीत लिया है इसलिए यह जितपद्मा कहलाती है ॥७३॥
 नवयौवनसे सम्पन्न तथा कलारूपी अलंकारोंको धारण करनेवाली यह कन्या पुंवेदधारी देवोसे
 भी द्वेष करती है फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥७४॥ जो शब्द व्याकरणकी दृष्टिसे
 पुल्लिङ्ग होता है यह उसका भी उच्चारण नहीं करती है । इसका जितना भी व्यवहार है वह सब
 पुरुषोंके प्रयोजनसे रहित है ॥७५॥ सामने जो कैलास पर्वतके समान बड़ा भवन देख रहे हो
 उसीमे यह सैकड़ों प्रकारकी सेवाओंसे लालित होती हुई रहती है ॥७६॥ जो मनुष्य इसके
 पिताके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहन करेगा उसे ही यह बरेगी ऐसी कठिन प्रतिज्ञा इसने ले
 रक्खी है ॥७७॥

यह सुनकर लक्ष्मण क्रोध, गर्व और आश्चर्यसे युक्त हो विचार करने लगे कि वह कन्या
 कैसी होगी जो इस प्रकारकी चेष्टा करती है ॥७८॥ दुष्ट चेष्टासे युक्त तथा गर्वसे भरी इस
 कन्याको देखूँ तो सही । अहो ! इसने यह बड़ा कठोर अभिप्राय कर रक्खा है ॥७९॥ इस प्रकार
 विचार करते हुए लक्ष्मण महावृषभकी नाई सुन्दर चालसे चलकर मनोहर राजमार्गमें आगे
 बढ़े । वहाँ वे विमानके समान आभावाले तथा चन्द्रमाके समान धवल उत्तमोत्तम भवनों,
 मेघोंके समान हाथियों, चञ्चल चमरोंसे सुशोभित घोड़ों, छपरियों और नृत्यशालाओंको
 धीमी दृष्टिसे देखते जाते थे ॥८०-८१॥ तदनन्तर जो नाना प्रकारके निर्व्यूहोंसे युक्त था, रङ्ग
 विरङ्गी ध्वजाओंसे सुशोभित था, तथा जो सफेद मेघावलीके समान था ऐसे राजा शत्रुदमके
 महलपर पहुँचे ॥८२॥ महलका द्वार सैकड़ों देदीप्यमान बेलबूटोंसे सहित था, ऊँचे प्रकारसे
 युक्त था, और इन्द्रधनुषके समान रङ्ग-विरङ्गे तोरणोंसे सुशोभित था ॥८३॥ तदनन्तर जो
 शस्त्रधारी पहरेदारोंके समूहसे आवृत था, नाना प्रकारके उपहारोंसे युक्त था और जहाँ बाहर
 निकलते तथा भीतर प्रवेश करते हुए सामन्तोंकी बड़ी भीड़ लग रही थी ऐसे द्वारमे लक्ष्मण
 प्रवेश करने लगे तो द्वारपालने सौम्यवाणीसे कहा कि हे भद्र ! तू कौन है जो बिना आज्ञा ही
 राजमहलमे प्रवेश कर रहा है ॥८४-८५॥ तब लक्ष्मणने कहा कि मैं राजाके दर्शन करना चाहता
 हूँ सो राजाको खबर दे दो । यह सुन अपने स्थान पर दूसरेको नियुक्तकर द्वारपालने भीतर
 जाकर राजासे निवेदन किया कि ॥८६॥ हे महाराज ! जो आपके दर्शन करना चाहता है,

भमात्यवदनं धीक्ष्य राजाबोचद्विशत्विति । ततः सुतः सुमित्रायाः प्रतीहारोदितोऽविशत् ॥८८॥
 तं दृष्ट्वा सुन्दराकारं सुगम्भीरापि सा सभा । समुद्रमूर्तिवत्कोभं गता शीतोन्मुददर्शने ॥८९॥
 प्रणामरहितं दृष्ट्वा विकटांसं सुभासुरम् । किञ्चिद्धि कृतचेतस्कस्तमपृच्छद्विन्दमः ॥९०॥
 कुतः समागतः कस्त्वं किमर्थं क्व कृतश्रमः । ततो लक्ष्मीथरोऽबोचत् प्रावृपेण्यघनध्वनिः ॥९१॥
 बाह्योऽहं भरतस्यापि महीहिण्डनपण्डितः । विद्वान् सर्वत्र ते भद्रकृतं दुहितुर्मानमागतः ॥९२॥
 अभग्नमानश्लथ्यं दुष्टकन्यागर्वा ध्वया । पोषिता सर्वलोकस्य वसते दुःखदायिनी ॥९३॥
 सोऽबोचद् यो मया मुक्तां शक्तः शक्तिं प्रतीक्षितुम् । कोऽसौ नु जितपद्माया मानस्य ध्वंसको भवेत् ॥९४॥
 उवाच लक्ष्मणः शक्या ग्रहणं मे किमेकया । शक्तीः पद्म त्रिसुख त्वं मयि शक्या समस्तया ॥९५॥
 विवादो गर्विणोरेव प्रवृत्तो यावदेतयोः । गवाक्षा निविडास्तावल्पिहिता वनिताननैः ॥९६॥
 परित्यक्तनरद्वेषा दृष्ट्वा लक्ष्मणपुङ्गवम् । निर्व्यूहस्या जिताम्भोजा संज्ञादानादवारयत् ॥९७॥
 दक्षवदाञ्जलि भीरुं सौमित्रिरिति सञ्चया । चकार जातबोधो तां मा मैयोरिति सम्मदी ॥९८॥
 जगद् च किमद्यापि कातर त्वं प्रतीक्षते । विमुञ्चारिन्दमाभिर्यथ शक्तिं शक्तिं निवेद्य ॥९९॥
 द्रुपुक्तः कुपितो राजा वदध्वा परिकरं ददम् । ज्वलत्पावकसंकाशां शक्तिनेकासुपादौ ॥१००॥
 प्रतीच्छेच्छसि मर्तुं चेदित्युक्त्वा भृङ्गुडी दधत् । वैशाख स्थानकं कृत्वा तां सुमोच विधानवित् ॥१०१॥

जिसकी प्रभा नील कमलके समान है, जिसके नेत्र कमलोंके समान सुशोभित हैं तथा जो अत्यन्त सौम्य है ऐसा एक शोभासम्पन्न पुरुष द्वार पर खड़ा है ॥८७॥ मन्त्रीके मुखकी ओर देख राजाने कहा कि 'प्रवेश करे' । तदनन्तर द्वारपालके कहने पर लक्ष्मणने भीतर प्रवेश किया ॥८८॥ यद्यपि वह सभा गम्भीर थी तो भी जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर समुद्र चौभको प्राप्त होता है उसी प्रकार वह सभा भी सुन्दर आकारके धारक लक्ष्मणको देखकर चौभको प्राप्त हो गई ॥८९॥ प्रणामरहित, विशाल कन्धके धारक तथा अतिशय देदीप्यमान लक्ष्मणको देखकर जिसका हृदय कुछ-कुछ विकृत हो रहा था ऐसे राजा शत्रुदमने पूछा कि तू कहाँसे आया है ? कौन है ? और किस लिए आया है ? इसके उत्तरमें वर्षा ऋतुके मेघके समान गम्भीर ध्वनिको धारण करनेवाले लक्ष्मणने कहा ॥९०-९१॥ कि मैं राजा भरतका सेवक हूँ, पृथ्वी पर घूमनेमें निपुण हूँ, सब विषयोंका पण्डित हूँ और तुम्हारी पुत्रीका मान भङ्ग करनेके लिए आया हूँ ॥९२॥ जिसके मानरूपी सींग अभग्न है ऐसी जो दुष्ट कन्यारूपी मरकनी गाय तुमने पाल रखी है वह सब लोगोंको दुःख देनेवाली है ॥९३॥ राजा शत्रुदमने कहा कि जो मेरे द्वारा छोड़ी हुई शक्तिको सहन करनेमें समर्थ है ऐसा वह कौन पुरुष है जो जितपद्माका मान खण्डित करनेवाला हो ॥९४॥ लक्ष्मणने कहा कि मैं एक शक्तिको क्या ग्रहण करूँ ? तू पूरी सामर्थ्यके साथ मुझपर पाँच शक्तियों छोड़ ॥९५॥ यहाँ जब तक दोनों अहंकारियोंके बीच इस प्रकार का विवाद चल रहा था वहाँ तब तक राजमहलके सघन भरोखे स्त्रियोंके मुखोंसे आच्छादित हो गये ॥९६॥ जितपद्मा भी लक्ष्मणको देख मोहित हो गई और पुरुषोंके साथ द्वेषको छोड़कर छपरी पर आ बैठी तथा इशारा देकर लक्ष्मणको मना करने लगी ॥९७॥ तब हर्षसे भरे लक्ष्मणने भयभीत तथा हाथ जोड़ कर बैठी हुई जितपद्माको इशारा देकर जताया कि भय मत करो ॥९८॥ और राजासे कहा कि अरे कातर ! अब भी क्या प्रतीक्षा कर रहा है ? शत्रुदम नाम रखे फिरता है । शक्ति छोड़ और पराक्रम दिखा ॥९९॥ इस प्रकार कहने पर राजाने कुपित हो अच्छी तरह कपूर कसी और जलती हुई अग्निके समान एक शक्ति उठाई ॥१००॥ तदनन्तर 'यदि मरना ही चाहता है तो ले मेल' यह कहकर भौहको धारण करनेवाले विधि-विधानके

अग्रनेनेव सा तेन धृता दक्षिणपाणिना । वर्तिकाग्रहणे को वा बहुमानो गरुत्मतः ॥१०२॥
 द्वितीयेतरहस्तेन कचाभ्यां द्वे सुविभ्रमः । शुश्रुभे सुश्रुशं तामिश्चतुर्वर्गं इव द्विपः ॥१०३॥
 संक्रुद्धमोगिभोगाभ्यां सम्प्राप्तमथ पञ्चमाम् । दन्ताभ्यां दधौ शक्तिं पेशामिव मृगाधिपः ॥१०४॥
 ततो देवगणाः स्वस्था ववृषुः पुष्पसंहतिम् । नचतुस्ताडयार्थक्रुर्दुन्दुमीश्र कृतस्वनाः ॥१०५॥
 प्रतीच्छारिन्दमेदानीं शक्तिं त्वमिति लक्ष्मणे । कृतशब्दे परं प्राप साध्वसं सकलो जनः ॥१०६॥
 तमचततनुं दृष्ट्वा लक्ष्मीगिलयवहसम् । विस्मितोऽरिन्दमो जातखपावनमिताननः ॥१०७॥
 जितपद्मा ततः प्राप स्मितच्छायानतानना । लक्ष्मीधरं समाकृष्टा रूपेणाचरितेन च ॥१०८॥
 धृतशक्तेः समीपेऽप्य सा तन्वी शुश्रुभेतराम् । कुलिशाद्युद्यपार्श्वस्था शचीर्वं विनतानना ॥१०९॥
 नवेन संगमेनास्या हृद्यं तस्य कंषितम् । यत्नासात् कषितं जातु संग्रामेषु महत्स्वपि ॥११०॥
 पुरस्तातनेरशानां कन्थया लक्ष्मणा वृतः । विभिद्यापन्नपापाली तन्नरन्यस्तनेत्रया ॥१११॥
 सद्यो विनयनन्नगो राजानं लक्ष्मणोऽग्रवीत् । मामकार्हासि मे चतुं शैशवाद्दुर्विचेष्टितम् ॥११२॥
 बालानां प्रतिक्लेन कर्मणा वचसापि वा । भवद्विधा सुगंभीरा नैव यान्ति विकारिताम् ॥११३॥
 ततः शत्रुन्दमोऽप्येनं सप्रमोदः ससंभ्रमः । स्तवैरमकराभाभ्यां कराभ्यां परिपव्ज्वे ॥११४॥
 उवाच च परिक्लिन्नगण्डांश्रण्डान् गजान् क्षणात् । योजीयं भीमयुद्धेषु भद्र सोऽहं त्वया जितः ॥११५॥

ज्ञाता राजाने आलीढ आसनसे खड़ा होकर वह गदा छोड़ दी ॥१०१॥ लक्ष्मणने विना किसी यत्नके ही दाहिने हाथसे वह शक्ति पकड़ ली सो ठीक ही है क्योंकि वटेरके पकड़नेमें गरुडका कौन-सा बड़ा मान होता है ? ॥१०२॥ दूसरी शक्ति दूसरे हाथसे तथा तीसरी चौथी शक्ति दोनों बगलमें धारण कर पुलकते हुए लक्ष्मण उनसे चार दाँतोंको धारण करनेवाले पेरावत हाथीके समान अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥१०३॥ अथानन्तर अत्यन्त कुपित सौंपकी फणकी नाई जो पाँचवीं शक्ति आई उसे लक्ष्मणने दाँतोंके अग्रभागसे उस प्रकार पकड़ लिया जिस प्रकार कि मृगराज मांसकी डलीको पकड़ रखता है ॥१०४॥ तदनन्तर आकाशमें खड़े देवोंके समूह पुष्प वरसाने लगे, नृत्य करने लगे तथा हर्षसे शब्द करते हुए दुन्दुभि बाजे बजाने लगे ॥१०५॥

अथानन्तर 'शत्रुन्दम ! अव तू मेरी शक्ति फेल' इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर सबलोग अत्यन्त भयको प्राप्त हुए ॥१०६॥ राजा शत्रुन्दम लक्ष्मणको अचत शरीर देख विस्मयमें पड़ गया और लज्जासे उसका मुख नीचा हो गया ॥१०७॥ तदनन्तर मन्द मुसकानकी छायासे जिसका मुख नीचेकी ओर हो रहा था ऐसी जितपद्मा रूप तथा आचरणसे खिचकर लक्ष्मण के पास आई ॥१०८॥ शक्तियोंको धारण करनेवाले लक्ष्मणके पास वह कुशाङ्गी, इस तरह अत्यन्त सुशोभित हो रही थी जिस तरह कि वज्रके धारक इन्द्रके पास खड़ी नतमुखी इन्द्राणी सुशोभित होती है ॥१०९॥ लक्ष्मणका जो हृद्य वड़े-वड़े संग्रामोसे भी कभी कम्पित नहीं हुआ था वह जितपद्माके नूतन समागमसे कम्पित हो गया ॥११०॥ तदनन्तर लज्जाके भारसे जिसके नेत्र नीचे हो रहे थे ऐसी जितपद्माने पिता तथा अन्य अनेक राजाओंके सामने लज्जा छोड़कर लक्ष्मणका वरण किया ॥१११॥ तत्काल ही विनयसे जिसका शरीर नम्रीभूत हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने राजासे कहा कि हे माम ! लड़कपनके कारण मैंने जो खोटी चेष्टा की है उसे आप क्षमा करनेके योग्य हैं ॥११२॥ बालकोंके विपरीत कार्य अथवा विरुद्ध वचनोसे आप जैसे महागम्भीर पुरुष विकार भावको प्राप्त नहीं होते ॥११३॥

तदनन्तर हर्ष और संभ्रमसे सहित राजा शत्रुन्दमने भी हाथीकी सूंडके समान लम्बी तथा सुपुष्ट भुजाओंसे लक्ष्मणका आलिङ्गन किया ॥११४॥ और कहा कि हे भद्र ! जिस मैंने

बन्धानिप महानापाम् गडशैलसमविपः । विमदीकृतवानस्मि सोऽयमन्य इवाभवम् ॥११६॥
 अहो वीर्यमहो रूपं सदृशः शुभ ते गुणाः । अहोतुद्धततात्प्यन्तं प्रश्रयश्च तवाद्भुतः ॥११७॥
 भापमाणो गुणानेवं राङ्गि संसचवस्थिते । लक्ष्मीधरस्त्रपातोऽभूत् क्वापि यात इव क्षणम् ॥११८॥
 अथ लब्धाम्भुदमातवोपर्येयः समाहताः । राजादेशात् समाभ्भाताः शंखाः संशितचारणाः ॥११९॥
 यथेष्टं दीयमानेषु धनेषु परमस्ततः । आनन्दोऽवर्तताशेषनगरक्षोभदक्षिणः ॥१२०॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽवाचि राज्ञा पुरुषपुङ्गव । त्वया दुहितुरिच्छामि पाणिग्रहणमस्मितुम् ॥१२१॥
 सोऽवोचन्नगरस्यास्य प्रदेशे निकटे मम । ज्येष्ठतिष्ठति तं पृच्छ स जानाति यथोचितम् ॥१२२॥
 ततः स्यन्दनमारोच्य जितपद्मां सलक्ष्मणाम् । सदातरन्धुरभ्याशं प्रतस्थे तस्य सादरः ॥१२३॥
 ततः क्षुत्पापगानायनिर्वोपप्रतिमध्वनिम् । श्रुत्वा वीक्ष्य विशाल च धूर्लीपटलमुद्गतम् ॥१२४॥
 जानुन्यस्तमुद्गत्सत्करा कृच्छ्रात्समुत्थिता । सीता जगाद् सम्भ्राता गिरा प्रखलित्वा मुहुः ॥१२५॥
 कृत सौमित्रिणा नूनं रात्रबोद्धतचेष्टितम् । आशेषमाकुलात्प्यन्तं दृश्यते कृत्यमाश्रय ॥१२६॥
 आश्लिष्य जानकः देवि मा भैवीरिति शब्दयन् । उचस्थी राघवः क्षिप्रं दष्टिं धनुषि पातयन् ॥१२७॥
 तावच्च नरवृन्दस्य महनः स्थितमग्रतः । सुतारगीतनिस्वानमीक्षाद्भक्तेऽङ्गनाजन्म ॥१२८॥
 क्रमेण गच्छतश्चास्य प्रत्यासत्तिं मनोहराः । विभ्रमाः समदृश्यन्त सुदारवायवोत्थिताः ॥१२९॥
 नृत्यन्तं च समालोक्य तारनूपुराङ्गितम् । विभ्रव्यः सीतया सार्कं पद्मः पुनरुपाविशत् ॥१३०॥

भयङ्कर युद्धो मे मदस्त्रावी कुपित हाथियोंको क्षणभरमे जीता था वह मैं आज तुम्हारे द्वारा जीता गया ॥११५॥ जिसने गोल काली चट्टानोवाले पर्वतके समान कान्तिके धारक बड़े-बड़े जङ्गली हाथियोंको मन्दरहित किया था वह मैं आज मानो अन्य ही हो गया हूँ ॥११६॥ धन्य तुम्हारी अनुद्धतता और धन्य तुम्हारी अद्भुत विनय । अहो शोभनीक ! तुम्हारे गुण तुम्हारे अनुरूप ही हैं ॥११७॥ इस प्रकार सभामें बैठता राजा शत्रुं दम जब लक्ष्मणके गुणोंका वर्णन कर रहा था तब लक्ष्मण लज्जाके कारण ऐसे हो गये मानो क्षणभरके लिए कहीं चले ही गये हों ॥११८॥

अथानन्तर राजाकी आज्ञासे मेवसमूहकी गर्जनाके समान विशाल शब्द करनेवाली भेरियों बजाई गईं और हाथियोंकी चिंघाड़का संशय उत्पन्न करनेवाले शङ्ख फूँके गये ॥११९॥ इच्छानुसार धन दिया जाने लगा और समस्त नगरको क्षोभित करनेसे समर्थ बहुत भारी आनन्द प्रवृत्त हुआ ॥१२०॥ तदनन्तर राजाने लक्ष्मणसे कहा कि हे श्रेष्ठ पुरुष ! मैं तुम्हारे साथ पुत्रीका पाणिग्रहण देखना चाहता हूँ ॥१२१॥ इसके उत्तरमे लक्ष्मणने कहा कि इस नगरके निकटवर्ती प्रदेशमें मेरे बड़े भाई विराजमान हैं सो उनसे पूछो वही ठीक जानते हैं ॥१२२॥ तब लक्ष्मण सहित जितपद्माको रथ पर बैठाकर स्त्रियों तथा भाई-बन्धुओंसे सहित राजा शत्रुं दम बड़े आदरके साथ रामके समीप चला ॥१२३॥ तदनन्तर क्षीमको प्राप्त हुए समुद्रकी गर्जनाके समान जोरदार शब्द सुनकर और उठे हुए विशाल धूलिपटलकी देखकर घुटनों पर बार-बार हाथ रखती हुई सीता बड़े कष्टसे उठी और धनडाकर स्खलित वागीमे रामसे बोली कि हे राघव ! जान पड़ता है लक्ष्मणने कोई उद्धत चेष्टा की है । यह दिशा अत्यन्त आकुल दिखाई देती है इसलिये सावधान होओ और जो कुछ करना हो सो करो ॥१२४-१२६॥ तब सीताका आलिङ्गन कर 'हे देवि ! भयभीत मत होओ' यह कहते तथा शीघ्र ही धनुष पर दृष्टि डालते हुए राम उठे ॥१२७॥ इतनेमें ही उन्होंने विशाल नर-समूहके आगे उध्वरसे मङ्गल गीत गानेवाली स्त्रियोंका समूह देखा ॥१२८॥ वह स्त्रियोंका समूह जब क्रम क्रमसे पास आया तब सुन्दर स्त्रियोंके शरीरसे उत्पन्न होनेवाले मनोहर हाव-भाव दिखाई दिये ॥१२९॥ तदनन्तर जिनके नूपुरोंकी

स्त्रियो मङ्गलहस्तास्तं सर्वालङ्कारभूषिताः । बुद्धौकिरेऽतिहारिण्यः समदस्फीतलोचनाः ॥१३१॥
 रथादुत्तीर्य पद्मास्यः सहितो जितपद्मया । पतिः पपात पद्मायाः पद्मस्य चरणौ द्रुतम् ॥१३२॥
 पद्मस्य प्रणतिं कृत्वा सोताया अपि सत्रपः । निविश्य नातिनिकटे पद्मस्य विनयी स्थितः ॥१३३॥
 नृपाः शत्रुन्दमाद्याश्च क्रमात्कृत्वा नमस्कृतिम् । पद्मस्य सहस्रीतस्य यथास्थानमवस्थिताः ॥१३४॥
 तत्र सङ्गृह्यथा स्थित्वा कुशलप्रश्नपूर्वया । कृते च पुनरानन्दनर्तने पार्थिवैरपि ॥१३५॥
 ऋद्ध्या परमया युक्तः ससीतो लक्ष्मणो बलः । प्रविष्टः स्यन्दनारूढो नगरं प्रमदान्वितः ॥१३६॥
 तत्र लावण्यकिञ्चक्रयोषिक्नुनलयाकुले । महाप्रासादसरसि स्वनद्भूषणपद्मिणि ॥१३७॥
 नरेभकलभौ सत्यव्रतसिद्धवनेरलम् । त्रासात् सङ्कुचितस्वान्तौ कुमारश्रीसमन्वितौ ॥१३८॥
 शत्रुन्दमकृतच्छन्दौ किञ्चिल्लालं महासुखौ । उपितौ सर्वलोकस्य चित्ताह्लादनदायिनी ॥१३९॥
 जितपद्मां ततो भीतां विरहादतिदुःखिताम् । परिसान्त्व्य प्रियैर्वाक्यैवेनमालामिवाद्वात् ॥१४०॥
 पद्मः सोतानुगो भूत्वा निशये स्वैरनिर्गतः । यातो लक्ष्मीधरो दत्त्वा पौराणामघर्षितं पराम् ॥१४१॥

शादूर्लक्ष्मिनीडितम्

ये जन्मान्तरसञ्चितातिलुङ्कताः सर्वासुभाजां प्रियाः ।

यं यं देशमुपव्रजन्ति विविध कृत्यं भजन्तः परम् ॥

तस्मिन्सर्वहर्षाकसौख्यचतुरस्तेषां विना चिन्तया ।

मृष्टान्नादिविधिर्भवत्यनुपमो यो विष्टे दुर्लभः ॥१४२॥

जोरदार भनकार फौल रही थी ऐसी स्त्रियोंके समूहको नृत्य करता देख राम निश्चिन्त हो सीताके साथ पुनः बैठ गये ॥१३०॥

अथानन्तर जिनके हाथोंमें मङ्गल द्रव्य थे, जो सब प्रकारके अलङ्कारोसे अलङ्कृत थी अतिशय मनोहर थीं और जिनके नेत्र मदसे फूल रहे थे ऐसी स्त्रियों रामके पास आईं ॥१३१॥ कमलके समान मुखको धारण करनेवाले लक्ष्मण जितपद्माके साथ रथसे उतरकर शीघ्र ही रामके चरणोमें जा पड़े ॥१३२॥ तदनन्तर राम और सीताको प्रणामकर लजाते हुए लक्ष्मण रामसे कुछ दूर हटकर विनयपूर्वक बैठ गये ॥१३३॥ शत्रुन्दम आदि राजा भी क्रम-क्रमसे राम तथा सीताको नमस्कार कर यथा स्थान बैठ गये ॥१३४॥ कुशल समाचार पूछकर सब वार्ता-लाप करते हुए सुखसे बैठे तथा राजाओंने आनन्द-नृत्य किया ॥१३५॥ तदनन्तर परम सम्पदा से युक्त तथा हर्षसे भरे राम लक्ष्मण और सीताने रथपर सवार हो नगरमें प्रवेश किया ॥१३६॥ वहाँ राजमहलमें पहुँचे सो वह राजमहल एक सरोवरके समान जान पड़ता था क्योंकि सौन्दर्य रूपी केशरसे युक्त स्त्रियां रूपी नील कमलोंसे वह व्याप्त था और शब्द करते हुए आभूषण रूपी पद्मियोंसे युक्त था ॥१३७॥ सत्यव्रत रूपी सिंहकी गर्जनाके भयसे जिनके चित्त अत्यन्त सङ्कुचित रहते थे, जो कुमार लक्ष्मीसे सहित थे, राजा शत्रुन्दम जिनकी इच्छानुसार सब सेवा करता था, जो महा सुखसे सहित थे तथा जो समस्त लोगोंके चित्तको आनन्द देने वाले थे ऐसे नर श्रेष्ठ राम लक्ष्मण उस राजमहलमें कुछ समय तक सुखसे रहे ॥१३८-१३९॥

तदनन्तर राम अर्धरात्रिके समय सीताके साथ इच्छानुसार राजमहलसे बाहर निकल पड़े और लक्ष्मण भी वनमालाके समान विरहसे भयभीत अतिशय दुःखी जितपद्माको प्रिय वचनों द्वारा आदर पूर्वक सान्त्वना दे रामके साथ चले । इन सबके जानेसे नगरवासियोंका धैर्य जाता रहा ॥१४०-१४१॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने जन्मान्तरमें बहुत

भोगैर्नास्ति मम प्रयोजनमिमे गच्छन्तु नाशं खलाः
 इत्येषां यदि सर्वदापि कुरुते निन्दामलं द्वेषकः ।
 एतैः सर्वगुणोपपत्तिपट्टभिर्यातोऽपि शृङ्गं गिरेः
 नित्यं १याति तथापि निजितरविर्दोष्या जनः सङ्गमम् ॥

इत्यापे रविषेणाचार्यैर्भोक्ते पद्मचरिते जितपद्मोपाख्यानं नामाष्टत्रिंशत्तमं पर्व ॥३८॥



भारी पुण्यका सञ्चय क्रिया है ऐसे सर्व प्राणियोंको प्रिय पुरुष, नाचा प्रकारके उत्तम कार्य करते हुए जिस-जिस देशमें जाते हैं उसी-उसी देशमें उन्हें बिना किसी चिन्ताके समस्त इन्द्रियोंके सुख देनेमें निपुण मधुर आहार आदिकी सब ऐसी अनुपम विधि मिलती है कि लोकमें जो दूसरोंके लिए दुर्लभ रहती है ॥१४२॥ 'मुझे इन लोगोंसे प्रयोजन नहीं है । ये दुष्ट नाशको प्राप्त हों, इस प्रकार भोगोंसे अतिशय द्वेष रखनेवाला पुरुष यद्यपि सर्वदा इन भोगोंकी निन्दा करता है और इन्हें छोड़कर पर्वतके शिखरपर भी चला जाता है तो भी अपनी कान्तिसे सूर्यको जीतनेवाला पुण्यात्मा पुरुष समस्त गुणोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ इन भोगोंके साथ सदा सभा गमको प्राप्त होता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्यको इच्छा न रहते हुए भी सब प्रकारको सुख-सामग्री सर्वत्र मिलती है ॥१४३॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें जितपद्माका वर्णन करनेवाला अठतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३८॥



एकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथ नानान्द्रुमचमासु बहुपुष्पसुगन्धिषु । लतामण्डपयुक्तासु सेवितासु सुखं मृतैः ॥१॥
 देवोपनीतनिर्गन्धपशरीरस्थितिसाधनी । आयातां रमणीयौ तौ सर्सीतौ रामलक्ष्मणौ ॥२॥
 क्वचिद्दिद्रुमसद्भाश रामः किसलयं लघु । गृहीत्वा कुरुते कर्णं जानक्याः साध्विति द्रुवन् ॥३॥
 सुतारौ सद्गतौ बह्वली कश्चिदारोप्य जानकोम् । स्वैरं दोलयतः पार्श्ववर्तिनौ रामलक्ष्मणौ ॥४॥
 द्रुमखण्डे क्वचिद् स्थित्वा नितान्तवनपल्लवे । कथामिः सुविदग्धाभिः कुरुतस्तद्दिनोदनम् ॥५॥
 इयमेतदर्थं बह्वली पलाशं तरुरीच्यताम् । हारिणी हारि हारीति सीतोचे राघवं क्वचित् ॥६॥
 क्वचिद् भ्रमरसङ्घातैसु खसौरभलोलुपैः । कृच्छादरक्षतामेतौ राजपुत्रौ कदर्थिताम् ॥७॥
 शनैर्विहरमाणो तौ समीतौ शुभविभ्रमौ । काननेषु विचित्रेषु स्वर्वनेषु सुराविव ॥८॥
 नानाजन्तोपभोग्येषु देशेषु निहितेक्षणौ । धीरौ क्रमेण सम्प्राप्तौ पुरं वंशस्थलद्युतिम् ॥९॥
 सुश्रीषोऽपि तयोः कालो गच्छतोः सहसीतयोः । पुण्यानुगतयोर्नासीदपि दुःखलक्षप्रदः ॥१०॥
 अपमन्यतां च तस्यान्ते वंशजालातिसङ्कटम् । नगं वंशधराभित्थं भित्त्वेव भुवमुदगतम् ॥११॥
 झायया तुङ्गशृङ्गाणां यः सन्ध्याभिव सन्ततम् । दधाति निर्भरणा च हसतीव च शीकरैः ॥१२॥
 निर्गच्छन्तौ प्रजां दृष्ट्वा पुरादथ स एककाम् । रामः पप्रच्छ भोः कस्मात् प्रासोज्यं सुमहानिति ॥१३॥

अथानन्तर जिनकी शरीर-स्थितिके समस्त साधन देवोपनीत थे, ऐसे सीता सहित राम-लक्ष्मण रमण करते हुए वनकी उन भूमियोमे आये जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे सहित थी, जिनमे नाना फूलोंकी सुगन्धि फैल रही थी, जो लतामण्डपोंसे सहित थी तथा मृगगण जिनमे सुखसे निवास करते थे ॥१-२॥ कहीं राम, मूंगके समान कान्तिवाले पल्लवको तोड़कर तथा उसका कर्णाभरण बनाकर 'यह ठीक रहेगा' इस प्रकार कहते हुए सीताके कानमें पहिनाते थे, तो कहीं किसी वृक्ष पर लटकती लता पर सीताको बैठकर बगलमें दोनो ओर खड़े हो राम-लक्ष्मण उसे मूला भुलाते थे ॥३-४॥ कहीं सघन पत्तोंवाले द्रुम-खण्डमें बैठकर मनोहर-मनोहर कथाओसे उसका मनोविनोद करते थे ॥५॥ कहीं सीता रामसे कहती थी कि यह मनोहर लता देखो, कहीं कहती थी कि यह मनोहर पल्लव देखो और कहीं कहती थी कि यह मनोहर वृक्ष देखो ॥६॥ कहीं मुखकी सुगन्धिके लोभी भ्रमरोंके समूह सीताको पीड़ित करते थे, सो ये दोनों भाई बड़ी कठिनाईसे उसकी रक्षा करते थे ॥७॥ जिस प्रकार देव स्वर्गके वनोंमें विहार करते हैं उसी प्रकार शुभ चेष्टाओंके धारक दोनों भाई सीताको साथ लिये नाना प्रकारके वनोंमे धीरे-धीरे विहार करते थे ॥८॥ नाना मनुष्योंसे उपभोग्य देशोंमे दृष्टि डालते हुए वे धीर-वीर क्रमसे वंशस्थद्युति नामक नगरमें पहुँचे ॥९॥ सीताके साथ भ्रमण करते हुए उन पुण्यानुगामी महा-पुरुषोंको यद्यपि बहुत काल हो गया था तो भी उतना बड़ा काल उन्हें अंशमात्र भी दुःख देनेवाला नहीं हुआ था ॥१०॥

उस नगरके समीप ही उन्होंने वंशधर नामका पर्वत देखा जो बाँसोंके समूहसे अत्यन्त व्याप्त था, पृथिवीको भेदकर ही मानो ऊपर उठा था, ऊँचे-ऊँचे शिखरोंकी कान्तिसे जो मानो सदा सन्ध्याको धारण कर रहा था और निर्भरनोंके झींटासे ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥११-१२॥ उन्होंने यह भी देखा कि प्रजाके लोग नगरसे निकल-निकल कर कहीं

१. संस्तुताम् व० । २. इयं हारिणी बह्वी, एतत् हारि पलाश, अयं हारी तरुः । ३. स्वर्वनेषु म० । ४. धारौ म० ।

सोऽनोचदद्य दिवसस्तूर्तीयो वर्तते नरः । नक्तमुत्तिष्ठतोऽमुष्मिन्नगो नादस्य^१ मस्तके ॥१४॥
 ध्वनिर्भुवपूर्वोऽयं प्रतिनादा भयावहः । कस्येति बहुविज्ञानैर्न वृद्धैरपि वेद्यते ॥१५॥
 सक्षुम्पतीव भूः सर्वा नन्दतीव दिशो दश । सरांसि सञ्चरन्तीव निर्मूस्यन्त इन्द्राग्निपाः ॥१६॥
 रौवाारावरौद्रेण घनेन ध्वनिनामुना । श्रवणौ सर्वलोकस्य ताड्योतेऽयोधनैरिव ॥१७॥
 निशागमे किमस्माकं वधार्थमयमुद्यतः । करोति क्रीडनं तावत् कोऽपि विष्टपकण्टकः ॥१८॥
 भयेन स्वनतस्तस्माद्यं लोको निशागमे । पलायते प्रभाते तु पुनरेति यथायथम् ॥१९॥
 सप्रं योजनमेतस्मादतीत्यान्योन्यभाषितम्^२ । शृणोत्यथ जनः किञ्चित् प्राप्नोति च सुखासिकाम् ॥२०॥
 निशम्योकिमिदं सीता वभापे रामलक्ष्मणौ । वयमन्यत्र गच्छामो यत्र याति महाजनः ॥२१॥
 कालं देशे च विज्ञाय नीतिशास्त्रविशारदैः । क्रियते पौरुषं तेन न जातु विपदाप्यते ॥२२॥
 प्रहस्यावोचतामेतामुद्विग्नां जनकात्मजाम् । गच्छ त्व यत्र लोकोऽयं ब्रजत्यल्लंघुसाध्वसे ॥२३॥
 अन्विष्यन्ती प्रभाते नौ लोकेन सहितामुना । अमुष्मिन् गण्डशैलान्ते गतभौरागमिष्यति ॥२४॥
 अस्मिन् महाद्वरे रम्ये ध्वनिरत्यन्तभीषणः । कस्यायमिति पश्यामो वयमद्येति निश्चयः ॥२५॥
 प्रभीष्यते वराकोऽय लोकः शिशुसमाकुलः । पशुभिः सहितः स्वन्तमस्य को नु करिष्यति ॥२६॥
 वैदेहीं^४ सञ्चरेवोचे सततं भवतोरिमम् । हर्षमेकं ब्रह्म शक्तः कः कुलीरग्रहोपमम् ॥२७॥

अन्यत्र जा रहे हैं । तब रामने किसी एक मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र ! यह बहुत भारी भय किस कारणसे है ? ॥१३॥ इसके उत्तरमे उस मनुष्यने कहा कि इस पर्वतके शिखर पर रात्रिके समय शब्द उठते हुए आज तीसरा दिन है ॥१४॥ जो शब्द पर्वत पर होता है वह हमने पहले कभी नहीं सुना, उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र गूँज उठती है तथा वह अत्यन्त भयङ्कर है । किस व्यक्तिका शब्द है ? यह बहुविज्ञानी बुद्ध लोग भी नहीं जानते हैं ॥१५॥ इस शब्दसे मानो समस्त पृथिवी हिल उठती है, दशों दिशाएँ मानो शब्द करने लगती हैं, सरोवर मानो इधर-उधर फिरने लगते हैं और वृक्ष मानो उखड़ने लगते हैं ॥१६॥ रौद्रतामे नरकके शब्दकी तुलना करनेवाले इस भारी शब्दसे समस्त लोगोंके कान ऐसे फटे पडते हैं मानो लोहेके घनोसे ही ताडित होते हो ॥१७॥ जान पड़ता है कि रात्रिके समय हम लोगोंका वध करनेके लिए उद्यत हुआ यह कोई लोकका कण्टक क्रीड़ा करता फिरता है ॥१८॥ ये लोग उस शब्दके भयसे रात्रि प्रारम्भ होते ही भाग जाते हैं और प्रभात होने पर पुनः वापिस आ जाते हैं ॥१९॥ यहाँसे कुछ अधिक एक योजन चलकर यह शब्द इतना हलका हो जाता है कि लोग परस्परका वातालाप सुन सकते हैं तथा कुछ आराम प्राप्त कर सकते हैं ॥२०॥

यह सुनकर सीताने राम-लक्ष्मणसे कहा कि जहाँ ये सब लोग जा रहे हैं वहाँ हम लोग भी चले ॥२१॥ नीतिशास्त्रके ज्ञाता पुरुष देश कालको समझकर पुरुषार्थ करते हैं, इसलिए कभी आपत्ति नहीं आती ॥२२॥ राम-लक्ष्मणने धवड़ाई हुई सीतासे हँसकर कहा कि तुम्हे बहुत भय लग रहा है इसलिए जहाँ ये लोग जाते हैं वहाँ तू भी चली जा ॥२३॥ प्रभात होनेपर इन लोगोंके साथ हम दोनोंको खोजती हुई निर्भय हो इस पर्वतके समीप आ जाना ॥२४॥ 'इस मनोहर पर्वत पर यह अत्यन्त भयङ्कर शब्द किसका होता है ? यह आज हम देखेंगे' ऐसा निश्चय किया है ॥२५॥ ये तीन लोग बाल-बच्चोंसे व्याकुल तथा पशुओंसे सहित हैं, इसलिए ये तो भयभीत होंगे ही इनका भला कौन कर सकता है ? ॥२६॥ तब जैसे उबर चढ़ रहा हो ऐसी कौपती हुई आवाजमें सीताने कहा कि हमेशा आपलोगों को हठ केकड़ेकी पकड़के समान विलक्षण ही है उसे

वदन्ती पुनरेवं सा पद्मनाभस्य पृष्ठतः । लक्ष्मीधरकुमारस्य जगामावस्थिता पुरः ॥२८॥
 आरोहन्ती गिरि देवीं प्रखिलक्रमपङ्कजा । रराज शृङ्गमन्दस्य चन्द्ररेखेव निर्मला ॥२९॥
 चन्द्रकातेन्द्रनीलान्तःस्थिता पुष्पमणिरसौ । शलाकैवाभवत्तस्य पर्वतस्य विभूषणम् ॥३०॥
 भृगुपातपरिरत्रतां कचिदुत्क्षिप्य तामिमौ । नयतोऽन्यत्र विश्रटवहस्तालम्बनकोविदौ ॥३१॥
 विषमप्रावणसङ्घातं^१ निस्तीर्यं त्रासवर्जितौ । विस्तीर्णनगमूर्धानं ससौतौ तावपापतुः ॥३२॥
 अथ सद्ग्रहानमारूढौ प्रलम्बितमहाभुजौ । साधयन्तौ सुदुस्साध्यां प्रतिमां चतुराननाम् ॥३३॥
 परेण तेजसा युक्तावधिधारी नगस्थिरौ । शरीरचेतनान्यत्ववेदिनौ मोहवर्जितौ ॥३४॥
 जातरूपधरौ कान्तिसागरौ नवयौवनौ । संयतौ प्रवराकारौ दृढश्रुस्ते यथोदितौ ॥३५॥
 दध्युश्च विस्मयं प्राप्ता यथा सुक्त्वाशुभाजनम् । निस्सारमीहितं सर्वं संसारो दुःखकारणम् ॥३६॥
 मित्राणि द्विगिणं दाराः पुत्राः सर्वे^२ च बान्धवाः । सुखदुःखमिदं सर्वं धर्म एकः सुखावहः ॥३७॥
 डुढौकिरे च भक्त्याख्या मूर्धविन्यस्तपाणयः । दधानाः परमं तोषं विनयानतविग्रहाः ॥३८॥
 थावदृष्टशूरत्युग्रैर्विस्फुरद्भिर्महास्वनैः । भिन्नाङ्गनसमच्छ्रायैश्चलजिह्वैः^३ पृढाकुभिः ॥३९॥
 समुद्यतालकैर्मैश्वरलद्भिरनिशं घनैः । नानावर्णैरतिस्थूलैर्वेष्टितौ वृश्चिकैश्च^४ तौ ॥४०॥

दूर करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२७॥ ऐसा कहती हुई वह रामके पीछे और लक्ष्मणके आगे खड़ी हो चलने लगी ॥२८॥ जिसके चरणकमल खेदखिल हो गये थे, ऐसी सीता पहाड़ पर चढ़ती हुई इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो मेघके शिखर पर चन्द्रमाकी निर्मल रेखा ही है ॥२९॥ राम और लक्ष्मणके बीचमे खड़ी सीता चन्द्रकान्तमणि और नीलमणिके मध्यमे स्थित पद्मरागमणिकी शलाकाके समान पर्वतका आभूषण हो रही थी ॥३०॥ जहाँ कहीं सीताको गोल चट्टानोसे नीचे गिरनेका भय होता था वहाँ वे दोनों, उसे ऊपर उठा कर ले जाते थे और जहाँ गिरनेका भय नहीं होता था वहाँ निश्चिन्ततापूर्वक हाथका सहारा देकर ले जाते थे ॥३१॥ इस प्रकार ऊँची-नीची चट्टानोका समूह पारकर भयसे रहित राम-लक्ष्मण सीताके साथ पर्वतके चौड़े शिखर पर जा पहुँचे ॥३२॥

अथानन्तर उन्होंने ऊपर जाकर ऐसे दो मुनि देखे जो उत्तमध्यानमे आरूढ थे, जिनकी लम्बी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रहीं थीं, जो अत्यन्त दुःसाध्य चतुर्मुखी प्रतिमाको सिद्ध कर रहे थे, परम तेजसे युक्त थे, समुद्रके समान गम्भीर थे, पर्वतके समान स्थिर थे, शरीर और आत्माकी भिन्नताको जाननेवाले थे, मोहसे रहित थे, दिगम्बर-मुद्राको धारण करनेवाले थे, कान्तिके सागर थे नूतन तारुण्यसे युक्त थे, उत्तम आकारके धारक थे और आगमोक्त आचरण करनेवाले थे ॥३३-३५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए वे तीनों अशुभ कर्मोंके आश्रयका परित्याग कर इस प्रकार विचार करने लगे कि संसारमे प्राणियोकी समस्त चेष्टाएँ निःसार तथा दुःखके कारण हैं ॥३६॥ मित्र, धन, स्त्री, पुत्र, और भाई-बन्धु आदि सभी सुख-दुःख रूप हैं, एक धर्म ही सुखका कारण है ॥३७॥ तदनन्तर जो भक्तिसे युक्त थे, जिन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक पर लगा रक्त्वे थे, जो परम सन्तोषको धारण कर रहे थे, और विनयसे जिनके शरीर नत्नीभूत हो रहे थे, ऐसे वे तीनों उक्त मुनिराजोंके पास गये ॥३८॥ दर्शन करते ही उन्होंने, जो अत्यन्त भयङ्कर थे, इधर-उधर चल रहे थे, विकट शब्द कर रहे थे, मसले हुए अञ्जनके समान कान्तित्वाले थे, तथा जिनकी जीभे लपलपा रही थीं ऐसे साँपोसे और जिन्होंने अपनी पूँछ ऊपर उठा रक्खी थी, जो अत्यन्त भयङ्कर थे, रात-दिन एक-दूसरे से सटकर चल रहे थे, नाना रङ्गके थे, एवं बहुत मोटे थे, ऐसे बिच्छुओसे जन दोनो मुनियोकी

तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा रामोऽपि सहलक्ष्मणः । सहसा त्रासमायातौ भेजे स्तम्भमिव क्षणम् ॥४१॥
 वैदेही भयसम्पन्ना भर्तारं परिपस्वजे । मा भैषीरिति तामूचे भयं त्यक्त्वा क्षणेन सः ॥४२॥
 उपसृत्य ततः स्वैरं ताभ्यां पद्मगवृश्चिकाः । अत्यस्ता कार्मुकाग्नेयं मुहुः कृतविवर्तनाः ॥४३॥
 अयोद्वर्त्य चिरं पादौ तयोर्निर्भरवारिणा । गन्धेन सीतया लिप्तौ चारुणा पुद्गभाबया ॥४४॥
 भासन्नानां च वल्लोनां कुसुमैर्वनसौरभैः । लक्ष्मीधरापितैः शुक्लैः पूरितान्तरमन्दिनौ ॥४५॥
 ततस्ते करयुग्माद्भ्रजमुकुलप्राजितालिकाः । चक्रुर्योगीश्वरी भक्त्या बन्धनां विधिकोविदाः ॥४६॥
 वीणां च सञ्जिवायाङ्गे वधूमिव मनोहराम् । पद्मोऽवाद्यदत्युद्ध गायन् सुमधुराक्षरम् ॥४७॥
 अन्वगायद्दिमं लक्ष्मीलतालिङ्गितपादपः । वाक्कोकिलरवः पुत्रः कैकय्यास्तत्त्वमादरम् ॥४८॥
 महायोगेश्वरा धीरा मनसा शिरसा गिरा । बन्धास्ते साधवो नित्य सुरैरपि सुचेष्टिताः ॥४९॥
 उपमानविनिर्मुक्तं यैरभ्याहृतमुत्तमम् । प्राप्तं त्रिभुवनस्थलात् सुभास्यैरर्हदक्षरम् ॥५०॥
 भिन्न यैर्ध्यानदण्डेन महामोहशिलातलम् । दीनं विदन्ति ये विश्वं धर्मानुष्ठानवर्जितम् ॥५१॥
 गायतोरचरण्येवं तयोर्गानविधिज्ञयोः । तिरश्चामपि चेतांसि परिप्रासानि माद्वैवम् ॥५२॥
 ततो विदितनिश्चेषचरुणतर्तनलक्षणा । मनोज्ञाकल्पसम्पन्ना हारमालयादिभूषिता ॥५३॥
 लीलया परया युक्ता दर्शितामिनया स्फुटम् । चारुबाहुलताभारा हावभावादिकोविदा ॥५४॥

धिरा देखा ॥३६-४०॥ उक्त प्रकार के मुनियोंको देख, राम भी लक्ष्मणके साथ सहसा भयको प्राप्त हुए तथा क्षण भरके लिए निश्चल रह गये ॥४१॥ सीता भयभीत हो पतिसे लिपट गई, तब रामने क्षण एकमे भय छोड़कर सीतासे कहा कि डरो मत ॥४२॥ तदनन्तर राम-लक्ष्मणने धीरे-धीरे पास जाकर जो दूर हटानेपर भी वार-वार वही लौट कर आते थे ऐसे सोंप, विच्छुओंको घनुपके अग्रभागसे दूर किया ॥४३॥

अथानन्तर भक्तिसे भरी सीताने निर्भरके जलसे देर तक उन मुनियोंके पैर धोकर मनोहर गन्धसे लिप्त किये ॥४४॥ तथा जो वनको सुगन्धित कर रहे थे एवं लक्ष्मणने जो तोड़ कर दिये थे, ऐसे निकटवर्ती लताओंके फूलोसे उनकी खुब पूजा की ॥४५॥ तदनन्तर अञ्जलिरूपी कमलकां वोड़ियोंसे जिनके ललाट शोभायमान थे तथा जो विधि-विधानके जाननेमे निपुण थे ऐसे उन सबने भक्तिपूर्वक मुनिराजकी बन्धना की ॥४६॥ अत्यन्त उत्तम तथा मधुर अक्षरोमे गाते हुए रामने मनोहर स्त्रीके समान वीणाको गोदमे रखकर बजाया ॥४७॥ इनके साथ ही लक्ष्मणने भी बड़े आदरसे तत्त्वपूर्ण गान गाया । उस समय लक्ष्मण, लक्ष्मीरूपी लतासे आलिङ्गित वृक्षके समान जान पड़ते थे और उनका मधुर शब्द कोयलकी मीठी तानके समान मालूम होता था ॥४८॥ वे गा रहे थे कि जो महायोगके स्वामी है, धीर-वीर हैं तथा उत्तम चेष्टाओंसे सहित हैं, उत्तम भाग्यके धारक जिन मुनियोंने उपमासे रहित, अखण्डित, तथा तीन लोकमे प्रसिद्ध 'अर्हत्' यह उत्तम अक्षर प्राप्त कर लिया है । जिन्होंने ध्यानरूपी दण्डके द्वारा महामोहरूपी शिलातलको तोड़ दिया है और जो धर्मानुष्ठान-धर्माचरणसे रहित विश्वको दीन समझते हैं ऐसे साधु देवोंके द्वारा भी मनसे, शिरसे तथा वचनसे बन्धनीय हैं ॥४९-५१॥ गानकी विधिको जाननेवाले राम-लक्ष्मण जब इस प्रकारके अक्षर गा रहे थे तब तिर्यञ्चोंके भी चित्त कोमलताको प्राप्त हो गये थे ॥५२॥

तदनन्तर जो समस्त सुन्दर नृत्योंके लक्षण जानती थीं, मनोहर वेपभूपासे युक्त थीं, हार माला आदिसे अलङ्कृत थीं, परम लीलासे सहित थीं, स्पष्टरूपसे अभिनय दिखला रही थीं, जिसकी बाहुरूपी लताओंका भार अत्यन्त सुन्दर था, जो हाव-भाव आदिके दिखलानेमे निपुण

लयान्तरत्रयोक्तम्पिसनोऽस्तनमण्डला । निरशब्दचरणास्भोजविन्यासा चलितीरुका ॥५५॥
 गीतानुगमसम्पन्नसमस्ताङ्गविचेष्टिता । मन्दिरे श्रीरिवावृत्यज्ज्ञानकां भक्तियोदिता ॥५६॥
 उपसर्गादित्र त्रस्ते चातेऽस्तं भास्करे ततः । सन्ध्यायां चानुमार्गेण यातायां चलेतेजसि ॥५७॥
 नक्षत्रमण्डलालोकं निष्कन् नौलाभ्रसन्निभम् । व्याप्नुवानं दिशः सर्वा गहनं ध्वान्तमुद्रतम् ॥५८॥
 जनस्याभ्रावि कार्यापि दिक्षु संकोभनं परम् । साराविणं तथा चित्रं भिन्दानमिव पुष्करम् ॥५९॥
 विद्युञ्जालामुखैर्लम्बैरभ्रद्वैव्यासमन्वरम् । क्वापि चात इवाशेषं लोकस्त्राससमाकुलः ॥६०॥
 अल्पप्रतिभयाकारा दंष्ट्रालोकुटिलाननाः । अट्टहासान् महारौद्रान् भूतानां सचक्षुर्गणाः ॥६१॥
 क्रव्यादा विरसं रेसुः सानलं चाशिवाः शिवाः । सस्वनुनृतुभीमं कलेवरशतानि च ॥६२॥
 नृधैरोमुञ्जङ्घदाङ्गान्यङ्गानि वधुवर्धनाः । दुर्गन्धिभिः समेतानि स्यूलशोणितदिन्हुभिः ॥६३॥
 कर्वालीकरा क्रूरविग्रहा द्रोलितस्तनी । लम्बोष्ठी ढाकिनी गन्गा दृश्यमानास्थिसञ्जया ॥६४॥
 मांसखण्डाभमगनाची शिरोघटितशेखरा । ललाटप्रसरोजिह्वा पेशाशोणितवर्षिणी ॥६५॥
 सिंहस्याग्रमुखैस्तल्लोहचक्राभलोचनैः । शूलहस्तैर्विदोष्टैर्भृङ्गुटीकुटिलालिकैः ॥६६॥
 राक्षसैः परधारावैर्दृष्ट्वद्विरतिसङ्कुलम् । कम्पितादिशिलाजालं बुभोभ वसुधातलम् ॥६७॥

थी, लय बदलनेके समय जिसके सुन्दर स्तनोंका मण्डल कुछ ऊपर उठकर कम्पित हो रहा था, जिसके चरण-कमलोंका विन्यास शब्द रहित था; जिसकी एक जोध चल रही थी । जिसके शरीरकी समस्त चेष्टाएँ संगीत शास्त्रके अनुरूप थीं, तथा जो भक्तिसे प्रेरित थी, ऐसी सीताने उस प्रकार नृत्य किया जिस प्रकार कि जिनेन्द्रके जन्माभिषेकके समय सुमेरु पर श्री देवोंने किया था ॥५३-५६॥ तदनन्तर उपसर्गसे त्रस्त होकर ही मानो जब सूर्य अस्त हो गया और उसीके पीछे चञ्चल तेजके धारण करनेवाली संध्या भी जब चली गई तब नक्षत्र मण्डलके प्रकाशको नष्ट करनेवाला तथा नील मेघके समान आभावाला सघन अन्धकार समस्त दिशाओंको व्याप्त करता हुआ उदित हुआ ॥५७-५८॥ उसी समय किसीका ऐसा विचित्र शब्द सुनाई दिया जो दिशाओंमें परम क्रोभ उत्पन्न करनेवाला था तथा जो आकाशको भेदन करता हुआ सा जान पड़ता था ॥५९॥ जिसके अग्रभागमें विजलीरूपी ज्वाला प्रकाशमान थी, ऐसी लम्बी वन-घटासे आकाश व्याप्त हो गया और लोक ऐसा जान पड़ने लगा मानो भयसे व्याकुल हो कहीं चला ही गया हो ॥६०॥ जिनके आकार अत्यन्त भय उत्पन्न करनेवाले थे तथा जिनके मुख दाँड़ोंकी पंक्ति से कुटिल थे, ऐसे भूतोंके भुण्ड महा भयङ्कर अट्टहास करने लगे ॥६१॥ राक्षस नीरस शब्द करने लगे, अमङ्गल रूप शृगालियों अग्नि ज्वालती हुई शब्द करने लगीं, सैकड़ों कलेवर भयङ्कर नृत्य करने लगे, ॥६२॥ मेघ, दुर्गन्धित खूनकी बड़ी मोटी घूँटोंसे सहित मस्तक वक्षःस्थल, भुजा तथा जङ्घा आदि अवयवोंकी वर्षा करने लगे ॥६३॥ जो हाथमें तलवार लिये थी जिसका शरीर अत्यन्त क्रूर था, जिसके स्तन हिल रहे थे, जिसके ओठ अत्यन्त लम्बे थे, जो गन्ग थी, जिसकी हड्डियोंका समूह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था, जिसकी फूटी आँखें मांसखण्डके समान थीं, जिनने नरमुण्डका सेहरा पहिन रखवा था, जिसकी जीभ ऊपरकी ओर उठकर ललाटका स्पर्श कर रही थी तथा जो मांस और रुधिरकी वर्षा कर रही थी ऐसी ढाकिनी दिखाई देने लगी ॥६४-६५॥ जिनके मुख सिंह तथा व्याघ्रके समान थे, जिनके नेत्र तपे हुए लोह चक्रके सदृश थे, जिनके हाथमें शूल विद्यमान थे, जो ओठको ढश रहे थे, जिनके ललाट भौंहोंसे कुटिल थे, जिनकी आवाज अत्यन्त कठोर थी, तथा जो नृत्य कर रहे थे ऐसे राक्षसोंसे भरा हुआ वहोंका भूतल

१. बुनेरवर्ति, मन्दिरे ल०, ज०, न० । २. निम्बलीलाभ्रसंघ्रम, म० । ३. भिन्दन्तमिव म० ।

४. आन्यान् । ५. इवाशेष आलोकस्त्रासमाकुल न० । ६. अमङ्गलभूताः । ७. शृगाल्यः ।

विचेष्टितमिदं व्यर्थं नाज्ञासिद्धं महामुनी । तद्योहिं^१ ज्ञानकर्मन्तशुक्लध्यानमयं तदा ॥६८॥
 तथाविधं तमालोक्ष्य दृष्टान्तं वरभीतिदम् । मह्यं जानकां नृत्यमारिलय्यकम्पिनीं पतिम् ॥६९॥
 पद्मो जगात् तां देवि मा भेषीः शुभमानसे । उपगुह्य मुनेः पादौ तिष्ठ सर्वभयच्छिद्रे^२ ॥७०॥
^३इत्युक्त्वा पादयोः कान्तां मुनेरामाद्य लाङ्गली । लघमीधरकुमारेण साकं सन्नाहमाश्रितः ॥७१॥
 नजलद्विव जीमूती गजितीं तौ महाप्रभौ ।^४निर्घातमिव मुञ्चन्ती समास्फालयतां धनुः ॥७२॥
 ततस्ती मन्त्रमां ज्ञात्वा रामनारायणाविति । सुरो बह्निप्रभाभिल्यस्तिरोधानमुपेयिवाद् ॥७३॥
 ज्योतिर्वरं^५ गते तस्मिन् समस्तं तद्विचेष्टितम् । सपदि प्रलयं^६ यातं जात च विमलं नभः ॥७४॥
 प्रातिहार्यं कृते ताभ्यामिच्छद्भ्यां परमं हितम् । उत्पन्न केवलज्ञानं मुनिपुङ्गवयोः क्षणात् ॥७५॥
 चतुर्विधास्ततो देवा नानायानमसाश्रिताः । समाजगमुः प्रशंसन्तो मुद्रितास्तपसः फलम् ॥७६॥
 प्रणम्य विधिना तत्र कृत्वा केवलपूजनम् । रचिताङ्गलयो देवा यथास्थानमुपाविशन् ॥७७॥
 नेवलज्ञानसम्भृतिसमाकृष्टसुरागमात् ।^७दोषादिनात्मकौ कालावभूतां भेदवर्जितौ ॥७८॥
 भूमिगोचरिणो मर्यास्तथा विद्यामहाधलाः । उपविष्टा यथायोग्यं कृत्वा केवलिनो महर्म् ॥७९॥
 प्रसन्नमानसं मयं कृत्वा केवलपूजनम् । प्रणम्य सीतया साकं निविष्टां रामलक्ष्मणीं ॥८०॥
 अथ तत्क्षणसम्भूतपरमाहंसनस्थितां । प्रणम्य माङ्गलिः पद्मः पप्रच्छैवं महामुनीं ॥८१॥

शोभको प्राप्त हो गया और पर्वतकी चट्टाने हिल डठीं ॥६६-६७॥ यह सब हो रहा था परन्तु उन महामुनियोंको उस व्यर्थकी चेष्टाका कुछ भी भान नहीं था, उनका ज्ञानोत्पादक प्रयत्न उस समय अन्तरङ्गमे युक्त ध्यानमग्न था ॥६८॥ अच्छे-अच्छे पुरुषोंको भय उत्पन्न करनेवाला ऐसा वृत्तान्त देख सीता नृत्य छोड़ कॉपती हुई पतिसे लिपट गई ॥६९॥ तब रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभ मानसे ! भयभीत मत हो । सब प्रकारको भय दूर करनेवाले मुनियोंके चरणोंका आश्रय ले बैठ जाओ ॥७०॥ यह कहकर रामने सीताको मुनिराजके चरणोंके समीप बैठायी और स्वयं लक्ष्मण कुमारके साथ, युद्धके लिए तैयार हो गये ॥७१॥ तदनन्तर सजल मेघके समान गरजने वाले एवं महा कान्तिके धारक राम लक्ष्मणने अपने-अपने धनुष टङ्कोरे सो ऐसा जान पड़ा मानो वज्र ही छोड़ रहे ॥७२॥ तदनन्तर 'ये बलभद्र और नारायण हैं' ऐसा जानकर वह अनिप्रभ देव घबड़ाकर तिरोहित हो गया ॥७३॥ उस ज्योतिषी देवके चले जानेपर उसकी सबकी सब चेष्टाएँ तत्काल विलीन हो गईं और आकाश निर्मल हो गया ॥७४॥

अथानन्तर परम हितकी इच्छा करनेवाले राम-लक्ष्मणके द्वारा प्रतिहारीका कार्य सम्पन्न होनेपर अर्थात् उपसर्ग दूर किये जानेपर दोनों मुनियोंको क्षणभरमें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥७५॥ तदनन्तर नाना प्रकारके वाहनोपर बैठे, हर्षसे भरे तथा तपके फलकी प्रशंसा करते हुए चारों निकायके देव आ पहुँचे ॥७६॥ वही विधिपूर्वक प्रणामकर तथा केवलज्ञानकी पूजाकर सब देव लोग हाथ जोड़े हुए यथास्थान बैठ गये ॥७७॥ उस समय केवलज्ञानकी उत्पत्तिसे खिचे हुए देवोंका समागम होनेसे रात-दिन रूप काल भेदसे रहित हो गया अर्थात् वहाँ रात दिनका व्यवहार समाप्त हो गया ॥७८॥ भूमिगोचरी मनुष्य तथा विद्यारूपी महाबलको धारण करनेवाले विद्याधर-सभी लोग केवलियोंकी पूजाकर यथायोग्य स्थानपर बैठ गये ॥७९॥ प्रसन्न चित्तके धारक राम-लक्ष्मण भी सीताके साथ शीघ्र ही केवलियोंकी पूजाकर यथास्थान बैठ गये ॥८०॥

अथानन्तर तत्क्षण उत्पन्न हुए परमोत्तम सिंहासनो पर विराजमान केवलज्ञानी महा-

१. ज्ञानकर्म = इयनौत्पादिका क्रिया, अन्तः आन्तरे इति टिपणी पुस्तके । २. इत्युक्त्वा म० ।
 १. वज्रम् । ३. ज्योतिर्वारम् म० । ४. जात म०, क० । ५. रात्रिदिवसरूपी । ६. पूजाम् ।

भगवन्तौ कृतो नक्त केनाथ द्वांसुपद्रवः । अथवा स्वस्थ युवयोरिदं जात हितं परम् ॥८२॥
 त्रिकालगोचरं विश्वं विदन्तावपि तौ समम् । गिरं याम्बुचतुः (गिरायाम्बुचतुः) साम्प्रपरिणाममितौ क्रमात्
 नगर्यां पद्मिनीनाम्नि राजा विजयपर्वतः । गुणसस्योत्तमक्षेत्रं भाभिनी यस्य धारिणी ॥८३॥
 अमृतस्वरसंज्ञोऽस्य दूतः शास्त्रविशारदः । राजकर्तव्यकुशलो लोकविद् गुणवत्सलः ॥८५॥
 उपयोगेति भार्यास्य द्वौ तस्यां कुक्षिसम्भवौ । उदितो मुदिताख्यश्च व्यवहारविशारदौ ॥८६॥
 असौ दूतोऽन्यदा राज्ञा प्रहितो दूतकर्मणा । प्रवासं सेवितु सक्तः स्वामिरक्तमतिभृशम् ॥८७॥
 वसुभूतिः सम तेन सखा तद्भक्तर्जावितः । निर्गतस्तत्प्रियासक्तिनिष्ठो दुष्टेन चेतसा ॥८८॥
 सुप्तं तमसिना^१ हत्वा निवृत्तां नगरी^२ पुनः । जनायावेत्रयत्नेन किलाहं विनिवर्तितः ॥८९॥
 उपयोगा जगादेवं जहि मे तनयावपि । विश्रब्ध येन तिष्ठाव इति वध्वा निवेदितम् ॥९०॥
 त्वरितं चोदितायासौ वृत्तान्तो विनिवेदितः । सा हि तेन समं स्वश्रव्याः^३ सङ्गं ज्ञातवती पुरा ॥९१॥
 ब्राह्मण्या वसुभूतेश्च रतिकार्यसमीर्षया । कथित तत्तथामृतं परमाकुलचित्तया ॥९२॥
 बभूव चोदितस्यापि सन्दिग्धं विदित पुरा । मुदितस्य च खड्गस्य दर्शनात् स्फुटतां गतम् ॥९३॥
 ततो रोपपरीतेन हतः सन्नुदितेन सः । कुँद्विजो म्लेच्छतां प्राप क्रूरकर्मपरायणः ॥९४॥

मुनियौको नमस्कार कर रामने हाथ जोड़ इस प्रकार पूछा ॥८१॥ कि हे भगवन् ! रात्रिके समय आप दोनो अथवा अपने ही ऊपर यह उपसर्ग किसने किया था और आप दोनोमे परस्पर अति स्नेह किस कारण हुआ ? ॥८२॥ यद्यपि दोनो महामुनि त्रिकालविषयक समस्त पदार्थोको एक साथ जानते थे, तो भी साम्प्रपरिणामको प्राप्त हुए दोनो महामुनि दिव्य ध्वनिमें क्रमसे बोले ॥८३॥ उन्होने कहा कि—

पद्मिनी नामा नगरीमें राजा विजयपर्वत रहता था । गुणरूपी धान्यकी उत्पत्तिके लिए उत्तम क्षेत्रके समान उसकी धारिणी नामकी स्त्री थी ॥८४॥ राजा विजयपर्वतके एक अमृतस्वर नामका दूत था जो शास्त्रज्ञानमे निपुण था, राजकर्तव्यमे कुशल था, लोकव्यवहारका ज्ञाता तथा गुणोमे स्नेह करनेवाला था ॥८५॥ उसकी उपयोगा नामकी स्त्री थी और उसके उदरसे उत्पन्न हुए उदित तथा मुदित नामके दो पुत्र थे । ये दोनो ही पुत्र व्यवहारमे अत्यन्त कुशल थे ॥८६॥ किसी समय राजाने अमृतस्वरको दूत सम्बन्धी कार्यसे बाहर भेजा, सो स्वामीके कार्यमे अत्यन्त अनुरक्त बुद्धिको धारण करनेवाला अमृतस्वर प्रवासके लिए गया ॥८७॥ उसके साथ उसीके भोजनसे जीवित रहनेवाला वसुभूति नामका मित्र भी गया । वसुभूति अत्यन्त दुष्ट चित्त था तथा अमृतस्वर की स्त्रीमे आसक्त था ॥८८॥ वह सोते हुए अमृतस्वरको तलवारसे मारकर नगरीमे वापिस लौट आया और आकर उसने लोगोको बताया कि अमृतस्वरने मुझे लौटा दिया है ॥८९॥ अमृतस्वरकी स्त्री उपयोगाने वसुभूतिसे कहा कि हमारे दोनो पुत्रोको भी मार डालो जिससे फिर हम दोनो निश्चिन्ततासे रह सकेंगे । सासका यह कहना उसकी बहूने जान लिया इसलिए उसने यह सब समाचार शीघ्र ही उदितके लिए बता दिया, यथार्थमे वह बहू 'सासका वसुभूतिके साथ संगम है' यह पहलेसे जानती थी ॥९०-९१॥ वसुभूतिकी खास स्त्री उसकी इस रतिक्रियासे सदा ईर्ष्या रखती थी तथा उसका चित्त अत्यन्त व्याकुल रहता था इसलिए उसने यह समाचार उदित को स्त्रीसे कहा था ॥९२॥ उदितको भी पहलेसे कुछ-कुछ सन्देह था और मुदित भी इस बातको पहलेसे जानता था फिर वसुभूतिके पास तलवार देखनेसे सब बात स्पष्ट हो गई ॥९३॥ तदनन्तर क्रोधसे युक्त होकर उदितने उसे मार डाला जिससे क्रूरकर्ममे तत्पर रहनेवाला वह कुम्भाह्वण म्लेच्छपर्यायको प्राप्त हुआ ॥९४॥

१. युवयोः ज०, क० । २. गिरया । ३. उदितमुदितनामधेयौ । ४. छुरिकया । ५. निवृत्तिनगरीं म० । ६. श्वश्रव्या म० । ७. मृत्वा च म० ।

अन्यद्वा प्रथितः क्षोण्यां गणेशो मतिवर्धनः । विहरन् पद्मिनीं प्राप भ्रमणः सुमहात्तपा' ॥६५॥
 अनुद्धरेति विख्याता धर्म्यध्यानपरायणा । महत्तरा तदा चासीदार्यिका गणपालिनी ॥६६॥
 वसन्ततिलकामिष्ये तत्रोद्याने सुसुन्दरे । सङ्घेन सहितस्तस्थो चतुर्भेदेन सङ्घ्रुवि ॥६७॥
 अथोद्यानस्य सम्भ्रान्ताः पालकाः किङ्करा भृशम् । नृपं व्यज्ञापयन्नेवं भूमिविन्यस्तपाणयः ॥६८॥
 अग्रतो ष्टगुरुसुध्रः शार्दूलः पृष्ठतो नृप । वद् क शरणं यामो नाशो नः सर्वथोदितः ॥६९॥
 भद्रा किं किमिति ब्रूथेत्युक्त्वा नृपतिनागदन् । नाथोद्यानसुचं प्राप्य भ्रमणानां गणः स्थितः ॥१००॥
 यद्येन वारयामोऽतः शप्यं ध्रुवमवाप्नुमः । न चेत्ते जायते कोप इति नः सङ्घटो महान् ॥१०१॥
 कर्षपोद्यानसमच्छ्रायमुद्यानं ते प्रसादतः । नरेन्द्रकृतमस्माभिरप्रवेश्यं पृथग्जनैः ॥१०२॥
 नैव वारयितुं शक्यास्तपस्तेजोविदुर्गमाः । त्रिदशैरपि दिग्बन्धाः किमुतास्मादशैर्जनैः ॥१०३॥
 मा भैष्ट ततो राजा कृत्वा किङ्करसान्त्वनम् । उद्यानं प्रस्थितो युक्तो विस्मयेनातिभूरिणा ॥१०४॥
 क्रद्धथा च परया युक्तो बन्दिभिः कृतनिस्वनः । उद्यानसुवममासीदन् प्रतापप्रकटः किरीट् ॥१०५॥
 ददर्श च महाभागान् वनरेणुसमुच्चितान् । मुक्तियोग्यक्रियायुक्तान् प्रशान्तदृष्टयान् सुर्नान् ॥१०६॥
 प्रतिमावस्थितान् कौश्रित् प्रलम्बितभुजद्वयान् । पष्ठाष्टमादिभिस्तांब्रैरुपवातैर्विशोपितान् ॥१०७॥

अथानन्तर किसी समय मुनिसंघके स्वामी मतिवर्धन नामक महातपस्वी आचार्य पृथिवी पर विहार करते हुए पद्मिनी नगरी आये ॥६५॥ उसी समय धर्मध्यानमे तत्पर रहनेवाली, अतिशय श्रेष्ठ और आर्थिकाओके संघकी रक्षा करनेवाली अनुद्धरा नामकी गणिनी भी विद्यमान थीं ॥६६॥ चतुर्विध संघसे सहित मतिवर्धन आचार्य वहाँ आकर उत्तम भूमिसे युक्त वसन्त-तिलक नामक उद्यानमे ठहर गये ॥६७॥ तदनन्तर उद्यानकी रक्षा करनेवाले किङ्कर अत्यन्त व्यग्र हो राजाके पास पहुँचे और पृथ्वी पर हाथ रखकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ ! आगे तो बड़ी ऊँची ढालू चट्टान है और पीछे व्याघ्र है बताइये हम किसकी शरणमें जावें । हमारा तो सब प्रकारसे विनाश उपस्थित हुआ है ॥६८-६९॥ 'भले आदमियो ! क्या ? क्या ??, क्या कह रहे हो' इस प्रकार राजाके कहने पर किङ्करोने कहा कि हे नाथ ! मुनियोंका एक संघ उद्यानकी भूमिमें आकर ठहर गया है ॥१००॥ यदि इस संघको हम मना करते हैं तो निश्चित ही शापको प्राप्त होते हैं और यदि नहीं मना करते हैं तो आपको क्रोध उत्पन्न होता है, इस प्रकार हम लोगों पर बड़ा संकट आ पड़ा है ॥१०१॥ हे राजन् ! आपके प्रसादसे हम लोगोंने वह उद्यान कल्प-वृक्षोंके उद्यानके समान बना रक्खा है, उसमे साधारण-पामर मनुष्य प्रवेश नहीं कर सकते ॥१०२॥ जो तपके तेजसे अत्यन्त दुर्गम हैं ऐसे निर्भन्ध मुनियोंको देव भी रोकनेमें समर्थ नहीं हैं फिर हमारे जैसे मनुष्योंकी बात ही क्या है ? ॥१०३॥

तदनन्तर 'भयभीत मत होओ' इस प्रकार किङ्करोको सान्त्वना देकर बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त हुआ राजा उद्यानकी ओर चला ॥१०४॥ जो बहुत भारी सम्पदासे युक्त था, बन्दीजन जिसकी स्तुति करते जाते थे, तथा जो अतिशय प्रतापी था, ऐसा राजा चलकर उद्यानभूमिमें पहुँचा ॥१०५॥ वहाँ जाकर उसने महाभाग्यवान् मुनियोंके दर्शन किये । वे मुनि वनकी धूलिसे व्याप्त थे, मुक्तिके योग्य क्रियाओंमें तत्पर थे तथा अत्यन्त प्रशान्त चित्त थे ॥१०६॥ उनमेंसे कितने ही मुनि दोनों भुजाओंकी नीचे की ओर लटक कर प्रतिमाके समान अवस्थित थे, तथा चेला-तेला आदि कठिन उपवासोंसे उनके शरीर शुष्क हो रहे थे ॥१०७॥ कितने ही स्वाध्यायमे तत्पर हो भ्रमरोंके समान मधुरध्वनिसे गुनगुना रहे थे और कितने ही स्वाध्यायमे

१. ब्रूतेत्युक्त्वा नृपतिनागद म० । २. पामरजनैः । पृथुस्तनैः (१) म० ।
 २४

स्वाध्यायनिरतानन्यात् १ पटङ्घिमधुरध्वनीन् । तद्विवेशितचेतस्कान् पाणिपाद्समाहितान् ॥१०८॥
 अवलोक्य मुनीनिर्धं भग्नगर्वाङ्कुरोऽभवत् । अवतीर्थ गजाद् भावी ननाम जयपर्वतः ॥१०९॥
 क्रमेण प्रणमन् साधूनाचार्यं समुपागतः । प्रणम्य पादयोरुचं भोगे सद्बुद्धिसुदहनम् ॥११०॥
 नरप्रधानत्रीक्षित्ते त्रयेयं शुभलक्षणा । तथा कथं न ते भोगा रताः पादतलस्थिताः ॥१११॥
 जगत् मुनिमुख्यस्तं का ते मतिरियं तनौ । स्थास्तुतासद्गतालीका संसारपरिवर्तिनी ॥११२॥
 करिवालककण्ठान्तचपलं ननु जीवितम् । मानुष्यकं च कदलीसारसाम्यं विभक्त्यंदः ॥११३॥
 स्वानप्रतिममैरवैर्यं सक्तं च सह बान्धवैः । इति ज्ञात्वा रतिः कात्र चिन्त्यमानातिदुःखदे ॥११४॥
 नरकप्रतिभे घोरे दुर्गन्धे कुमिसङ्कुले । रक्तलेष्मादिसरसि प्रभूताशुचिकर्दमे ॥११५॥
 उपितोऽनेकशो जीवो गर्भवासेऽतिसङ्कटे । तथा न शक्यते मोहमहाध्वान्तसमावृतः ॥११६॥
 धिगन्धन्ताशुचि देहं सर्वां शुभनिदानकम् । क्षणनश्वरमत्राणं कृतघ्न मोहपरितम् ॥११७॥
 स्नसाजालकसंरिष्टमतिच्छातस्वगावृतम् । अनेकरोगविहैतं जरागमस्तुगुप्यितम् ॥११८॥
 एवधर्मिणि देहेऽस्मिन् ये कुर्वन्ति जना घृतिम् । तेऽथश्चैतन्यमुक्तेभ्यः स्वस्ति सज्जायते कथम् ॥११९॥
 शरीरिन्मार्थं एतस्मिन् परलोकप्रवासिनि । मुपगन्तः प्रशभ लोक तिष्ठन्तीन्द्रियदस्यवः ॥१२०॥
 रमते जीवन्पतिः कुमतिप्रमदावृतः । अवस्कन्देन मृत्युस्त कर्द्वर्यितुमिच्छति ॥१२१॥

चित्त लगाकर पद्मासनसे विराजमान थे ॥१०८॥ इस प्रकारके मुनियोंको देख कर राजाका गर्वरूपी अङ्कुर भग्न हो गया तथा उसने हाथीसे नीचे उतर कर मुनियोंको नमस्कार किया । राजाका नाम विजयपर्वत था ॥१०९॥ भोगोंमें समीचीन बुद्धिको धारण करनेवाला राजा क्रम-क्रमसे सब मुनियोंको नमस्कार करता हुआ आचार्यके पास पहुँचा और उनके चरणोंमें प्रणाम कर इस प्रकार बोला कि हे नरश्रेष्ठ ! तुम्हारी शुभ लक्षणोंसे युक्त जैसी दीप्ति है वैसे भोग आपके चरणतलमें स्थित क्यों नहीं है ? ॥११०-१११॥ आचार्यने उत्तर दिया कि तेरे शरीरमें यह क्या बुद्धि है ? तेरी वह बुद्धि शरीरको स्थिर समझनेवाली है सो मूठ्ठी है और संसारको बढ़ानेवाली है ॥११२॥ निश्चयसे यह जीवन हरितशिशुके कानोके समान चञ्चल है तथा मनुष्यका यह जीतव्य केलिके सारकी सदृशता धारण करता है ॥११३॥ यह ऐश्वर्य और बन्धुजनोंका समागम स्वप्नके समान है, ऐसा जानकर इनमें क्या रति करना है ? इन ऐश्वर्य आदिका व्यो-व्यो विचार करो त्यों-त्यों ये अत्यन्त दुःखदायी ही मालूम होते हैं ॥११४॥ जो नरकके समान है, अत्यन्त भयङ्कर है, दुर्गन्धिसे भरा है, कीड़ासे युक्त है, रक्त तथा कफ आदिका मानो सरोवर है, जहाँ अत्यन्त अशुचि पदार्थोंकी कीच मच रही है तथा जो अत्यन्त संकीर्ण है ऐसे गर्भमें इस जीवने अनेकों वार निवास किया है, फिर भी महामोहरूपी अन्धकारसे आवृत हुआ यह प्राणी उससे भयभीत नहीं होता ॥११५-११६॥ जो सर्व प्रकारके अशुचि पदार्थोंका भाण्डार है, क्षण भरमें नष्ट हो जानेवाला है, जिसकी कोई रक्षा नहीं कर सकता, जो कृतघ्न है, मोहसे पूरित है, नसोंके समूहसे वेष्टित है, अत्यन्त पतली चर्मसे घिरा है, अनेक रोगोंसे खण्डित है, और बुद्धापाके आगमनसे निन्दित है, ऐसे इस शरीरको धिक्कार है ॥११७-११८॥ जो मनुष्य ऐसे शरीरमें वैयर्थ्य धारण करते हैं, चैतन्य अर्थात् विचाराविचारकी शक्तिके रहित उन मनुष्योंका कल्याण कैसे हो सकता है ? ॥११९॥ यह आत्मारूपी बनजारा परलोकके लिए प्रस्थान कर रहा है, सो लोगोंको जबरदस्ती लूटनेवाले ये इन्द्रियरूपी चोर उसे रोक कर बैठे हैं ॥१२०॥ यह जीवरूपी राजा कुबुद्धि रूपी खीसे बिरकर क्रीड़ा कर रहा है और मृत्यु उसे अचानक ही

१. भ्रमरमधुरध्वनीन् । स्वनाम् ७०, म० । २. सल-म० । ३. समुपागतं म० । ४. ऐश्वर्यं म० । ५. वजात्र म० । ६. सता शुभ-म० । ७. विहितं म०, ख० । ८. मुषन्तः म०, ज० । ९. अवस्कन्देन म० ।

मनो विपयमार्गेषु मत्तद्विरद्विभ्रमम् । वैराग्यबलिना शक्यं रोद्धुं ज्ञानाङ्कश्रिता ॥१२२॥
 परस्त्रीरूपसत्येषु विभ्राणा लोभमुत्तमम् । अमो हर्षीकतुरगा धृतमोहमहाजवाः ॥१२३॥
 शरीररथमुन्मुक्ताः पातयन्ति कुबर्तसु । वित्तप्रग्रहमत्यन्त योग्यं कुरुत तद्दृढम् ॥१२४॥
 नमस्यत जिनं भक्त्या स्मरतानारतं तथा । संसारसागरं येन समुत्तत निश्चितम् ॥१२५॥
 मोहारािकण्डकं हित्वा तपःसंयमहेतिभिः । लोकप्रनगरं प्राप्य राज्यं कुरुत निर्भयाः ॥१२६॥
 जैनं व्याकरणं श्रुत्वा सुधीर्विजयपर्वतः । त्यक्त्वा विपुलमैश्वर्यं बभूव मुनिपुङ्गवः ॥१२७॥
 तावपि आतरौ तस्मिन् श्रुत्वा भक्त्या जिनश्रुतिम् । प्रब्रज्य सुतपोभारो सङ्गतावटतुर्महोम् ॥१२८॥
 समेष्टं च ब्रजन्तौ तावद्विनिर्वाणवन्दनौ । कथञ्चिन्मार्गतो अष्टावरण्यानी समाश्रितौ ॥१२९॥
 वसुभूतिचरेणाथ रौद्रग्लेच्छेन वीक्षितौ । अतिकुन्देन चाहूतौ गिराक्रोशकठोरया ॥१३०॥
 जिवांसन्त तमालोक्य ज्यायान्मुदितमब्रवीत् । मा मैर्षीभ्रातरिद्य त्वं समाधानं समाश्रय ॥१३१॥
 म्लेच्छोऽयं हन्तुमुद्युक्तो दृश्यते नौ दुराकृतिः । चिराभ्याससमृद्धाया चान्तेरद्य विनिश्चयः ॥१३२॥
 प्रत्युवाच स तं भीतिः का नौ जिनवचस्थयोः । नूनं सृढतयास्माभिरप्ययं प्रापितो वधम् ॥१३३॥
 एव तौ विहितालापौ सविचारं समाश्रितौ । प्रत्याख्यानं शरीरादेः प्रतिमायोगमगतौ ॥१३४॥
 समीपतां च सम्प्राप्तो म्लेच्छो हन्तुं समुद्यतः । आलोक्य दैवयोगेन सैन्येन निवारितः ॥१३५॥
 रामः पप्रच्छ तेनैतौ व्यापात्रविर्तामप्यितौ । सेनाधिपेन निर्मुक्तौ रक्षितौ केन हेतुना ॥१३६॥

दुःखी करना चाहती है ॥१२१॥ विपयोके मार्गमे मदीन्मत्त हाथीके समान दौड़ता हुआ यह मन ज्ञानरूपी अङ्गुशको धारण करनेवाले वैराग्यरूपी बलवान् पुरुषके द्वारा ही रोका जा सकता है ॥१२२॥ जो शरीररूपी धान्यमें उत्तम लोभको धारण कर रहे हैं तथा जो महा मोहरूपी वेग को धारणकर लम्बी चौकड़ी भर रहे हैं ऐसे ये इन्द्रियरूपी घोड़े शरीररूपी रथको कुमार्गमे गिरा देते हैं, इसलिये मन रूपी लगामको अत्यन्त दृढ करो ॥१२३-१२४॥ भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार करो और निरन्तर उन्हींका स्मरण करो जिससे निश्चय पूर्वक संसार-सागरको पार कर सको ॥१२५॥ तप और संयमरूपी शस्त्रोंके द्वारा मोहशत्रुरूपी कंटकको नष्टकर मोक्षरूपी नगरको प्राप्त करो तथा निर्भय होकर वहाँका राज्य करो ॥१२६॥ इस प्रकार जैनाचार्यका व्याख्यान सुनकर उत्तम बुद्धिको धारण करनेवाला राजा विजयपर्वत विशाल वैभवका परित्याग कर श्रेष्ठ मुनि हो गया ॥१२७॥

दूतके पुत्र दोनो भाई उदित और मुदित भक्तिपूर्वक जिनवाणी सुनकर दीक्षित हो गये और उत्तम तपको धारण करते हुए एक साथ पृथिवी पर विहार करने लगे ॥१२८॥ निर्वाण क्षेत्रकी बन्दनाकी अभिलाषा रखते हुए वे सम्मेदाचलको जा रहे थे, सो किसी तरह मार्ग भूलकर एक महाअटवीमे जा पहुँचे ॥१२९॥ वसुभूतिका जीव मरकर उसी अटवीमे पुष्टम्लेच्छ हुआ था, सो उसने देखते ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर कठोर वाणीसे उन्हें बुलाया ॥१३०॥ उसे मारनेके लिए उत्सुक देख बड़े भाई उदितने मुदितसे कहा कि वे भाई भयभीत मत हो, इस समय समाधि धारण करो, वित्त स्थिर करो ॥१३१॥ दुष्ट आकृतिको धारण करनेवाला यह म्लेच्छ हम दोनोको मारनेके लिए तत्पर दिखाई देता है सो हम लोगोंने चिरकालके अभ्याससे जिस लमाको समृद्ध बनाया है आज उसकी परीक्षाका अवसर है ॥१३२॥ मुदितने बड़े भाईको उत्तर दिया कि जिनेन्द्र भगवान्के वचनोमे स्थिर रहनेवाले हम लोगोको भय किस बातका है ? निश्चयसे हम लोगोंने भी इसका वध किया होगा ॥१३३॥ इस प्रकार चार्तालाप करते हुए दोनों भाई विचार पूर्वक खड़े हो गये और शरीर आङ्गिसँ मर्मता छोड़ प्रतिमा योगको प्राप्त हुए ॥१३४॥ तदनन्तर मारनेकी इच्छा रखता हुआ वह भोल उनके पास आया परन्तु दैवयोगसे भीलोंके सेनापतिने उसे देख लिया जिसे मना कर दिया ॥१३५॥ यह सुन, रामने केवलीसे पूछा

१. हेतुभिः म० । २. व्याख्यानं । ३. सम्मोद ख० । ४. क्रोशकुटाराया म० । -

केवस्थास्यात् समुद्भूता भारतीति भवान्तरे । सुरपः कर्षकश्चास्तां यक्षस्थाने सहोदरो ॥१३७॥
 लुब्धकेनाहतो जीवः शकुन्तिप्राममन्धदा । ताभ्यां कार्ण्ययुवताभ्यां दत्त्वा मूल्यं विमोचितः ॥१३८॥
 ततोऽसौ शकुनो मृत्वा बभूव म्लेच्छभूपतिः । सुरपः कर्षकश्चैतावुदितो मुदितस्तथा ॥१३९॥
 पक्षीभवन्नसौ यस्मादेताभ्यां रचितं पुरा । तस्मात् सेनापतिर्भूयो ररचासाविमी मुनी ॥१४०॥
 लुब्धको जीवमोक्षेण वसुभूतिर्द्विजोत्तमः । सज्जातो कर्मयोगेन मनुष्यभवमुत्तमम् ॥१४१॥
 यद्यथा निर्मितं पूर्वं तद्योग्यं जायतेऽधुना । संसारवाससक्तानां जीवानां गतिरीदृशी ॥१४२॥
 किमर्थात्तरिहानर्थग्रन्थैरौशनसादिभिः । एकमेव हि कर्तव्यं सुकृतं सुखकारणम् ॥१४३॥
 निःसृतावुपसर्गात्तौ मुनी कर्मानुभावतः । निर्वाणसदनं प्राप्तावकाष्टां जिनवन्दनाम् ॥१४४॥
 एवं तौ चारुधामानि पर्यट्य समर्थं चिरम् । रत्नत्रयं समाराध्य मृत्वा स्वर्गमुपागतौ ॥१४५॥
 निन्दयोनियु पर्यट्य वसुभूतिः सुकृच्छृतः । मनुष्यत्वं समासाद्य तापसव्रतमाश्रितः ॥१४६॥
 कृत्वा बालतपः कष्टं कालधर्मेण सङ्गतः । अग्निकेतुरिति ख्यातः क्रूरो ज्योतिःसुरोऽभवत् ॥१४७॥
 तथासित भरतक्षेत्रे नाम्नादिष्टमहापुरम् । प्रियव्रत इति ख्यातः पुरुभोगोऽत्र पार्थिवः ॥१४८॥
 महादेव्यावुभे तस्य योपिद्गुणसमन्विते । काञ्चनाभा प्रसिद्धैका पद्मावत्यपरोदिता ॥१४९॥
 स्युतौ तौ सुन्दरौ नाकाजातौ पद्मावतीसुतौ । नाम्ना रत्नरथोऽन्यश्च विचित्रथसंज्ञकः ॥१५०॥
 उत्पन्नः क्रनकाभायां ज्योतिर्देवः परिच्युतः । अनुन्धर इति ख्याति गुणैस्ते चावनिं गताः ॥१५१॥
 रात्र्यं पुत्रेण निक्षिप्य पृथुदिनानि जिनालये । कृतसंलेखनः सन्त्यक् स्वर्गं यातः प्रियव्रतः ॥१५२॥

किं भील इन्हें क्यां मारना चाहता था औरसेनापतिने किस कारणसे लुब्धा कर इनको रक्षा की ॥१३६॥ तब केवली भगवान्के मुखसे इस प्रकारकी दिव्यध्वनि प्रकट हुई कि भवान्तरमे यक्षस्थान नामक नगरमें सुरप और कर्षक नामके दो भाई रहते थे ॥१३७॥ एक दिन एक शिकारी किसी पक्षीको पकड़ कर उस गोंबमे ले आया सो दयासे युक्त होकर सुरप और कर्षकने मूल्य देकर उसे लुब्धा दिया ॥१३८॥ तदनन्तर वह पक्षी मर कर म्लेच्छ राजा हुआ और सुरप तथा कर्षक मर कर उदित तथा मुदित हुए ॥१३९॥ चूंकि पक्षी अवस्थामें इन दोनोंने पहले इसकी रक्षा की थी इसलिए पक्षीने भी सेनापति होकर इन दोनोंं मुनियोकी रक्षा की ॥१४०॥ शिकारीका जीव मर कर कर्मयोगसे उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर वसुभूति नामका ब्राह्मण हुआ ॥१४१॥ यह जीव पूर्वं भवमे जैसा करता है इस भवमें उसके अनुरूप ही उत्पन्न होता है । संसारी प्राणियोंकी ऐसी ही दशा है ॥१४२॥ यहाँ निरर्थक शुक्रादि निर्मित शास्त्रोंके पढ़नेसे क्या होता है ? सुखके कारणभूत एक पुण्यका ही संचय करना चाहिए ॥१४३॥ पुण्यके प्रभावसे उपसर्गसे निकले हुए दोनोंं मुनियोने निर्वाण क्षेत्र—सम्मैदाचल पहुँच कर जिन-चन्दना की ॥१४४॥ इस प्रकार अनेक उत्तमोत्तम स्थानोंमें भ्रमण कर तथा चिरकाल तक रत्नत्रयकी आराधना कर मर कर दोनोंं मुनि स्वर्ग गये ॥१४५॥ और वसुभूति अनेक खोटी योनियोंमें भ्रमण कर बड़ी कठिनाईसे मनुष्यभवं को प्राप्त हुआ, सो वहाँ उसने तापसके व्रत धारण किये ॥१४६॥ तदनन्तर दुःखदायी बाल तप कर वह मरा और अग्निकेतु नामका दुष्ट ज्योतिषी देव हुआ ॥१४७॥

तदनन्तर इसी भरतक्षेत्रमें एक अरिष्टपुर नामा नगर है जहाँ प्रियव्रत नामका महाभोगवान् राजा राज्य करता था ॥१४८॥ उसकी स्त्रियोंके गुणोंसे सहित दो महादेवियों थीं एक काञ्चनाभा और दूसरी पद्मावती ॥१४९॥ उदित और मुदितके जीव स्वर्गसे च्यकर रानो पद्मावतीके रत्नरथ और विचित्रथ नामके सुन्दर पुत्र हुए ॥१५०॥ वसुभूतिका जीव जो ज्योतिषी देव हुआ था वह प्रियव्रत राजाकी दूसरी महादेवी काञ्चनाभाके अनुन्धर नामका पुत्र हुआ । पृथिवी पर आये हुए तीनों पुत्र अपने गुणोंसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए ॥१५१॥ राजा प्रियव्रत पुत्रोंके ऊपर राज्य

राज्ञोऽन्यस्य सुता नाम्ना श्रीप्रभा श्रीप्रभेव सा । लब्धा रत्नरथेनेष्टा कनकामाह्वजेन च ॥१५३॥
 लब्धा रत्नरथेनैषा ततो द्वेषमुपागतः । अनुन्धरो महीं तस्य विनाशयितुमुद्यतः ॥१५४॥
 ततो रत्नरथेनासौ विचित्रस्फन्दनेन च । निर्जित्य समरे पञ्च दण्डान् प्राप्य निराकृतः ॥१५५॥
 खलींकाराततः पूर्वजन्मवैराह कोपतः । जटावल्कलधारी स तापसोऽभूद् विपाङ्गमिवत् ॥१५६॥
 भुक्त्वा राज्यं चिरं कालं सोदरीं तु प्रबोधिनौ । प्रव्रज्य सुतपः कृत्वा स्वर्गलोकमुपागतौ ॥१५७॥
 तौ महागैजसौ तत्र सुखं प्राप्य सुरोचितम् । च्युतौ सिद्धार्थनगरे क्षेमङ्करमहामृतः ॥१५८॥
 उत्पन्नो विमलाख्यायां महादेव्यां सुसुन्दरी । देशभूषण इत्याद्यो द्वितीयः कुलभूषणः ॥१५९॥
 विद्याजर्नोचितौ तौ च क्रीडन्तौ तिष्ठतो गृहे । नाम्ना सागरघोषश्च विद्वान् श्राम्यन्नुपागतः ॥१६०॥
 राज्ञा च सगृहीतस्य तस्य पार्श्वेऽखिलाः कलाः । शिखितौ तावुदारेण विनयेन समन्वितौ ॥१६१॥
 'स्वजन नैव तौ कञ्चिज्जानातस्तद्गतात्मकी । कर्तव्यं हि तयोः सर्वं विद्याशालागतं तदा ॥१६२॥
 उपाध्यायेन चार्नातौ सुचिरात् पितुरन्तिकम् । दृष्ट्वा योग्यौ नरेन्द्रेण यथाकामं स पूजितः ॥१६३॥
 आवयोः किल दारार्थं पित्रा सामन्तकन्यका । आनायिता इति श्रोत्रपत्रं वार्ता तयोर्गता ॥१६४॥
 ततस्तौ परया धृत्या बाह्यालं गन्तुमुद्यतौ । वातायनस्थितं कन्यां पुरगोभामपश्यताम् ॥१६५॥
 तत्सद्गमार्थमन्योन्यं मानसेऽकुरुतां वधम् । ततश्च वन्दिनो वक्रादिति शब्दः समुत्थितः ॥१६६॥

छोड़ जिनालयमे लहू दिनकी उत्तम सल्लेखना धारण कर स्वर्ग गया ॥१५२॥ अथानन्तर एक राजाकी पुत्री श्रीप्रभा जो कि यथार्थसे श्रीप्रभा अर्थात् लक्ष्मीके समान प्रभाकी धारक थी, रत्नरथने उससे व्याह कर लिया। इसी पुत्राको काञ्चनाभाका पुत्र अनुन्धर भी चाहता था। वह द्वेष रखकर उसकी भूमिको उजाड़ करनेके लिए उद्यत हो गया ॥१५३-१५४॥ तब रत्नरथ और विचित्ररथने उसे युद्धमें जीत कर तथा पाँच प्रकारके दण्ड देकर देशसे निकाल दिया ॥१५५॥ अनुन्धर इस अपमान से तथा पूर्वभव सम्बन्धी वैरसे कुपित होकर जटा और वल्कलको धारण करनेवाला विपट्टुके समान तापसी हो गया ॥१५६॥

इधर रत्नरथ और विचित्ररथ दोनों भाई चिरकाल तक राज्य भोगकर प्रबोधको प्राप्त हुए सो दीक्षा ले उत्तम तप धारण कर स्वर्ग लोकमें उत्पन्न हुए ॥१५७॥ महातेजको धारण करनेवाले दोनों भाई वहाँ देवोके योग्य उत्तम सुख भोगकर वहाँसे च्युत हुए और सिद्धार्थ नगरके राजा क्षेमङ्करकी विमला नामक महादेवीके दो सुन्दर पुत्र हुए । प्रथम पुत्रका नाम देशभूषण और दूसरे पुत्रका नाम कुलभूषण था ॥१५८-१५९॥ विद्या उपार्जन करनेकी योग्य अवस्थामें वर्तमान दोनों भाई घर पर क्रीडा करते रहते थे । एक दिन भ्रमण करता हुआ एक सागरसेन नामका महाविद्वान् वहाँ आया, सो राजाने उसे रख लिया । उक्त विनयसे युक्त दोनों भाइयोंने उस विद्वान्के पास समस्त कलाएँ सीखीं ॥१६०-१६१॥ दोनों पुत्रोका विद्यामें इतना चित्त लगा कि वे अपने परिवारके लोगोको भी नहीं जानते थे । यथार्थमें उनका सम्पूर्ण चित्त विद्या और विद्यालयमे ही लगा रहता था ॥१६२॥ उपाध्याय चिर कालके बाद पुत्रोको निपुण बनाकर पिताके पास ले गया सो पिताने पुत्रोको योग्य देख उपाध्यायका यथायोग्य सम्मान किया ॥१६३॥ तदनन्तर पिताने हम दोनोंके विवाहके लिए राजा कन्याएँ बुलवाई हैं यह समाचार उनके कर्णमार्ग तक पहुँचा ॥१६४॥

तदनन्तर परम कान्तिसे युक्त दोनों भाई एक दिन नगरके बाहर जानेके लिए उद्यत हुए सो उन्होंने भरोखेमें वैठी नगरकी शोभा स्वरूप एक कन्या देखी ॥१६५॥ उस कन्याका समागम प्राप्त करनेके लिए दोनों ही भाइयोंने अपने मनमे परस्पर एक दूसरेके बध करनेका विचार किया । तदनन्तर वन्दीके मुखसे उसी समय यह शब्द निकला ॥१६६॥ कि विमला देवीके साथ वह

साकं विमलया देव्या श्रीमान् क्षेमङ्करो नृपः । चिरं जयति यस्यैतौ तनयौ त्रिदशोपमौ ॥१६७॥
 वातायनस्थितैपि कन्यका कमलोत्सवा । जयति भ्रातरावेतौ यस्यश्चास्त्रगुणोत्कटौ ॥१६८॥
 ततस्तौ तद्गिरो ज्ञात्वा सोदरैरावयोरिति । वैराग्य परमं प्राप्ताविति चिन्तामुपागतौ ॥१६९॥
 धिग्धिग्धिग्धिग्धिमत्यन्तं पापमस्माभिराहितम् । अहो मोहस्य दारुण्यं सोदरा येन कांचिता ॥१७०॥
 चिन्तयित्वा प्रमादेन दुःखमस्माकमादृशम् । कुर्वन्ति ये सदा कार्यं तेषां त्वत्थन्तसाहसम् ॥१७१॥
 असारोऽयमहोऽयन्तं संसारो दुःखपूरितः । तत्र नामेदशा भावाः जायन्ते पापकर्मणाम् ॥१७२॥
 कुतोऽप्यपुण्यतः क्षिप्रं चेतनो नरकं व्रजेत् । सम्प्राप्य बोधमस्माभि सद्बृत्तश्चित्रमुत्तमम् ॥१७३॥
 इति सञ्चिन्त्य सन्त्यज्य मातरं दुःखमूर्च्छिताम् । स्नेहाकुलं च पितरं दीक्षां देव्याससौं श्रितौ ॥१७४॥
 नभोविहरणी लब्धिं प्राप्य तौ सुतपोवनौ । आंहितातां जैगन्नानाजिनतीर्थान्भिपूजितम् ॥१७५॥
 क्षेमङ्करनरेशस्तु तच्छोकानलदीपितः । युगपत्सकलं त्यक्त्वाऽऽहारं पञ्चवैभागतः ॥१७६॥
 भवादारभ्य पूर्वोक्तात् स एव हि पितावयोः । तेन नौ प्रति वात्सल्यं तस्य नित्यमनुत्तमम् ॥१७७॥
 गह्वाधिपतिश्चातौ जातः क्थातो मरुत्वतः । सुन्दरोद्भूतविक्रान्तो महालोचनसञ्जकः ॥१७८॥
 क्षुब्धः स्वासनकम्पेन प्रयुज्यावधिमूर्जितः । आगतोऽयं स्थितो भाति व्यन्तरामरससदि ॥१७९॥
 अनुन्धरस्तु विहरंस्तापसाचारतत्परः । कौमुदीनगरीं यातः शिष्यसङ्घेन वेष्टितः ॥१८०॥
 नरेशः सुमुखस्तत्र रतवत्यस्य भामिनी । कान्ता शतप्रधानत्वं प्राप्ता परमसुन्दरी ॥१८१॥

राजा क्षेमङ्कर सदा जयवन्त रहे जिसके कि देवोंके समान ये दो पुत्र है ॥१६७॥ तथा भारोखेमें बैठौ यह कमलोत्सवा नामकी कन्या भी धन्य है जिसके कि सुन्दर गुणोंसे उत्कट ये दो भाई हैं ॥१६८॥ तदनन्तर वन्दीके कहनेसे 'यह हमारी बहिन है' ऐसा जानकर परम वैराग्यको प्राप्त हुए दोनों भाई इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥१६९॥ अहो ! हम लोगोंके द्वारा इच्छित इस भारी पापको धिक्कार है, धिक्कार है, धिक्कार है ! अहो ! मोहकी दारुणता देखो कि जिससे हमने बहिन ही की इच्छा की ॥१७०॥ हम लोग तो प्रमादसे ही ऐसा विचार कर दुःखी हो रहे हैं फिर जो जान-बूझकर सदा ऐसा कार्य करते हैं उनका तो बहुत भारी साहस ही कहना चाहिये ॥१७१॥ अहो ! दुःखसे भरा यह संसार बिलकुल ही असार है जिसमें पापी मनुष्योंके ऐसे विचार उत्पन्न होते हैं ॥१७२॥ किसी पापके उदयसे सहसा कार्य करनेवाला प्राणी नरक जा सकता है, पर हम लोग तो सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको पाकर भी नरक जाना चाहते हैं, यह बड़ा आश्चर्य है ॥१७३॥ ऐसा विचारकर दुःखसे मूर्च्छित माता और स्नेहसे आकुल पिताको छोड़कर दोनों दैगम्बरी दीक्षा धारण कर ली ॥१७४॥ उत्तम तपरूपी धनको धारण करनेवाले दोनों मुनियोंने आकाशगामिनी ऋद्धि प्राप्त कर जगत्के नाना तीर्थ क्षेत्रोंमें विहार किया ॥१७५॥ राजा क्षेमङ्कर उस शोकाग्निसे दग्ध हो कर एक साथ समस्त आहार छोड़ मृत्युको प्राप्त हुआ ॥१७६॥ राजा क्षेमङ्कर पहले कहे हुए भयसे ही लेकर हम दोनोंका पिता होता आया है इसलिये हम दोनोंके प्रति उसका निरन्तर भारी स्नेह रहता था ॥१७७॥ अब वह मरकर भवनवासी देवोंमें सुपर्ण कुमार जातिके देवोका अधिपति, प्रसिद्ध, सुन्दर अद्भुत-पराक्रमका धारी महालोचन नामका देव हुआ है ॥१७८॥ वह बली अपने आसनके कम्पित होनेसे लुभित हो अवधि ज्ञानके द्वारा सब जान कर यहाँ आया है तथा व्यन्तर देवोंकी सभामें बैठा है ॥१७९॥

उधर तपस्वियोंका आचार पालन करनेमें तत्पर अनुंधर, शिष्य समूहके साथ विहार करता हुआ कौमुदी नगरीमें आया ॥१८०॥ वहाँका राजा सुमुख था और रतवती उसकी स्त्री थी

१. निमः सद्बृत्तश्चित्रमुत्तमम् म० । २. दैगम्बरीम् । ३. जगन्मान्याजिनतीर्थान्भिपूजिताम् म० । ४. हारे म० । ५. मृत्युम् । ६. सर्वदारभ्य म० ।

अवच्छेदा च सच्चष्टा मद्रनेति विलासिनी । पताका मद्रनेनेव जित्वा लोकमुपाजिता ॥१८२॥
 साधुदत्तमुनेः पार्ष्वं सम्यग्दर्शनमैत्रसौ । तस्याभ्येतरतीर्थानि वृणतुल्यान्यमन्यत ॥१८३॥
 तस्याः पुरोऽथ रहसि कदाचिद्वद्रन्मृपः । अहोऽसौ तापसः स्थान महतां तपसामिति ॥१८४॥
 ततो मद्रनयाऽवाचि कीदृशान्येदृशां तपः । मिथ्यादृशामविज्ञानलोकदम्भनकारिणाम् ॥१८५॥
 तच्छ्रुत्वा भूपतिस्तस्यै क्रुद्धः सा चागदत् पुनः । मा रुः पश्यनाथेयं मेऽचिरात्प्रात्रवर्तिनम् ॥१८६॥
 इत्युक्त्वा स्वगृहं गत्वा शिष्यित्वा मनोहरम् । आमजा नागदत्ताख्यं प्रैषयत्तावसाश्रमम् ॥१८७॥
 तस्मै सैकान्तयाताय योगस्थाय सुविभ्रनां । आस्थितामरकन्येव परमाकल्पधारिणां ॥१८८॥
 वातेहिताम्बरव्याजादूर्णकाण्डमदर्शयत् । मारस्यान्तःपुरस्थानं लावण्यरसनिर्भरम् ॥१८९॥
 समाधानोपदेशेन कुङ्कुमद्रवपिञ्जरम् । मारवारणकुम्भाभ तथा वक्षसिजद्वयम् ॥१९०॥
 कुसुमग्रहणव्याजात् सस्तनीविरतेर्गृहम् । नाभिमण्डलमुत्तेजः कर्कोद्वेशं च सुन्दरीं ॥१९१॥
 अज्ञानयोगमेतस्य भित्वा लोचनमानसे । अपसतां प्रदेशेषु तेषु तस्याः सुवन्धने ॥१९२॥
 ताडितः स्मरवाणैश्च समुत्थाय समाकुलः । गत्वा शनैरपृच्छन्तां त्वं वाले कात्र वर्तसे ॥१९३॥
 सन्ध्याकालेऽत्र ये केचित् प्राणिनः क्षुद्रका अपि । आलयं स्वं निषेवन्ते ननु त्वं सुकुमारिका ॥१९४॥
 सावोचन्मधुरैर्वर्णैः भिन्दन्ती हृदयस्थलीम् । लीलया बाहुल्यैकामुन्नयन्ती सुखं प्रति ॥१९५॥
 चलन्तील्लपच्छब्दायै धारयन्ती विलोचने । किञ्चिदैन्यमिव प्राप्ता बहुविस्फुरिताधरा ॥१९६॥

जो सैकड़ो स्त्रियोमे प्रधान तथा परम सुन्दरी थी ॥१८१॥ उसी राजाके उत्तम चेष्टाको धारण करने वाली एक मद्रना नामकी विलासिनी (वेद्या)स्त्री थी, जो ऐसी जान पड़ती थी मानो संसार को जीत कर कामदेवके द्वारा प्राप्त की हुई पताका ही हो ॥१८२॥ उस मद्रनाने साधुदत्त मुनिके पास सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था जिसे पाकर वह अन्यधर्मोंको वृणके समान तुच्छ मानती थी ॥१८३॥ अथानन्तर किसी दिन राजाने मद्रनाके सामने कहा कि अहो ! यह तापस महातपोका स्थान है ॥१८४॥ यह सुन मद्रनाने कहा कि हे नाथ ! इन मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी तथा लोगोको ठगने वाले लोगोका तप कैसा ? ॥१८५॥ यह सुन राजा उसके लिए क्रुद्ध हुआ पर उसने फिर कहा कि हे नाथ ! क्रोध मत कीजिए तथा इसे मेरे चरणोमे वर्तमान देखिए ॥१८६॥ यह कह कर तथा घर जाकर उसने अपनी नागदत्ता नामकी सुन्दरी पुत्रीको सिखा कर उस तापसके आश्रममे भेजा ॥१८७॥ सुन्दर हावभाव और उत्तम वेप-भूषणको धारण करनेवाली नागदत्ता देवकन्याके समान जान पड़ती थी ! वह एकान्तमे योग लेकर बैठे हुए उस तापसके पास जाकर खड़ी हो गई ॥१८८॥ हवासे हिलते हुए वस्त्रके वहाने उसने काम-देवके अन्तःपुरके समान, सौन्दर्य रससे भरे अपने ऊरु दिखाये ॥१८९॥ समाधानके वहाने केशरके द्रवसे पीले तथा कामदेवके गण्डस्थलकी तुलना धारण करनेवाले दोनों स्तन प्रकट किये ॥१९०॥ पुष्प ग्रहणके वहाने नीवी ढीलीकर जयन स्थान दिखाया, देदीप्यमान नाभिमण्डल और सुन्दर बगले भी दिखालाई ॥१९१॥ उस तापसके नेत्र और मन अज्ञानपूर्ण योगका भेदन कर उस नागदत्ताके उन-उन प्रदेशों पर पड़ने लगे तथा वहीं बन्धनसे युक्त हो गये ॥१९२॥ वदनन्तर कामके वाणोंसे ताडित तपस्वी अत्यन्त व्याकुल होता हुआ उठकर उसके पास गया और धीरेसे उससे पूछने लगा कि हे वाले ! तू कौन है ? और यहाँ कहाँ आई है ? ॥१९३॥ इस सन्ध्याके समय छोटे-मोटे प्राणी भी अपने घर रहते हैं फिर तू तो अत्यन्त सुकुमार है ॥१९४॥ नागदत्ता मधुरवर्णोंसे उसका हृदयस्थल भेदती, लीलापूर्वक भुजलताको मुखकी ओर ऊपर उठाती, चञ्चल नील कमलके समान कान्तिके धारक नेत्रोंको धारण करती, कुङ्कुङ्कुङ्

शृणु नाथ ! दयाधार ! शरणागतवत्सल ! । अम्ययाऽहं विना दोषाद्वय निर्वासिता गृहात् ॥१६७॥
 कापायप्राप्तता चाहं भवद्वीयायिमां स्थितिम् । आचरामि प्रसादं मे कुरु नायानुमोदनात् ॥१६८॥
 शुभ्र्यां भवतः कृत्वा दिशा नक्तं च सक्तया । इह लोको मया लब्धः परलोकश्च ज्ञायते ॥१६९॥
 किं तद्वर्माथकामेषु न यद्भवति लभ्यते । निधानमसि काम्यानां मया पुण्येन वीक्षितः ॥२००॥
 इति सम्भाषिते तस्याः विज्ञाय प्रयुणं मनः । स्मरेण दक्षमानोऽसावन्नवीदिति विक्लवः ॥२०१॥
 भद्रे कोऽहं प्रसादस्य प्रसीद् त्वं ममोत्तमे । भजस्व भक्तिमेपोऽहं यावज्जीवं करोमि ते ॥२०२॥
 इत्युक्त्वालिङ्गितुं चिमं तं प्रसारितबाहुकम् । अगदीत् पाणिना कन्या वारयन्तीति साद्रा ॥२०३॥
 न वर्तते इदं कर्तुं कन्याहं विधिर्वर्जिता । पृच्छ मे मातरं गत्वा गृहेऽस्मिन् दृश्यतोरणे ॥२०४॥
 परा कारुण्ययुक्तेषु भवतः शेषुर्या यथा । एतां प्रसादयावश्यं तुभ्यमेया द्वाति माम् ॥२०५॥
 एवमुक्तस्तथा सार्कं त्वरया व्याकुलक्रमः । वेरमाविशद्विलासिन्धाः सवितर्यस्तमागते ॥२०६॥
 मन्मयाकुण्ठनि-शेषहृषीकविपथो ह्यसौ । किञ्चिद्वैचि त्स मोपायं विशन्वारीमिव द्विपः ॥२०७॥
 न श्योति स्मरप्रस्तो न विप्रति न पश्यति । न जानात्यपरस्पर्शं न विभेति न लज्जते ॥२०८॥
 आश्चर्यं मोहतः कष्टमनुत्तापं प्रपद्यते । अन्यो निपतितः कूपे यथा पन्नगसेविते ॥२०९॥
 वेश्याचरणयोश्चासौ कृत्वा विलुठितं शिरः । याचते कन्यकां पूर्वसंज्ञितश्चाविशन्वृपः ॥२१०॥

वीनताको प्राप्त होती तथा अधरोष्ठको बार-बार हिलाती हुई बोली ॥१६७-१६९॥ कि हे नाथ ! हे दयाके आधार ! हे शरणागत वत्सल ! सुनिये, आज मेरी माताने मुझे अपराधके विना ही घरसे निकाल दिया है ॥१६७॥ सो हे नाथ ! अब मैं गेहआ वस्त्र धारणकर आपकी इस वृत्तिका आचरण करूँगी, आप अनुमति देकर मुझपर प्रसाद कीजिये ॥१६८॥ रात-दिन आपकी सेवा करनेसे मेरा यह लोक तथा परलोक दोनों ही सुधर जावेंगे ॥१६९॥ धर्म अर्थ और काममें ऐसा कौन पदार्थ है जो आपके पास प्राप्त न हो सके, आप समस्त मनोरथोंके भाण्डार हैं । पुण्यसे ही आपके दर्शन हुए है ॥२००॥ इस प्रकार कहने पर उसका मन वशीभूत जान कामसे जलता हुआ तापस व्याकुल होता हुआ इस प्रकार बोला ॥२०१॥ कि हे भद्रे ! प्रसाद करनेके लिए मैं कौन होता हूँ ? हे उत्तमे ! तुम्हीं मुझपर प्रसाद करो, स्वीकृत करो, मैं जीवन पर्यन्त तुम्हारी भक्ति करूँगा ॥२०२॥ ऐसा कहकर उसने आलिङ्गन करनेके लिए शीघ्र ही अपनी सुजा पसारी तब आदरके साथ उसे हाथसे रोकती हुई कन्याने कहा ॥२०३॥ कि यह करना उचित नहीं है, मैं कुमारी कन्या हूँ जिसका तोरण दिखाई दे रहा है, ऐसे इस घरमें जाकर मेरी सातासे पूछो ॥२०४॥ आपकी बुद्धिके समान वह परम दयासे युक्त है, उसे प्रसन्न करो वह अवश्य ही मुझे तुम्हारे लिए दे देगी ॥२०५॥ इस प्रकार नागदत्ताके कहने पर वह सूर्यास्तके अनन्तर अटपटे पैर रखता हुआ उसके साथ वेश्याके घर गया ॥२०६॥ जिसके समस्त इन्द्रियोंके विषय कामसे आकृष्ट हो चुके थे, ऐसा वह तापस बारी (बन्धन) में प्रवेश करनेवाले हाथीके समान कुछ भी उपाय नहीं जानता था ॥२०७॥ सो ठीक ही है, क्योंकि कामसे प्रस्त मनुष्य न सुनता है, न सूँघता है, न देखता है, न दूसरेका स्पर्श जानता है, न डरता है और न लज्जित ही होता है ॥२०८॥ जिस प्रकार अन्धा मनुष्य साँपासे भरे कुएँमें गिरकर कष्ट और सन्तापको प्राप्त होता है उसी प्रकार यह कामी मनुष्य मोहवश कष्ट और सन्तापको प्राप्त होता है, यह आश्चर्यकी बात है ॥२०९॥ तदनन्तर वह तापस वेश्याके चरणोंमें शिर मुकाकर कन्याकी याचना करता है और उसी समय

१. वित्तु वः म० । २. विशारदा म० । ३. पृच्छव म० । ४. तत्कथा- म० । ५. विशात्वारि म० । विशात्वारि ख० । ६. आचार्य म० व० ।

स्थापितो बन्धयित्वाऽसौ राज्ञा नक्तं समीक्षितः । खलीकारं प्रभाते च प्रकटं प्रापितः परम् ॥२११॥
 ततोऽपमाननिर्दग्धः परं दुःख समुद्रहन् । आम्ब्यन् मही मृतः बलेश्योनिषु भ्रमणं स्थितः ॥२१२॥
 ततः कर्माधुमावने मनुष्यभवमागतः । दारिद्र्यपङ्कनिर्मग्नं जनादरविवक्षितम् ॥२१३॥
 गर्भस्थ एव चैतस्मिन् विदेश जनको गतः । उद्वेक्षितः कुटुम्बिन्या कलहकूरवाक्चया ॥२१४॥
 कुमारे च हता माता म्लेच्छेन विपयाहती । दुःख च परम प्राप्तः सर्ववन्धुविवर्जितः ॥२१५॥
 ततस्तापसतां प्राप्य कृत्वा बालतपः परम् । ज्योतिर्लोकं समारुह्य नाम्ना बह्निप्रभोऽभवत् ॥२१६॥
 अनन्तवीर्यनामाथ केवली सेवितः सुरैः । इत्यन्तेवासिना पृथो धर्मचिन्तागतात्मना ॥२१७॥
 मुनिमुव्रतनाथस्य तीर्थेऽस्मिन् भवता समः । कोऽन्योऽनुभविता भव्यो लोकस्योत्तरकारणम् ॥२१८॥
 सोऽज्ञोचन्मयि निर्वाण गतेऽत्र भ्रमणक्षितौ । देशभूषण इत्येको द्वितीयः कुलभूषणः ॥२१९॥
 भवितारौ जगत्सारौ केवलज्ञानदर्शिनौ । यौ समाश्रित्य लोकोऽयं तरिष्यति भवार्णवम् ॥२२०॥
 सोऽपि बह्निप्रभस्तस्माच्छ्रुत्वा केवलिनो मुख्यात् । अवस्थानं निजं यातो उभयौ केवलिभाषितम् ॥२२१॥
 भन्यदावधिना ज्ञात्वा योगिनाविह नौ गिरौ । अनन्तवीर्यसर्वज्ञमिथ्यात्राक्चं करोम्यहम् ॥२२२॥
 एवमुक्त्वाभिमानेन परमेणः।तिमोहितः । आगतः पूर्ववैरेण कर्तुं परमुपद्रवम् ॥२२३॥
 चरमाद्गघरं दृष्ट्वा स भवन्तमतिद्रुतम् । सुरेन्द्रकोपभात्या च तिरोधानमुपागतः ॥२२४॥
 नारायणसमेतेन प्रातिहार्यं त्वया कृते । केवलज्ञानमस्माकं जातं धातिपरिच्ये ॥२२५॥

पूर्वसंकेतानुसार राजा प्रवेश करता है ॥२१०॥ राजाने उसे वंधवा कर राजभर रक्खा और सवेरे ज्ञान-जीन कर सबके समक्ष उसका परम तिरस्कार किया ॥२११॥ तदनन्तर अपमानसे जला तापस परम दुःखको धारण करता हुआ पृथ्वी पर भ्रमण करता रहा और अन्तमें मरकर दुःखदायी योनियोंमें भटकता रहा ॥२१२॥ तदनन्तर कर्माके प्रभावसे मनुष्य भवको प्राप्त हुआ सो दरिद्रतारूपी कोचङ्गमें निमग्न तथा लोकोके आदरसे रहित नीच कुलमें उत्पन्न हुआ ॥२१३॥ जब वह गर्भमें था तभी कलहके समय क्रूर वचन कहनेवाली स्त्रासे उद्विग्न होकर इसका पिता परदेश चला गया था ॥२१४॥ तथा जब वह बालक ही था तभी म्लेच्छोंके द्वारा देश पर आक्रमण होनेसे इसकी माता मर गई । इस तरह सर्व वन्धुओंसे रहित होकर वह परम दुःखको प्राप्त होता रहा ॥२१५॥ तदनन्तर तापस होकर तथा कठिन बालतपकर ज्योतिष लोकमें अग्निप्रभ नामक देव हुआ ॥२१६॥

अथानन्तर एक समय धर्म की चिन्तामें जिसका मन लग रहा था ऐसे शिष्यने देवोंके द्वारा सेवित अनन्तवीर्य नामा केवलीसे पूछा कि हे नाथ ! मुनिमुव्रत भगवानके इस तीर्थमें आपके समान ऐसा दूसरा कौन भव्य होगा जो संसार समुद्रसे पार होनेका कारण होगा ॥२१७-२१८॥ तब अनन्तवीर्य केवलीने उत्तर दिया कि मेरे मोक्ष चलेजानेके बाद मुनियोंकी इस भूमिमें एक देशभूषण और दूसरा कुलभूषण इस प्रकार दो केवली होंगे । ये जगत्के सारभूत तथा केवल-ज्ञान और दर्शनके धारक होंगे । इनका आश्रय लेकर भव्यजीव संसार-सागरसे पार होंगे २१९-२२०॥ वह अग्निप्रभदेव केवलीके मुखसे यह सुनकर तथा उन्हीके कथनका ध्यान करता हुआ अपने स्थानपर चला गया ॥२२१॥ एक दिन अवधिज्ञानसे वह हम दोनों मुनियोंको इस पर्वतपर विद्यमान जानकर 'मैं अनन्तवीर्यसर्वज्ञके वचन मिथ्या करता हूँ' इस प्रकार कहकर तीव्र मोहसे मोहित होता हुआ पूर्व वैरके कारण परम उपद्रव करनेके लिए यहाँ आया ॥२२२-२२३॥ सो चरमशरीरी आपको देखकर तथा इन्द्रके क्रोधसे भयभीत हो शीघ्र ही तिरोधानको प्राप्त हुआ अर्थात् भाग गया ॥२२४॥ तुम बलभद्र हो और लक्ष्मण नारायण सो इसके साथ तुमने हमारा उपसर्ग दूर किया अतः धातिया कर्माका क्षय होनेपर हमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ

इति गत्यागतीः श्रुत्वा प्राणिनां वैरकारिणाम् । वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वस्या भवत जन्तवः ॥२७६॥
 महापूतमिति श्रुत्वा वचनं केवलीरितम् । मुहुः सुरासुरा नेमुस्तं भीता भवदुःखतः ॥२७७॥
 तावच्च गुरुधार्थाशं परमं सम्पदं श्रितः । नत्वा केवलिनः पादौ शयकङ्गापितालिकः ॥२७८॥
 ऊचै रबुङ्गलोद्योतं विलसन्मणिङ्गुण्डलम् । त्रिधां प्रसारयन् दृष्टिं प्रेमतपितमानसः ॥२७९॥
 प्रातिहार्यं कृतं येन त्वया मन्सुतयोः परम् । तत्तन्पुष्टोऽस्मि याचस्व वस्तु वचोऽभिरोचते ॥२८०॥
 षणं चिन्तागतः स्वित्सा जगाद् रघुनन्दनः । त्वयासुरप्रनञ्जेत स्मर्तव्या वयमापदि ॥२८१॥
 साधुसेवाप्रसादेन फलमेतदुपागतम् । अङ्गीकर्तव्यमस्माभिर्भवद्भारविनिर्गतम् ॥२८२॥
 एवमस्त्विति तेनोक्ते द्रुष्युः शङ्कान् दिर्वाकसः । मेर्यश्च मेघनिनदाः सानुवाद्याः समाहताः ॥२८३॥
 साधुपूर्वभवं श्रुत्वा संवेगं परमं श्रिताः । प्रावन्नजुर्जनां कैचिदन्येऽगुणतमाश्रिताः ॥२८४॥

इन्दुवदनावृत्तम्

देशकुलभूषणमुनी जु जगदृष्यौ सर्वभवदुःखमलसङ्गमविसुकां ।
 ग्रामपुरपर्वतमटन्वपरिरम्यान् वधमनुरुचमगुणैरुपचिन्तागान् ॥२८५॥
 देशकुलभूषणमहामुनिभवं ये वृत्तमतिपूतमिदमुत्कटसुभावाः ।
 श्रावन्नवचतोर्विपयतामुपनयन्ते ते रविनिना दुरितमाद्यु विज्जन्ति ॥२८६॥

इत्यार्षे रविपेषाचार्यश्रीके पद्मचरिते देशकुलभूषणोपास्थानं नामकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥३६॥

है ॥२२५॥ इस प्रकार वैर करनेवाले प्राणियोंकी गति आगतिको सुनकर हे प्राणियो ! परस्परका वैर छोड़ स्वस्थ होओ अर्थात् आत्मस्वरूपमें लीन होओ ॥२२६॥ इस प्रकार केवली भगवान्के द्वारा उच्चरित महापवित्र वचन सुनकर संसारके दुखोंसे भयभीत हुए सुर और असुरोंने उन्हें वार-वार नमस्कार किया ॥२२७॥

इतनेमें ही परम ऐश्वर्यको प्राप्त सुवर्ण कुमारोंके पतिने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगा केवली भगवान्के चरणकमलमें नमस्कार कर देदीप्यमान मणिमय कुण्डलोंके धारक रामसे कहा । उस समय वह गुरुडेन्द्र रामकी ओर स्नेह पूर्ण दृष्टि डाल रहा था तथा प्रेमसे उसका मन सन्तुष्ट हो रहा था ॥२२८-२२९॥ उसने कहा कि चूँकि तुमने हमारे पुत्रोंकी परम सेवा की है इसलिए मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तुम्हें जो वस्तु रुचती हो वह माँग लो ॥२३०॥ राम च्छणभर चिन्ता करते हुए चुपचाप बैठे रहे । तदनन्तर ओले कि हे देव ! यदि प्रसन्न हो आपनिके समय हम लोगोका स्मरण रखना ॥२३१॥ साधुसेवाके प्रसादसे ही यह प्राप्त हुआ कि आप जैसे सत्पुरुषोंके साथ मिलाप हुआ तथा संसारके द्वारसे निकलनेका मार्ग मिला ॥२३२॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार गुरुडेन्द्रके कहने पर देवाने शङ्ख फूँके तथा अनेक प्रकारके वादित्रोंके साथ मेघोंके समान शब्द करनेवाली भेरियाँ बजाई ॥२३३॥ मुनियोंके पूर्वभव सुन कर परम संवेगको प्राप हुए कितने ही लोगोंने दीक्षा धारण कर ली और कितने ही लोग अगुणताके धारी हुए ॥२३४॥ जगत्के द्वारा पूजनीय तथा संसारके समस्त दुःखरूपों मलके समागमसे रहित देशभूषण, कुलभूषण केवली उत्तम गुणोंसे युक्त ग्रामपुर पर्वत तथा मटन्व आदि रमणीय स्थानोंमें विहारकर धर्मका उपदेश देने लगे ॥२३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जो देशभूषण, कुलभूषण, महामुनियोंके इस अतिशय पवित्र चरित्रको उत्तम भावोंसे युक्त हो सुनते हैं तथा कथन कर दूसरोंको सुनाते हैं वे सूर्यके समान देदीप्यमान होकर शीघ्र ही पापोंका त्याग करते हैं ॥२३६॥

इस प्रकार श्रापनामसे प्रसिद्ध, रविपेषाचार्य कथित पद्मचरितमें देशभूषण कुलभूषण केवलीका व्याख्यान करनेवाला उनतालासर्व पर्व समाप्त हुआ ॥३६॥

चत्वारिंशत्तमं पर्व

श्रुत्वा केवलिनः पद्ममन्त्र्यविग्रहधारिणम् । स्तुत्वा सजयनिस्वानं प्रणेसुः सर्वपार्थिवाः ॥१॥
 वशस्थलपुरेशश्च महावित्तः सुरप्रभः । सलक्ष्मणं सपत्नीकं पद्मनाभमपूजयत् ॥२॥
 प्रासादशिखरच्छायाधवलीकृतपुष्करम् । नाट्टणोन्नगरं गन्तुं रामो राज्ञापि याचितः ॥३॥
 वंशाद्रिशिखरे रम्ये हिमवच्छिखरोपमे । समविस्तारं सद्गर्भरमणीयशिलातले ॥४॥
 नानावृक्षलताकीर्णं नानाशकुनिनादिते । सुगन्धानिलसम्पूर्णं नानापुष्पफलाकुले ॥५॥
 पयोःपलत्रनाड्याभिरापीभिरत्तिशोभिते । सर्वर्तुसहितोद्युक्तैवसन्तकृतसेवने ॥६॥
 सर्जिता परमा भूमिः शुद्धादर्शतलोपमा । दशार्धवर्णरजसा कल्पितानेकभक्तिका ॥७॥
 कुन्दासिमुक्तकलता वकुलाः कमलानि च । यूथिका मखिलका नागा अशोकाश्चपल्लवाः ॥८॥
 पुते चान्ये च भूयांसश्चारुभासः सुगन्धवः । भावारम्यविलासाभिः प्रमदाभिः प्रकल्पिताः ॥९॥
 वद्ध्वा परिकरं पुष्पिभिः सुविदग्धैः सुसम्भ्रमैः । मङ्गलालापसम्पन्नैः स्वामिभक्तिपरायणैः ॥१०॥
 मेघकाण्डानि वस्त्राणि नानाचित्रधराणि च । प्रसारितानि रुद्राणि वैजयन्तीशतानि च ॥११॥
 किङ्किणीजालयुक्तानि सुकादामशतानि च । चामराणि विचित्राणि लम्बूपमणिपट्टिका ॥१२॥
 दर्पणा बुद्बुदावलयो विस्फुरद्भास्करांशवः । न्यस्तान्येतानि तुङ्गेषु तोरणेषु ध्वजेषु च ॥१३॥
 अबनौ पूर्णकलशाः स्थापिता विधिसयुता । हंसा इव निविष्टास्ते विरेजुर्नलिनोदने ॥१४॥

अथानन्तर केवली भगवान्के मुखसे रामको चरमशरीरी जानकर समस्त राजाओंने जयध्वनि के साथ स्तुति कर उन्हे नमस्कार किया ॥१॥ और उदार चित्तके धारक वंशस्थलपुर नगरके राजा सुरप्रभने लक्ष्मण तथा सीता सहित रामकी की भक्ति की ॥२॥ जो महलोके शिखरोकी कान्तिसे आकाशको धवल कर रहा था ऐसे नगरमे चलनेके लिए राजाने रामसे बहुत याचना की परन्तु उन्हेने स्वीकृत नहीं किया ॥३॥ तब जो अतिशय रमणीय था, हिमगिरिके शिखरके समान था, जहाँ एक समान लम्बे चौड़े अच्छे रङ्गके मनोहर शिलातल थे, जो नाना वृक्षों और लताओंसे व्याप्त था, नाना पक्षी जहाँ शब्द कर रहे थे, जो सुगन्धित वायुसे पूर्ण था, नाना प्रकारके पुष्पों और फलोंसे युक्त था, कमल और उत्पलके वनोसे युक्त वापिकाओंसे जो अत्यन्त शोभित था, तथा सब ऋतुओंके साथ आकर वसन्त ऋतु जिसकी सेवा कर रही थी, ऐसे वंशधर पर्वतके शिखर पर शुद्ध दर्पणतलके समान लच्छट भूमि तैयार की गई । उस भूमि पर पाँच वर्णकी धूलि से अनेक चित्राम वनाये गये थे ॥४-७॥ अनेक प्रकारके भावोसे रमणीय चेष्टाओंको धारण करनेवाली स्त्रियोंने वहाँ उसी पञ्चवर्णकी परागसे कुन्द, अतिसुक्तकलता, मौलश्री, कमल, जुही, मालती, नागकेशर और सुन्दर पल्लवोंसे युक्त अशोक वृक्ष, तथा इनके सिवाय सुन्दर कान्ति और सुगन्धिको धारण करनेवाले बहुतसे अन्य वृक्ष वनाये ॥८-९॥ चतुर, उत्तम चेष्टाओंके धारक, मङ्गलमय वार्तालापमे तत्पर और स्वामि भक्तिमे निपुण मनुष्योंने वड़ी तैयारीके साथ नाना चित्रोंको धारण करनेवाले वादली रङ्गके वस्त्र फैलाये, सैकड़ों सधन पताकाएँ फहराई ॥१०-११॥ छोटी-छोटी घण्टियोंसे युक्त सैकड़ों मोतियोंकी मालाएँ, चित्र-विचित्र चमर, मणिमय फानूस, दर्पण, तथा जिनपर सूर्यकी किरणें प्रकाशमान हो रही थीं ऐसे अनेक छोटे-छोटे गोले ये सब ऊँचे-ऊँचे तोरणों तथा ध्वजाओंमे लगाये ॥१२-१३॥ पृथिवी पर

१ चरमशरीरिणम् । २. गगनम् । ३. आवृणोन्नगरं ख० । ४. हिमवच्छिखरोपमे म० । ५. युक्ते म० । ६. सर्जिता म० । ७. सधनानि रुद्राणि म० ।

यत्र यत्र पठन्यासं करोति रघुनन्दनः । तत्र तत्रोरुपचानि स्थापितानि महींतले ॥१५॥
 शयनान्यासनैः साकं रचितानि यतस्ततः । मणिकान्धनचित्राणि सुखस्पर्शधाराण्यलम् ॥१६॥
 सलवङ्गादिताम्बूलं प्रवराण्यशुकानि च । महासुगन्धयो गन्धा भास्वन्याभरणानि च ॥१७॥
 सूत्रगोहसमेतानि कन्दूशालाशतानि च । बहुभेदान्नपूर्णाणि कृतयवानि सर्वतः ॥१८॥
 गुडेन सर्पिया दन्ना भूः क्वचिद् भाति पङ्किला । इति कर्तव्यताभाजः जनेनाशरिणान्विता ॥१९॥
 स्वाहारेण क्वचित्पूसाः पथिकाः स्वेच्छया स्थिताः । प्रसादयन्ति विप्रध्याः सङ्ख्याचन्द्रगुल्मकाः ॥२०॥
 क्वचिन्ना शेखरी भाति मदिरामत्तलोचनः । क्वचिद् सीमन्तिनी मत्ता बहुलामोदवाहिनी ॥२१॥
 क्वचिन्नाम्यं क्वचिद् गांतं क्वचित्सुकृतसङ्ख्या । क्वचिद् कान्तैः समं नार्यो रमन्ते चारुविभ्रमाः ॥२२॥
 दत्तप्रेङ्गाः क्वचित् स्मेरैः सलोलैर्विदपुङ्गवैः । विलासिन्यो विराजन्ते गौर्वागणिकोपमाः ॥२३॥
 रामलक्ष्मणयोर्थानि रचितानि सर्सातयोः । क्रीडाधामानि कस्तानि नरो वर्णयितुं क्षमः ॥२४॥
 नानाभूषणयुक्तज्ञौ सुमाल्याम्बरधारिणौ । यथेप्सितकृताहारौ श्रिया परमयान्वितौ ॥२५॥
 सीता चारुलक्ष्मीभाग्या दुरितासङ्गवर्जिता । रमते तत्र चेष्टाभिः शास्त्रदृष्टामिहञ्जलम् ॥२६॥
 तत्र वंशगिरौ राजन् रामेण जगदिन्दुना । निर्मापितानि चैत्यानि जिनेशानां सहस्रशः ॥२७॥
 महावदन्मसुस्तम्भा युक्तविस्तारतुङ्गताः । गवाक्षहर्ष्यवलभोप्रभृत्याकारयोभिताः ॥२८॥
 सत्तोरणमहाद्वाराः सशालाः परिखान्विताः । सितचारुपताकाख्या बृहद्वन्द्वारवाचिताः ॥२९॥

जहाँ-तहाँ विधिपूर्वक पूर्ण कलश रखते गये थे जो कमलिनोके वनमे बैठे हुए हंसोके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१४॥ श्रीराम जहाँ-जहाँ चरण रखते थे वहाँ-वहाँ पृथिवी तल पर बड़े-बड़े कमल रख दिये गये थे ॥१५॥ जहाँ-तहाँ मणियो और सुवर्णसे चित्रित तथा अतिशय सुख-दायक स्पर्शको धारण करनेवाले आसन और सोनेके स्थान बनाये गये थे ॥१६॥ लवंग आदिसे सहित ताम्बूल, उत्तम वस्त्र, महासुगन्धित गन्ध और देदीप्यमान आभूषण वहाँ जहाँ-तहाँ रखे गये थे ॥१७॥ जो सब ओरसे नाना प्रकारको भोजन-सामग्रीसे युक्त थीं तथा जिनमें रसोई घर अलगसे बनाया गया था ऐसी सैकड़ो भोजनशालाएँ वहाँ निर्मित की गईं थीं ॥१८॥ वहाँ की भूमि कहीं गुड़, घी और दहीसे पंफिल (कीचसे युक्त) होकर सुशोभित हो रही थी तो कहीं कर्तव्य पालन करनेमें तत्पर आदरसे युक्त मनुष्योंसे सहित थी ॥१९॥ कहीं मधुर आहारसे वृत्त हुए पथिक अपनी इच्छासे बैठे थे तो कहीं निश्चिन्तताके साथ गोष्ठी बनाकर एक दूसरेको प्रसन्न कर रहे थे ॥२०॥ कहीं सेहरेको धारण करनेवाला और मन्दिरके नशामें मूमते हुए नेत्रोंसे युक्त मनुष्य दिखाई देता था तो कहीं मौलश्रीकी सुगन्धिको धारण करनेवाली नशासे भरी स्त्री दृष्टिगत होती थी ॥२१॥ कहीं नाट्य हो रहा था, कहीं संगीत हो रहा था, कहीं पुण्य चर्चा हो रही थी, और कहीं सुन्दर विलासोंसे सहित स्त्रियों पतियोंके साथ क्रीड़ा कर रही थीं ॥२२॥ कहीं मुसकराते तथा लीलासे सहित विद पुरुष जिन्हें धक्का दे रहे थे, ऐसी देव नर्तकियोंके समान वेद्याएँ सुशोभित हो रही थीं ॥२३॥ इस प्रकार सीता सहित रामलक्ष्मणके जो क्रीडास्थल बनाये गये थे उनका वर्णन करनेके लिए कौन मनुष्य समर्थ है ? ॥२४॥ जिनके शरीर नाना प्रकारके आभूषणोंसे सहित थे, जो उत्तमोत्तम मालाएँ और वस्त्र धारण करते थे, जो इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥२५॥ और अखण्ड सौभाग्यको धारण करनेवाली तथा पापके समागमसे रहित सीता वहाँ शाब्द निरूपित चेष्टाओंसे उज्वल क्रीड़ा करती थी ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वंशगिरि पर जगत्के चन्द्र स्वरूप रामने जिनन्द्र भगवान्की हजारों प्रतिमाएँ बनवाई थीं ॥२७॥ तथा जिनमें महामजबूत खम्भे लगवाये गये थे, जिनकी चौड़ाई तथा ऊँचाई योग्य थी, जो मर्रोखे, महलों तथा छपरी आदिकी रचनासे शोभित थे, जिनके बड़े-बड़े द्वार तोरणोंसे युक्त थे, जिनमें अनेक शालाएँ निर्मित थीं, जो परिखासे सहित थे, सफेद और

भृङ्गवंशसुरजसहोतोत्तमनिस्वना । कर्मरैरानकैः शङ्खभेरीभिश्च महारवाः ॥३०॥
 सततारव्यनिःशेषमयवस्तुमहोत्सवाः । विरेजुस्तत्र रामीया जिनप्रासादपङ्कतयः ॥३१॥
 रेजिरे प्रतिमास्तत्र सर्वलोकनमस्कृताः । पञ्चवर्णा जिनेन्द्राणां सर्वलक्षणभूषिताः ॥३२॥
 अन्यथाय महौपालामो राजावलोकन । लक्ष्मीधरमुवाचेत् क्रियते किमतः परम् ॥३३॥
 इह संग्रहितः कालः सुखेन परमे गिरौ । जिनचैत्यसमुत्थाना स्थापिता कीर्तिरुज्ज्वला ॥३४॥
 अनेन भृशुता श्रेष्ठैरुपचारशतैर्हताः । अत्रैव यदि तिष्ठामस्तदा कार्यं विनश्यति ॥३५॥
 इह तावदल भोगैरिति चिन्तयतोऽपि मे । न सुञ्जति क्षणमपि प्रवरा भोगसन्ततिः ॥३६॥
 इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपसृज्यते । पुराकृतानां पुण्यानां इह सम्पद्यते फलम् ॥३७॥
 अस्माकमत्र वसतां विभ्रतां सुखसम्पदम् । अमी ये दिवसा यान्ति न तेषां पुत्रागमम् ॥३८॥
 नदीनां षण्डवेगानामायुयो दिवसस्य च । यौवनस्य च सौमित्रे यद्गतं गतमेव तत् ॥३९॥
 नद्याः कर्णरवायास्तु परतो रोमहर्षणम् । श्रूयते दण्डकारण्यं दुर्गमं चित्तिचरिभिः ॥४०॥
 भारती न विशत्याज्ञा तस्मिन् जनपदोऽस्मिन्ने । तत्राण्वतर्त श्रित्वा विदुधम् क्वचिद्दालयम् ॥४१॥
 यदाज्ञापयसीत्युक्ते क्रमारेण ससम्भ्रमम् । सुरेन्द्रसदृशं भोगं भुक्त्वा ते निर्गतास्त्रयः ॥४२॥
 अनुगत्य सुदूरं तौ बलोपेतः सुरप्रभः । कृच्छ्राक्षिवर्तितस्ताभ्यां शोकां पुरसुपागतः ॥४३॥

सुन्दर पताकाओसे युक्त थे, बड़े-बड़े घण्टाओके शब्दसे व्याप्त थे, जिनमे मृदंग, वाँसुरो और सुरजका संगीतमय उत्तम शब्द फैल रहा था, जो भौंभौं, नगाड़ो, शङ्खों और भेरियोंके शब्दसे अत्यन्त शब्दायमान थे और जिनमे सदा समस्त सुन्दर वस्तुओंके द्वारा महोत्सव होते रहते थे ऐसे रामके वनवाये जिनमन्दिरोँकी पंक्तियाँ उस पर्वत पर जहाँ-तहाँ सुशोभित हो रही थी ॥२८-३१॥ जन मन्दिरोमे सब लोगोके द्वारा नमस्कृत तथा सब प्रकारके लक्षणोंसे युक्त पञ्चवर्णकी जिनप्रतिमाएँ सुशोभित थीं ॥३२॥

अथानन्तर एक दिन कमललोचन राजा रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि अब आगे क्या करना है ? ॥३३॥ इस उत्तम पर्वत पर समयसुखसे व्यतीत किया तथा जिनमन्दिरोके निर्माणसे उत्पन्न उज्ज्वल कीर्ति स्थापित की ॥३४॥ इस राजाकी सैकड़ो प्रकारकी उत्तमोत्तम सेवाओंके वशीभूत होकर यदि यहाँ रहते हैं तो संकल्पित कार्यं नष्ट होता है ॥३५॥ यद्यपि मैं सोचता हूँ कि मुझे इन भोगोंसे प्रयोजन नहीं है तो भी यह उत्तम भोगोंकी सन्तति क्षण भरके लिए भी नहीं छोड़ती है ॥३६॥ जो कर्म इस लोकमे किया जाता है उसका उपभोग परलोकमे होता है और पूर्व भवमे किये हुए पुण्य कर्मोंका फल इस भवमे प्राप्त होता है ॥३७॥ यहाँ रहते तथा सुख-सम्पदाको धारण करते हुए हमारे जो ये दिन बीत रहे हैं उनका फिरसे आगमन नहीं हो सकता ॥३८॥ हे लक्ष्मण ! तीव्र वेगसे बहनेवाली नदियों, आयुके दिन और यौवनका जो अंश चला गया वह चला ही गया फिर लौटकर नहीं आता ॥३९॥ कर्णरवा नदीके उस पार रोमाञ्च उत्पन्न करनेवाला तथा भूमिगोचरियोंका जहाँ पहुँचना कठिन है ऐसा दण्डक वन सुना जाता है ॥४०॥ देशोसे रहित उस वनमें भरतकी आजाका प्रवेश नहीं है इसलिए वहाँ समुद्रका किनारा प्राप्त कर घर वनावेगे ॥४१॥ 'जो आज्ञा हो' इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर राम-लक्ष्मण और सीता तीनों ही इन्द्र सदृश भोग छोड़कर वहाँसे निकल गये ॥४२॥ वंशस्थविलपुरका राजा सुरप्रभ अपनी सेनाके साथ बहुत दूर तक उन्हें पहुँचानेके लिए गया । राम-लक्ष्मण उसे बड़ी कठिनाईसे लौटा सके । तदनन्तर शोकको धारण करता हुआ वह अपने नगरमे वापिस आया ॥४३॥

उपजातिवृत्तम्

एषोऽपि तुङ्गः परमो महीश्रः श्रीमक्षितम्बो बहुधातुसातुः ।
 विलम्पतीभिः ककुमां समूहं भासाचकाञ्जैनगृहावलीभिः ॥४३॥
 रामेण यस्मात्परमाणि तस्मिन् जैवानि वेश्मानि विधापितानि ।
 निर्नष्टवंशाद्रिवचाः स तस्माद्द्विप्रभो रामगिरिः प्रसिद्धः ॥४५॥

इत्यापे रविवेश्याचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते रामगिर्युपाख्यानं नाम चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४०॥

इधर जिसकी मेखलाएँ शोभासे सम्पन्न थीं, तथा जिसके शिखर अनेक धातुओंसे युक्त थे ऐसा यह ऊँचा उत्तम पर्वत दिशाओंके समूहको लिप्त करनेवाली जिनमन्दिरोंकी पंक्तिसे अतिशय सुशोभित होता था ॥४३॥ चूँकि उस पर्वत पर रामचन्द्रने जिनेन्द्र भगवान्के उत्तमोत्तम मन्दिर बनवाये थे इसलिए उसका वंशाद्रि नाम नष्ट हो गया और सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह पर्वत 'रामगिरि'के नामसे प्रसिद्ध हो गया ॥४५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविवेश्याचार्य विरचित पद्मचरितमें रामगिरिका वर्णन करनेवाला चालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४०॥

एकचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथानरण्यनसाराँ श्रीमन्तौ सीतयान्वितौ । दिदक्षु दक्षिणाम्भोधिमायातां सुखभागिनौ ॥१॥
 पुरग्रामसमाकीर्णानतीत्य विपयान् बहून् । प्रविष्टौ तौ महारण्य नानामृगसमाकुलम् ॥२॥
 यस्मिन्न विद्यते पन्थाः स्थानं नार्यनिषेवितम् । पुलिन्दानामपि प्रायो दुश्चरं यन्नगाकुलम् ॥३॥
 नानावृक्षलताकीर्णं महाविपमगाह्वरम् । गुहान्धकारगम्भीरं बहुस्त्रिर्भरनिम्नगम् ॥४॥
 क्रोश क्रोशं शनैस्तत्र गच्छन्तौ जानकावशात् । निर्भयौ क्रीडनोद्युक्तौ प्राक्षौ कर्णरवा नदीम् ॥५॥
 यस्यास्तटानि रम्याणि तृणैर्युक्तानि भूरिभिः समान्यायतदेशानि स्पर्शं विभ्रति सौख्यदम् ॥६॥
 भनस्युच्चैर्घनच्छायै फलपुष्पविभूषितैः । रेजुस्तटद्वुमैस्तस्याः समीपधरणीधराः ॥७॥
 वनमेतदलं चारु नदीं चेति ३निरूप्य तौ । रम्ये तत्र तरुच्छायेऽनस्थितौ सीतयान्वितौ ॥८॥
 चणं स्थित्वाऽतिरम्याणि सैकतान्यवगाह्य च । जलावगाहनं चक्रुस्ते रम्यक्रीडयोचितम् ॥९॥
 ततो मृद्यानि पवनानि फलानि कुसुमानि च । यथेच्छसुपयुक्तानि तैः सुखं कृतसङ्गस्यै ॥१०॥
 तत्र भाण्डोपकरणं सकलं केकरीसुतः । मृदावशैः पलाशैश्च विविधैराद्यु निर्ममे ॥११॥
 अमीषु स्वाढचारुणि फलानि सुरभीनि च । वनजानि च सस्यानि राजपुत्री समस्कारोत् ॥१२॥
 अन्यदातिथिवेलायां गगनाद्गणचारिणौ । प्रभापटलसर्वातविग्रहौ चारुदर्शनौ ॥१३॥

अथानन्तर जिन्हें दक्षिण समुद्र देखनेकी इच्छा थी तथा जो निरन्तर सुख भोगते आते थे ऐसे श्रीमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ नगर और ग्रामोंसे व्याप्त बहुत देशोंको पारकर नाना प्रकारके मृगोंसे व्याप्त महावनमें प्रविष्ट हुए ॥१-२॥ ऐसे सघन वनमें प्रविष्ट हुए जिसमें मार्ग ही नहीं सूझता था, उत्तम मनुष्योंके द्वारा सेवित एक भी स्थान नहीं था, वनचारी भीलोंके लिए भी जहाँ चलना कठिन था, जो पर्वतोंसे व्याप्त था, नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे सघन था, जिसमें अत्यन्त विपम गर्त थे, जो गुहाओंके अन्धकारसे गम्भीर जान पड़ता था, और जहाँ भरने तथा अनेक नदियों वह रही थीं ॥३-४॥ उस वनमें वे जानकीके कारण धीरे-धीरे एक क्रोश ही चलते थे । इस तरह भयसे रहित तथा क्रीड़ा करनेमें उद्यत दोनों भाई उस कर्णरवा नदीके पास पहुँचे ॥५॥ जिसके कि किनारे अत्यन्त रमणीय, बहुत भारी वृगोंसे व्याप्त, समान, लम्बे-चौड़े और सुखकारी स्पर्शको धारण करनेवाले थे ॥६॥ उस कर्णरवा नदीके समीपघर्ती पर्वत, किनारेके उन वृक्षोंसे सुशोभित थे जो ज्यादा ऊँचे तो नहीं थे पर जिनकी छाया अत्यन्त घनी थी तथा जो फल और फूलोंसे युक्त थे ॥७॥ यह वन तथा नदी दोनों ही अत्यन्त सुन्दर हैं ऐसा विचार कर वे एक वृक्षकी मनोहर छायामें सीताके साथ बैठ गये ॥८॥ चण भर वहाँ बैठकर तथा मनोहर किनारोंपर अवगाहन कर वे सुन्दर क्रीड़ाके योग्य जलावगाहन करने लगे अर्थात् जलके भीतर प्रवेश कर जलक्रीड़ा करने लगे ॥९॥ तदनन्तर परस्पर सुखकारी कथा करते हुए उन सबने वनके पके मधुर फल तथा फूलोंका इच्छानुसार उपभोग किया ॥१०॥ वहाँ लक्ष्मणने नाना प्रकारको मिट्टी, बौस तथा पत्तोंसे सब प्रकारके बर्तन तथा उपयोगी सामान शीघ्र ही बना लिया ॥११॥ इन सब बर्तनोंमें राजपुत्री सीताने स्वादिष्ट तथा सुन्दर फल और वनकी सुगन्धित धानके भोजन बनाये ॥१२॥

किसी एक दिन अतिथि प्रेषणके समय सीताने सहसा सामने आते हुए, सुगुप्ति और गुप्ति

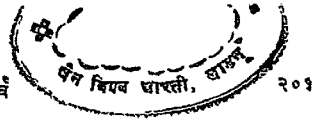
१. सुखभागिनौ म० । २. सामान्यावह-म० । ३. चैतौ निरूपितौ म० । ४. मृदावशैः म० । ५

ज्ञानत्रितयसम्पन्नौ महाव्रतपरिग्रहौ । परेण तपसा युक्तौ दुष्टहासुकमानसौ ॥११॥
 मासोपवासिनौ वीरौ गुण्यौ शुभसमीहितौ । यच्छ्रन्तौ नयनानन्द^१ बुधचन्द्रमसाविव ॥१५॥
 मुनी सुगुप्तिगुणस्थायान्तां सम्मुखं भुवः^२ । यथोक्ताचारसम्पन्नौ सहसा सीतवेचितौ ॥१६॥
 ततः प्रमदसम्भारविकसत्तेव^३ शोभया । दयिताय तया ख्यातमिति रोमाञ्छिताङ्गया ॥१७॥
 पश्य पश्य नरश्रेष्ठ ! तपसा कुशविग्रहम् । दैगम्बर परिधान्तं भदन्तयुगलं शुभम् ॥१८॥
 क्व तत् क्व तत्प्रिये साध्वि पण्डिते चारुदर्शने । निर्ग्रन्थयुगलं दृष्टं भवत्या गुणमण्डने ॥१९॥
 यस्मिन्निदम वरारोहे सुचिरं पापमज्जितम् । क्षणात् प्रणाशमायाति जनानां भक्तचेतसाम् ॥२०॥
 इत्युक्ते रघुचन्द्रेण सीतोवाच ससम्भ्रमा । इमांविमाविति प्रीत्या स तदामृतं समाकुलः ॥२१॥
 ततो युगमितक्षोणीदेशविन्यस्तलोचनौ । मुनी प्रशान्तगमनौ सुसमाहितविग्रहौ ॥२२॥
 अभ्युत्थानाभिधानाभिस्तुष्टं प्रणमनादिभिः । दम्पतीभ्यां कृतावेतौ पुण्यनिर्भरपर्वतौ ॥२३॥
 शुच्यङ्गया च वैदेह्या महाश्रद्धापरिताया । परिविष्टं तयोः श्राद्धं रमणेन समेतया ॥२४॥
 गवामरण्यजातानां महिरीणां च चारुणा । हैवङ्गवीनमिश्रेण पयसा तत्समुद्भवैः ॥२५॥
 खजूरैरिड्ढुदैराग्नौलिकैरै रसान्वितैः । बदराम्लातकाद्यैश्च वैदेह्या सुप्रसाधितैः ॥२६॥
 आहार्यैर्विनिधैः शास्त्रदृष्टिशुद्धिसमन्वितैः । पारणां चक्रतुर्गृह्णासम्बन्धोऽभक्तचेतसौ ॥२७॥

नामके दो मुनि देखे । वे मुनि आकाशाङ्गणमे विहार कर रहे थे, कान्तिके समूहसे उनके शरीर व्याप्त थे, वे बहुत ही सुन्दर थे, मति श्रुत अवधि इन तीन ज्ञानोसे सहित थे, महाव्रतोंके धारक थे, परम तपसे युक्त थे, खोटी इच्छाओंसे उनके मन रहित थे, उन्होंने एक मासका उपवास किया था, वे धीर-वीर थे, गुणोंसे सहित थे, शुभ चेष्टाके धारक थे, बुध और चन्द्रमाके समान नेत्रोंको आनन्द प्रदान करते थे और यथोक्त आचारसे सहित थे ॥१३-१६॥ तदनन्तर हर्षके भारसे जिसके नेत्रोंकी शोभा विकसित हो रही थी तथा जिसके शरीरमें रोमाञ्छ उठ रहे थे ऐसी सीताने रामसे कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! देखो देखो, तपसे जिनका शरीर कुश हो रहा है तथा जो अतिशय थके हुए मालूम होते हैं, ऐसे दिगम्बर मुनियोंका यह युगल देखो ॥१७-१८॥ रामने संभ्रममे पड़ कर कहा कि हे प्रिये ! हे साध्वि ! हे पण्डिते ! हे सुन्दरदर्शने ! हे गुणमण्डने ! तुमने निर्ग्रन्थमुनियोंका युगल कहाँ देखा ? कहाँ देखा ? ॥१९॥ वह युगल कि जिसके देखनेसे हे सुन्दरि ! भक्त मनुष्योंका चिरसञ्चित पाप क्षण भरमे नष्ट हो जाता है ॥२०॥ रामके इस प्रकार कहने पर सीताने संभ्रम पूर्वक कहा कि 'ये है, ये हैं' । उस समय राम कुछ आकुलताको प्राप्त हुए ॥२१॥

तदनन्तर युग प्रमाण पृथिवीमें जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जिनका गमन अत्यन्त शान्तिपूर्ण था और जिनके शरीर प्रमादसे रहित थे, ऐसे दो मुनियोंको देखकर दम्पती अर्थात् राम और सीताने उठकर खड़े होना, संमुख जाना, स्तुति करना, और नमस्कार करना आदि क्रियाओंसे उन दोनों मुनियोंको पुण्यरूपी निर्भरके भ्रान्तिके लिए पर्वतके समान किया था ॥२२-२३॥ जिसका शरीर पवित्र था, तथा जो अतिशय श्रद्धासे युक्त थी ऐसी सीताने पतिके साथ मिलकर दोनों मुनियोंके लिए भोजन परोसा-आहार प्रदान किया ॥२४॥ वह आहार वनमें उत्पन्न हुई गायों और भैंसोंके ताजे और मनोहर घी, दूध तथा उनसे निर्मित अन्य मावा आदि पदार्थोंसे बना था ॥२५॥ खजूर, इड्ढुद, आम, नारियल, रसदार बेर तथा मिलाया आदि फलोंसे निर्मित था ॥२६॥ इस प्रकार शास्त्रोक्त शुद्धिसे सहित नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंसे उन मुनियोंने पारणा

१. नन्दो म० । २. भुवा म०, ख० । ३. विकशात्रेव म० । ४. यानामिस्तुष्टः प्रणयनादिभिः म०, यानामिस्तुष्टि प्रणयनादिभिः व० । ५. भोजनं । ६. दृष्टिताडिताः म० ।



एवं च पर्युपास्यैतौ मुनी रामः प्रियान्वितः । समस्तभावसम्भारकृतनिर्ग्रन्थमाननः ॥२८॥
 तावद्दुन्दुभयो नेदुर्गमनेऽदृष्टताडिताः । वधौ समीरणः स्वैरं प्राणरक्षणकारणम् ॥२९॥
 साधु साध्वित्ति देवानां मधुरो निस्वन्नोऽभवत् । ववर्ष पञ्चवर्णाणि कुसुमानि नभस्तलम् ॥३०॥
 पात्रदानानुभावेन दिव्या सकलवर्णिका । पूरयन्ती नभोऽपसद्भुसुधारा महाश्रुतिः ॥३१॥
 अथात्रैव वनोद्देशे गहनस्य महातरोः । निपण्णोऽग्रे महागृध्रः स्वेच्छुयावस्थितोऽभवत् ॥३२॥
 स दृष्ट्वाऽतिशयोपेतौ मुनी कर्मानुभावतः । बहूनाभमवाग् सृष्ट्वा तत्तद्देवमचिन्तयत् ॥३३॥
 मनुष्यभावसुकर प्रमत्तेन मया पुरा । विवेकिनापि न कृत तपो धिग्मामचेतनम् ॥३४॥
 भाव प्रतप्यसे किं त्वमधुना पापचेष्टितः । कसुपायं करोम्येतां कुस्तितां शोनिमागतः ॥३५॥
 अनुकूलारिभिः पापैर्मिश्रशब्ददर्शारिभिः । प्रेरितेन सता त्यक्तं धर्मरत्न सदा मया ॥३६॥
 सुभूरिचरितं पापमपकर्ण्य गुरुदितम् । मोहध्वान्तपरीतेन दह्ये यद्भुना स्मरन् ॥३७॥
 न किञ्चिद्द्व बहुना चिन्तितेन प्रयोजनम् । गतिरन्या न मे लोके विद्यते दुःखसंचये ॥३८॥
 एतौ प्रयामि शरणं साधू सर्वसुखावहौ । इतो मे परमार्थस्य प्राप्तिः सज्जायते भ्रूवम् ॥३९॥
 इति पूर्वभवैध्यानात् परम शोकमागतः । दर्शनाब् महासाधोः प्रमोदं त्वरयान्वितः ॥४०॥
 विभूय पञ्चयुगलमधुसम्पूर्णलोचनः । पपात शाखिनो मूर्ध्नाः प्रश्रयान्वितविभ्रमः ॥४१॥
 नागाः सिंहादयोऽप्यत्र नादेन महतामुना । विदुद्रवरय दुष्टः कथं तु न खगाधमः ॥४२॥

की । उन मुनियोंके चित्त भोजन विषयक गृध्रताके सम्बन्धसे रहित थे ॥२५॥ इस प्रकार समस्त भावोंसे मुनियोंका सन्मान करनेवाले राम इन दोनों मुनियोंकी सेवा कर सीताके साथ बैठे ही थे कि उसी समय आकाशमें अदृष्टजनोसे ताडित दुन्दुभि वाजे बजने लगे, प्राण इन्द्रियको प्रसन्न करनेवाली वायु धीरे-धीरे बहने लगी, 'अन्य, धन्य' इस प्रकार देवोंका मधुर शब्द होने लगा, आकाश पोंच वर्णके फूल बरसाने लगा और पात्रदानके प्रभावसे आकाशको व्याप्त करनेवाली, महाकान्तिकी धारक, सब रङ्गोंकी दिव्यरत्न वृष्टि होने लगी ॥२८-३१॥

अथानन्तर वनके इसी स्थानमें सघन महावृक्षके अग्रभाग पर एक बड़ा भारी गृध्र पक्षी स्वेच्छासे बैठा था ॥३२॥ सो अतिशय पूर्ण दोनों मुनिराजोंको देखकर कर्मोदयके प्रभावसे उसे अपने अनेक भव स्मृत हो उठे । वह उस समय इस प्रकार विचार करने लगा ॥३३॥ कि यद्यपि मैं पूर्व पर्यायमें विवेकी था तो भी मैंने प्रमादी बनकर मनुष्य भवसे करने योग्य तपश्चरण नहीं किया अतः मुझ अविवेकीको धिक्कार हो ॥३४॥ हे हृदय ! अब क्यों संताप कर रहा है ? इस समय तो इस कुयोनिमें आकर पाप चेष्टाओंसे निमग्न हूँ अतः क्या उपाय कर सकता हूँ ? ॥३५॥ मित्र सङ्गाको धारण करनेवाले तथा अनुकूलता दिखानेवाले पापी बैरियोंसे प्रेरित हो मैंने सदा धर्मरूपी रत्नका परित्याग किया है ॥३६॥ मोहरूपी अन्धकारसे व्याप्त होकर मैंने गुरुओंका उपदेश न सुन जिस अत्यधिक पापका आचरण किया है उसे आज स्मरण करता हुआ ही जल रहा हूँ ॥३७॥ अथवा इस विषयमें बहुत विचार करनेसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है क्योंकि दुःखोंका क्षय करनेके लिए लोकमें मेरी दूसरी गति नहीं है—अन्य उपाय नहीं है । मैं तो सब जीवोंको सुख देनेवाले इन्हीं दोनों मुनियोंकी शरणको प्राप्त होता हूँ । इनसे निश्चित ही मुझे परमार्थकी प्राप्ति होगी ॥३८-३९॥ इस प्रकार पूर्वभवका स्मरण होनेसे जो परम शोकको प्राप्त हुआ था तथा महामुनियोंके दर्शनसे जो अत्यधिक हर्षको प्राप्त था ऐसा शीघ्रतासे सहित, अधुपूर्णा नेत्रोंका धारक, एवं विनयपूर्ण चेष्टाओंसे सहित वह गृध्र पक्षी दोनों पक्ष फड़फड़ाकर वृक्षके शिखरसे नीचे आया ॥४०-४१॥ यहाँ इस अत्यधिक कोलाहलसे हाथी तथा सिंहादिक

हा मातः पश्यतामुष्य धाढ्वं गुधस्य पापिनः । चिन्तयित्वेति वैदेहा कोपाकुलितचित्तया ॥४३॥
 वार्यमाणोऽपि यत्नेन कृतनिष्ठुरशब्दया । मुनिपात्रोद्दकं पक्षी सोत्साहः पातुमुद्यतः ॥४४॥
 पात्रोद्दकप्रभावेण शरीरं तस्य तत्क्षणम् । रत्नराशिसमं जातं परीतं चित्रतेजसा ॥४५॥
 जाती हेमप्रभौ पक्षी पादौ वैदूर्यसन्निभौ । नानारत्नच्छविर्देहश्चक्षुर्विद्रुमविभ्रमा ॥४६॥
 ततः स्वमन्थयाभूतमवलोक्य सुसम्मदः । विमुञ्चन्मधुरं नादं नर्तितु स समुद्यतः ॥४७॥
 देवदुन्दुभिनादाऽऽप्रावेव तस्यातिसुन्दरम् । आतोद्यत् परिप्राप्तं स्वां च वाणीं सुतेजसः ॥४८॥
 मुञ्चन्नानन्दनेत्रामश्रुक्रोडित्य गुरुद्वयम् । शुशुभे कृतमूल्योऽप्यो शिल्पा मेवागमे यथा ॥४९॥
 विधिना पारणां कृत्वा सुनी कृतयथोचितां । वैदूर्यसदृशे राजन्नुपविष्टौ शिलातले ॥५०॥
 पद्मरागाभनेत्रश्च पक्षी सङ्कुचितच्छुद्धः । प्रणम्य पादयोः साधोः सुखं तस्थौ कृताञ्जलिः ॥५१॥
 चणादग्निमिवालोक्त्य ज्वलन्तं तेजसा जगम् । पक्षो विक्रचपद्मान्तो विसमयं परमं गतः ॥५२॥
 प्रणम्य पादयोः साधुं गुणशीलविभूषणम् । अपृच्छदिति विन्यस्य मुहुर्नेत्रे पतत्रिणि ॥५३॥
 भगवन्नयमत्यन्तं विरूपावयवः पुरा । कथं क्षणेन सञ्जातो हेमरत्नचयच्छुद्धिः ॥५४॥
 भयुचिः सर्वमांसादो गृध्रोऽयं दुष्टमानसः । निपद्य पादयोः शान्तस्तव कस्मादवस्थितः ॥५५॥
 सुगुप्तिभ्रमणोऽत्रोचद् राजन् पूर्वमिहाभवद् । देशो जनपदाकीर्णो विषयः सुन्दरो महान् ॥५६॥

वड़े-वड़े जन्तु तो भाग गये पर यह दुष्ट नीच पक्षी क्यों नहीं भागा । हा मातः ! इस पापी गृध्रकी धृष्टता तो देखो; इस प्रकार विचार कर जिसका चित्त क्रोधसे आकुलित हो रहा था तथा जिसने कठोर शब्दोंका उच्चारण किया था ऐसी सीताने यद्यपि प्रयत्नपूर्वक उस पक्षीको रोका था तथापि वह वड़े उरसाहसे मुनिराजके चरणोद्दकको पीने लगा ॥४२-४३॥ चरणोद्दकके प्रभावसे उसका शरीर उसी समय रत्नराशिके समान नाना प्रकारके तेजसे व्याप्त हो गया ॥४४॥ उसके दोनों पङ्ख सुवर्णके समान हो गये, पैर नील मणिके समान दिखने लगे, शरीर नाना रत्नोंकी कान्तिका धारक हो गया और चोंच मूंगाके समान दिखने लगी ॥४५॥ तदनन्तर अपने आपको अन्य रूप देख वह अत्यन्त हर्षित हुआ और मधुर शब्द छोड़ता हुआ नृत्य करनेके लिए उद्यत हुआ ॥४६॥ उस समय जो देव-दुन्दुभिका नाद हो रहा था वही उस तेजस्वीकी अपनी वाणीसे मिलता-जुलता अत्यन्त सुन्दर साजका काम दे रहा था ॥४७-४८॥ दोनों मुनियोंकी प्रदक्षिणा देकर हर्षाशुको छोड़ता हुआ वह नृत्य करनेवाला गृध्र पक्षी वर्षा ऋतुके मयूरके समान सुशोभित हो रहा था ॥४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिनका यथोचित सत्कार किया गया था ऐसे दोनों मुनिराज विधिपूर्वक पारणकर वैदूर्यमणिके समान जो शिलातल था उस पर विराजमान हो गये ॥५०॥ और पद्मराग मणिके समान नेत्रोंका धारक गृध्र पक्षी भी अपने पङ्ख संकुचित कर तथा मुनिराजके चरणोंमें प्रणाम कर अञ्जली बाँध मुखसे बैठ गया ॥५१॥ विकसित कमलके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले राम, क्षण भरमें तेजसे जलती हुई अग्निके समान उस गृध्र पक्षीको देखकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५२॥ उन्होंने पक्षीपर बार-बार नेत्र डालकर तथा गुग और शीलरूपी आभूषणको धारण करनेवाले मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर उनसे इस प्रकार पूछा कि हे भगवन् ! यह पक्षी पहले तो अत्यन्त विरूप शरीरका धारक था पर अब क्षण भरमें सुवर्ण तथा रत्न राशिके समान कान्तिका धारक कैसे हो गया ? ॥५३-५४॥ महा अपवित्र, सब प्रकारका मांस खानेवाला तथा दुष्ट हृदयका धारक यह गृध्र आपके चरणोंमें बैठकर अत्यन्त शान्त कैसे हो गया है ? ॥५५॥

तदनन्तर सुगुप्ति नामक मुनिराज बोले कि हे राजन् ! पहले यहाँ नाना जनपदोंसे व्याप्त

पत्तनग्रामसंवाहमटम्बपुटभेदनैः । घोत्रोणमुखौघैश्च सन्निवेशैर्विराजितः ॥५७॥
 कर्णकुण्डलनामात्र पुरमासीन् मनोहरम् । तस्मिन्नयमभृद्वाजा प्रतापपरमोदयः ॥५८॥
 चण्डविक्रमसम्पन्नो भग्नशात्रवकण्ठकः । ढण्डो मानमयः ख्यातो दण्डको नाम साधनी ॥५९॥
 धृताश्विना जल तेन मथितं रघुनन्दन । धर्मश्रद्धापरीतेन घृतः पापागमो धिया ॥६०॥
 देवी मस्करिणां तस्य वरिवस्त्या पराभवत् । तेषामसावर्थाशेन सम्भोगं समुपागता ॥६१॥
 सोऽपि तस्याः परं वश्यस्तामेव दिशमाश्रयत् । स्त्रीचित्तहरणोद्युक्ताः किं न कुर्वन्ति मानवाः ॥६२॥
 निष्क्रान्तेनान्यदा तेन नगरात् साधुरीक्षितः । प्रलम्बितभुजः श्रीमान् ध्यानसंरुद्धमानसः ॥६३॥
 कुण्डलसर्पौ मृतस्तस्य ३द्विरधाहो विपलालया । कण्ठे निश्चापितस्तेन प्रावदारुणचेतसा ॥६४॥
 यावदेपोऽपनीतो न प्रदातुर्मम कैश्चित् । तावन्न संहरेद्योगमिति ध्यात्वा मुनिः स्थितः ॥६५॥
 अतीते गणरात्रे च पुनस्तेनैव वर्त्मना । निष्क्रामन् पार्थिवोऽपश्यत्तदवश्य महासुनिम् ॥६६॥
 ऋक्षुनैव च रूपेण गत्वा निकटतां भृशम् । अप्रच्छदपनेतारं किमेतदिति सोऽब्रुवत् ॥६७॥
 नरेन्द्र पश्य केनापि नरकावासमार्गिणा । योगस्थस्य मुनेरस्य कण्ठे सर्पः समर्पितः ॥६८॥
 यस्य सर्पस्य सम्पर्काद् विग्रहस्य समुद्गतम् । प्रतिबिम्बं शित्तिक्लिन्नं दुर्दर्शमतिभोषणम् ॥६९॥
 मुनि नि प्रतिकर्माणं दृष्ट्वा राजा तथाविधम् । प्रणम्याक्षमयच्छातास्ते च स्थानं यथोचितम् ॥७०॥
 ततः प्रभृति सकोऽसौ कर्तुं भक्तिमनुत्तमाम् । निरम्बरमुनीन्द्राणां वारितोपद्रवक्रियः ॥७१॥

एक बहुत बड़ा सुन्दर देश था ॥५६॥ जो पत्तन, ग्राम, संवाह, मटम्ब, पुटभेदन, घोप और द्रोण मुख आदि रचनाओंसे सुशोभित था ॥५७॥ इसी देशमें एक कर्णकुण्डल नामका मनोहर नगर था जिसमें यह परम प्रतापी राजा था । यह तीव्र पराक्रमसे युक्त, शत्रुरूपी कंटकांको भग्न करनेवाला, महामानी एवं साधनसम्पन्न दण्डक नामका धारक था ॥५८-५९॥ हे रघुनन्दन ! धर्मकी श्रद्धासे युक्त इस राजाने पापपोषक शास्त्रको समझकर बुद्धिपूर्वक धारण किया सो मानो इसने घृतकी इच्छासे जलका ही मन्थन किया ॥६०॥ राजा दण्डककी जो रानी थी वह परिव्राजकों की बड़ी भक्त थी क्योंकि परिव्राजकोंके स्वामीके द्वारा वह उत्तम भोगको प्राप्त हुई थी ॥६१॥ राजा दण्डक रानीके वशीभूत था इसलिए यह भी उसी दिशाका आश्रय लेता था, सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंका चित्त हरण करनेमें उद्यत मनुष्य क्या नहीं करते हैं ? ॥६२॥ एक दिन राजा नगरसे बाहर निकला वहाँ उसने एक ऐसे साधुको देखा जो अपनी भुजाएँ नीचे लटकाने हुए थे, वीतराग लक्ष्मीसे सहित थे तथा जिनका मन ध्यानमें रुका हुआ था ॥६३॥ पापाणके समान कठोर चित्तके धारक राजाने उन मुनिके गलेमें, विषमिश्रित लारसे जिसका शरीर व्याप्त था ऐसा एक मरा हुआ काला सर्प डलवा दिया ॥६४॥ 'जब तक इस सर्पको कोई अलग नहीं करता है तब तक मैं योगको संकुचित नहीं करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर वह मुनि उसी स्थान पर खड़े रहे ॥६५॥ तदनन्तर बहुत रात्रियों व्यतीत हो जानेके बाद उसी मार्गसे निकले हुए राजाने उन महा-मुनिको उसी प्रकार ध्यानारूढ देखा ॥६६॥ उसी समय कोई मनुष्य मुनिराजके गलेसे सर्प अलग कर रहा था । राजा मुनिराजकी सरलतासे आकृष्ट हो उनके पास गया और सर्प निकालनेवाले मनुष्यसे पूछता है कि 'यह क्या है ?' इसके उत्तरमें वह मनुष्य कहता है कि राजन् ! देखो, नरककी खोज करनेवाले किसी मनुष्यने इन ध्यानारूढ मुनिराजके गलेमें सर्प डाल रक्खा है ॥६७-६८॥ जिस सर्पके संपर्कसे इनके शरीरकी आकृति श्याम, खेदखिन्न, दुर्दर्शनीय तथा अत्यन्त भयङ्कर हो गई है ॥६९॥ कुछ भी प्रतिकार नहीं करनेवाले मुनिको उसी प्रकार ध्यानारूढ देख राजाने प्रणाम कर उससे क्षमा माँगी और तदनन्तर वह यथास्थान चला गया ॥७०॥ उस समय से राजा दिगम्बर मुनियोंकी उत्तम भक्ति करनेमें तत्पर हो गया और उसने मुनियोंके सब उपद्रव-

देवावित्प्रियाजा^१ ज्ञात्वान्यविषयं नृपम् । इदं क्रोधपरीतेन विधातुमभिवान्जितम् ॥७२॥
जीवितस्नेहमुत्सृज्य परदुःखाहितात्मकः । निर्ग्रन्थरूपभृष्टेव्याः सम्पर्कमभजत् पुनः ॥७३॥
ज्ञात्वा तदीदृशं कर्म राज्ञात्क्रोधमीयुषा । अमात्याद्युपदेशं च स्मृत्वा निर्ग्रन्थनिन्दनम् ॥७४॥
श्रूरकर्मभिरन्यैश्च प्रेरितः श्रमणाहितैः । आज्ञापयन् महर्षीणां यन्त्रनिष्पीडने नरान् ॥७५॥
गणाधिपसमेतोऽसौ समूहोऽम्बरवाससाम् । यन्त्रनिष्पीडनैर्नीतः पञ्चतां पापकर्मणाम् ॥७६॥
बाह्यभूमिगतस्तत्र मुनिरैकः समाव्रजन् । हृत्पचार्यत लोकेन केनचित् कण्णावता ॥७७॥
भो भो निर्ग्रन्थ मोगारुखं पूर्वैर्नैर्ग्रन्थमाश्रयन् । यन्त्रेणापीड्यसे तत्र द्रुतं क्रुह पलायनम् ॥७८॥
यन्त्रेषु श्रमणाः सर्वे राज्ञा क्रुद्धेन पीडिताः । मागास्त्वमप्यवस्थां तां रक्ष धर्माश्रयं वपुः ॥७९॥
ततः क्षणमसौ लङ्घ्यत्युदुःखेन शस्थितः । वज्रस्तम्भ इवाकम्पस्तस्थायव्यक्तचेतनः ॥८०॥
अथास्य शतदुःखेन प्रेरितः शमगह्वरात् । निरम्बरमहोद्गस्य निरगात् क्रोधकेसरी ॥८१॥
रक्षाशोकप्रकाशेन निखिल तस्य चक्षुषः । तेजसा विहितं व्योम सम्भ्यामयमिवाभवत् ॥८२॥
कोपेन तप्यमानस्य मुनेः सर्वत्र विग्रहे । प्रस्वेदबिन्दवो जाताः प्रतिविम्बितविद्येषा ॥८३॥
ततः कालानलाकारो बहुलः कुटिलः पृथुः । हाकारेण मुखोत्तस्य निरगात् पावकध्वजः^२ ॥८४॥
अजुलनश्च तस्याग्निहृद्गाम निरन्तरम् । कृतं नभस्तल येन निरिन्धनविदीपितम् ॥८५॥

कष्ट दूर कर दिये ॥७१॥ रानीके साथ गुप्त समागम करनेवाले परिव्राजकाके अधिपतिने जब राजाके इस परिवर्तनको जाना तब क्रोधसे युक्त होकर उसने यह करनेकी इच्छा की ॥७२॥ दूसरे प्राणियोंको दुःख देनेमें जिसका हृदय लग रहा था ऐसे उस परिव्राजकने जीवनका स्नेह छोड़ निर्ग्रन्थ मुनिका रूप धर रानीके साथ संपर्क किया ॥७३॥ जब राजाको इस कार्यका पता चला तब वह अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ । मन्त्री आदि अपने उपदेशमें निर्ग्रन्थ मुनियोंकी जो निन्दा किया करते थे वह सब इसकी स्मृतिमें भूलने लगा ॥७४॥ उसी समय मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले अन्य दुष्ट लोगोंने भी राजाको प्रेरित किया जिससे उसने अपने सेचकोंके लिए समस्त मुनियोंको घानीमें पेलनेकी आज्ञा दे दी ॥७५॥ जिसके फलस्वरूप गणनायकके साथ-साथ जितना मुनियोंका समूह था वह सब, पापी मनुष्योंके द्वारा घानीमें पिलकर मृत्युको प्राप्त हो गया ॥७६॥ उस समय एक मुनि कहीं बाहर गये थे जो लौटकर उसी नगरीकी ओर आ रहे थे । उन्हें किसी दयालु मनुष्यने यह कह कर रोका कि हे निर्ग्रन्थ ! हे दिगम्बरमुद्राके धारी ! तुम अपने पहलेका निर्ग्रन्थवेप धारण करते हुए नगरीमें मत जाओ, अन्यथा घानीमें पेल दिये जाओगे, शीघ्र ही यहाँसे भाग जाओ ॥७७-७८॥ राजाने क्रुद्ध होकर समस्त निर्ग्रन्थ मुनियोंको घानीमें पिलवा दिया है तुम भी इस अवस्थाको प्राप्त मत होओ, धर्मका आश्रय जो शरीर है उसकी रक्षा करो ॥७९॥

तदनन्तर समस्त संघकी मृत्युके दुःखसे जिन्हें शन्य लग रही थी ऐसे वे मुनि क्षणभरके लिए ब्रजके स्तम्भकी नाई अकम्प—निश्चल हो गये । उस समय उनकी चेतना अव्यक्त हो गई थी अर्थात् यह नहीं जान पड़ता था कि जीवित है या मृत ? ॥८०॥ अथानन्तर उन निर्ग्रन्थ मुनिरूपी पर्वतकी शान्तिरूपी गुफासे सैकड़ों दुःखोंसे प्रेरित हुआ क्रोधरूपी सिंह बाहर निकला ॥८१॥ उनके नेत्रके अशोकके समान लाल-लाल तेजसे आकाश ऐसा व्याप्त हो गया मानी उसमें संध्या ही व्याप्त हो गई हो ॥८२॥ क्रोधसे तपे हुए मुनिराजके समस्त शरीरमें स्वेदकी धूँँ निकल आई और उनमें लोकका प्रतिविम्ब पड़ने लगा ॥८३॥ तदनन्तर उन मुनिराजने मुखसे 'हा' शब्द का उच्चारण किया उसीके साथ मुखसे धुआँ निकला जो कालाग्निके समान अत्यधिक कुटिल और विशाल था ॥८४॥ उस धुआँके साथ ऐसी ही निरन्तर अग्नि निकली कि जिसने ईन्धनके बिना

उल्काभिर्नु बगद्व्याप्तं ज्योतिर्देवाः पतन्ति तु । महाप्रलयकाले तु वह्निदेवा तु रोपिताः ॥८६॥
 हा हा मातः किमेतन्नु तापोऽयमतिदुस्सहः । चक्षुरुपाव्यते दीर्घसंदंशैरिव वेगिभिः ॥८७॥
 मूर्तिनिर्मुक्तमैवैतद्भ्रगर्गं कुर्वते ध्वनिम् । वंशारण्यमिवोद्दीप्तं जीवितार्कषणोचितम् ॥८८॥
 यावदेव ध्वनिलोकं वर्ततेऽन्यन्तमाकुलः । वह्निस्तावदयं देशमनयद् भस्मशोपात्मा ॥८९॥
 नान्तःपुरं न देशो न पुराणि न च पर्वताः । न नद्यो नान्यारण्यानि तदा न प्राणधारिणः ॥९०॥
 महासंवेगयुक्तेन मुनिना चिरमर्जितम् । क्रोधाग्निनाखिलं दग्ध तपोऽन्यत् किमु शिष्यताम् ॥९१॥
 यतोऽत्र दण्डको देशः आसीदण्डकपार्थिवः । तेनैव ध्वनिनाद्यापि दण्डकः परिकीर्त्यते ॥९२॥
 काले महत्यतिक्रान्ते प्रासायां चारुतां भुवि । एतेऽत्र पादपा जाताः पर्वताश्च सन्निभगाः ॥९३॥
 मुनेस्तस्य प्रभात्रेण सुराणामपि भीतिदम् । वनमेतदभूत् कैत्र वार्तां विद्यावलाश्रितौम् ॥९४॥
 पश्चादिदं समाकर्णं सिंहेन शरभादिभिः । नानाशकुनिवृन्दैश्च सस्यभेदैश्च भूरिभिः ॥९५॥
 अद्याप्यस्योरुदावस्य भुत्वा शब्दं परं भयम् । व्रजन्ति मानवाः कम्पं वृत्तान्ते तु निबोधिनः ॥९६॥
 संसारेऽतिचिरं भ्रान्त्वा दण्डको दुःखपूरितः । अय गृध्रत्वमायातो वनेऽत्र रतिमागतः ॥९७॥
 दृष्ट्वा सातिशयावेप नै वनेऽत्र समागतौ । पापस्य कर्मणो हान्या प्राप्तः पूर्वभवस्मृतिम् ॥९८॥
 योऽसी परमया शक्त्या युक्तोऽभूदण्डको नृप । सोऽय पश्यत सञ्जातः कीदृशः पापकर्मभिः ॥९९॥
 इति विज्ञाय विरसं फलं कटुककर्मणः । कथं न सज्यते धर्मै हुरिताश्च विरज्यते ॥१००॥

ही समस्त आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥८६॥ क्या यह लोक उल्काओंसे व्याप्त हो रहा है ? या ज्योतिष्क देव नीचे गिर रहे हैं ? या महा प्रलयकाल आ पहुँचा है ? या अग्निदेव कुपित हो रहे हैं ? हाय माता ! यह क्या है ? यह ताप तो अत्यन्त दुःसह है, ऐसा लगता है जैसे वेगशाली बड़ी-बड़ी संधारियोसे नेत्र उखाड़े जा रहे हों, यह अमूर्तिक आकाश ही घोर शब्द कर रहा है, मानो प्राणोंके खींचनेमें उद्यत बोंसोंका वन ही जल रहा है' इस प्रकार अत्यन्त व्याकुलतासे भरा यह शब्द जब तक लोकमें गूँजता है तब तक उस अग्निने समस्त देशको भस्म कर दिया ॥८६-८९॥ उस समय न अन्तःपुर, न देश, न नगर, न पर्वत, न नदियों, न जङ्गल और न प्राणी ही शेष रह गये थे ॥९०॥ महान् संवेगसे युक्त मुनिराजने चिरकालसे जो तप सञ्चित कर रखा था वह सबका शब्द क्रोधाग्निमें दग्ध हो गया—जल गया फिर दूसरी वस्तुएँ तो बचती ही कैसे ? ॥९१॥ यह दण्डक देश था तथा दण्डक ही यहाँका राजा था इसलिए आज भी यह स्थान दण्डक नामसे ही प्रसिद्ध है ॥९२॥ बहुत समय वीत जानेके बाद यहाँ की भूमि कुछ सुन्दरताको प्राप्त हुई है और ये वृक्ष, पर्वत तथा नदियों दिखाई देने लगी हैं ॥९३॥ उन मुनिके प्रभावसे यह वन देवोंके लिए भी भय उत्पन्न करनेवाला है फिर विद्याधरोंकी तो बात ही क्या है ? ॥९४॥ आगे चल कर यह वन सिंह अष्टापद आदि क्रूर जन्तुओं, नाना प्रकारके पक्षि-समूहों तथा अत्यधिक जङ्गली धान्यासे युक्त हो गया ॥९५॥ आज भी इस वनकी प्रचण्ड दावानल का शब्द सुनकर मनुष्य पिछली घटनाका स्मरण कर भयभीत होते हुए कॉपने लगते हैं ॥९६॥ राजा दण्डक बहुत समय तक संसारमें भ्रमण कर दुःख उठाता रहा अब गृध्रपार्थिकको प्राप्त हो इस वनमें प्रीतिकी प्राप्त हुआ है ॥९७॥ इस समय इस वनमें आये हुए अतिशय युक्त हृम दोनोको देखकर पापकर्मकी मन्दता होनेसे यह पूर्वभवके स्मरणको प्राप्त हुआ है ॥९८॥ जो दण्डक राजा पहले परम शक्तिसे युक्त था वह देखो, आज पापकर्मोंके कारण कैसा हो गया है ? ॥९९॥ इस प्रकार पाप कर्मका नीरस फल जान कर धर्ममें क्यों नहीं लगा जाय और पापसे क्यों नहीं

दृष्टान्तः परकीयोऽपि शान्तेर्भवति कारणम् । असमञ्जसमात्मीयं किं पुनः स्मृतिमागतम् ॥१०१॥
 पक्षिणं सयतोऽजादीन्मा भैर्यारधुना द्विज । सा रोदीर्यद्यथा भाव्यं कः करोति तदन्यथा ॥१०२॥
 आश्वासं गच्छ विशन्धः कर्पं मुञ्च सुखी भव । परय क्लेयमरण्यानी क रामः सीतयान्वितः ॥१०३॥
 अवग्रहोऽस्मदीयः क क त्वमात्मार्यसद्वत् । प्रबुद्धो दुःखसम्बोधः कर्मणाभिदमीहितम् ॥१०४॥
 इदं कर्म विचित्रत्वाद् विचित्रं परमं जगत् । अनुभूत श्रुतं दृष्टं यथैव प्रवृत्तम्यहम् ॥१०५॥
 पक्षिणः प्रतिबोधार्थं ज्ञात्वाकृतं च सीरिणः । सुगुप्तिरवदत् स्वस्य सुगुप्तेः शमकारणम् ॥१०६॥
 अचलो नाम विख्यातो वाराणस्यां महीपतिः । गिरिदेवीति ज्ञायस्य गुणरत्नविभूषिता ॥१०७॥
 त्रिगुप्त इति विख्यातो गुणनामान्यदा मुनिः । पारणार्थं गृहं तस्याः प्रविष्टः शुद्धचेष्टितः ॥१०८॥
 स तथा परमां श्रद्धां दत्त्वा विधिपूर्विकाम् । तर्पितः परमान्नेन स्वयं व्यापारमुक्तया ॥१०९॥
 समाप्ताशनकृत्यञ्च पादन्यतोत्तमाङ्गया । पप्रच्छान्यापदेशेन स्वस्य पुत्रसमुद्भवम् ॥११०॥
 नाथ सातिशयोऽयं मे गृहवासो भविष्यति । किं वा नेति प्रसादोऽयं क्रियतां निश्चयार्पणम्^३ ॥१११॥
 वचोगुप्तिं ततो भित्वा राज्ञीभक्त्यनुरोधतः । तस्याश्चात्समादिष्टं मुनिना तनयद्वयम् ॥११२॥
 त्रिगुप्तस्य मुनेस्त्वस्य समादेशेऽनयत सुतौ । जातौ सुगुप्तिगुप्ताख्यौ पितृभ्यां तौ ततः कृतौ ॥११३॥
 तौ च सर्वकलाभिज्ञौ कुमारश्रांसमन्वितौ । तिष्ठन्तौ विविधैर्भावे रममाणौ जनप्रियौ ॥११४॥
 वृत्तान्तोऽयं च सज्जतो गन्धर्वस्यां महीपतेः । पुरोहितस्य सोमस्य प्रियायास्तनयद्वयम् ॥११५॥

विरक्त हुआ जाय ? ॥१००॥ दूसरेका उदाहरण भी शान्तिका कारण हो जाता है फिर यदि अपनी ही खोटी बात स्मरण आ जावे तो कहना ही क्या है ? ॥१०१॥

रामसे इतना कहकर मुनिराजने गृध्रसे कहा कि हे द्विज ! अब भयभीत मत होओ, रोओ मत, जो बात जैसी होनेवाली है उसे अन्यथा कौन कर सकता है ? ॥१०२॥ धैर्य धरो, निश्चिन्त होकर कर्पकपी छोड़ो, सुखी होओ, देखो यह महा अटवी कहाँ ? और सीता सहित राम कहाँ ? ॥१०३॥ हमारा पडगाहन कहाँ ? और आत्म कल्याणके लिए दुःखका अनुभव करते हुए तुम्हारा प्रबुद्ध होना कहाँ ? कर्मोंकी ऐसी ही चेष्टा है ॥१०४॥ कर्मोंकी विचित्रताके कारण यह संसार अत्यन्त विचित्र है । जैसा मैंने अनुभव किया है, सुना है अथवा देखा है वैसा ही मैं कह रहा हूँ ॥१०५॥ पक्षीको समझानेके लिए रामका अभिप्राय जान सुगुप्ति मुनिराज अपनी दीक्षा तथा शान्तिका कारण कहने लगे ॥१०६॥

उन्होंने कहा कि वाराणसी नगरीमें एक अचल नामका प्रसिद्ध राजा था । उसकी गुणरूपी रत्नोसे विभूषित गिरि देवी नामकी स्त्री थी ॥१०७॥ किसी एक दिन त्रिगुप्त इस सार्थक नामकी धारण करनेवाले तथा शुद्ध चेष्टाओंके धारक मुनिराजने आहारके लिए उसके घर प्रवेश किया ॥१०८॥ सो विधि पूर्वक परम श्रद्धाको धारण करनेवाली गिरि देवीने अन्य सब कार्य छोड़ स्वयं ही उत्तम आहार देकर उन्हें संतुष्ट किया ॥१०९॥ जब मुनिराज आहार कर चुके तब उसने उनके चरणोंमें मस्तक मुकाकर किसी दूसरेके वहाने अपने पुत्र उत्पन्न होनेकी बात पूछी ॥११०॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मेरा यह गृहवास सार्थक होगा या नहीं ? इस बातका निश्चय कराकर प्रसन्नता कीजिये ॥१११॥ तदनन्तर मुनि यद्यपि तीन गुप्तियोंके धारक थे तथापि रानीकी भक्तिके अनुरोधसे वचनगुप्तिको तोड़कर उन्होंने कहा कि तुम्हारे दो सुन्दर पुत्र होंगे ॥११२॥ तदनन्तर उन त्रिगुप्त मुनिराजके कहे अनुसार दो पुत्र उत्पन्न हुए सो माता-पिताने उनके 'सुगुप्ति' और 'गुप्त' इस प्रकार नाम रखे ॥११३॥ वे दोनों ही पुत्र सर्व कलाओंके जानकार, कुमार लक्ष्मीसे सुशोभित, अनेक भावोंसे रमण करते तथा लोगोंको अत्यन्त प्रिय थे ॥११४॥

उसी समय यह दूसरा वृत्तान्त हुआ कि गन्धवती नामकी नगरीके राजाके सोम नामका

सुकेतुरग्निकेतुश्च तयोः प्रीतिरनुत्तमा । सुकेतुरन्यदा चाभूत् कृतदारपरिग्रहः ॥११६॥
 जात्रयोरधुना आत्रोः पृथक् शयनमेतथा । क्रियते जात्रयावश्यमिति दुःखसुपागतः ॥११७॥
 सुकेतुः प्रतिवृद्धः सन् शुभकर्मानुभावतः । अनन्तवीर्यपादान्ते श्रमणत्वं समाश्रितः ॥११८॥
 अग्निकेतुर्वियोगेन आतुरप्यन्तदुःखितः । वाराणस्यामभूद्दुग्रस्तपसो धर्मचिन्तया ॥११९॥
 श्रुत्वा चैवंविध त च आतरं स्नेहबन्धनः । प्रतिबोधयितुं धान्द्वन् सुकेतुर्गन्तुमुद्यतः ॥१२०॥
 स ब्रजन् गुरुणावाचि सुकेतो कथयिष्यसि । वृत्तान्तं सोदरायेमं येनासात्पुपशाम्यति ॥१२१॥
 कोऽसौ नाथेति तेनोक्ते गुरुरेवमुदाहरत् । करिष्यति त्वया साक स जल्पं दुष्टभावनः ॥१२२॥
 युवयोः कुर्वतोर्जल्पं जाह्नवीमागमिष्यति । चारुकन्या समं स्त्रीभिस्तिष्ठभिर्गौरविग्रहा ॥१२३॥
 दिवसस्य गते यामे विचित्रांशुकधारिणी । एभिश्चिह्नैर्विदित्वा तां भापितव्यमिदं त्वया ॥१२४॥
 दृष्ट्वा तां वक्ष्यसीदं त्वं ज्ञान चेदस्ति ते मते । वदैतस्याः कुमार्या किं भवितेति शुभाशुभम् ॥१२५॥
 अज्ञानोऽसौ विलसः सस्तापसस्त्वं भणिष्यति । भवान् जानात्विति त्वं च वक्ष्यस्यैर्षं सुनिश्चितः ॥१२६॥
 अस्यत्र प्रचरो नाम^२ वणिजः सम्पदान्वितः । तस्यैव दुहिता नाम्ना रुचिरेति प्रकीर्तिता ॥१२७॥
 मृतीयेऽहनि पञ्चत्वं वराकाय प्रपस्यते । ततोऽजा कम्बरग्रामे विलासस्य भविष्यति ॥१२८॥
 वृकेण मारिता मेपी महिपी च ततः पितुः । मातुलस्य विलासस्य भविष्यति शरीरजा ॥१२९॥
 पृवमचित्चितं सम्प्राप्य प्रणम्य^३ प्रमदीं गुरुम् । सुकेतुः क्रमतः प्राशस्तापसानां निकेताम् ॥१३०॥

पुरोहित था उसकी स्त्रीके सुकेतु और अग्निकेतु नामके दो पुत्र थे । उन दोनों ही पुत्रोमे अत्यधिक प्रेम था, उस प्रेमके कारण बड़े होने पर भी वे एक ही शय्या पर सोते थे । समय पाकर सुकेतुका विवाह हो गया । जब स्त्री घर आई तब सुकेतु यह विचार कर बहुत दुःखी हुआ कि इस स्त्रीके द्वारा अब हम दोनों भाइयोकी शय्या जुदी-जुदी की जा रही है ॥११५-११७॥ इस प्रकार शुभ कर्मके प्रभावसे प्रतिबोधको प्राप्त हो सुकेतु अनन्तवीर्य मुनिके पास दीक्षित हो गया ॥११८॥ भाईके वियोगसे अग्निकेतु भी बहुत दुःखी हो धर्म संचय करनेको भावनासे वाराणसीमें उग्र तापस हो गया ॥११९॥ स्नेहके बन्धनमें बंधे सुकेतुने जब भाईके तापस होनेका समाचार सुना तब वह उसे समझानेके अर्थ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१२०॥ जब वह जाने लगा तब गुरुने उससे कहा कि हे सुकेतो ! तुम अपने भाईसे यह वृत्तान्त कहना जिससे वह शीघ्र ही उपशान्त हो जायगा ॥१२१॥ 'हे नाथ ! वह कौन सा वृत्तान्त है' ? इस प्रकार सुकेतुके कहने पर गुरुने कहा कि दुष्ट भावनाको धारणा करनेवाला तेरा भाई तेरे साथ वाद करेगा ॥१२२॥ सो जिस समय तुम दोनों वाद कर रहे होओगे उस समय गौरवर्ण शरीरको धारणा करनेवाली एक सुन्दर कन्या तीन स्त्रियोंके साथ गङ्गा आवेगी । वह दिनके पिछले प्रहरमें आवेगी तथा विचित्र वस्त्रको धारण कर रही होगी । इन चिह्नोंसे उसे जानकर तुम अपने भाईसे कहना कि यदि तुम्हारे धर्ममें कुछ ज्ञान है तो वताओ इस कन्याका क्या शुभ अशुभ होनेवाला है ? ॥१२३-१२४॥ तब वह अज्ञानी तापसी लजित होता हुआ तुमसे कहेगा कि अच्छा तुम जानते हो तो कहो । यह सुन तुम निश्चयसे सुहृद् हो कहना कि इसी नगरमें एक सम्पत्तिशाली प्रवर नामका वैश्य रहता है यह उसीकी लड़की है तथा रुचिरा नामसे प्रसिद्ध है ॥१२६-१२७॥ यह बेचारी आजसे तीसरे दिन मर जायगी और कम्बर नामक ग्राममें विलास नामक वैश्यके यहाँ बकरी होगी । भेड़िया उस बकरीको मार डालेगा जिससे गाडर होगी फिर मरकर उसीके घर भैस होगी और उसके वाद उसी विलासके पुत्री होगी । वह विलास इस कन्याके पिताका मामा होता है ॥१२८-१२९॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा गुरुको प्रणामकर हर्षसे मरा सुकेतु क्रम-

१. समाश्रित म० । २. वणिक्पुत्रः । ३. हर्षयुक्तः ।

गुण्या न उपासिते वा इष्टा वसुधाहरत् । तथा वृत्तं च तन्मत्तं च तन्मतेः समन्ततः ॥२३॥
 नतोऽपि विदुः कामा विद्यासत्य शरीरवा । गच्छिता श्रीष्टिना लब्धा प्रवरेण ननुहेरा ॥२४॥
 विवाहसमये प्राप्ते प्रवरात् न्यवेदुष्व । अग्निक्लेशेणैवं न तु हिवामाह नन्दरः ॥२५॥
 विद्यामयापि ते सर्वे नवानेव विक्रियताः । श्रुत्वा मुक्त्यका वादा वा विन्दारयके विदुः ॥२६॥
 वरः ननु कुरु वाञ्छुः सा संविपरारक्रोत् । अन्वर्थं विद्यामेव क्वचहारं कुरुत्यः ॥२७॥
 समानां विदुरत्याकं प्रवरे भक्त्यां गते । अर्थिकानुक्तिता कन्या अन्वर्थं च वरः ॥२८॥
 इवान्तराहं श्रुत्वा वयं वैराग्यं ररिताः । सकसोऽनन्वर्थायैव वैदेन्दुप्रवरा अमः ॥२९॥
 एवं नोह्यरीतावं प्राणिवान् विदुरेण । वाग्ये कुक्तिवाचरः मन्वन्तदित्कदितः ॥३०॥
 नाव विदुः सुहृन्मित्रतायान्तरादिकं वचः । सुहृद्गुहादिकं चार्थं विदुः समने भवे ॥३१॥
 वच्छुत्वा सुवरां नरां नतोऽपि ननुःकृतः । वरं च सुहृत्तं वरं धर्मप्रदण्डकृत्य ॥३२॥
 तर्कं च गुण्या ननु सा संविरेहना प्रवत् । गुहाय येन नो मूयः प्राग्ये कुक्त्यन्वत्तः ॥३३॥
 प्रशन्तो मव ना संज्ञां कागैः सर्वसुधारिणात् । सवृत्तं संवितां नारां परकीयां विवदत् ॥३४॥
 पृक्तान्द्रक्ष्यन्तं वा गुह्यता सचनान्वितः । रात्रितुक्ति परित्यज्य मव शोमनवेष्टितः ॥३५॥
 प्रवतोऽहं वरायां च विन्देद्रात् वह वैवसा । उपवासादिकं शब्दा सुर्वीयननन्दरः ॥३६॥

कनसे वारसोके आश्रमसे पहुँचा ॥२३॥ मुक्तसे जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार उस कन्याको देखकर सुक्रेतेने अपने भाई अग्निक्लेशसे कहा और वह सबका सब इचान्द उसी प्रकार कान्ति केदुके सामने आ गया। अर्थात् सच निकला ॥२३॥

वदन्तवर वह कन्या जब नरकर चौथे भयसे विद्यासके विदुः नामकी पुत्री हुई तब अन्तर नामक सेठने उस सुन्दरीको याचना की और वह उसे प्राप्त भी हो गई ॥२४॥ जब विद्यासका समय आया तब अग्निक्लेशसे प्रवरेसे कहा कि यह कन्या नवान्तरसे तुम्हारे पुत्री की ॥२५॥ यह कहकर उसने कन्याके वर्तमान पिता विद्यासके लिए भी उसके वै सच भव कह सुनाये । ज नवोंको सुनकर कन्याको जगत्सन्मरण हो गया ॥२६॥ जिससे संसारसे भयनेत हो उसने वीह्य धारण करनेका विचार कर लिया । इधर प्रवरेने समझा कि विद्यास किसी वृद्धके चरण नरे साथ वरनी कन्याका विवाह नहीं कर रहा है इसलिये दूगिर अग्निवादको धारण करनेवाले प्रवरेने हनारे पिताकी समानसे विद्यासके विरुद्ध अभियोग चलाय परन्तु कनसेसे प्रवरी इत हुई, कन्या आर्थिक पदको प्राय हुई और अग्निक्लेश वापस दिगन्तरलुलि बन गया, ॥२७-२८॥ इचान्दको सुनकर हचने भी विरक्त हो अनन्तवर्ष नामक सुमिराजके समीप जितेन्द्र वृद्धा धारण कर ली ॥२९॥ इस प्रकार नही जीवसे संसारकी सन्तविका बहानेवाले अनेक खोटे आचरण हो जाया करते हैं ॥३०॥ यह जीव वरने क्रिये हुए कर्मोंके फलुसार हो सता, दिवा, स्नेह, मित्र, स्त्री, पुत्र तथा सुख दुःखादिको भव-मचने प्राय होजा है ॥३१॥

यह सुनकर वह मृग पत्नी संसार सन्ध्या कुल्लोसे अत्यन्त नयनीत हो गया और धर्म ग्रहण करनेकी इच्छासे वार-वार शब्द करने लगा ॥३२॥ तब सुमिराजने कहा कि हे मत्त ! मद्द मत करो । इस समय त्रत धारण करो जिससे फिर यह कुल्लोकी सन्तवि प्राय न हो ॥३३॥ अत्यन्त शान्त हो जाओ, किसी भी शयिको पीड़ा मत पहुँचाओ, अत्यन्त वचन, चोरी और परन्तीका त्याग करो अथवा पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण कर उत्तम कन्यासे युक्त हो रात्रि भोजनका त्याग करो, उत्तम वैशाओंसे युक्त होओ, बड़े भयलसे रात्रिदिन जितेन्द्र नगधरको इष्टयने धारण करो, शक्यतुसार विवेकपूर्वक उपवासार्थि नियमोंका आचरण करो, प्रसाद रहित होकर

१. नंदा न० । २. प्रवरेके विपक्ष च (?) न० । ३. कुक्लेश न० ।

इन्द्रियाण्यग्रमत्तः सन्तुत्सुकान्यात्मगोचरे । क्रुह युक्तव्यवस्थानि साधूनां भक्तिवत्परः ॥१४५॥
 इत्युक्तः साञ्जलिः पक्षी शिरो विनमयन्मुहुः । कुर्वाणो मधुरं शब्दं जग्राह मुनिभाषितम् ॥१४६॥
 श्रावकोऽयं विनीतात्मा जातोऽस्माकं विनोदकृत् । इत्युक्त्वा सस्मित्वा सीता तं कराभ्यां समस्पृशत् ॥१४७॥
 साधुभ्यामुक्तमित्येतं रक्षितं बोऽधुनोचितम्^३ । तपस्वी शान्तचित्तोऽयं क्व वा गच्छतु पचभृत् ॥१४८॥
 अस्मिन् सुराहनेऽरण्ये क्रूरप्राणिनिपेविते । सम्यग्दृष्टेः खगस्यास्य रक्षा कार्या त्वया सदा ॥१४९॥
 ततो गुरुवचः प्राप्य सुतरां स्नेहपूर्णया । सीतयानुगृहीतोऽसौ परिपालनचिन्तया ॥१५०॥
 पल्लवस्पर्शहस्ताभ्यां त परास्मृशती सती । जनकस्याङ्गजा रेजे विनीता गहवं यथा ॥१५१॥
 निर्ग्रन्थपुङ्गवावेभिः स्तुतिपूर्वं नमस्कृती । बहूपकारिसञ्चारौ यातावात्मोचितं पदम् ॥१५२॥
 नमः समुत्पन्नतौ तौ श्लथ्माते महामुनी । दानधर्मसमुद्रस्य कल्लोलाविव पुष्कलौ ॥१५३॥
 प्रभिन्नं वारणं तावद् वशीकृत्य वनोत्थितम् । आरुह्य लक्ष्मणः श्रुत्वा ध्वनिमागात् समाकुलः ॥१५४॥
 रत्नकाञ्चनराशिं च इष्ट्वा पर्वतसन्निधिम् । नानावर्णप्रभाजालसमुद्गतसुरायुधम् ॥१५५॥
 विकसन्नयनाम्भोजमहाकौतुकपूरितः । कृतो विद्वितवृत्तान्तः पञ्चेन मुदितात्मना ॥१५६॥
 प्राप्तबोधिरसौ पक्षी नायासीत्तौ विना क्वचित् । निर्ग्रन्थवचनं सर्वं कुर्वन्नुद्यतमानसः ॥१५७॥
 स्वयंमाणोपदेशेऽसौ सीतयाशुव्रताश्रमे । पद्मलक्ष्मणमार्गेण रममाणोऽन्नमन्महाम् ॥१५८॥

इन्द्रियोको व्यवस्थित कर आत्मध्यानमें उत्सुक करो और साधुओंकी भक्तिमें तत्पर होओ ॥१४२-१४५॥ मुनिराजके इस प्रकार कहने पर गृध्र पक्षीने अञ्जलि बौध वार-वार शिर हिलाकर तथा मधुर शब्दका उच्चारण कर मुनिराजका उपदेश ग्रहण किया ॥१४६॥ 'विनीत आत्माको धारण करनेवाला यह श्रावक हम लोगोका विनोद करनेवाला हो गया' यह कह कर मन्दहास्य करनेवाली सीताने उस पक्षीका दोनो हाथोसे स्पर्श किया ॥१४७॥ तदनन्तर दोनो मुनियोने राम आदिको लक्ष्य कर कहा कि अब आप लोगोको इसकी रक्षा करना उचित है क्याकि शान्तचित्तको धारण करनेवाला यह वेचारा पक्षी कहाँ जायगा ? ॥१४८॥ क्रूर प्राणियोसे भरे हुए इस सघन वनमें तुम्हें इस सम्यग्दृष्टि पक्षीकी सदा रक्षा करनी चाहिये ॥१४९॥ तदनन्तर गुरुके वचन प्राप्त कर अतिशय स्नेहसे भरी सीताने उसके पालनकी चिन्ता अपने ऊपर ले उसे अनुगृहीत किया अर्थात् अपने पास ही रख लिया ॥१५०॥ पल्लवके समान कोमल स्पर्शवाले हाथोसे उसका स्पर्श करती हुई विनयवती सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो गरुडका ही स्पर्श कर रही हो ॥१५१॥

तदनन्तर जिनका भ्रमण अनेक जीवोका उपकार करनेवाला था ऐसे दोनों निर्ग्रन्थ साधु, राम आदिके द्वारा स्तुतिपूर्वक नमस्कार किये जाने पर अपने योग्य स्थान पर चले गये ॥१५२॥ आकाशमें उड़ते हुए वे दोनो महामुनि ऐसे सुशोभित हो रहें थे मानो दानधर्मरूपी समुद्रकी दो बड़ी लहरें ही हों ॥१५३॥ उसी समय एक मदनोन्मत्त हाथीको वशकर तथा उस पर सवार हो लक्ष्मण शब्द सुनकर कुछ व्यग्र होते हुए आ पहुँचे ॥१५४॥ नाना वर्णकी प्रभाओंके समूहसे जिसमें इन्द्रधनुष निकल रहा था ऐसी पर्वतके समान बहुत बड़ी रत्न तथा सुवर्णकी राशि देख कर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यधिक कौतुकसे युक्त थे ऐसे लक्ष्मणको प्रसन्न हृदय रामने सब समाचार विदित कराया ॥१५५-१५६॥ जिसे रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई थी तथा जो मुनिराजके समस्त वचनोका बड़ी तत्परतासे पालन करता था ऐसा वह पक्षी राम और सीताके विना कहीं नहीं जाता था ॥१५७॥ अणुव्रताश्रममें स्थित सीता जिसे वार-वार मुनियोके उपदेशका स्मरण कराती रहती थी ऐसा वह पक्षी राम लक्ष्मणके मार्गमें रमण करता हुआ पृथ्वी

१. इत्युक्त्वा म० । २. इत्युक्त्वा म० । ३. वाधुनोचितं म० ।

धर्मस्य पश्यतोदार्यं यदस्मिन्नेव जन्मनि । शाकपत्रोपमो गृध्रो जातस्तामरसोपमः ॥१५६॥
 पुरा योऽनेकमांसादो दुर्गन्धोऽभूच्छुगुप्तितः । सोऽयं काञ्चनकुम्भामः सुरभिः सुन्दरोऽभवत् ॥१६०॥
 क्वचिद् बह्विशिखाकारः क्वचिद् वैहृषसन्निभः । क्वचिच्चार्याकरच्छायो हरिर्मन्गिरुचिः क्वचित् ॥१६१॥
 रामलक्ष्मणयोरथे स्थितोऽसौ बहुचाटुकः । बुभुजे साधु सम्पन्नमन्नं सीतोपसाधितम् ॥१६२॥
 चन्दनेन स द्विगङ्गाहो हेमकिङ्किण्यलङ्कृतः । विभ्राणः शकुनी रेजे रत्नान्शुजटिलं शिरः ॥१६३॥
 यस्माद्दृष्टुजटास्तस्य विरेजू रत्नहेमजाः । जटायुरिति तेनासावाहृतस्त्वैरतिप्रियः ॥१६४॥
 जितहंसगति कान्त चारुविभ्रमभूपितम् । तमन्यपचिणो दृष्ट्वा भयवन्तो विसिस्मियुः ॥१६५॥
 त्रिसन्ध्यं सीताया साकं चन्दनामकरोदसौ । भक्तिप्रह्लो जिनेन्द्राणां सिद्धानां योगिनां तथा ॥१६६॥
 तत्र प्रीतिं महाप्राप्ता जानकी करुणापरा । अप्रमत्ता सदा रचां कुर्वन्ती धर्मवत्सला ॥१६७॥

उपजातितृप्तम्

आस्वादमानो निजयेच्छयासौ फलानि शुद्धान्यमृतोपमानि ।
 जल प्रशस्त च पिबन्नरण्ये यभूव नित्यं सुत्रिधिः पतत्री ॥१६८॥
 सतालशब्द जनकात्मजाया धर्माश्रयोच्चारितगीतिकायाम् ।
 कृतानुगांत्वां पतिदेवराभ्यां ननर्त हृष्टो रविरुजटायुः ॥१६९॥

इत्यार्षे रविप्रेक्षाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते जटायुपाख्यानं नामैकचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४१॥

पर भ्रमण करता था ॥१५८॥ अहो ! धर्मका माहात्म्य देखो कि जो पक्षी इसी जन्ममें शाकपत्र के समान निष्प्रभ था वही कमलके समान सुन्दर हो गया ॥१५९॥ पहले जो अनेक प्रकारके मांसको खानेवाला, दुर्गन्धित एवं घृणाका पात्र था वही अब सुवर्णकलशमें स्थित जलके समान मनोबद्ध एवं सुन्दर हो गया ॥१६०॥ उसका आकार कहीं तो अग्निकी शिखाके समान था, कहीं नीलमणिके सदृश था, कहीं स्वर्णके समान कान्तिसे युक्त था और कहीं हरे मणिके तुल्य था ॥१६१॥ राम लक्ष्मणके आगे बैठा तथा अनेक प्रकारके मधुर शब्द कहनेवाला वह पक्षी सीताके द्वारा निर्मित उत्तम भोजन ग्रहण करता था ॥१६२॥ जिसका शरीर चन्दनसे लिप्त था, जो स्वर्ण निर्मित छोटी-छोटी घंटियोंसे अलङ्कृत था तथा जो रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त शिरको धारण कर रहा था ऐसा वह पक्षी अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१६३॥ यतश्च उसके शरीर पर रत्न तथा स्वर्णनिर्मित किरणरूपी जटाएँ सुशोभित हो रही थीं इसलिए राम आदि उसे 'जटायु' इस नामसे बुलाते थे । वह उन्हें अत्यन्त प्यारा था ॥१६४॥ जिसने हंसकी चालको जीत लिया था, जो स्वयं सुन्दर था और सुन्दर विलासोंसे जो युक्त था ऐसे उस जटायुको देखकर अन्य पक्षी भयभीत होते हुए आश्चर्यचकित रह जाते थे ॥१६५॥ वह भक्तिसे नम्रीभूत होकर तीनों संध्याओंमें सीताके साथ अरहन्त सिद्ध तथा निर्भ्रन्थ साधुओंको नमस्कार करता था ॥१६६॥ धर्मसे स्नेह करनेवाली दयालु सीता बड़ी सावधानीसे उसकी रक्षा करती हुई सदा उस पर बहुत प्रेम रखती थी ॥१६७॥ इस प्रकार वह पक्षी अपनी ईच्छानुसार शुद्ध तथा अमृतके समान स्वादिष्ट फलोंको खाता और जङ्गलमें उत्तम जलको पीता हुआ निरन्तर उत्तम आचरण करता था ॥१६८॥ जब सीता तालका शब्द देती हुई धर्ममय गीतोका उच्चारण करती थी और पति तथा देवर उसके स्वरसे स्वर मिलाकर साथ-साथ गाते थे तब सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाला वह जटायु हर्षित हो नृत्य करता था ॥१६९॥

इस प्रकार आर्षेनामसे प्रसिद्ध रविप्रेक्षाचार्य कथित पद्मचरितमें जटायुका वर्णन करनेवाला इकतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४१॥

द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व

पात्रदानप्रभावेण ससीतौ रामलक्ष्मणौ । इहैव रत्नहेमादि^१सम्पद्युक्तौ बभूवतुः ॥१॥
 ततश्चामीकरानेकभक्तिविन्याससुन्दरम् । सुस्तम्भवेदिकागर्भगृहसङ्गतमुन्नतम् ॥२॥
 स्थूलमुक्ताफलखरिभविंराजपवनानयनम् । बुद्बुदादश्लम्बूपखण्डचन्द्रादिमण्डितम् ॥३॥
 शयनासनवादित्रवस्त्रगन्धादिपूरितम् । चतुर्भिवारणैर्युक्तं विमानप्रतिमं रथम् ॥४॥
 आरूढा विचरन्त्येते प्रतिघातविवर्जिताः । जटायुसहिता रम्ये वने सख्यवतां गुणाम् ॥५॥
 क्वचिद्विनं क्वचित् पत्नं क्वचिन्मासां मनोहरे । यथेप्सितकृतकीडाः प्रदेशे तेऽजतस्थिरे ॥६॥
 निवासमत्र कुर्मोऽत्र कुर्म इत्यभिलाषिणः । महोत्तनवशस्पेच्छा विचेरुस्ते वनं सुखम् ॥७॥
 महानिर्भरगम्भीरान् काश्चिदुच्चैवचान् बहून् । उत्तुङ्गपादपान् देशान् जन्मुरुहृद्ध्य ते शनैः ॥८॥
 स्वेच्छया पर्यटन्तस्ते सिद्धा इव भयोऽभिक्ता । मध्यं दण्डककक्षस्य प्रविष्टा भीरुदुःखदम् ॥९॥
 विचित्रशिखरा यत्र हिमाद्रिगिरिसिद्धिभाः । रम्या निर्भरनद्यश्च सुकाहारापमाः स्थिताः ॥१०॥
 अश्वर्यैस्तान्तिर्ढाकाभिर्बद्रीभिर्विभोतकैः । शिरीषैः कदलैश्चैरर्चोटे^३ सरलैर्धवैः ॥११॥
 कदम्बैस्तिलकैर्लोध्रैरशोकैर्नीललोहितैः । जन्तूभिः पाटलाभिश्च चूतैरात्रातकैः शुभैः ॥१२॥
 चम्पकैः कर्णिकारैश्च सालैस्तालैः प्रियङ्गुभिः । सप्तपर्णैस्तमालैश्च नागैर्नन्दमिरजुनैः ॥१३॥
 केसरैश्चन्दनैर्नीपैर्भूर्जैर्हि गुल्फैर्बटैः । सितासितैरगुरुभिः कुन्दै रन्माभिरिन्द्रुदैः ॥१४॥
 पथकैर्मुचिलिन्दैश्च कुटिलैः पारिजातिकैः । बन्धुकैः केतकीभिश्च मधुकैः खदिरैस्तथा ॥१५॥

अथानन्तर पात्र दानके प्रभावसे सीता सहित राम लक्ष्मण इसी पर्यायमे रत्न तथा सुवर्णादि संपत्तिसे युक्त हो गये ॥१॥ तदनन्तर जो स्वर्णमयी अनेक वेल्-चूटोके विन्याससे सुन्दर था, जो उत्तमोत्तम खम्भो वेदिका तथा गर्भगृहसे सहित था, ऊँचा था, जिसके भरोखे बड़े-बड़े भौतियोंकी मालासे सुशोभित थे, जो छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फानूस, तथा खण्ड चन्द्र आदि सजावटकी सामग्रीसे अलंकृत था, शयन, आसन, वादित्र, चरत्र तथा गन्ध आदिये भरा था, जिसमें चार हाथी जुते थे और जो विमानके समान था ऐसे रथ पर सवार होकर ये सब विना किसी वाधाके जटायु पक्षीके साथ-साथ धैर्यशाली मनुष्योंके मनको हरण करनेवाले वनमें विचरण करते थे ॥२-५॥ वे उस मनोहर वनमें इच्छानुसार क्रीड़ा करते हुए कहीं एक दिन, कहीं एक पत्त और कहीं एक माह ठहरते थे ॥६॥ 'हम यहाँ निवास करेंगे' 'यहाँ ठहरेंगे' इस प्रकार कहते हुए वे किसी बड़े बूँदकी नई घास खानेकी इच्छाके समान वनमें सुख पूर्वक विचरण करते थे ॥७॥ जो बड़े-बड़े निर्भरोसे गम्भीर थे तथा जिनमें ऊँचे-ऊँचे वृक्ष लग रहे थे ऐसे कितने ही ऊँचे नीचे प्रदेशोको पार कर वे धीरे-धीरे जा रहे थे ॥८॥ सिंहोके समान निर्भय हो स्वेच्छासे घूमते हुए वे, भीरु मनुष्योंको भय देनेवाले दण्डक वनके उस मध्य भागमें प्रविष्ट हुए जहाँ हिमगिरिके समान विचित्र पर्वत थे तथा भौतियोंके हारके समान सुन्दर निर्भर और नदियों स्थित थी ॥९-१०॥ जहाँका वन, पीपल, इमली, वैरी, बहेड़े, शिरीष, केले, राल, अक्षरोट, देवदारु, धौ, कदम्ब, तिलक, लोध, अशोक, नील और लाल रङ्गको धारण करनेवाले जामुन, गुलाब, आम, अंबाडा, चम्पा, कनेर, सागीन, ताल, प्रियङ्गु, सप्तपर्ण, तमाल, नागकेशर, नन्दी, कौहा, बकौली, चन्दन, नीप, भोजपत्र, हिशुलक, वरगद, सफेद तथा काला अगुरु, कुन्द,

मदनैर्खदिरैर्निम्बैः खजूरैश्छत्रकैस्तथा । नारिकैर्मातुलिङ्गीभिर्द्राडिर्माभिस्तथासनैः ॥१६॥
 नालिकेरैः कपिरथैश्च रसैरामलकैर्वनैः । शमीहरीतकीभिश्च कोविदारैरगस्तमिः ॥१७॥
 करङ्गकुष्ठकालीयैरुक्चैरजमोदकैः । कङ्कोलखग्लवङ्गीभिर्मरिचाजातिभिस्तथा ॥१८॥
 चविनिधार्तकीभिश्च कुर्पकैरतिमुक्तकैः । पूर्वैस्ताम्बूलवल्लीभिरेलाभी रक्तचन्दनैः ॥१९॥
 वेत्रैः श्यामलताभिश्च मेघशङ्खैर्हरिद्रुभिः । पलाशैः स्पन्दनैर्विल्वैश्चिरविल्वैः समेधिकैः ॥२०॥
 चन्दनैररद्रुकैश्च शाहमलीबीजकैस्तथा । एभिरन्यैश्च भूरुद्भिस्तद्वरण्यं विराजितम् ॥२१॥
 सस्यैर्वहुप्रकारैश्च स्वयम्भूतै रसोत्तमैः । पुण्ड्रेक्षुभिश्च विस्तीर्णैः प्रदेशास्तस्य सङ्कुलाः ॥२२॥
 चित्रपादपसङ्घातैर्नानावल्लीसमाकुलैः । अशोभत वनं वाडं द्वितीयमिव नन्दनम् ॥२३॥
 मन्दमारुतनिक्षिप्तैः पल्लवैरतिकोमलैः । ननर्तेवाटवी तोपात् पद्माद्यागमजन्मनः ॥२४॥
 वायुतो ह्रियमाणेन रजसाभ्युत्थितेव च । आलिङ्ग्ये च सद्गन्धवाहिना नित्ययायिना ॥२५॥
 अगायदिव शृङ्गाणां ऋङ्गारेण मनोहरम् । जहासेव लितं रम्यं शैलनिर्गच्छरीकरैः ॥२६॥
 जीवन्जीवकभेदण्डहंससारसकोकिलाः । मयूरश्येनकुकराः शुक्रकौशिकसारिकाः ॥२७॥
 कपोतशृङ्गराजश्च भारद्वाजादयस्तथा । अरमन्त द्विजास्तस्मिन् प्रयुक्तकलनिस्त्वनाः ॥२८॥
 कोलाहलेन रम्येण तद्वनं तेन सम्भ्रमि । जगाद स्वागतमिव प्रासकतव्यदक्षिणम् ॥२९॥
 कुतः किं राजपुत्रीति कस्मिन्नागच्छ सशिविति । इतिकोमलभारत्या सज्जन्तुपुत्रिव द्विजाः ॥३०॥
 सितासितास्वाम्भोजसम्बुजैरतिनिर्मलैः । सरोभिर्वीक्षितुमिव प्रवृत्तं सुकुतूहलात् ॥३१॥
 फलभारनतैरग्रैर्नानामेव महाद्वरम् । सुमोचानन्दनिश्वासमिव सद्गन्धवायुना ॥३२॥

रम्भा, इंगुआ, पद्मक, मुचकुन्द, कुटिल, पारिजातक, दुपहरिया, केतकी, महुआ, खैर, मैना, खदिर, नीम, खजूर, छत्रक, नारंगी, बिजौरे, अनार, असन, नारियल, कैंथा, रसोद, आँवला, शमी, हरद, कचनार, करञ्ज, कुष्ठ, कालीय, उत्कच, अजमोद, कंकोल, दालचीनी, लौंग, मिरच, चमेली, चव्य, आँवला, कुर्पक, अतिमुक्तक, सुपारी, पान, इलायची, लालचन्दन, वेंत, श्यामलता, मेढासिंगी, हरिद्रु, पलाश, तेंदू, बेल, चिरोल, मेथी, चन्दन, अरद्रुक, सेम, बीजसार, इनसे तथा इनके सिवाय अन्य वृक्षोंसे सुशोभित था ॥११-२१॥ उस वनके लम्बे चौड़े प्रदेश स्वयं उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके धान्यों तथा रसीले पौडों और ईखोंसे व्याप्त थे ॥२२॥ नाना प्रकारकी लताओंसे युक्त विविध वृक्षोंके समूहसे वह वन ठीक दूसरे नन्दनवनके समान सुशोभित हो रहा था ॥२३॥ मन्द-मन्द वायुसे हिलते हुए अत्यन्त कोमल किसलयोंसे वह अटवी ऐसी जान पड़ती थी मानो राम आदिके आगमनसे उत्पन्न हर्षसे नृत्य ही कर रही हो ॥२४॥ वायुके द्वारा हरण की हुई परागसे वह अटवी ऊपर उठी हुई सी जान पड़ती थी और उत्तम गन्धको धारण करनेवाली वायु मानो उसका आलिङ्गन कर रही थी ॥२५॥ वह भ्रमरोंकी झंकारसे ऐसी जान पड़ती थी मानो मनोहर गान ही गा रही हो और पहाड़ी निर्भरोंके उड़ते हुए जलकणोंसे ऐसी विदित होती थी मानो शुक्ल एवं सुन्दर हास्य ही कर रही हो ॥२६॥ चकोर, भेरुण्ड, हंस, सारस, कोकिला, मयूर, बाज, कुरर, तोता, उलूक, मैना, कबूतर, शृङ्गराज, तथा भारद्वाज आदि पक्षी मनोहर शब्द करते हुए उस अटवीमें क्रीड़ा करते थे ॥२७-२८॥ पक्षियोंके उस मधुर कोलाहलसे वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो प्राप्त कार्यमें निपुण होनेसे संभ्रमके साथ सबका स्वागत ही कर रहा हो ॥२९॥ कलरव करते हुए पक्षी कोमलवाणीसे मानो यही कह रहे थे कि हे साध्वि ! राजपुत्रि ! तुम कहाँसे आ रही हो और कहाँ आई हो ॥३०॥ सफेद, नीले तथा लाल कमलोंसे व्याप्त अतिशय निर्मल सरोवरोंसे वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो कुतूहल चरा देखनेके लिए उद्यत ही हुआ हो ॥३१॥ फलोंके भार से झुके हुए अग्र भागोंसे वह वन ऐसा

ततः सौमनसाकारं वनं तद्वीक्ष्य राघवः । जगाद् विक्रामभोजलोचनां जनकारमजाम् ॥३३॥
वह्नीभिर्गुल्मकैः स्तम्भैः समासन्नैरमी नगाः । सकुटुम्बा इवामान्ति प्रिये यच्छून्न लोचने ॥३४॥
प्रियङ्गुलटिकां पश्य सङ्गतां वकुलोरसि । कान्तस्येव वरारोहा शंके निर्भरसौहृदम् ॥३५॥
चलता पल्लवनेयं सम्प्रत्यग्नेण माघवी । परामृशति सौहार्दादिव चूतमनुचरात् ॥३६॥

छन्दः (?)

अयं मदालसे क्षणं करी करेणुचोदितः । मधुकरविघटितदलनिचयः प्रविशति सीते कमलवनम् ॥३७॥

उपजातिः

वह्नसौ दुर्पसुदारसुचैर्वल्मीकशृङ्गं गवलीसुनीलः ।
लीलान्वितो वज्रसमेन धीरं भिन्ते विपाणेन लसत्सुराग्रः ॥३८॥

आर्याच्छन्दः

अमुमिन्द्रनीलवर्णं विवरान्जिर्यातदूरतनुभागम् ।
पश्य मयूरं दृष्ट्वा प्रविशन्तमहिं भयाकुलितम् ॥३९॥

शार्दूलविक्रीडितम्

पश्यामुष्य महानुभावचरितं सिंहस्य सिंहक्षणे
रम्येऽस्मिन्नचले गुह्यामुखगतस्थाराद्रिकासिधुते ।
यः श्रुत्वा रथनादमुन्नतमना निद्रां विहाय क्षणं
वीक्ष्यापाङ्गदृशा विजम्भ्य शनकैर्भूयस्तथैव स्थितः ॥४०॥

जान पड़ता था मानो बड़े आदरसे राम आदिको नमस्कार ही कर रहा हो और सुगन्धि वायुसे ऐसा सुशोभित होता था मानो आनन्दके रवासोच्छ्वास ही छोड़ रहा हो ॥३२॥

तदनन्तर सौमनस वनके समान सुन्दर वनको देख देखकर रामने विकसित कमलके समान खिले हुए नेत्रोंको धारण करनेवाली सीतासे कहा कि हे प्रिये ! इधर देखो, ये वृक्ष लताओ तथा निकटवर्ती गुल्मो और झाड़ियोंसे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कुटुम्ब सहित ही हो ॥३३-३४॥ वकुल वृक्षके वक्षस्थलसे लिपटी हुई इस प्रियङ्गु लताको देखो । यह ऐसी जान पड़ती है मानो पतिके वक्षस्थलसे लिपटी प्रेम भरी सुन्दरी ही हो ॥३५॥ यह माघवीलता हिलते हुए पल्लवसे मानो सौहार्दके कारण ही आमका स्पर्श कर रही है ॥३६॥ हे सीते ! जिसके नेत्र मद्दसे आलस हैं, हस्तिनी जिसे प्रेरणा दे रही है और जिसने कलिकाओंके समूहको भ्रमरोसे रहित कर दिया है ऐसा यह हाथी कमल वनमें प्रवेश कर रहा है ॥३७॥ जो अत्यधिक गर्वको धारण कर रहा है, जो लीलासे सहित है, तथा जिसके खुरोंके अग्रभाग सुशोभित हैं ऐसा यह अत्यन्त नील भँसा वज्रके समान सींगके द्वारा वामीके उब शिखरको भेद रहा है ॥३८॥ इधर देखो, इस साँपके शरीरका बहुत कुछ भाग विलसे बाहर निकल आया था फिर भी यह सामने इन्द्रनील मणिके समान नीलवर्णवाले मयूरको देखकर भयभीत हो फिरसे उसी विलमें प्रवेश कर रहा है ॥३९॥ हे सिंहके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली तथा फैलती हुई कान्तिसे युक्त प्रिये ! इस मनोहर पर्वतपर गुहाके अग्रभागमें स्थित सिंहकी उदात्त चेष्टाको देखो जो इतना दृढ चित्त है कि रथका शब्द सुनकर क्षण भरके लिए निद्रा छोड़ता है और कटाक्षसे उसकी ओर देखकर

वसन्ततिलकावृत्तम्

नानामृगक्षतजपानसुरक्तवक्त्रो दर्पोद्भुरः कपिलनेत्रमरीचिवक्त्रः ।
मूर्धोपनीतलसदुःखलवालपुच्छो व्याघ्रो नखैः खनति पापदमेप मूले ॥११॥

मन्दाक्रान्ता

अन्तः कृत्वा शिशुगणमिमे कामिनीभिः समेतं
दूरन्यस्तप्रचलनयना भूरिशः सावधानाः ।
किञ्चिद्दूर्वाग्रहगचतुराः प्रान्तयाताः कुरङ्गाः
परयन्ति त्वां विपुलनयनालग्निबनः कौतुकेन ॥१२॥

आर्यावृत्तम्

सुन्दरि परय वराहं दंष्ट्रान्तरलग्नसुस्तमुन्नतसत्त्वम् ।
अभिनवगृहीतपङ्कं गच्छन्तं मन्थरं सघोणम् ॥१३॥

वंशस्थवृत्तम्

अयं प्रयत्नादिव चित्रितांगको विनातिवर्णैर्बहुभिः सुलोचने ।
भजत्यतिक्रीडनमर्मकैः समं वनैकदेशे वृगभाजि चित्रकः ॥१४॥

दोधकवृत्तम्

श्येनयुवैप लघुभ्रमपचो दूरत एव निरूप्य समन्तात् ।
स्वापमितस्य पर शरभस्य स्तेनयति द्रुतमामिपमास्यात् ॥१५॥

द्रुतचिलम्बितवृत्तम्

कमलजालकराजितमस्तकः ककुदसुन्नतमाचलितं बहन् ।
अयमुदात्तरवोऽत्र विराजते १सुरभिपुत्रपतिर्वरविभ्रमः ॥१६॥

तथा धीरेसे जमुहाई लेकर फिर भी उसी तरह निर्भय चौंटा है ॥१०॥ इधर नाना मृगोका रुधिर पान करनेसे जिसका मुख अत्यन्त लाल हो रहा है, जो अहंकारसे फूल रहा है, जिसका मुख नेत्रोंकी पीली-पीली कान्तिसे युक्त है, तथा चमकीले बालोंसे युक्त जिसकी पूँछ पीछेसे घूमकर मस्तकके समीप आ पहुँची है ऐसा यह व्याघ्र नाखूनोंके द्वारा घृत्तके मूलभागको नाखूनोंसे खोद रहा है ॥११॥ जिन्होंने स्त्रियोंके साथ-साथ अपने वक्त्रोंके समूहको बीचमें कर रक्खा है, जिनके चञ्चल नेत्र बहुत दूर तक पड़ रहे हैं, जो अत्यधिक सावधान है, जो कुछ-कुछ दूर्वाके ग्रहण करनेमें चतुर हैं और कौतुक वंश जिनके नेत्र अत्यन्त विशाल हो गये हैं ऐसे ये हरिण समीपमें आकर तुम्हें देख रहे हैं ॥१२॥ हे सुन्दरि ! धीरे-धीरे जाते हुए उस वराह को देखो, जिसकी दाँटोंमें मोथा लगा रहा है, जिसका बल अत्यन्त उन्नत है, जिसने अभी हाल नहीं कीचड़ अपने शरीरमें लगा रक्खी है, तथा जिसकी नाक बहुत लम्बी है ॥१३॥ हे सुलोचने ! प्रयत्नके विना ही जिसका शरीर नाना प्रकारके वर्णोंसे चित्रित हो रहा है ऐसा यह चीता इस वृणवहुल वनके एक देशमें अपने बच्चाके साथ अत्यधिक क्रीड़ा कर रहा है ॥१४॥ इधर जिसके पङ्क जल्दी जल्दी घूम रहे हैं ऐसा यह तरुण बाज पत्नी दूरसे ही सब ओर देखकर सोते हुए शरभके मुखसे बड़ी शीघ्रताके साथ मांसको छीन रहा है ॥१५॥ इधर जिसका मस्तक कमल जैसी आकृतिसे सुशोभित है; जो कुछ-कुछ हिलती हुई ऊँची कौंदौरको घारण कर रहा है, जो विशाल शब्द कर रहा है तथा जो उत्तम विभ्रमसे सहित है

स्रक्च्छन्दः

कचिदिदमतिघनवरनगकलितं कचिद्दण्डबहुविधचणुपरिनिवृत्तम् ।
कचिदपगतभयमृगपुरुषपटलं कचिदतिभययुतरुहितगहनम् ॥४७॥

चण्डीच्छन्दः

कचिदुरुमदगजपातितवृत्तं कचिद्भिनवतरुजालकयुक्तम् ।
कचिदलिङ्गलकलभङ्गतरुस्यं कचिदतिखररवसम्भृतकचम् ॥४८॥

प्रमाणिकावृत्तम्

कचिद्विभ्रान्तसत्त्वकं कचिद्विश्रुतसत्त्वकम् । कचिन्निरनुगह्वरं कचिद्विस्तगह्वरम् ॥४९॥

तोटकच्छन्दः

अरुणं धवल कपिलं हरितं बलितं निशुतं सरवं विरवम् ।
विरलं गहनं सुभग विरलं, तरुणं पृथुकं विषमं सुसमम् ॥५०॥
इदं तदण्डकारण्यं प्रसिद्धं दयिते वनम् । पश्यानेकविधं कर्मप्रपञ्चमिव जानकि ॥५१॥
'नगोऽयं दण्डको नाम शृङ्गालीढाम्बराङ्गणः । सुवक्त्रे यस्य नामनेदं दण्डकारण्यमुच्यते ॥५२॥
तुङ्गया शिखरेष्वस्य प्रभया चानुजन्मना । रक्तया पुष्पपद्मेव प्रावृत्तं भाति पुष्करम् ॥५३॥
अस्य गह्वरदेशेषु परश्रीपधिमहाशिखा । निर्वातस्थप्रदीपाभा दूरन्ध्वस्ततमश्चयाः ॥५४॥

शालिनीच्छन्दः

अस्मिन्सुचैर्निजराः सम्पतन्तस्तारावा प्रावसह्यतसक्ताः ।
सुक्ताकारान् सीकरानुत्सृजन्तो राजन्त्येते स्पष्टमासाजुकाराः ॥५५॥

ऐसा यह वैल सुशोभित हो रहा है ॥४६॥ कहीं तो यह वन उत्तमोत्तम सघन वृक्षोंसे युक्त है, कहीं छोटे-छोटे अनेक प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त है, कहीं निर्भय मृगोंके वड़े-बड़े झुण्डोंसे सहित है, कहीं अत्यन्त भयभीत कृष्णमृगोंके लिए सघन झाड़ियोंसे युक्त है ॥४७॥ कहीं अतिशयमदोन्मत्त हाथियोंके द्वारा गिराये हुए वृक्षोंसे सहित है, कहीं नवीन वृक्षोंके समूहसे युक्त है, कहीं भ्रमर-समूहकी मनोहारी भंकारसे सुन्दर है, कहीं अत्यन्त तीक्ष्ण शब्दोंसे भरा हुआ है ॥४८॥ कहीं प्राणी भयसे इधर-उधर घूम रहे हैं, कहीं निश्चिन्त बैठे हैं, कहीं गुफाएँ जलसे रहित हैं, कहीं गुफाओंसे जल बह रहा है ॥४९॥ कहीं यह वन लाल है, कहीं सफेद है, कहीं पीला है, कहीं हरा है, कहीं मोड़ लिये हुए है, कहीं निश्चल है, कहीं शब्दसहित है, कहीं शब्दरहित है, कहीं विरल है, कहीं सघन है, कहीं सुन्दर है, कहीं नीरस—शुष्क है, कहीं तरुण—हराभरा है, कहीं विशाल है, कहीं विषम है, और कहीं अत्यन्त सम है ॥५०॥ हे प्रिये जानकि ! देखो यह प्रसिद्ध दण्डकवन कर्मोंके प्रपञ्चके समान अनेक प्रकारका हो रहा है ॥५१॥ हे सुमुखि ! शिखरोंके समूहसे आकाशरूपी आँगनको व्याप्त करनेवाला यह दण्डक नाभका पर्वत है जिसके नामसे ही यह वन दण्डक वन कहलाता है ॥५२॥ इस पर्वतके शिखर पर गेरू आदि धातुओंसे उत्पन्न हो ऊँची उठनेवाली लाल-लाल कान्तिसे आच्छादित हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता है मानो लाल फूलोंके समूहसे ही व्याप्त हो रहा हो ॥५३॥ इधर इस पर्वतकी गुफाओंमें दूरसे ही अन्धकारके समूहको नष्ट करनेवाली देवीप्यमान औपधियोंकी बड़ी-बड़ी शिखाएँ वायुरहित स्थानमें स्थित दीपकोंके समान जान पड़ती हैं ॥५४॥ इधर पापाण-खण्डोंके बीच अत्यधिक शब्दके साथ बहुत ऊँचसे पड़नेवाले ये भरने मोतियोंके समान जलकणोंको छोड़ते हुए सूर्यकी किरणोंके

विद्युन्मालावृत्तम्

अस्योद्देशाः शुभ्राः केचित् केचिन्नीला रक्ताः केचित् ।
दृश्यन्तेऽमी वृक्षैर्व्यासा प्रान्ते कान्तेऽत्यन्तं कान्ताः ॥५६॥

प्रमाणिकाञ्छन्दः

अमी समीरणेरिते वरोष्ठि वृक्षमस्तके । विभान्ति गह्वरे लवा रवेः कराः क्वचित् क्वचित् ॥५७॥

रुचिरावृत्तम्

अयं क्वचित् फलभरनम्रपादपः क्वचित् स्थितैः कुसुमपटैरलंकृतः ।
क्वचित् खगैः कलरवकारिभिश्चितो विभात्यलं वरमुखि दण्डको गिरिः ॥५८॥

क्रौञ्चकञ्छन्दः

इह चमरीगणोऽयमतिदुष्टदृष्टगोपगतः प्रियतरवालिधिः प्रियतमैरनुयातपथः ।
अनतिविस्मयमन्दगतिरिन्दुरुचिः पुरुष प्रविशति गह्वरं न पृथुकाहितचञ्चलदृक् ॥५९॥

स्नग्धरावृत्तम्

एषा नीला शिला स्यात्तिमिरमुपचित कन्दराणां मुखेषु
स्यादेतत् किं विहायःस्फटिकमणिशिला किन्तु वृक्षान्तरस्था ।
एष स्याद् गण्डशैलः किमुत गजपतिः सेवते गाढनिद्रां
कान्ते जोगीधरेऽस्मिन्नतिसदृशतया दुर्गमा भूविभागाः ॥६०॥

एषा क्रौञ्चरवा नाम नदी जगति विश्रुता । जलं यस्याः प्रिये वीर्यं त्वदीयमिव चेदितम् ॥६१॥

अश्वललितञ्छन्दः

सदुमरुद्रीरथद्वुरमलं तटस्थतरपुष्पसंहितधरम् । भवशयनीयरूपसुभगं सुकेशि जलमन्न राजतितराम् ॥६२॥

साथ मिलकर सुशोभित हो रहे है ॥५५॥ हे कान्ते ! इस पर्वतके कितने ही प्रदेश सफेद है, कितने ही नील हैं, कितने ही लाल हैं, और कितने ही वृक्षावलीसे व्याप्त हो कर अत्यन्त सुन्दर दिखाई देते है ॥५६॥ हे वरोष्ठि ! सघनवनमें वायुसे हिलते हुए वृक्षोंके अग्रभाग पर कहीं-कहीं सूर्यकी किरणें ऐसी सुशोभित होती हैं मानो उसके खण्ड ही हो ॥५७॥ हे सुमुखि ! जो कहीं तो फलोंके भारसे झुके हुए वृक्षोंके समूहसे युक्त है; कहीं पड़े हुए पुष्प रूपी वस्त्रोंसे सुशोभित है, और कहीं कलरव करनेवाले पक्षियोंसे व्याप्त है ऐसा यह दण्डक वन अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥५८॥ इधर, जिसे अपनी पूँछ अधिक प्यारी है, जिसके वल्लभ पीछे-पीछे दौड़े चले आ रहे हैं, जो चन्द्रमाके समान सफेद कान्तिका धारक है, और जो अपने बर्षों पर चञ्चल दृष्टि डाल रहा है ऐसा यह चमरीमृगोंका समूह दुष्ट जीवोंके द्वारा उपद्रुत होने पर भी अपनी मन्दगतिको नहीं छोड़ रहा है तथा बाल दूट जानेके भयसे कठोर एवं सघन झाड़ीमें प्रवेश नहीं कर रहा है ॥५९॥ हे कान्ते ! इधर इस पर्वतकी गुफाओंके आगे यह क्या नील शिला रखी है ? अथवा अन्धकारका समूह व्याप्त है ? इधर यह वृक्षोंके मध्यमे आकाश स्थित है अथवा स्फटिक मणिकी शिला विद्यमान है ? और इधर यह काली चट्टान है या कोई बड़ा हाथी गाढ़ निद्राका सेवन कर रहा है इस तरह अत्यन्त सादृश्यके कारण इस पर्वतके भूभागों पर चलना कठिन जान पड़ता है ॥६०॥ हे प्रिये । यह वह क्रौञ्चरवा नामकी जगत्-प्रसिद्ध नदी है कि जिसका जल तुम्हारी चेष्टाके समान अत्यन्त उज्ज्वल है ॥६१॥ हे सुकेशि ! जो मन्द-मन्द वायुसे प्रेरित होकर

भद्रकच्छन्दः

सकुलामफेनपटलप्रभिनवदुपुष्पपुञ्जकलितम् । शृङ्गनिनादपुरितवना क्वचिद् विकटसङ्कोटोपलचयैः ॥६३॥

(?) छन्दः

श्राहसहस्रचारविषमा क्वचिच्च पुरुवेदसङ्गतजला ।

धोरतपस्विचेष्टिसमा क्वचिच्च वहति प्रशान्तगुरियम् ॥६४॥

पुष्पिताग्रावृत्तम्

परमशितिशिलौघरश्मिभिन्नं क्वचिदनुलग्नसितोपलांशुयुक्तम् ।

जलमिह सितदन्ति भाति वाढं हरिहरयोरिव सङ्गतं शरीरम् ॥६५॥

वंशपत्रपतितम्

रक्तशिलौघरश्मिनिचिता क्वचिदियममला भाति समुद्यदकंसमये दिगिव सुरपतेः ।

भिन्नजला क्वचिच्च हृग्तिरुपलकरचयैः शैवलशङ्कयागमकृतो विरसयति खगान् ॥६६॥

हरिणीवृत्तम्

कमलनिकरेपत्र स्वच्छं कृतातिकलस्वन निश्रुतपवनासङ्गात् कम्पेत्वंभीष्णकृतभ्रमम् ।

परमसुरमेगन्धाद् वक्त्रात्तवेव समुद्रतान् मधुकपटलं कान्ते चीवं विभाति रजोरुग्णम् ॥६७॥

शिखरिणीच्छन्दः

विपिक पाताले ववचिदिह जलं मुकवहनं परं गम्भीरत्वं वहति दयिते ते मन इव ।

क्वचिन्नीलाम्बोजैरनतिचलितैः पद्पद्चितैर्विभर्त्यात्तिच्छायां प्रवरवनितालोकनभवाम् ॥६८॥

लहरा रहा है, जो तटपर स्थित वृक्षाके पुष्प-समूहको धारण कर रहा है और जो कैलासके समान शुक्लरूपसे सुन्दर है ऐसा इस नदीका जल अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६२॥ यह जल कहीं तो हंस समूहके समान उज्वल फेन समूहसे युक्त है, कहीं दूट-दूटकर गिरे हुए फूलोंके समूहसे सहित है, कहीं भ्रमरोंके समूहसे इसका कमल वन पूरित है और कहीं यह बड़े-बड़े सघन पापाणोंके समूहसे उपलक्षित है ॥६३॥ यह नदी कहीं तो हजारां भ्रमरमच्छोंके संचारसे विषम है, कहीं इसका जल अत्यन्त वेगसे सहित है और कहीं यह धोर तपस्वी-साधुओंकी चेष्टाके समान अत्यन्त प्रशान्त भावसे वहती है ॥६४॥ हे शुक्ल दोंतोंको धारण करनेवाली सीते ! इस नदीका जल एक ओर तो अत्यन्त नील शिला समूहकी किरणोंसे मिश्रित होकर नीला हो रहा है तो दूसरी ओर समीपमे स्थित सफेद पाषाणखण्डोंकी किरणोंसे मिलकर सफेद हो रहा है इस तरह यह परस्पर मिले हुए हरिहर-नारायण और महादेवके शरीरके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६५॥ लाल-लाल शिलाखण्डोंकी किरणोंसे व्याप्त यह निर्मल नदी, कहीं तो सूर्योदयकालीन पूर्व दिशाके समान सुशोभित हो रही है और कहीं हरे रंगके पाषाण-खण्डकी किरणोंके समूहसे जलके मिश्रित होनेसे शैवालकी शङ्कासे आनेवाले पक्षियोंको विरस कर रही है ॥६६॥ हे कान्ते ! इधर निरन्तर चलनेवाली वायुके सङ्गसे हिलते हुए कमल-समूह पर जो इच्छानुसार अत्यन्त मधुर शब्द कर रहा है, निरन्तर भ्रमण कर रहा है और उसकी परागसे जो लाल वर्ण हो रहा है ऐसा भ्रमरोंका समूह तुम्हारे मुखसे निकली सुगन्धिके समान उत्कृष्ट सुगन्धिसे रम्यत हुआ अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥६७॥ हे दयिते ! जो अतिशय स्वच्छ

१ ६२ तमे श्लोक अश्वललितच्छन्दसः पाठद्वयम् । ६३ तमे च श्लोके भद्रकच्छन्दसः पाठद्वयम् । उभयत्रार्धार्ध एव श्लोको विद्यते । अथवा उभयोर्मेलने उपजातिच्छन्दो भवति । किन्तु विभिन्नजातिपूषजाति-वृत्तप्रायो न दृश्यते । २. लोचनसुवम् म० ।

चतुष्पदिकावृत्तम्

अत्र विभाति व्योमगवृन्दं बहुविधजलभववनकृतचरणम् ।
 प्रेमनिबद्धं तारविरावं क्वचिदतिमद्वशपरिचितकलहम् ॥६६॥
 सैकतमस्या राजति चेदं सवनितखगकुलकृतपदपट्टवि ।
 त्वज्जघनस्य प्राप्तसुसमत्वं गतघनसुरपथशशधरवदने ॥७०॥

मत्तमयूरच्छन्दः

एषा यातानेकविलासाकुलिताम्बुरतोयाधीशं वीचिवरभ्रूरतिकान्ता ।
 तद्वच्चारुफोतगुणौघ शुभचेष्टं विष्टपसुन्दरमुत्तमशीला भरतेशम् ॥७१॥

रुचिरावृत्तम्

इमे प्रिये फलकुसुमैरलङ्कृतास्तटीरुहो विविधविहङ्गसङ्कुलाः ।
 निरन्तगः सजलघनीघसन्निभाः इमामिता रतिमिव कर्तुर्भावयोः ॥७२॥

अपरवक्त्रच्छन्दः

इति निगदति राघवोत्तमे परमविचित्रपदार्थसङ्गतम् ।
 प्रमदभरवशंगता सर्ता जनकसुता निजगाद् सादरम् ॥७३॥

प्रहर्षिणीवृत्तम्

नद्येषा विमलजला तरङ्गरम्या हसाद्यैः खगनिवहैः कृताभिलापाः ।
 एतस्यां प्रियतम ते मनोगतं चेतोयेऽस्याः किमिति रतिचर्णं न कुर्मः ॥७४॥

हे तथा वहाव छोटकर पाताल तक भरा है ऐसा इस नदीका जल कहीं तो तुम्हारे मनके समान परम गान्भीर्यको धारण कर रहा है और कहीं भ्रमरोसे व्याप्त तथा कुछ-कुछ हिलते हुए नील कमलोसे उत्तम स्त्रीके देखनेसे समुत्पन्न नेत्रोंकी शोभा धारण कर रहा है ॥६६॥ इधर कहीं जो नाना प्रकारके कमलवनोंमें विचरण कर रहा है, प्रेमसे युक्त है, उच्च शब्द कर रहा है और तीव्र मदसे विचश हो जो परस्पर कलह कर रहा है ऐसा पक्षियोंका समूह सुशीमित हो रहा है ॥६६॥ मेघरहित आकाशमें विद्यमान चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखको धारण करनेवाली हे प्रिये ! इधर जिस पर स्त्रियों सहित क्रीड़ा करनेवाले पक्षियोंके समूहने अपने चरण-चिह्न बना रखे हैं ऐसा इस नदीका यह घालुमय तट तुम्हारे नितम्बस्थलकी सदृशता धारण कर रहा है ॥७०॥ जिस प्रकार अनेक उत्तम विलासों—दावभाव रूप चेष्टाओंसे सहित तरङ्गके समान उत्तम मौहोसे युक्त एवं उत्तम शीलको धारण करनेवाली सुभद्रा सुन्दर एवं विस्तृत गुणसमूहसे युक्त, शुभ चेष्टाओंके धारक तथा संसारमें सर्वसुन्दर भरत चक्रवर्तीको प्राप्त हुई थी उसी प्रकार अनेक विलासों—पक्षियोंके संचारसे युक्त जलको धारण करनेवाली, भौहोंके समान उत्तम तरङ्गोंसे युक्त, अतिशय मनोहर यह नदी, अत्यन्त सुन्दर तथा विस्तृत गुण समूहसे सहित शुभ चेष्टासे युक्त एवं जगत्सुन्दर लवणसमुद्रको प्राप्त हुई है ॥७१॥ हे प्रिये ! जो फल और फूलोंसे अलङ्कृत हैं, नाना प्रकारके पक्षियोंसे व्याप्त हैं, निरन्तर है तथा जलसे भरे मेघ-समूहके समान जान पड़ते हैं ऐसे ये किनारेके वृक्ष हम दोनोंको प्रीति उत्पन्न करनेके लिए ही मानो इस नदी कूलमें प्राप्त हुए हैं ॥७२॥ इस प्रकार जब रामने अत्यन्त विचित्र शब्द तथा अर्थसे सहित वचन कहे तब हर्षित होती हुई सीताने आदरपूर्वक कहा ॥७३॥ कि हे प्रियतम ! यह नदी विमल जलसे भरी है, लहरोंसे रमणीय है, हंसादि पक्षियोंके समूह इसमें इच्छानुसार क्रीड़ा

१. अत्र चतुर्थचरणे छन्दोभङ्गः, पाठस्तूपलब्धपुस्तकेऽत्रेव विध एव ।

वियोगिनीच्छन्दः

अथ राजसुतासमीरितं तद्वाक्यं राघवगोत्रचन्द्रमात् ।
 अनुजानुगतोऽभिनन्दनात् भेजे रम्यमुव रथालयात् ॥७५॥
 पूर्वं चक्रे लक्ष्मणाथः स्नपनमभिनवदृत्तगजपतिवनपथपरिचितभ्रमप्रतिनोदनम् ।
 तस्माद्पूर्वं नानास्वादप्रवरकिसलयकुसुमसमुच्चयमुचितां च परिक्रियाम् ॥७६॥

(?)

पश्चात् श्लोतः संसक्ताग्रदृमनिवहपरिचलनकरणवरसहितमतुलं विचेष्टितमीप्सितम् ।
 रामेणामा स्नातुं सक्तो विविधजलविहृतिविषयपरमविधिसमुपचितं गुणाकरमानसः ॥७७॥

पृथ्वीवृत्तम्

सफेनवलयो लसत्प्रकटवीचिमालाकुला विमर्दितसितासितारुणपयोजपत्राचिता ।
 समुद्रगतकल्लवनातिरहसद्गमासेविता समं रघुकुलेन्दुना रतिनिवाकरोदापगा ॥७८॥

वियोगिनीवृत्तम्

विनिमज्ज्य सुदूरयायिना विस्निनाखण्डतिरोहितारमना ।
 पुनराश्रुसमागमाश्रिता रघुपुत्रेण रता नृपालमजा ॥७९॥
 मुक्त्वा नानाकृत्यासद्ग कुसुमवनचरणजरजोविराजिगरुद्वृतम् ।
 गात्वा क्षिप्रं तीरोद्वेशं त्वरितकृतविधिधरसिताः पुरोगतयोपितः ॥८०॥
 तेषां द्रष्टुं सक्ताः श्रेष्ठामपरविषयगमनरहितं विधाय मनो मृशम् ।
 तिर्यञ्चोऽपि ह्येते रम्यं परुषकृतिरहितमनसां विदन्ति समीहितम् ॥८१॥

कर रहे हैं और आपका मन भी इसमें लग रहा है तो इसके जलमें हम लोग भी क्यों नहीं
 क्षणभर क्रीड़ा करें ॥७४॥

तदनन्तर छोटे भाई लक्ष्मणके साथ-साथ रामने सीताके वचनोंका समर्थन किया और
 सब रथरूपी घरसे उतर कर मनोहर भूमि पर आये ॥७५॥ सर्वप्रथम लक्ष्मणने नवीन पकड़े हुए
 हाथीको जङ्गली मार्गोंके बीच चलनेसे उत्पन्न हुई थकावटको दूर करनेवाला स्नान कराया । उसके
 बाद उसे नाना प्रकारके स्वादिष्ट उत्तमोत्तम कोमल पत्तों और फूलोंका समूह इकट्ठा किया तथा
 उसको शोभ्य परिचर्यों को ॥७६॥ तदनन्तर जिनका मन नाना प्रकारके गुणोंकी खान था ऐसे
 लक्ष्मणने रामके साथ-साथ नदीमें स्नान करना प्रारम्भ किया । वे कभी जलके प्रवाहमें आगे
 बढ़े हुए वृत्तोंके समूह पर चढ़कर जलमें कूदते थे, कभी अनुपम चेष्टाएँ करते थे और कभी नाना
 प्रकारकी जलक्रीड़ा सम्बन्धी उत्तमोत्तम विधियोंका प्रयोग करते थे ॥७७॥ जो फेनके बल्य
 अर्थात् समूह अथवा फेनरूपी चूड़ियोंसे सहित थी, जो प्रकट उठती हुई तरङ्गरूपी मालाओंसे
 युक्त थी, जो मसले हुए सफेद नीले और लाल कमलपत्रोंसे व्याप्त थी, जिसमें मधुर शब्द उत्पन्न
 हो रहा था और जो एकान्त समागमसे सेवित थी ऐसी वह नदीरूपी स्त्री ऐसी जान पड़ती थी
 मानो रघुकुलके चन्द्र—रामचन्द्रके साथ उपभोग ही कर रही हो ॥७८॥ रामचन्द्रजी पानीमें गोता-
 मार बहुत दूर लम्बे जाकर कमल वनमें छिप गये तदनन्तर पता चलने पर शीघ्र ही सीता उनके
 पास जाकर क्रीड़ा करने लगी ॥७९॥ पहले जो हंसादि पक्षी अपनी स्त्रियोंके साथ जलमें क्रीड़ा
 कर रहे थे और कमलोंके वनमें विचरण करनेसे उत्पन्न परागसे जिनके पङ्क सुरोभित हो रहे
 थे वे अब शीघ्र ही किनारों पर आकर नाना प्रकारके मधुर शब्द करने लगे तथा नाना कार्यों
 को आसक्ति छोड़कर तथा मनको विषयान्तरसे रहित कर राम-लक्ष्मण-सीताकी श्रेष्ठ जलक्रीड़ा
 देखने लगे, सो ठीक ही है क्योंकि ये तिर्यञ्च भी कोमल चित्तके धारक मनुष्योंकी मनोहर चेष्टाको

पुष्पिताम्रावृत्तम्

अतिमथुररवं करामिघ्रातैर्मंजरवादिपि सुन्दरं विचित्रम् ।

अनुगतदयितो रघुप्रधानः सलिलमबाढयदन्वितं सुगांथा ॥८२॥

परितोऽकरोद्भ्रम्रमगमस्य जलरमगसकचेतसोदाचतुरकरणेऽनुगतक्रियस्य ^१हलहेतैर्लक्ष्मणः ।

अतिवेगवान् पुनरपेतजवनिपुणचारतत्परो आरुगुणनिरतधीः परमं समुद्रवचापलक्षितः ॥८३॥

मालिनीवृत्तम्

इति सुविमललीलः स्नेच्छ्यामभोविहारं प्रमदसुपनयन्तं तीरभाजां मृगाणाम् ।

रघुपतिरनुभूय आहृद्वाराजुयातो गजपतिरिव तीरं सेवितुं सम्प्रवृत्तः ॥८४॥

वंशस्थवृत्तम्

शरोरयात्तं च विधाय वर्तनं महाप्रशस्तेर्वनजन्मवस्तुभिः ।

स्थिता लतामण्डपरुद्धभास्करे सुरा इवामो कृतचित्रसङ्ख्यायाः ॥८५॥

सांतापतिस्ततोऽञ्चोचदिति विश्रब्धमानसः । जटायुर्पूर्धकरया सीतयाऽलङ्कृतान्तिकः ॥८६॥

सन्यस्मिन् विविधा आतद्गुमाः स्वाटुफलान्विताः । सरितः स्वच्छतोयाश्च मण्डपाश्च लतात्मकाः ॥८७॥

अनेकरत्नसम्पूर्णां दण्डकोऽयं महागिरिः । प्रदेशैर्विविधैर्युक्तः परकीडनकोचितैः ॥८८॥

वपकण्ठेऽस्य नगरं विदध्मः सुमनोहरम् । वैजिकीर्वनसम्भूता गृह्णामो सहिपीस्तथा ॥८९॥

अस्मिन्नगोचरेऽन्येषामरण्येऽन्यन्तसुन्दरे । विषयावासनं कुर्मः परमा धृतिरत्र मे ॥९०॥

^२स्वस्मिन्निहितचेतस्के नूनं शोकवशोऽकृते । ^३स्वहितैः स्वजनैः सर्वैः परिवर्गसमन्वितैः ॥९१॥

समभूते हैं—जानते हैं ॥८०-८१॥ तदनन्तर रामने सीताके साथ-साथ उत्तम गीत गाते हुए हथेलियोंके आघातसे जलका वाजा बजाया । उस जलवाद्यका शब्द मृदङ्गके शब्दसे भी अधिक मधुर सुन्दर और विचित्र था ॥८२॥ उस समय रामका चित्त जलक्रीडामें आसक्त था तथा वे स्वयं नाना प्रकारकी उत्तम चतुर चैष्टाओंके करनेमें तत्पर थे । भाईके स्नेहसे भरे एवं समुद्रघोष धनुषसे सहित लक्ष्मण उनके चारों ओर चक्कर लगा रहे थे । यद्यपि लक्ष्मण अत्यन्त वेगसे युक्त थे तो भी उस समय वेगको दूरकर सुन्दर चालके चलनेमें तत्पर थे ॥८३॥ इस प्रकार उज्वल लीलाको धारण करनेवाले राम भाई और स्त्रीके साथ, तटपर स्थित मृगांको हर्ष उपजानेवाली जलक्रीड़ा इच्छानुसार कर गजराजके समान किनारे पर आनेके लिए उद्यत हुए ॥८४॥ स्नानके बाद वनमें उत्पन्न हुई अतिशय श्रेष्ठ वस्तुओंके द्वारा शरीरशुद्धि अर्थात् भोजन कर वे अनेक प्रकारकी कथाएँ करते हुए जहाँ लताओंके मण्डपसे सूर्यका संचार रुक गया था ऐसे दण्डक वनमें देवोंके समान आनन्दसे बैठ गये ॥८५॥ तदनन्तर जटायुके मस्तक पर हाथ रखे हुई सीता जिनके पास बंठी थी ऐसे राम निश्चिन्त चित्त हो इस प्रकार बोले ॥८६॥ कि हे भाई ! यहाँ स्वादिष्ट फलोंसे युक्त नाना प्रकारके वृक्ष हैं, स्वच्छ जलसे भरी नदियाँ हैं और लताओंसे निर्मित नाना मण्डप हैं ॥८७॥ यह दण्डक नामका महापर्वत अनेक रत्नोंसे परिपूर्ण तथा उत्तम क्रीड़ाके योग्य नाना प्रदेशोंसे युक्त है ॥८८॥ हम लोग इस पर्वतके समीप अत्यन्त मनोहर नगर बनाये और वनमें उत्पन्न हुई पोषण करनेवाली अनेक भैंसे रख लें ॥८९॥ जहाँ दूसरोका आना कठिन है ऐसे इस अत्यन्त सुन्दर वनमें हम लोग देश वसायें क्योंकि यहाँ मुझे बड़ा संतोष हो रहा है ॥९०॥ जिनका चित्त हम लोगोंमें लग रहा है और जो चिरन्तर शोकके वशीभूत रहती हैं ऐसी अपनी माताओंको, अपना हित करनेवाले समस्त परिकर एवं परिवारके

प्रजानय जनन्यौ नौ त्वरितं न न नाथवा । तिष्ठ सुन्दर नैवं मे मानसं शुद्धिमश्नुते ॥६२॥
स्वयमेव गमिष्यामि शरत्समयसङ्गमे । प्रतिजाग्रद्भवान् सीतामिह स्थान्यति यत्नवान् ॥६३॥
ततो लक्ष्मीधरे नम्रे प्रस्थितेऽत्रस्थिते तथा । प्रेमाद्दीकृतचेतस्कः पुनः पद्मो जगाविति ॥६४॥
समयेऽस्मिन्नतिक्रान्ते दीप्तभास्करदारुणे । प्राप्तोऽत्यन्तमयं भीमः कालः सम्प्रति जालदः ॥६५॥
शुद्धाङ्गुपारनिर्घोषाश्रुलाङ्गननगोपमाः । दिशोऽन्धकारयन्त्येते विद्युद्गन्तो बलाहकाः ॥६६॥
निरन्तरं तिरोधाय गरानं घनविग्रहाः । मुञ्चन्ति कं यथा देवा रत्नराशिं जिनोद्भवे ॥६७॥

उपजातिवृत्तम्

विधाय तुङ्गानचलान् महान्तो धाराभिरुद्धैर्ध्वनयः पयोदाः ।
नभोङ्गणेऽमी निश्चृतं चरन्तः ऋणप्रभासङ्गमिनो विभान्ति ॥६८॥

वंशस्थवृत्ताम्

पयोमुचः केचिदमी विपाण्डुराः समीरिता वेगवता नभस्वतां ।
अमन्ति निष्पातमसंयतात्मनां मनोविशेषा इव यौवनश्रिताः ॥६९॥
अयं सस्यमुवं मुक्त्वा मेघो भूयति वर्षति । अनिश्चितविशेषः सन् कुपात्रे द्रविणो यथा ॥१००॥

मालिनीवृत्तम्

अतिजवमिह काले सिन्धवः सम्प्रवृत्ता विपमतमविहारोदारपट्वा धरित्री ।
जलपरिमलशोतो वाति चण्डश्च वायुर्न तव गमनयुक्तं तेन मन्ये सुभाव ॥१०१॥

साथ, जाओ शीघ्र ही ले आओ अथवा नहीं-नहीं ठहरो, यह ठीक नहीं है इसमे मेरा मन
शुद्धताको प्राप्त नहीं हो रहा है ॥६१-६२॥ शरद् ऋतु आने पर मैं स्वयं जाऊंगा, तुम सीताके
प्रति सावधान रहकर यत्न सहित यहीं ठहरना ॥६३॥ तदनन्तर रामकी पहली बात सुनकर
लक्ष्मण बड़ी नम्रतासे जाने लगे थे पर दूसरी बात सुनकर रुक गये । उसी समय जिनका चित्त
प्रेमसे आर्द्र हो रहा था ऐसे रामने पुनः कहा कि देदीप्यमान सूर्यसे दारुण यह ग्रीष्म काल तो
व्यतीत हुआ अब यह अत्यन्त भयंकर वर्षा काल उपस्थित हुआ है ॥६४-६५॥ जो भीमको
प्राप्त हुए समुद्रके समान गर्जना कर रहे है तथा जो चलते-फिरते अङ्गनगिरिके समान जान
पड़ते हैं ऐसे विजलीसे युक्त ये मेघ दिशाओंको अन्धकारसे युक्त कर रहे है ॥६६॥ जिस प्रकार
जिनेन्द्र भगवानके जन्मके समय देव रत्नराशिकी वर्षा करते है उसी प्रकार मेघोका शरीर धारण
करनेवाले देव निरन्तर रूपसे आकाशको आच्छादित कर जल छोड रहे हैं—पानी बरसा रहे
हैं ॥६७॥ जो स्वयं महान् हैं, अत्यधिक गर्जना करनेवाले है, जो अपनी मोटी धाराओंसे पर्वतोंको
और भी अधिक उन्नत कर रहे हैं, जो आकाशाङ्गणमे निरन्तर विचरण कर रहे है तथा जिनमें
विजली चमक रही है ऐसे ये मेघ अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं ॥६८॥ बेंगशाली वायुके द्वारा
प्रेरित ये कितने ही सफेद मेघ असंयमी मनुष्योंके तरुण हृदयोंके समान इधर-उधर घूम रहे है
॥६९॥ जिस प्रकार विशेषताका निश्चय नहीं करनेवाला धनाढ्य मनुष्य कुपात्रके लिए धन देता
है उसी प्रकार यह मेघ धान्यकी भूमि छोड़कर पर्वत पर पानी बरसा रहा है ॥१००॥ इस
समय बड़े वेगसे नदियाँ बहने लगी हैं, अत्यधिक कीचड़से युक्त हो जानेके कारण पृथिवी पर
विहार करना दुर्भर हो गया है और जलके सम्बन्धसे शीतल तीक्ष्ण वायु चलने लगी है इसलिये

इति निगदति पद्मे केकयीस्तुररुचे
 प्रवदसि यदर्थाशस्त्वं तथाहं करोमि ।
 विविधरसकथाभिः सुन्दरे स्वाश्रये ते
 रविपरिचयमुक्तं कालमस्थुः सुखेन ॥१०२॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दण्डकारण्यनिवासामिधानं
 नाम द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४२॥



हे भद्र ! तुम्हारा जाना ठीक नहीं है ॥१०१॥ इस प्रकार रामके कहने पर लक्ष्मण बोले कि आप स्वामी हो जैसा कहते हो वैसा ही मैं करता हूँ । इस तरह अपने सुन्दर निवास स्थलमें वे नाना प्रकारकी स्नेहपूर्ण कथाएँ करते हुए सूर्यके परिचयसे रहित वर्षा काल तक सुखसे रहे ॥१०२॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित, पद्मचरितमें दण्डक वनमें निवासका वर्णन करनेवाला बयालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशत्तमं पत्र

ततः शरद्गुर्विवा शशाङ्करपत्रिभिः । धनौघं विशदृश्रके^१ राज्यमाक्रान्तविष्टपः ॥१॥
 विकसत्युपसङ्घातान् पादपान् स्निग्धचेतसः । अलङ्कारोत्तमांस्तस्य जगृहुः ककुब्जनाः ॥२॥
 जाम्बतमलनिर्मुक्तं भिन्नान्जनसमद्युति । अम्बुनेव चिरं धौतं रराज गगनाङ्गणम् ॥३॥
 प्राष्ट्रकालगजो मेघकलशैर्धरिणांभ्रियम् । अभिपिच्य गतः कापि विद्युत्कणविराजितः ॥४॥
 चिरात् कमलिनीगेहं प्राप्य^२ पञ्चभृतां गणा । उद्भूतमधुरालापाः कामप्यापुः सुखासिकाम् ॥५॥
 सिन्धवः स्वच्छकौलाला^३ उन्मज्जत्युलिनाः पराम् । कान्तिमीयुः समासाद्य शरत्समयकामुकम् ॥६॥
 वर्षवातविमुक्तानि चिरात्प्राप्य सुखासिकाम् । कान्तानि ध्यराजन्त सङ्गतानीव निद्रया ॥७॥
 सरांसि पङ्कजाङ्गानि समं^४ रोधस्समुत्थितैः । पादपैः पञ्चिनादेन समालापमिवाभजन् ॥८॥
 नानापुष्पकृतामोदा रजनीविमलाम्बरा । मृगाङ्कतिलकं भेजे सुकालेशमित्रीपती ॥९॥
 वेतकीसुतिरजसा पाण्डुरीकृतविग्रहः । वनौ समीरणो मन्दं भदयन् कामिनीजनम् ॥१०॥
 इति प्रसन्नतां प्राप्ते काले सोत्साहविष्टपे । मृगेन्द्रगतिराश्लिष्टविक्रमैकमहारसः ॥११॥
^५ लब्धानुगमनं ज्येष्ठादाशानिहितवीक्षणः । कदाचिन्नमणो आग्र्यन्नेकस्तद्वनान्तिकम् ॥१२॥
 अत्रिन्द्रदामरं गन्धं विनीतपवनाद्गतम् । अचिन्तयन्न कस्यैष भवेद्गन्धो मनोहरः ॥१३॥

अथानन्तर उज्ज्वल शरद् ऋतु, चन्द्रमाकी किरण रूपी वाणोके द्वारा मेघसमूहको जीत कर समस्त विश्वमे व्याप्त होती हुई राज्य करने लगी ॥१॥ जिनका चित्त स्नेहसे भर रहा था ऐसी दिशा रूपी स्त्रियोने उस शरद् ऋतुके स्वागतके लिए ही मानो खिले हुए पुष्पसमूहसे सुशोभित वृक्ष रूपी उत्तमोत्तम अलंकार धारण किये थे ॥२॥ मेघरूपी मलसे रहित आकाश रूपी आंगन, मर्दित अज्जनके समान श्यामवर्ण हो ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बहुत देर तक पानीसे धुल जानेके कारण ही स्वच्छ हो गया है ॥३॥ वर्षा काल रूपी हाथी, मेघरूपी कलशोके द्वारा पृथिवी रूपी लक्ष्मीका अभिषेक कर विजली रूपी कक्षाओमे सुशोभित होता हुआ जान पड़ता है कहीं चला गया था ॥४॥ भ्रमरोके समूह बहुत समय बाद कमलिनीके घर जा कर मधुरालाप करते हुए सुखसे बैठे थे ॥५॥ जिनके पुलिन धीरे-धीरे उन्मन हो रहे हैं ऐसी स्वच्छजलसे भरी नदियों शरत्कालरूपी वल्लभको पा कर परम कान्तिको प्राप्त हो रहीं थीं ॥६॥ वर्षा कालकी तीक्ष्ण वायुसे रहित वन चिरकाल बाद सुखसे बैठकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो निद्रासे संगत ही थे—नींद ही ले रहे थे ॥७॥ कमलोसे युक्त सरोवर तटों पर उत्पन्न हुए वृक्षोंके साथ पक्षियोंके शब्दके वहाने मानो वार्तालाप ही कर रहे थे ॥८॥ जिसने नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्धि धारण की थी तथा जो आकाश रूपी स्वच्छ वस्त्रसे सुशोभित थी ऐसी रात्रि रूपी स्त्री उत्तमकाल रूपी पतिको पाकर मानो चन्द्रमा रूपी तिलकको धारण कर रही थी ॥९॥ केतकीके फूलोंसे उत्पन्न परागके द्वारा जिसका शरीर शुक्लवर्ण हो रहा था ऐसी वामु कामिनीजनोको उन्मत्त करती हुई धीरे-धीरे चढ़ रही थी ॥१०॥ इस प्रकार जिसमे समस्त संसार उत्साहसे युक्त था ऐसे उस शरत्कालके प्रसन्नताको प्राप्त होने पर सिंहेके समान निर्भय विचरने वाले महापराक्रमी लक्ष्मण बड़े भाई रामसे आज्ञा प्राप्त कर दिशाओंकी ओर दृष्टि डालते हुए किसी समय अकेले ही उस दण्डक वनके समीप घूम रहे थे ॥११-१२॥ उसी समय उन्होंने विनयी पवनके द्वारा लाई हुई दिव्य सुगन्धि सूँधी । उसे सूँघते ही वे विचार करने लगे

१ विशदं चक्रे म० । २. अमरप्याम् । ३. निर्मलजलयुक्तः । ४. रोधसमुत्थितैः । ५. लब्धानुगमनं म० ।

पादपानां किमेतेषां स्फुटकुसुमधारिणाम् । आहोस्विन्मम देहस्य कुसुमोल्करशायिनः ॥११॥
 वैदेह्या सङ्गतो रामः किमुतोपरि तिष्ठति । किंवा कश्चिस्समायातो भवेदत्र त्रिविधर्षी ॥१२॥
 ततो मगधराजेंद्रः पप्रच्छ श्रमणोत्तमम् । भगवन् कस्य गन्धोऽसौ चक्रे विस्मयनं हरेः ॥१३॥
 ततो गणधरोऽत्रोचञ्ज्ञातलोकविचेष्टितः । सन्देहतिमिरादित्यः पापधूलिसमीरणः ॥१७॥
 द्वितीयस्य जिनेन्द्रस्य धुनिवाससमागमे । विद्याधराय विज्ञाय याताय शरणं विभुम् ॥१८॥
 राक्षसानामभीशेन महाभीमेन धीमता । अम्भोदवाहनायासीत्कृपयैत्युदितो वरः ॥१९॥
 विपुले राक्षसद्वीपे त्रिकूटं नाम पर्वतम् । मेघवाहनविश्रब्धो गच्छ दक्षिणसागरे ॥२०॥
 जम्बूद्वीपस्य जगतीमिमामाश्रित्य दक्षिणम् । लङ्कितं नगरी तत्र रक्षोभिर्विनिवेशिता ॥२१॥
 रहस्यभिदमेकं च विद्याधर परं शृणु । जम्बूभरतवर्षस्य दक्षिणाशां समाश्रयत् ॥२२॥
 आश्रयित्वोत्तरं तीरं लवणस्य महोदधेः । वसुन्धरोदरस्थानस्वभावापितमायतम् ॥२३॥
 योजनस्याष्टम भागं दण्डकाद्री गुहाश्रयम् । अधोगत्वा महाद्वारं प्रविश्य मणितोरणम् ॥२४॥
 अलङ्कारोदयं नाम स्थितं पुरमनुचमम् । स्थानीयशतधर्मस्थं दिव्यदेशं निरीक्ष्यते ॥२५॥
 नानाप्रकाररत्नांशुस्सन्तानपरिराजितम् । विस्मयोत्पादने शक्तमपि त्रिदिवसग्रामम् ॥२६॥
 अप्रतयर्थं गगनगैर्दुर्गं विद्याविर्जितैः । सर्वकामगुणोपेतं त्रिचिन्नालयसङ्कुलम् ॥२७॥
 परचक्रसमाक्रान्तो यद्यापस्वु कदाचन । भवेद्दुर्गं समासृत्य तिष्ठेत्सं निर्भयस्ततः ॥२८॥
 इत्युक्त्स्तेन यातोऽसौ यो विद्याधरबालकः । लङ्कापुरीमभूत्समात् सन्तानोऽनेकपुङ्गवः ॥२९॥

कि यह मनोहर गन्ध किसकी होनी चाहिए ? ॥१३॥ क्या यह गन्ध विकसित फूलोंको धारण करने वाले इन वृक्षों को है अथवा पुष्पसमूह पर शयन करने वाले मेरे शरीर की है ? ॥१४॥ अथवा ऊपर सीताके साथ श्रीराम विराजमान हैं ? या कोई देव यहाँ आया है ? ॥१५॥

तदनन्तर मगधदेशके सम्राट् राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछ कि हे भगवन् ! वह किसकी गन्ध थी जिसने लक्ष्मणको आश्चर्य उत्पन्न किया था ॥१६॥ तदनन्तर लोगोंकी चेष्टाओं को जानने वाले, संदेह रूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्य एवं पाप रूपी धूलिको उड़ानेके लिए वायु स्वरूप गणधर भगवान् बोले ॥१७॥ कि द्वितीय जिनेन्द्र श्री अजितनाथके समवसरण मे मेघवाहन नामका विद्याधर भयभीत हो कर प्रभुकी शरणमे आया था । उस समय राक्षसोंके अधिपति बुद्धिमान् महाभीमने करुणा वश मेघवाहनके लिए इस प्रकार वर दिया था ॥१८-१९॥ कि हे मेघवाहन ! दक्षिण समुद्रमे एक विशाल राक्षस द्वीप है उसी द्वीपमे त्रिकूट नामका पर्वत है सो तू निश्चिन्त हो कर उसी त्रिकूट पर्वत पर चला जा । वहाँ जम्बूद्वीपकी जगती (वैदिका) का आश्रय कर दक्षिण दिशामें राक्षसोने एक लङ्का नामकी नगरी बसाई है । वहाँ ही तू निवास कर । हे विद्याधर ! इसके साथ ही एक रहस्य-गुप्त वाती और सुन । जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रकी दक्षिण दिशामे लवण समुद्रके उत्तर तटका आश्रय कर पृथिवीके भीतर एक लम्बा चौड़ा स्वाभाविक स्थान है जो योजनके आठवें भाग विस्तृत है । दण्डक पर्वतके गुफाद्वारसे नीचे जाने पर मणिमय तोरणोंसे देदीप्मान एक महाद्वार मिलता है उसमें प्रवेश करने पर अलंकारोदय नामका एक उत्कृष्ट सुन्दर नगर दिखाई देता है ॥२०-२२॥ वह नगर नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंके समूहसे सुशोभित है तथा देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करनेमे समर्थ है । आकाशमें गमन करने वाले विद्याधर उसका विचार ही नहीं कर सकते तथा विद्यासे रहित मनुष्योंके लिए वह अत्यन्त दुर्गम है । वह सय प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणोंसे सहित है तथा विविध प्रकारके भवनोंसे व्याप्त है ॥२६-२७॥ यदि कदाचित् तू आपत्तिके समय परचक्रके द्वारा आक्रान्त हो तो उस दुर्गका आश्रय कर निर्भय निवास करना ॥२८॥ इस प्रकार

यथावस्थितभावानां श्रद्धान परमं सुखम् । मिथ्याविकल्पितार्थानां ग्रहणं दुःखमुत्तमम् ॥३०॥
 विद्याभृतां सुराणां च ज्ञेयो भेदो विचक्षणैः । तिलपर्वतयोस्तुल्यः शक्तिकान्त्यादिभिर्गुणैः ॥३१॥
 पञ्चद्वन्द्वनयोर्यद्द्वयवोपलरत्नयोः । तद्वत् खेचरलोकस्य देवलोकस्य चान्तरम् ॥३२॥
 गर्भवासपरिव्लेशमनुभूय विधेर्वशात् । ततः समुपजायन्ते विद्यामात्रोपजाविनाः ॥३३॥
 क्षेत्रवशसमुद्भूताः खे चरन्तीति खेचराः । अमराणां स्वभावस्तु मनोज्ञोऽयं विद्वध्यताम् ॥३४॥
 सुरूपशुचिस्वर्वाङ्गा गर्भवासविवर्जिता । मांसास्थिवलेद्वरहिता देवा अनिमिषेक्षणाः ॥३५॥
 जरारोगविहीनाश्च सतत यौवनान्विताः । उदारतेजसा युक्ताः सुखसौभाग्यसागराः ॥३६॥
 स्वभावविद्यासम्पन्ना अवधिज्ञानलोचनाः । कामरूपधरा धीराः स्वच्छन्दगतिधारिणः ॥३७॥
 अमी लङ्काश्रिता राजन् न देवा न च राक्षसाः । रक्षन्ति रक्षसां क्षेत्रमाहूतास्तेन राक्षसाः ॥३८॥
 तद्गंशानुक्रमो ज्ञेयो युगानामन्तरैः सह । पारम्पर्याद् व्यतिक्रान्तः कालो नैकगर्णवोपमः ॥३९॥
 रच'प्रभृतिपु श्लाघ्येष्वतीतेषु बहून्पि । खण्डत्रयाधिपस्तस्य रावणोऽभवद्वन्द्वये ॥४०॥
 भगिनी दुर्नखा तस्य रूपेणाप्रतिमा भुवि । प्रासस्तया महावीर्यो रमणः खरदूषणः ॥४१॥
 चतुर्दशहस्ताणि नृणां तस्य महात्मनाम् । प्रतीतो दूषणाख्यश्च सेनाधिपतिरुज्जितः ॥४२॥
 दिक्कुमार इवोदारे धरणीजडरे स्थितम् । अलङ्कारपुर तस्य स्थानमासीन्महौजसः ॥४३॥
 शम्भूको नाम सुन्दश्च सुतो तस्य भव्बनुः । बन्धुतश्च दशग्रीवाद् भुवि गौरवमाप सः ॥४४॥

महाभीम राक्षसेन्द्रके कहने पर जो विद्याधर वालक, लंकापुरी गया था उसीसे अनेक उत्तमोत्तम सन्तति उत्पन्न हुई ॥२६॥ जो पदार्थ जिस प्रकार अवस्थित है उनका उसी प्रकार श्रद्धान करना सो परम सुख है और मिथ्याकल्पित पदार्थोंका ग्रहण करना सो अत्यधिक दुःख है ॥३०॥ विद्याधरो और देवोंके बीच बुद्धिमान् मनुष्योंको शक्ति, कान्ति आदि गुणोंके कारण तिल तथा पर्वतके समान भारी भेद समझना चाहिए ॥३१॥ जिस प्रकार कीचड़ और चन्दन तथा पाषाण और रत्नमें भेद है उसी प्रकार विद्याधर और देवोंमें भेद है ॥३२॥ विद्याधर तो गर्भवासका दुःख भोगकर बादमें कर्मोदयकी अनुकूलतासे विद्यामात्रके धारक होते है । ये विद्याधरोंके क्षेत्र-विजयार्थ पर्वत पर तथा उनके योग्य कुलोमें उत्पन्न होते हैं तथा आकाशमें चलते हैं इसलिए खेचर कहलाते हैं । परन्तु देवोंका स्वभाव ही मनोहर है ॥३३-३४॥ देव, सुन्दर रूप तथा पवित्र शरीरके धारक है, गर्भवाससे रहित है, मांस हड्डी तथा स्वेद आदिसे दूर हैं और टिमकार रहित नेत्रोंके धारक है ॥३५॥ वे वृद्धावस्था तथा रोगोंसे रहित है, सदा यौवनसे सहित रहते हैं, उत्कृष्ट तेजसे युक्त, सुख और सौभाग्यके सागर, स्वाभाविक विद्याओंसे सम्पन्न, अवधिज्ञानरूपी नेत्रोंके धारक, इच्छानुसार रूप रखनेवाले, धीर, वीर और स्वच्छन्द गतिसे विचरण करनेवाले हैं ॥३६-३७॥ हे राजन् ! लंकामें रहनेवाले विद्याधर न देव हैं और न राक्षस हैं किन्तु राक्षस द्वीपकी रक्षा करते हैं इसलिए राक्षस कहलाते हैं ॥३८॥ अनेक युगान्तरोंके साथ उनके वंशका अनुक्रम चला आता है और उसी अनुक्रम-परम्पराके अनुसार अनेक सागर प्रमाण काल व्यतीत हो चुका है ॥३९॥ राक्षस आदि बहुतसे प्रशंसनीय उत्तमोत्तम विद्याधर राजाओंके व्यतीत हो चुकने पर उसी वंशमें तीन खण्डका स्वामी रावण उत्पन्न हुआ है ॥४०॥ उसकी एक दुर्नखा नामकी वहिन है जो पृथ्वी पर अपने सौन्दर्यकी उपमा नहीं रखती । उसने महाशक्तिशाली खरदूषण नामक पति प्राप्त किया है ॥४१॥ अतिशय बलवान् खरदूषण चौदह हजार प्रमाण मनुष्योंका विश्वासप्राप्त सेनापति है ॥४२॥ वह दिक्कुमार-भवनवासी देवके समान उदार है । पृथ्वीके मध्यमें स्थित अलंकारपुर नामका नगर उस महाप्रतापीका निवास स्थान है ॥४३॥ उसके शम्भूक और सुन्द नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । साथ ही वह अपने सम्बन्धी रावणसे भी

१. रूपेण प्रतिमा म० ।

२६-२

गुरुभिवार्यमाणोऽपि मृत्युपाशावलोकितः । शम्बूकः सूर्यहासार्थं प्राविशद्भीषणं वनम् ॥४५॥
 यथोक्तमाचरन् राजन्नाराधयितुमुद्यतः । एकाग्रभुग्विशुद्धात्मा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥४६॥
 असमाप्तोपयोगस्य यो मे दृष्टिपथे स्थितः । बन्धोऽसाविति भाषित्वा वंशस्थलमुपाविशत् ॥४७॥
 दण्डकारण्यभ्रामान्तं तां च क्रौंचरवा नदीम् । सागरस्योत्तरं तीरं संस्रव्यासाववस्थितः ॥४८॥
 नीत्वा द्वादशवर्षाणि ततोऽसावसिरुद्गतः । ग्राह्यः ससद्दिनं स्थित्वा हन्यात्साधकमन्यथा ॥४९॥
 कैकसेर्यां सुतस्नेहाद्दृष्टुमागात् कृणे कृणे । अपश्यच्चामिसुद्भूतं काले देवैरधिष्ठितम् ॥५०॥
 प्रसन्नवदना मर्तुर्निजगाढ यथाविधि । शम्बूकस्य महाराज सिद्धं तद्योगकारणम् ॥५१॥
 आगमिष्यति मे पुत्रो मेरुं कृत्वा प्रदक्षिणम् । अहोभिस्त्रिभिरद्यापि नियमो न समाप्यते ॥५२॥
 एव मनोरथ सिद्ध दध्यौ चन्द्रनखा सदा । लक्ष्मणश्च तमुद्देशं सम्प्राप्तः पर्यटन् वने ॥५३॥
 सहस्राभारपुत्रस्य सद्गन्धस्य स्वभावतः । अनन्तस्थादिहीनस्य खड्गारणस्य तस्य सः ॥५४॥
 दिव्यगन्धानुलिप्तस्य दिव्यस्त्रग्भूपितस्य च । गन्धो भास्करहासस्य लक्ष्मीधरमुपेयिवान् ॥५५॥
 लक्ष्मणो विस्मयं प्राप्तः परिश्रव्य क्रियान्तरम् । अघासीद् गन्धमार्गणं केलरीव भयोत्कितम् ॥५६॥
 अपश्यच्च तरुच्छ्रृंगं प्रदेशमविदुर्गमम् । लताजालावलीरुद्धं तुङ्गपापाणवेष्टितम् ॥५७॥
 मध्ये च गहनस्यास्य सुसमं धरणीतलम् । विचित्ररत्ननिर्माणमर्चितं कनकाम्बुजैः ॥५८॥
 मध्ये तस्यापि विपुल वंशस्तम्बं समुत्थितम् । सौधर्ममिव संद्रष्टुमविज्ञातकुतूहलम् ॥५९॥

पृथ्वी पर गौरवको प्राप्त हुआ था ॥४४॥ जिसे मृत्युका फन्दा देख रहा था ऐसे शम्बूकने गुरु-
 जनोके द्वारा रोके जाने पर भी सूर्यहास नामा खड्ग प्राप्त करनेके लिए भयङ्कर वनमें प्रवेश किया
 ॥४५॥ हे राजन् ! वह यथोक्त आचरण करता हुआ सूर्यहास खड्गको प्राप्त करनेके लिए उद्यत
 हुआ । वह एक अन्न खाता है, निर्मल आत्माका धारक है, ब्रह्मचारी है और इन्द्रियोको जीतने
 वाला है, ॥४६॥ 'उपयोग' पूर्ण हुए बिना जो मेरी दृष्टिके सामने आवेगा वह मेरे द्वारा वध
 होगा' इस प्रकार कहकर वह वंशस्थल पर्वत पर वंशकी एक झाड़ीमें जा बैठा ॥४७॥ वह दण्ड
 वनके अन्तमें क्रौञ्चरवा नदी और समुद्रके उत्तर तटके बीच जो स्थान है वहाँ अवस्थित है
 ॥४८॥ तदनन्तर बारह वर्ष व्यतीत होने पर वह सूर्यहास नामा खड्ग प्रकट हुआ जो सात दिन
 ठहर कर ग्रहण करने योग्य होता है अन्यथा सिद्ध करनेवालेको ही मार डालता है ॥४९॥
 दुर्नखा (चन्द्रनखा) पुत्रके स्नेहसे उसे बार-बार देखनेके लिए उस स्थान पर आती रहती थी
 सो उसने उसी क्षण उत्पन्न हुए उस देवाधिष्ठित सूर्यहास खड्गको देखा ॥५०॥ जिसका मुख
 प्रसन्नतासे भर रहा था ऐसी दुर्नखाने अपने पति खरदूषणमे कहा कि हे महाराज ! मेरा पुत्र
 मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा देकर तीन दिनमे आ जावेगा क्योंकि उसका नियम आज भी समाप्त नहीं
 हुआ है ॥५१-५२॥ इस प्रकार इधर शम्बूककी माता चन्द्रनखा, सिद्ध हुए मनोरथका सदा ध्यान
 कर रही थी उधर लक्ष्मण वनमें घूमते हुए उस स्थान पर जा पहुँचे ॥५३॥ एक हजार देव जिसकी
 पूजा करते थे, जिसकी स्वाभाविक उत्तम गन्ध थी, जिसका न आदि था न अन्त था, जो दिव्य-
 गन्धसे लिप्त था और दिव्यमालाओंसे जो अलंकृत था ऐसे उस सूर्यहास नामक खड्गरत्नकी
 गन्ध लक्ष्मण तक पहुँची ॥५४-५५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए लक्ष्मण अन्य कार्य छोड़कर जिस मार्गसे
 गन्ध आ रही थी उसी मार्गसे सिंहके समान निर्भय हो चल पड़े ॥५६॥ वहाँ जाकर उन्होंने
 वृद्धोंसे आच्छादित, लताओंके समूहसे घिरा तथा ऊँचे-ऊँचे पापाणोंसे वेष्टित एक अत्यन्त
 दुर्गम स्थान देखा ॥५७॥ इसी वनके बीचमें एक समान पृथ्वीतल था जो चित्र-विचित्र रत्नोंसे
 बना था तथा सुवर्णमय कमलोंसे अर्चित था ॥५८॥ उसी समान धरातलके मध्यमें एक बोंसोंका

अयान्ते तस्य निखंशं विस्फुरत्करमण्डलम् । सर्काचकवनं येन प्रदीप्तमिव लक्ष्यते ॥६०॥
 नद्यशङ्कस्तमादाय लक्ष्मीमाञ्जातविस्मयः । जिज्ञासंस्तीक्ष्णतामस्य तं वेणुस्तम्बमच्छिन्नत् ॥६१॥
 शूहोतसायकं दृष्ट्वा तं सर्वास्तत्र देवताः । अस्माकं स्वाम्यसीत्युक्त्वा सनमस्यमपूजयन् ॥६२॥
 अयावोचत सीतेशः किञ्चिदन्नाकुलेक्षणं । सौमित्रिश्चिरयत्यद्य क नु यातो भविष्यति ॥६३॥
 भद्रोच्छिष्ट जटायुः खं दूरमत्पत्य सदुत्तम् । लक्ष्मीघरकुमारस्य निपुणान्वेषणं कुरु ॥६४॥
 इत्युक्तः करुणं यावत् करोत्युत्पतितुं खगः । अङ्गुली तावदायस्य जनकस्याङ्गजावद्वत् ॥६५॥
 अयं कुङ्कुमपङ्केन लिप्ताङ्गो नाथ लक्ष्मणः । चित्रमाह्वयाम्बरधरः समायाति स्वलङ्कृतः ॥६६॥
 शूर्हातश्रायमेतेन मण्डलाग्रो महाप्रभः । राजतेज्यन्तमेतेन शैलः केशरिणा यथा ॥६७॥
 दृष्ट्वा तर्मादृशं रामो विस्मयभ्यासमानसः । असहः प्रमदं रोदुषुमुस्थाय परिपम्बजे ॥६८॥
 पृथश्च लक्ष्मणः कृत्स्नं स्ववृत्तान्तमवेदयत् । स्थिताश्च ते विचित्राभिः सङ्ख्याभिर्यथासुखम् ॥६९॥
 दृष्ट्वा प्रतिदिनं खड्गं सुतं च नियमस्थितम् । यायासीत् सा दिने तस्मिन् कैकसेव्यागतैकका ॥७०॥
 अपरयच्च विसाराणा वनं कृत्तमशेषतः । अचिन्तयच्च यातः क पुत्रः स्थिन्वाटवीमिमाम् ॥७१॥
 स्थितश्च यत्र संसिद्धमसिरत्नमिदं वनम् । द्विन्दानेन परीक्षार्थं न युक्तं सुतुना कृतम् ॥७२॥
 तावच्चास्तस्थितादित्यमण्डलप्रतिमं शिरः । सत्कण्ठल कत्रन्धं च ददृशं स्थाणुमध्यगम् ॥७३॥

विस्तृत स्तम्भ (भिड़ा) था जो किसी अज्ञात कुतूहलके कारण सौधर्मस्वर्गको देखनेके लिए ही मानो ऊँचा उठा हुआ था ॥५६॥

अथानन्तर उस बौंसोके स्तम्भमे देदीप्यमान किरणोके समूहसे सुशोभित एक खड्ग दिखलाई दिया जिससे बौंसोके साथ-साथ समस्त वन प्रज्वलित-सा जान पड़ता था ॥६०॥ आश्चर्यचकित लक्ष्मणने निःशङ्क हो वह खड्ग ले लिया और उसकी तीक्ष्णताकी परख करनेके लिए उसी वंश-स्तम्भको उन्होंने काट डाला ॥६१॥ खड्गधारी लक्ष्मणको देखकर वहाँ सब देवताओने 'आप हमारे स्वामी हो' यह कहकर नमस्कारके साथ-साथ उनको पूजा की ॥६२॥

अथानन्तर जिनके नेत्र कुङ्कुम-ऑसुओसे भर रहे थे ऐसे रामने यह कहा कि आज लक्ष्मण वड़ी देर कर रहा है कहीं गया होगा ? ॥६३॥ हे भद्र जटायु ! उठो और शीघ्र ही आकाशमे दूर तक उड़कर लक्ष्मणकुमारकी अच्छी तरह खोज करो ॥६४॥ इस प्रकार रामके करुणापूर्वक कहने पर जटायु उड़नेकी तैयारी करता है कि ईतनेमें सीता अङ्गुली ऊपर उठाकर कहती है ॥६५॥ कि जिनका शरीर केशरकी पङ्कसे लिप है, जो नाना प्रकारकी मालाओं और वस्त्रोंको धारण कर रहे हैं तथा जो अलंकारोंसे अलङ्कृत हैं ऐसे लक्ष्मण यह आ रहे हैं ॥६६॥ इन्होंने यह महादेदीप्यमान खड्ग ले रक्खा है और इससे ये सिंहसे पर्वतके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं ॥६७॥ लक्ष्मणको वैसा देख रामका मन आश्चर्यसे व्याप्त हो गया तथा वे हर्षको रोकनेके लिए असमर्थ हो गये जिससे उन्होंने उठकर उनका आलिङ्गन किया ॥६८॥ पूछने पर लक्ष्मणने अपना सब वृत्तान्त वतलाया ! इस तरह राम लक्ष्मण और सीता—तीनों प्राणी नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए सुखसे वहाँ ठहरे ॥६९॥

अथानन्तर जो चन्द्रनक्शा प्रति दिन खड्गको तथा नियममे स्थित पुत्रको देख जाती थी उस दिन वह अकेली ही वहाँ आई ॥७०॥ आते ही उसने बौंसोके उस समस्त वनको सब ओरसे कटा देखा । वह विचार करने लगी कि पुत्र इस अटवीमें रहकर अब कहीं चला गया ? ॥७१॥ जिस वनमें यह रहा तथा जहाँ यह खड्ग रत्न सिद्ध हुआ परीक्षाके लिए उसी वनको काटते हुए पुत्रने अच्छा नहीं किया ॥७२॥ इतनेमे ही उसने अस्ताचल पर स्थित सूर्यमण्डलके समान

१. करणं म० । २. तावत् अङ्गुली आयस्य उत्थानसेवेन युक्तं कृत्वा । ३. वशानाम् । ४. लिप्तम् ।

उपकारः कृतस्तस्याः परमो मूर्च्छया चणम् । पुत्रमृत्युसमुत्थेन यन्न दुःखेन पीडिता^१ ॥७३॥
 ततः संज्ञां समासाद्य हाकारमुखरं मुखम् । उल्लिख्य कृच्छ्रतो दृष्टिं तत्र मूर्धन्यपातयत् ॥७४॥
 विलाप च शोकार्तां गलदन्नाकुलेक्षणा । कुरीवैकिकारभ्ये हृदयाघातकारिणी ॥७५॥
 स्थितो द्वादशवर्षाणि दिनानां च चतुष्टयम् । पुत्रो मे हा पर चान्त न विधे दिवसत्रयम् ॥७७॥
 कृतान्तापकृत किं ते मया परमनिष्ठुर । येन दृष्टनिधिः पुत्रः सहसा विनिपातितः ॥७८॥
 अपुण्यया मया नूनमन्यजन्मनि बालकः । कस्या अपहृतो मृत्युं तत्प्रत्यागतमद्य ते ॥७९॥
 मयापि पुत्र जातोऽसि कथमेतां स्थितिं गतः । ईदृशोऽपि प्रयच्छैकां वचमार्तिं विनाशिनीम् ॥८०॥
 एहि वत्स निजं रूपं प्रतिपद्य मनोहरम् । अमङ्गलमिदं मायाक्रीडनं न विराजते ॥८१॥
 स्फुट यातोऽसि हा वत्स परलोक विधेर्वशात् । अन्यथा चिन्तितं कार्यमिदमुद्भूतमन्यथा ॥८२॥
 अनुष्ठितं त्वया मातुः प्रतिकूलं न जातुचित् । अधुना कारणोन्मुक्तं किमिदं विनयोक्तिवत्^२ ॥८३॥
 संसिद्धसूर्यहासरचेदजीविष्यस्त्वमत्र ते । अस्थास्वत् कः पुरो लोके चन्द्रहासवृतो यथा ॥८४॥
 भजता चन्द्रहासेन पद मम सहोदरे । सूर्यहासस्य न चान्त नूनमात्मविरोधिणः ॥८५॥
 एककं भीषणेऽरण्ये निर्दोष नियमस्थितम् । कुशत्रोः क्रय्य हन्तु त्वां मृत्युव प्रसूतः करः ॥८६॥
 अदीर्घोपेक्षिता तेन भवन्तं निघ्नतोदिता । क्व गमिष्यति पापीऽस्ती साम्प्रतं हतचेतनः ॥८७॥
 विलापमिति कुर्वाणा कृवाङ्के सुतमुत्तमम् । तुलुभ्ये विद्रुमच्छायलोचना करसङ्गतम् ॥८८॥

निष्प्रभ, तथा कुण्डलोसे युक्त शिर और एक टूठके बीच पड़ा हुआ पुत्रका धड़ देखा ॥७३॥
 उसी क्षण मूर्च्छाने उसका परम उपकार किया जिससे पुत्रकी मृत्युसे उत्पन्न दुःखसे वह पीड़ित नहीं हुई। सचेत होने पर हा हा कारसे मुखर शिर ऊपर उठाकर उसने बड़ी कठिनाईसे पुत्रके शिर पर दृष्टि डाली ॥७४-७५॥ भरते हुए आँसुआसे जिसके नेत्र आकुलित थे तथा जो अपनी छाती कूट रही थी ऐसी शोकसे पीड़ित चन्द्रनखा, वनमें अकेली कुरीके समान विलाप करने लगी ॥७६॥ मेरा पुत्र बारह वर्ष और चार दिन तक यहाँ रहा। हाय दैव ! इसके आगे तूने तीन दिन सहन नहीं किये ॥७७॥ हे अतिशय निष्ठुर दैव ! मैंने तेरा क्या अपकार किया था जिससे पुत्रको निधि दिखाकर सहसा नष्ट कर दिया ॥७८॥ निश्चय ही मुझपापिनीने अन्य जन्ममें किसीका पुत्र हरा होगा इसीलिए तो मेरा पुत्र मृत्युको प्राप्त हुआ है ॥७९॥ हे पुत्र ! तू मुझसे उत्पन्न हुआ था फिर ऐसी दशाको कैसे प्राप्त हो गया ? अथवा इसी अवस्थामें तू दुःखको दूर करनेवाला एक वचन तो मुझे दे—एक वार तो मुझसे बोल ॥८०॥ आओ वत्स ! अपना मनोहर रूप धरकर आओ। यह तेरी अमङ्गल रूप छलक्रीड़ा अच्छी नहीं लगती ॥८१॥ हाय वत्स ! भाग्य वश तू स्पष्ट ही परलोक चला गया है। यह कार्य अन्य प्रकारसे सोचा था और अन्य प्रकार हो गया ॥८२॥ तूने कभी भी माताके प्रतिकूल कार्य नहीं किया है अब यह अकारण विनयका त्याग क्यों कर रहा है ? ॥८३॥ सूर्यहास खड्ग सिद्ध होने पर यदि तू जीवित रहेगा तो इस संसारमें चन्द्रहाससे आवृतकी तरह ऐसा कौन पुरुष है जो तेरे सामने खड़ा हो सकेगा ? ॥८४॥ चन्द्रहास खड्ग मेरे भाईके पास है सो जान पड़ता है उसने अपने विरोधी सूर्यहास खड्गको सहन नहीं किया है ॥८५॥ तू इस भयंकर वनमें अकेला रहकर नियमका पालन करता था किसीका कुछ भी अपराध तूने नहीं किया था फिर भी किस मूर्ख दुष्ट शत्रुका हाथ तुझे मारनेके लिए आगे बढ़ा ? ॥८६॥ तुम्हें मारते हुए उस शत्रुने शीघ्र ही प्रकट होनेवाली अपनी उपेक्षा प्रकट की है। अब वह अविचारी पापी कहाँ जावेगा ? ॥८७॥ इस प्रकार उत्तम पुत्रको गोदमें रखकर विलाप करते-करते जिसके नेत्र भूँगाके समान लाल हो गये थे ऐसी चन्द्रनखाने

१. पुत्रमृत्युसमुत्थेन दुःखेन परिपीडिता म० । २. हे दैव ! । ३. दृष्टिनिधिः म० । ४. विनयोक्तिवत् म० ।

ततः चणात् परिव्यज्य शोकं नष्टासन्नन्ततिः । गृहीत्वा परमं क्रोधमुत्थाय स्फुरितानना ॥८६॥
 सञ्चरन्ती तमुद्देशं स्वैरं मागौलुचितम् । निरैक्षत युवानौ तौ चित्तबन्धनकारिणौ ॥८७॥
 विनाशमगमत्तस्याः क्रोधोऽसौ तादृशोऽपि सन् । आदेश इव तस्याभूत् स्थाने रागरसः परः ॥८८॥
 ततोऽचिन्तयदेताभ्यां नराभ्यामभिलाषिणम् । वृणोमि नरमित्युच्चैरुमिकं दधती मनः ॥८९॥
 इति सञ्चिन्त्य संसाधुकन्याकल्पं समाश्रिता । हृदयेनातुरात्यन्तं भावगह्वरवर्तिना ॥९०॥
 हंसाव पत्रिनीलण्डे महिषीव महाद्रुहे । सस्ये सारङ्गबालेव तत्राभूत् सामिलापिणी ॥९१॥
 भजनं करशाखानां कुर्वन्ती स्फुटनिस्वनम् । उपविश्य किलोद्दिग्ना पुत्रागस्य तलेऽरुदत् ॥९२॥
 अतिदीनकृतारावां धूसरां वनरेणुना । दृष्ट्वा तां रामरमणी कृपावष्टब्धमानसा ॥९३॥
 उत्थायान्तिकमागत्य करामर्शनतत्परा । मा भैपीरिति भाषित्वा गृहीत्वा पाणिपल्लवे ॥९४॥
 किञ्चित् किल त्रपाभाजं मलिनांशुकधारिणीम् । सान्त्वयन्ती शुभैर्वाक्यै रमणान्तिकमानयत् ॥९५॥
 ततः पद्मो जयादैतां का त्वं श्वापदसेविते । एकाकिनी वने कन्ये चरसीहातिदुःखिता ॥९६॥
 ततः सम्भाषण प्राप्य स्फुटं ताम्रसेचणा । जगाद भ्रमरीवस्य वाचावुकृतिमेतया ॥९७॥
 पुरुषोत्तम मे माता निःसंज्ञायां मृति गता । तद्भवेन च शोकेन तातोऽपि विनिपातितः ॥९८॥
 साहं पूर्वकृताद् पापाद् बन्धुभिः परिवर्जिता । प्रविष्टा दण्डकारण्यं वैराग्यं दधती परम् ॥९९॥
 पश्य पापस्य माहात्म्यं यद्वाङ्मन्यपि पञ्चताम् । अरण्येऽस्मिन् महाभीमे व्यालैरपि विवर्जिता ॥१००॥

हाथमें लेकर पुत्रका चुम्बन किया ॥८६॥ तदनन्तर चण एकमे शोक छोड़कर वह उठी । उसके अश्रुओंकी धारा नष्ट हो गई और तीव्र क्रोध धारण करनेसे उसका मुख दमकने लगा ॥८६॥ वह मार्गके समीपमे ही स्थित उस स्थान पर इच्छानुसार इधर-उधर घूमने लगी । उसी समय उसने चित्तको बाँधनेवाले दोनों तरुण—रामलक्ष्मणको देखा ॥८७॥ उन्हें देखते ही उसका वैसा तीव्र क्रोध नष्ट हो गया और आदेशके समान उसके स्थान पर परम राग रूपी रस आ जमा ॥८८॥ इसके वाद उसने ऐसा विचार किया कि इन दोनों पुरुषोंमेसे मैं अपने इच्छुक पुरुषको वहूँगी इस प्रकार उसके मनमे ऊँची तरङ्गे उठने लगी ॥८९॥ ऐसा विचार कर वह कन्याभावको प्राप्त हुई । वह उस समय भाव रूपी गुफामे वर्तमान हृदयसे अत्यन्त आतुर हो रही थी ॥९०॥ जिस प्रकार हंसी कमलिनीके झुण्डमे, महिषी (भैंस) महासरोवरमे और हरिणी धान्यमें अभिलाषासे युक्त होती है उसी प्रकार वह भी राम-लक्ष्मणमे अभिलाषासे युक्त हो गई ॥९१॥ वह हाथकी अङ्गुलियों चटखाती हुई भयभीत मुद्रामे पुत्राग वृक्षके नीचे बैठकर रोने लगी ॥९२॥ जो अत्यन्त दीन शब्द कर रही थी, तथा वनकी धूलिसे धूसरित थी ऐसी उस कन्याको देख सीताका हृदय द्यमसे द्रवीभूत हो गया ॥९३॥ वह उठकर उसके पास गई तथा शरीर पर हाथ फेरने लगी । तदनन्तर 'डरो मत' यह कहकर उसका हाथ पकड़ कर पतिके पास ले आई । उस समय वह कुल्ल-कुल्ल लज्जित हो रही थी, तथा मलिन वस्त्रको धारण किये हुई थी । सीता उसे शुभ वचनोंसे सान्त्वना दे रही थी ॥९४-९५॥

तदनन्तर रामने उससे कहा कि हे कन्ये ! जङ्गली जानवरोंसे भरे इस वनमे अतिशय दुःखसे युक्त तू कौन अकेली विचरण कर रही है ? ॥९६॥ तदनन्तर संभाषण प्राप्त कर जिसके नेत्र कमलके समान खिल रहे थे ऐसी वह कन्या भ्रमर समूहका अनुकरण करने वाली वाणीसे बोली ॥१००॥ कि हे पुरुषोत्तम ! मूर्च्छा आने पर मेरो माता मर गई और उसके उत्पन्न शोकसे पिता भी मर गये ॥१०१॥ इस तरह पूर्वोपार्जित पापके कारण बन्धुजानोंसे रहित हो परम वैराग्य को धारण करती हुई मैं इस दण्डकवनमे प्रविष्ट हुई थी ॥१०२॥ पापका माहात्म्य तो देखो कि

१. मञ्जुस्फुरितानना (?) म० । २. यथा व्वाकरणे कस्यचित् स्थाने कश्चित् आदेशो भवति तद्वत् । ३. सीता ।

चिरान्मानुषनिर्मुक्तं भ्रमन्त्यास्मिन् वने मया । भवन्तः साधवो दृष्टाः क्षयात् पापस्य कर्मणः ॥१०४॥
 जनोऽविदितपूर्वो यो जने वध्नाति सौहृदम् । अनादृतश्च मामीप्स्यं ब्रजति त्रपयोऽभ्रितः ॥१०५॥
 अनादृतः प्रभूतं च भापते शून्यमानसः । उत्पादयति बिभ्रुपं कस्य नासी क्रमोऽभ्रितः ॥१०६॥
 एवंभूतापि नो^१ यावत्प्राणान् मुञ्चामि^२ सुन्दर । तावदधैव मामिच्छ दुःखितायां दयां कुरु ॥१०७॥
 न्यायेन सद्गतां साध्वी सर्वोपप्लवर्जिताम् । को वा नेच्छति लोकेऽस्मिन् कल्याणप्रकृतिस्थितम् ॥१०८॥
 श्रुत्वा तद्वचनं तस्यास्त्रपया परिवर्जितम् । परस्परं समालोक्य स्थितौ तूष्णीं नरोत्तमौ ॥१०९॥
 सर्वथास्त्रार्थबोधाभ्युत्थालितं हि तयोर्मनः । कृत्याकृत्यविवेकेषु मलमुक्तं प्रकाशते ॥११०॥
 निर्मुक्तदुःखनिश्वासां गच्छामीति तथोदिते । पद्मनाभादिभिः सोक्ता यथेष्टं क्रियतामिति ॥१११॥
 तस्यां प्रयातमानायां^३ तदाशालीनताहृतौ । ससीतौ विस्मितौ वीरौ स्मेरवक्त्रौ बभूवतुः ॥११२॥
 अन्तर्हृदयं च संक्रुद्धा समुत्पत्य स्वरावती । याता चन्द्रनखा धाम निजं शोकसमाकुला ॥११३॥
 शोभायापहतस्तस्या लक्ष्मणस्तरलेखणः । पुनरालोकनाकांक्षो विरहादाकुलोऽभवत् ॥११४॥
^४उत्थायान्यायदेशेन रामदेवसकाशतः । अटवी पाटपद्माभ्यां बभ्रामान्येवणातुरः ॥११५॥
 अचिन्तयन्न खिन्नरामा वाष्पव्याकुललोचनः । आत्मन्यनादृतप्रतीतिरिति तप्तेमनिर्भरः ॥११६॥
 रूपयौवनलावण्यगुणपूर्णां धनस्तनी । मदनाविष्टनागेन्द्रवनितासमगामिनी ॥११७॥
 आयान्येव सर्ता कस्माद्दृष्टमात्रा न सा मया । स्तनोपपीडनाश्लेषं परिरेष्या हतात्मना ॥११८॥

मैं यद्यपि मृत्युकी इच्छा करती हूँ फिर भी इस महाभयंकर वनमें दुष्ट जीव भी मुझे छोड़ देते हैं ॥१०३॥ चिरकालसे इस निर्जन वनमें भ्रमण करती हुई मैंने पापकर्मके क्षयसे आज आप सज्जनों के दर्शन किये हैं ॥१०४॥ जो पहलेका अपरिचित मनुष्य किसी मनुष्यसे मैत्रीभाव प्रकट करता है, विना मुलाया निर्लज्ज हो उसके पास जाता है तथा विना आदरके शून्यचित्त हो अधिक भाषण करता है वह क्रमहीन मनुष्य किसे द्वेष नहीं उत्पन्न करता ? ॥१०५-१०६॥ ऐसी होने पर भी हे सुन्दर ! जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ती हूँ तब तक आज ही मुझे चाहो, मेरी इच्छा करो मुझ दुःखिनी पर दया करो ॥१०७॥ जो न्यायसे संगत है, साध्वी है, सर्व प्रकार की वाधाओंसे रहित है, तथा जिसकी कल्याण रूप प्रकृति है ऐसी कन्याको इस संसारमें कौन नहीं चाहता ? ॥१०८॥ राम-लक्ष्मण उसके लज्जाशून्य वचन सुनकर परस्पर एक दूसरेको देखते हुए चुप रह गये ॥१०९॥ समस्त शास्त्रोंके अर्थ ज्ञानरूपी जलसे धुला हुआ उनका निर्मल मन करने योग्य तथा नहीं करने योग्य कार्योंमें अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था ॥११०॥ दुःख भरी श्वास छोड़कर जब उसने कहा कि मैं जाती हूँ तब राम आदिने उत्तर दिया कि 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो' ॥१११॥ उसके जाते ही उसकी आकुलीनतासे प्रेरित हुए शूरवीर राम-लक्ष्मण सीताके साथ आश्चर्यसे चकित हो हँसने लगे ॥११२॥

तदनन्तर शोकसे व्याकुल चन्द्रनखा मनमार क्रुद्ध हो उड़कर शीघ्र ही अपने घर चली गई ॥११३॥ लक्ष्मण उसकी सुन्दरतासे हरे गये थे इसलिए उनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे वे उसे पुनः देखनेकी इच्छा करते हुए विरहसे आकुल हो गये ॥११४॥ वे किसी अन्य कार्यके बहाने रामके पाससे उठकर चन्द्रनखाकी खोजमें व्यग्र होते हुए पैदल ही वनमें भ्रमण करने लगे ॥११५॥ जिनका हृदय अत्यन्त खिन्न था, जिनके नेत्र आंसुओंसे व्याप्त थे, जिन्होंने अपने आपके विषयमें प्रकट हुए चन्द्रनखाके प्रेमकी उपेक्षा की थी तथा जो उसके प्रेमसे परिपूर्ण थे ऐसे लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे कि जो रूप यौवन सौन्दर्य तथा अनेक गुणोंसे परिपूर्ण थी, जिसके स्तन अतिशय सघन थे और जो कामोन्मत्त हस्तिनीके समान चलती थी ऐसी उस

१. भूतापितो (?) म० । २. मुञ्चति म० । ३. तस्यः अशालीनता अकुलीनता तथा हृतौ ।

४. उत्थायान्यायदेशेन म० । अन्यन्याजेन ।

'अयोगमोहितं चेतश्च्युतं कर्तव्यवस्तुनः । साम्प्रतं शोकशिखिना दहते मे निरङ्कुशम् ॥११६॥
जाता सा विषये कस्मिन् कस्य वा दुहिता भवेत् । यूथभ्रष्टा सृग्गवियं कुतः प्राप्ता सुलोचना ॥१२०॥
सद्भिन्त्येति कृतभ्रान्तिस्तामपश्यन् समाकूलः । मेने तद्वनमाकाशपुष्पतुल्यं समन्ततः ॥१२१॥

मालिनीवृत्तम्

अविदितपरमार्थैरेवमर्थेन हीनं न खलु विमलचित्तैः कार्यभारम्भणीयम् ।
अविषयकृतचित्ता तत्समासक्तिमुक्ता दधति परमशोकं बालवद्बुद्धिहीनाः ॥१२२॥
किमिदमिह मनो मे किं निचोज्यं तदिष्ट कथमनुगतकृत्यैः प्राप्यते शं मनुष्यैः ।
इति कृतमतिरुच्चैर्यो विवेकस्य कर्ता रविरिव विमलोऽसौ राजते लोकमार्गे ॥१२३॥

इत्यार्यं रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते शम्भुवधामिख्यान नाम
त्रिचत्वारिंशत्तम पर्व ॥४३॥



सतीका मैने आते तथा दिखनेके साथ ही स्तनोको पीडित करनेवाला आलिङ्गन क्यों नहीं किया ॥११६-११८॥ उसके चियोगसे मोहित हुआ मेरा चित्त कर्तव्य वस्तु—करने योग्य कार्यसे च्युत होता हुआ इस समय शोकरूपी अग्निके द्वारा निर्वाध रूपसे जल रहा है ॥११६॥ वह किस देशमें उत्पन्न हुई है ? किसकी पुत्री है ? यह उत्तम नेत्रोंकी धारक भ्रुण्डसे बिलुड्डी हरिणी के समान यहाँ कहाँसे आई थी ? ॥१२०॥ इसप्रकार विचार कर जो इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे तथा उसे न देख कर जो अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे लक्ष्मणने उस वनको सब ओर से आकाश-पुष्पके समान माना था ॥१२१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मल चित्तके धारक मनुष्योंको इस तरह परमार्थके जाने बिना निरर्थक कार्य प्रारम्भ नहीं करना चाहिये । क्योंकि जो बालकोके समान निर्बुद्धि मनुष्य अयोग्य विषयमें चित्त लगाते हैं वे उसकी प्राप्तिसे रहित हो परम शोकको धारण करते हैं, ॥१२२॥ 'यह क्या है ? इसमें मुझे मन क्यों लगाना चाहिये ? वह इष्ट क्यों है ? और करने योग्य कार्योंका अनुसरण करने वाले मनुष्य ही सुख-शान्ति प्राप्त कर पते हैं, इस प्रकार विचार कर जो उत्कृष्ट विवेकका कर्ता होता है वह सूर्यकी तरह निर्मल होता हुआ लोकके मार्गमें सुशोभित होता है ॥१२३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितमें शम्भुकके वधका वर्णन करने वाला तैत्तलीसर्वो पर्व समाप्त हुआ ॥४३॥



चतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व

अनिच्छन्नाय विव्वल्लो मरुवत्त्वा मनोमत्रे । दुःखतूरः पुनः प्राप्नो भग्नरोधो यथा नदः ॥३॥
 चकार व्याकुलोभुता विविधे परिदेकनम् । शोकपावकनस्राज्ञ विवत्सा बहुला यथा ॥२॥
 बहुन्तो चानमानं नं क्रोधदैन्यस्यनानया । विगलद्भ्रुरिनेत्रास्तुद्वृपणेन निर्देक्यत ॥३॥
 तां विनष्टकृते दृष्ट्वा धरणीधूलिवृन्नाम् । प्रकीर्णकेशसन्मारां शिथिलीभूतमेतलान् ॥४॥
 नवविचक्रकरोत्कृत्तदीर्घां संशोभिताम् । कर्मानरगन्दिर्मुक्तां हारलावण्यवजिवात् ॥५॥
 विविष्टककुक्कां अष्टस्वभावतनुतेजसम् । शालोदितानां गजेनेव तलिनानां नदवाहिवा ॥६॥
 पद्मच्छ परिषान्धैप कान्ते शोभं निवेदय । अचस्थानिनकां केन प्रापितासि दुरात्मनः ॥७॥
 अद्येन्द्रप्रथमः कल्प कृत्तुवा कोऽवलोकितः । गिरेः स्वपित कः शृङ्गे मूटः क्रोडति क्रोडहिवा ॥८॥
 कोऽन्यः कुरं सनायज्ञो देवं कस्याद्युभावहम् । मन्त्रोवाग्मावर्नं द्वासे शलनः कः पतिप्यति ॥९॥
 यिक् नं पशुसन्तं पापं विवेक्यपक्षमानसम् । अरवित्रयनाचारं लोकहितयद्वृपितम् ॥१०॥
 कलं वृद्धिना नान्येव काचित्त्वं प्राकृतादला । स्पृष्ट्वा येनामिनं शंस वाडवाग्निशिखामना ॥११॥
 अर्धेव नं दुराचारं कृत्वा हस्ततलाहृतम् । नेत्रे प्रेतगतिं लिहो यथा नागं निरंहुशम् ॥१२॥
 पद्ममुक्ता विचल्ल्यानां रदिनं कृच्छ्रतः परम् । अत्रतिलशालकाच्छ्रगन्डमादीत् सगदगदम् ॥१३॥

अथानन्तर जब अनिच्छाले चन्द्रनखाका काम नष्ट हो गया तब तटको भग्न करनेवाले नदके समान हुल्लुका पूर उसे पुनः प्राप्त हो गया ॥३॥ जिसका शरीर शोक रूपी अग्निसे संतप्त हो रहा था ऐसी चन्द्रनखा, मृतवत्सा गायके समान व्याकुल होकर नाना प्रकारका विहाप करने लगी ॥४॥ जो पूर्वोक्त अपमानको धारण कर रहा थी, जिसका मन क्रोध और दीनतामें स्थित था तथा जिसके नेत्रोंसे अश्रु नर रहे थे ऐसी चन्द्रनखाको स्वरद्वेषने देखा ॥५॥ जिसका धैर्य नष्ट हो गया था, जो पृथिवीको धूलिसे धूसरित थी, जिसके केशोंका समूह विखरा हुआ था, जिसको नेत्रला डीली हो गई थी, जिसको बगलों जाँधों तथा स्तनोंकी भूमि नखोंसे विज्ञत थी, जो नद्विरेसे युक्त थी, जिसके कर्णाभरण गिर गये थे, जो हार और लावण्यसे रहित थी, जिसकी चालों फट गई थी, जिसके शरीरका स्वाभाविक तेज नष्ट हो गया था, और जो सदान्तर हाथीके द्वारा नर्दित कमलिनिके समान जान पड़ती थी ऐसी चन्द्रनखाको सान्त्वना देकर स्वरद्वेषने पूछा कि हे मित्रे ! शीघ्र ही वताओं तुम किस दुष्टके द्वारा इस अवस्थाको प्राप्त कराई गई हो ? ॥६॥ आज किसका आठवाँ चन्द्रमा है मृत्युके द्वारा कौन देखा गया है ? पहाड़की चोटी पर कौन सो रहा है और कौन मूर्त्त सर्पके साथ क्रीड़ा कर रहा है ? ॥७॥ कौन अन्धा रूपसे आकर पड़ा है ? किसका देव अशुभ है ? और मेरी प्रस्त्रलित ओवाग्निसे कौन पवङ्ग धन कर गिरना चाहता है ? ॥८॥ जिसका मन विवेकसे रहित है जो अराधित आचरण करनेवाला है और जिसने दानों लोकोको दूषित किया है उस पशु लुप्य पापोंको विक्रमर है ॥९॥ रोना व्यर्थ है तुम अन्य साधारण लोक समान धोई ही हो ब्रह्मानलकी शिखरके समान जिसने तुम्हें छुआ है उसका नाम कहो ॥१०॥ निरंकुश हाथीको सिंहके समान मैं आज ही उसे हस्ततलसे पीसकर यमराजके घर भेज दूँगा ॥११॥ इस प्रकार कहनेपर कड़े कटसे रोना छोड़कर वह गदगद वार्णामें बोली । उस समय उसके कपोल

वनान्तरस्थितं पुत्रं द्रष्टुं यातास्मि साम्प्रतम् । अपश्यन्तं च केनापि प्रत्यग्रच्छिन्नमूर्धकम् ॥१४॥
 ततः शोणितधाराभिर्निःसृताभिर्निरन्तरम् । प्रदीप्तमिव तन्मूले लक्ष्यते कीचकस्थलम् ॥१५॥
 प्रशान्ताऽवस्थितं हत्वा मे केनापि सुपुत्रकम् । खड्गत्वं समुत्पन्नं प्राप्तं पूजासमन्वितम् ॥१६॥
 साहं दुःखसहस्राणां भाजनं भाग्यवर्जिता । तन्मूर्धानं निघायान्क्ते विप्रलापं प्रसेविता ॥१७॥
 तावच्च तेन दुष्टेन शम्भूकवधकारिणा । उपगूढास्मि चाहुभ्यां कर्तुं किमपि चान्छिता ॥१८॥
 उक्तोऽपि मुञ्च मुञ्चेति घनस्पर्शवशङ्गतः । न मुञ्चति हतात्मा मां कोऽपि नीचकुलोद्गतः ॥१९॥
 नखैर्विलुप्य दन्तैश्च तेनाहं विजने वने । एतिकां प्रापितावस्थां कावला क्व पुमान् बली ॥२०॥
 तथापि पुण्यशेषेण केनापि परिरचिता । अखिण्डितचारित्रा कृच्छ्राद्य निःमृता ततः ॥२१॥
 सर्वविधाधाराधीशखिलोक्तोभकारणः । ज्ञाता मे रावणः ख्यातः शक्रेणाप्यपराजितः ॥२२॥
 खरदूषणनामा त्वं भर्ता कोऽपि विचपर्यसे । सम्प्राप्तास्मि तथाप्येतामवस्थां दैवयोगतः ॥२३॥
 ततस्तद्वचनं श्रुत्वा शोकक्रोधसमाहतः^१ । स्वयं महाजवो गत्वा इष्ट्वा व्यापादितं सुतम् ॥२४॥
 सम्पूर्णैन्दुसमानोऽपि पूर्वसारङ्गलोचनः । बभूव भीषणाकारो मध्यग्रीष्मार्कतन्निभः ॥२५॥
 आगतश्च द्रुतं भूयः प्रविश्य भवनं निजम् । सुहृद्भिः सहितश्चक्रे स्वल्पकालप्रधारणम् ॥२६॥
 तत्र केचिद्द्रुतं प्रोक्तुः सचिवाः कर्कशाशयाः । राजकीयमभिप्रायं बुद्ध्वा सेवापरायणाः ॥२७॥
 शम्भूकं साधितो येन खड्गरत्नं च हस्तितम् । असाञ्जुपेक्षितो राजन् वद किं न करिष्यति ॥२८॥

असुआँसे भीग रहे थे तथा त्रिखरे हुए बालोंसे आच्छन्न थे ॥१३॥ उसने कहा कि मैं अभी वनके मध्यमे स्थित पुत्रको देखनेके लिए गई थी सो मैंने देखा कि उसका मस्तक अभी हाल किसीने काट डाला है ॥१४॥ निरन्तर निकली हुई रुधिरकी धाराओंसे वंशस्थलका मूल भाग अग्निसे प्रव्यलितके समान दिखाई देता है ॥१५॥ शान्तिसे बैठे हुए मेरे सुपुत्रको किसीने मारकर पूजाके साथ-साथ प्राप्त हुआ वह खड्गरत्न ले लिया है ॥१६॥ जो हजारों दुःखोंका पात्र तथा भाग्यसे हीन है ऐसी मैं पुत्रके मस्तकको गोदमें रखकर विलाप कर रही थी ॥१७॥ कि शम्भूकका वध करनेवाले उस दुष्टने दोनों भुजाओंसे मेरा आलिङ्गन किया तथा कुछ अनर्थ करनेकी इच्छा की ॥१८॥ यद्यपि मैंने उससे कहा कि मुझे छोड़-छोड़ तो भी वह कोई नीच कुलोत्पन्न पुरुष था इसलिए गाढ़ स्पर्शके बशीभूत हुए उसने मुझे छोड़ा नहीं ॥१९॥ उसने उस निर्जन वनमें नखों तथा दूर्तोंसे छिन्न-भिन्न कर मुझे इस दशाको प्राप्त कराया है सो आप ही सोचिये कि अथवा कहाँ और बलवान् पुरुष कहाँ ? ॥२०॥ इतना सब होने पर भी किसी अवशिष्ट पुण्यने मेरी रक्षा की और मैं चारित्रको अखण्डित रखती हुई बड़े क्रोधसे आज उससे वचन निकल सकी हूँ ॥२१॥ जो समस्त विद्याधरोंका स्वामी है, तीन लोकके क्षोभका कारण है और इन्द्र भी जिसे पराजित नहीं कर सका ऐसा प्रसिद्ध रावण मेरा भाई है तथा तुम खरदूषण नाम धारी अद्भुत पुरुष मेरे भर्ता हो फिर भी दैव योगसे मैं इस अवस्थाको प्राप्त हुई हूँ ॥२२-२३॥

तदनन्तर चन्द्रनखाके वचन सुनकर शोक और क्रोधसे ताड़ित हुए महावेगशाली खरदूषणने स्वयं जाकर पुत्रको मरा देखा ॥२४॥ यद्यपि वह मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाला और पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्वल था तो भी पुत्रको मरा देख ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्न कालीन सूर्यके समान भयंकर हो गया ॥२५॥ उसने शीघ्र ही वापिस आकर और अपने भवनमें प्रवेश कर मित्रोंके साथ स्वल्पकालीन मन्त्रणा की ॥२६॥ उनमेंसे कठोर अभिप्रायके धारक तथा सेवामें तत्पर रहनेवाले कितने ही मन्त्री राजाका अभिप्राय जानकर शीघ्र ही कहने

१. प्रशान्तोऽवस्थितं म० । २. समाहितः म० ।

उत्सुरन्ध्रे विवेकस्था नाथ नेदं लघुक्रियम्^१ । सामन्तान् ढौक्याशोपान् रावणाय च कथ्यताम् ॥२१॥
 यस्यासिरन्ध्रमुत्पन्नं सुसाध्यः स कथं भवेत् । तस्मात् सद्दातकार्येऽस्मिस्स्वरा^२ कर्तुं न युज्यते ॥३०॥
 गुरुब्रान्यातुरोधेन राक्षसाधिपसविदे । दूतः सम्प्रेषितस्तेन युवा लङ्कां महाजवः ॥३१॥
 राजधैर्यात् कुतोऽप्येव चिरं यावदवस्थितः । रावणस्यान्तिके दूतः कार्यसाधनतत्परः ॥३२॥
 तीव्रक्रोधपरिताप्ता तावच्च खरदूषणः । अभाषत पुनः पुत्रगुणप्रेषितमानसः ॥३३॥
 मायाविनिहतैः क्षुद्रैर्जन्तुभिर्भूमिगोचरैः । दिव्यसेनानाणवः क्षुब्धस्तरितुं नैव शक्यते ॥३४॥
 धिगिदं शौर्यमस्माकं सहायान् यदि वाञ्छति । द्वितीयोऽपि कथं बाहुरिष्यते मम बाहुना ॥३५॥
 इत्युक्त्वा परमं विभ्रदभिसानं त्वरान्वितः । उत्पपात सुहृन्मध्यादाकाशं स्फुरिताननः ॥३६॥
 तमेकान्तपरं दृष्ट्वा सन्नद्धानि क्षणान्तरे । चतुर्दशसहस्राणि सुहृदां निर्ययुः पुरात् ॥३७॥
 तस्य राक्षससैन्यस्य श्रुत्वा वादिन्ननिस्वनम् । क्षुब्धसागरनिर्घोषं मैथिली त्रासमागता ॥३८॥
 किं किमेतद्दहो नाथ प्राप्तमित्युद्गतस्त्वनः । आलिङ्गतिस्म जीवेशं वल्ली कल्पतर्कं यथा ॥३९॥
 न भेत्तव्यं न भेत्तव्यं इति तां परिसान्त्व्य सः । अचिन्तयदयं कस्य भवेच्छब्दः सुदुर्दरः ॥४०॥
 रवः किमेष सिंहस्य भवेज्जलधरस्य वा । आहोस्त्विदरघुनाथस्य पूरयत्यखिलं नभः ॥४१॥
 उवाच च प्रिये नूनममी चतुरगामिनः । नादिनः प्रचलत्पद्मा राजहंसा नभोऽङ्गो ॥४२॥

लगे कि जिसने शम्भूकको मारा है तथा खड्गरत्न हथिया लिया है । हे राजन् ! यदि उसकी उपेक्षाकी जायगी तो वह क्या नहीं करेगा ? ॥२७-२८॥ कुछ विवेकी मन्त्री इस प्रकार बोले कि हे नाथ ! यह कार्य जल्दी करनेका नहीं है इसलिए सब सामन्तोंको बुलाओ और रावणको भी खबर दी जाय ॥२६॥ जिसे खड्गरत्न प्राप्त हुआ है वह सुखपूर्वक वरामें कैसे किया जा सकता है ? इसलिए मिलकर समूहके द्वारा करने योग्य इस कार्यमें उतावली करना ठीक नहीं है ॥३०॥

तदनन्तर उसने गुरुजनोंके वचनोंके अनुगोषसे रावणको खबर देनेके लिए एक तरुण तथा वेगशाली दूत लङ्काको भेजा ॥३१॥ उधर कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर रहनेवाला वह दूत, किसी राज्यधैर्यके कारण चिर काल तक रावणके पास बैठा रहा ॥३२॥ इधर तीव्र क्रोधसे जिसकी आत्मा व्याप्त हो रही थी तथा जिसका मन पुत्रके गुणोंमें बार-बार जा रहा था ऐसा खरदूषण पुनः बोला कि मायासे रहित क्षुद्र भूमिगोचरी प्राणियोंके द्वारा, क्षोभको प्राप्त हुआ दिव्य सेना रूपी सागर नहीं तैरा जा सकता ॥३३-३४॥ हमारी इस शूरीरताको धिक्कार है जो अन्य सहायकोकी वाञ्छा करती है । मेरी वह भुजा किस कामकी जो अपनी ही दूसरी भुजाकी इच्छा करती है ॥३५॥ इस प्रकार कहकर जो परम अभिमानको धारण कर रहा था तथा क्रोधके कारण जिसका मुख कम्पित हो रहा था ऐसा शीघ्रतासे भरा खरदूषण सिन्नोके बीचसे उठकर आकाशमें जा उड़ा ॥३६॥ उसे हठमें तत्पर देख उसके चौदह हजार मित्र जो पहलेसे तैयार थे क्षण भरमें नगरसे बाहर निकल पड़े ॥३७॥ राक्षसोंकी उस सेनाके, क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान शब्दवाले वादित्रोंका शब्द सुनकर सीता भयको प्राप्त हुई ॥३८॥ हे नाथ ! यह क्या है ? क्या है ? इस प्रकार शब्दोंका उच्चारण करती हुई वह भर्तारसे उस प्रकार लिपट गई जिस प्रकार कि लता कल्प वृक्षसे लिपट जाती है ॥३९॥ 'नहीं डरना चाहिए नहीं डरना चाहिए' इस प्रकार उसे सान्त्वना देकर रामने विचार किया कि यह अत्यन्त दुर्घर शब्द किसका होना चाहिए ? ॥४०॥ क्या यह सिंहका शब्द है या मेघकी ध्वनि है अथवा समुद्रकी गर्जना समस्त आकाशकी व्याप्त कर रही है ॥४१॥ उन्होंने सीतासे कहा कि हे प्रिये ! जान पड़ता है ये मनोहर गमन

किं वा दुष्टद्विजाः केचिदन्ये त्वद्भयकारिणः । समर्पय प्रिये चाप प्रलयं प्रापयाम्यमून् ॥४३॥
 अथासत्त्वमागच्छद् विविधायुधसङ्कलम् । चातेरिताभ्रवृन्दामं निरीच्य सुमहद्वलम् ॥४४॥
 जगद् राघवः किं नु नन्दीश्वरममो सुराः । जिनेन्द्रान् वन्दितुं भक्त्या प्रस्थिताः स्युर्महीजसः ॥४५॥
 आहो बंशस्थलं क्षिप्त्वा हत्वा कमपि मानवम् । अस्तिरत्ने गृहीतेऽस्मिन् प्राप्ता मायाविवैरिणः ॥४६॥
 दुरशीलया तया नूनं खिया मायाप्रवीणया । निजाः संज्ञोभिता पृते स्युरस्मद् दुष्कृतिं प्रति ॥४७॥
 नात्र युक्तमवज्ञातुं सैन्यमभ्यर्णतामितम् । इत्युक्त्वा कवचे दृष्टिं कार्मुके च न्यपातयत् ॥४८॥
 ततस्तमङ्गलिं कृत्वा सुमिन्नातनयोऽगदत् । मयि स्थिते न संरम्भस्तव देव विराजते ॥४९॥
 संरञ्ज राजपुत्री त्वं प्रत्यराति व्रजाम्यहम् । ज्ञेया च सिंहनादेन मम यद्यापदुञ्जवेत् ॥५०॥
 इत्युक्त्वा कङ्कटच्छन्नैः समुपात्तमहायुधैः । योद्धुमभ्युद्यतः श्रीमाल्लक्ष्मणः प्रत्यरिस्थितः ॥५१॥
 दृष्ट्वा तमुत्तमाकारं वीरं पुरुषपुङ्गवम् । पर्यस्तृणन् विहायःस्था जलदा हव पर्वतम् ॥५२॥
 शक्तिमुद्गरचक्राणि कुन्तवाणांश्च खेचरैः । परिकीर्णान्यसौ सम्यक् शस्त्रैरेव न्यवारयत् ॥५३॥
 निरुध्य सर्वशस्त्राणि खेचरैः प्रहितानि सः । वज्रदण्डान् शरान् भोक्तुं प्रवृत्तो व्योमगाहिनः ॥५४॥
 एकत्रैव सा तेन विद्याधरमहाचमूः । रुद्धा वाणैः कदिच्छेव विज्ञानैः सयतात्मना ॥५५॥
 माणिक्यशकलाङ्गानि राजमानानि कुण्डलैः । पेतुः शिरासि खाद् भूमिः खसूरः कमलानि वा ॥५६॥
 शैलाभा द्विरदाः पेतुरश्वैः सद् महाभटाः । कुर्वते निनदं भीमं संहट्टवदाससः ॥५७॥

करनेवाले तथा पङ्क्तोको हिलानेवाले राजहंस पक्षी आकाशरूपी आंगनमे शब्द करते हुए जा रहे हैं ॥४२॥ अथवा तुमके भय उत्पन्न करनेवाले कोई दूसरे दुष्ट पक्षी ही जा रहे हैं । हे प्रिये ! धनुष देओ, जिससे मैं इन्हें प्रलयको प्राप्त करा दूँ ॥४३॥ तदनन्तर नाना प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त, वायुसे प्रेरित मेघ समूहके समान दीखनेवाली बड़ी भारी सेनाको समीपमें आती देख रामने कहा कि क्या ये महा तेजके धारक देव भक्ति पूर्वक जिनेन्द्र देवकी वन्दना करनेके लिए नन्दीश्वर द्वीपको जा रहे हैं ॥४४-४५॥ अथवा बॉसके भिड़ेको छेदकर तथा किसी मनुष्यको मारकर यह खङ्गरत्न लक्ष्मणने लिया है सो मायावी शत्रु ही आ पहुँचे हैं ॥४६॥ अथवा जान पड़ता है कि उस दुराचारिणी मायाविनी खीने हम लोगोंको दुःख देनेके लिए आत्मीय जनकों चोभित किया है ॥४७॥ अब निकटमे आई हुई सेनाकी उपेक्षा करना उचित नहीं है ऐसा कहकर रामने कवच और धनुष पर दृष्टि डाली ॥४८॥ तब लक्ष्मणने हाथ जोड़कर कहा कि हे देव ! मेरे रहते हुए आपका क्रोध करना शोभा नहीं देता ॥४९॥ आप राजपुत्रीकी रक्षा कीजिए और मैं शत्रुकी ओर जाता हूँ । यदि मुझपर आपत्ति आवेगी तो मेरे सिंहनादसे उसे समझ लेना ॥५०॥ इतना कहकर जो कवचसे आच्छादित हैं तथा जिसने महाशस्त्र धारण किये हैं ऐसे लक्ष्मण युद्धके लिए तत्पर हो शत्रुकी ओर मुखकर खड़े हो गये ॥५१॥ उत्तम आकारके धारक, मनुष्योंमें श्रेष्ठ तथा अतिशय शूरवीर उन लक्ष्मणको देखकर आकाशमें स्थित विद्याधरोंने उन्हें इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मेघ किसी पर्वतको घेर लेते हैं ॥५२॥ विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए शक्ति, मुद्गर, चक्र, भाले और वाणोका लक्ष्मणने अपने शस्त्रोंसे अच्छी तरह निवारण कर दिया ॥५३॥ तदनन्तर वे विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए समस्त शस्त्रोंको रोककर उनकी ओर वज्रमय वाण छोड़नेको तत्पर हुए ॥५४॥ अकेले लक्ष्मणने विद्याधरोंकी वह बड़ी भारी सेना अपने वाणोंसे उस प्रकार गोक ली जिस प्रकार कि मुनि विशिष्ट ज्ञानके द्वारा खोटी इच्छाको रोक लेते हैं ॥५५॥ मणिखण्डोंसे युक्त तथा कुण्डलोसे सुशोभित शत्रुओंके शिर, आकाशरूपी सरोवरके कमलोंके समान कट-कटकर आकाशसे पृथिवी पर गिरने लगे ॥५६॥ पर्वतोंके समान

१. लक्ष्मणसमुपात्त- म० । २. प्रत्यरिं म० । ३. कुत्सिता इच्छा कदिच्छा 'कोः कत्तुच्येऽपि' इति कुस्थाने कदादेशः । ४. भूमिः । ५. गगनसरोवरकमलानि इव शिरासि । ६. संदष्टोष्ठाः इत्यर्थः, संहट्टवदासतः म० ।

अथमस्य महान् लामो निम्नतस्तस्य तानभूत् । यदूर्ध्वगैः शरैर्योधान्^१ विव्याध सहवाहनान् ॥५८॥
 अत्रान्तरे प्ररिप्रासः पुष्पकस्थो दशाननः । क्रुद्धः कृताशयो हन्तुं शम्बूकवचकारिणम् ॥५९॥
 अपश्यच्च महामोहसम्प्रवेशनकारिणाम् । रत्यरत्योः^२ समुद्रात्रीं साचाल्लक्ष्मीमिव स्थिताम् ॥६०॥
 चन्द्रमःकान्तवदनां बन्धूकामवराधराम्^३ । तनुद्री च लक्ष्मीं च जलजच्छद्मलोचनाम्^४ ॥६१॥
 महेभक्तुम्मशिखरप्रोत्तुङ्गविपुलस्तनीम् । यौवनोदयसम्पन्नां सर्वस्त्रीगुणसद्गताम् ॥६२॥
 संहितामिव कामेन कान्तिजन्यां दृष्टिसायकाम् । निजां चापलतां हन्तुं सुखेनैव थयेप्सितम् ॥६३॥
 सर्वस्मृतिमहाचारीं रूपातिशयवर्तिनीम् । सीतां मनोभवोदारज्वरग्रहणकारिणीम् ॥६४॥
 तस्यामीक्षितमात्रायां क्रोधोऽस्य प्रलयं गतः । अजायतापरो भावश्चिन्ना हि मनसो गतिः ॥६५॥
 अचिन्तयच्च किं नाम जीवितं मेऽनया विना । अयुकस्यानया का वा श्रीर्मदीयस्य वेश्मनः ॥६६॥
 इमामप्रतिमाकारां ललितां नवयौवनाम् । हराम्यद्यैव यावन्नो कश्चिज्जानात्युपागतम् ॥६७॥
 आरब्धुं प्रसभं कार्यं न मे शक्तिर्न विद्यते । किन्त्विदमोदशं वस्तु यत्कौपीनत्वमहंति ॥६८॥
 निवेदयन् गुणांस्तावल्लोकेऽलं याति लाघवम् । ईदृशान् किं पुनर्दोषान् ख्यापयन्ना प्रियो भवेत् ॥६९॥
 वितत्य सकलं लोकं शशाङ्कनिर्मला । कीर्तिर्न्यवस्थिता माभूत् सैवं सति मलीमसा ॥७०॥
 तस्मादकीर्तिसम्भूतिमकुर्वन् स्वायंतपरः । रहःप्रयत्नमारिभे लोको हि परमो गुरुः ॥७१॥

बड़े-बड़े हाथी घोड़ोंके साथ-साथ नीचे गिरने लगे तथा ओठोंको डसनेवाले बड़े-बड़े योद्धा भयंकर शब्द करने लगे ॥५७॥ उन सबको मारते हुए लक्ष्मणको यह बड़ा लाभ हुआ कि वे ऊपरकी ओर जानेवाले बाणोंसे योद्धाओंको उनके वाहनोंके साथ ही छेद देते थे अर्थात् एक ही प्रहारमे वाहन और उनके ऊपर स्थित योद्धाओंको नष्ट कर देते थे ॥५८॥

तदनन्तर इसी बीचमे शम्बूकके वधकर्त्ताको मारनेके लिए विचार करनेवाला, क्रोधसे भरा रावण पुष्पक विमानमे बैठकर वहाँ आया ॥ ५९ ॥ आते ही उसने महामोहमे प्रवेश करानेवाली तथा रति और अरतिको धारण करनेवाली साक्षात् लक्ष्मीके समान स्थित सीताको देखा ॥६०॥ उस सीताका मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर था, वह बन्धूक पुष्पके समान उत्तम ओष्ठोंको धारण करनेवाली थी, कुराङ्गी थी, लक्ष्मीके समान थी, कमलदलके समान उसके नेत्र थे ॥६१॥ किसी बड़े हाथीके गण्डस्थलके अप्रभागके समान उन्नत तथा स्थूल स्तन थे, वह यौवनके उदयसे सम्पन्न तथा समस्त स्त्री गुणोंसे सहित थी ॥६२॥ वह ऐसी जान पड़ती थी मानो इच्छित पुरुषको अनायास ही मारनेके लिए कामदेवके द्वारा धारण की हुई अपनी धनुषरूपी लता ही हो। कान्ति ही उस धनुष रूपी लताकी डोरी थी और नेत्र ही उसपर चढ़ाये हुए बाण थे ॥६३॥ वह सबकी स्मृतिको चुरानेवाली थी, अत्यन्त रूपवती थी और कामरूपी महाज्वरको उत्पन्न करनेवाली थी ॥६४॥ उसे देखते ही रावणका क्रोध नष्ट हो गया और दूसरा ही भाव उत्पन्न हो गया सो ठीक ही है क्योंकि मनको गति विचित्र है ॥६५॥ वह विचार करने लगा कि इसके बिना मेरा जीवन क्या है ? और इसके बिना मेरे घरकी शोभा क्या है ? ॥६६॥ इसलिए जब तक कोई मेरा आना नहीं जान लेता है तब तक आज ही मैं इस अनुपम, नवयौवना सुन्दरीका अपहरण करता हूँ ॥६७॥ यद्यपि इस कार्यको बलपूर्वक सिद्ध करनेकी शक्ति मुझमें विद्यमान है किन्तु यह कार्य ही ऐसा है कि छिपानेके योग्य है ॥६८॥ लोकमे अपने गुणोंको प्रकट करनेवाला मनुष्य भी अत्यधिक लज्जुताको प्राप्त होता है फिर जो इस प्रकारके दोषोंको प्रकट करनेवाला है वह प्रिय कैसे हो सकता है ? ॥६९॥ मेरी चन्द्रमाकी किरणोंके समान निर्मल कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त होकर स्थित है सो वह ऐसा काम करने पर मलिन न हो जाय ॥७०॥ इसलिए अकीर्तिकी

इति ध्यात्वावलोकिन्या विद्ययोपायमञ्जसा । विवेद हरणे तस्यास्तेषां नामकुलादि यत् ॥७२॥
 अयं स लक्ष्मण. ख्यातो बहुभिः कृतरोधनः । अयं स रामः सीतेयं सा गुणैः परिकीर्तिता ॥७३॥
 अमुष्य व्यसनं कृत्वा सिंहनादं स धन्विनः । गरुमानिव गुध्रस्य सीतां पेशीमिवाद्दे ॥७४॥
 जायावैरभेदीशोयमजस्यः खरदूषणः । शकत्यादिभिः षण्णादेतौ आतरौ मारयिष्यति ॥७५॥
 महाप्रकृष्टपूरस्य नदस्योद्गाररंहसः । तटयोः पातने शक्तिः केन न प्रतिपद्यते ॥७६॥
 इति सखिन्त्य कामार्तः शिशुवस्त्वल्पमानसः । विपवन्मरणोपायं हरणं प्रति निश्चितः ॥७७॥
 शस्त्रान्धकारिते जाते तयोरथ महाहवे । कृत्वा सिंहरवं रामरामेति च सुहृर्जगौ ॥७८॥
 तं च सिंहरवं श्रुत्वा स्फुटं लक्ष्मणभाषितम् । प्रीत्यारतिमथाद्य पद्मो व्याकुलीभूतमानसः ॥७९॥
 निर्माह्यैर्जानकी सम्यक् प्रच्छाद्यात्यन्तभूरिभिः । षण्मेकं प्रिये तिष्ठ मा भैरारिति सङ्गदन् ॥८०॥
 वयस्ववनितां तावज्जटायू रच यत्नतः । किञ्चिदस्मत्कृतं भद्र स्मरस्त्युपकृतं यदि ॥८१॥
 इत्युक्त्वा वार्यमाणोऽपि शकुनैः क्रन्दनाकुलैः । सती मुक्त्वा जनेऽरण्ये वेगवान् प्राविशद् रणम् ॥८२॥
 अत्रान्तरे समागल्य विद्यालोकेन कोविदः । सीतामुत्तिष्ठ्य बाहुभ्यां नलिनीमिव वारणः ॥८३॥
 कामदाहगुह्रीतात्मा विस्मृताशेषवर्मवीः । आरोपयितुमारोमे पुष्पकं गगनस्थितम् ॥८४॥

उत्पत्तिको वचाता हुआ वह स्वार्थसिद्ध करनेमें तत्पर हो एकान्तमें प्रयत्न करता है सो ठीक ही है क्योंकि लोक परमगुरु है अर्थात् संसारके प्राणी बड़े चतुर हैं ॥७१॥ इस प्रकार विचारकर उसने अवलोकिनी विद्याके द्वारा सीताके हरण करनेका वास्तविक उपाय जान लिया । राम-लक्ष्मण तथा सीताके नाम कुल आदि सबका उसे ठीक ठीक ज्ञान हो गया ॥७२॥ जिसे अनेक लोग धेरे हुए हैं ऐसा यह वह लक्ष्मण है, यह राम है, और यह गुणोंसे प्रसिद्ध सीता है ॥७३॥ इसके बाद उस रावणने इस धनुर्धारी रामके लिए आपत्तिस्वरूप सिहनाद करके सीताको ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुडपक्षी गीधके मुखकी मांसपेशीको ले लेता है ॥७४॥ स्त्रीके वैरसे अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ यह खरदूषण अजेय है तथा शक्ति आदि शस्त्रोंसे इन दोनों भाइयोंको क्षणभरमें मार डालेगा ॥७५॥ जिसमें बहुत बड़ा पूर चढ़ रहा है तथा जिसका वेग अत्यन्त तीव्र है ऐसे नदमें दोनों तटोंको गिरानेकी शक्ति है यह कौन नहीं मानता है ? ॥७६॥ ऐसा विचारकर कामसे पीड़ित तथा वालकके समान विवेकशून्य हृदयको धारण करनेवाले रावणने सीताके हरण करनेका उस प्रकार निश्चय किया कि जिस प्रकार कोई मारनेके लिए विपपानका निश्चय करता है ॥ ७७॥

अथानन्तर जब लक्ष्मण और खरदूषणके बीच शस्त्रोंके अन्धकारसे युक्त महायुद्ध हो रहा था तत्र रावणने सिंहनादकर वार-वार राम ! राम !! इस प्रकार उच्चारण किया ॥७८॥ उस सिंहनादको सुनकर रामने समझा कि यह लक्ष्मणने ही किया है ऐसा विचारकर वे प्रीतिवश व्याकुलित चित्त हो अरतिको प्राप्त हुए ॥७९॥ तदनन्तर उन्होंने सीताको अत्यधिक मालाओंसे अच्छी तरह ढक दिया और कहा कि हे प्रिये ! तुम ज्ञानभर यहाँ ठहरो भय मत करो ॥८०॥ सीतासे इतना कहनेके बाद उन्होंने जटायुसे भी कहा कि हे भद्र ! यदि तुम मेरे द्वारा किये हुए उपकारका स्मरण रखते हो तो मित्रकी स्त्रीकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा करना ॥८१॥ इतना कहकर यद्यपि क्रन्दन करनेवाले पक्षियोंने उन्हें रोका भी था तो भी वे निर्जन वनमें सीताको छोड़कर वेगसे युद्धमें प्रविष्ट हो गये ॥८२॥

इसी बीचमें विद्याके आलोकसे निपुण रावण, कपालिनीको हाथीके समान दोनों सुजाओंसे सीताको उठाकर आकाशमें स्थित पुष्पक विमानमें चढ़ानेका प्रयत्न करने लगा । उस समय

हियमाणामथ प्रेक्ष्य स्वामिनो वनितां प्रियाम् । सरम्भवह्निदीप्तात्मा समुत्पत्य महाजवः ॥८५॥
 तौष्णकोटिभिरत्यन्तं जटायुर्नखलाङ्गलैः । दाशाननसुरःक्षेत्रं चर्कपासूत्रसमाद्रितम् ॥८६॥
 परुषैश्छुदनान्तैश्च वातसम्पाटितांशुकैः । जघान जववैभूयः सर्वकायमलं बलः ॥८७॥
 इष्टवस्तुविद्यतेन रावणः कोपवानथ । हत्वा हस्ततलेनैव महतीतलमजीगमत् ॥८८॥
 ततोऽसौ परुषाघाताद् विकलीभूतमानसः । कुर्वन् केकायितं दुःखी खगो मूर्च्छासुषुपागतः ॥८९॥
 ततो निर्विघ्नमारोप्य पुष्पक जनकात्मजाम् । जानानः सङ्गतं कामं रावणः स्वैच्छया ययौ ॥९०॥
 ज्ञात्वापहृतमात्मानं रामरागातिशायनात् । सीता शोकवशीभूता विललापार्तनिस्त्रवाद् ॥९१॥
 ततः स्वपुरुगासकहृदयां कृतरोदनाम् । दृष्ट्वा सीतामभूत् किञ्चिद् विरागीव दशाननः ॥९२॥
 अचिन्तयञ्च मे कास्था कृतोऽन्यस्यैव कस्यचित् । यदियं रीति सक्तासुः करुणं विरहाकुला ॥९३॥
 कीर्तयन्ती गुणान् भूय, साधूनामभिसम्मतान् । पुरुषान्तरसम्बन्धानतिशोकपरायणा ॥९४॥
 तत्किमेतेन खड्गेन मूढा व्यापादयाम्यमूम् । अथवा न स्त्रियं हन्तुं मम चैतः प्रवर्तते ॥९५॥
 न प्रसादयितु शक्यः क्रुद्धः शीघ्र नरेश्वरः । अभीष्टं लब्धुमथवा घुतिर्वा कीर्तिरेव वा ॥९६॥
 विद्या वाभिमत लब्धुं परलोकक्रियापि वा । प्रिया वा मनसो भार्या यद्वा किञ्चित् समीहितम् ॥९७॥
 साधूनामग्रतः पूर्वं व्रतमेतन्भयाजितम् । अग्रसन्ना न भोक्तव्या परस्य स्त्रीमथैति च ॥९८॥

उसकी आत्मा कामकी दाहसे दग्ध हो रही थी तथा उसने समस्त धर्म बुद्धिको भुला दिया था ॥८३-८४॥ तदनन्तर स्वामीकी प्रिय वनिताको हरी जाती देख जिसकी आत्मा क्रोधाग्निसे प्रबलित हो रही थी ऐसा जटायु वेगसे आकाशमे उड़कर खूनसे गीले रावणके वक्षःस्थल रूपी खेतकी अत्यन्त तीक्ष्ण अग्रभागको धारण करनेवाले नख रूपी हलके द्वारा जोतने लगा ॥८५-८६॥ तत्पश्चात् अतिशय बलवान् जटायुने वायुके द्वारा वस्त्रोंको फाड़नेवाले कठोर तथा वेगशाली पङ्क्तिके आघातसे रावणके समस्त शरीरको क्षिन्न-भिन्न कर डाला ॥८७॥ तदनन्तर इष्ट वस्तुमें बाधा डालनेसे क्रोधको प्राप्त हुए रावणने हस्ततलके प्रहारसे ही जटायुको मारकर पृथ्वीतल पर भेज दिया अर्थात् नीचे गिरा दिया ॥८८॥ तदनन्तर कठोर प्रहारसे जिसका मन अत्यन्त विकल हो रहा था ऐसा दुःखसे भरा जटायु पत्नी के-के करता हुआ मूर्च्छित हो गया ॥८९॥ तत्पश्चात् बिना किसी विघ्न-बाधाके सीताको पुष्पक विमान पर चढ़ाकर कामको ठीक जाननेवाला रावण इच्छानुसार चला गया ॥९०॥ सीताका राममें अत्यधिक राग था इसलिए अपने आपको अपहृत जान शोकके वशीभूत हो वह आर्तनाद करती हुई विलाप करने लगी ॥९१॥ तदनन्तर अपने भर्तामें जिसका चित्त आसक्त था ऐसी सीताको रोती देख रावण कुछ विरक्त-सा हो गया ॥९२॥ वह विचार करने लगा कि इसके हृदयमें मेरे लिए आदर ही क्या है यह तो किसी दूसरेके लिए ही करुणरुदन कर रही है उसमें ही इसके प्राण आसक्त हैं तथा उसीके विरहसे आकुल हो रही है ॥९३॥ सत्पुरुषोंको इष्ट हैं ऐसे अन्य पुरुष सम्बन्धी गुणोंका बार-बार कथन करती हुई यह अत्यन्त शोकके धारण करनेमे तत्पर है ॥९४॥ तो क्या इस खड्गसे इस मूर्खोंको मार डाले अथवा नहीं, स्त्रीको मारनेके लिए मेरा चित्त प्रवृत्त नहीं होता ॥९५॥ अथवा अधीर होनेकी बात नहीं है क्योंकि जो राजा कुपित होता है उसे शीघ्र ही प्रसन्न नहीं किया जा सकता । इसीप्रकार इष्ट वस्तुका पाना, कान्ति अथवा कीर्तिका प्राप्त करना अभीष्ट विद्या, पारलौकिकी क्रिया, मनको आनन्द देनेवाली भार्या अथवा और भी जो कुछ अभिलषित पदार्थ हैं वे सहसा प्राप्त नहीं हो जाते—उन्हें प्राप्त करनेके लिए समय लगता ही है ॥९६-९७॥ मैंने साधुओंके समक्ष पहले यह

१. नखरूपहलैः । २. दशाननस्येदं दाशाननम् । दशानन-म०, ख० । ३. नित्वनान् म० । ४. मूढा म० । ५. अभीष्टाङ्गम् । अभीष्टलब्ध ज० ।

रक्षन्निदं व्रतं तस्मात् प्रसादं प्रापयाम्यमुम् । भविष्यत्यनुकूल्यं कालेन मम सम्पदा ॥६६॥
 इति सखित्य तामङ्गात्तले स्वस्मिन्नतिष्ठिपत् । प्रतीचते हि तत्काल मृत्युः कर्मप्रचोदितः ॥१००॥
 अथेपुवारिधाराभिराकुलं रणमण्डलम् । प्रविष्टं राममालोक्य सुमित्रातनयोऽगदत् ॥१०१॥
 हा कष्ट देव कस्मात् त्वं भूमिमेतामुपागतः । एकाकी मैथिली मुक्त्वा विपिने विघ्नसङ्कुले ॥१०२॥
 तेनोक्तस्त्वद्रवं श्रुत्वा प्राप्तोऽस्मि त्वरयान्वितः । सोऽवोचद् गम्यतां शीघ्रं न साधु भवता कृतम् ॥१०३॥
 सर्वथा परमोत्साहो जय त्वं बलिनं रिपुम् । इत्युक्त्वा शङ्कया युक्तो जानकीं प्रति चञ्चलः ॥१०४॥
 ज्ञाननिवर्तते यावद् तावच्चत्रं न दृश्यते । सीतेति हतवञ्चो तो रामश्च्युतममन्यत ॥१०५॥
 हा सीत इति भाषित्वा मूर्च्छितो धरणीमगात् । भर्त्रा तेन परिष्वक्ता सा बभूव विभूषिता ॥१०६॥
 संज्ञां प्राप्य ततो दृष्टिं निक्षिपन् वृक्षसङ्कुले । इति प्रेमपरीतात्मा जगदात्यन्तमाकुलः ॥१०७॥
 अथि देवि क्व यातासि प्रयच्छ वचनं द्रुतम् । चिरं किं प्रतिहासेन दृष्टासि तरुमध्यगा ॥१०८॥
 एङ्गागच्छ-प्र-यातोऽस्मि कार्यं कोपेन किं प्रिये । जानात्येव चिरं कोपात्तत्र देवि न मे सुखम् ॥१०९॥
 एवं कृतध्वनिर्भ्राम्यन् प्रदेशं तं सुगह्वरम् । गृध्रं समुपुर्मैक्षिष्ट कृतकैकास्वनं शनैः ॥११०॥
 ततोऽन्यन्तविपण्णात्मा त्रियमाणस्य पक्षिणः । कर्णजापं ददौ प्राहस्स तेनामरकायताम् ॥१११॥
 तस्मिन् कालगते पद्म. शोकार्तः केवले वने । वियोगदहनव्याप्तः पुनर्मूर्च्छामिश्रियत् ॥११२॥

नियम लिया था कि जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी मुझपर प्रसन्न नहीं रहेगी मैं उसका उपभोग नहीं करूँगा ॥८८॥ इसलिए इस व्रतकी रक्षा करता हुआ मैं इसे प्रसन्नताको प्राप्त करता हूँ संभव है कि यह समय पाकर मेरी सम्पदाके कारण मेरे अनुकूल हो जावेगी ॥६६॥ ऐसा विचार कर रावणने सीताको गोदसे हटा कर अपने समीप ही बैठा दिया सो ठीक ही है क्योंकि कर्मसे प्रेरित मृत्यु उसके योग्य समयकी प्रतीक्षा करती ही है ॥१००॥

अथानन्तर बाणरूपी जलकी धाराओसे आकुल युद्धके मैदानमें रामको प्रविष्ट देख लक्ष्मण ने कहा ॥१०१॥ कि हाय देव ! वड़े दुःखकी बात है आप विघ्नोसे व्याप्त वनमे सीताको अकेली छोड़ इस भूमिमें किस लिये आये ? ॥१०२॥ रामने कहा कि मैं तुम्हारा शब्द सुनकर शीघ्रतासे यहाँ आया हूँ । इसके उत्तरमे लक्ष्मणने कहा कि आप शीघ्र ही चल जाइये आपने अच्छा नहीं किया ॥१०३॥ 'परम उत्साहसे भरे हुए तुम बलवान् शत्रुको सब प्रकारसे जीतो' इस प्रकार कह कर शङ्कासे युक्त तथा चञ्चलचित्तके धारक राम जानकीकी ओर वापिस चले गये ॥१०४॥ जब राम जगभरमे वहाँ वापिस लौटे तब उन्हें सीता नहीं दिखाई दी । इस घटनासे रामने अपने चित्तको नष्ट हुआ-सा अथवा च्युत हुआ-सा माना ॥१०५॥ हा सीते ! इस प्रकार कहकर राम मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े और भर्ताके द्वारा आलिङ्गित भूमि सुशोभित हो उठी ॥१०६॥ तदनन्तर जब संज्ञाको प्राप्त हुए तब वृत्तोसे व्याप्त वनमे इधर-उधर दृष्टि डाल हुयेते प्रेमपूर्ण आत्माके धारक राम, अन्यन्त व्याकुल होते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥१०७॥ कि हे देवि ! तुम कहाँ चली गई हो ? शीघ्र ही वचन देओ । चिरकाल तक हँसी करनेसे क्या लाभ है ? मैंने तुम्हें वृक्षोंके मध्य चलती हुई देखा है ॥१०८॥ हे प्रिये ! आओ-आओ, मैं प्रयाण कर रहा हूँ, क्रोध करनेसे क्या प्रयोजन है ? हे देवि ! तुम यह जानती ही हो कि दीर्घकाल तक तुम्हारे क्रोध करनेसे मुझे सुख नहीं होता है ॥१०९॥ इस प्रकार शब्द करने तथा गुफाओसे युक्त उस स्थानमे भ्रमण करते हुए रामने धीरे-धीरे के-के करते हुए मरणोन्मुख जटायुको देखा ॥११०॥ तदनन्तर अन्यन्त दुःखित होकर रामने उस मरणोन्मुख पक्षीके कानमें णमोकार मन्त्रका जाप दिया और उसके प्रभावसे वह पक्षी देवपर्यायको प्राप्त हुआ ॥१११॥ वियोगाग्निसे व्याप्त राम उस पक्षी

समाश्रय्य च सर्वत्र न्यस्य दृष्टि समाकुलः । वीनं ललाप^१ निराशयाद् भूतेनेवार्तमानसः ॥११३॥
 रन्ध्रं प्राप्य वने भीमे हा केनास्मि दुरात्मना । हरता जानकी कष्ट हतो दुष्करकारिणा ॥११४॥
 दर्शयस्तामथोत्सृष्टां^२ हरन् शोकमशेषतः । को नाम बान्धवत्व मे वनेऽस्मिन् परमेत्यति ॥११५॥
 भो वृक्षाश्रमपकच्छाया सरोजदलोचना । सुकुमाराङ्गिका^३ भीरुस्वभावा चरगामिनी ॥११६॥
 चित्तोत्सवकरा पद्मरजोगन्धिसुखानिला । अपूर्वा यौषिती सृष्टिर्दृष्टा स्यात् काचिदङ्गना ॥११७॥
 कथ निरुत्तरा यूयमित्युक्त्वा तद्गुणैर्हृतः । पुनर्मूर्च्छांपरीतात्मा धरणीतलमगमत् ॥११८॥
 समाश्रय्य च संक्रुद्धो वज्रावर्त महाधनुः । आथोप्यास्फालयन्मुक्तं^४ टङ्कारपुरुनिस्वनम् ॥११९॥
 सिंहानां भंतिजननं नृसिंहः सिंहनिस्वनम् । सुमोच सुदुरत्युग्रमुक्कणं द्विरदश्रुतम् ॥१२०॥
 भूयो विपादमागत्य त्यक्तचापोत्तरीयकम् । उपविश्य प्रमादं स्वं शुशोच फलितं ज्ञानात् ॥१२१॥
 दुःश्रुत्य दुर्विमर्शेण भजता त्वरितां गतिम् । धर्मधीरिव मूढेन हारिता हा मया त्रिय्या ॥१२२॥
 मानुषत्वं परिभ्रष्टं गहने भवसङ्कटे । प्राप्नुमत्यद्भुत भूयः प्राणिनाशुभकर्माणां ॥१२३॥
 त्रैलोक्यगुणवद्भज पतितं निम्नगापती । लभेत कः पुनर्धन्यः कालेन महताप्यलम् ॥१२४॥
 वनितामृतमेतन्मे कराङ्गस्थं महारुणम् । प्रनष्टं सङ्गतिं भूयः केनोपायेन यास्यति ॥१२५॥
 वनेऽस्मिन् जननिर्मुक्तं कस्य दोषः प्रदीयते । नूनं मत्त्यागकोपेन क्वापि याता तपस्विनी ॥१२६॥

के मरने पर शोकसे पीड़ित हो निर्जन वनमे पुनः मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥११२॥ जब सचेत हुए तब सब ओर दृष्टि डालकर निराशताके कारण व्याकुल तथा खिन्न चित्त होकर करुण विलाप करने लगे ॥११३॥ वे कहने लगे कि हाय-हाय भयङ्कर वनमे छिद्र पाकर कठोर कार्य करनेवाले किसी दुष्टने सीताका हरण कर मुझे नष्ट किया है ॥११४॥ अब विलुङ्गी हुई उस सीताको दिखा कर समस्त शोकको दूर करता हुआ कौन व्यक्ति इस वनमे मेरे परम बान्धवपनेको प्राप्त होगा ॥११५॥ हे वृक्षो ! क्या तुमने कोई ऐसी स्त्री देखी है ? जिसकी चम्पाके फूलके समान कान्ति है, कमलदलके समान जिनके नेत्र है, जिसका शरीर अत्यन्त सुकुमार है, जो स्वभावसे भीरु है, उत्तम गतिसे युक्त है, हृदयमें आनन्द उत्पन्न करनेवाली है, जिसके मुखकी वायु कमलकी परागके समान सुगन्धित है तथा जो स्त्रीविषयक अपूर्व सृष्टि है ॥११६-११७॥ अरे तुम लोग निरुत्तर क्यों हो ? इस प्रकार कह कर उसके गुणोंसे आकृष्ट हुए राम पुनः मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े ॥११८॥ जब सचेत हुए तब कुपित हो वज्रावर्त नामक महाधनुषको चढ़ाकर टङ्कारका विशाल शब्द करते हुए आस्फालन करने लगे । उसी समय नरश्रेष्ठ रामने बार-बार अत्यन्त तीव्र सिहनाद किया । उनका वह सिहनाद सिहोको भय उत्पन्न करनेवाला था तथा हाथियोंने कान खड़े कर उसे डरते-डरते सुना था ॥११९-१२०॥ पुनः विषादको प्राप्त होकर तथा धनुष और उत्तरच्छद्दको उत्तारकर बैठ गये और तत्काल ही फल देनेवाले अपने प्रमादके प्रति शोक करने लगे ॥१२१॥ हाय-हाय जिस प्रकार मोही मनुष्य धर्मसुद्धिको हरा देता है उसी प्रकार लक्ष्मणके सिहनादको अच्छी तरह नहीं श्रवणकर विचारके बिना ही शीघ्रतासे जाते हुए मैंने प्रियाको हरा दिया है ॥१२२॥ जिस प्रकार संसाररूपी वनमे एक बार छूटा हुआ मनुष्य भव, अशुभकार्य करनेवाले प्राणीको पुनः प्राप्त करना कठिन है उसी प्रकार प्रियाका पुनः पाना कठिन है । अथवा समुद्रमे गिरे हुए त्रिलोकी मूल्यरत्नको कौन भाग्यशाली मनुष्य दीर्घकालमें भी पुनः प्राप्त कर सकता है ? ॥१२३-१२४॥ यह महारुणोंसे युक्ता वनितारूपी अमृत मेरे हाथमें स्थित होने पर भी नष्ट हो गया है सो अब पुनः किस उपायसे प्राप्त हो सकेगा ? ॥१२५॥ इस निर्जन वनमे किसे दोष दिया जाय ? जान पड़ता है कि मैं उसे छोड़कर गया था इसी क्रोधसे वह बेचारी कहीं चली

अरण्ये निर्मत्सुष्येऽस्मिन्कुसुमेत्य प्रसाद्य च । पृच्छामि दुष्कृताचारो यो मे वातां निवेदयेत् ॥१२७॥
 इय ते प्राणतुष्येति चेतःश्रवणयोः परम् । कुर्यात्प्रह्लादान् को मे वचसास्मन्दायिना ॥१२८॥
 दयावानोदशः कोऽस्मिन् लोके पुरुषपुङ्गवः । यो मे स्मिताननो कान्तां दर्शयेदववर्जिताम् ॥१२९॥
 हृदयागारमुद्गीप्तं कान्ताविरहवहिना । उदन्तजलदानेन को मे निवापयिष्यति ॥१३०॥
 इत्युक्त्वा परमोद्दिग्नो महींनिहितलोचनः । असकृत् किमपि ध्यायंस्तस्यौ निश्चलविग्रहः ॥१३१॥
 अथ नात्यन्तदूरस्थचक्रवाकीस्वन कलम् । समाकर्ण्य दृशं तस्यां श्रवणं च न्यधापयत् ॥१३२॥
 अचिन्तयद्मुष्पाद्रेस्तस्सङ्गे गन्धसूचितम् । किमिदं पङ्कजवनं भवेद्याता कुतूहलात् ॥१३३॥
 दृष्टपूर्वं मनोहारि नानाकुसुमसङ्कुलम् । स्थानं हरितचैतोऽस्याः कदाचित्क्षणमात्रकम् ॥१३४॥
 जगाम च तमुद्देशं यावच्चक्राहसुन्दरी । मया विना क्व यातीति पुनरुद्देशमागमत् ॥१३५॥
 भो भो महीशराथीश ! धातुभिर्विधैश्चित ! स्रजुर्दशरथस्य त्वां पश्चात्स्यः परिपृच्छते ॥१३६॥
 विपुलस्तननप्राहा विम्बोष्ठी हसगाभिनी । सन्नितम्बा भवेद् दृष्टा सीता मे मनसः प्रिया ॥१३७॥
 दृष्टादृष्टेति किं वक्षि ब्रूहि ब्रूहि क्व सा क्व सा । केवलं निगदस्येवं प्रतिशब्दोऽप्यमीदृशः ॥१३८॥
 इत्युक्त्वा पुनरध्यासीत् किमदृष्टेन चोदिता । कृतान्तशत्रुणा वाला समासन्ना सती सती ॥१३९॥
 चण्डोर्मिमालयाऽप्यन्त वेगवत्याविवेकया । कान्ता हृता भवेन्नद्या विद्येव दुरितेच्छया ॥१४०॥

गई है ॥१२६॥ मैं पापाचारी इस निर्जन वनमें किसके पास जाकर तथा उसे प्रसन्न कर पूछूँ जो मुझे प्रियाका समाचार बता सके ॥१२७॥ “यह तुम्हारी प्राणतुष्य प्रिया है” इस प्रकार अमृतको प्रदान करनेवाले वचनसे कौन पुरुष मेरे मन और कानोको परम आनन्द प्रदान कर सकता है ? ॥१२८॥ इस संसारमें ऐसा कौन दयालु श्रेष्ठ पुरुष है जो मेरी सुसङ्कुपती हुई निष्पाप कान्ताको मुझे दिखा सकता है ? ॥१२९॥ प्रियाके विरहरूपी अग्निसे जलते हुए मेरे हृदय-रूपी घरको कौन मनुष्य समाचाररूपी जल देकर शान्त करेगा ? ॥१३०॥ इस प्रकार कह कर जो परम उद्देशको प्राप्त थे, पृथ्वीपर जिनके नेत्र लग रहे थे, और जिनका शरीर अत्यन्त निश्चल था ऐसे राम बार-बार कुछ ध्यान करते हुए बैठे थे ॥१३१॥

अथानन्तर कुछ ही दूरीपर उन्होंने चक्रवाका मनोहर शब्द सुना सो सुनकर उस दिशामें दृष्टि तथा कान दोनों ही लगाये ॥१३२॥ वे विचार करने लगे कि इस पर्वतके समीप ही गन्धसे सूचित होनेवाला कमल वन है सो क्या वह कुतूहल वश उस कमल वनमें गई होगी ? ॥१३३॥ नाना प्रकारके फूलोंसे व्याप्त तथा मनको हरण करनेवाला वह स्थान उसका पहलेसे देखा हुआ है सो संभव है कि वह कदाचित् क्षणभरके लिए उसके चित्तको हर रहा हो ॥१३४॥ ऐसा विचारकर वे उस स्थानपर गये जहाँ चक्रवी थी । फिर ‘मेरे विना वह कहाँ जाती है’ यह विचारकर वे पुनः उद्देशको प्राप्त हो गये ॥१३५॥ अब वे पर्वतको लक्ष्यकर कहने लगे कि हे नाना प्रकारकी धातुओंसे व्याप्त पर्वतराज ! राजा दशरथका का पुत्र पद्म (राम) तुमसे पूछता है ॥१३६॥ कि जिसका शरीर स्थूल स्तनोसे नम्रीभूत है, जिसके ओठ विम्बके समान हैं । जो हंसके समान चलती है तथा जिसके उत्तम नितम्ब हैं ऐसी मनको आनन्द देनेवाली सीता क्या आपने देखी है ? ॥१३७॥ उसी समय पर्वतसे टकराकर रामके शब्दोंकी प्रतिध्वनि निकली जिसे सुनकर उन्होंने कहा कि क्या तुम यह कह रहे हो कि हाँ देखी है देखी है तो बताओ वह कहाँ है ? कहाँ है ? कुछ समय बाद निश्चय होनेपर उन्होंने कहा कि तुम तो केवल ऐसा ही कहते हो जैसा कि मैं कह रहा हूँ जान पड़ता है यह इस प्रकारकी प्रतिध्वनि ही है ॥१३८॥ इतना कहकर वे पुनः विचार करने लगे कि वह सती वाला दुर्दैवसे प्रेरित होकर कहाँ गई

१. स्मिताननः म०, व० । २. समाचारन्पसलिलदानेन । ३. सन्नितम्बं म० ।

किंवाऽत्यन्तक्षुधातेन नितान्तक्रूरचेतसा । इभारिणा भवेदभुक्ता साधुवर्गस्य वत्सला ॥१७१॥
 पशोर्भोमैककार्यस्य र्विहस्योक्तेसरस्य सा । श्रियते दृष्टिमात्रेण नखाद्रिस्पर्शनाहिना ॥१७२॥
 भ्राता मम मृधे भीमे लक्ष्मणः संशय श्रितः । सीतया विरहश्चायं तेन जानामि नो रतिम् ॥१७३॥
 जीवलोकमिमं वेद्मि सकलं प्राप्तसंशयम् । जानामि च पुनः शून्यमहो दुःखस्य चित्रता ॥१७४॥
 दुःखस्य यावदेकस्य नावसानं ब्रजाम्यहम् । द्वितीयं तावदायातमहो दुःखार्णवो महान् ॥१७५॥
 खल्लपादस्य खण्डोऽयं हिमदग्धस्य पावकः । स्खलितस्याव्रटे पातः प्रापोऽनयां बहुत्वगाः ॥१७६॥
 ततः पर्यन्त्य विपिने पश्यन्मृगगरुमतः । विवेश स्वाश्रयं भूयः श्रिया शून्यमरण्यकम् ॥१७७॥
 अत्यन्तद्रीनवदनः कृत्वा निर्वयं धनुर्लताम् । सितश्लक्ष्णपटच्छिन्नस्तस्थौ पर्यस्य भूतले ॥१७८॥
 भूयो भूयो बहु ध्यायन् चणनिश्चलविग्रह । निराशतां परिप्राप्तः सूकारसुखराननः ॥१७९॥

अतिरुचिराच्छुन्दः

महानरानिति पुरुटुःखलंघितान् पुराकृतादसुकृतकर्मजृम्भणात् ।

अहो जना भृशमवलोक्य दीयतां मतिः सदा जिनवरधर्मकर्मणि ॥१५०॥

होगी ? जिस प्रकारकी इच्छा विद्याको हर लेती है उसी प्रकार जिसमें बड़ी बड़ी तीव्र तरङ्गें उठ रही हैं । जो अत्यन्त वेगसे बहती है तथा जिसमें विवेक नहीं है ऐसी नदी ने कहीं प्रियाको नहीं हर लिया हो ॥१३६-१४०॥ अथवा अत्यन्त भूखसे पीड़ित तथा अतिशय क्रूर चित्तके धारक किसी सिंहने साधुओके साथ स्नेह करनेवाली उस प्रियाको खा लिया है ॥१४१॥ जिसका कार्य अत्यन्त भयंकर है तथा जिसकी गर्दनके बाल खड़े हुए हैं ऐसे सिंहके देखने मात्रसे नखादिके स्पर्शके बिना ही वह मर गई होगी ॥१४२॥ मेरा भाई लक्ष्मण भयंकर युद्धमें संशयको प्राप्त है और इधर यह सीताके साथ विरह आ पड़ा है इससे मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता ॥१४३॥ मैं इस समस्त संसारको संशयमें पड़ा जानता हूँ अथवा ऐसा जान पड़ता है कि समस्त संसार शून्य दशाको प्राप्त हुआ है सो ठीक ही है क्योंकि दुःखकी बड़ी विचित्रता है ॥१४४॥ जब तक मैं एक दुःखके अन्तको प्राप्त नहीं हो पाता हूँ तब तक दूसरा दुःख आ पड़ता है । अहो ! यह दुःख रूपी सागर बहुत विशाल है ॥१४५॥ प्रायः देखा जाता है कि जो पैर लंगड़ा होता है उसीमें चोट लगती है, जो वृद्ध तुपारसे सूख जाता है उसीमें आग लगती है और जो फिसलता है वही गर्तमें पड़ता है प्रायः करके अनर्थ बहु संख्यामें आते हैं ॥१४६॥ तदनन्तर वनमें भ्रमण कर मृग और पक्षियोंको देखते हुए राम अपने रहनेके स्थान स्वरूप वनमें पुनः प्रविष्ट हुए । वह वन उस समय सीताके बिना शोभासे शून्य जान पड़ता था ॥१४७॥

तदनन्तर जिनका मुख अत्यन्त दीन था तथा जिन्होंने सफेद और महीन वस्त्र ओढ़ रक्खा था ऐसे राम धनुषको डोरी रहितकर पृथिवी पर पड़े रहे ॥१४८॥ वे वार-वार बहुत देर तक ध्यान करते रहते थे, क्षण-क्षणमें उनका शरीर निश्चल हो जाता था, वे निराशताको प्राप्त थे तथा सूकार शब्दसे उनका मुख शब्दाद्यमान हो रहा था ॥१४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो जनो ! इस प्रकार पूर्वोपार्जित पाप कर्मके उदयसे बढ़े-बढ़े पुरुषोंको अतिशय दुःखी

न ये भवप्रभवविकारसङ्गतेः पराद्सुखा जिनवचनान्युपासते ।
वशीकृतान् शरणविवर्जितानमून् तपत्यलं स्वकृत्तरविः सुदुस्सहः ॥१५९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सीताहरणरामविलापामिधानं
नामचतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४४॥



देख, जिनेन्द्र कथित धर्ममे सदा बुद्धि लगाओ ॥१५०॥ जो मनुष्य संसार सम्बन्धी विकारोंकी संगतिसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्के वचनोंकी उपासना नहीं करते हैं उन शरणरहित तथा इन्द्रियोंके वशीभूत मनुष्योंको अपना पूर्वोपार्जित कर्मरूपी दुःसह सूर्य सदा संतप्त करता रहता है ॥१५१॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमे सीताहरण और राम-विलापका वर्णन करनेवाला चवालीसवों पर्व समाप्त हुआ ॥४४॥



पञ्चचत्वारिंशत्तमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे^१ प्रातः पूर्वशिष्टो विराधितः । समेतः सचिवैश्चरैः सन्नद्धः शस्त्रसंकुलः ॥१॥
एकाकिनमसौ ज्ञाता युद्धभामानं महानरम् । स्वार्थसिद्धिसंभूतिं दीप्यमानं महौजसा ॥२॥
जानुं चितितले न्यस्य सूर्द्धन्यस्तकरद्वयः । अन्नवीदिति नम्राङ्गः परम विनय वहन् ॥३॥
नाथ ! भक्तोऽस्मि ते किञ्चिद्विज्ञाप्यं श्रूयतां मम । त्वद्विधानां हि ससर्गो निकारक्षयकारणम् ॥४॥
^२कृतार्थभाषणस्यास्य करं विन्यस्य मस्तके । पृष्ठतस्तिष्ठ भाभैर्पीरित्यवोचत लक्ष्मणः ॥५॥
ततः प्रणम्य भूयोऽसौ महाविस्मयसङ्गतः । जगाद् क्षणसञ्जातमहातेजाः प्रियं वचः ॥६॥
महाशक्तिमिमं शशुं त्वमेकं विनिवारय । रणाजिरे भटान् शोषान् निघ्ननं प्रापयाम्यहम् ॥७॥
इत्युक्त्वा 'द्वीपण सैन्य तेन शीघ्रं विराधितम्' । अथावद् बलसम्पन्नः प्रह्वलद्वैतिसंहतिः ॥८॥
उवाच च चिरात् सोऽहं चन्द्रोदरनृपात्मजः । प्राप्तो विराधितः ख्यातो रणातिथ्यसमुत्सुकः ॥९॥
केदानीं गम्यते साधु स्थीयतां युद्धशौण्डिकैः । अद्य तद्गः प्रदास्यामि यत्कृतान्तोऽतिदारुणः ॥१०॥
इत्युक्ते वैरसम्पन्नो भटानामतिसङ्कुलः । बभूव शस्त्रसम्पातः सुमहान् जनसंचयः ॥११॥
पत्तयः पत्तिभिलम्नाः सादिनः सादिभिः समम् । गजिनो गजिभिः सत्रा रथिनो रथिभिः सह ॥१२॥

अथानन्तर इसी बीचमें जिसका पहले उल्लेख किया गया था ऐसा खरदूषणका शत्रु विराधित, मन्त्रियों और शूर-वीरोंसे सहित अन्न-शस्त्रसे सुसज्जित हो वहाँ आया ॥१॥ उसने महातेजसे देदीप्यमान लक्ष्मणको अकेला युद्ध करते देख महापुंरुष समझा और यह निश्चय किया कि इससे हमारे स्वार्थकी सिद्धि होगी ॥२॥ पृथिवीतल पर घुटने टेककर तथा मस्तकपर दोनों हाथ लगाकर परम विनयको धारण करनेवाले विराधितने नम्र होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ ! मैं आपका भक्त हूँ मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है सो सुनिये क्योंकि आप जैसे महापुरुषोंकी संगति दुःखक्षयका कारण है ॥३-४॥ विराधित आधी-चात ही कह पाया था कि लक्ष्मणने उसके मस्तकपर हाथ रखकर कहा कि हमारे पीछे खड़े हो जाओ ॥५॥

तदनन्तर जो महा आश्चर्यसे युक्त था और जिसे तत्काल महातेज उत्पन्न हुआ था ऐसा विराधित पुनः प्रणामकर प्रिय वचन बोला कि इस महाशक्तिशाली एक शत्रु-खरदूषणको तो आप निवारण करो और युद्धके आँगनमें जो अन्य योद्धा हैं मैं उन सबको मृत्यु प्राप्त कराता हूँ ॥६-७॥ इतना कहकर उसने शीघ्र ही खरदूषणकी सेनाको नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया । वह सेनाके साथ लहलहाते शस्त्रोंके समूहसे युक्त हो खरदूषणकी सेनाकी ओर दौड़ा ॥८॥ उसने सामने जाकर कहा कि मैं राजा चन्द्रोदरका पुत्र विराधित युद्धमें आतिथ्य पानेके लिए उत्सुक हुआ चिरकाल बाद आया हूँ ॥९॥ अब कहाँ जाइयेगा ? जो युद्धमें शूर-वीर हैं वे अच्छी तरह खड़े हो जावे । आज मैं आप लोगोंको वह फल दूँगा जो कि अत्यन्त दारुण-कठोर यमराज देता है ॥१०॥ इतना कहते ही दोनों ओरके योद्धाओंमें बैर भरा तथा मनुष्योंका सहारा करनेवाला बहुत भारी शस्त्रोंका संपात होने लगा—दोनों ओरसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी ॥११॥ पैदल पैदलोंसे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे, गजसवार गजसवारोंसे और रथसवार रथसवारोंके

१. नगरे म० । २. श्वरैः म० । ३. सार्थसम्पद् विसम्भूर्ति म०, व० । ४. कृतार्थभीषणस्थ-म० । ५. दूष-
णस्येदं दौषणम् । ६. विराधितः क०, ख०, ज० । ७. सम्पन्न म० । ८. प्रव्वलद्वैतिसंततिः । ९. वचः
सोत्साहं म० ।

परस्परकृताह्वाणैरति^१संहर्षिभिर्मंडैः । संकुलैर्जनिते युद्धे^२कृतान्धोन्यमहायुधैः ॥१३॥
 रणानिरे परं तेजो भजमानो नवं नवम् । दिव्यकार्मुकमुद्यम्य शरच्छत्रदिगम्बरः ॥१४॥
 खरेण सह सग्रामं चक्रे परमभैरवम् । लक्ष्मीधरः शुनासीरः स्वामिनेव सुरदियाम् ॥१५॥
 ततः क्रोधपरीतेन खरेण खरनिस्वनम् । अवाचि लक्ष्मणः^३संख्ये स्फुरहोहितचक्षुषा ॥१६॥
 ममाम्बजमुदासीनं हत्वा परमचापल । कान्ताकुचौ च संमुरय पापाद्यापि क्र गम्यते ॥१७॥
 अद्य ते निश्चितैर्वाणैर्जीवितं नाशयाम्यहम् । कृत्वा तथाविध कर्म फलं तस्यानुभूयताम् ॥१८॥
 अत्यन्तक्षुद्रं निर्लज्जं परस्त्रांसङ्गोलुप । ममाभिमुखतां गत्वा परलोकं ब्रजाशुना ॥१९॥
 ततस्तैः परुषैर्वाण्यैः समुद्दीपितमानसः । उवाच लक्ष्मणो चाचं पूरयन् सकलं नभः ॥२०॥
 किं वृथा गर्जसि क्षुद्रं दुःखेचर शुना समः । अहं नयामि तत्र त्वां यत्र ते तनयो गतः ॥२१॥
 इत्युक्तवाचस्त्रितं व्योमिनि विरथं खरदूषणम् । चकार लक्ष्मणः छिन्नचापनेतुं च निःप्रभम् ॥२२॥
 ततोऽसौ पतितः क्षोण्यां नभस्तः क्रोधलोहितः । प्रचाणेष्विव पुण्येषु ग्रहस्तरलविग्रहः ॥२३॥
 खड्गांशुलीढदेहश्च सौमिद्रि प्रत्यधावत । असिरतनं समाकृष्य सोऽप्यस्याभिमुखं वयौ ॥२४॥
 इत्यासन्नं तयोरासीच्चित्रं युद्धं भयानकम् । मुमुक्षुः स्वस्थिता देवाः सपुष्पान् साधुनिस्वनान् ॥२५॥
 तावच्छिरसि संक्रुद्धो दूषणस्य न्यपातयत् । सूर्यहातं यथार्थाह्यं लक्ष्मणोऽप्युत्तविग्रहः ॥२६॥

साथ भिड़ गये ॥१२॥ तदनन्तर जो परस्पर एक दूसरेको बुलार रहे थे, जो अत्यन्त हर्षित हो रहे थे जो अत्यन्त संकुल-ज्यग्र थे और जिन्होंने एक दूसरेके बड़े-बड़े शास्त्र काट दिये थे ऐसे योद्धाओंके द्वारा उधर महायुद्ध हो रहा था इधर रणके मैदानमें नवीन-नवीन परम तेजको धारण करनेवाला लक्ष्मण, दिव्यधनुष उठाकर वाणांसे दिशाओं और आकाशको व्याप्त करता हुआ खरके साथ उस तरह अत्यन्त भयंकर युद्ध कर रहा था जिस तरह कि इन्द्र दैत्येन्द्रके साथ करता था ॥१३-१५॥ तदनन्तर क्रोधसे व्याप्त एवं चञ्चल और लाल-लाल नेत्रोंका धारण करनेवाले खरदूषणने कठोर शब्दोंमें लक्ष्मणसे कहा कि हे अतिशय चपल पापी ! मेरे निर्वैर पुत्रको मार कर तथा मेरी स्त्रियोंके स्तनोका स्पर्शकर अब तू कहाँ जाता है ? ॥१६-१७॥ आज तीक्ष्ण वाणांसे तेरा जीवत नष्ट करता हूँ तूने जैसा कर्म किया है वैसा फल भोग ॥१८॥ हे अत्यन्त क्रुद्र ! निर्लज्ज ! परस्त्री संगका लोलुप ! अब मेरे सन्मुख आकर परलोकको प्राप्त हो ॥१९॥

तदनन्तर उन कठोर वचनोंसे जिनका मन प्रदीप्त हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने समस्त आकाशको गुजाते हुए निम्नांकित वचन कहे । उन्होंने कहा कि रे क्रुद्र विद्याधर ! तू कुत्तेके समान व्यर्थ ही क्यों गरज रहा है ? मैं जहाँ तेरा पुत्र गया है वहीं तुम्हे पहुँचाता हूँ ॥ २०-२१ ॥ इतना कहकर लक्ष्मणने आकाशमें स्थित खरदूषणको रथरहित कर दिया, उसका धनुष और पताका काट डाली तथा उसे निष्प्रभ कर दिया ॥२२॥ तदनन्तर जिस प्रकार पुण्यके क्षीण होने पर चञ्चल शरीरको धारण करनेवाला ग्रह पृथिवीपर आ पड़ता है उसी प्रकार क्रोधसे लाल लाल दीखनेवाला खरदूषण आकाशसे पृथिवीपर नीचे आ पड़ा ॥२३॥ खड्गकी किरणोंसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसा खरदूषण लक्ष्मणकी ओर दौड़ा और लक्ष्मण भी सूर्यहास खड्ग खींचकर उसके सामने जा डटे ॥२४॥ इस प्रकार उन दोनोंमें निकटसे नाना प्रकारका भयंकर युद्ध हुआ तथा स्वर्गमें स्थित देवोंने साधु साधु-धन्य धन्य शब्दोंके साथ साथ उनपर पुष्पोंकी वर्षा की ॥२५॥ उसी समय अखण्डित शरीरके धारक लक्ष्मणने कुपित हो खरदूरखणके सिरपर

१. गिति म० । २. कृतान्धोन्य म० । ३. युद्धे । ४. दुष्टः खेचरः दुःखेचरस्तत्सम्बुद्धौ हे दुःखेचर ।
 ५. लीनदेहश्च म० । ६. चित्रयुद्धं म० ।

निर्जीवः पतितः क्षोण्यां बभूव खरदूषणः । आलेख्यरविसङ्काशो यद्वत्स्वर्गच्युतोऽमरः ॥२७॥
 अथवा दयितो रत्या निश्छेद्यभूतविग्रहः । रत्नपर्वतखण्डो वा विगजेन निपातितः ॥२८॥
 अथ सेनापतिर्नाम्ना दूषणः ^१खरदूषणः । विरथं कर्तुमारम्भे चन्द्रोदरनृपात्मजम् ॥२९॥
 लक्ष्मणेनेपुणा तावद्गाढं मर्मणि ^२ताडितः । घूर्णमानो गतो भूमिं समाश्वानसमाधुत ॥३०॥
 दम्बा विराधितायाथ तद्वल खरदूषणम् । प्रथमो लक्ष्मणः प्रीतः प्रदेशे पट संश्रितम् ॥३१॥
 यावत्परयति त सुसंभूमौ सीताविवर्जितम् । जगौ चोत्तिष्ठ कि नाथ याता क्व वद जानकी ॥३२॥
 उत्थाय सहसा दृष्ट्वा लक्ष्मण निर्मगङ्गकम् । किञ्चित्पमोदमायातः परिष्वजनतत्परः ॥३३॥
 जगाद् भद्र नो वेधि देवो केनापि कि हता । उत सिंहेन निर्युक्ता न दृष्टात्र गर्वेपिता ॥३४॥
 पातालं कि भवेज्जीता नभःशिखरमेव वा । उद्वेगेन विलीना वा सुकुमारशरीरिका ॥३५॥
 ततः क्रोधपरीताज्ञो विपादी लक्ष्मणोऽगदत् । देवोद्वेगानुबन्धेन न किञ्चिदपि कारणम् ॥३६॥
 नूनं दैत्येन केनापि हता केनापि जानकी । प्रियमाणासिमां लप्स्ये कर्तव्योऽत्र न संशयः ॥३७॥
 परिसान्त्वोत्तमैर्वाच्यैर्द्विविधैः श्रुतिपेशलैः । विमलेनाम्भसा तस्य मुखं प्राञ्चालयन् सुधीः ॥३८॥
 श्रुत्वा तावदलं तार शब्दमुत्तानिताननः । अपृच्छक् ^३श्रीधरं रामः सभ्रम किञ्चिदापयन् ॥३९॥
 किमेया नर्दति क्षोणो गगनात्किमर्थं ध्वनिः । किं कृतं भवता पूर्वं शत्रुशेपं भयोकिन्तम् ॥४०॥

यथार्थ नामवाला सूर्यहास खड्ग गिराया ॥२६॥ जिससे वह निर्जीव होकर चित्र लिखित सूर्यके समान उस तरह पृथिवीपर आ पड़ा जिस तरह कि स्वर्गसे च्युत हुआ कोई देव पृथिवीपर आ पड़ता है ॥२७॥ पृथिवीपर पड़ा निर्जीव खरदूषण ऐसा जान पड़ता था मानो निरखेष्ट शरीरका धारक कामदेव ही हो अथवा दिग्गजके द्वारा गिराया हुआ रत्नगिरिका एक खण्ड ही हो ॥२८॥

तदनन्तर खरदूषणका दूषण नामक सेनापति चन्द्रोदर राजाके पुत्र विराधितको रथ रहित करनेके लिए उद्यत हुआ ॥२९॥ उसी समय लक्ष्मणने उसके मर्मस्थलमे बाणसे इतनी गहरी चोट पहुँचाई कि वेचारा घूमता हुआ पृथिवीपर आ गिरा और तत्काल मृत्युको प्राप्त हो गया ॥३०॥ तदनन्तर खरदूषणकी वह समस्त सेना विराधितके लिए देकर प्रीतिसे भरे लक्ष्मण उस स्थानपर गये जहाँ श्रीराम विराजमान थे ॥३१॥ जाते ही लक्ष्मणने सीता सहित रामको पृथिवीपर सोते हुए देखा । देखकर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ ! उठो और कहो कि सीता कहाँ गई है ? ॥३२॥ राम सहसा उठ बैठे और लक्ष्मणको घाव रहित शरीरका धारक देख कुछ हर्षित हो उनका आलिङ्गन करने लगे ॥३३॥ उन्होंने लक्ष्मणसे कहा कि हे भद्र ! मैं नहीं जानता हूँ कि देवीको क्या किसीने हर लिया है या सिंहने खा लिया है । मैंने इस वनमें बहुत खोजा पर दीखी नहीं ॥३४॥ उसे कोई पातालमे ले गया है या आकाशके शिखरमे पहुँचा दी गई है अथवा वह सुकुमारान्नी भयके कारण विलीन हो गई है ॥३५॥

तदनन्तर जिनका शरीर क्रोधसे व्याप्त था ऐसे लक्ष्मणने विपाद युक्त होकर कहा कि हे देव ! उद्वेगकी परम्परा बढ़ाने से कुछ प्रयोजन नहीं है ॥३६॥ जान पड़ता है कि जानकी किसी दैत्यके द्वारा हरी गई है सो कोई भी क्यों नहीं इसे धारण किये हो मैं अवश्य ही प्राप्त करूँगा इसमे संशय नहीं करना चाहिए ॥३७॥ इस प्रकार कानोंको प्रिय लगनेवाले विविध प्रकारके वचनोंसे सान्त्वना देकर बुद्धिमान लक्ष्मणने निर्मल जलसे रामका मुख धुलाया ॥३८॥ तदनन्तर उस समय अतिशय उच्च शब्द सुन कुछ-कुछ सभ्रमको धारण करनेवाले रामने ऊपरकी ओर मुखकर लक्ष्मणसे पूछा कि क्या यह पृथिवी शब्द कर रही है या आकाशसे यह शब्द आ रहा है ? क्या तुमने पहले मेरे द्वारा छोड़े हुए शत्रुको शेष रहने दिया है ? ॥३९-४०॥

सुमित्राजस्ततोऽजोचत्त्रायाऽत्र हि महाहवे । उपकारो महान् काले खेचरेण कृतो मम ॥४१॥
 चन्द्रोदरसुतः सोऽथ विराधित इति श्रुतः । प्रस्तावे दैवतेनैव हितेन परिदौकितः ॥४२॥
 चतुर्विधेन महता बलेनास्य सुचेतसः । आगच्छतो महानेप शब्दः श्रुतिमुपागतः ॥४३॥
 विश्रब्धचेतयोर्भावत् कथेय वचने तयोः । तावन्महाबलोपेतः परिप्राप विराधितः ॥४४॥
 ततो जयजयस्वानं कृत्वा विरचित्ताञ्जलिः । जगाद् खेचरस्वामी प्रणतैः सचिवैः समम् ॥४५॥
 स्वामी त्व परमोऽस्माभिश्चिरात् प्राप्सो नरोत्तमः । अतः प्रदीयतामाज्ञा नाथ कर्तव्यवस्तुनि ॥४६॥
 इत्युक्तो लक्ष्मणोऽभार्णात् साधो श्युषु सुवर्तनम् । गुरोः केनापि मे पत्नी हता दुर्नयवर्तिना ॥४७॥
 तथा विरहितः सोऽथ पद्मः शोकवशीकृतः । यदि नाम त्यजेत् प्राणांस्तावद्द्विं विशाम्यहम् ॥४८॥
 पृतव्याणदृढासक्तात् भद्रं प्राणानवैहि मे । ततोऽत्र प्रकृते किञ्चित्कर्तव्यं कारणं परम् ॥४९॥
 ततो नताननः किञ्चिन्नगप्रसुरचिन्तयत् । कृत्वापि श्रममेतं मे कष्टमाशा न पूरिता ॥५०॥
 सुखं सवसता स्वेष्टं नानावचविहारिणा । पश्यात्मा थोजितः कष्टे कथं संशयगह्वरे ॥५१॥
 दुःखान्निवर्ततं प्राप्सो यां यां गृह्णाम्यहं लताम् । देवैर्नोन्मूल्यते सा सा कृत्स्नं विधिवशं जगत् ॥५२॥
 तथाप्युत्साहमाश्रित्यं कर्तव्यं समुपागतम् । करोमि कुर्वतो भद्रमभद्रं वास्वकर्मजम् ॥५३॥
 इति ध्यात्वावहीरूपं भजन्नुत्साहसंस्तुतम् । जगाद् सचिवान् धीरो वचसा स्फुटतेजसा ॥५४॥
 पत्नी महानरस्यास्य नीता यद्वि महांसलम् । अथाकाण गिरि वारि स्थलं वा विपिनं पुरम् ॥५५॥
 गवेपयत यत्नेन सर्वोशासुसम ततः । यद्विच्छुत कृतार्थानां तदास्यामि महाभयदाः ॥५६॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ ! इस महायुद्धमें विद्याधरने समय पर मेरा बड़ा उपकार किया है । वह विद्याधर राजा चन्द्रोदरका पुत्र विराधित है जो हितकारी दैवके द्वारा ही मानो अवसर पर मेरे समीप भेजा गया था ॥४१-४२॥ उत्तम हृदयको धारण करनेवाला वह विद्याधर चार प्रकारकी बड़ी भारी सेनाके साथ आपके पास आ रहा है सो यह महान् शब्द उसोका सुनाई दे रहा है ॥४३॥ इधर विश्वस्त चित्तके धारक राम-लक्ष्मणके बीच जब तक यह कथा चलती है तब तक बड़ी भारी सेनाके साथ विराधित वहाँ आ पहुँचा ॥४४॥ तदनन्तर विद्याधरोके राजा विराधितने नम्रीभूत मन्त्रियोंके साथ-साथ हाथ जोड़कर तथा जय-जय शब्दका उच्चारण कर कहा कि आप मनुष्योंमें उत्तम उत्कृष्ट स्वामी चिरकाल वाद प्राप्त हुए हो सो करने योग्य कार्यके विषयमें मुझे आज्ञा दीजिये ॥४५-४६॥ इस प्रकार कहने पर लक्ष्मणने कहा कि हे सज्जन ! सुनो किसी दुराचारीने मेरे अग्रज-रामकी पत्नी हर ली है सो उससे रहित राम, शोकके वशीभूत हो यदि प्राण छोड़ते हैं तो मैं निश्चय ही अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥४७-४८॥ क्योंकि हे भद्र ! तुम यह निश्चित जानो कि मेरे प्राण इन्हींके प्राणोंके साथ मजबूत बंधे हुए हैं इसलिए इस विषयमें कुछ उत्तम उपाय करना चाहिए ॥४९॥ तब विद्याधरोका राजा विराधित नीचा मुलकर कुछ विचार करने लगा कि अहो ! इतना श्रम करने पर भी मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई ॥५०॥ मैं पहले सुखसे इच्छानुसार निवास करता था फिर स्थानभ्रष्ट हो नाना वनोंमें भ्रमण करता रहा । अब मैंने अपने आपको इनकी शरणमें सौंपा सो देखो ये स्वयं कष्टकारी संशयके गर्तमें पड़ रहे हैं ॥५१॥ दुःखरूपी सागरके तटको प्राप्त हुआ मैं जिस-जिस लताको पकड़ता हूँ सो दैवके द्वारा वही-वही लता उखाड़ दी जाती है, वास्तवमें समस्त संसार कर्मोंके आधीन है ॥५२॥ यद्यपि ये अपने कर्मके अनुसार हमारा भला या बुरा कुछ भी करें तो भी मैं उत्साह धारण कर इनके इस उपस्थित कार्यको अवश्य करूँगा ॥५३॥ इस प्रकार अन्तरङ्गमें विचार कर उत्साहको धारण करते हुए धीर-वीर विराधितने तेज पूर्ण वचनोंमें मन्त्रियोंसे कहा

१ अवसरे, प्रवृत्ते म० । २ परिप्राप्तो म० । ३ अग्रजस्य । ४. -माहृत्य म० । ५. भजन्नुत्साहमसंस्तुयाम् म० । ६. गवेपयतो म० ।

इत्युक्ताः सम्मदोपेताः सन्नद्धाः परमौजसः । नानाकल्पाः खगा जग्मुर्दिशो दश यशोधिः ॥५७॥
 अथार्कजटिनः सूनुनर्मिना रत्नजटी खगः । खङ्गी द्रागिति शुभ्रात्र दूरतो रुदितध्वनिम् ॥५८॥
 आशां च भजमानस्तास्माकर्णदिति निस्त्रनम्^१ । हा राम हा कुमारिति जलधेरूर्ध्वमम्बरे ॥५९॥
^२परिदेवननिस्वान श्रुत्वा त सपरिस्फुटम् । समुत्पपात तं देश विमानं यावद्दीप्तते ॥६०॥
 अस्योपरि परिक्रन्दं कुर्वन्तीमिति विह्वलाम्^३ । वैदेहीं स समालोक्य वभाम क्रोधपूरितः ॥६१॥
 तिष्ठ तिष्ठ महापाप दुष्ट विद्याधरायम । कृत्वापराधर्मादृचं क त्वया गम्यतेऽधुना ॥६२॥
 दयित्वां रामदेवस्य प्रभामण्डलसोदराम् । सुञ्च शीघ्रमभीष्ट ते जीवितं यदि दुर्मते ॥६३॥
 ततो दशाननोऽप्येनमाक्रोश्य परुषस्वनम् । युद्धे समुद्यतः क्रुद्धो विह्वलीभूतमानसः ॥६४॥
 पुनश्चाचिन्तयद्युद्धे^४ प्रवृत्ते सति विह्वला । मयानिरूपिता सीता कदाचित्पञ्चतां भजेत् ॥६५॥
 आकुलां^५ रचता चैतां परमव्याकुलात्मना । न व्यापादयितु शक्यः क्षुद्रोऽप्येव नभक्षरः ॥६६॥
 इति सञ्चित्य सम्भ्रान्तभ्रयमौल्युत्तराम्बरः ।^६ स्वस्थस्य रत्नजटिनो बलीं विद्यामपाहरत् ॥६७॥
 अथ रत्नजटी व्रतः किञ्चिन्मन्त्रप्रभावतः । पपात शनकैरुक्तास्फुलिङ्ग इव मेदिनीम् ॥६८॥
 समुद्रजलमध्यस्थ कम्बुद्वीप समाश्रितः । आयुर्वर्तनसामर्थ्याद्भ्रमपातो यथा वणिक् ॥६९॥
 निश्चलश्च क्षणं स्थित्वा समुच्छ्रस्यायत भृशम् । कम्बुपर्वतमारुह्य दिशाचक्रं व्यलोकयत् ॥७०॥

किं इन महामानवकी पत्नी, महीतल, आकाश, पर्वत, जल, स्थल, वन अथवा नगरमें कहीं भी ले जाई गई हो यत्नपूर्वक समस्त दिशाओंमें सब ओरसे उसकी खोज करो । हे महायोद्धाओ ! खोज करने पर तुम लोग जो चाहोगे वह प्रदान करूँगा ॥५४-५६॥ इस प्रकार कहने पर हर्षसे युक्त, अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित, परम तेजके धारक, नाना प्रकारकी वेप-भूपासे सुशोभित और यशके इच्छुक विद्याधर दशों दिशाओंमें गये ॥५७॥

अथानन्तर अर्कजटीके पुत्र रत्नजटी नामक खड्गधारी विद्याधरने दूरसे शीघ्र ही रोनेका शब्द सुना ॥५८॥ जिस दिशासे रोनेका शब्द आ रहा था उसी दिशामें जाकर उसने समुद्रके ऊपर आकाशमें 'हा राम ! हा कुमार लक्ष्मण !' इस प्रकारका शब्द सुना ॥५९॥ विलापके साथ आते हुए उस अत्यन्त स्पष्ट शब्दको सुनकर जब वह उस स्थानकी ओर उड़ा तब उसने एक विमान देखा ॥६०॥ उस विमानके ऊपर विलाप करती हुई अतिशय विह्वल सीताको देखकर वह क्रोध-युक्त हो बोला कि अरे ठहर-ठहर, महापापी दुष्ट नीच विद्याधर ! ऐसा अपराध कर अब तू कहा जाता है ? ॥६१-६२॥ हे दुष्टुद्धे ! यदि तुझे जीवन इष्ट है तो रामदेवकी स्त्री और भामण्डल की बहिनको शीघ्र ही छोड़ ॥६३॥ तदनन्तर कर्कश शब्द कहनेवाले रत्नजटीके प्रति कर्कश शब्दोंका उच्चारण कर क्रोधसे भरा तथा विह्वल चित्तका धारक रावण युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६४॥ फिर उसने विचार किया कि 'युद्ध होने पर मैं इस विह्वल सीताको देख नहीं सकूँगा और उस दशामे सम्भव है कि वह कदाचित् मृत्युको प्राप्त हो जाय और यदि इस घबड़ाई हुई सीताकी रक्षा भी करता रहूँगा तो अत्यन्त व्याकुल चित्त होनेके कारण, यद्यपि यह विद्याधर छुद्र है तो भी मेरे द्वारा मारा नहीं जा सकेगा' ॥६५-६६॥ इस प्रकार विचार कर हड़बड़ाहट के कारण जिसके मुकुट और उत्तरीय वस्त्र शिथिल हो गये थे ऐसे बलवान् रावणने आकाशमें स्थित रत्नजटी विद्याधर की विद्या हर ली ॥६७॥

अथानन्तर भयभीत रत्नजटी किसी मन्त्रके प्रभावसे उल्काके तिलगोंके समान धीरे-धीरे पृथ्वी पर आ पड़ा ॥६८॥ जिसका जहाज डूब गया है ऐसे वणिक्के समान वह आयुका अरिस्तव शोप रहनेके कारण समुद्र जलके मध्यमें स्थित कम्बुनामक द्वीपमें पहुँचा ॥६९॥ वहाँ वह क्षणभर

१. -यति निस्त्रनम म० । २. यदि देवेन म० । ३. मतिविह्वलाम् म० । ४. प्रवर्तं म० । ५. रक्षिता म० । ६. स्वस्थस्य म० । ७. बलवान् रावणः ।

ततः समुद्रवातेन शिशिरत्वमुपेतुया ।^१ अपनीतश्रमस्वेदः समाशरवासदुःखितः ॥७१॥
 येऽन्यन्येऽन्वेषणं कर्तुं गतास्तेऽन्विव्य शक्तिः । राघवस्यान्तिकं प्राप्ताः प्रणष्टवदनीजसः ॥७२॥
 तेषां ज्ञात्वा मनः शून्यं महोविन्ध्यस्तच्छ्रुत्वा । पद्मो जगात् दृष्टोऽप्य निरवस्थं म्लानलोचनः ॥७३॥
 निजां शक्तिमसुखमिभवंद्भिः साञ्जुल्लेचरा । अस्मत्कार्यं कृतो यत्नो देवं तु प्रतिकूलकम् ॥७४॥
 तिष्ठत स्वेच्छयेदानीं यात वा स्वं समाश्रयम् ।^२ वाडवात्यगतं रत्नं करात् किं पुनरीच्यते ॥७५॥
 नूनं सर्वं कृतं कर्म प्रावर्णाय फलं मया । तत्कर्तुमन्यथा शक्यं न भवद्भिर्मयापि वा ॥७६॥
 विमुक्तं वन्धुभिः कष्टं विहृष्टं वनमाश्रितम् । अनुकम्पा न तत्रापि जनिता दैवशत्रुणा ॥७७॥
 मन्ये यथानुचन्धेन लघोऽयं विधिरुद्धतः । तथैतस्मात्परं दुःखं किं नामान्यत्करिष्यति ॥७८॥
 परिदेवनमारुधे कर्तुमेव नराधिपे । धीर विराधितोऽज्ञोचत् परिसान्धवनपण्डितः ॥७९॥
 विपादमतुलं देव किमेवमनुजेवसे । स्वल्पैरेव दिनैः पश्य प्रियामनघविग्रहाम् ॥८०॥
 शोको हि नाम कोऽप्येव विपभेदो महत्तमः । नाशयत्याश्रित देहं का कथान्येपु वस्तुषु ॥८१॥
 तस्मादवलम्ब्यतां धैर्यं महापुरुषसेवितम् । भवद्भिधा विवेकानां भवनं चैत्रमुत्तमम् ॥८२॥
 जीवन् परशति भद्राणि धीरश्रितरादपि । भ्रष्टां हृत्स्वमतिभ्रष्टं कृच्छ्रादपि न परयति ॥८३॥
 कालो नैव विपादस्य दीयतां कारणे मनः ।^३ औदासीन्यमिहानर्थं कुर्वते परमं पुरा ॥८४॥

निश्चल बैठौ फिर बार-बार लम्बी साँस लेकर वह कन्धु पर्वत पर चढ़कर दिशाओंकी ओर देखने लगा ॥७०॥ तदनन्तर समुद्रकी शीतलवायुसे जिसका परिश्रम और पसीना दूर हो गया था ऐसा दुःखी रत्नजटी कुल्ल संतुष्ट हुआ ॥७१॥ जो अन्य विद्याधर सीताकी खोज करनेके लिए गये थे वे शक्तिभर खोज कर रामके समीप वापिस पहुँचे उस समय प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होनेसे उनके मुखका तेज नष्ट हो गया था ॥७२॥ जिनके नेत्र पृथ्वी पर लग रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका मन शून्य जान कर म्लाननेत्रोके धारक रामने लम्बी और गरम साँस भरकर कहा कि हे धन्य विद्याधरो ! आप लोगोंने अपनी शक्ति न छोड़ते हुए हमारे कार्यमें प्रयत्न किया है पर मेरा भाग्य ही विपरीत है ॥७३-७४॥ अब आपलोग अपनी इच्छानुसार वैदिये अथवा अपने-अपने घर जाइये । जो रत्न हाथसे छूटकर बडवानलमें जा गिरता है वह क्या फिर दिखाई देता है ? ॥७५॥ निश्चय ही जो कुल्ल कर्म मैंने किया है उसका फल प्राप्त करने योग्य है उसे न आप लोग अन्यथा कर सकते हैं और न मैं भी अन्यथा कर सकता हूँ ॥७६॥ मैंने भाई-बन्धुओंसे रहित, कष्टकारी दूरवर्ती वनका आश्रय लिया सो वहाँ भी भाग्यरूपी शत्रुने मुझपर दया नहीं की ॥७७॥ जान पड़ता है कि यह उत्कट दुःख मेरे पीछे लग गया है सो इससे अधिक दुःख और क्या करेगा ? ॥७८॥ इस प्रकार कहकर राम विलाप करने लगे तब सान्धवना देनेमें निपुण विराधितने बड़ी धीरतासे कहा कि हे देव ! आप इस तरह अनुपम विषाद क्यों करते हैं ? आप थोड़े ही दिनोंमें निष्पाप शरीरकी धारक प्रियाको देखेंगे ॥७९-८०॥ यथार्थमें यह शोक कोई बड़ा भारी विपत्तिका भेद है जो आश्रित शरीरको नष्ट कर देता है अन्य वस्तुओंकी तो चर्चा ही क्या है ? ॥८१॥ इसलिये महापुरुषोंके द्वारा सेवित धैर्यका अवलम्बन कीजिए आप जैसे उत्तम-पुरुष चित्तके उत्पत्तिके उत्तम क्षेत्र हैं ॥८२॥ धीरधीर मनुष्य यदि जीवित रहता है तो बहुत समय वाद भी कल्याणको देख लेता है और जो तुच्छ बुद्धिका धारी अधीर मनुष्य है वह कष्ट भोगकर भी कल्याणको नहीं देख पाता है ॥८३॥ यह विषाद करनेका समय नहीं है कार्य करनेमें मन दीजिये क्योंकि उदासीनता बड़ा अनर्थ करनेवाली है ॥८४॥

१. अरतीश्रमस्वेदसमाशरवासदुःखितः म० । २. यथा त्वन्वेषणं म० । ३. वाडवात्या गतं म०, व० । ४. विदुं । ५. यही ख० । ६. उदासीन म० ।
 ३२-२

विद्याधरमहाराजे निहते खरदूपणे । अर्थान्तरमनुप्राप्तं तुरन्तमवधार्यताम् ॥८५॥
 किष्किन्धेन्द्रेन्द्रजिह्वारौ भानुकर्णस्तथैव च । त्रिशिराः क्षोभणो भीमः क्रूरकर्मा महोदरः ॥८६॥
 पृवमाद्या महायोधा नानाविधामहौजसः । यास्यन्ति साम्प्रतं क्षोभं मित्रस्वजनदुःखतः ॥८७॥
 नानायुद्धसहस्रेषु सर्वेऽमी लब्धकर्त्तव्यः । विजयार्धनगावासखगेन्द्रेणाप्यसाधिताः ॥८८॥
 पवनस्यात्मजः ख्यातो यस्य वानरलक्षितम् । वैतुं दूरात् समालोक्य विद्रवन्ति^१ द्विषां गणाः^३ ॥८९॥
 तस्याभिमुखतां प्राप्य दैवयोगात् सुरा अपि । त्यजन्ति विजये बुद्धिं स हि कोऽपि महाशयाः ॥९०॥
 तस्मादुत्तिष्ठ नत् स्थानमलङ्काराख्यमाश्रिताः । भामण्डलस्त्रसुवार्तां स्वस्थोभूता लभामहे ॥९१॥
 तद्धि नः पुरमायातमन्वयेन रसातले । तत्र दुर्गे स्थिताः कार्यं चिन्तयामो यथोचितम् ॥९२॥
 इत्युके चतुरैरश्वैश्चतुर्भिर्युकमुत्तमम् । भास्वरं रथमारुह्य प्रस्थितौ रघुनन्दनौ ॥९३॥
 श्युभ्राते तदत्यन्त न तौ पुरुषसत्तमौ । सीताया रहितौ^२ सम्यग्दृष्ट्वा बोधशमाविव ॥९४॥
 चतुर्विधमहासैन्यसागरेण समावृतः । त्वरावानग्रतस्तस्थौ चन्द्रोदरनृपाम्बजः ॥९५॥
 तावच्चन्द्रनखासूत्रं नगरद्वारनिःसृतम् । कृतयुद्धं पराजित्य प्रविष्टः परमं पुरम् ॥९६॥
 तत्र देवनिवासाभे पुरे रत्नसमुज्ज्वले^५ । यथोचित स्थितं चक्रुः खरदूपणवेदमनि ॥९७॥
 तस्मिन्नमरसङ्ग्रामे भवने रघुनन्दनः । सीताया गमनाल्लेभे श्रुति तु न मनागपि ॥९८॥
 अरण्यमपि रम्यत्वं याति कान्तासमागमे । कान्ताविशोभादग्रथस्य सर्वं विन्ध्यवनायते ॥९९॥

विद्याधरों के राजा खरदूषणके भारे जाने पर दूसरी बात हो गई है और जिसका फल अच्छा नहीं होगा ऐसा आप समझ लीजिए ॥८५॥ किष्किन्धापुरी का राजा सुग्रीव, इन्द्रजित्, भानुकर्ण, त्रिशिरा, क्षोभण, भीम, क्रूरकर्मा और महोदर आदि बड़े-बड़े योद्धा जो नाना विद्याओंके धारक तथा महा तेजस्वी हैं इस समय अपने मित्र-खरदूपणके कुटुम्बी जातोंके दुःखसे क्षोभको प्राप्त होगे ॥८६-८७॥ इन सब योद्धाओंने नाना प्रकारके हजारों युद्धोंमें सुयश प्राप्त किया है तथा विजयार्ध पर्वत पर रहनेवाला विद्याधरोंका राजा भी इन्हें वश नहीं कर सकता ॥८८॥ पवनक्षयका पुत्र हनुमान् अतिशय प्रसिद्ध है जिसकी वानर चिह्नित ध्वजा देखकर शत्रुओंके मुण्ड दूरसे ही भाग जाते हैं ॥८९॥ दैव योगसे देव भी उसका सामना कर विजयकी अभिलाषा छोड़ देते हैं यथार्थमें वह कोई अद्भुत महा यशस्वी पुरुष है ॥९०॥ इसलिए उठिये अलंकारपुर नामक सुरक्षित स्थानका आश्रय ले वही निश्चिन्ततासे रहकर भामण्डलकी वहिनका समाचार प्राप्त करें ॥९१॥ वह अलंकारपुर पृथिवीके नीचे है और हम लोगोंकी वंश परम्परासे चला आया है उसी दुर्गम स्थानमें स्थित रहकर हम लोग यथा योग्य कार्यकी चिन्ता करेंगे ॥९२॥ इस प्रकार कहने पर चार चतुर घोड़ोंसे जुते हुए उत्तम देदीयमान रथ पर सवार होकर राम-लक्ष्मणने प्रस्थान किया ॥९३॥ जिस प्रकार सम्यग्दर्शनसे रहित ज्ञान और चारित्र सुशोभित नहीं होते हैं उसी प्रकार उस समय सीतासे रहित राम और लक्ष्मण सुशोभित नहीं हो रहे थे ॥९४॥ चार प्रकारकी महासेना रूपी सागरसे घिरा विराधित शीघ्रता करता हुआ उनके आगे स्थित था ॥९५॥ जब तक वह पहुँचा तब तक चन्द्रनखाका पुत्र नगरके द्वारसे निकल कर युद्ध करने लगा सो उसे पराजित कर वह परम सुन्दर नगरके भीतर प्रविष्ट हुआ ॥९६॥ वह नगर देवोंके निवास स्थानके समान रत्नोंसे देदीयमान था । वहाँ जाकर विराधित तथा राम लक्ष्मण खरदूषणके भवनमें यथायोग्य निवास करने लगे ॥९७॥ यद्यपि वह भवन देवभवनके समान था तो भी राम सीताके चले जानेसे वहाँ रज्ज मात्र भी धैर्यको प्राप्त नहीं होते थे— वहाँ उन्हें सीताके त्रिना त्रिलकुल भी अच्छा नहीं लगता था ॥९८॥ स्त्रीके समागममें वन भी

१. सर्वे सम्प्रातकर्त्तव्यः म० । २. विद्रवति म० । ३. गण. म० । ४. त्यजति विषये म० ।

५. सम्यग्दृष्टिर्बोध-म० । ६. समाकुले म० ।

अयैकान्ते गृहस्थास्य तरुण्यविराजिते । प्रासादमनुलं वीक्ष्य ससार रघुनन्दनः ॥१००॥
तत्रार्हव् प्रतिमां दृष्ट्वा रत्नपुष्पकृताचनानाम् । चणविस्मृतसन्तापः पद्मो धृतिमुपगतः ॥१०१॥
इतस्ततश्च तत्रार्चां वीक्षमाणः कृतानतिः । किञ्चित् प्रशान्तदुःखोर्मिरवत्स्थे रघूत्तमः ॥१०२॥
आत्मीयबलगुणश्च सुन्दो मात्रा समन्वितः । पितृभ्रातृविनाशेन शोको लङ्कामुपाविशत् ॥१०३॥

शालिनीचन्द्रः

एव सङ्गान् सावसानान् विदित्वा नानादुःखैः प्रापणीयानुपायैः ।
विघ्नैर्युक्तान् भूरिभिर्दुर्निवारैरिच्छां तेषु प्राणिनो मा कुरुष्वम् ॥१०४॥
यद्यप्याशापूर्वकमनुभावान् सङ्गं कर्तुं जायते प्राणभजाम् ।
प्राप्य ज्ञान साधुवर्गोपदेशाद्गन्त्री नाशं सा रवेः शर्वरीव ॥१०५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतावियोगदाहामिधान नाम
पञ्चचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४५॥

रमणीयताको प्राप्त होता है और स्त्रीके वियोगसे जलते हुए मनुष्यको सब कुछ विन्ध्य धनके समान जान पड़ता है ॥६६॥

अथानन्तर वृद्धोके समूहसे सुशोभित, उस भवनके एकान्त स्थानमे अनुपम मन्दिर देखकर राम वहाँ गये ॥१००॥ उस मन्दिरमे रत्न तथा पुष्पोसे जिसकी पूजा की गई थी ऐसी जिनेन्द्र प्रतिमाके दर्शनकर वे क्षणभर सब संताप भूलकर परम धैर्यको प्राप्त हुए ॥१०१॥ उस मन्दिरमे इधर-उधर जो और भी प्रतिमाएँ थी उनके दर्शन करते तथा नमस्कार करते हुए राम वहाँ रहने लगे । जिनेन्द्र प्रतिमाओंके दर्शन करनेसे उनके दुःखकी लहरे कुछ शान्त हो गई थी ॥१०२॥ पिता और भाईके मरनेसे जिसे शोक हो रहा था ऐसा सुन्द, अपनी सेनासे सुरक्षित होता हुआ माता चन्द्रनखाके साथ लङ्कामे चला गया ॥१०३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार जो नाना प्रकारके दुःखदायी उपायोसे प्राप्त करने योग्य हैं तथा अनेक प्रकारके दुर्निवारसे युक्त हैं ऐसे इन परिग्रहोंको नष्ट कर जानकर हे भण्यजनो ! उनमे अभिलाषा मत करो ॥१०४॥ यद्यपि पूर्व कर्मोदयसे प्राणियोंके परिग्रह संचित करनेकी आशा होती है तो भी मुनि-समूहके उपदेशसे ज्ञान प्राप्तकर वह आशा उस तरह नष्ट हो जाती है जिस तरह कि सूर्यसे प्रकाश पाकर रात्रि नष्ट हो जाती है ॥१०५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमे सीताके वियोगजन्य दाहका वर्णन करनेवाला पैतालीसवों पर्व समाप्त हुआ ॥४५॥



षट्चत्वारिंशत्तमं पर्व

तत्रासावुत्तमे सुद्धे विमानशिखरे स्थितः । स्वैर स्वैरं ब्रजन् रेजे रावणो दिवि भानुवत् ॥१॥
 सीतायाः शोक्तसाया ग्लानं वीचयास्यपङ्कजम् । रतिरागविमूढात्मा दध्नी किमपि रावणः ॥२॥
 अश्रुदुर्दिनवक्रायाः सीतायाः कृपणं परम् । नानाप्रीयशतान्यूचे पृष्ठतः पारवैतोऽग्रतः ॥३॥
 मारस्यात्यात्यन्तसूदुमिर्हृतोऽहं कुसुमेषुभिः । त्रिये यदि ततः साध्वि नरहत्या भन्नेत्तव ॥४॥
 वक्रत्रारविन्दमेतत्ते सकोपमपि सुन्दरि । राजते चारुभावानां सर्वथैव हि चारुता ॥५॥
 प्रसीद् देवि भृत्यास्ये सकृच्छ्रुर्विधीयताम् । त्वच्छ्रुकान्तितोयेन स्नातस्वोपैतु मे श्रमः ॥६॥
 यदि दृष्टिप्रसादं मे न करोषि वरानने । एतेन पापघनेन सकृत् ताडय मस्तके ॥७॥
 भवत्या रमणोद्याने किं न जातोऽस्त्यशोककः । सुलभा यस्य ते श्लाघ्या पादपद्मतलाहतिः ॥८॥
 कृशोदरि गवाक्षेण विमानशिखरस्थिता । दिशः पश्य प्रयातोऽस्मि विषदूर्ध्वं रवेरपि ॥९॥
 कुलपर्वतसयुक्तां समेहं सहसागराम् । पश्य षोणोमिमां देवि शिल्पितेव विनिर्मितात् ॥१०॥
 एवमुक्ता सती सीता पराचीनव्यवस्थिता । अन्तरे तृणमाधाय जगादारुचिताक्षरम् ॥११॥
 अवसर्पं ममाद्धानि मा स्पृशः पुरुषाधम । निन्द्याक्षरामिमां वाणीमीदृशी भापसे कथम् ॥१२॥

अथानन्तर विमानके ऊँचे शिखर पर बैठे इच्छानुसार गमन करता हुआ रावण आकाशमें सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥१॥ रति सम्बन्धी रागसे जिसकी आत्मा विमूढ हो रही थी ऐसा रावण शोक-संतप्त सीताके मुरझाये हुए मुख-कमलका ध्यान कर रहा था—उसी ओर देख रहा था ॥२॥ जिसके मुखसे निरन्तर अश्रुओंकी वर्षा हो रही थी ऐसी सीताके आगे-पीछे तथा बगलमें खड़ा होकर रावण बड़ी दीनताके साथ नाना प्रकारके सैकड़ों प्रिय वचन बोलता था ॥३॥ वह कहता था कि मैं कामदेवके अतिशय कोमल पुष्पमयी बाणोंसे घायल होकर यदि मर जाऊँगा तो हे साध्वि ! तुम्हे नरहत्या लगेगी ॥४॥ हे सुन्दरि ! तेरा यह मुखारविन्द क्रोध सहित होने पर भी सुशोभित हो रहा है सो ठीक ही है क्योंकि जो सुन्दर हैं उनमे सभी प्रकारसे सुन्दरता रहती है ॥५॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ और इस दासके मुख पर एक बार च्छु डालो । तुम्हारे च्छुकी कान्ति रूपी जलसे नहाने पर मेरा सब श्रम दूर हो जायगा ॥६॥ हे सुमुखि ! यदि दृष्टिका प्रसाद नहीं करती हो—आँख उठाकर मेरी ओर नहीं देखती हो तो इस चरण-कमलसे ही एक बार मेरे मस्तक पर आघात कर दो ॥७॥ मैं तुम्हारे मनोहर उद्यानमें अशोक वृक्ष क्यों नहीं हो गया ? क्योंकि वहाँ तुम्हारे इस चरण-कमलका प्रशंसनीय तल प्रहार सुलभ रहता ॥८॥ हे कृशोदरि ! विमानकी छत पर बैठकर भरोखेसे जरा दिशाओंको तो देखो मैं सूर्यसे भी कितने ऊपर आकाशमें चल रहा हूँ ॥९॥ हे देवि ! कुलाचलो, मेरु पर्वत और सागरसे सहित इस पृथिवीको देखो । यह ऐसी जान पड़ती है मानो किसी कारीगरके द्वारा ही बनाई गई हो ॥१०॥ इस प्रकार कहने पर पीठ देकर बैठे हुई सीता बीचमें तृण रखकर निम्नाङ्कित अप्रिय वचन बोली ॥११॥

उसने कहा कि हे नीच पुरुष ! हट, मेरे अङ्ग मत छू । तू इस प्रकारकी यह निन्दनीय वाणी

१. अस्तु दुर्दिनवक्रायाः म० । २. संयुक्तं म० । ३. सहसागरम् म० । ४. विनिर्मितम् म० ।

५. व्रण- म० । ६. अपसार्यं म० ।

पापालकमनायुष्यमस्वर्ग्यमयशस्करम् । असर्वाहितमेतत्ते विरुद्धं भयकारि च ॥१३॥
 परदारान् समाकांचन् महादुःखमवाप्स्यसि । पश्चात्तापपरीताहो भस्मकृन्नानलोपमम् ॥१४॥
 महता मोहपंकेन तवोपचितचेतसः । सुधा धर्मोपदेशोऽयमन्धे नृत्यविलासवत् ॥१५॥
 इच्छामात्रादपि छुद्रं वदध्वा पापमनुत्तमम् । नरके वासमासाद्य कष्ट वर्त्तनमाप्स्यसि ॥१६॥
 रूपाचराभियानाभिः परं वाणीभिरित्यापि । मद्रनाहृतचित्तस्य प्रेमास्य न निवर्त्तते (न्यवर्त्तत) ॥१७॥
 तत्र दूषणसंग्रामे निवृत्ते परममियाः । ^१शुकहस्तप्रहस्ताद्याः सोद्वेगाः स्वाम्यदर्शनात् ॥१८॥
 चल्केनुमहाखण्डं क्रुमारार्कसमप्रभम् । विमानं वीच्य द्वाशास्यं मुदितास्तं ह्रुद्वीकिरे ॥१९॥
 प्रदानैर्दिव्यवस्तुनां सम्मानैश्चाटुभिः परैः । तामिश्च श्रुत्यसम्पन्निरग्राह्या जनकात्मजा ॥२०॥
^३शक्नोति सुखधोः पातुं कः शिखामाद्युशुक्लणेः । को वा नागवधूर्त्तिं स्पृशेद् रत्नशालाकिकाम् ॥२१॥
 हृत्वा करपुटं मूर्च्छिं वशान्गुलिसमाहितम् । ननाम रावणः सीतां निम्बितोऽपि तृणाग्रवत् ॥२२॥
 महेंद्रसद्योस्तावद्विमवैः सचिवैर्भृशम् । नानादिग्ध समायातैरावृतो रक्षसां पतिः ॥२३॥
 जय वर्धस्व नन्देति शब्दै श्रवणहारिभिः । उपगतात् परिप्रासो लङ्कामाखण्डलोपमः ॥२४॥
 अचिन्तयच्च रामस्त्री सोऽयं विद्याधराधिप । यत्राचरत्यमर्यादां तत्र किं शरणं भवेत् ॥२५॥
 यावद्यात्नोमि नो वातां भर्तुः क्रुशालवर्तिनः । तावदाहारकार्यस्य प्रत्याप्यानमिदं मम ॥२६॥

क्यों बोल रहा है ? ॥१२॥ तेरी यह दुष्ट चेष्टा पाप रूप है, आयुको कम करनेवाली है, नरकका कारण है अपकीर्तिको करनेवाली है, विरुद्ध है तथा भय उत्पन्न करनेवाली है ॥१३॥ परस्त्रीकी इच्छा करता हुआ तू महादुःखको प्राप्त होगा तथा भस्मसे आच्छादित अग्निके समान पश्चात्तापसे तेरा समस्त शरीर व्याप्त होगा ॥१४॥ अथवा तेरा चित्त पापरूपी महापङ्कसे व्याप्त है अतः तुझे धर्मका उपदेश देना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार कि अन्धके सामने नृत्यके हाव-भाव दिखाना व्यर्थ होता है ॥१५॥ अरे नीच ! परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे तू बहुत भारी पाप बौधकर नरकमें जायगा और वहाँ कष्टकारी अवस्थाको प्राप्त होगा ॥१६॥ इस प्रकार यद्यपि सीताने कठोर अहंरोसे भरी वाणीके द्वारा रावणका तिरस्कार किया तो भी कामसे आहत चित्त होनेके कारण उसका प्रेम दूर नहीं हुआ ॥१७॥

वहाँ खरदूषणका युद्ध समाप्त होनेपर भी स्वामी रावणका दर्शन न होनेसे परम स्नेहके भरे शुक हस्त प्रहस्त आदि मन्त्री परम उद्वेगको प्राप्त हो रहे थे सो जब उन्होंने हिलती हुई पताकासे सुशोभित प्रातःकालीन सूर्यके समान रावणका विमान आता देखा तब वे हर्षित होकर उसके पास गये ॥१८-१९॥ उन्होंने दिव्य वस्तुओंकी भेट देकर सम्मान प्रदर्शित कर तथा अति-शय प्रिय वचन कहकर रावणकी अगवानी की तो भी भृत्योंकी उन सम्पदाओसे सीता वशीभूत नहीं हुई ॥२०॥ संसारमें ऐसा कौन चतुर मनुष्य है जो अग्निशिखाका पान कर सके अथवा नागिनके शिरपर स्थित रत्नमयी शलाकाका स्पर्श कर सके ॥२१॥ यद्यपि सीताने तृणके अग्रभागके समान रावणका तिरस्कार किया था तो भी वह दर्शों अङ्गुलियोंसे सहित अञ्जलि शिरपर धारणकर उसे बार-बार नमस्कार करता था ॥२२॥ नाना दिशाओसे आये हुए तथा इन्द्रके समान-पूर्ण वैभवकी धारण करनेवाले मन्त्रियोंने जिसे घेर लिया था और 'जय हो, बढ़ते रहो, समृद्धि-मान् होओ' इत्यादि कर्ण प्रिय वचनोंसे जिसकी स्तुति हो रही थी ऐसे इन्द्रतुल्य रावणने लंकामें प्रवेश किया ॥२३-२४॥ उस समय सीताने विचार किया कि यह 'विद्याधरोंका राजा ही जहाँ अभयार्द्राका आचरण कर रहा है वहाँ दूसरा कौन शरण हो सकता है ? ॥२५॥ फिर भी मेरा यह

१. शुकहस्ताद्याः सोद्वेगाः चत्राम० म०, ३० । २. न्वाटुभिः म० । ३. शक्तोतिनुखधोः म० ।

उदीचीनं प्रतीचीनं तत्रास्ति परमोऽम्बलम् । गोर्वाणरमणं ह्यतामुद्यानं स्वर्गसन्निभम् ॥२७॥
 तत्र कल्पतरुच्छायमहापादपसंकुले । स्थापयित्वा रहः सीतां त्रिवेशं स्वनिकेतनम् ॥२८॥
 तावद्दूषणपञ्चचाद्व्यतीऽस्त्य महासुखम् । वष्टादश सहस्राणि विप्रलेपुर्माह्वारम् ॥२९॥
 भ्रातृश्वन्द्रनखा पादौ संसृत्योन्मुक्तकण्ठकम् । अभाग्या हा हतास्तीति विललापात्तुर्दिनम् ॥३०॥
 रमणात्मजपञ्चत्ववह्निनिर्दग्धमानसाम् । विलपन्तोमिमां भूरि जघादैवं सहोदरः ॥३१॥
 अलं वत्से रुदित्वा ते प्रसिद्धं किं न विद्यते । जगत्प्राणिवहितं सर्वं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥३२॥
 अन्यथा इ महीचारा जनाः क्षुद्रकशकयः । ह्ययमेवंविधो भर्ता भक्त्या व्योमगोचरः ॥३३॥
 मयेद्रमजितं पूर्वं व्यक्तं न्यायागतं फलम् । इति ज्ञान्वा शुचं कर्तुं कल्प मत्स्यस्य युज्यते ॥३४॥
 नाकाले त्रियते कश्चिद्भ्रूणापि समाहृतः । मृत्युकालेऽमृतं जन्तोर्विपतां प्रतिपद्यते ॥३५॥
 येन व्यापारितो वत्से समरे खरदूषणः । अन्येषां नाहितेच्छानां मृत्युरेपे मवाम्यहम् ॥३६॥
 स्वसारमेवमाध्यात्य दृष्टादेशो विनार्चनम् । दृष्टमानसना वासभवनं रावणोऽविशत् ॥३७॥
 तत्रादरनिराकाञ्चं तल्पविहिस्रविग्रहम् । सोन्मादकेशरिच्छायं निःश्वसन्मिबोरगरम् ॥३८॥
 भर्तारं दुःखयुक्तेषु भूषणादरवर्जिता । महादरमुवाचैवमुपसृत्य मयात्मजा ॥३९॥
 किं नावाङ्मुलतां धत्से खरदूषणमृत्युना । न विपादोऽस्ति द्युरागानापत्सु महतीष्वपि ॥४०॥

नियम है कि जब तक भर्ताका कुशल समाचार नहीं प्राप्त कर लेता हूँ तब तक मेरे आहार कार्यका त्याग है ॥२६॥

तदनन्तर पश्चिमोत्तर दिशामें विद्यमान अतिशय उज्ज्वल, स्वर्गके समान सुन्दर देवारण्य नामक उद्यान है सो कल्पवृक्षके समान कान्तिवाले बड़े-बड़े वृक्षांसे व्याप्त उस उद्यानमें एक जगह सीताको ठहराकर रावण अपने महलमें चला गया ॥२७-२८॥ इतनेमें ही खरदूषणके मरणका समाचार पाकर रावणकी अठारह हजार रानियाँ बहुत भारी शोकके कारण महाशब्द करती हुई रावणके सामने विलाप करने लगीं ॥२९॥ चन्द्रनखा भाईके चरणोंमें जाकर तथा गला फाड़-फाड़कर 'हाय-हाय मैं अभागिनी मारी गई' इस तरह अश्रुवर्षासे दुर्दिनको पराजित करती हुई विलाप करने लगी ॥३०॥ पति और पुत्रको मृत्युरूपी अग्निसे जिसका मन जल रहा था ऐसी अत्यधिक विलाप करती हुई चन्द्रनखासे भाई—रावणने इस प्रकार कहा ॥३१॥ कि हे वत्से ! तेरा रोना व्यर्थ है । यह क्या प्रसिद्ध नहीं है कि संसारके प्राणी पूर्वभवनमें जो झुड़ करते हैं उस सबका फल अवश्य ही प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥३२॥ यदि ऐसा नहीं है तो जुद्धशक्तिके धारक भूमिगोचरी मनुष्य कहीं और तुम्हारा ऐसा आकाशगामी भर्ता कहाँ ? ॥३३॥ मैंने यह सब पूर्वमें सञ्चित किया था सो उसीका यह न्यायागत फल प्राप्त हुआ है, ऐसा जानकर किसी मनुष्यको शोक करना उचित नहीं है ॥३४॥ जब तक मृत्यु का समय नहीं आता है तब तक वज्रसे आहत होने पर भी कोई नहीं मरता है और जब मृत्युका समय आ पहुँचता है तब अमृत भी जीवके लिए विप हो जाता है ॥३५॥ हे वत्से ! जिसने युद्धमें खरदूषणको मारा है उसके साथ अन्य सब शत्रुओंके लिए मैं मृत्युत्वहृप हूँ अर्थात् मैं उन सबको मारूँगा ॥३६॥ इस प्रकार वहिनको आश्वासन तथा जिनेन्द्र देवकी अर्चाका उपदेश देकर जिसका मन जल रहा था ऐसा रावण निवासगृहमें चला गया ॥३७॥ वहाँ जाकर रावण आदरकी प्रतीक्षा किये बिना ही शय्या पर जा पड़ा । उस समय वह उन्मत्तसिंहके समान अथवा साँस भरते हुए सर्पके समान जान पड़ता था ॥३८॥ भर्ताको ऐसा देख, दुःखयुक्त की तरह आभूषणोंके आदरसे रहित मन्दोदरी बड़े आदरसे उसके पास जाकर इस प्रकार बोली ॥३९॥ कि हे नाथ ! क्या खरदूषणको मृत्युसे आङ्मुलताकी धारण कर रहे हो ? परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि शूरवीरोंको बड़ी-बड़ी आप-

पुरानेकर संग्रामे सुहृदस्ते क्षयं गता । न च शोचिता जातु दूषणं किन्तु शोचसि ॥४१॥
 आसम्महेन्द्रसंग्रामे श्रीमालिप्रमुखाः नृपाः । बान्धवास्ते क्षयं जाताः शोचितास्ते न जातुचित् ॥४२॥
 अभूतसर्वशोकेस्त्वमासीदपि महापति । शोकं किं बहसीदानीं जिज्ञासामि विमो बट ॥४३॥
 ततो महोदरः स्वैर निश्वस्योवाच रावणः । तत्र किञ्चित्पत्न्यज्य धारितां धरिताक्षरम् ॥४४॥
 शृणु सुन्दरि सज्ञावमेकं ते कथयाम्यहम् । स्वामिन्यसि ममासूना सर्वदा कृतवाञ्छिता ॥४५॥
 यत्रि वाञ्छसि जीवन्त मां ततो देवि नार्हसि । कोपं कर्तुं ननु प्राणा मूलं सर्वस्य वस्तुन ॥४६॥
 ततस्तत्रैवमिष्युक्ते शपथैर्वि नियम्य ताम् । विलक्ष इव किञ्चित्स रावणः समभाषत ॥४७॥
 यदि सा वेधसः सृष्टिरपूर्वा^१ दुःखवर्णना । सीता पतिं न मां वष्टि ततो मे नास्ति जीवितम् ॥४८॥
 लावण्य यौवन रूपं माधुर्यं चारुचेष्टितम् । प्राप्य तां सुन्दरीमेकं^२ कृतार्थत्वमुपागतम् ॥४९॥
 ततो मन्दोदरीं कष्टां ज्ञात्वा तस्य दशामिमाम् । विहसन्ती जगादैवं विस्फुरदन्तचन्द्रिका ॥५०॥
 इदं नाथ महाश्रव्यं व्रतो यत् कुरुतेऽर्थनम् । अपुण्या साबला नूनं या त्वां नार्थयते स्वयम् ॥५१॥
 अथवा निविल्ले लोके सर्वैका परमोदया । या त्वया मानकूटेन वाच्यते परमापदा^३ ॥५२॥
 केयूरस्नजटिलैरिमैः करिकरोपमैः । आलिंग्य वाहुभिः कन्माद बलात् कामयसे न ताम् ॥५३॥
 सोऽशोचहेवि विज्ञाप्यमस्त्यत्र शृणु कारणम् । प्रसभ येन गृह्णामि न तां सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥५४॥

तियोमे भी विषाद नहीं होता ॥४०॥ पहले अनेक संग्रामोंमें तुम्हारे मित्र क्षयको प्राप्त हुए हैं उन सबका तुमने शोक नहीं किया किन्तु आज खरदूषणके प्रति शोक कर रहे हो ? ॥४१॥ राजा इन्द्रके संग्राममें श्रीमाली आदि अनेक राजा जो तुम्हारे बन्धुजन थे क्षयको प्राप्त हुए थे पर उन सबका तुमने कभी शोक नहीं किया ॥४२॥ पहले बड़ी-बड़ी आपत्तियों रहने पर भी तुम्हें किसीका शोक नहीं हुआ पर इस समय क्यों शोकको धारण करते हो यह मैं जानना चाहती हूँ सो हे स्वामिन् इसका कारण बतलाइये ॥४३॥

तदनन्तर महान् आदरसे युक्त रावण साँस लेकर तथा कुछ शय्या छोड़कर कहने लगा । उस समय उसके अक्षर कुछ तो मुखके भीतर रह जाते थे और कुछ बाहर प्रकट होते थे ॥४४॥ उसने कहा कि हे सुन्दरि ! मुनो एक सद्भावकी बात तुमसे कहता हूँ तुम मेरे प्राणोंकी स्वामिनी हो और सदा मैंने तुम्हें चाहा है ॥४५॥ यदि मुझे जीवित रहने देना चाहती हो तो हे देवि ! क्रोध करना योग्य नहीं है, क्योंकि प्राण ही तो सत्र वस्तुओंके मूल कारण हैं ॥४६॥ तदनन्तर 'ऐसा ही है' इस प्रकार मन्दोदरीके कहने पर उसे अनेक प्रकारकी शपथोंसे नियममें लाकर कुछ-कुछ लज्जित होते हुए की तरह रावण कहने लगा ॥४७॥ कि जिसका वर्णन करना कठिन है ऐसी विधाता की अपूर्व सृष्टि स्वरूप वह सीता यदि मुझे पति रूपसे नहीं चाहती है तो मेरा जीवन नहीं रहेगा ॥४८॥ लावण्य, यौवन, रूप, माधुर्य और सुन्दर चेष्टा सभी उस एक सुन्दरीको पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हुए हैं ॥४९॥

तदनन्तर रावणकी इस कष्टकर दशाको जानकर हँसती तथा दाँतोंकी कान्तिरूपी चाँदनीको फैलाती हुई मन्दोदरी इस प्रकार बोली कि हे नाथ ! यह बड़ा आश्चर्य है कि वर याचना कर रहा है । जान पड़ता है कि वह स्त्री पुण्य हीन है जो स्वयं आपसे प्रार्थना नहीं कर रही है ॥५०-५१॥ अथवा ससस्त संसारमें वही एक परम अभ्युदयको धारण करनेवाली है । जिसकी कि तुम्हारे जैसे अभिमानो पुरुष बड़ी दीनतासे याचना करते हैं ॥५२॥ अथवा वाजुबन्धके रत्नोंसे जटिल तथा हाथोंकी सँझकी उपमा धारण करनेवाली इन भुजाओंसे बलपूर्वक आलिङ्गन कर क्यों नहीं उसे चाह लेते हो ? ॥५३॥ इसके उत्तरमें रावणने कहा कि हे देवि !

१. ततः सहोदरः म० । २. धारिता धरितोक्षरम् (१) । ३. -सर्वा-म० । ४. -मेता ल० । ५. परमा यदा ल० ।

आसीद्वनन्तवीर्यस्य मूले भगवतो मया । आत्तमेकं व्रत साक्षादेवि निर्ग्रन्थसंसदि ॥५५॥
 तेन देवेन्द्रवन्द्येन व्याख्यातमिदमादृशम् । तथा निवृत्तिकेकापि ददाति परमं फलम् ॥५६॥
 जन्तूनां दुःखभूयिष्ठभवसन्ततिसारिणाम् । पापास्त्रिवृत्तिरत्वापि संसारोत्तारकारणम् ॥५७॥
 येषां विरतिरेकापि कुतश्चिन्नोपजायते^१ । नरास्ते जर्जरभूतकलशा इव निर्गुणाः ॥५८॥
 मनुष्याणां पशूनां च तेषां यत् किञ्चिदन्तरम् । येषां न विद्यते कश्चिद्विरामो मोक्षकारणम् ॥५९॥
 शक्त्या सुञ्जत पापानि गृहीत सुकृतं धनम् । जात्यन्या इव संसारे न भ्राम्यथ यत्क्षिरम् ॥६०॥
 एवं भगवतो वक्त्रकमलाश्रितं वचः । मधु पीत्वा नराः केचिद्गगानाम्बरा^३ गताः ॥६१॥
 सागारधर्ममपरे श्रिता विकलशक्तयः । कर्मानुभावतः सर्वे न भवन्ति ममक्रियाः ॥६२॥
 एकेन साधुना तत्र प्रोक्तोऽहं सौम्यचेतसा । दशानन गृहाणैकां निवृत्तिमिति शक्तितः ॥६३॥
 धर्मरत्नोऽञ्जलद्वीप प्राप्तः शून्यमनस्करः । कथं व्रजसि विज्ञानी गुणसग्रहकोविद् ॥६४॥
 इत्युक्तेन मया देवि प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । देवासुरमहर्षीणां प्रत्यक्षमिति भाषितम् ॥६५॥
 यावन्नोच्छति मां नारी परकीया मनस्विनी । प्रसभं सा मया तावन्नाभिगम्यापि दुःखिना ॥६६॥
 एतच्चाप्यभिमानेन गृह्यते दयिते व्रतम् । का मां किल समालोक्य साध्वी मान करिष्यति ॥६७॥
 अतो न तां स्वयं देवि गृह्णामि सुमनोहराम् । सङ्कल्पन्ति राजानः प्रत्यवायोऽन्यथा महान् ॥६८॥
 यावन्मुञ्चामि नो प्राणान् तावत् सीता प्रसाद्यताम् । भस्मभावङ्कते गेहे कूपखानभ्रमो वृथा ॥६९॥

मैं जिस कारण उस सर्वाङ्ग सुन्दरीको जबर्दस्ती ग्रहण नहीं करता हूँ इसमें निवेदन करने योग्य कारण है उसे सुनो ॥५४॥ हे देवि ! मैंने अनन्तवीर्य भगवान्के समीप निर्ग्रन्थ मुनियोंकी सभामें साक्षात् एक व्रत लिया था ॥५५॥ इन्द्रोके द्वारा वन्दनीय अनन्तवीर्य भगवान्ने एक बार ऐसा व्याख्यान किया कि एक वस्तुका त्याग भी परम फल प्रदान करता है ॥५६॥ दुःखोंसे भरी भव-परम्परामें भ्रमण करनेवाले प्राणियोंके पापसे थोड़ी भी निवृत्ति हो जावे तो वह उनके संसारसे पार होनेका कारण हो जाती है ॥५७॥ जिन मनुष्योंके किसी पदार्थके त्यागरूप एक भी नियम नहीं है वे फूटे घटके समान निर्गुण हैं ॥५८॥ उन मनुष्यों और पशुओंमें कुछ भी अन्तर नहीं है जिनके कि मोक्षका कारणभूत एक भी नियम नहीं है ॥५९॥ हे भव्य जीवो ! शक्तिके अनुसार पाप छोड़ो और पुण्यरूपी धनका संचय करो जिससे जन्मान्ध मनुष्योंके समान चिर काल तक संसारमें परिभ्रमण न करना पड़े ॥६०॥ इस प्रकार भगवान्के मुख कमलसे निकले हुए वचनरूपी मकरन्दको पीकर कितने ही मनुष्य निर्ग्रन्थ अवस्थाको प्राप्त हुए और हीनशक्तिको धारण करनेवाले कितने ही लोग गृहस्थधर्मको प्राप्त हुए सो ठीक ही है क्योंकि कर्मोदयके कारण सब एक समान क्रियाके धारक नहीं होते ॥६१-६२॥ उस समय सौम्य चित्तके धारक एक मुनिराजने मुझसे कहा कि हे दशानन ! शक्तिके अनुसार तुम भी एक नियम ग्रहण करो ॥६३॥ तुम धर्मरूपी उज्वल रत्नद्वीपको प्राप्त हुए हो सो विज्ञानी तथा गुणोंके संग्रह करनेमें निपुण होकर भी खाली मन एवं खाली हाथ क्यों जाते हो ॥६४॥ इस प्रकार कहनेपर हे देवि ! मैंने मुनिराजको प्रणामकर सुर असुर तथा मुनियोंके समक्ष इस तरह कहा कि जब तक मानवती परकीया मुझे स्वयं नहीं चाहेगी तब तक दुखी होनेपर भी मैं बलपूर्वक उसका सेवन नहीं करूँगा ॥६५-६६॥ हे प्रिये ! मैंने यह व्रत भी इस अभिमान से ही लिया था कि मुझे देखकर कौन पतिव्रता मान करेगी ? ॥६७॥ इसलिये हे देवि ! मैं उस मनोहराङ्गीको स्वयं नहीं ग्रहण करता हूँ क्योंकि राजा एक बार ही कहते हैं अन्यथा बहुत भारी वाधा आ पड़ती है ॥६८॥ अतः जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ता हूँ तब तक सीताको प्रसन्न करो

ततस्तं तादृशं ज्ञात्वा सज्जातकरुणोद्भवा । वभाण रमणी नाथ स्वल्पमेतत् सर्माहितम् ॥७०॥
 ततः किञ्चिन्मधुस्वादविलासवशवर्तिनी । सा देवरमणोद्धानं जगाम कमलेक्षणा ॥७१॥
 तदाज्ञां प्राप्य सम्पन्निरष्टादशमहौजसाम् । दशाननवरक्षीणां सहस्राण्यनुवब्रजुः ॥७२॥
 मन्दोदरी क्रमाप्राप्य सीतामेवमभाषत । समस्तनयविज्ञानकृतमण्डनमानसा ॥७३॥
 अथ सुन्दरि हर्षस्य स्थाने कस्माद्विपीदसि । त्रैलोक्येऽपि हि सा धन्या पतिर्यस्या दशाननः ॥७४॥
 सर्वविद्याधराधीशं पराजितसुराधिपम् । त्रैलोक्यसुन्दरं कस्मात्पति नेच्छसि रावणम् ॥७५॥

नि.स्व.धमागोचर' कोऽपि तस्यार्थं दु.खितासि किम् ।

सर्वलोकवरिष्ठस्य स्वस्य सौख्यं विधीयताम् ॥७६॥

आत्मार्यं कुर्वतः कर्म सुमहासुखवानम् । दोषो न विद्यते कश्चित्सर्वं हि सुखकारणम् ॥७७॥
 मयेति गदित वाक्य यदि न प्रतिपद्यते । ततो यन्नविता तत्ते शत्रुभिः प्रतिपद्यताम् ॥७८॥
 बलीयान् रावण. स्वामी प्रतिपन्नविजितः । कामेन पीडित. कोपं गच्छेत्प्रार्थनभङ्गनात् ॥७९॥
 यौ रामलक्ष्मणौ नाम तव कावपि सम्मतौ । तयोरपि हि सन्देह. क्रुद्धे सति दशानने ॥८०॥
 प्रतिपद्यस्व तत् क्षिप्रं विद्याधरमहेश्वरम् । हरवर्यं परमं प्राप्तं सौरी लोकां समाश्रय ॥८१॥
 इत्युक्त्वा वाष्पसम्भारगद्गदोद्गीर्णवर्णिका । जगद् जानकी जातजललोचनधारिणी ॥८२॥
 वनिते सर्वमेतत्ते विरुद्ध वचनं परम् । सतीनामीदृशं वक्त्रालक्यं निगन्तुमर्हति ॥८३॥
 इदमेव शरीरं मे छिन्द भिन्दाथवा इत । भर्तुः पुरुषमन्यं तु न करोमि मनस्थपि ॥८४॥

क्योंकि धरके भस्म हो जाने पर कूप खुदानेका श्रम व्यर्थ है ॥६६॥

तदनन्तर रावणको वैसा जान जिसे दया उत्पन्न हुई थी ऐसी मन्दोदरी बोली कि हे नाथ ! यह तो बहुत छोटी बात है ॥७०॥ तपश्चात् कुछ मधुर विलासाकी वशवर्तिनी कमललोचना मन्दोदरी देवारण्य नामक उद्यानमे गई ॥७१॥ उसकी आज्ञा पाकर रावणको अठारह हजार मानवती स्त्रियों भी वैभवके साथ उसके पीछे चली ॥७२॥ समस्त नय-नीतियोंके विज्ञानसे जिसका मन अलंकृत था ऐसी मन्दोदरीने क्रम-क्रमसे सीताके पास जाकर इस प्रकार कहा ॥७३॥ कि हे सुन्दरि ! हर्षके स्थानमें विषाद क्यों कर रही हो ? वह स्त्री तीनो लोकोंमें धन्य है जिसका कि रावण घति है ॥७४॥ जो समस्त विद्याधरोका अधिपति है, जिसने इन्द्रको पराजित कर दिया है, तथा जो तीनों लोकोंमें अद्वितीय सुन्दर है ऐसे रावणको तुम पतिरूपसे क्यों नहीं चाहती हो ? ॥७५॥ तुम्हारा पति कोई निर्धन भूमिगोचरी मनुष्य है उसके लिए इतना दुखी क्यों हो ? सर्व लोकसे श्रेष्ठ अपने आपको सुखी करना चाहिए ॥७६॥ अपने लिए महासुखके साधनभूत कार्यके करनेवालेको कोई दोष नहीं है क्योंकि मनुष्यके सब प्रयत्न सुखके लिए ही होते हैं ॥७७॥ इस प्रकार मेरे द्वारा कहे हुए वचन यदि तुम स्वीकृत नहीं करती हो तो फिर जो दशा होगी वह तुम्हारे शत्रुओंको प्राप्त हो ॥७८॥ रावण अतिशय बलवान् तथा शत्रुसे रहित है प्रार्थना भङ्ग करने पर वह काम पीडित हो क्रोधको प्राप्त हो जायगा ॥७९॥ जो राम लक्ष्मण नामक कोई पुरुष तुम्हे इष्ट हैं सो रावणके कुपित होने पर उन दोनोंका भी सन्देह ही है ॥८०॥ इसलिए तुम शीघ्र ही विद्याधरोके अधिपति रावणको स्वीकृत करो और परम ऐश्वर्यको प्राप्त हो देवो सम्बन्धि लीलाको धारण करो ॥८१॥

इस प्रकार कहने पर जिसके मुखसे वाष्पभारके कारण गद्गद वर्ण निकल रहे थे तथा जो अश्रुपूर्ण नेत्र धारण कर रही थी ऐसी सीता बोली कि हे वनिते ! तेरे ये सब वचन अत्यन्त विरुद्ध हैं । पतिव्रता स्त्रियोंके मुखसे ऐसे वचन नहीं निकल सकते हैं ? ॥८२-८३॥ मेरे इस

१. कोऽयं । २. सुराणामियं सौरी ता देवसम्बन्धिनीम् ।

३३-२

सनत्कुमाररूपोऽपि यदि वाल्मण्डलोपमः । नस्तथापि तं भर्तुरन्यं नेच्छामि सर्वथा ॥८५॥
 युष्मान्मयीमि संक्षेपाहारान् सर्वानिहागतात् । यथा ब्रूत तथा नैतच्छ्रोमि कुक्ष्तेऽस्मिन्मत् ॥८६॥
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः स्वयमेव दशाननः । सीतां मदनतापातीं गङ्गावेणीमिव द्विपः ॥८७॥
 समीपीभूय चोवाच परं करुणया गिरा । किञ्चिद्विहसितं कुर्वन्मुलचन्द्रं महादरः ॥८८॥
 'मा यासीद्वैवि संत्रासं भक्तोऽहं तव सुन्दरि । शृणु विज्ञाप्यमेकं मे प्रसीदावहित्ता भव ॥८९॥
 वस्तुना केन हीनोऽहं जगत्त्रितयवर्तिना । न मां वृणोपि यद्योग्यमात्मनः पतिमुत्तमम् ॥९०॥
 इत्युक्त्वा स्मृष्टुकाम तं सीतावोचत्सम्भ्रमा । अपसर्प ममाङ्गानि मा शृश्यः पापमानस ॥९१॥
 उवाच रावणो देवि त्यज कोपाभिमानताम् । प्रसीद दिव्यभोग्यानां शचोव स्वामिनी भव ॥९२॥
 सीतोवाच कुशीलस्य विभवाः केवलं मलम् । जनस्य सायुशीलस्य दारिद्र्यमपि भूषणम् ॥९३॥
 चास्वशाप्रसूतानां जनानां शीलहारतः । लोकद्वयविरोधेन शरणं मरणं वरम् ॥९४॥
 परयोपिक्लृताशस्य तवेदं जीवितं मुधा । शीलस्य पालनं कुर्वन् यो जीवति स जीवति ॥९५॥
 एवं तिरस्कृतो मायां कर्तुं प्रववृत्ते द्रुतम् । नेष्टुर्देव्यः परित्रस्ताः सज्जातं सर्वमाकुलम् ॥९६॥
 एतस्मिन्नन्तरे जाते भानुमायाभयाद्रिव । समं किरणचक्रेण प्रविशेशस्तगह्वरम् ॥९७॥
 मचण्डवैगलद्रुण्डैः करिभिर्घनवृहितैः । भीषिताऽन्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥९८॥

शरीरको तुम लोग चाहे छेद डालो, भेद डालो अथवा नष्ट कर दो परन्तु अपने भर्ताके सिवाय अन्य पुरुषको मनमें भी नहीं ला सकती हूँ ॥८५॥ यद्यपि मनुष्य सनत्कुमारके समान रूपका धारक हो अथवा इन्द्रके तुल्य हो तो भी भर्ताके सिवाय अन्य पुरुषकी मैं किसी तरह इच्छा नहीं कर सकती ॥८६॥ मैं यहाँ आई हुई तुम सब स्त्रियोंसे संक्षेपमें इतना ही कहती हूँ कि तुम लोग जो कह रही हो वह मैं नहीं करूँगी तुम जो चाहो सो करो ॥८६॥

इसी बीचमें जिस प्रकार हाथी गङ्गाकी धाराके पास पहुँचता है उसी प्रकार कामके संतापसे दुःखी रावण स्वयं सीताके पास पहुँचा ॥८७॥ और पासमें स्थित हो सुखरूपी चन्द्रमा-को कुछ कुछ हास्यसे युक्त करता हुआ बड़े आदरके साथ अत्यन्त दयनीय वाणीमें बोला कि हे देवि ! भयको प्राप्त मत होओ, हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मेरी एक प्रार्थना सुनो, प्रसन्न होओ और सावधान बनो ॥८८-८९॥ बताओ कि मैं तीनों लोकोंमें वर्तमान किस वस्तुसे हीन हूँ जिससे तुम मुझे अपने योग्य उत्तम पति स्वीकृत नहीं करती हो ॥९०॥ इतना कहकर रावणने स्पर्श करनेकी चेष्टा प्रकट की तब सीताने हड़बड़ा कर कहा कि पापी हृदय ! हट मेरे अङ्गोका स्पर्श मतकर ॥९१॥ इसके उत्तरमें रावणने कहा कि हे देवि ! क्रोध तथा अभिमान छोड़ो, प्रसन्न होओ और इन्द्राणीके समान दिव्य भोगोंकी स्वामिनी बनो ॥९२॥ सीताने कहा कि कुशील मनुष्यकी सम्पदाएँ केवल मल हैं और सुशील मनुष्यकी दरिद्रता भी आभूषण है ॥९३॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको शीलकी हानिकर दोनो लोकोंके विरुद्ध कार्य करनेसे मरणकी शरणमें जाना ही अच्छा है ॥९४॥ तू परस्त्रीकी आशा रखता है अतः तेरा यह जीवन वृथा है । जो मनुष्य शीलकी रक्षा करता हुआ जीता है वास्तवमें वह जीता है ॥९५॥

इस प्रकार तिरस्कारको प्राप्त हुआ रावण शीघ्र ही माया करनेके लिए प्रवृत्त हुआ । सब देवियों भयभीत होकर भाग गईं और वहाँका सब कुछ आकुलतासे पूर्ण हो गया ॥९६॥ इसी बीचमें सूर्य, किरण समूहके साथ साथ अस्ताचलकी गुहामें प्रविष्ट हो गया सो मानो रावणकी मायाके भयसे ही प्रविष्ट हो गया था ॥९७॥ जो अत्यन्त क्रोधसे युक्त थे, जिनके गण्डस्थलसे मद चूर रहा था तथा जो अत्यधिक गर्जना कर रहे थे ऐसे हाथियोंसे डराये जानेपर भी सीता

दंष्ट्राकरालदशनैर्व्याघ्रैर्दुःसहनिःस्वनिः । भीषिताप्यगमस्तीता शरणं न दशाननम् ॥६६॥
 चलकेसरसङ्घातैः सिंहेरुप्रनखाङ्कुशैः । भीषिताप्यगमस्तीता शरणं न दशाननम् ॥१००॥
 उल्लस्युल्लिङ्गमीमाचैर्लसजिह्वैर्महोरगैः । भीषिताप्यगमस्तीता शरणं न दशाननम् ॥१०१॥
 व्याप्ताननैः कृतोत्पातपतनैः क्रूरवानरैः । भीषिताप्यगमस्तीता शरणं न दशाननम् ॥१०२॥
 तमःपिण्डासितैस्तुङ्गैर्वैतलैः कृतहुङ्कृतैः । भीषिताप्यगमस्तीता शरणं न दशाननम् ॥१०३॥
 एवं नानाविधैरुग्रैरुपसर्गैः क्षणोन्नतैः । भीषिताप्यगमस्तीता शरणं न दशाननम् ॥१०४॥
 तावच्च समतीतार्था विभावर्था भयादिव । जिनेन्द्रवेशमसूक्तस्थौ शङ्खभेर्यादिनिःस्वन. ॥१०५॥
 उद्धाटितकपाटानि द्वाराणि वरवेशमनाम् । प्रभाते गतनिद्राणि लोचनानीव रेजिरै ॥१०६॥
 सन्ध्या रञ्जिता प्रार्था दिगत्यन्तमराजत । कुङ्कुमस्येव पङ्केन मानोरागच्छतः कृता ॥१०७॥
 नैशं ध्वान्तं समुत्सर्ष्य कृत्वेन्दु विगतप्रभम् । उद्धयाय सहस्रांशुः पङ्कजानि न्यबोधयत् ॥१०८॥
 ततो विमलतां प्राप्ते प्रभाते चलपक्षिणि । विभीषणाद्यैः प्रापुर्दशास्यं प्रियवान्धवाः ॥१०९॥
 खरदूषणशोकेन ते निर्वाक्यनताननाः । सवाण्यलोचना भूमौ समासीना यथोचितम् ॥११०॥
 तावद्यटान्तरस्थाया रुदत्या. शोकनिर्भरम् । शुश्राव योपितः-शब्दं मनोभेद विभोपणः ॥१११॥
 जगाद व्याकुलः किञ्चिदपूर्वैर्यमिहाज्ञाना । का नाम करुण रौति स्वामिनेव विभोजिता ॥११२॥

रावणकी शरणमे नहीं गई ॥६६॥ जिनके दाँत दाढीसे अत्यन्त भयंकर दिखाई देते थे और जो दुःसह शब्द कर रहे थे ऐसे व्याघ्रोंके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमे नहीं गई ॥६६॥ जिनकी गरदनके बाल हिल रहे थे तथा जिनके नखरूपी अंकुश अत्यन्त तीव्रण थे ऐसे सिंहोंके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥१००॥ जिनके नेत्र देदीप्यमान तिलगो के समान भयंकर थे तथा जिनकी जिह्वाएँ लपलपा रही थीं ऐसे बड़े-बड़े सोंपोंके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमे नहीं गई ॥१०१॥ जिनके मुख खुले हुए थे, जो चार-चार ऊपरकी ओर उड़ान भरते थे तथा नीचेकी ओर गिरते थे ऐसे वानरोंके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमे नहीं गई ॥१०२॥ जो अन्धकारके पिण्डके समान काले थे, ऊँचे थे, तथा हुंकार कर रहे थे ऐसे वेतालोंके द्वारा डराये जानेपर भी सीता रावणके शरणमे नहीं गई ॥१०३॥ इस प्रकार क्षण-क्षण मे किये जानेवाले नानाप्रकारके भयंकर उपसर्गोंके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमे नहीं गई ॥१०४॥

तदनन्तर भयसे ही मानो रात्रि व्यतीत ही गई और जिन मन्दिरोंमे शङ्ख भेरी आदिका शब्द होने लगा ॥१०५॥ प्रभात होते ही बड़े-बड़े महलोंके द्वार सम्बन्धी किचाड़ खुल गये सो उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो निद्रा-रहित नेत्र ही उन्होंने खोले हो ॥१०६॥ सन्ध्यासे रँगी हुई पूर्व दिशा अत्यन्त सुशोभित हो रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो आनेवाले सूर्यकी अगवानीके लिए कुङ्कुमके पङ्कसे ही लिप्त की गई हो ॥१०७॥ रात्रि सम्बन्धी अन्धकारको नष्टकर तथा चन्द्रमाको निष्प्रभ बनाकर सूर्य उदित हुआ और कमलोंको विकसित करने लगा ॥१०८॥ तदनन्तर जिसमे पक्षी उड़ रहे थे ऐसे प्रातःकालकी निर्मलताको प्राप्त होनेपर विभीषण आदि प्रिय वान्धव रावणके समीप पहुँचे ॥१०९॥ खरदूषणके शोकसे जिसके मुख चुपचाप नीचेकी ओर मुक्त रहे थे तथा जिनके नेत्र अश्रुओंसे युक्त थे ऐसे वे सब यथायोग्य भूमिपर बैठ गये ॥११०॥ उसी समय विभीषणने पटके भीतर स्थित शोकके भारसे रोती हुई खोका हृदय-विदारक शब्द सुना ॥१११॥ सुनकर व्याकुल होते हुए विभीषणने कहा कि यह यहाँ कौन अपूर्व स्त्री करुण शब्द कर रही है ऐसा जान पड़ता है मानो यह पतिकाे साथ वियोगको प्राप्त हुई

शब्दोऽयं शोकसन्भूतमस्याः कर्म्यं समुत्पन्नम् । निवेदयति देहस्य दुःखसम्भारवाहितः ॥११३॥
 एवमुक्तं समाकर्ण्य सीता तारतरस्वनम् । सरोद् सज्जनस्याग्रे नूनं शोकः प्रवर्द्धते ॥११४॥
 जगौ च वापयपूर्णास्याप्रस्तललङ्घिताक्षरम् । इह को मे देव वन्धुत्वं यन्पृच्छसि वत्सलः ॥११५॥
 सुता जनकराजस्य स्वसा भामण्डलस्य च । काङ्क्षस्यस्याहर्कं पत्नी सीता दशरथस्तुपा ॥११६॥
 वार्तान्त्रेपी गतो यावत्प्रता मे आपुराहवे । रन्ध्रेऽहं तावदेतेन हृता कुक्षितचेतसा ॥११७॥
 यावन्न मुञ्चति प्राणान् रामो विरहिता मया । आतरस्मै द्रुतं तावत्त्रात्वा मामपथोदितः ॥११८॥
 एवमुक्तं समाकर्ण्य क्रुद्धचेता विभीषणः । जगाद् विनयं विभ्रद् आतरं गुरुवत्सलः ॥११९॥
 आशीविपासिभूतेयं मोहाद् आतः कुतस्त्वया । परनाशो समानीता सर्वथा भयदायिनी ॥१२०॥
 बालद्विद्विरपि स्वामिन् विज्ञाप्यं श्रूयतां मम । दत्तो हि मम देवेन प्रसादो वचनं प्रति ॥१२१॥
 भवत्कीर्तिलाजालैर्जटिलं वलयं दिशाम् । मा धाक्नोदयशोदावः प्रसीद स्थितिकोविद् ॥१२२॥
 परदारामिलापोऽयमयुक्तोऽतिभयङ्करः । लजनीयो जुगुप्स्यन्न लोकद्वयनिवृद्धनः ॥१२३॥
 धिक्शब्दः प्राप्यते योऽयं सज्जनेभ्यः समन्ततः । सोऽयं विद्वान्गो शक्तो हृदयस्य सुचेतसाम् ॥१२४॥
 जानन् सकलमर्यादां विद्याधरमहेस्वरः । ज्वलन्तमुत्सुकं कस्मात्करोपि हृदये निजे ॥१२५॥
 यो ना परकलत्राणि पापद्विनिपेवते । नरकं स विशत्येप लोहपिण्डो यथा जलम् ॥१२६॥

है ॥११२॥ इसका यह शब्द दुःखके भारको धारण करनेवाले शरीरके शोकोत्पन्न-उत्कट कम्पन को सूचित कर रहा है ॥११३॥ इस प्रकार विभीषणके उक्त शब्द सुनकर सीता और भी अधिक रोने लगी सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनके आगे शोक बढ़ता है ॥११४॥ उसने अश्रुपूर्ण मुखसे दूटे-भूटे अक्षर प्रकट करते हुए कहा कि हे देव ! यहाँ मेरा वन्धु तू कौन है ? जो इस प्रकार स्नेहके साथ पूछ रहा है ॥११५॥ मैं राजा जनककी पुत्री, भामण्डलकी वहिन, रामकी पत्नी और दशरथकी पुत्रवधू सीता हूँ ॥११६॥ मेरा भर्ता कुशल वार्ता लेनेके लिए जबतक भाईके युद्धमें गया था तब तक छिद्र देख इस दुष्टहृदयने मेरा हरण किया है ॥११७॥ मुझसे बिलुद्धे राम जब तक प्राण नहीं छोड़ देते हैं हे भाई ! तब तक मुझे शीघ्र ही ले जाकर उन्हें सौंप दें ॥११८॥ इस प्रकार सीताके शब्द सुनकर विभीषणका चित्त क्षुभित हो उठा । तदनन्तर विनयको धारण करनेवाले गुरुजन-स्नेही विभीषणने भाईसे कहा कि हे भाई ! आशीविपसर्पकी विपरुपी अग्निके समान सब प्रकारसे भय उत्पन्न करनेवाली यह पर-नारी तू मोहवश कहाँसे ले आया है ? ॥११९-१२०॥ हे स्वामिन् ! यद्यपि मैं बालद्विदि हूँ तो भी मेरी प्रार्थना श्रवण कीजिये वचनके विषयमें आपने मुझपर प्रसन्नता की है अर्थात् मुझे वचन कहने की स्वतन्त्रता दी है ॥१२१॥ हे मर्यादाके जाननेमें निपुण ! यह दिशाओका समूह आपकी कीर्तिरूपी लताओंके जालसे व्याप्त हो रहा है सो इसे अपयशरूपी दावानल जला न दे अतः प्रसन्न हूजिए ॥१२२॥ यह परस्त्रीकी अभिलाषा अनुचित है, अत्यन्त भयङ्कर है, लज्जा उत्पन्न करनेवाली है, घृणित है और दोनों लोकोंको नष्ट करनेवाली है ॥१२३॥ सर्वत्र सज्जनोंसे यह धिक् शब्द प्राप्त होता है वही सद्बुद्ध मनुष्योंके हृदयके विदारण करनेमें समर्थ है अर्थात् लोकनिन्दा विचारवान् मनुष्योंके हृदयको भेदन करनेवाली है ॥१२४॥ आप तो समस्त मर्यादाको जाननेवाले, विद्याधरोंके अधिपति हैं फिर इस जलते हुए जलमुकको अपने हृदयपर क्यों रख रहे हो ? ॥१२५॥ जो पाप-वृद्धि मनुष्य परस्त्रियोंका सेवन करता है वह विनयसे उस तरह नरकमें प्रवेश करता है जिस तरह कि लोहका पिण्ड जलमें प्रवेश करता है ॥१२६॥

१. पूर्णास्यास्तत्रलं निर्गताक्षरम् म० । २. अपर्णातिद्वान्गिनः 'वने च वनवहौ च द्वो दाव इहेष्यते, इत्यमरः । ३. विनाशकः म० । ४. समं ततः म० ।

तल्लुत्वा रावणोऽवोचत् किं तद्दृष्ट्यं महीतले । आतर्यस्यास्मि न स्वामी परकीर्यं कुतो मम ॥१२७॥
 इत्युक्त्वा विक्रथा. कर्तुं प्रारभे भिन्नमानसः । लब्धान्तरश्च मारीचो महानीतिरवोचत ॥१२८॥
 जानन्नपि कथं सर्वं लोकवृत्तं दशानन । अकरोद्दीदृशं कर्म मोहस्येदं विचेष्टितम् ॥१२९॥
 सर्वथा प्रातरुत्थाय पुरुषेण सुचेतसा । कुशलाकुशलं स्वस्थं चिन्तनीयं विवेकतः ॥१३०॥
 निरपेक्षं प्रवृत्तेऽस्मिन् बक्तुमेवं महामती । सभायां चोभनं कुर्वन्नुत्तरीं रक्षसां प्रभुः ॥१३१॥
 त्रिजगन्मण्डनाभिस्थयमारुरोहं च वारणम् । महर्द्धिमिश्रं सामन्तैर्वाहारुदैः समावृतः ॥१३२॥
 पुष्पकायं समारोप्य सीतां शोकसमाकुलाम् । पुरः कृत्वा महाभूत्या प्रययौ नगरीदिशा ॥१३३॥
 कुन्तासितोऽमरच्छत्रध्वजाद्यर्पितपाणयः । अग्रतः पुरुषाः सस्रुः कृतसम्भ्रमनिस्सनाः ॥१३४॥
 चलिताश्चञ्चलश्रीवाः. स्थूरीपृष्ठः सहस्रशः । चञ्चलुराननख्युण्णचित्तयश्चारुसादिनः ॥१३५॥
 प्रचण्डनिस्वनद्वण्टः कृतजीमूतगर्जिताः । प्रचेलुर्वैचमिर्नुक्ता गण्डशैलसमा गजाः ॥१३६॥
 अट्टहासान् विमुञ्चन्तः कृतनानाविचेष्टिताः । स्फोटयन्त इवाकाशं प्रजग्मुर्मानवाः पुरः ॥१३७॥
 सहस्रसंख्यतूर्णां ध्वनिना पूरयन् दिशः । लङ्कां दशाननोऽविचन् मणिकञ्चनतोरणाम् ॥१३८॥
 सम्पद्भिरेवमाद्याभिर्बृत्तोऽप्यत्यन्तचारुभिः । सीता दशाननं मेने तृणादपि जघन्यकम् ॥१३९॥
 अकल्पमपि स्वभावेन वैदेहीमानसं नृपः । न शक्यं लोभमाने^३ तु लेपमभुज यथाम्बुजम् ॥१४०॥

यह सुनकर रावणने कहा कि हे भाई ! पृथिवीतल पर वह कौन पदार्थ है जिसका मैं स्वामी न होऊँ ? अतः मेरे लिए यह परकीय वस्तु कैसे हुई ? ॥१२७॥ इस प्रकार कहकर उस भिन्न हृदयने विक्रथार्थ करना प्रारम्भ कर दिया । तदनन्तर अवसर पाकर महानीतिज्ञ मारीच बोला ॥१२८॥ कि हे दशानन ! लोकका सब श्रुतान्त जानते हुए भी तुमने ऐसा कार्य क्यों किया ? यथार्थमे यह मोहकी ही चेष्टा है ॥१२९॥ बुद्धिमान् मनुष्यको सब तरहसे प्रातःकाल लठकर विवेक पूर्वक अपने दिताहितका विचार करना चाहिए ॥१३०॥ इस प्रकार महाबुद्धिमान् मारीच जब निरपेक्ष भावसे यह सब कह रहा था तब बीचमे ही सभाके चोभको करता हुआ रावण लठकर खड़ा हो गया ॥१३१॥ तदनन्तर बड़ी-बड़ी ऋद्धियों और अश्वालुब्ध सामन्तोसे घिरा हुआ रावण त्रिलोकमण्डन नामक हाथी पर सवार हो गया ॥१३२॥ वह शोकसे व्याकुल सीताको पुष्प विमान पर चढ़ा कर तथा आगे कर बड़े वैभवसे नगरी की ओर चला ॥१३३॥ भाले, खन्ने, तोमर, झंज तथा ध्वजा आदि जिनके हाथमे थे और जो संभ्रम पूर्वक जोरदार नारे लगा रहे थे ऐसे पुरुष आगे-आगे चल रहे थे ॥१३४॥ जिनकी शीवाएँ चञ्चल थीं, जो सुशोभित सुरोके अग्रभागसे पृथिवीको खोद रहे थे तथा जिनपर मनोहर सवार बैठे हुए थे ऐसे हजारों घोड़े चल पड़े ॥१३५॥ जिनके घण्टे प्रचण्ड शब्द कर रहे थे, जो मेघोंके समान गर्जना कर रहे थे, जिन्हें महावत प्रेरित कर रहे थे और जो गण्डशैल-काली चट्टानोवाले पर्वतोंके समान जान पड़ते थे ऐसे हाथी चलने लगे ॥१३६॥ जो अट्टहास छोड़ रहे थे अर्थात् ठहाका मार कर हैंस रहे थे, नाना प्रकारकी चेष्टाएँ कर रहे थे और आकाशको फोड़ते हुए से जान पड़ते थे ऐसे मनुष्य उसके आगे-आगे जा रहे थे ॥१३७॥ इस प्रकार हजारों सुरद्वियोंके शब्दसे दिशाओंको पूर्ण करता हुआ रावण मणि तथा स्वर्णनिर्मित तोरणोसे अलङ्कृत लंका नगरीमे प्रविष्ट हुआ ॥१३८॥ यद्यपि रावण इस प्रकारकी अत्यन्त सुन्दर सम्पदाओंसे घिरा हुआ था तो भी सीता उसे तृणसे भी तुच्छ समझती थी ॥१३९॥ स्वभावसे ही निर्मल सीताके मनको रावण उस तरह लोभ प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं हो सका जिस प्रकारकी पानी कमलको लेप प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं होता है ॥१४०॥

१. रावणः म० । २. ध्वजाद्यर्पित म०, व० । ३. लोभमाने तु लेपमभुज यथाम्बुजम् म० ।

समन्तकुसुमं तावन्नानातरुलताकुलम् । प्रमदाख्यं वन सीता नीता नन्दनसुन्दरम् ॥१४१॥
 स्थितं फुल्लनगस्योर्ध्वं दृष्ट्वा यद् दृष्टिबन्धनम् । उन्मादो मनसस्तुङ्गो देवानामपि जायते ॥१४२॥
 गिरिः मसभिरुद्यानैर्वैष्टितः स्वायतैः स च । रराज भद्रशालाद्यैः सूर्यावर्तं ह्रवोज्ज्वलः ॥१४३॥
 एकदेशानहं तस्य विविधाद्भुतसङ्कुलान् । नामतः सम्प्रवक्ष्यामि तव राजन् निबोधयताम् ॥१४४॥
 प्रकीर्णकं जनानन्दं सुखसेव्यं समुच्चयम् । चारणप्रियसंज्ञं च निबोध प्रमदं तथा ॥१४५॥
 प्रकीर्णकं महीपृष्ठे जनानन्दं ततः परम् । यत्रानिपिहसन्नारो जनः क्रीडति नागरः ॥१४६॥
 तृयीषेऽल वने रम्ये मृदुपादपसङ्कुले । घनचुन्दप्रतीकायो सरिद्वामीमनोहरे ॥१४७॥
 दशग्यामायता वृक्षा रविमार्गोपरोधिनाः । केतकीयूथिकोपेतास्ताम्बूलीकृतसङ्गमाः ॥१४८॥
 निरुपद्रवसञ्चारे तत्रोद्यानसमुच्चये । विलसन्ति विलासिन्यः क्वचिद्देशे च सन्नराः ॥१४९॥
 चारणप्रियमुद्यानं मनोऽं पापनाशनम् । स्वाध्यायनिरता यत्र श्रमणा व्योमचारिणः ॥१५०॥
 तस्योपरि समारूढं ययुष्टमनिन्वितम् । सुखारोहणसोपानं दृश्यते प्रमदाभिधम् ॥१५१॥
 स्नानक्रांढोचित्वा रम्या बाण्योऽस्मिन् पद्मशोभिता । प्रयाः सभाश्च विद्यन्ते रचितानेकभूमयः ॥१५२॥
 नारिङ्गमातुलिङ्गाद्यैः^३ फलैश्च निरन्तराः । खजूरैर्नालिकेरैश्च तालैरन्यैश्च वेष्टिताः ॥१५३॥
 तत्र च प्रमदोद्याने सर्वा एवागजातयः । कुसुमस्तवकैरुक्ष्णा गीयन्ते मत्तपट्पदैः ॥१५४॥

अथानन्तर जिसमें सब ओरसे फूल फूल रहे थे, जो नानाप्रकारके वृक्ष और लताओंसे युक्त था तथा जो नन्दन वनके समान सुन्दर था ऐसे प्रमद नामक वनमें सीता ले जाई गई ॥१४१॥ फूलोके पर्वतके ऊपर स्थित तथा दृष्टिको बँधनेवाले जिस प्रमदवनको देखकर देवोंके मनमें भी अत्यधिक उन्माद उत्पन्न हो जाता है ॥१४२॥ अत्यन्त लम्बे-लम्बे सात उद्यानोंसे घिरा हुआ वह पर्वत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भद्रशाल आदि वनोंसे घिरा अतिशय उज्ज्वल सुमेरु पर्वत ही हो ॥१४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! अनेक आश्रयोंसे भरे हुए उसके एक देशरूप जो सघन वन है हम उनके नाम कहते हैं सो सुनो ॥१४४॥ उस पर्वत पर जो सात वन है उनके नाम इस प्रकार हैं—१ प्रकीर्णक २ जनानन्द ३ सुखसेव्य ४ समुच्चय ५ चारणप्रिय ६ निबोध और प्रमद ॥१४५॥ इनमेंसे प्रकीर्णक नामका वन पृथ्वीतल है पर उसके आगे जनानन्द नामका वह वन है जिसमें कि वे ही मनुष्य क्रीड़ा करते हैं जिनका कि आना-जाना निषिद्ध नहीं है अन्य लोग नहीं ॥१४६॥ उसके ऊपर चलकर तीसरा सुखसेव्य नामका वन है जो कोमल वृक्षाँसे व्याप्त है, मेघ समूहके समान है, तथा नदियों और वापिकाओंसे मनोहर है । उस वनमें सूर्यके मार्गको रोकनेवाले, केतकी और जूहीसे सहित तथा पानकी लताओंसे लिपटे दशवेमां प्रमाण लम्बे-लम्बे वृक्ष हैं ॥१४७-१४८॥ उसके ऊपर उपद्रव रहित गमनागमनसे युक्त समुच्चय नामका चौथा वन है जिसमें कहीं हाव-भावको धारण करनेवाली स्त्रियों सुशोभित हैं तो कहीं उत्तमोत्तम मनुष्य सुशोभित हो रहे हैं ॥१४९॥ उसके ऊपर चारणप्रिय नामक पाँचवाँ पापापहारी मनोहर वन है जिसमें चारणशृङ्गिधारी मुनिराज स्वाध्यायमें तत्पर रहते हैं ॥१५०॥ [उसके ऊपर छठवाँ निबोध नामका वन है जो ज्ञानका निवास है] और उसके आगे चट्टकर-प्रमद नामका सातवाँ वन है जो घोड़ेके पृष्ठके समान उत्तम तथा सुखसे चढ़नेके योग्य सीढ़ियोंसे युक्त दिखाई देता है ॥१५१॥ इस प्रमद वनमें स्नानक्रीड़ाके योग्य, कमलोंसे सुशोभित मनोहर वापिकाएँ हैं, स्थान स्थान पर पानीशालाएँ और अनेक खण्डोंसे युक्त सभागृह विद्यमान है ॥१५२॥ जहाँ खजूर, नारियल, ताल तथा अन्य वृक्षाँसे घिरे एवं फलोंसे लदे नारिङ्ग और बीजपूर आदिके वृक्ष हैं ॥१५३॥ उस प्रमद

कुर्वन्ती^१ लतालीलां कोमलैः पल्लवैः करै । धूर्णिता मन्दवातेन फलयुग्ममनोहरा ॥१५५॥
 सारङ्गदयिताभिश्च प्रलम्बाङ्गुदशोभिनः । समस्ततुङ्गतच्छायाः^२ सेव्यन्ते वचपाद्पाः ॥१५६॥
 विशूर्ति तस्य तां वाप्यः सहस्रच्छन्दाननाः । आलोकन्त इवावृता असितोपल्लोचनैः ॥१५७॥
 गहान् कोकिलालापान् नृत्यन्त्यो मन्दवायुना । दीर्घिका विहसन्तीव राजहसकदम्बकैः ॥१५८॥
 प्रमदाभिव्यमुद्यान सर्वभोगोत्सवावहम् । अत्र किं बहुनोक्तेन स्थाद्गर वन्दनादपि ॥१५९॥
 अशोकमालिनी नाम पत्रपत्रविराजिता । वापी कनकसोपाना विचित्राकारगोपुरा ॥१६०॥
 मनोहरैर्गृहैर्भाति गवाक्षाद्युपशोभितैः । सल्लतालिङ्गितप्रान्तैर्निर्करैश्च ससीकरैः ॥१६१॥
 तत्राशोकतच्छूत्रे स्थापिता शोकधारिणी । देये शक्रालयाद् अष्टा स्वयं श्रीरिव जानकी ॥१६२॥
 तस्मिन् दशाननोकाभिः खीभिरन्तरवर्जितम् । सीता प्रसाद्यते वल्लगन्धालङ्कारपाणिभिः ॥१६३॥
 दिव्यै स्ननसर्गैर्गौतमैश्चैश्चामृतहारिभिः । अनुनेतुं न सा शक्या सम्पदा चामराभया ॥१६४॥
 उपशुं परि संरको दूतीं विद्याधराधिपः । प्राहिणोद्धि स्मरोदारदावज्वालाकुलाङ्कृतः ॥१६५॥
^३दूति सीतां ब्रज ब्रूहि दशस्यमनुरक्तकम् । न साम्प्रतमवज्ञातुं प्रसीदेत्यानिभापते ॥१६६॥
 गताऽऽगता च सा तस्मै वदतीति वितेजसे । देव साहारमुत्सृज्य स्थिता त्वां वृणुते कथम् ॥१६७॥

नामक उद्यानमे वृक्षोंकी सब जातियों विद्यमान हैं जो कि फूलोंसे आच्छादित हैं और मद्दोन्मत्त भ्रमर जिनपर गुञ्जार करते हैं ॥१५४॥ वहाँ मन्द-मन्द वायुसे हिलती और फलों तथा फूलोंसे मनोहर लता अपने कोमल पल्लवोंसे ऐसी जान पड़ती है मानो हाथ चलाती हुई नृत्य ही कर रही हो ॥१५५॥ वहाँ नीचे लटकते हुए मेवांके समान सुशोभित तथा समस्त ऋतुओंमें छाया उत्पन्न करनेवाले सघन वृक्षोंकी हरिणियाँ सदा सेवा करती हैं—उनके नीचे विश्राम लेती हैं ॥१५६॥ कमलरूपी मुखोंसे सहित वहाँकी वापिकाएँ नील कमल रूपी नेत्रोंके द्वारा उस वनकी उस विभूतिको मानो अचूत होकर ही सदा देखती रहती हैं ॥१५७॥ जहाँ मन्द-मन्द वायुसे नृत्य करती हुई वापिकाएँ राजहस पक्षियोंके समूहसे ऐसी जान पड़ती हैं मानों कोकिलाओंके आलापसे युक्त सघन वनोंकी हँसी ही कर रहीं हों ॥१५८॥ इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? इतना ही बहुत है कि समस्त भोगों और उत्सवोंको धारण करनेवाला वह प्रमद नामक उद्यान नन्दन वनसे भी अधिक सुन्दर है ॥१५९॥

उस प्रमद वनमें अशोक मालिनी नामकी वापी है जो कि कमल पत्रोंसे सुशोभित है, स्वर्णमय सोपानोंसे युक्त है, और विचित्र आकार वाले गोपुरसे अलङ्कृत है ॥१६०॥ इसके सिवाय वह प्रमद वन भरोसे आदिसे अलङ्कृत तथा उत्तमोत्तम लताओंसे आलिङ्गित मनोहर गृहों और जल कणोंसे युक्त निर्भरोसे सुशोभित है ॥१६१॥ उस प्रमद वनके अशोक वृक्षसे आच्छादित एक देशमें वैठी शोकवती सीता ऐसी जान पड़ती थी मानों स्वर्गसे गिरी साक्षात् लक्ष्मी ही ॥१६२॥ वहाँ रावणकी आज्ञानुसार वल्ल, गन्ध तथा अलङ्कारोंको हाथोंमें धारण करनेवाली स्त्रियों निरन्तर सीताको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करती थी ॥१६३॥ किन्तु नृत्य सहित दिव्य संगीतों, अमृतके समान मनोहर वचनों और देवतुल्य सम्पदाके द्वारा सीता अनुकूल नहीं की जा सकी ॥१६४॥ इतने पर भी कामरूपी दावानलकी प्रचण्ड ज्वालाओंसे व्याकुल हुआ रागी रावण एकके बाद एक दूती भेजता रहता था ॥१६५॥ वह कहता था कि हे दूति ! जाओ और सीतासे कहो कि अब अनुरागसे भरे रावणकी उपेक्षा करना उचित नहीं है अतः प्रसन्न होओ ॥१६६॥ दूती सीताके पास जाती और वापिस आकर तेजरहित रावणसे कहती कि हे देव !

१. कुर्वन्ती च०, ख० । २. सेवन्ते म० । ३. दूति म० ।

न जल्पति नियण्णाङ्गं नालं कायेन चेष्टते । न दृढाति महाशोका दष्टिमस्मासु जानकी ॥१६८॥
 अमृतमपि सुस्त्रादैः पयःप्रभृतिभिः श्रितम् । सुगन्धि वृणुते नाङ्गं विचित्रं बहुवर्णकम् ॥१६९॥
 ततो मदनदीप्तानिनज्जालालोढः समन्ततः । आर्त्तो 'व्यचिन्तयत् भूरि भग्नोऽसौ व्यसनार्थे ॥१७०॥
 शोचत्यनुसुक्तदीर्घोष्णनिश्वासानिलसन्ततिः । शुष्यन्मुखः पुनः किञ्चिद्गायत्र्यविदिताक्षरम् ॥१७१॥
 स्मरप्रालेयनिर्दग्धं पुनाति मुखपङ्कजम् । मुहुः किमपि सञ्चिख्य स्मयते क्षणनिश्चलः ॥१७२॥
 अनुबन्धमहादाहा समस्ता'वयवानलम् । क्षिपत्यविरत भूमौ कुट्टिमायां विवर्त्तकः ॥१७३॥
 उत्सिष्ठति पुनः शून्यः सेवते निजमासनम् । निःक्रामति पुनर्दृष्ट्वा जन प्रतिनिवर्त्तते ॥१७४॥
 नागेन्द्र इव हस्तेन सर्वदिद्मुखगामिना । आस्फालयति निःशङ्कः कुट्टिमं कम्पमानयन् ॥१७५॥
 स्मरन् सीतां मनोयातामात्मान पौरुषं विधिम् । निरपेक्षमुपालब्धुं साश्रुनेत्रः प्रवर्त्तते ॥१७६॥
 किञ्चिदाह्वयते दत्तहुङ्कारश्चातिकैर्जनैः । तूष्णीमास्ते पुनः किं किमिति शून्यं प्रभापते ॥१७७॥
 सीता सीतेति कृत्वास्वमुत्तानं भापते मुहुः । तिष्ठत्यवाद्मुखं भूयो नखेन विलिखन् महीम् ॥१७८॥
 करेण हृदयं माष्टि वाहुसूद्वानमीचते । पुनर्मुञ्चति हुङ्कारं तल्पं मुञ्चति सेवते ॥१७९॥
 दधाति हृदये पद्मं पुनर्दूरं निरस्यति । मुहुः पठति शृङ्गारं गगनाङ्गनमीचते' ॥१८०॥

वह तो आहार छोड़कर बैठी है तुम्हें किस प्रकार स्वीकृत करे ॥१६७॥ वह चुपचाप बैठी है, न कुछ बोलती है, न शरीरसे कुछ चेष्टा करती है और न महाशोकसे युक्त होनेके कारण हम लोगोंपर दृष्टि ही डालती है ॥१६८॥ अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट, दूध, आदिसे युक्त, सुगन्धित, तथा अनेक वर्णका विचित्र भोजन उसे दिया जाता है पर वह स्वीकृत नहीं करती है ॥१६९॥ दूतीकी बात सुनकर जो सब ओरसे कामरूपी प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाओसे व्याप्त था तथा दुःखरूपी सागरमे निमग्न था ऐसा रावण अत्यधिक दुःखी होता हुआ पुनः चिन्तामे पड़ जाता था ॥१७०॥ वह कभी लम्बी तथा गरम श्वासोच्छ्वासकी वायुको छोड़ता हुआ शोक करता था तो कभी मुख सूख जानेसे अप्रसन्न अक्षरों द्वारा कुछ गाने लगता था ॥१७१॥ वह कामरूपी तुपारसे जले हुए मुखकमलको बार-बार हिलाता था और कभी क्षणभरके लिए निश्चल बैठकर तथा कुछ सोचकर हँसने लगता था ॥१७२॥ वह रत्नखचित फर्सपर लोटता और महादाह से युक्त समस्त अवयवको बार-बार फैलाता था ॥१७३॥ फिर लठकर खड़ा हो जाता, कभी शून्य हृदय हो अपने आसनपर जा बैठता, कभी बाहर निकलता और किसी मनुष्यको देखकर फिर लोट जाता ॥१७४॥ जिस प्रकार हाथी सब दिशाओंमे जानेवाली सूँडसे किसीका आस्फालन करता है उसी प्रकार रावण भी निःशङ्क हो सब दिशाओंमे घूमनेवाले अपने हाथसे कम्पित करता हुआ फर्सको आस्फालन करता था अर्थात् फर्सपर घुमा-घुमाकर हाथ पटकता था और उससे फर्सको कम्पित करता था ॥१७५॥ वह मनमें आई हुई सीताका स्मरण करता हुआ अपने पुरुषार्थ, तथा निरपेक्ष भाग्यको उल्लाहना देनेके लिए प्रयत्न होता था और उस समय उसके नेत्रोंसे अश्रु निकलने लगते थे ॥१७६॥ वह किसीको बुलाता था और समीपवर्ती लोग जब हुंकार देते थे तब चुप रह जाता था तदनन्तर बार-बार क्या है ? क्या है ? इस प्रकार बिना किसी लक्ष्यके वकता रहता था ॥१७७॥ वह कभी मुखको ऊपर कर 'सीता सीता' इस प्रकार बार-बार चिल्लाता था और कभी मुख नीचा कर नखसे पृथिवीको खोदता हुआ चुप बैठा रहता था ॥१७८॥ वह कभी हाथसे वक्षस्थलको साफ करता था, कभी भुजाओंके अग्रभागको देखता, कभी हुंकार छोड़ता कभी विस्तर पर जा लोटता था ॥१७९॥ कभी हृदय पर कमल

१. विचिन्तयत् म० । २. स्मरतावयवानवम् म० । ३. मुपालब्धं म० । ४. यतति म० ।
 ५. -मीच्यते म० ।

हस्त हस्तेन सस्पर्श्य हन्ति पादेन मेदिनीम् । निश्वासदह्नस्याममाकृष्याधरमीच्यते ॥१८१॥
 धत्ते कहकह स्वानं केशान् वर्त्तयति क्षणम् । कोपेन दुस्सहो दृष्टि कश्चिदेव विमुञ्चति ॥१८२॥
 जम्भोत्पानीकृतोरस्को वाष्पाच्छादितलोचनः । बाहुतोरणमुद्यम्य भिनत्ति स्फुटद्दृग्गुलिः ॥१८३॥
 अशकान्तेन हृदयं धीजयत्याहितेक्षणम् । कुसुमैः कुरुते रूप पुनर्नाशयति द्रुतम् ॥१८४॥
 चित्रयत्याद्री सीतान् द्रव्ययथशुभिः पुनः । दीनः क्षिपति हाकारान् न न मामेति जल्पति ॥१८५॥
 एवमाद्याः क्रियाः विलसा मदनग्रहपीडितः । करोति करुणालापं चित्रं हि स्मरचेष्टितम् ॥१८६॥
 तस्य स्मरानिना द्रीष हृदयेन सम वपुः । अनुबन्धमहाधूपं ज्वलत्याशाकृतेन्धनम् ॥१८७॥
 अचिन्तयच्च हा कष्टं कामवस्थामहं गतः । येनेदमपि शक्नोमि न वोढुं स्वशरीरकम् ॥१८८॥
 दुर्गासागरमध्यस्था वृहद्विधाधरा मया । जितः सहस्रयो युद्धे किमिदं वर्ततेऽधुना ॥१८९॥
 सर्वत्र जगति ख्यातलोकपालपरिच्छदः । वन्द्योऽयमुपासीतो महेन्द्रोऽपि पुरा मया ॥१९०॥
 अनेकयुद्धनिर्भङ्गनराधिपकदम्बकः । सोऽहं सम्प्रति मोहेन भस्मीकर्तुं प्रवर्तितः ॥१९१॥
 चिन्तयन्निदमन्यच्च कामाचार्यवशगतः । भास्तां तावदसौ राजन्निदमन्यद्विद्वृष्यताम् ॥१९२॥
 आकुलो मन्त्रिभिः साक महामन्त्रविशारदः । विभीषणः समारम्भे निरूपयितुर्मादृशम् ॥१९३॥
 स हि रावणराष्ट्रस्य धुरं धत्ते गतश्रमः । समस्तशास्त्रबोधाम्बुधौतनिर्मलमानसः ॥१९४॥

रखता, कभी उसे दूर फेंक देता, कभी बार-बार शृङ्गारका पाठ करता—शृङ्गार भरे शब्दोंका उच्चारण करता और कभी आकाशकी ओर देखने लगता था ॥१८०॥ कभी हाथसे हाथका स्पर्शका पैरसे पृथिवीको ताड़ित करता था, कभी श्वासोच्छ्वास रूपी अग्निसे काले पड़े हुए अधरोष्ठको खींच कर देखता था ॥१८१॥ कभी 'कह कह' शब्द करता था, कभी केशोंको खोल कर फैलाता था, कभी किसी पर क्रोधसे दुःसह दृष्टि छोड़ता था ॥१८२॥ कभी जिमुहाई लेते समय वक्षःस्थलको फुलाकर आगेको उभार लेता था, कभी नेत्रोंको आँसुओंसे आच्छादित करता था, कभी भुजाओंका तोरण ऊपर उठा अँगुलियों चटकाता हुआ उसे तोड़ता था ॥१८३॥ कभी हृदयकी ओर दृष्टि डालकर वस्त्रके अञ्चलसे हवा करता था, कभी फूलोंसे रूप बनाता और फिर उसे शीघ्र ही नष्ट कर देता था ॥१८४॥ कभी आदरके साथ सीताका चित्र बनाता और फिर उसे आँसुओंसे गीला करता था, कभी दीनताके साथ हा हाकार करता और कभी 'न, न' 'मा, मा' शब्दोंका उच्चारण करता था ॥१८५॥ ईस प्रकार कामरूपी प्रहसे पीडित रावण अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करता तथा करुणापूर्ण वार्तालाप करता था सो ठीक ही है क्योंकि कामकी चेष्टा विचित्र होती है ॥१८६॥ जिसमे वासनारूपी महाधूम उठ रहा था, तथा आशा जिसमे ईधन वन रही थी ऐसा उसका शरीर कामाग्निसे दीप्त हो हृदयके साथ जल रहा था ॥१८७॥ वह कभी विचार करता कि हाथ में किस अवस्था को प्राप्त हो गया जिससे अपने इस शरीरको भी धारण करनेके लिए समर्थ नहीं रहा ॥१८८॥ मैंने दुर्गम समुद्रके बीचमे रहनेवाले हजारो वड़े-वड़े विद्याधर युद्धमें जीते हैं पर इस समय यह क्या हो रहा है ? ॥१८९॥ जिसका लोकपालरूपी परिकर समस्त संसारमें प्रसिद्ध था ऐसे राजा इन्द्रको भी मैंने पहले बन्दीगृहमे डाल रक्खा था तथा अनेक युद्धोंमें जिसने राजाओंके समूहको पराजित किया था ऐसा मैं इस समय मोहके द्वारा भस्मीभूत हो रहा हूँ ॥१९०-१९१॥ गीतम-कहते हैं कि हे राजन् ! यह तथा अन्यवस्तुओंका चिन्तन करना हुआ रावण कामरूपी आचार्यके वशीभूत हो रहा था सो यह रहने दो अब दूसरी बात सुनो ॥१९२॥

अथानन्तर आकुलतासे भरा तथा बड़ी-बड़ी मन्त्रणा करनेमे निपुण विभीषण मन्त्रियोंके साथ बैठकर इस प्रकार निरूपण करनेके लिए तत्पर हुआ ॥१९३॥ यथार्थमे समस्त शास्त्रोंके ज्ञान

१. माकृष्णाधर- म० । २. केशाद्वर्तयति म० । ३. कदम्बकम् म० । ४. महामन्त्रिविशारदः ख० । ३४-२

रावणस्य हि तत्तुल्यो न हितो विद्यते परः । तस्य सर्वोपयोगेन चिन्तनीये स वर्तते ॥११६५॥
 उवाचासावहो वृद्धा राजनीत्थं न्यवस्थिते । उपचिपत कर्तव्यमस्माकमधुनोचितम् ॥११६६॥
 विभीषणोदितं ध्रुत्वा सम्भिन्नमतिरभ्यधात् । अतः परं वदामः किं गतं कार्यमकार्यताम् ॥११६७॥
 स्वामिनो दशवक्त्रस्य सहसा दैवयोगतः । दक्षिणोपतितो वाहुः खरदूषणसंज्ञकः ॥११६८॥
 विराधितोऽपरः कोऽपि कारणं यो न कस्यचिद् । शोऽयं गोमायुतां मुक्त्वा केसरिल्वं समाश्रितः ॥११६९॥
 मन्यतां पश्यतामुप्य साधुकर्मोदयादिमाम् । लक्ष्मणस्याहवे वातो वन्धुतां यत्सुचेष्टितः ॥२००॥
 एतेऽपि बलिनः सर्वे मानिनः कपिकेतवः । भवन्त्याक्रान्तिता वर्या निर्भृत्यास्तु न जातुचित् ॥२०१॥
 अर्मापामन्य आकारो मानसं त्वन्यथा स्थितम् । भुजङ्गानामिवात्यन्तमन्तरे दारुणं विषम् ॥२०२॥
 नेता वानरमौलीनामनङ्गकुसुमापतिः । न्यक्षेण भजते पञ्चं सुग्रीवस्य मरुसुतः ॥२०३॥
 ततः पञ्चमुखोच्चिद्विधायानादरस्मितम् । खरदूषणवृत्तेन गणितेनेह को गुणः ॥२०४॥
 वृत्तान्तेनामुना कस्य संत्रासोऽर्कातिरेव च । भवत्येव हि धूराणामौदशी समरे गतिः ॥२०५॥
 वातेनापहृते सिन्धोः कणे कान्यूनता भवेत् । रावणस्य बलं स्फूर्तं किं दूषणसमीहया ॥२०६॥
 वीर्यां व्रजति मे चेतः कुर्वतः सम्प्रधारणम् । कायं दृशाननः स्वामी कान्ये केऽपि वनौकसः ॥२०७॥
 सूर्यहासधरेणापि क्रियते लक्ष्मणेन किम् । विराधितः क्व नामैव यस्येच्छामनुवर्तते ॥२०८॥

जलसे धुलकर जिसका मन अत्यन्त निर्मल हो गया था तथा जो सब प्रकारके श्रमको सहन करनेवाला था ऐसा विभीषण ही रावणके राष्ट्रका भार धारण करनेवाला था ॥११६४॥ विभीषणके समान रावणका हित करनेवाला दूसरा मनुष्य नहीं था । वह उसके करने योग्य समस्त कार्यमि सर्व प्रकारका उपयोग लगाकर सदा जागलक रहता था ॥११६५॥ विभीषणने मन्त्रियोंसे कहा कि अहो वृद्धजनो ! राजाकी ऐसी चेष्टा होनेपर अब हम लोगोका क्या कर्तव्य है सो कहो ॥११६६॥ विभीषणका कथन सुनकर सम्भिन्नमति बोला कि इससे अधिक और क्या कहें कि सब कार्य अकार्यताको प्राप्त हो गया है अर्थात् सब कार्य गड़बड़ हो गया है ॥११६७॥ स्वामी दृशाननकी दक्षिण भुजाके समान जो खरदूषण था वह दैवयोगसे सहसा नष्ट हो गया ॥११६८॥ वह विराधित नामका विद्याधर जो कि किसीके लिए कुछ भी नहीं था वह आज शृगालपना छोड़कर सिंहपनेको प्राप्त हुआ है ॥११६९॥ पुण्य कर्मके उदयसे प्राप्त हुई इसकी इस भव्यताको तो देखो कि उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाला यह युद्धमें लक्ष्मणकी मित्रताको प्राप्त हो गया ॥२००॥ इधर ये सभी वानरवंशी भी अभिमानी तथा बलवान् हो रहे हैं सो ये आक्रमणसे ही वशमें हो सकते हैं बिना आक्रमणके कभी वशीभूत नहीं हो सकते ॥२०१॥ इनका आकार कुछ दूसरा ही है और मन दूसरे ही प्रकारका स्थित है जिस प्रकार सोंपके बाह्यमें तो कोमलता रहती है और भीतर दारुण विष रहता है ॥२०२॥ खरदूषणकी पुत्री अनंगकुसुमाका पति हनुमान् इस समय वानर वंशियोंका नेता बन रहा है और वह खासकर सुग्रीवका ही पक्ष लेता है । इस प्रकार सम्भिन्नमतिके कह चुकने पर पंचमुख मन्त्री अनादर पूर्वक हँसता हुआ बोला कि यहाँ खरदूषणका वृत्तान्त गिननेसे अर्थात् उसकी मृत्युका सोच करनेसे क्या लाभ है ? ॥२०३-२०४॥ इस वृत्तान्तसे किसे भय तथा किसकी अपकीर्ति है ? अर्थात् किसीकी नहीं क्योंकि युद्धमें शूर वीरोकी ऐसी गति होती ही है ॥२०५॥ वायुके द्वारा समुद्रकी एक कणिका दरलेने पर समुद्रमें क्या न्यूनता आ गई ? अर्थात् कुछ भी नहीं । रावणका बल बहुत है, उसके दोष देखनेसे क्या । ऐसी बात सोचते हुए मेरे मनमें लजा आती है । कहाँ यह जगत्का स्वामी रावण और कहाँ अन्य वनवासी ? ॥२०६-२०७॥ लक्ष्मण यद्यपि सूर्यहास खड्गको धारण करनेवाला है तो भी उससे क्या और विराधित उसकी इच्छानुकूल प्रवृत्ति करता है—उसका

मृगेन्द्राधिष्ठितात्मानमपि काननसङ्गतम् । दन्दहृत्ते न किं दावो गिरिं परमदुःसहम् ॥२०६॥
 सहस्रमतिनामाथ सत्त्विवोऽनन्तरं जगौ । सूचयन् विरलं वाक्यं पूर्वं मस्तककम्पनात् ॥२१०॥
 मानोद्धतैरिमैवाङ्घ्रैरर्थहानैः किमार्तिरैः । मन्त्रणीयं हि सम्बद्धं स्वामिने हितमिच्छता ॥२११॥
 स्वल्प इत्यनया बुद्धया कार्यावज्ञा न वैरिणि । कालं प्राप्य कणो बद्धैर्दहेत् सकलविष्टपम् ॥२१२॥
 अभ्रश्रीवो महासैन्यः स्यात् सर्वत्र विष्टपे । स्वल्पेनापि त्रिपृष्ठेन निहतो रणमूर्धनि ॥२१३॥
 तस्माक्षेपविनिर्मुक्तमियं परमदुर्गमा । नगरी क्रियतां लङ्का मतिस्त्रन्दोहशालिभिः ॥२१४॥
 सुघोराणि प्रसारणन्तान् यन्त्राप्येतानि सर्वतः । तुङ्गप्राकारकूटेषु दृश्यतां च कृताकृतम् ॥२१५॥
 सन्मानैर्बहुभिः शश्वत् सेव्यो जनपदोऽखिलः । स्वजनाव्यतिरेकेण दृश्यतां प्रियवादिभिः ॥२१६॥
 सर्वोपायविधानेन रक्षयतां प्रियकारिभिः । राजा दशाननो येन सुखतां प्रतिपद्यते ॥२१७॥
 प्रसाद्यतां सुविज्ञानैर्मैथिली परमैः प्रियैः । मधुरैर्वचनैर्दानैः चारैरहिवधूरिव ॥२१८॥
 सुग्रीवं कैकुलनगरमन्याश्च भटपुङ्गवान् । बहिः स्थापयतोऽयुक्ताङ्गार्या रक्षकारिणः ॥२१९॥
 एवंकृते न ते भेदं जानन्ति बहिराहिताः । कार्ये नियोगदानाच्च जानन्ति स्वामिनं प्रियम् ॥२२०॥
 एवं दुर्गतरं ज्ञाते कार्ये सर्वत्र सर्वतः । को जानाति हतां सीतां स्थितामत्रापत्र वा ॥२२१॥
 रहितश्चानया रामो भ्रुवं प्राणान् विमोच्यति । यस्येयमीदृशी कान्ता वर्तते विरहे प्रिया ॥२२२॥
 रामे च पद्मतां प्राप्ते शोकविलबमानसः । एकाकी क्षुद्रयुक्तो वा सौमित्रिः किं करिष्यति ॥२२३॥

मित्र है इससे भी क्या ? ॥२०८॥ क्योंकि वन सहित एक अत्यन्त दुःसह पर्वत यद्यपि सिहसे सहित हो तो भी क्या उसे दावानल जला नहीं देता ? ॥२०६॥

तदनन्तर माथा हिलाकर पूर्व कथित वचनोंको नीरस बताया हुआ सहस्रमति मन्त्री बोला कि मानसे भरे इन निरर्थक वचनोंके कहनेसे क्या लाभ है ? स्वामीका हित चाहनेवाले व्यक्ति को ऐसी मन्त्रणा करनी चाहिए जो प्रकृत वातसे सम्बन्ध रखनेवाली हो ॥२१०-२११॥ 'बह छोटा है' ऐसा समझकर शत्रुकी अबज्ञा नहीं करनी चाहिये क्योंकि समय पाकर अग्निका एक कग समस्त संसारको जला सकता है ॥२१२॥ बड़ी भारी सेनाका स्वामी अश्वश्रीव समस्त संसारमे प्रसिद्ध था तो भी रणको अभ्रभागमें छोटेसे त्रिपृष्ठके द्वारा मारा गया था ॥२१३॥ इसलिये विना किसीके विलम्बके इस लंका नगरीको बुद्धिमान् मनुष्योंके द्वारा अत्यन्त दुर्गम बनाया जावे ॥२१४॥ ये महाभयानक यन्त्र सब दिशाओमे फैला दिये जावे । अत्यन्त उन्नत प्राकारके शिखरों पर चढ़कर 'क्या किया गया क्या नहीं किया गया' इसकी देख रेखकी जाय ॥२१५॥ अनेक प्रकारके सन्मानोंसे समस्त देशकी निरन्तर सेवा की जाय और मधुर वचन बोलनेवाले राज्याधिकारी सब लोगोंको अपने कुटुम्बीजनोंसे अभिन्न देखे ॥२१६॥ प्रिय करनेवाले मनुष्य सब प्रकारके उपायोंसे राजा दशाननकी रक्षा करे जिससे वह सुखको प्राप्त हो सके ॥२१७॥ जिस प्रकार दूधके द्वारा सर्पिणीको प्रसन्न किया जाता है उसी प्रकार उत्तम चातुर्य, परम प्रिय मधुर वचनों और इष्ट वस्तुओंके दानके द्वारा सीताको प्रसन्न किया जाय ॥२१८॥ किष्कु नगरके स्वामी सुग्रीव तथा नगरीकी रक्षा करनेमे उद्यत अन्य उत्तम योद्धाओंको नगरके वाहर रखा जावे ॥२१९॥ ऐसा करने पर वाहर रखे हुए सुग्रीवादि अन्तरका भेद नहीं जान सकेंगे और कार्य सौया जानेके कारण वे यह समझते रहेंगे कि स्वामी हम पर प्रसन्न है ॥२२०॥ इस तरह जब यहाँका प्रत्येक कार्य सब जगह सब ओरसे अत्यन्त दुर्गम हो जायगा तब कौन जान सकेगा कि हरी हुई सीता यहाँ है या अन्यत्र है ? ॥२२१॥ सीताके विना राम निश्चित ही प्राण छोड़ देगा । क्योंकि जिसकी ऐसी प्रिय स्त्री विरहमे रहेगी वह जीवित रह ही कैसे सकेगा ॥२२२॥ जब राम मृत्युको प्राप्त हो जायगा तब शोकसे दुःखी अकेला अथवा लुद्र सहायकोंसे युक्त

अथवा रामशोकेन मरणं तस्य निश्चितम् । दीपप्रकाशशोर्धद्वन्द्वयोः सहितं परम् ॥२२४॥
 अपराधाविमग्नः सन् यात्यति क विराधितः । सुग्रीवस्यापि वाधन्तं श्रूयते लोकतः परम् ॥२२५॥
 मायां सुग्रीवसन्देहकारिणीं यश्च नाशयेत् । दशवक्त्रेश्वरादस्य कोऽलौ लोके भविष्यति ॥२२६॥
 तस्मात्तद्दुर्गसंखिद्धी स नार्थं भजतेतराम् । योगक्षायां विभोर्वाढं परिणामे शुभत्तदः ॥२२७॥
 प्रकारेणामुना शत्रून्तानन्याश्च जेष्यति । दशाननस्ततो यत्नः क्रियतामत्र वस्तुनि ॥२२८॥
 एवं विमृश्य विद्वांसः प्रमोडान्वितमानसाः । यथास्वं विलयं जग्मुः कर्तव्यकृतनिश्चयाः ॥२२९॥
 विभीषणेन यन्नाथैः शालो दुर्गांतरीकृतः । विद्यामिश्र विचित्राभिर्लङ्का गह्वरतारका ॥२३०॥

मन्दाक्रान्ता

कृत्यं किञ्चिद्विशदमनसामासवाक्यानपेचं नासैरुक्तं फलति पुरुषस्त्योविक्रतं पौरुषेण ।
 देवापेतं पुरुषकरणं कारणं नेष्टसंगे तस्मान्नव्याः क्रुत यतैर्न सर्वहेतुप्रसादे ॥२३१॥
 राजन्कर्माण्युदयसमयं सेवमाने जनानां नानाकारं कुशलवचनं नो विशत्येव चेतः ।
 युक्तां तस्मात्स्थितिमनुनयन् कर्म कुर्यात्प्रशस्तं भूयो येन प्रतपति रविः शोकरूपो न कष्टः ॥२३२॥

इत्यार्थे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मायाप्रकाराभिधानं नाम पट्चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४६॥

लक्ष्मण क्या कर लेगा ? ॥२२३॥ अथवा रामके शोकसे उसका मरण होना निश्चित है क्योंकि इन दोनोंका समागम दीप और प्रकाशके समान अविनाभावी है ॥२२४॥ विराधित अपगाधरूपी समुद्रमें मग्न है अतः कहाँ जावेगा ? अथवा जावेगा भी तो सुग्रीवके समीप जावेगा ऐसा लोगोंसे सुना जाता है ॥२२५॥ सुग्रीवका सन्देह उत्पन्न करनेवाली मायाको जो नष्ट कर सके ऐसा पुरुष संसारमें स्वामी दशाननसे बढ़कर दूसरा कौन होगा ? ॥२२६॥ इसलिए उस कठिन कार्यको सिद्ध करनेके लिए सुग्रीव, स्वामी-दशाननकी ही सेवा करेगा । और सुग्रीवके साथ दशाननका समागम होना फलकालमें शुभदायक होगा ॥२२७॥ इस विधिसे दशानन इन शत्रुओंको तथा अन्य लोगोंको भी जीत सकेगे इसलिए इस विषयमें शीघ्र ही यत्न किया जावे ॥२२८॥ इस प्रकार विचार कर बुद्धिमान् मन्त्री, करने योग्य कार्यका निश्चय कर हर्षित चित्त होते हुए अपने-अपने घर गये ॥२२९॥ विभीषणने यन्त्र आदिके द्वारा कोटको अत्यन्त दुर्गम कर दिया तथा नाना प्रकारकी विद्याओंके द्वारा लङ्काको गह्वरों एवं पाशोंसे युक्त कर दिया ॥२३०॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मलचित्तके धारक मनुष्योंका कोई भी कार्य आप्त वचनोंसे निरपेक्ष नहीं होता अर्थात् आप्तके कहे अनुसार ही उनका प्रत्येक कार्य होता है । आप्त भगवान्ने मनुष्योंके लिए जो कार्य बतलाये हैं वे पुरुषार्थके विना सफल नहीं होते और पुरुषार्थ देवके विना इष्ट सिद्धिका कारण नहीं होता इसलिए हे भव्यजीवो ! तो सबका कारण हे उसके प्रसन्न करनेमें प्रयत्न करो ॥२३१॥ हे राजन् ! जब तक मनुष्योंके कर्मका उदय विद्यमान रहता है तब तक नानाप्रकारके कुशल वचन उनके चित्तमें प्रवेश नहीं करते हैं इसलिए अपनी योग्य स्थितिके अनुसार प्रशस्त-पुण्यकर्म करना चाहिए जिससे कि फिर शोकरूपी कष्टदायी सूर्य सन्ताप उत्पन्न न कर सके ॥२३२॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य कथित, पद्मपुराणमें रावणको मायाके विविध रूपोंका वर्णन करनेवाला छियालिसवा पर्व पूर्ण हुआ ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व

किष्किन्वेशस्ततो भ्राम्यन् कान्ताविरहदुःखितः^१ । तं प्रदेशमनुप्राप्तो निवृत्तं यत्र संयुगम् ॥१॥
 तत्राद्राचीद्वयान् भग्नान् गजांश्च गतजीवितान् । सामन्तान्श्वसयुक्ताञ्जिर्मिन्त्रिक्लिन्नविग्रहान् ॥२॥
 दह्यमानान् नृपान् कांश्चित् कांश्चिन्निश्चितस्तथा । क्रियमाणानुमरणान् कान्ताभिरपान् भटान् ॥३॥
 विच्छिन्नार्धयुजान् कांश्चित् कांश्चिर्धोस्वर्जितान् । निःसृतान्त्रचयान् कांश्चिक्कांश्चिदलितमस्तकान् ॥४॥
 गोमायुप्रावृतान् कांश्चित् खगैः कांश्चिन्निपेवितान् । रुदिता परिवर्गेण कांश्चिक्कादित्तविग्रहान् ॥५॥
 किमेतदितिप्रष्टश्च तस्मै कश्चिद्वेदयत् । सीताया हरणं ध्वस्तौ जटायुखरदूपणौ ॥६॥
 ततोऽभवद् भृशं दुःखी खरदूपणमृत्युतः । किष्किन्धाधिपतिश्चिन्तामेवामगमदाकुलः ॥७॥
 कष्ट चिन्तितमेतन्मे किलास्मै बलशालिने । निवेद्य दयिताशोकं मोक्षयामिति महाशय्य ॥८॥
 विधानदन्तिना सोऽपि कथमाशामहाद्रुमः । भग्नो मम विपुणस्य कथं शान्तिर्भविष्यति ॥९॥
 किमज्ञानासुतं गत्वा सादरं संश्रयाम्यहम् । मद्रूपधारिणो येन मरणं स करिष्यति ॥१०॥
 उद्योगेन विसुक्तावां जनानां सुखिता कुतः । तस्माद् दुःखविनाशाय श्रयाम्युद्योगसुचमम् ॥११॥
 अथवानेकशो द्योऽनादरं^३ स कथ्यति । नवोऽनुरागवन्द्यो हि चन्द्रो लोकस्य नायदा ॥१२॥
 तस्मान् महाबलं दीप्तं महाविद्याविशारदम् । रावण शरणं यामि स मे शान्तिं करिष्यति ॥१३॥

अथानन्तर किष्किन्धापुरका स्वामी सुमीच स्त्रीके चिरहसे दुःखी हो भ्रमण करता हुआ जहाँ कि खरदूपण तथा लक्ष्मणका युद्ध हुआ था ॥१॥ वहाँ आकर उसने देखा कि कहीं दूटे हुए रथ पड़े हैं, कहीं मरे हुए हाथी पड़े हैं, कहीं जिनके शरीर छिन्न-भिन्न हो गए हैं, ऐसे धोड़ोंके साथ सामन्त पड़े हैं ॥२॥ कहीं कोई राजा जल रहे हैं, कोई सोंसे भर रहे हैं, कहीं जिनके पीछे खियों मर रहीं थीं ऐसे मरे हुए अनेक सुभट पड़े हैं ॥३॥ किन्हींकी आधी भुजा कट गई है, किन्हींकी आधी जोध टूट चुकी है, किन्हींकी आँतोका समूह निकल आया है, किन्हींके भरतक फट गये हैं, किन्हींको शृगाल घेरे हुए हैं, किन्हींको पत्नी खा रहे हैं और किन्हींके मृत शरीरको रोते हुए कुटुम्बीजन आच्छादित कर रहे हैं ॥४-५॥ 'यह क्या है ? इस प्रकार पूछने पर किसीने उसे बताया कि सीताका हरण हो चुका है और जटायु तथा खरदूपण मारे गए हैं ॥६॥

तदनन्तर खरदूपणकी मृत्युसे किष्किन्धापति सुमीच बहुत दुःखी हुआ, वह आकुल होत हुआ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि हाय मैंने विचार किया था कि 'मैं इस बलशालीके लिए निवेदन कर स्त्री सम्बन्धी शोकसे छूट जाऊँगा' इसी बड़ी आशासे मैं यहाँ आया था पर मेरे भाग्यरूपी हाथीने उस आशारूपी महावृत्तको कैसे गिरा दिया । हाय अब मुझ पापीको किस प्रकार शान्ति होगी ॥७-९॥ क्या अब मैं आदरके साथ हनुमान्का आश्रय लूँ जिससे वह मेरे समान रूपका धारण करनेवाले मायामयी सुमीचका भरण कर सके ॥१०॥ उद्योगसे रहित मनुष्योंको सुख कैसे प्राप्त हो सकता है, इसलिए मैं दुःखका नारा करनेके लिए उत्तम उद्योगका आश्रय लेता हूँ ॥११॥ अथवा हनुमान्को अनेक बार देखा है अतः वह अनादर करेगा क्योंकि नवीन चन्द्रमा ही लोगोंके द्वारा अनुरागके साथ बन्दनीय होता है अन्य समय नहीं ॥१२॥ इसलिए महाबलवान्, देदीप्यमान् और महाविद्याओंमें निपुण रावणकी शरणमें जाता हूँ वही

१. दुःखतः म०, क्रियमाणानुमरणकान्ताभिरपान् म० । २. रुदिता म० । ३. ऽनादरो म० ।

अजानानो विशेषं वा क्रोधचोदितमानसः । दशाननः कदाचिन्नो हन्तुं बाण्डेदुभावपि ॥१४॥
 मन्त्रदोषमसत्कारं दानं पुण्यं स्वशरताम् । दुःशीलत्वं मनोदाहं दुर्मित्रेभ्यो न वेदयेत् ॥१५॥
 तस्माद्यैवैव सग्रामे निहितः खरदूषणः । तमेव शरणं यामि स मे शान्तिं करिष्यति ॥१६॥
 तुल्यव्यसनताहेतोः कालोऽयमुपसर्पति । सद्भावं हि प्रपद्यन्ते तुल्यावस्थां जना मुवि ॥१७॥
 एवं विमृश्य सज्जातचारुद्विः समन्ततः । प्रजिघायादराद् दूतं प्रियं कर्तुं विराधितम् ॥१८॥
 सुग्रीवागमने तेन ज्ञापितेऽभूद् विराधितः । सविस्मयः सतोपश्च चकार च मनस्यद् ॥१९॥
 चित्रं सुग्रीवराजो मां संसेव्यः सन्निपेवते । अथवाश्रयसामर्थ्यात् पुंसां किं नोपजायते ॥२०॥
 ततो दुन्दुभिनिर्घोषं समाकर्ण्य घनोपमम् । पातालनगरं जात भयाकुलमहाजनम् ॥२१॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽष्टच्छदुराधाज्ञसम्भवम् । वद् तुर्यनिनादोऽयं श्रूयते कस्य संहतः ॥२२॥
 सोऽनोचच्छ्रुत्वा तां देव महाबलसमन्वितः । नाथोऽयं कपिकेतूनां प्रासस्वां प्रेमतत्परः ॥२३॥
 आतरो बालिसुग्रीवौ किष्किन्धानगराधिपौ । तिग्मांशुरजसः पुत्रौ प्रख्यानाववन्नाविमौ ॥२४॥
 बालीति योऽत्र विख्यातः शीलशौर्यादिभिर्गुणैः । अभिमानमहाशैलो नानसीद् दशवक्त्रकम् ॥२५॥
 पर प्राप्य प्रबोधं स कृत्वा सुग्रीवसाच्छिद्यम् । तपोवनमुपाविचत्सर्वग्रन्थविवर्जितम् ॥२६॥
 सुग्रीवोऽप्यभिसक्तस्मा सुतारायां श्रियान्वितः । राज्ये निःकण्ठके रेमे शचीयुक्तो यथा हरिः ॥२७॥

मुझे शान्ति प्रदान करेगा ॥१३॥ अथवा जिसका मन क्रोधसे प्रेरित हो रहा है ऐसा रावण, विशेषको न जानता हुआ कदाचित् हम दोनोंको ही मारनेकी इच्छा करे तो उलटा अनर्थ हो जायगा ॥१४॥ इसके साथ नीति भी यह कहती है कि दुष्ट मित्रोंके लिये, मन्त्रदोष, असत्कार, दान, पुण्य, अपनी शूर-वीरता, दुष्ट स्वभाव और मनकी दाह नहीं बतलानी चाहिए ॥१५॥ इसलिये जिसने युद्धमें खरदूषणको मारा है उसीके शरणमें जाता हूँ, वही मेरे लिए शान्ति उत्पन्न करेगा ॥१६॥ रामको भी स्त्रीका विरह हुआ है और मैं भी स्त्रीके विरहसे दुःखी हूँ इसलिये एक समान दुःख होनेसे यह समय उनके पास जानेके योग्य है क्योंकि पृथिवी पर समान अवस्थावाले मनुष्य सद्भाव—पारस्परिक प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥१७॥ ऐसा विचारकर जिसे सब ओरसे उत्तम बुद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे सुग्रीवने विराधितको अनुकूल करनेके लिये उसके पास अपना दूत भेजा ॥१८॥ जब दूतने सुग्रीवके आगमनका समाचार कहा तब विराधित आश्चर्य और संतोषसे युक्त होकर मनमें यह विचार करने लगा कि आश्चर्य है सुग्रीव तो हमारे द्वारा सेवा करने योग्य है फिर भी वह हमारी सेवा कर रहा है सो ठीक ही है क्योंकि आश्रयकी सामर्थ्यसे मनुष्योंके क्या नहीं होता है ? ॥१९-२०॥

तदनन्तर मेघके समान दुन्दुभिका शब्द सुनकर पाताल नगर, (अलंकार पुर), भयसे व्याकुल हैं महाजन जिसमें ऐसा हो गया ॥२१॥ तत्पश्चात् लक्ष्मणने विराधितसे पूछा कि कहां कि यह किसकी तुरहीका शब्द सुनाई दे रहा है ? ॥२२॥ इसके उत्तरमें विराधितने कहा कि हे देव ! यह महाबलसे सहित, वानरवंशियोंका स्वामी सुग्रीव प्रेमसे युक्त हो आपके पास आया है ॥२३॥ बालि और सुग्रीव ये दोनों भाई किष्किन्धा नगरीके स्वामी हैं, राजा सहस्ररश्मि रजके पुत्र हैं तथा पृथिवी पर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ॥२४॥ इनमें जो बालि नामसे प्रसिद्ध था वह शील, शूर-वीरता आदि गुणोंसे विख्यात था तथा अभिमानके लिए मानो सुमेरु ही था, उसने रावणको नमस्कार नहीं किया था ॥२५॥ अन्तमें परम प्रबोधको प्राप्त हो तथा राज्यलक्ष्मी सुग्रीवके आधीन कर वह सर्वपरिग्रहसे रहित तपोवनमें प्रविष्ट हो गया ॥२६॥ सुग्रीव भी अपनी सुतारा नामक स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त हो

१. बोधित-म० । २. आवाप्त । ३. उपसर्पणे ख०, ज० । ४. तुल्यावाञ्छा म० । ५. प्रख्यातौ + अवनी = पृथिव्याम्, इमौ । ६. इन्द्रः ।

सुतो यस्याङ्गनाभिर्यः गुणरत्नविभूषितः । किष्किन्धाविषये यस्य मङ्गयान्यविवर्जिता ॥२८॥
 तयोरियं कथा यावद्ब्रह्मचर्येण्येन्यचेतन्मो । तावत्सम्प्राप सुग्रीवः श्रीमत्पाथिवदेतनम् ॥२९॥
 ज्ञातश्चानुमतिं प्राप्य विवेशेचित्तमङ्गलम् । राजाधिकृतलोकैः परमं दण्डितादरः ॥३०॥
 लक्ष्मीधरकुमाराधास्तं राजन् प्राप्सविस्रमयाः । परिपस्वजिरे कान्त्या विकसद् वनाग्न्युजा ॥३१॥
 उपविष्टाश्च विधिना जाम्बूनदमहीतले । योग्य सम्भाषणं चक्रुरमृतोपमया गिरा ॥३२॥
 निवेदितं ततो वृद्धैरिति पञ्चमहर्षिते^३ । देव किष्किन्धनगरे सुग्रीवात्योऽमनीश्वरः ॥३३॥
 प्रसुर्महाबलो भोगी गुणवानतिसप्रियः । केनापि दुष्टमायेन रणेनानर्थमाहृतः ॥३४॥
 एतस्याकृतिमाश्रित्य राज्यभोगं पुरं यत्नम् । सुतारां च गृह्णातु तां कोऽपि वान्छति दुर्मति ॥३५॥
 एतस्य वचनस्यान्ते रामस्तस्मग्न्युखोऽभवत् । अचिन्तयच्च भञ्जोऽपि दुःप्रितो नाम विद्यते ॥३६॥
 मयायं सदशो मन्ये यदि वार्धरतां भजेत् । येनास्य हृदयमानैकप्रतिपक्षेण याधनम् ॥३७॥
 अर्थोऽयं दुष्टरोऽप्यन्तं कथमेतद्भविव्यति । हानिरेवविषयस्यैवा मद्बिधः किं करिष्यति ॥३८॥
 सुमित्रातनयोऽशुच्छत् क्लृप्तं दुःखस्य कारणम् । सुग्रीवस्य मनस्तुल्यं धीरं जाम्बूनदध्रुतिम् ॥३९॥
 ततोऽर्षी मन्त्रिणा सुरयो जगाद् विनयान्वितः । अस्तसुग्रीवरूपस्य ससुग्रीवस्य चान्तरम् ॥४०॥

राज्य लक्ष्मी सहित निष्कण्टक राज्यमें इस प्रकार क्रीड़ा करता था जिस प्रकार कि इन्द्राणी सहित इन्द्र क्रीड़ा करता है ॥२७॥ उस सुग्रीवका गुणरूपी रत्नोसे विभूषित अङ्गद नामका ऐसा पुत्र है कि किष्किन्धा देशमें जिसकी कथा अन्य कथाओसे रहित है अर्थात् अन्य लोगोंकी कथा झोड़कर सम्पूर्ण किष्किन्धा देशमें उसी एककी कथा होती है ॥२८॥ इस प्रकार अनन्यचित्तके धारक लक्ष्मण तथा विराधितके बीच जब तक यह वार्ता चल रही थी कि तब तक सुग्रीव राजभवनमें आ पहुँचा ॥२९॥ राजाके अधिकारी लोगोंने ज्ञात होने पर उसके प्रति बहुत आदर दिखलाया । तदनन्तर अनुमति पाकर उसने मङ्गलाचारका अवलोकन करते हुए राज भवनमें प्रवेश किया ॥३०॥ हे राजन् ! जिन्हें आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिनके मुख कमल कान्तिसे त्विल रहे थे ऐसे लक्ष्मण आदिने उसका आलिङ्गन किया ॥३१॥ शिष्टाचारके उपरान्त सब विधिपूर्वक स्वर्णमय पृथिवी तल पर बैठे और अमृततुल्य वाणीसे परस्पर वार्तालाप करने लगे ॥३२॥

तदनन्तर वृद्धजनोंने राजा रामचन्द्रके लिए परिचय दिया कि हे देव ! यह किष्किन्ध नगरका राजा सुग्रीव है ॥३३॥ यह महा ऐश्वर्यशाली, महाबलवान्, भोगी गुणवान् तथा सज्जनो को अतिशय प्यारी है । परन्तु किसी दुष्ट मायावी विद्याधरने इसे अनर्थ—आपत्तिमें डाल दिया है ॥३४॥ कोई दुर्बुद्धि विद्याधर इसका रूप धर इसके राज्य भोग, नगर, सेना तथा इसकी प्रिया सुताराको भी ग्रहण करना चाहता है ॥३५॥ तदनन्तर वृद्धजनोके उक्त वचन पूर्ण होनेके बाद राम, सुग्रीवके सन्मुख उसकी ओर देखने लगे । रामने मनमें विचार किया कि अरे ! यह तो मुझसे भी अधिक दुःखी है ॥३६॥ यह मेरे समान है अथवा मैं समझता हूँ कि यह मुझसे भी कहीं अधिक हीनताको प्राप्त है क्योंकि इसका शत्रु तो इसके नामने ही थाया पहुँचा रहा है ॥३७॥ इसका यह कार्य अत्यन्त कठिन है सो किस प्रकार होगा । इसकी यह बड़ी हानि हो रही है मेरा जैसा व्यक्ति क्या करेगा ? ॥३८॥ लक्ष्मणने सुग्रीवके मनके ममान जो जाम्बूनद नामक धीरवीर मन्त्री था उससे दुःखका समस्त कारण पूछा ॥३९॥

तदनन्तर मन्त्रियोंमें सुल्य जाम्बूनदने बड़ी विनयमे मायामय सुग्रीव और चान्दविक

१. सम्प्राप्तः म० । २. विवेशे कृतमङ्गलः म० । ३. मनीश्वितो म । ४. मङ्गलः म०, ३० । ५. मदपेक्षापि । ६. अर्थरतां = रीनता । ७. लक्ष्मण- म० ।

राजन् दारुणानङ्गलतापाशवशीकृतः । रूपं रूपवशः कोऽपि सप्तं कृत्वास्य मायया ॥४१॥
 अज्ञातो मन्त्रिवर्गस्य सर्वस्थात्मजनस्य च । सुग्रीवान्तःपुर तुष्टः प्राविशत्यापचेतनः ॥४२॥
 प्रविशन्त च तं दृष्ट्वा सुताराङ्गा परा सती । महादेवी जगादास्यसमुद्दिष्टा निज जनम् ॥४३॥
 द्रुष्टविद्याधरः कोऽपि सुग्रीवाकृतिरेपकः । आयाति पापपूर्णात्मा चारुलक्षणवर्जितः ॥४४॥
 अभ्युधानादिकामस्य क्रियां साकार्ष्टं पूर्ववत् । केनापि तरणीयोऽयमभ्युपायेन दुर्णयः ॥४५॥
 अर्थांशङ्काविमुक्तात्मा गम्भीरो लीलयान्वितः । गत्वा सुग्रीवध्वजे जै सौग्रीवं स वरासनम् ॥४६॥
 पृतस्मिन्नन्तरे प्राप बालिराजानुजः क्रमात् । अद्राक्षीच्च जनं दीनमप्राक्षीच्च समाकुलः ॥४७॥
 कस्मादय जनोऽस्माक म्लानवक्त्रेक्षणो भृशम् । विपादं वहते स्थाने स्थाने कृतसमागमः ॥४८॥
 किमङ्गदो गतो मेरुं वन्दनार्थां चिरायति । किं वा प्रमादतो देवी कस्याप्युपगता रूपम् ॥४९॥
 जन्ममृत्युजरात्युग्रनानाससारदुःखतः । विभ्यद् विभीषणः किं स्यात्तपोवनसुपागतः ॥५०॥
 चिन्तयन्त्रियतिक्रम्य द्वाराणि मणितेजसा । भासमानानि सर्वाणि सयुक्तानि सुतोरणैः ॥५१॥
 गीतजल्पितसुक्तानि सुसानीव समंततः । शङ्कितद्वारपालानि प्रयातान्यन्यतामिव ॥५२॥
 प्रासादप्रवरोरत्सङ्गे विचिपन् दृष्टिमायताम् । अपश्यत्स्त्रीजनान्तस्थसाल्माभं द्रुष्टलेचरम् ॥५३॥
 दिव्यहाराम्बरं दृष्ट्वा तं शोभां दधत् पुरः । चित्रावतसकं कान्त्या विकसद्ददनाम्बुजम् ॥५४॥

सुग्रीवका अन्तर वताया ॥४०॥ उसने कहा कि हे राजन् ! अतिशय दारुण कामरूपी लताके पाशसे विवश तथा सुताराके रूपसे मोहित कोई पापी विद्याधर मायासे इसका रूप बनाकर मन्त्रीवर्ग तथा समस्त परिजनोके विना जाने, सन्तुष्ट हो सुग्रीवके अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुआ ॥४१-४२॥ उसे प्रवेश करते देख सुतारा नामकी परम सती महादेवीने भयभीत होकर अपने परिजनसे कहा कि जिसकी आत्मा पापसे पूर्ण है, तथा जो उत्तम लक्षणोंसे रहित है ऐसा यह कोई द्रुष्ट विद्याधर सुग्रीवका नेप रखकर आता है अतः पहलेकी तरह तुम लोग इसका सत्कार नहीं करो । यह दुर्नयरूपी सागर किसी उपायसे तिरने योग्य है—पार करने योग्य है ॥४३-४४॥ तदनन्तर जिसकी आत्मा शङ्कासे रहित थी, जो गम्भीर था और लीलासे सहित था ऐसा वह मायामय विद्याधर सुग्रीवके समान जाकर उसके सिंहासन पर आ बैठा ॥४६॥ इसी बीचमें बालिराजाका अनुज वास्तविक सुग्रीव, यथाक्रमसे वहाँ आया । आते ही उसने अपने परिजनकी दीन देखकर व्यग्र हो उसने पूछा कि ये हमारे परिजन, अत्यन्त म्लानमुख एवं म्लाननेत्र होकर विपाद क्यों धारण कर रहे हैं तथा स्थान स्थान पर इकट्ठे हो रहे हैं ? ॥४७-४८॥ वन्दनाकी अभिलापासे अङ्गद सुमेरु पर्वत पर गया था सो क्या आनेमें विलम्ब कर रहा है अथवा महादेवी प्रमादके कारण किसीपर रोपको प्राप्त हुई है ? ॥४९॥ अथवा जन्म मृत्यु और जरामे अत्यन्त उग्र संसारके नाना दुःखोंसे भयभीत होकर विभीषण तपोवनको प्राप्त हुआ है ॥५०॥ इस प्रकार चिन्ता करता हुआ सुग्रीव, मणियोंके तेजसे देदीप्यमान तथा उत्तमोत्तम तोरणोंसे संयुक्त उन समस्त द्वारोंको उल्लङ्घनकर महलके भीतर प्रविष्ट हुआ कि जो संगीतमय वातालापसे रहित थे, सब ओर से संतप्त हुएके समान जान पड़ते थे, जिनके द्वारपाल शङ्कासे युक्त थे तथा जो अन्यरूपताको प्राप्त हुएके समान जान पड़ते थे ॥ ५१-५२॥ जब उसने महलके उत्तम मध्यभागमें अपनी लम्बी दृष्टि डाली तो उसने स्त्री जनोके पास बैठे हुए अपनी ही समान आभावाले एक द्रुष्ट विद्याधरको देखा ॥५३॥ जो दिव्य हार और वस्त्रोंको धारण कर रहा था, परम शोभाका धारक था, चित्र विचित्र आभूषणोंसे युक्त था, तथा क्रान्तिसे जिसका मुख कमल विकसित हो रहा था ऐसे द्रुष्ट विद्याधरको

क्रुद्धो जगर्ज सुग्रीवः प्रावृषेयघनोपमम् । दिङ्मुखेषु क्षिपन् भालमङ्गोः सन्ध्याघनारुणम् ॥५५॥
 ततः सुग्रीवतुरगोऽपि कुर्वन् पुरुषगर्जितम् । उत्तस्यौ कोपरकास्यः करीव मदविह्वलः ॥५६॥
 संदरोद्यौ महासत्त्वौ दृष्ट्वा तौ योद्धुमुद्यतौ । सान्ना^२ निरुह्युः क्षिप्रं श्रीचन्द्राद्याः^३ सुमन्त्रिणः ॥५७॥
 सुतारैरिति ततोऽज्योचत् दृष्टोऽयं कोऽपि खेचरः । तुल्यः सर्वेण देहेन बलेन वचसा रुचा ॥५८॥
 पत्युर्मम न तुल्यस्तु लक्षणैर्मनकौगापि । प्रासादशङ्खकुम्भाद्यैश्चिरसंस्थितलक्षितैः ॥५९॥
 भर्तुर्मै भूषिताङ्गस्य महापुरुषलक्षणैः । कस्यापि वार्धमस्यास्य वाजिवालेयतुल्यता ॥६०॥
 श्रुत्वापीद सुतारोक्त सादर्यहृतचित्तकैः । मन्त्रिभिस्तदवज्ञात निःस्वोक्तं धनिभिर्यथा ॥६१॥
 पुत्रीभूय च तैः सर्वैर्मन्त्रिभिर्मतिशालिभिः । गदितं समग्रार्थैर्दं सन्देहहृतमानसैः ॥६२॥
 मद्यपस्यातिवृद्धस्य वेश्याभ्यसनिनः^४ शिशोः । प्रमदानां च वाक्यानि जातु कार्याणि नो दुष्यैः ॥६३॥
 अत्यन्तदुर्लभा लोके गोत्रशुद्धिस्तथा विना । नितान्तपरमेणापि न राज्येन प्रयोजनम् ॥६४॥
 सम्प्रायः निर्मलं गोत्रं भव्य शीलादिभूषितैः । तस्मादन्तःपुर यत्नादिद रच्यं सुनिर्मलम् ॥६५॥
 अकीर्तिरिति निन्द्येयमस्य नोत्पद्यते यथा । क्रुद्धवमसिधत्नेन विभज्याः^५खिलमेतयोः ॥६६॥
 अङ्गः कृत्रिमसुग्रीवं पितृभ्रान्त्या समाश्रितः । अङ्गदं सत्यसुग्रीवं मातृवाक्यानुरोधतः ॥६७॥

सामने देख सुग्रीव, क्रुद्ध होकर सन्ध्याके मेघ समान लाल नेत्रोंकी कान्तिको दिशाओंमें फैलाता हुआ वर्षा ऋतुके मेघके समान गरजा ॥५४-५५ तदनन्तर सुग्रीवके समान रूपको धारण करने-वाला विद्याधर भी क्रोधसे रक्तमुख हो हाथीके समान मदसे विह्वल होता और कठोर गर्जना करता हुआ उठा ॥५६॥

अथानन्तर ओठोंको डसते हुए उन दोनों बलवानोंको युद्धके लिए उद्यत देख श्रीचन्द्र आदि मन्त्रियोंने शान्ति पूर्वक शीघ्र ही उन्हें रोक दिया ॥५७॥ तत्परचातु सुताराने कहा कि यह कोई दुष्ट विद्याधर है । यद्यपि समस्त शरीर, बल, वचन, और कान्तिसे तुल्य दिखता है परन्तु प्रसाद, राज्ञः, कलश, आदि लक्षणोंसे जो कि मेरे पतिके शरीरमें चिरकालसे स्थित है तथा जिन्हें मैंने अनेक बार देखा है किञ्चित् भी मेरे पतिके समान नहीं है ॥५८-५९॥ महापुरुषोंके लक्षणोंसे जिनका शरीर भूषित है ऐसे मेरे पतिकी तथा इस किसी नीचकी तुल्यता घोड़े और गधेकी तुल्यताके समान है ॥६०॥

तदनन्तर दोनोंकी सदृशाताके कारण जिनके चित्त हरे गये थे ऐसे मन्त्रियोंने सुताराके इन शब्दोंको सुनकर भी उनकी उस तरह अवज्ञा कर दी जिस प्रकार कि घनी मनुष्य निर्धन मनुष्यके वचनोंकी अवज्ञा कर देते हैं ॥६१॥ संदेहने जिनका मन हर लिया था ऐसे उन बुद्धि-शाली मन्त्रियोंने एकत्रित हो सलाह कर यह कहा कि मद्यपायी, अत्यन्त वृद्ध, वेश्या, व्यसनी, वालक और स्त्रियोंके वचन विद्वज्जनोको कभी नहीं मानना चाहिए ॥६२-६३॥ लोकमे गोत्रकी शुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है इसलिए उसके विना बहुत भारी राज्यसे भी प्रयोजन नहीं है ॥६४॥ निर्मल गोत्र पा कर ही शीलादि आभूषणोंसे विभूषित हुआ जाता है इसलिए इस निर्मल अन्तःपुरकी यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिये ॥६५॥ जिस तरहसे सुग्रीव निन्दनीय अपकीर्ति न हो उस तरह इन दोनोंका सब विभाग कर अतियत्नपूर्वक काम करना चाहिए ॥६६॥ अङ्गनामका पुत्र पिताकी भ्रान्तिसे कृत्रिम-वनावटी सुग्रीवके पास गया और अङ्गद नामका पुत्र माताके

१. संदरोद्यौ म० । २. सान्ना म० । ३. मनागपि ईषटपि- 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्तेः'
 इत्यकच् । ४. वाद्यमस्यास्य म० । ५. वित्तकैः म० । ६. व्यसनस्य शिशोः म० । ७. विमिद्या- म० ।
 ३५-२

सन्दिहाना निजे नाथे वयमप्यतिसाम्यतः । सुतारावचनादेन पुरस्कृत्य व्यवस्थिताः ॥६८॥
 अक्षोहिण्यस्ततः सप्त प्रभुमेकमुपाश्रिताः । इतरं चापि तावन्वयः संशयवशं वशं गताः ॥६९॥
 पुरस्य दक्षिणे भागे सुग्रीवः कृत्रिमः कृतः । उत्तरे तस्य सुग्रीवः स्थापितश्च यथाविधि ॥७०॥
 अकरोच्चन्द्ररश्मिश्च प्रतिज्ञामिति संशये । बालपुत्रो ततः कुर्वन् सर्वतः प्रतिपालनम् ॥७१॥
 सुताराभवनद्वारं यो मजेत्कश्चिदस्य सः । प्रौढेन्दीवरशोमस्य वध्यः खड्गस्य मे भुवम् ॥७२॥
 ततः कपिध्वजावेवं स्थापितौ तावुभावापि । अपश्यन्तौ सुतारास्यं निमग्नौ व्यसनार्णवे ॥७३॥
 ततोऽयं सत्यसुग्रीवो दधिताविरहाकुलः । बहुशः शोकहानार्थमगच्छत् खरदूपणम् ॥७४॥
 पुनश्च मारुतेः पार्वमम्रवीक्ष्य पुनः पुनः । परित्रायस्व दुःखार्तं प्रसादं कुरु धान्धव ॥७५॥
 मदीयं रूपमासाद्य मायया कोऽपि पापधीः । क्रुते मे परां बाधां स गत्वा मार्यतां हृतम् ॥७६॥
 सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा तदवस्थस्य शोकिनः । अञ्जनातनयः क्रोधाद्वाटवाग्निसमोऽभवत् ॥७७॥
 विमानं परमच्छायमप्रतीघातसंज्ञितम् । नानालङ्कारभूषिष्टं त्रिदशावाससंक्षिभम् ॥७८॥
 उत्साहं परमं विभ्रदारुह्य सचिवैर्द्वृतः । किष्किन्धनगरं प्राप स्वर्गं सुकृतभागिव ॥७९॥
 श्रुत्वा प्राप्तं हनुमन्तमसकौ विगतज्वरः । आरुह्य द्विरदं प्रातः सुर्याव इव निर्ययौ ॥८०॥
 तं कपिध्वजमालोक्य परं सादृश्यमागतम् । विस्मितो वायुपुत्रोऽपि पतितः सशयाण्विव ॥८१॥
 अचिन्तयच्च सुव्यक्तं सुग्रीवो द्वाविमौ कथम् । एतयोः कतर हन्मि यद्विशेषो न लभ्यते ॥८२॥

वचनोके अनुरोधसे सत्य सुग्रीवके पास गया ॥६७॥ हम लोग भी अत्यन्त सदृशताके कारण अपने स्वामीके विषयमें संदेशशील हैं परन्तु सुताराके कहनेसे इसीको आगे कर स्थित हैं ॥६८॥ संशयके वशमें पड़ी सात अक्षोहिणी सेनाएँ एक सुग्रीवके आश्रय गईं और उतनी ही दूसरे सुग्रीवके अधीन हुई ॥६९॥ नगरके दक्षिण भागमें कृत्रिम सुग्रीव रक्खा गया और वास्तविक सुग्रीव नगरके उत्तर भागमें विधिपूर्वक स्थापित किया गया ॥७०॥ सब ओरसे रक्षा करनेवाले बालिके पुत्र चन्द्ररश्मिने संशय उपस्थित होने पर इस प्रकार की प्रतिज्ञा की कि इन दोनोंमें जो भी सुताराके भवनके द्वार पर जावेगा वह तरुण इन्दीवर—नीलकमलके समान सुशोभित मेरी खड्गके द्वारा अवश्य ही बध्य होगा—मेरी तलवारके द्वारा मारा जायगा ॥७१-७२॥ तदनन्तर इस प्रकार रक्खे हुए दोनों सुग्रीव सुताराका मुख न देखते हुए व्यसनरूपी सागरमें निमग्न हो गये ॥७३॥

अथानन्तर स्त्रीके विरहसे आकुल सत्यसुग्रीव, शोक दूर करनेके लिए अनेक बार खर-दूपणके पास आया ॥७४॥ फिर हनुमान्के पास जाकर उसने बार-बार कहा कि हे बान्धव ! मैं दुःखसे पीडित हूँ अतः मेरी रक्षा करो, प्रसन्न होओ ॥७५॥ कोई पापबुद्धि विद्याधर मायासे मेरा रूप रखकर मुझे अत्यन्त बाधा पहुँचा रहा है सो जाकर उसे शीघ्र ही मारो ॥७६॥ उस प्रकारकी अवस्थामें पड़े शोक युक्त सुग्रीवके वचन सुनकर हनुमान् क्रोधसे बडवानलके समान हो गया ॥७७॥ वह परम उत्साहको धारण करता हुआ मन्त्रियोंके साथ, अत्यन्त कान्तिमान्, नाना अलङ्कारोंसे प्रचुर, स्वर्गतुल्य अप्रतीघात नामक विमानमें सवार हो उस तरह किष्किन्ध नगर पहुँचा जिस तरह कि पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्गमें पहुँचता है ॥७८-७९॥ हनुमान्की आया सुन वह शीघ्र ही हाथी पर सवार हो प्रसन्नताके साथ सुग्रीवकी तरह नगरसे बाहर निकला ॥८०॥ अत्यन्त सादृश्यको प्राप्त हुए उस कपिध्वजको देखकर हनुमान् भी विस्मित हो संशयरूपी सागरमें पड़ गया ॥८१॥ वह विचार करने लगा स्पष्ट ही ये दोनों सुग्रीव हैं जब तक कि

अविदित्वानयोर्भेदसुभयोर्बानरेन्द्रयोः । कडाचिद् वधिप माऽहं^१ सुग्रीवं सुहृदां वरम् ॥८३॥
सुहृते मन्त्रिभिः सार्धं विमृश्य च यथाविधि । उदासीनतया देव मारुतिः स्वपुर गतः ॥८४॥
निवृत्ते मरुतः पुत्रे सुग्रीवोऽभवदाकुलः । असां च सदृशोऽस्युय तथैवातिष्ठदाशया ॥८५॥
मायासहस्रसम्पन्नो महावीर्यो महोदयः । उल्कायुजोऽपि सन्देहं प्राप कष्टमिदं परम् ॥८६॥
निमग्न सशयाम्भोधौ व्यसनग्राहसङ्घटे । न जानाम्यधुना देव क इमं तारयिष्यति ॥८७॥
कान्तावियोगदावेन प्रद्रीप्तं कपिकेतनम् । कृतज्ञं भज सुग्रीवं प्रसीद रघुनन्दन ॥८८॥
अय शरणमायातो भवन्तं श्रितवत्सलम् । भवद्विवशरीरं हि परदुःखस्य नाशकम् ॥८९॥
ततस्तद्दचनं श्रुत्वा विस्मयव्याप्तमानसाः । जाताः पश्चादयः सर्वे धिगाहोहीतिभाषिणः ॥९०॥
अचिन्तयच्च पद्मोऽतः^२ सखाय मम दुःखतः । जातोऽपरः समानेषु प्रायः प्रेमोपजायते ॥९१॥
पुप प्रत्युपकारं मे यदि कर्तुं न शक्यति । निरन्यन्नमणो भूत्वा साधयिष्यामि निर्वृतिम् ॥९२॥
एव ध्यात्वानुराधाद्यैः समं संमन्य च क्षणम् । कपिमौलीन्द्रमाहूय पद्मनाभोऽप्यभाषत् ॥९३॥
सत्सुग्रीवो भवान्यो वा सर्वाथा त्वं मयेऽपिःसतः । विजित्य भवत्सुख्यं पदं यच्छामि ते निजम् ॥९४॥
तथाविधं पुरा राज्ञं प्राप्य योगं सुतारया । सेवस्व मुद्रितोऽप्यन्तभगननिःशेषकण्टकम् ॥९५॥

विशेषता नहीं जान पड़ती है तब तक इन दो में से एकको कैसे मारूँ ? ॥८२॥ इन दोनों वानर राजाओंका अन्तर जाने बिना मैं कदाचित् मित्रोंमें श्रेष्ठ सुग्रीवको ही न मार वैदूँ ॥८३॥ इस प्रकार सुहृते भर मन्त्रियोंके साथ विधिपूर्वक विचार कर उदासीन भावसे हनुमान् अपने नगरको वापिस चला गया ॥८४॥ हनुमान्के वापिस लौट जाने पर सुग्रीव बहुत व्याकुल हुआ । और जो इसके समान दूसरा मायावी सुग्रीव था वह आशा लगाये हुए उसी प्रकार स्थित रहा आया ॥८५॥ यद्यपि सुग्रीव हजारों प्रकारकी मायासे स्वयं सम्पन्न है, महाशक्तिशाली है, महान् अभ्युदयका धारक है, और उल्कारूप अस्त्रोंका धारक है तो भी संदेहको प्राप्त हो रहा है यह बड़े कष्टकी बात है ॥८६॥ हे देव ! व्यसनरूपी मगरमच्छोंसे भरे हुए संशय रूपी सागरमें निमग्न इस सुग्रीवको कौन तारेगा यह नहीं जान पड़ता ॥८७॥ हे रावण ! त्वी वियोग रूपी दावानलसे प्रदीप्त तथा कृत उपकारको माननेवाले इस कपिध्वज सुग्रीवकी सेवा स्वीकृत करो, प्रसन्न होओ ॥८८॥ यह आपको आश्रितवत्सल सुनकर आपकी शरण आया है, यथार्थमें आप जैसे महापुरुषका शरीर पर-दुःखका नाश करनेवाला है ॥८९॥

तदनन्तर उसके वचन सुनकर जिनके हृदय आश्चर्यसे व्याप्त हो रहे थे ऐसे राम आदि कर्भी लोभ 'धिक' 'अहो' 'ही' आदि शब्दोंका उच्चारण करने लगे ॥९०॥ रामने विचार किया कि अब यह दुःखके कारण मेरा दूसरा मित्र हुआ है क्योंकि प्रायः कर समान मनुष्योंमें ही प्रेम होता है ॥९१॥ यदि यह मेरा प्रत्युपकार करनेमें समर्थ नहीं होगा तो मैं निरन्य साधु हो कर मोक्षका साधन करूँगा ॥९२॥ इस प्रकार ध्यान कर तथा विराधित आदिके साथ क्षण भर मन्त्रणा कर सुग्रीवको बुला रामने उससे कहा ॥९३॥ कि तुम चाहे यथार्थ सुग्रीव होओ और चारों कृत्रिम सुग्रीव मैं तुम्हें चाहता हूँ और तुम्हारे सदृश जो दूसरा सुग्रीव है उसे मार कर तुम्हारा अपना पद तुम्हें देता हूँ ॥९४॥ तुम पहलेकी भाँति अपना राज्य प्राप्त कर समस्त शत्रुओंको निर्मूल करते हुए प्रसन्न हो सुतारके साथ समागमको प्राप्त होओ ॥९५॥

१. -द्विदिपमहं म० । २. शृणु वत्सकम् म० । ३. पश्चामः ख०, ज०, क०, । ४. -नुरा-
धावैः म० ।

यदि मे निश्चयोपेतः प्राणेष्वपि गरीयसीम् । सीतां तां गुणसम्पूर्णां भद्रोपलभसे प्रियाम् ॥६६॥
 कपिकेतुरुवाचेदं यदि तां तव न प्रियाम् । सप्ताहाऽभ्यन्तरे वेधि विशामि ज्वलन् तदा ॥६७॥
 अभीभिरचरैः पथः परं प्रह्लादमाश्रितः । शयाङ्कुरिमिसदृशैर्दधानः कुमुदोपमाम् ॥६८॥
 प्रवाहेणामृतस्येन प्लावितो विकचाननः । रोमाञ्जनिर्भरं देहं वभार च समन्ततः ॥६९॥
 धन्योन्यस्य वयं द्रोहहरिताविति चाद्रात् । समयं चक्रतुर्जन तस्मिन्नेव जिनालये ॥१००॥
 ततो रथवाराहूढौ महासामन्तसेवितौ । किष्किन्धनगरं तेन प्रयातौ रामलक्ष्मणौ ॥१०१॥
 समीपीभूय दूतश्च प्रह्वितः कपिमौलिना । निर्भस्मितश्च कूटेन सुग्रीवेणागतः पुनः ॥१०२॥
 ततश्चालोकसुग्रीवः संनह्य स्यन्दनस्थितः । युद्धाय निययौ क्रुद्धः पृथुसैन्यसमावृतः ॥१०३॥
 अथ कृत्रिमगटोपः सङ्कटश्चण्डनिस्वनः । सम्प्रहारो महानासीदग्रसंलग्नसेनयोः ॥१०४॥
 सुग्रीवमेव सुग्रीवो जगामोद्ग्रीवसुग्रहृत् । विद्यायाः करणासक्तो दृढं बोद्धुं समुद्यतः ॥१०५॥
 सम्प्रहारो महान् जातस्तयोश्चकोपुसायकैः । अन्धकारीकृताकाशश्चिरमप्राप्तयोः श्रमम् ॥१०६॥
 अथ सुग्रीवमाहृत्य गदस्यालीकवानरी । विज्ञाय मृत इत्येवं तृष्टः परमुपाविशत् ॥१०७॥
 निश्चेष्टविग्रहश्चायं सत्यशालामृगध्वजः । निजं शिवरमानीतः परिवार्य सुहृज्जनैः ॥१०८॥

हे भद्र ! मैंने जो निश्चय किया है उसे प्राप्त करनेके बाद यदि तुम मेरी प्राणाधिका तथा गुणोंसे परिपूर्ण सीताका पता चला सके तो उत्तम बात है ॥६६॥ यह सुनकर सुग्रीवने कहा कि यदि मैं सात दिनके भीतर आपकी प्रियाका पता न चला दूँ तो अग्निमें प्रवेश करूँ ॥६७॥ चन्द्रमाकी किरणोंके समान सुग्रीवके इन अक्षरोंसे राम कुमुदकी उपमा धारण करते हुए परम आह्लादको प्राप्त हुए ॥६८॥ अमृतके प्रवाहसे तर हुए के समान उनका मुख-कमल खिल उठा तथा शरीर सब ओरसे रोमाञ्जनोंसे व्याप्त हो गया ॥६९॥ हम दोनों परस्पर द्रोहसे रहित हैं—एक दूसरेके मित्र हैं इस प्रकार आदरके साथ उन दोनोंने उस जिनालयमें जिन-धर्मानुसार शपथ धारण की ॥१००॥

तदनन्तर महासामन्तोसे सेवित रामलक्ष्मण सुग्रीवके साथ उत्तम रथ पर आरूढ हो किष्किन्ध नगरकी ओर चले ॥१०१॥ नगरके समीप पहुँच कर मुकुटमें वानरका चिह्न धारण करनेवाले सुग्रीवने दूत भेजा सो मायावी सुग्रीवके द्वारा तिरस्कृत होकर पुनः वापिस आ गया ॥१०२॥ तदनन्तर क्रोधसे भरा कृत्रिम सुग्रीव तैयार हो रथ पर बैठकर बड़ी सेनासे आवृत होता हुआ युद्धके लिए निकला ॥१०३॥ अथानन्तर जिनके आगे सेना लग रही थी ऐसे उन दोनोंमें महा युद्ध प्रारम्भ हुआ । उनका वह महा युद्ध कपटी योद्धाओंके विस्तारसे युक्त था, संकट पूर्ण था तथा तीक्ष्ण शब्दोंसे सहित था ॥१०४॥ जो तीक्ष्ण क्रोधका धारक था, तथा विद्याओंके करनेमें आसक्त था ऐसा सुग्रीव, अहंकारसे ग्रीवाको ऊपर उठानेवाले कृत्रिम सुग्रीवसे दृढ़ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१०५॥ चिर काल तक युद्ध करनेके बाद भी जिनमें थकावटका अंश भी नहीं था ऐसे उन दोनों सुग्रीवोंमें महान् युद्ध हुआ । उनके उस युद्धमें चक्रवाण तथा खड्ग आदि शस्त्रोंसे आकाशमें अन्धकार फैल रहा था ॥१०६॥

अथानन्तर कृत्रिम सुग्रीव, गदाके द्वारा सुग्रीवको चोट पहुँचा कर तथा 'यह मर गया' ऐसा समझ कर संतुष्ट होता हुआ नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥१०७॥ इधर जिसका शरीर निश्चेष्ट

अत्रवीरव्यसंज्ञश्च नाथ हस्तमुपागतः । जीवन्नेव कथं चौरः पुरं मम पुनर्गतः ॥१०६॥
 नूनं न भवितव्यं मे दुःखस्थान्तेन राघव । भवन्तमपि सम्प्राप्य किन्तु कष्टमतः परम् ॥११०॥
 ततः पद्मप्रभोऽत्रोचद्भवतोर्ध्वमानयोः । विशेषो न मया ज्ञातो न हतस्तेन ते समः ॥१११॥
 अज्ञानदोषतो नाशं मनैप्रीत्यैव जातुचित् । सुहृदं जैनवाक्येन जनितं प्रियसङ्गमम् ॥११२॥
 अथाहुतः पुनः प्रासः सुग्रीवप्रतिमो बली । संरम्भवह्निना दीप्तः पद्मोनाभिसुखीकृतः ॥११३॥
 अद्विणेव स रामेण क्षोभितः सागरोपमः । निखंशग्राहसङ्घातसञ्चारात्यन्तसङ्कुलः ॥११४॥
 लक्ष्मणेनैव सुग्रीवः परिध्वज्य दृढं धृतः । स्त्रोवैरतः समीपं मा शत्रोः कोपेन गादिति ॥११५॥
 ततः ससार पद्माभः सुग्रीवाभं समाह्वयन् । ज्वलन् संग्रामसम्प्राप्तियजनिसेनोरुतेजसा ॥११६॥
 अथ पद्मं समालोक्य शमापृच्छथ च साधकम् । वैताली निःसृता विद्या नारीवोद्धतचेष्टिता ॥११७॥
 सुग्रीवाकृतिनिर्मुक्तं वानराङ्गवर्जितम् । सहसा साहसगतिमिन्द्रनीलनगोपमम् ॥११८॥
 स्वभावमागतं दृष्ट्वा निःक्रान्तमिव कश्चुकात् । शाखामृगाध्वजाः सर्वे संक्षुभ्यैकत्वमाश्रिताः ॥११९॥
 नानायुद्धाश्च संक्रुद्धा बलिनस्तमयुयुधन् । सोऽथ सोऽथमतिस्वानं कुर्वाणा पश्यतेति च ॥१२०॥
 तेन तेजस्विना सैन्यं तद्द्विपामुरुशक्तिना । पुरस्कृतं दिशो भेजे यथा त्वं नमस्वता ॥१२१॥

पढ़ा था ऐसे यथार्थ सुग्रीवको उसके मित्र जन घेर कर अपने शिविरमें ले आये ॥१०८॥ जब सचेत हुआ तब रामसे बोला कि नाथ ! हाथमें आया चौर जीवित ही पुनः मेरे नगरमें कैसे चला गया ॥१०९॥ जान पड़ता है कि राघव ! अब मेरे दुःखका अन्त नहीं होगा और फिर आपको प्राप्त कर भी । इससे बढ़कर कष्ट और क्या होगा ? ॥११०॥ तत्पश्चात् रामने कहा कि मैं युद्ध करते हुए तुम दोनोंकी विशेषता नहीं जान सका था इसीलिए मैंने तुम्हारी सदृशता करनेवाले सुग्रीवको नहीं मारा है ॥१११॥ जिनागमका उच्चारणकर तू मेरा प्रिय मित्र हुआ है सो कहीं अज्ञानरूपी दोषसे तुम्हें ही नष्ट नहीं कर दूँ इस भयसे मैं चुप रहा ॥११२॥

अथानन्तर उस कृत्रिम सुग्रीवको फिरसे ललकारा सो वह बलवान् क्रोधाग्निसे दीप्त होता हुआ पुनः आया तथा रामने उसका सामना किया ॥११३॥ जिस प्रकार पर्वतके द्वारा समुद्र क्षोभको प्राप्त होता है उसी प्रकार क्रूर योद्धारूपी मगरमच्छोंके संचारसे अतिशय भरा हुआ वह समुद्र तुल्य कृत्रिम सुग्रीव रामके द्वारा क्षोभको प्राप्त हुआ ॥११४॥ ईधर लक्ष्मणने वास्तविक सुग्रीवका दृढ़ आलिङ्गन कर उसे इस अभिप्रायसे रोक लिया कि कहीं यह स्त्रीके वैरके कारण क्रोधसे शत्रुके पास न पहुँच जावे ॥११५॥ तदनन्तर युद्धकी प्राप्तिसे उत्पन्न विशाल तेजसे वेदीप्यमान राम, कृत्रिम सुग्रीवको ललकारते हुए आगे बढ़े ॥११६॥ अथानन्तर रामको आया देख सिद्ध करनेवालेसे पूछकर वैताली विद्या उसके शरीरसे इस प्रकार निकल गई कि जिस प्रकार उद्धत चेष्टाको धारण करनेवाली स्त्री निकल जाती है ॥११७॥ तत्पश्चात् जो सुग्रीवकी आकृतिसे रहित था, जिसका वानर चिह्न दूर हो चुका, जो इन्द्रनील मणिके समान जान पड़ता था, और जो आवरणसे निकले हुए के समान अपने स्वाभाविक रूपमें स्थित था ऐसे साहस गतिको देखकर सब वानरवंशी क्षुभित हो एकरूपताको प्राप्त हो गये ॥११८-११९॥ नाना-शास्त्रोंसे सहित, क्रोध भरे बलवान् वानर 'यह वही है यह वही है देखो देखो' आदि शब्द करते हुए उससे युद्ध करने लगे ॥१२०॥ सो विशाल शक्तिके धारक उस तेजस्वीने शत्रुओंकी उस

वाक्प्रसादकं कृत्वा वनसुखविक्रमः । उभयव्यङ्ग्यद्वयं वनवनचोदयम् ॥१२२॥
 मरुतारं विरलं तिरु सुः सख्यहेतुमन्तम् । विषयं नष्टं वरुणैः सख्यं कृत्वा ॥१२३॥
 ममं साहस्यधरं रघुसुतं सुखम् । कामदो हि स रघुसुतं विरं कृत्वा ॥१२४॥
 वनः कृत्वा रघुसुतं विरुतिविक्रमः । सुखैः सख्यं विरं कृत्वा ॥१२५॥
 विनवाकरहेहेभ्य कृतस्त्रीभिः । विरुः सुखैः । रघुः सुखं हने नृनिमादिच्छेदं ॥१२६॥
 नमः साध व नैः सुखैः कृत्वा कृतविवः । सुखः साहस्यधरं कृतं ज्ञानं विरुः ॥१२७॥
 वनः मन्त्रादुक्तं परं सुखैः परं सुखम् । सुखैः सख्यं विरुः कृतं ज्ञानं विरुः ॥१२८॥
 सुं कारुण्यं शोभां परमां हृदयच्छेदः । वाक्प्रसादं सख्यं विरुः कृतं ज्ञानं ॥१२९॥
 नोपसंगतनन्तं सख्यं सख्यं विरुः । विरुः सुखं कृतं ज्ञानं विरुः ॥१३०॥
 रश्मिभ्यो वहीरिणा रघुसुतं सुखम् । अष्टमं इति विरुः कृतं ज्ञानं ॥१३१॥
 कामन्देयान्तरादिषु सख्यं विरुः । अष्टमं इति विरुः कृतं ज्ञानं ॥१३२॥
 वनः सख्यं विरुः कृतं ज्ञानं । अष्टमं इति विरुः कृतं ज्ञानं ॥१३३॥
 रमं सख्यं विरुः कृतं ज्ञानं । अष्टमं इति विरुः कृतं ज्ञानं ॥१३४॥

सेनाके, जब आगेकर लड़ेका वन वह दिगाओंको उस प्रकार मान बुझे किउ प्रकारकी वनसे
 श्रेयि लई मान होवा है ॥१२१॥ उस समय उद्वेग पराक्रम तथा मय सपुहको उचना वाग्य
 करनेवाला साहस्यधर, सपुहपर वाग्य कृत्वाकर रामको ओर डौंका ॥१२२॥ उद्वेग जब वह
 लगादार वाग्य सपुहको वना कर रहा था तब इकर राम भी वाग्यके द्वारा सपुह पराक्रम कर दिव
 दे-राम भी वनवाग्य वाग्यको वरा कर रहे थे ॥१२३॥ इस प्रकार रामका साहस्यधरके साथ
 परम युद्ध हुवा सो ठीक ही है क्योंकि जो चिरकाल तक युद्ध करता था वह रामको कामन्देयकी
 हाथसे उलका कण्ठ छेद दिया ॥१२४॥ उत्तरवार मोक्ष्य वाग्यसे सिखाए नर रामकोइकर
 सनाम सजिद हो गया था ऐसे साहस्यधरने क्षमा रहित हो प्रथिवीका काच्छिन्न विषय कथन
 मान रहित हो प्रथिवीपर गिर पड़ा ॥१२५॥ इतुहउसे मरे सब विद्यावरने वाकर उसे देखा
 तथा निश्चयसे जाना कि यह साहस्यधर ही है ॥१२६॥

वनन्दर उद्वेग हृदये वाक्प्रसादं सुखैः सख्यं विरुः कृतं ज्ञानं । अष्टमं इति विरुः कृतं ज्ञानं ॥१२७॥
 मनोहर सुविद्योत्तं सुखैः सख्यं विरुः कृतं ज्ञानं । अष्टमं इति विरुः कृतं ज्ञानं ॥१२८॥
 वाग्यं कृत्वा हुवा वह ओके साथ सनामको मान हुवा ॥१२९॥ वह सपुहकी सपुहसे
 मन्त्र हुवा कि रावदिनका भी उसे ज्ञान नहीं रहा । वह चिरकाल वाद विरुः कृतं ज्ञानं । अष्टमं इति विरुः कृतं ज्ञानं ॥१३०॥
 लिय ही उसने अपनी सख्य सेवना सख्यं विरुः कृतं ज्ञानं । अष्टमं इति विरुः कृतं ज्ञानं ॥१३१॥
 मनुज राजाओंने एक रात्रि नगरके बाहर विना कर वैनके साथ छिपकर नगरमें प्रवेश किया
 ॥१३२॥ वहाँ लोकायुध वैनके सपान शोभाको धारण करनेवाले राम कादि सुदूर राजा
 नन्दनवदकी शोभाको विदग्धित करनेवाले कामन्द सख्य उद्योगसे निश्चयसे ठहरे ॥१३३॥ उस
 उद्योगकी सुन्दरवाका वचन नहीं करता ही उसकी सख्यसे वड़ी सुन्दरता थी अन्यथा उसके सुख
 वचन करनेमें कौन समर्थ है ॥१३४॥ उस उद्योगमें वन्देन सपुहकी शक्तिमाने सु
 मनोहर वैयालय था सो सख्य विरुः कृतं ज्ञानं । अष्टमं इति विरुः कृतं ज्ञानं ॥१३५॥

१. विरुः इति न० । २. सख्यं इति न० । ३. विरुः न० ।

बहिर्भ्रैत्यालयस्यास्य चन्द्रोदरसुतादयः । स्वसैन्यावासनं कृत्वा बभूवुर्विगतश्रमाः ॥१३५॥
 गुणश्रुत्यनुरागेण स्वयंवरणबुद्धयः । त्रयोदश सुताः पथं सुग्रीवस्य श्रयुर्मुदा ॥१३६॥
 चन्द्राभा नाम चन्द्रास्या द्वितीया हृदयावली । अन्या हृदयधर्मेति चेतसः संकटोपमा ॥१३७॥
 सुरीयानुन्धरो नाभ्ना श्रीकान्ता श्रीरिवापरा । सुन्दरी सर्वतश्चित्तसुन्दरीत्यपरोदिता ॥१३८॥
 अन्या सुरवती नाम सुरस्त्रीसमविभ्रमा । मनोवाहिन्यभिख्याता मनोवहनकोविदा ॥१३९॥
 चारुश्रीरिति विख्याता चारुश्रीः परमार्थतः । मदनोत्सवभूतान्या प्रसिद्धा मदनोत्सवा ॥१४०॥
 अन्या गुणवती नाम गुणमालाविभूषिता । एका पद्मावती ख्याता बुद्धपद्मसमानना ॥१४१॥
 तथा जिनमतिर्गित्य जिनपूजनतत्परा । एताः कन्याः समादाय ययौ तासां परिच्छदः ॥१४२॥
 प्रणम्य च जगौ राम नापैतासां स्वयंवृतम् । शरणं भव लोकेश कन्यानां बन्धुरुत्तमः ॥१४३॥
 दुर्विदग्धैः खगैर्माभूत् विवाहोऽस्माकमित्यलम् । जातमासां मनः श्रुत्वा गोत्रस्थवानुपालकम् ॥१४४॥
 ततो हीभारनन्नास्या वशिताः शोभया विभुम् । पद्माभसुपसंग्राहताः पद्माभा नवयौवनाः ॥१४५॥
 विद्युद्बह्विसुवर्णाञ्जगर्भमासां महीयसाम् । देहभासां विकासेन तासां रेजे नभस्तलम् ॥१४६॥
 उपविश्य विनीतास्ता लावण्यान्वितविग्रहाः । समीपे पद्मनाभस्य तस्थुः पूजितचेष्टिताः ॥१४७॥

लक्ष्मण वहाँ रहने लगे ॥१३४॥ चन्द्रोदरके पुत्र—विराधित आदि उस चैत्यालयके वाहर अपनी सेनाएँ ठहरा कर श्रमसे रहित हुए ॥१३५॥

तदनन्तर रामके गुण श्रवण कर अनुरागसे भरी सुग्रीवकी तेरह पुत्रियों स्वयंवरणकी इच्छासे हर्ष पूर्वक वहाँ आई ॥१३६॥ वे तेरह पुत्रियों इस प्रकार थीं—पहली चन्द्रमाके समान मुखवाली चन्द्रमा, दूसरी हृदयावली, तीसरी हृदयके लिए सङ्कटकी उपमा धारण करनेवाली हृदयधर्मा, चौथी अनुन्धरी, पाँचवीं द्वितीय लक्ष्मीके समान श्रीकान्ता, छठवीं सर्वप्रकारसे सुन्दर चित्त सुन्दरी, सातवीं देवाङ्गनाके समान विभ्रमको धारण करनेवाली सुरवती, आठवीं मन के धारण करनेमें निपुण मनोवाहिनी, नौवीं परमार्थमें उत्तम शोभाको धारण करनेवाली चारुश्री, दशवीं मदनके उत्सवरूपक मदनोत्सवा, ग्यारहवीं गुणोंकी मालासे विभूषित गुणवती, बारहवीं विकसित कमलके समान मुखकी धारण करनेवाली पद्मावती और तेरहवीं निरन्तर जिनपूजनमें तत्पर रहनेवाली जिनमती । इन सब कन्याओंको लेकर उनका परिकर रामके पास आया ॥१३७—१४२॥ रामको प्रणाम कर उसने कहा कि हे नाथ । आप इन सब कन्याओंके स्वयंवृत शरण होओ । हे लोकेश ! इन कन्याओंके उत्तम बन्धु आप ही है ॥१४३॥ गोत्रकी रक्षा करनेवाले आपका नाम सुनकर इन कन्याओंका मन स्वभावसे ही ऐसा हुआ कि हमारा विवाह नीच विद्याधरोके साथ न हो ॥१४४॥ तदनन्तर लज्जाके भारसे जिनके मुख नम्र हो रहे थे, जो शोभासे युक्त थीं, जिनकी आभा कमलके समान थी तथा जो नव यौवनसे परिपूर्ण थीं ऐसी वे सब कन्याएँ राजा रामचन्द्रके पास आई ॥१४५॥ त्रिजली, अग्नि, सुवर्ण तथा कमलके भीतरी दलके समान उनकी शरीरकी विपुल कान्तिके विकाससे आकाश सुशोभित होने लगा ॥१४६॥ विनीत, लावण्य युक्त शरीरकी धारक एवं प्रशस्त चेष्टाओंसे युक्त वे सब कन्याएँ रामके पास आकर बैठ गई ॥१४७॥

पद्मपुराणे

आर्याच्छन्दः

रमते क्वचिद्रपि चित्तं पुरुपरत्वेः पूर्वजन्मसम्बन्धात् ।
पूपा भवपरिवर्त्ते सर्वेषां श्रेणिकावस्था ॥१४८॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्येणोक्ते पद्मपुराणे विटसुग्रीववधाल्याप्तं नाम
सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥१४७॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! पुरुषोमे सूर्य समान रामचन्द्रका भी चित्त किन्हीमे रमणको प्राप्त हुआ सो यह दशा समस्त संसारी जीवों को है ॥१४८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें विट सुग्रीवके वधका कथन करनेवाला सैंतालीसवों पर्व समाप्त हुआ ॥१४७॥

अष्टचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथोपलालम्^१ तस्य वान्ध्वन्त्यो वरकन्यकाः । बहुभेदाः क्रियाश्चक्रुर्देवल्लोकादिवागताः ॥१॥
 वीणादिवादनैस्तासां गीतैश्चातिमनोहरैः । ललितामिश्र लीलाभिर्हृतं तस्य न मानसम् ॥२॥
 सर्वाकारसमानीतो विभवस्तस्य पुष्कलः । न भोगेषु मनश्चक्रे वैदेही प्रति संहृतम् ॥३॥
 अनन्यमानसोऽसौ हि मुकनि-शेषचेष्टितः । सीतां मुनिरिव ध्यायन् सिद्धिमास्थान्महादरः ॥४॥
 न शृणोति ध्वनिं किञ्चिद् रूप पश्यति नापरम् । जाचकोमयमेवास्य सर्वं प्रत्यवभासते ॥५॥
 न करोति कथामन्यां कुरुते जानकीकथाम् । अन्यामपि च पार्श्वस्थां जानकीव्यभिभापते ॥६॥
 वायसं पृच्छति प्रीत्या गिरैव^३ कलनादया । अग्र्यता विपुलं देशं दृष्टा स्यात् मैथिली क्वचित् ॥७॥
 सरस्युत्तिद्रपद्मादि किञ्चलालङ्कृतात्मसि । चक्राह्वमिधुनं दृष्ट्वा किञ्चित् सखिन्य कुप्यति ॥८॥
 सीताशरीरसम्पर्कशङ्कया बहुमानवत् । निर्माद्यलोचने किञ्चित् समालिङ्गति^४ भासतम् ॥९॥
 पुस्त्यां सा निपण्णोति वसुधां बहु मन्यते । सुपुष्पितस्तथा नूनमिति चन्द्रमुर्वीकृते ॥१०॥
 अचिन्तयच्च किं सीता मद्विपोऽग्निदीपिता । तामवस्थां भवेत् प्राप्ता स्यादस्या वापदैपिणाम् ॥११॥
 किमिय जानकी नैषा लता मन्दानिलेरिता । किमशुकमिदं नैतच्छलत्पत्रकदम्बकम् ॥१२॥

अथानन्तर श्रीरामको प्रसन्न करनेकी इच्छा करती हुई वे उत्तम कन्याएँ नाना प्रकारकी क्रियाएँ करने लगीं । वे कन्याएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो स्वर्गलोकासे ही आई हो ॥१॥ वे कन्याएँ कभी वीणा आदि वादित्त बजाती थीं, कभी अत्यन्त मनोहर गीत गाती थीं और कभी नृत्यादि ललित क्रीडाएँ करती थीं फिर भी उनकी इन चेष्टाओंसे रामका मन नहीं हरा गया ॥२॥ यद्यपि उन्हें सब प्रकारकी पुष्कल सामग्री प्राप्त थी तो भी सीताकी ओर आकर्षित मनको उन्होंने भोगीमे नहीं लगाया ॥३॥ जिस प्रकार मुनि मुक्तिका ध्यान करते हैं उसी प्रकार राम अन्य सब चेष्टाओंको छोड़कर अनन्यचित्त हो आदरके साथ सीताका ही ध्यान करते थे ॥४॥ वे न तो उन कन्याओंके शब्दोंको सुनते थे और न उनके रूपको ही देखते थे । उन्हें सब संसार सीतामय ही जान पड़ता था ॥५॥ वे एक सीताकी ही कथा करते थे और दूसरी कथा ही नहीं करते थे । यदि पासमे खड़ी किसी दूसरी स्त्रीसे बोलते भी थे तो उसे सीता समझकर ही बोलते थे ॥६॥ वे कभी मधुरवाणीमे कौपसे इस प्रकार पूछते थे कि हे भाई ! तू तो समस्त देशमे भ्रमण करता है अतः तू ने कहीं सीताको तो नहीं देखी ॥७॥ खिले हुए कमल आदि पुष्पोंकी परागसे जिसका जल अलङ्कृत था ऐसे सरोवरमे क्रीड़ा करते चक्रवा-चकवीके युगलको देखकर वे कुछ सोच-विचारमे पड़ जाते तथा क्रोध करने लगते ॥८॥ कभी नेत्र बन्दकर बड़े सम्मानके साथ वायुका यह विचारकर आलिङ्गन करते कि संभव है कभी इसने सीताका स्पर्श किया हो ॥९॥ इस पृथिवी पर सीता वैठी थी । यह सोचकर उसे धन्य समझते और चन्द्रमाको यह सोचकर ही मानो देखते थे कि यह उसके द्वारा अपनी आभासे तिरस्कृत किया गया था ॥१०॥ वे कभी यह विचार करने लगते कि सीता मेरी वियोगरूपी अग्निसे जलकर कहीं उस अवस्थाको तो प्राप्त नहीं हो गई होगी जो विपत्तिग्रस्त प्राणियोंकी होती है ॥११॥ क्या यह सीता है ? मन्द मन्द वायुसे हिलती

१. लालम् ख० । २. सिद्धि मास्थान् म० । ३. गिरैव म० । ४. समालिङ्गित म० ।
 ५. तथा म० ।

एते किं लोचने तस्या नैते पुण्ये सपदपदे । करोऽयं किं चलस्तस्या नायं प्रत्यग्रपल्लवः ॥१३॥
 केशभारं मयूरौ तु तस्याः पश्यामि सुन्दरम् । अपर्यासिशशाङ्के च^१ लक्ष्मीमलिकसम्ममवाम् १३॥
 त्रिवर्णाभिभोजखण्डेषु श्रियं लोचनगोचराम् । शोणपल्लवमध्यस्थसितपुष्पेस्मितत्वपम् ॥१५॥
 स्तनकेषु सुजातेषु कान्तिमत्सुस्तैनश्रियम् । जिनस्नपनवेदीनां शोभां मध्येषु मध्यमाम् ॥१६॥
 तासामेवोद्भूद्भागेषु नितम्बभरताकृतिम् । ऊरुशोभां सुजातासु कदलीस्तम्भिकासुताम् ॥१७॥
 पद्मेषु चरणाभिख्यां^२ स्थलसम्प्राप्तजन्मसु । शोभां तु समुदायस्य तस्याः पश्यामि न क्वचित् ॥१८॥
 चिरायति कथं सोऽपि सुप्रीवः कारणं तु किम् । दृष्टा नाम भवेत् सीता किं तेन शुभदर्शिना ॥१९॥
 मद्वियोगेन तसां वा विलीनां तां सुशीलकाम् । ज्ञात्वा निवेदनेऽशक्तः किमसौ नैति दर्शनम् ॥२०॥
 किं वा कृतार्थतां प्रोक्तः प्रान्य^३ राज्यं पुनर्निजम् । स्वस्थीभूतो भवेद् दुःखं मम विस्मृत्य खेचरः ॥२१॥
 एवं चिन्तयतस्तस्य वाष्पविप्लवतच्छ्रुपः । सस्तालसशरीरस्य विवेदावरजो^४ मनः ॥२२॥
 ततः ससम्भ्रमं स्वान्तःकोपारुणितलोचनः । ययौ सुप्रीवमुद्दिश्य नग्नासिविलसत्करः ॥२३॥
 गच्छतस्तस्य वातेन जङ्घास्तम्भासजन्मना । दोलायितामभूत् सर्वं महोत्पाताकुलं पुरम् ॥२४॥
 वेगान्निःस्रिनःशेपराजाधिःकृतमानवैः^५ । प्रविश्य तद्दृष्ट्वा दृष्ट्वा सुप्रीवमिदमभ्यधात् ॥२५॥
 आः पाप दधितादुःखनिमने परमेश्वरे । भार्यया सहितः सौख्यं कथं भजसि दुर्मते ॥२६॥

हुई लता नहीं है ? क्या यह उसका वस्त्र है, चञ्चल पत्रोंका समूह नहीं है ? ॥१२॥ क्या ये उसके नेत्र हैं, भ्रमर सहित पुष्प नहीं हैं ? और क्या यह उसका चञ्चल हाथ है नूतन पल्लव नहीं है ? ॥१३॥ मैं उसका सुन्दर केशपाश मयूरियोंमें, ललाटकी शोभा अर्धचन्द्रमें, नेत्रोंकी शोभा तीन रत्नके कमलोंमें, मन्द मुसकानकी शोभा लाल-लाल पल्लवोंके मध्यमें स्थित पुष्पमें, स्तनोकी शोभा कान्तिसम्पन्न उत्तम गुच्छोंमें, मध्यभागकी शोभा जिनाभिपेककी वेदिकाओंके मध्यभागमें, नितम्बकी स्थूल आकृति उन्हीं वेदिकाओंके ऊर्ध्वभागमें, ऊरुओंकी अनुपम शोभा केलेके सुन्दर स्तम्भोंमें, और चरणोंकी शोभा स्थलकमलों अर्थात् गुलावके पुष्पोंमें देखता हूँ परन्तु इन सबके समुदाय स्वरूप सीताकी शोभा किसीमें नहीं देखता हूँ ॥१४-१८॥ वह सुप्रीव भी बिना कारण क्यों देर कर रहा है ? शुभ पदार्थोंको देखनेवाले उसने क्या किसीसे सीताका समाचार पूछा होगा ? ॥१९॥ अथवा वह शीलवती मेरे वियोगसे सन्तप्त होकर नष्ट हो गई है ऐसा वह जानता है तो भी कहनेमें असमर्थ होता हुआ ही क्या दिखाई नहीं देता है ? ॥२०॥ अथवा वह विद्याधर अपना राज्य पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हो गया है तथा मेरा दुःख भूलकर अपने आनन्दमें निमग्न हो गया है ॥२१॥ इस प्रकार विचार करते-करते जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त हो गये थे तथा जिनका शरीर ढीला और आलस्य युक्त हो गया था ऐसे रामके अभिप्रायको लक्ष्मण समझ गये ॥२२॥

तदनन्तर जिनका चित्त क्षोभसे युक्त था, नेत्र क्रोधसे लाल थे, और जिनका हाथ नंगी तलवार पर सुशोभित हो रहा था ऐसे लक्ष्मण सुप्रीवको लक्ष्य कर चले ॥२३॥ उस समय जाते हुए लक्ष्मणकी जङ्घाओंरूपी स्तम्भोंसे उत्पन्न वायुके द्वारा समस्त नगर ऐसा कम्पायमान हो गया मानो महान् उत्पातसे आकुल होकर ही कम्पायमान हो गया हो ॥२४॥ राजाके समस्त अधिकारी मनुष्योंको अपने वेगसे गिराकर वे सुप्रीवके घरमें प्रविष्ट हो सुप्रीवसे इस प्रकार कहने लगे ॥२५॥ अरे पापी ! जब कि परमेश्वर-राम स्त्रीके दुःखमें निमग्न हैं तब वे दुर्बुद्धे^६ तू स्त्रीके

१. पुष्पेषु षट्पदाः म० । २. शशाङ्केव म० । ३. नतश्रियम् (?) म० । ४. 'अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमरः । ५. सम्प्राप्तजन्मसु (?) म० । ६. दृष्ट्वा म० । ७. प्राता म० । ८. प्राप्ये म० । ९. अनुजो लक्ष्मणः । १०. ससंभ्रमः स्वान्तः म० । ११. -माननः म० ।

अहं त्वां खेचरभ्वांश्च भोगे दुर्लभितं खलु । नयामि तत्र नाथेन यत्र नीतस्त्वदाकृतिः ॥२७॥
 एवमुग्रान् विमुञ्चन्तं वर्णान् कोपकणानिव । लक्ष्मीधरं प्रणामेन सुग्रीवः शर्ममानयत् ॥२८॥
 उवाच चेदमेकं मे क्षम्यतां देव विस्मृतम् । क्षुद्राणां हि भवत्येव माहृशो दुर्विचेष्टितम् ॥२९॥
 तस्यार्घपणयो दाराः सम्भ्रान्ताः कम्पमूर्तयः । सम्भ्रणामेन निःशोर्षं जहुलक्ष्मणसम्भ्रमम् ॥३०॥
 सज्जनाम्भोदवाक्त्रोयधारानिकरसङ्गतः । प्रयाति विलयं कापि जनारणिभवोऽनलः ॥३१॥
 प्रणाममात्रसाध्यो हि महतां चेतसः शमः । महद्भिरपि नो दानैरुपशान्थयन्ति दुर्जनाः ॥३२॥
 प्रतिज्ञां स्मारयंस्तस्य चक्रे लक्ष्मीधरः परम् । उपकारं यथा योगी यच्चदत्तस्य मातरम् ॥३३॥
 पप्रच्छ भगवाधार्थो गणेश्वरमिहान्तरे । यच्चदत्तस्य वृत्तान्तं नाथेच्छामि विवेदितुम् ॥३४॥
 ततो गणधरोऽब्रुवच्छृणु श्रेणिकभूपते । चकार यच्चदत्तस्य यथा मातुः स्मृतिं मुनिः ॥३५॥
 अस्ति क्रौञ्चपुरं नाम नगरं तत्र पार्थिवः । यत्संज्ञः प्रिया तस्य राजिलेति प्रकीर्तिता ॥३६॥
 तत्पुत्रो यच्चदत्ताख्यः स बाह्यां विहरन् सुखम् । अपश्यत् परमां नारीं स्थितां दुर्विधपाटके ॥३७॥
 स्मरेदुहृतचित्तोऽसौ तामुदिरय ब्रजत्रिणि । मुनिनावधियुक्तेन मैवमित्ययमभापत् ॥३८॥
 ततस्तं विद्युदुद्योतद्योतितं वृक्षमूलगम् । ऐत्ततायननामानं मुनि सायकपाणिकः ॥३९॥
 तस्युपेत्य नतिं कृत्वा पप्रच्छ विनयान्वितः । भगवन् किं त्वया मेति निपिद्धं कौतुकं मम ॥४०॥

साथ सुखका उपभोग क्यों कर रहा है ? ॥२६॥ अरे दुष्ट ! नीच विद्याधर ! मैं तुम्हें भोगासक्तको वहाँ पहुँचाता हूँ जहाँ कि रामने तेरी आकृतिको धारण करनेवाले कुत्रिम सुग्रीवको पहुँचाया है ॥२७॥ इस प्रकार क्रोधाग्निके कणोंके समान उग्रवचन छोड़नेवाले लक्ष्मणको सुग्रीवने नमस्कार कर शान्त किया ॥२८॥ और कहा कि हे देव ! मेरी एक भूल क्षमा की जाय क्योंकि मेरे जैसे लुद्र मनुष्योंकी खोटी चेष्टा होती ही है ॥२९॥ जिनके शरीर काँप रहे थे ऐसी सुग्रीवकी घबड़ाई हुई स्त्रियों हाथमे अर्घ लेलेकर बाहर निकल आईं और उन्होंने अच्छी तरह प्रणाम कर लक्ष्मणके समस्त क्रोधको नष्ट कर दिया ॥३०॥ सो ठीक ही है क्योंकि मनुष्यरूपी अरणिसे उत्पन्न हुई क्रोधाग्नि, सज्जनरूपी मेघ सम्बन्धी वचनरूपी जलधाराओंके साथ मिलकर शीघ्र ही कहीं विलीन हो जाती है ॥३१॥ निश्चयसे महापुरुषोंके चित्तकी शान्ति प्रणाममात्रसे सिद्ध हो जाती है जब कि दुर्जन बड़े-बड़े दानोंसे भी शान्त नहीं होते ॥३२॥ लक्ष्मणने प्रतिज्ञाका स्मरण कराते हुए सुग्रीवका उस तरह परम उपकार किया जिस तरह कि योगी अर्थात् मुनिने यच्चदत्तकी माताका किया था ॥३३॥

इसी बीचमे राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि हे नाथ ! मैं यच्चदत्तका वृत्तान्त जानना चाहता हूँ ॥३४॥ तदनन्तर गणधर भगवान्ने कहा कि हे श्रेणिक भूपाल ! मुनिने जिस प्रकार यच्चदत्तकी माताको स्मरण कराया था वह कथा कहता हूँ सो सुनो ॥३५॥ एक क्रौञ्चपुर नामका नगर है उसमे यत्त नामका राजा था और राजिला नामसे प्रसिद्ध उनकी स्त्री थी ॥३६॥ उन दोनोंके यच्चदत्त नामका पुत्र था । एक दिन उसने नगरके बाहर सुखपूर्वक भ्रमण करते समय दरिद्रोंकी वस्तीमे स्थित एक परमसुन्दरी स्त्री देखी ॥३७॥ देखते ही कामके बाणोंसे उसका हृदय हरा गया सो वह रात्रिके समय उसके उद्देश्यसे जा रहा था कि अवधिज्ञानसे युक्त मुनिराजने 'मा अर्थात् नहीं' इस प्रकार उच्चारण किया ॥३८॥ तदनन्तर उसी समय विजली चमकी सो उसके प्रकाशमे हाथमे तलवार धारण करनेवाले यच्चदत्तने एक वृक्षके नीचे बैठे हुए अयन नामक मुनिराजको देखा ॥३९॥ उसने बड़ी विनयसे उनके पास जाकर तथा नमस्कार कर उनसे पूछा कि हे भगवन् ! आपने 'मा' शब्दका

सोऽजोचद् वां समुद्दिश्य प्रस्थितः कामुको भवान् ।
 सा ते माता ततस्तां मा यार्साः कामीति वारितः ॥४१॥
 सोऽजोचत् कथमित्याख्यं ततोऽस्मिन् प्रस्तुतं मुनिः ।
 मानसानि मुनीनां हि सुदिग्धान्यनुक्रमया ॥४२॥
 शृण्वस्ति सृत्तिकावत्यां कनको नाम वाणिजः ।
 धूर्नाग्नि तस्य भार्यायां बन्धुदत्तः सुतोऽभवत् ॥४३॥

भार्या मित्रवती तस्य लतादत्तसमुद्भवा । कृत्वास्या गर्भमज्ञात पोतेन प्रस्थितः पतिः ॥४४॥
 श्वसुरभ्यां ततो ज्ञत्वा गर्भं दुश्चरितेति सा । निराकृता पुरात् क्षिप्र दास्योत्पलिकया सह ॥४५॥
 प्रस्थिता च पितुर्गोहं सार्थेन महता समम् । सपैणोत्पलिकाद् दृष्टा मृता च विपिनान्तरे ॥४६॥
 ततः सख्या विमुक्तातौ शीलमात्रसहायिका । इमं क्रौञ्चपुर प्राप्ता महाशोकसमाकुला ॥४७॥
 स्फीतदेवार्चकारामे' प्रसूता यावदम्बरम् । आरात् चालयितुं याता शिशुस्तावद्दृष्टाः शुना ॥४८॥
 सुतं स्वैरं समादाय रत्नकम्बलवेष्टितम् । ददौ यक्षमहीपाय नीत्वा स ह्यस्य वल्लभः ॥४९॥
 ततोऽग्नेन विपुत्राया राजिलायाः समर्पितः । सार्थां च यक्षदत्ताख्यां प्रापितस्त्वं स वत्से ॥५०॥
 प्रत्यावृत्त्य च सम्भ्रान्तमपश्यन्ती प्रसूतकम् । विप्रलापं चिरं चक्रे दुःखान् मित्रवती परम् ॥५१॥
 देवार्चकेन सा दृष्टा कृपया कृतसान्त्वना । त्वं मे स्वसेति भाषित्वा स्वकेऽवस्थापितोऽजे ॥५२॥
 सहायरहितत्वेन त्रययाकीर्तिर्भीतितः । न सा गता पितुर्गोहं तत्रैव निरता ततः ॥५३॥

उच्चारण कर निषेध किसलिए किया । इसका मुझे बड़ा कौतुक है ? ॥४०॥ इसके उत्तरमें मुनिराने कहा कि आप कामी होकर जिसके उद्देश्यसे जा रहे थे वह आपकी माता है इसलिए 'मत जाओ' यह कहकर मैंने रोका है ॥४१॥ यक्षदत्तने फिर पूछा कि वह मेरी माता कैसे है ? इसके उत्तरमें मुनिराजने प्रकृत वार्ता कही सो ठीक ही है क्योंकि मुनियोंके मन अनुकम्पासे युक्त होते ही हैं ॥४२॥ उन्होंने कहा कि सुनो, सृत्तिकावती नामक नगरीमें एक कनक नामका वाणिक् रहता था, उसकी धूर् नामकी स्त्रीमें एक बन्धुदत्त नामका पुत्र हुआ था ॥४३॥ बन्धुदत्तकी स्त्रीका नाम मित्रवती था जो कि लतादत्तकी पुत्री थी । एक बार बन्धुदत्त अज्ञातरूपसे मित्रवतीको गर्भधारण करा कर जहाजसे अन्यत्र चला गया ॥४४॥ तदनन्तर सास-श्वसुरने गर्भका ज्ञान होने पर उसे दुश्चरिता समझ कर नगरसे निकाल दिया, सो गर्भवती मित्रवती, उत्पलिका नामक दासीको साथ ले एक बड़े बनजारोंके संघके साथ अपने पिताके घरकी ओर चली । परन्तु जङ्गलके बीच उत्पलिकाको सोंपने डँस लिया जिससे वह मर गई ॥४५-४६॥ तब वह सखीसे रहित, एक शीलम्रत रूपी सहायिकासे युक्त हो महाशोकसे व्याकुल होती हुई इस क्रौञ्चपुरं नगरीमें आई ॥४७॥ यहाँ स्फीत नामक देवार्चकके उपवनमें उसने पुत्र उत्पन्न किया । तदनन्तर पुत्रको रत्नकम्बलमें लपेट कर जब तक वह समीपवती सरोवरमें वल्ल धोनेके लिए गई तब तक एक कुत्ता उस पुत्रको उठा ले गया ॥४८॥ वह कुत्ता राजाका पालतू प्यारा कुत्ता था इसलिए उसने रत्नकम्बलमें लिपटे हुए उस पुत्रको अच्छी तरह ले जाकर राजा यक्षके लिए दे दिया ॥४९॥ राजाने वह पुत्र अपनी पुत्र रहित राजिला नामकी रानीके लिए दे दिया तथा उसका यक्षदत्त यह सार्थक नाम रक्खा क्योंकि यक्ष कुत्ताका नाम है और वह पुत्र उसके द्वारा दिया गया था । वही यक्षदत्त है ॥५०॥ जब मित्रवती लौटकर आई और उसने अपना पुत्र नहीं देखा तब वह दुःखसे चिरकाल तक बहुत विलाप करती रही ॥५१॥ तदनन्तर उपवनके स्वामी देवार्चकने उसे देख कर दया पूर्वक सान्त्वना दी और यह कह कर कि 'तू हमारी बहिन है' अपनी कुटीमें रखी ॥५२॥ सहायक न होनेसे, लज्जासे अथवा अपकीर्तिके भयसे वह फिर

सेयमत्यन्तशीलाख्या जिनधर्मपरायणा । कुटीरे दुर्विधस्थास्ते भ्रमता या त्वयेक्षिता ॥५४॥
 ब्रजता बन्धुदत्तेन यदत्तं रत्नकम्बलम् । अस्यास्तद्यत्नमवने तिष्ठत्यद्यापि रक्षितम् ॥५५॥
 इत्युक्तेन सयत नत्वा स्तुत्वा च हितकारिणम् । इयाय खड्गवानेव सम्भ्रमी यत्नसन्निधिम् ॥५६॥
 ऊचे च सेऽसिनानेन छिन्नाधि नियतं शिरः । संत्यतो यदि मे जन्म न शास्ति स्फुटकारणम् ॥५७॥
 यथावद् वेदितं तेन रत्नकम्बलरक्षितम् । अय जरायुलेपेन तिष्ठत्यद्यापि दिग्धकः ॥५८॥
 प्रथमार्थां ततस्तस्य पितृभ्यां सह सङ्गमः । जातो महोत्सवोपेतः महाविभवविरिम्बितः ॥५९॥
 कथितं ते महाराज वृत्तान्तादिदमागतम् । अधुना प्रकृतं वक्ष्ये भवावहितमानसः ॥६०॥
 लक्ष्मीधरं पुरस्कृत्य सुग्रीवस्वरित ययौ । समीप रामदेवस्य स तस्थौ त्रिहितानतिः ॥६१॥
 ततो विक्रमगर्वेण सदा प्रकटवेष्टितान् । आहूय किङ्करान् सर्वान् महाकुलसमुद्भवान् ॥६२॥
 कांश्चिद्भ्रतवृत्तान्तान् महामोघ हतात्मिकान् । वेद्यन् विस्मयप्राप्तान् पद्मनिर्मितमद्भुतम् ॥६३॥
 कांश्चिद् विज्ञातवृत्तान्तान् प्रशुकार्यपरायणान् । जगौ प्रत्युपकाराय वाचा सन्मानयस्त्रिदम् ॥६४॥
 भो भो सुविभ्रमाः सर्वे शृणुत श्रीसमुत्पत्ताः । सीतासुपलभध्वं द्राक् क वर्तत इति स्फुटम् ॥६५॥
 महींतले समस्तेऽस्मिन् पाताले खे जले स्थले । जम्बूद्वीपे पयोनाथे द्वीपे वा धातर्कामिति ॥६६॥
 कुलपर्वतकुञ्जेषु काननान्तेषु मेरुषु । नगरेषु विचित्रेषु रम्येषु व्योमचारिणाम् ॥६७॥
 गहनेषु समस्तेषु नानाविद्यापाराक्रमाः । जानीत दिक्खु सर्वासु सती भूविवरैषु च ॥६८॥

पिताके घर नहीं गई और वहीं रहने लगी ॥५३॥ वह अत्यन्त शीलवती तथा जिनधर्मके धारण करनेमें तत्पर रहती हुई दरिद्र देवाचककी कुटीमें बैठी थी सो भ्रमण करते हुए तुमने उसे देखा ॥५४॥ उसके पति बन्धुदत्तेन परदेशको जाते समय उसे जो रत्नकम्बल दिया था वह आज भी राजा यत्नेके घरमें सुरक्षित रक्खा है ॥५५॥ इस प्रकार कहने पर उसने हितकारी मुनिराजको नमस्कार कर उनकी बहुत स्तुति की । तदनन्तर वह तलवार लिये ही शीघ्रतासे राजा यत्नेके पास गया ॥५६॥ और बोला कि यदि तू मेरे जन्मका सच-सच कारण स्पष्ट नहीं बताता है तो मैं इसी तलवारसे तेरा मस्तक काट डालूंगा ॥५७॥ इतना कहने पर राजा यत्नेने सब कारण ज्यों-का-त्यों बतला दिया और साथ ही वह रत्नकम्बल दिखलाते हुए कहा कि यह अब भी जरायुके लेपसे लिप्त है ॥५८॥ तदनन्तर उसका अपने पूर्व माता-पिताके साथ समागम हो गया और महा वैभवसे आश्चर्यमें डालनेवाला बड़ा उत्सव हुआ ॥५९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! प्रकरण आ जानेसे यह वृत्तान्त मैंने तुम्हसे कहा अब फिर प्रकृत वात कहता हूँ सो सावधान होकर श्रवण कर ॥६१॥

तदनन्तर सुग्रीव, लक्ष्मणको आगे कर शीघ्र ही रामके समीप आया और नमस्कार कर खड़ा हो गया ॥६१॥ तत्पश्चात् उसने पराक्रमके गर्वसे सदा स्पष्ट चेष्टाओंके करनेवाले एवं उच्च कुलोमें उत्पन्न समस्त किकरोको बुलाकर जिन महामोगी किङ्करोने यह वृत्तान्त नहीं सुना था उन्हें रामका अद्भुत कार्य बतला कर आश्चर्यसे चकित किया ॥६१-६३॥ तथा जो इस वृत्तान्तको जानते थे प्रभुका कार्य करनेमें तत्पर रहनेवाले उन किङ्करोका वचन द्वारा सन्मान करते हुए उनसे रामका प्रत्युपकार करनेके लिए यह कहा ॥६४॥ कि हे उत्तम विश्रमोंको धारण करनेवाले श्रीसम्पन्न समस्त पुरुषो ! तुम लोग शीघ्र ही सीताका पता चलाओ कि वह कहाँ है ? ॥६५॥ तुम लोग नाना प्रकारकी विद्याओं और पराक्रमसे युक्त हो अतः इस समस्त भूतलमें, पातालमें, आकाशमें, जलमें, थलमें, जम्बूद्वीपमें, समुद्रमें, धातकीखण्ड द्वीपमें, कुलाचलोके

१. 'सत्यो यदि मे जन्म नास्ति त्व स्फुटकारणम्' म० । २. प्राकृते म० । ३. महामोहस्तात्मिकान् म० ।
 ४. श्रीमन्बुत्सवाः (?) म० ।

शेषामिव ततो मूर्ध्नि ते कृत्वाऽज्ञां प्रमोदिनः । उत्पत्य दिक्षु सर्वासु द्रुतं जग्मुर्हयवः ॥६६॥
 युवविद्याभृता लखं नाथयित्वा यथाविधि । ज्ञातनिःशेषवृत्तान्तो वैदेहोऽयुपपादितः ॥७०॥
 ततोऽसौ स्वसृष्टुःखेन नितान्तोद्भिद्भिमानसः । सुग्रीव इव रामस्य नितरां निमृशोभवत् ॥७१॥
 स्वयमेव च सुग्रीवः पर्यटन् भानुवल्मना । तारानिकरचक्रैण सप्रवृत्तो गवेणे ॥७२॥
 दुष्टविद्याधरानेकपुरान्वेषणतत्परः । ध्वजं दूरात् समालोक्य समीरणविकम्पितम् ॥७३॥
 जम्बूद्वीपमहीन्द्रस्य शिखरेणोपलक्षितम् । नभस्तलं परं प्राप बलदंशुकपल्लवः ॥७४॥
 वियतोऽवतरद् वीर्य विमानं भानुभासुरम् । उत्पाताशङ्कितो जातो रत्नकेशी समाकुलः ॥७५॥
 आसीदनुसमालोक्य तदसावतिविह्वलः । वैनतेयात् परित्रस्तः सञ्जुकोच यथोरगः ॥७६॥
 आसन्नं च परिहाय ध्वजेन कपिलचमणम् । रत्नकेशी गतश्चिन्तामिति मृच्युभयाकुलः ॥७७॥
 लङ्काधिपतिना नृव क्रुद्धेन जनितागता । प्रेषितो मद्विनाशाय सुग्रीवोऽयमुपागतः ॥७८॥
 किं न प्रतिभये शीघ्रं मृतो रत्नाकराम्भसि । हा धिगत्राम्तरे द्वीपे मरणं समुपागतम् ॥७९॥
 मनोरथं पुरस्कृत्य विद्यावीर्यविवर्जितः । जीवितेऽस्युह्याविष्टः प्रापयिष्यामि किन्त्वहम् ॥८०॥
 इति चिन्तयतस्तस्य सम्प्राप्तो वानरध्वजः । द्योतयन् सहसा द्वीपं द्वितीय इव भास्करः ॥८१॥
 तर्कं धूसरसर्वाङ्गमालोक्य वनप्रांशुभिः । वानराङ्गध्वजोऽष्टच्छदनुकम्पासमुद्वहन् ॥८२॥

निकुञ्जोमें, वनके अन्त भागोंमें, सुमेरु पर्वतोंमें, विद्याधरोंके चित्र-वचित्र मनोहर नगरोंमें, समस्त दिशाओंमें और भूमिके विचरों अर्थात् कन्दराओंमें सीताका पता चलाओ ॥६६-६८॥

तदनन्तर हर्षसे भरे अहंकारी वानर शेषाक्षतकी तरह सुग्रीवकी आज्ञाको शिरपर धारणकर शीघ्र ही उड़कर समस्त दिशाओंमें चले गये ॥६६॥ एक तरुण विद्याधरके द्वारा विधिपूर्वक पत्र भेजकर भामण्डलके लिए भी समस्त वृत्तान्तसे अवगत कराया गया ॥७०॥ तदनन्तर वहिनके दुःखसे भामण्डल अत्यन्त दुःखी हुआ और सुग्रीवके समान रामका अतिशय आज्ञाकारी हुआ ॥७१॥ सुग्रीव, स्वयं भी सीताकी खोज करनेके लिए ताराओंके समूहके साथ आकाशमार्गसे चला ॥७२॥ वह दुष्ट विद्याधरोंके अनेक नगरोंके बीच सीताकी खोज करनेमें तत्पर हुआ भ्रमण कर रहा था । तदनन्तर हवासे हिलती हुई ध्वजाको दूरसे देखकर वह जम्बूद्वीपके एक पर्वतके शिखरसे उपलक्षित आकाशमें पहुँचा । उस समय उसके वस्त्रका अञ्जल हवासे हिल रहा था ॥७३-७४॥ उस पर्वत पर रत्नकेशी विद्याधर रहता था, सो वह आकाशसे उतरते हुए सूर्यके समान देदीप्यमान सुग्रीवके विमानको देखकर उत्पातकी आशङ्कासे युक्त हो गया ॥७५॥ विमान को देखकर वह अत्यन्त विह्वल हो गया और जिस प्रकार गरुडसे भयभीत हो सर्प संकुचित होकर रह जाता है उसी प्रकार रत्नकेशी भी उस विमानसे भयभीत हो संकुचित होकर रह गया ॥७६॥ जब सुग्रीव विलकुल निकट आ गया तब उसे उसकी ध्वजासे वानरवंशी जानकर रत्नकेशी मृत्युके भयसे व्याकुल होता हुआ इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥७७॥ जान पड़ता है कि मैंने लङ्काधिपति-रावणका अपराध किया था अतः कुपित होकर उसके द्वारा मुझे नष्ट करनेके लिए भेजा हुआ यह सुग्रीव आया है ॥७८॥ हाय मैं भय उत्पन्न करनेवाले लवण समुद्रमें गिर कर शीघ्र ही क्यों नहीं मर गया । मुझे धिक्कार है जिसे इस अन्य द्वीपमें मरण प्राप्त हुआ है—मरनेका अवसर प्राप्त हो रहा है ॥७९॥ मैं विद्याधरसे रहित होकर भी इच्छाओं को आगे कर जीवित रहनेकी इच्छासे युक्त हूँ सो देखूँ अब क्या प्राप्त करता हूँ ? ॥८०॥ इस प्रकार रत्नकेशी विचार कर ही रहा था कि इतनेमें द्वितीय सूर्यके समान द्वीपको प्रकाशित हुआ सुग्रीव वहाँ शीघ्र ही जा पहुँचा ॥८१॥ वनकी धूलिसे जिसका समस्त शरीर धूसर हो रहा था

१. अहंकारयुक्त- । २. जम्बूद्वीपमहीन्द्रस्य म० । जम्बूद्वीपमहेन्दस्य क० । ३. पल्लवम् म० । ४. समुपागतः म० । ५. जीवितः स्पृहया म० । ६. -दनुकम्प- म० ।

स त्वं रत्नजटी पूर्वमासीद् विद्यासमुन्नतः । अवस्थार्मादर्शी कस्मादधुना भद्र सङ्गतः ॥८३॥
 इत्युक्तोऽप्यनुकम्पेन सुग्रीवेण सुखाकरम् । सर्वाङ्गं कम्पयन् भीत्या दीनो रत्नजटी नृशम् ॥८४॥
 मा मैत्रीभद्रं मा मैत्रीरित्युक्तश्च पुनः पुनः । जगौ कृतानतिर्धीरिमतिः प्रकटिताकरम् ॥८५॥
 प्रतिपद्यो भवन् साधो रावणेन दुरात्मना । रीताहरणसक्तेन छिन्नविद्योऽहमीदृशः ॥८६॥
 जीविताशां समात्मन्थ कथञ्चिद्वैवयोगतः । ध्वजमेतं समुत्सृज्य स्थितोऽस्मि कपिपुङ्गव ॥८७॥
 उपलब्धप्रवृत्तिश्च तोषोद्वेगं वहन् द्रुतम् । गृहीत्वा रत्नजटिनं सुग्रीवः स्वपुरं ययौ ॥८८॥
 समर्चं लक्ष्मणस्याथ महतां च खगामिनाम् । जगौ रत्नजटी पद्मं विनयी विद्विताङ्गलिः ॥८९॥
 देव देवीं नृशसेन सती सीता दुरात्मना । हृता लङ्कापुरीन्द्रेण विद्या च मम कोपिनः ॥९०॥
 कुर्वन्तो सा महाक्रन्दं ध्वनिना चित्तहारिणा । मृगीव व्याकुलीभूता नीता तेन बलीयसा ॥९१॥
 येनासीत् समरे भीमे तिर्जित्य सुमहाबलः । इन्द्रो विद्याभृतामोशो वन्दिग्रहमुपाहृतः ॥९२॥
 स्वामी भरतत्वण्डानां यत्नयाणां निरङ्कुशः । कैलासोद्धरणे येन विशालं सङ्गत यशः ॥९३॥
 सागरान्ता मही यस्य दासीवाज्ञां प्रतीच्छुत्सः । सुरासुरैर्न यो जेतुं संहतैरपि शक्यते ॥९४॥
 श्रेष्ठेन विदुषां तेन धर्माधर्मविवेकिना । कर्मदं निर्मितं क्रूर मोहो जयति पापिनाम् ॥९५॥
 तच्छ्रुत्वा विविधं विभ्रद्रसं काकुत्स्थनन्दनः । अङ्गस्पर्शं ददौ सर्वं सादरं रत्नकेशिने ॥९६॥
 देवोपगीतसङ्गे च पुरे गौत्रक्रमागतम् । अन्वजानादधीशत्वं विच्छिन्नमरिभिश्चिरम् ॥९७॥

ऐसे उस रत्नकेशीको देखकर दया धारण करते हुए सुग्रीवने पूछा ॥८२॥ कि तू रत्नजटी तो पहले विद्याओंसे समुन्नत था । हे भद्र ! अब ऐसी दशाको किस कारण प्राप्त हुआ है ? ॥८३॥ इस प्रकार दयाके धारक सुग्रीवने उससे सुखसमाचार पूछा तो भी भयके कारण उसका समस्त शरीर काँप रहा था तथा वह अत्यन्त दीन जान पड़ता था ॥८४॥ तदनन्तर सुग्रीवने जब उससे वार-वार कहा कि हे भद्र ! भयभीत मत हो, भयभीत मत हो तब कहीं धैर्यधारण कर उसने नमस्कार किया और स्पष्ट अक्षरोसे कहा कि हे सत्यरुष ! दुष्ट रावण सीताके हरनेमें तत्पर था उस समय मैंने उसका विरोध किया जिससे उसने मेरी विद्याएँ छीनकर मुझे ऐसा कर दिया ॥८५-८६॥ हे कपि श्रेष्ठ ! दैवयोगसे जीवित रहनेकी आशासे मैं यहाँ इस ध्वजाको ऊपर उठाकर किसी तरह स्थित हूँ—रह रहा हूँ ॥८७॥ तदनन्तर समाचार प्राप्त हो जानेसे जो हर्षजन्य उद्वेगको धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव शीघ्र ही रत्नजटीको लेकर अपने नगरकी ओर गया ॥८८॥

अथानन्तर विनयसे भरे रत्नजटीने हाथ जोड़कर लक्ष्मण तथा अन्य बड़े-बड़े विद्याधरोंके सामने रामसे कहा कि हे देव ! अतिशय दुष्ट, लङ्कापुरीके राजा क्रूर रावणने पतिव्रता सीतादेवीको तथा क्रोध करनेवाले मुझ रत्नजटीकी विद्याको हरा है ॥८९-९०॥ जो चित्तको हरण करनेवाली ध्वनिसे महारुदन करती हुई मृगीके समान व्याकुल हो रही थी ऐसी सीताको वह बलवान् हर कर ले गया है ॥९१॥ जिसने भयङ्कर संग्राममें अत्यन्त बलवान्, विद्याधरोंके अधिपति इन्द्रको जीतकर कारागारमें डाला था ॥९२॥ जो भरतचेत्रके तीन खण्डोंका अद्वितीय स्वामी है, जिसने कैलास पर्वतके उठानेमें विशाल यश प्राप्त किया है, समुद्रान्त पृथ्वी दासीके समान जिसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करती है, सुर तथा असुर मिलकर भी जिसे जीतनेके लिए समर्थ नहीं हैं, जो विद्वानोंमें श्रेष्ठ है तथा धर्म—अधर्मके विवेकसे युक्त है, उसी रावणने यह क्रूर कार्य किया है सो कहना पड़ता है कि पापी जीवोंका मोह बड़ा प्रबल है ॥९३-९४॥ यह सुनकर नाना प्रकारके स्नेहकी धारण करते हुए रामने आदरके साथ रत्नजटीके लिए अपने शरीरका स्पर्श दिया अर्थात् उसका आलिङ्गन किया ॥९६॥ और देवोपगीत नामक नगरका स्वामित्व रत्नजटीके वंशपरम्परासे चला आता था पर वीचने शत्रुओंने छीन लिया था सो उसे उसका स्वामित्व प्रदान किया—

पुनः पुनरपृच्छञ्च वार्त्तामालिङ्ग्य तं नृपः । पुनः पुनर्जंगादासी प्रमोदव्याकुलाक्षरः ॥६८॥
 ततः समुत्सुकः पद्मः पर्यपृच्छदतिद्रुतम् । लङ्कापुरी क्रियद्दूरे विवेद्यत खेचराः ॥६९॥
 इत्युक्तास्ते गता मोहं निश्चलीभूतविग्रहाः । अत्राद्मुखा गतच्छाया बभूवुर्वाग्बिबलिताः ॥१००॥
 अभिप्रायं ततो ज्ञात्वा विशीर्णहृदयास्तके । अवज्ञामन्द्या दृष्ट्वा राघवेन विलोकिताः ॥१०१॥
 अथ भीतिपरित्रस्ताः ज्ञाताः स्म हृति लज्जिताः । ऊचुर्धीरं मनःकृत्वा करकुड्मलमस्तकाः ॥१०२॥
 यदीर्यं देव नामापि कथञ्चित्समुदीरितम् । उ्वरमानयति त्रासाद्ब्रह्ममस्तवपुरः कथम् ॥१०३॥
 क्व वयं क्षुद्रसामर्थ्याः क्व च लङ्कामहेश्वरः । त्यजानुबन्धमेतस्मिन् ज्ञाते सत्प्रति वस्तुनि ॥१०४॥
 अथावश्यमिदं वस्तु श्रोतव्यं श्रूयतां प्रभो । कोऽत्र दोषः समञ्चं ते किञ्चिद्वक्तुं हि शक्यते ॥१०५॥
 अस्त्यत्र लवणाम्भोधौ क्रूरप्राहसमाकुले । प्रख्यातो राक्षसद्वीपः प्रभूताद्भुतसङ्कुलः ॥१०६॥
 शतानि सप्त विस्तीर्णा योजनानां समन्ततः । परिच्छेपेण तान्येव साधिकान्येकविंशतिः ॥१०७॥
 मध्ये मन्दरतुल्योऽस्य त्रिकूटो नाम पर्वतः । योजनानि नवोत्तुङ्गपञ्चाशद्विषुल्लवतः ॥१०८॥
 हेमनानामणिरुफितः शिलाजालावलीचितः । आसीत्तोर्यद्वाहस्य दत्तो नाथेन रक्षसाम् ॥१०९॥
 तस्य कूल्यदुर्गमैश्चित्रैः शिखरे कृतभूषणे । लङ्कैति नगरी भाति मणिरत्नमरीचिभिः ॥११०॥
 विमानसदृशैः रत्नैः प्रासादैः स्वर्गसज्जितैः । मनोहरैः प्रदेशैश्च क्रीडनादिक्रियोचितैः ॥१११॥
 त्रिशद्व योजनमानेन परिच्छिन्ना समन्ततः । महाप्राकारपरिखा द्वितीयेन वसुधरा ॥११२॥

वहाँका राजा बनाया ॥६७॥ राम, बार-बार आलिङ्गन कर उससे यह समाचार पूछते थे और वह हर्ष से स्वलित होते हुए अन्तर्गम्य बार-बार उक्त समाचार सुनाता था ॥६८॥

तदनन्तर अत्यन्त उत्सुकतासे भरे रामने शीघ्र ही पूछा कि हे विद्याधरो ! बतलाओ कि लंका कितनी दूर है ? ॥६९॥ इस प्रकार रामके कहने पर सब विद्याधर मोहको प्राप्त हो गये उनके शरीर निश्चल हो रहे तथा वे नम्रमुख, कान्तिहीन और वचनोसे रहित हो गये ॥१००॥ तदनन्तर जिनके हृदय भयसे विशीर्ण हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका अभिप्राय जानकर रामने उनकी ओर अवह्नापूर्ण दृष्टिसे देखा ॥१०१॥ तत्पश्चात् 'हम श्रीराम की दृष्टिमें भयभीत जाने गये हैं' इस विचारसे जो लज्जित हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मनको धीर कर कहा कि ॥१०२॥ हे देव ! किसी तरह उच्चाण किया हुआ जिसका नाम ही भयसे उ्वर उत्पन्न कर देता है उसके विषयमें हम आपके सामने क्या कहें ? ॥१०३॥ छुद्र शक्तिके धारक हम लोग कहाँ और लंकाका स्वामी रावण कहाँ ? अतः इस समय आप इस जानी हुई वस्तुको हट छोड़िए ॥१०४॥ अथवा हे प्रभो ! यह सुनना आवश्यक ही है तो सुनिए कहनेमें क्या दोष है ? आपके समञ्च तो कुछ कहा जा सकता है ॥१०५॥ दुष्ट मगरमच्छोंसे भरे हुए इस लणसमुद्रमें अनेक आश्चर्यकारी स्थानोंसे युक्त प्रसिद्ध राक्षसद्वीप है ॥१०६॥ जो सब ओरसे सात योजन विस्तृत है तथा कुछ अधिक इक्कीस योजन उसकी परिधि है ॥१०७॥ उसके बीचमें सुमेरु पर्वतके समान त्रिकूट नामका पर्वत है जो नौ योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है ॥१०८॥ सुवर्ण तथा नाना प्रकारके मणियोंसे देदीप्यमान एवं शिलाओंके समूहसे व्याप्त है । राक्षसोंके इन्द्र भीमने मेघवाहनके लिए वह दिया था ॥१०९॥ तट पर उत्पन्न हुए नाना प्रकारके चित्र-विचित्र वृक्षोंसे सुशीभित उस त्रिकूटाचलके शिखर पर लङ्का नामकी नगरी है जो मणि और रत्नोंकी किरणों तथा स्वर्गके विमानोंके समान मनोहर महलों एवं क्रीड़ा आदिके योग्य सुन्दर प्रदेशोंसे अत्यन्त शोभायमान है ॥११०-१११॥ जो सब ओरसे

लङ्कायाः परिपारवेषु सन्त्यन्येऽपि मनोहराः । स्वभावावस्थिता रत्नमणिकाञ्चनमूर्तयः ॥११३॥
 प्रदेशा नगरोपेता रत्नसं क्रीडभूमयः । अत्रिष्ठिता महाभोगैस्ते च सर्वे नमश्चरैः ॥११४॥
 सन्ध्याकारः सुवेल्लश्च काञ्चनो ह्लादनस्तथा । योधनो हसनात्मा च हरिसागरमित्स्वनः ॥११५॥
 अर्द्धस्वर्गोद्भयश्चान्ये द्वीपाः सर्वेद्विभोगादाः । प्रदेशा इव नाकस्य काननादिविभूषिताः ॥११६॥
 सुहृन्निभ्रतृभिः पुत्रैः कलत्रैर्बान्धवैः सह । रमते येषु लङ्केशो भृत्यवर्गसमावृतः ॥११७॥
 तं क्रीडन्तं जनो दृष्ट्वा महाविद्याधराधिपम् । देवाधिपोऽपि मन्येऽहं समाशङ्कं प्रपद्यते ॥११८॥
 भ्राता विभीषणो यस्य बली लोकसमुत्कटः । परैरपि परैराज्ञावज्जयो राजपुङ्गवः ॥११९॥
 त्रिदशस्तस्मनो बुद्ध्या नास्ति नास्त्येव मातुषः । तेनैकेनैव पर्याप्तं रावणस्य जगत्प्रभोः ॥१२०॥
 अपरोऽन्यजुजस्तस्य विद्यते गुणभूषणः । भासुकर्ण इति ख्यातस्त्रिशूलपरमायुधः ॥१२१॥
 भ्रुकुटं कुटिलं यस्य भीष्मा कालकुटीमिव । न शक्नुवन्ति संग्रामे सुरा अन्धबलोकितम् ॥१२२॥
 महेन्द्रजितसंज्ञश्च चित्तौ स्थितिसुपागतः । तस्यैव तनयो यस्य जगदाभासते करे ॥१२३॥
 एवमाद्याः सुबहवः प्रणतास्तस्य किङ्कराः । नानाविद्याङ्कृतोपेताः प्रतापप्रणतारव्यः ॥१२४॥
 यस्यातपन्नमा लोक्य पूर्णचन्द्रसमप्रभम् । त्वजन्ति रिपवो दुर्षं समरे चिरपोषितम् ॥१२५॥
 असुष्य पुस्तकमार्पिं चित्रं वा सहसेचितम् । नाम चोच्चारित शक्तमरीणां त्रासकर्मणि ॥१२६॥
 एवंविधमसुं युद्धे कः शक्तो जेतुमुद्धतः । कथा चैषा न कर्तव्या चिन्त्यतामपरा गतिः ॥१२७॥

तीस योजन चौड़ी है तथा बहुत बड़े प्रकार और परिखासे युक्त होनेके कारण दूसरी पृथिवीके समान जान पड़ती है ॥११२॥ लङ्काके समीपमे और भी ऐसे स्वाभाविक प्रदेश है जो रत्नमणि तथा स्वर्णसे निर्मित है ॥११३॥ वे सब प्रदेश उत्तमोत्तम नगरोंसे युक्त है, राजसौकी क्रीडाभूमि हैं तथा महाभोगसे युक्त विद्याधरोसे सहित है ॥११४॥ संध्याकार, सुवेल, काञ्चन, ह्लादन, योधन, ईस, हरिसागर और अर्द्ध स्वर्ग आदि अन्य द्वीप भी वहाँ विद्यमान हैं जो समस्त ऋद्धियों तथा भोगोंको देनेवाले हैं, वन-उपवन आदिसे विभूषित है तथा स्वर्ग प्रदेशोंके समान जान पड़ते हैं ॥११५-११६॥ लङ्काधिपति रावण भृत्यवर्गसे आवृत हो मित्रों, भाइयों, पुत्रों, स्त्रियों तथा अन्य इष्टजनोके साथ उन प्रदेशोंमें क्रीडा किया करता है ॥११७॥ क्रीडा करते हुए उस विद्याधरोंके अधिपतिको देखकर मैं समझता हूँ कि इन्द्र भी आशङ्काको प्राप्त हो जाता है ॥११८॥ जिसका भाई विभीषण लोकमें अत्यधिक बलवान् है, युद्धमे बड़े-बड़े लोगोंके द्वारा भी अजेय है और राजाओंमे श्रेष्ठ है ॥११९॥ बुद्धि द्वारा उसकी समानता करनेवाला देव भी नहीं है फिर मनुष्य तो निश्चित ही नहीं है । जगत्प्रभु रावणको उसी एक भाईका संगर्ग प्राप्त होना पर्याप्त है ॥१२०॥ उसका गुणरूपी आभूषणोंसे सहित एक छोटा भाई भी है जो कुम्भकर्ण इस नामसे प्रसिद्ध है तथा त्रिशूल नामक महाशस्त्रसे सहित है ॥१२१॥ युद्धमें यमराजकी कुटीके समान जिसकी भयंकर कुटिल भ्रुकुटीको देव भी देखनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥१२२॥ युद्धमे ख्यातिको प्राप्त होनेवाला इन्द्रजित, उसीका पुत्र है ऐसा पुत्र कि जिसके हाथमें सारा संसार जान पड़ता है ॥१२३॥ इन सबको आदि लेकर रावणके ऐसे अनेक किङ्कर हैं जो नाना प्रकारकी विद्याओंके आश्चर्यसे सहित हैं तथा प्रतापसे जिन्होंने शत्रुओंको नम्रीभूत बना दिया है ॥१२४॥ पूर्ण चन्द्रके समान आभावाले जिसके छत्रको देखकर शत्रु युद्धमे अपना चिरसंचित अहंकार छोड़ देते है ॥१२५॥ सहसा दृष्टिमे आया इसका पुतला, अथवा चित्र अथवा उच्चारण किया हुआ नाम भी शत्रुओंको भय उत्पन्न करनेमे समर्थ है ॥१२६॥ इस प्रकारके इस रावणको युद्धमे जीतनेके लिए कौन बलवान्

१. मरुत्तयमरोपेते ख० । २. आजौ = संग्रामे, अजय इतिच्छेदः । ३. कर्मणि म० ।

ततोऽनादृतस्तेषामेकैकं वीच्य लक्ष्मणः । अभाणीदृजितं वाक्यं वनाघनघनस्वनः ॥१२८॥
 सत्यं यद्वाद्दशः स्यात् शक्तिमात् दशवक्त्रकः । तत् किमश्राव्यनाम स्वमसौ स्त्रीतस्को भवेत् ॥१२९॥
 द्वाभिमिकस्यातिभित्तस्य मोहिनः पापकर्मणः । रत्नोऽधमस्य तस्यास्ति कुतः स्वस्यापि श्रुता ॥१३०॥
 अत्रवीत्पद्मनाभश्च किमुक्तेनेह भूरिणा । वार्तागमोऽपि दुःप्रापो द्विष्टया लब्धो मया स च ॥१३१॥
 चिन्त्यमस्यपरं नातः क्षोभ्यतां राक्षसाधमः । जायतामुचितं भावि फलं कर्मानिलेरितम् ॥१३२॥
 अधैनमूचिरे वृद्धाः क्षणं स्थित्वेव साद्राः । शोकं जर्हीहि पद्माम भवास्माकमर्धाश्वरः ॥१३३॥
 विद्याधरकुमारीणां गुणैरप्सरसामिव । सव भर्ता भ्रमन् लोके विद्युक्ताशेषदुःस्वर्धाः ॥१३४॥
 पद्मोऽवदन्न मेऽन्याभिः प्रमदाभिः प्रयोजनम् । विजयन्ते महालीलां यदि शच्या अपि स्त्रियः ॥१३५॥
 प्रीतिरचेन्मयि युष्माकमस्ति कापि नभश्चराः । अनुकम्पापि वा सीतां ततो दर्शयत द्रुतम् ॥१३६॥
 जाम्बूनदस्ततोऽवोचत्यमो मूढग्रहस्त्वया । त्यज्यतां सुद्वन्मा भूम्यूर इव दुःखितः ॥१३७॥
 अस्ति वेणातदे मेही नाम्ना सर्वैरुचिः किल । सुतो विनयदत्तोऽस्य गुणपूर्णासमुद्भवः ॥१३८॥
 विशालभृतिमित्रश्च वयस्योऽस्यातिवह्वभः । तन्नागर्यां समासक्तो गृहलक्ष्मीं दुरात्मकः ॥१३९॥
 तस्या पुत्र च वाक्येन विद्वत्सिद्धघना वनम् । नीत्वा विनयदत्तं स वनत्रोपरि शाखिनः ॥१४०॥
 वध्वा च तं ततो गेहं क्रूरकर्मा हताशयः । विधाय चोत्तरं किञ्चिद्वतस्ये कृताथर्वम् ॥१४१॥

समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं । इसलिए यह कथा ही छोड़िये कोई दूसरा उपाय सोचिये ॥१२७॥
 तदनन्तर अनादरसे उनमें प्रत्येककी ओर देखकर मेघके समान गम्भीर शब्दको धारण करनेवाले लक्ष्मणने इस प्रकार बलपूर्ण वचन कहे कि यदि रावण सचमुच ही ऐसा प्रसिद्ध बलवान् है तो जिसका नाम भी श्रवण करने योग्य नहीं रहता ऐसा स्त्रीका चोर क्यों होता ? ॥१२८-१२९॥ वह तो कपटी, भीरु, मोही, पापकर्मा नीच राक्षस है उसमें थोड़ी भी शूर वीरता कहाँ है ? ॥१३०॥ रामने भी कहा कि इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? जिस समाचारका मिलना भी दुष्कर था वह समाचार दैवकी अनुकूलतासे हमने प्राप्त कर लिया है ॥१३१॥ इसलिए अब दूसरी बात सोचनेकी आवश्यकता नहीं है, अब तो उस नीच राक्षसको क्षोभित किया जाय । कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हुआ उचित ही फल होगा ॥१३२॥

अथानन्तर क्षण भर ठहर कर वृद्ध लोगोंने आदर पूर्वक कहा कि पद्माम ! शोक छोड़ो, हमारे स्वामी होओ, गुणासे अप्सराओंकी समानता करनेवाली विद्याधर कुमारियोके भर्ता होओ तथा सब दुःख छोड़कर आनन्दसे लोकमें भ्रमण करो ॥१३३-१३४॥ रामने उत्तर दिया कि मुझे अन्य स्त्रियोंसे प्रयोजन नहीं है भले ही वे स्त्रियाँ इन्द्राणीकी महालीलाको जीतती हों ॥१३५॥ हे विद्याधरो ! यदि आप लोगोंकी मुझ पर कुछ भी प्रीति अथवा दया है तो शीघ्र ही सीताको दिखाओ ॥१३६॥ तदनन्तर जाम्बूनदने कहा कि हे प्रभो ! इस मूर्ख हठको छोड़ो जिस प्रकार कृत्रिम मयूरके विषयमें बुद्धनामा मनुष्य दुःखी हुआ था उस तरह तुम दुःखी मत होओ ॥१३७॥ मैं यह कथा कहता हूँ सो सुनो—

वेणातट नामक नगरसे सर्वैरुचि नामका एक गृहस्थ रहता था । उसके गुणपूर्णा नामक स्त्रीसे उत्पन्न विनयदत्त नामका पुत्र था ॥१३८॥ विनयदत्तका एक विशालभूति नामक अत्यन्त प्यारा मित्र था सो वह पापी, विनयदत्तकी स्त्री गृहलक्ष्मीमे आसक्त हो गया ॥१३९॥ एक दिन उसी स्त्रीके कहनेसे विशालभूति विनयदत्तको भ्रमण करनेके छलसे वनमें ले गया और उसे वृक्षके ऊपर बंध आया ॥१४०॥ दृष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाला क्रूरकर्मा विशाल भूति

अत्रान्तरे तमुद्देशं दिग्मूढः प्रच्युतः पथः । आजगाम भ्रमन् खिन्नः क्षुद्रोऽपरशय च तं तरुम् ॥१४२॥
घनच्छायाकृतश्रद्धस्तत्प्राथम्यं जगाम सः । कण्ठितं वाश्र्मणोन्मन्दमुन्मुखश्च व्यलोकयत् ॥१४३॥
यावत्परश्यात् तं बद्धं निविडं दडरज्जुभिः । अत्यन्ततुङ्गशाखाप्रे निचेष्टीकृतविग्रहम् ॥१४४॥
आरूढ तेन मुक्तः सोऽनुकम्पासक्तचेतसा । गतो विनयदत्तस्तु स्वं तैव समाश्रयम् ॥१४५॥
स्वजनस्योत्सवे जातो महानन्दसमुत्कटः । विशालभूतिरालोक्य तं च दूराल्पलाथितः ॥१४६॥
क्षुद्रस्याथ शिखी जातु शिखिपत्रममयोऽन्यथा । रमणो वात्यया नीतः सम्प्राप्तो राजसूनुना ॥१४७॥
तस्मिन् महाशोकः क्षुद्रो मित्रमभापत् । मां चेदिच्छसि जीवन्तं यच्छ तन्मे मयूरकम् ॥१४८॥
बद्धस्तथाविधो वृक्षे मया त्वं परिमोचितः । अस्योपकारमुख्यस्य प्रतिदानं प्रयच्छ मे ॥१४९॥
ततो विनयदत्तस्तमुवाचान्यमयूरकम् । गृहाण मणिरत्नं वा कुतस्तं ते ददाम्यहम् ॥१५०॥
सोऽञ्जोर्हार्थतां मह्यं स एवेति पुनः पुनः । मूढस्तथाविधो जातो भवानपि नरोत्तमः ॥१५१॥
राजपुत्रकरं प्राप्ता कृत्रिमासौ मयूरिका । कथं लभ्या वधो यस्मात्लभ्यते यत्र तत्परैः ॥१५२॥
त्रिवर्णाम्भोजनेत्राणां कन्यानां कनकत्विपाम् । पारिवरस्तनकुम्भानां विशालजघनश्रियाम् ॥१५३॥
वस्त्रकान्तिजितेन्दूनां पूर्णानां चारुभिरुगैः । पतिर्भव महाभोग प्रसाद रघुनन्दन ॥१५४॥

घर आकर कृतकृत्यकी तरह आनन्दसे रहने लगा तथा पूछने पर विनयदत्तके विषयमें कुछ इधर-उधरका उत्तर देकर चुप हो जाता ॥१४१॥ इसी बीचमें क्षुद्र नामका एक मनुष्य दिशा भूलकर मार्गसे च्युत हो भ्रमण करता हुआ खेदखिन्न हो वहाँसे निकला और उसने उस वृक्षको देखा ॥१४२॥ वृक्षकी सघन छाया देखकर विश्राम करनेकी इच्छासे वह वृक्षके नीचे गया । वहाँ उसने विनयदत्तके कराहनेका मन्द-मन्द शब्द सुन ऊपरको मुख उठाकर देखा ॥१४३॥ तो उसे अत्यन्त ऊँची शाखाके अग्रभाग पर मजबूत रस्सियोंसे बंधा हुआ निश्चेष्ट शरीरका धारक विनयदत्त दिखा ॥१४४॥ जिसका चित्त दयामे आसक्त था ऐसे क्षुद्र नामक पुरुषने ऊपर चढ़कर उसे बन्धन मुक्त किया । तदनन्तर विनयदत्त नीचे उतर उस क्षुद्रको साथ ले अपने घर चला गया ॥१४५॥ विनयदत्तके लानेसे उसके घरमें महान् आनन्दसे युक्त उत्सव हुआ और विशाल-भूति उसे देख दूर भाग गया ॥१४६॥ क्षुद्र, विनयदत्तके घर रहने लगा उसके पास मयूरपत्रका बना हुआ एक मयूरका खिलौना था सो वह खिलौना एक दिन हवामे उड़ गया और राजाके पुत्रको मिल गया ॥१४७॥ उस कृत्रिम मयूरके निमित्त बहुत भारी शोक करता हुआ क्षुद्र, अपने मित्रसे बोला कि हे मित्र ! यदि मुझे जीवित चाहते हो तो मेरा वह कृत्रिम मयूर मुझे देओ ॥१४८॥ मैंने तुम्हें उस तरह वृक्ष पर बंधा हुआ छोड़ा था सो इस मुख्य उपकारका बदला मेरे लिए देओ ॥१४९॥ तब विनयदत्तने उससे कहा कि तुम उसके बदले दूसरा मयूर ले लो अथवा मणि या रत्न ले लो तुम्हारा वह मयूर कहाँसे दूँ ॥१५०॥ इसके उत्तरमें वह बार-बार यही कहता था कि नहीं, मेरे लिए तो वही मयूर देओ । सो क्षुद्र तो मूर्ख होकर उस प्रकार हठ करता था पर आप सो नरोत्तम होकर भी ऐसी हठ कर रहे हैं ॥१५१॥ आप ही कहो कि राजपुत्रके हाथमें पहुँची कृत्रिम मयूरी कैसे प्राप्त हो सकती थी । राजपुत्रसे तो केवल मोंगनेवालोको मृत्यु ही मिल सकती थी ॥१५२॥ इसलिए हे रघुनन्दन ! सीताकी इच्छा चोड़ो और जिनके नेत्र सफेद काले तथा लाल रङ्गके हैं, जिनकी कान्ति सुवर्णके समान है, जिनके स्तनकलश अत्यन्त स्थूल हैं, जिनके जघनकी शोभा विशाल है, जिन्होंने मुखकी क्रान्तिसे चन्द्रमाको जीत लिया है तथा जो अनेक सुन्दर गुणोंसे युक्त हैं ऐसी कन्याओंके पति होकर महाभोग भोगो, प्रसन्न होओ ॥१५३-१५४॥

अनुबन्धमिदं हास्यं त्यज दुःखविवर्धनम् । मयूरशष्पशोकातो माभूः क्षुद्रकवद् ब्रुव ॥१५५॥
 सर्वदा सुलभाः पुंसः शिखिशष्पोपमाः स्त्रियः । त्रवामि राघव त्वाहं प्राज्ञैः शोको न धार्यते ॥१५६॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽबोचत्परमो वाक्यवल्ग्वनि । जाम्बूनदेदशं नेदमिदमेतादृशं शृणु ॥१५७॥
 आसीद्गृहपतिः ख्यातः पुरे कुसुमनामनि । प्रभवाल्यः प्रिया तस्य यमुनेति प्रकीर्तिता ॥१५८॥
 धनबन्धुगृहक्षेत्रपशुप्रभृतयः सुताः । पालान्तास्तस्य सेवन्ते शब्दानामन्तमागताः ॥१५९॥
 अन्वर्थसंज्ञकास्ते च कुटुम्बार्थं सदोघताः । कुर्वन्ति कर्मविभ्रान्तिं क्षणमप्यनुपागताः ॥१६०॥
 आत्मश्रेयोभिधानश्च सुतोऽस्यैवाखिलाधरः । पुण्योदयादसौ भोगान् भुङ्क्ते देवकुमारवत् ॥१६१॥
 "आतृभिः स पितृभ्यां च चिरं कटुभिरक्षरैः । निर्भस्तितोऽन्यदा यातो मानी बाह्यांपरिभ्रमन् ॥१६२॥
 सुकुमारशरीरोऽसौ निर्वेदं परमं गतः । कर्म कर्तुमशक्तात्मा मरणं स्वस्य बाञ्छति ॥१६३॥
 पूर्वकर्मानुभावेन प्रेरितः कथिकश्च तम् । समागत्याभर्षोदेवं श्रूयतामपि मानव ॥१६४॥
 पृथुस्थानधिपस्थाहं सुभासुरिति नन्दनः । गोत्रिकाक्रान्तदेशः सन् कुर्वन्मिक्तभाषितम् ॥१६५॥
 पर्यटन् वसुधामेतां दैवात् कूर्मपुरं गतः । आचार्येणाभियोग्येन सङ्गं प्राप्नोऽस्मि तत्र च ॥१६६॥
 अयोमयामिदं तेन दत्तं मे वलयं शुभम् । मार्गदुःखामिभूताय कारुण्यकारचेतसा ॥१६७॥
 एतच्च सर्वरोगाणां शमनं बुद्धिवर्धनम् । ग्रहोरगपिशाचादिवशीकरणासुप्तम् ॥१६८॥

इस हास्यजनक दुःखवर्धक हठको छोड़ो और हे चिद्धन ! क्षुद्रके समान मयूर रूपी
 तृणके शोकसे पीड़ित नहीं होओ ॥१५५॥ मयूररूपी तृणके समान स्त्रियों पुरुषको सदा सुलभ
 हैं इसलिए हे राघव ! मैं आपसे कह रहा हूँ । बुद्धिमान् मनुष्य कभी शोक धारण नहीं
 करते ॥१५६॥

तदनन्तर बच्चनोंके मार्गमे अतिशय निपुण लक्ष्मणने कहा जि हे जाम्बूनद ! यह बात ऐसी
 नहीं है किन्तु ऐसी है सो सुनो ॥१५७॥ कुसुमपुर नामक नगरमें एक प्रभव नामका प्रसिद्ध गृहस्थ
 रहता था उसकी स्त्रीका नाम यमुना था ॥१५८॥ उन दोनोंके धनपाल, बन्धुपाल, गृहपाल,
 क्षेत्रपाल और पशुपाल नामके पाँच पुत्र थे ॥१५९॥ ये सभी पुत्र सार्थक नाम वाले थे और
 कुटुम्बके पालनके लिए सदा तत्पर रहते थे तथा क्षणभरके लिए भी अपने कार्यसे विश्राम नहीं
 लेते थे ॥१६०॥ इन सबसे छोटा आत्मश्रेय नाम कुमार था सो वह पुण्योदयसे देवकुमारके
 समान भोग भोगता था ॥१६१॥ कुल्ल करता नहीं था इसलिए भाई तथा माता पिता निरन्तर
 कटुक अक्षरों द्वारा उसका तिरस्कार करते रहते थे । एक दिन वह मानी घरसे निकलकर नगरके
 बाहर चला गया ॥१६२॥ अत्यन्त सुकुमार शरीरका धारक था इसलिए कुल्ल कर सकनेके लिए
 समर्थ नहीं था अतः परम निर्वेदको प्राप्त हो आत्मघात करने की इच्छा करने लगा ॥१६३॥
 उसी समय पूर्व कर्मोदयसे प्रेरित हुआ एक पथिक उसके पास आकर बोला के हे मनुष्य ! सुन
 ॥१६४॥ मैं पृथुस्थान नगरके राजाका पुत्र सुभासु हूँ निमित्तज्ञानोके आदेशका पालन करता
 हुआ मैं अब तक अनेक देशोंमे भ्रमण करता हूँ ॥१६५॥ इस पृथ्वीपर भ्रमण करता हुआ मैं
 दैवयोगसे कूर्मपुर नामा नगरमें पहुँचा वहाँ एक उत्तम आचार्यके साथ समागमको प्राप्त
 हुआ ॥१६६॥ मैं मार्गके दुःखसे दुःखी था इसलिए दयालु चित्तके धारक उन आचार्यने मुझे
 यह लोहेका कड़ा दिया था ॥१६७॥ यह कड़ा समस्त रोगोंकी शान्त करनेवाला तथा बुद्धिको

नैमित्त्यादिष्कालस्य सम्प्राप्तस्य ममावधिः । आत्मीयमधुना राज्यं कर्तुं यामि निजं पुरम् ॥१६६॥
 राज्यस्थस्य प्रमादाश्च जायन्ते राणनोज्ज्विताः । एतच्च छिद्रमासाद्य नियतं नाशकारणम् ॥१७०॥
 गृहायैतत्तत्स्तुभ्यं यच्छामि बलयं पुरम् । उपसर्गविनिर्मुक्तं यदि वाञ्छसि जीवितम् ॥१७१॥
 लब्धस्य च पुनर्दानं शंसन्ति सुमहाफलम् । यशश्च प्राप्यते लोके पूजयन्ति च तं जनाः ॥१७२॥
 ततस्तमेवमित्युक्त्वा गृहीत्वाङ्गदनायसम् । आत्मश्रेयो गतो धाम सुभानुश्च निजं निजम् ॥१७३॥
 यावत्पत्नी नरेन्द्रस्य दृष्टा शसनमोजिना । निश्चेष्टा दग्धुमानीता चितोद्देशे स पश्यति ॥१७४॥
 कटकस्य प्रसादेन तस्य लोहमयस्य ताम् । जीवयित्वा परं प्रापदसौ पूजां नरेन्द्रतः ॥१७५॥
 महान्तस्तस्य सज्जाता भोगाः परमसौख्यदाः । सर्ववन्धुसमेतस्य पुण्यकर्मानुभावतः ॥१७६॥
 उत्तरीयाङ्गकस्योङ्क निधाय बलयं सरः । प्रविष्टो यावदादाय गोधेरोऽनश्यदुद्दतः ॥१७७॥
 महातरोरधस्तावत् प्रविवेश विलं महत् । शिलानिकरसञ्चल निर्हारं घोरनिस्त्रनम् ॥१७८॥
 तेन गोधेरशब्देन किल नित्यप्रवृत्तिना । बभूव स्थानमन्येतत्प्रलयाशङ्किमानसम् ॥१७९॥
 आत्मश्रेयस्ततो बृहत्सुन्मूल्य स शिलाघनम् । गोधेरं नाशयित्वा तं निधानं प्राप्य सांगदम् ॥१८०॥
 आत्मश्रेयाःसमः पद्मः सीता बलयभूर्तिवत् । प्रमादवच्च कौसांधं शब्दस्तच्छब्दवद्विभोः ॥१८१॥
 महानिधानवत्कला गोधेरो दशवक्रकः । जनस्त इव निर्भीता यूयं भवत साम्प्रतम् ॥१८२॥

वदनेवाला है और ग्रह उरग पिशाच आदिका उत्तम वशीकरण है ॥१६८॥ निमित्तज्ञानीने मुझे भ्रमण करनेके लिए जो समय बताया था अब उसकी अवधि आ गई है, इसलिए मैं अपना राज्य करनेके लिए अपने नगरको जाता हूँ ॥१६६॥ राज्य कार्यमें स्थिर रहनेवाले पुरुषके अगणित प्रमाद होते रहते हैं और किसी प्रमादको पाकर यह कड़ा निश्चित ही नाशका कारण बन सकता है ॥१७०॥ इसलिए यदि तू उपसर्ग रहित जीवन चाहता है तो इस उत्तम कड़ेको ले ले मैं तुझे देता हूँ ॥१७१॥ अपने लिए प्राप्त हुई वस्तुका दूसरेके लिए दे देना महाफलकारक है, उससे यश प्राप्त होता है और लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१७२॥ तदनन्तर उससे 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा लोहेका कड़ा लेकर आत्मश्रेय अपने घर चला गया और सुभानु भी अपने नगर चला गया ॥१७३॥ इतनेमें ही राजाकी पत्नीको सौंपने डँस लिया था जिससे वह निश्चेष्ट हो गई थी तथा जलानेके लिए श्मशानमें लाई गई थी । आत्मश्रेयने उसे देखा ॥१७४॥ और देखते ही उस लोह निर्मित कड़ेके प्रसादसे उसे जिलाकर उसने राजासे बहुत सन्मान प्राप्त किया ॥१७५॥ अब पुण्य कर्मके प्रभावसे उसके लिए समस्त वन्धुओंके साथ साथ परम सुख देनेवाले बड़े बड़े भोग प्राप्त हो गये ॥१७६॥ एक बार उसने उस कड़े को उत्तरीय बन्धके ऊपर रखकर जब तक सरोवरमें प्रवेश किया तब तक एक उद्दण्ड गुहैरा उसे लेकर चला गया ॥१७७॥ वह गुहैरा एक महावृत्तके नीचे बने हुए अपने बड़े विलमें घुस गया । उसका वह शिलाओंके समूह से आच्छादित, प्रवेश करनेके अयोग्य तथा भयंकर शब्दसे युक्त था ॥१७८॥ वह गुहैरा उस विलमें बैठकर निरन्तर शब्द करता रहता था जिससे उस विलको देख मनमें प्रलयकी आशाका होती थी ॥१७९॥ तदनन्तर आत्मश्रेयने शिलाओसे सघन उस वृत्तके मूलको उखाड़कर तथा गुहैरको मारकर कड़ेके साथ साथ उसका सब खजाना ले लिया ॥१८०॥ सो राम तो आत्मश्रेयके समान हैं, सीता कड़ेके समान है, लाभकी इच्छा प्रमादके समान हैं, शत्रुका शब्द गुहैरेके शब्दके समान है, लंका महानिधानके समान है, रावण गुहैरेके समान है, इसलिए हे विद्याधरो ! तुम सब इस समय निर्भय होओ ॥१८१-१८२॥

१. गृहाण तत्त्वस्तुभ्यं ज० । २. गृहीताङ्गद म० । ३. श्वसनमोजिना म० । नागेनेत्यर्थः ।
 ४. श्मसाने । ५. दूर्वर्तः म० ।

तच्छ्रुत्वा समुपाख्यानं जितजाम्बूनदोदितम् । वहवो विस्मयापन्ना बभूवुः स्मितकारिणः ॥१२३॥
 जाम्बूनदादयः सर्वे ततः कृत्वा प्रधारणम् । इदमृचुः पुनः पद्मं शृणु राजन् समाहितः ॥१२४॥
 अनन्तवीर्ययोगीन्द्रं सम्प्रणम्य पुरा मुदा । रावणेनात्मनो मृत्युं परिपृष्टः समादिशत् ॥१२५॥
 यो निर्वाणशिलां पुण्यामतुलामर्चितां सुरैः । समुद्यतां स ते मृत्योः कारणत्वं गमिष्यति ॥१२६॥
 सर्वज्ञोक्तं निशम्येतदचित्तयदसाविदम् । भविता पुरुषः कोऽसौ तां यश्चालयितुं क्षमः ॥१२७॥
 नास्त्येव मरणे हेतुर्ममैत्युक्तं भवत्यदः । वचोयुक्तिर्विचित्रा हि विदुषामर्थदेशने ॥१२८॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽब्रवीच्चद्रच्छामो न चिरं हितम् । ईक्षामहे शिलां सैद्धी भव्यानां रोमहर्षणीम् ॥१२९॥
 रहस्यमेतत्सन्मनस्य सुनिश्चित्य समन्ततः । सर्वे ते गन्तुमुद्युक्ताः प्रमादपरिवर्जिताः ॥१३०॥
 जाम्बूनदो महाबुद्धिः किष्किन्धाधिपतिस्तथा । विराधितोऽर्कमाली च दलनीली विचक्षणौ ॥१३१॥
 सपुरस्कारमारोग्य विमाने रामलक्ष्मणौ । सम्प्रयाता दुतं व्योम्नि राशौ तमसि गह्वरे ॥१३२॥
 भवतेहः सर्मापे च यत्र सा सुमनोहरा । शिला परमगम्भीरा सुरासुरनमस्कृता ॥१३३॥
 उपसन्नश्च ते सर्वे मस्तकन्यस्तपाणयः । आशारक्षानवस्थाप्य प्रयातान् सुसमाहितान् ॥१३४॥
 सुगन्धिभिर्महांभोजैः पूर्णेन्दुपरिमण्डलैः । अन्यैश्च कुसुमैश्चित्रैरचिता तैरसौ शिला ॥१३५॥
 सितचन्द्रनदिग्धांगा कुंकुमांशुकधारिणी । धृतालङ्करीणा भाति सा शचीव मनोरमा ॥१३६॥

इस प्रकार जाम्बूनदके कथनको खण्डित करनेवाला लक्ष्मणका उपाख्यान सुन बहुत लोग आश्चर्यको प्राप्त हो मन्दहास्य करने लगे ॥१२३॥ तत्पश्चात् जाम्बूनद आदि सभी विद्याधर परस्परमें विचारकर रामसे यह कहने लगे कि हे राजन् ! एकाग्र चित्त होकर सुनिये ॥१२४॥ पहले एक वार रावणने हर्षपूर्वक अनन्तवीर्यनामा योगीन्द्रको नमस्कार कर उनसे अपनी मृत्युका कारण पूछा था सो उन योगीन्द्रने कहा था कि जो देवोंके द्वारा पूजित, अनुपम, पुण्यमयी निर्वाण शिला—कोटिशिलाको उठावेगा वही तेरी मृत्युका कारण होगा ॥१२५—१२६॥ सर्वज्ञके यह वचन सुन रावणने विचार किया कि ऐसा कौन पुरुष होगा जो उसे चलानेके लिए समर्थ होगा ॥१२७॥ भगवान्के कहनेका तात्पर्य यह है कि मेरे मरणका कोई भी कारण नहीं है सो ठीक ही है क्योंकि अर्थके प्रकट करनेमें विद्वानोंकी वचन योजना विचित्र होती है ॥१२८॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हमलोग अभी चलते हैं विलम्ब करना हितकारी नहीं है, अन्यजीवोंको आनन्द देने वाली सिद्धशिलाके अभी दर्शन करेंगे ॥१२९॥ तत्पश्चात् सबलोग परस्परमें मन्त्रणा कर तथा सब ओरसे निश्चय कर प्रमाद छोड़ लक्ष्मणके साथ जानेके लिए उद्यत हुए ॥१३०॥ महाबुद्धिमान् जाम्बूनद, किष्किन्धाका स्वामी—सुमीव, विराधित, अर्कमाली, अतिशय विद्वान् नल और नील, सम्मानके साथ राम और लक्ष्मणको विमान पर बैठा कर रात्रि के सघन अन्धकारमें शीघ्र ही आकाशमार्गसे चले ॥१३१—१३२॥ और जहाँ वह अत्यन्त मनोहर परम गम्भीर एवं सुर असुरोंके द्वारा नमस्कृत सिद्धशिला पासमें थी वहाँ उतरे ॥१३३॥ तदनन्तर सावधान चित्त हो कर आगे गये हुए दिशारक्षकों को नियुक्त कर वे सब हाथ जोड़ मस्तकसे लगा उस सिद्धशिलाके समीप गये ॥१३४॥ ध्वजों जाकर उन्होंने अत्यन्त सुगन्धित तथा पूर्ण चन्द्रमाके विम्बके समान सुशोभित बड़े-बड़े कमलों तथा नाना प्रकारके अन्य पुष्पोसे उस शिला की पूजा की ॥१३५॥ जिसके ऊपर सफेद चन्दनका लेप लगाया गया था, जो केशर रूप वस्त्रको धारण कर रही थी, तथा जो नाना अलंकारोंसे अलंकृत थी ऐसी वह शिला उस समय इन्द्राणीके

तस्यां सिद्धात्रमस्कृत्य शिरस्थकरकुड्मलाः । भक्त्या प्रदक्षिणं चक्रुः क्रमेण विधिपण्डिताः ॥१६७॥
 ततः परिकरं बद्ध्वा सौमित्रिचिन्तय बहन् । नमस्कारपरो भक्तः स्तुतिं कर्तुं समुद्यतः ॥१६८॥
 जयशब्दं समुद्घोष्य प्रहृष्टा वानरध्वजाः । स्तोत्रं परिपठन्तीदमुत्तम सिद्धमङ्गलम् ॥१६९॥
 स्थिताखैलोक्यशिखरे स्वयं परमभास्वरे । स्वरूपभूतया स्थित्या पुनर्जन्मविवर्जितान् ॥२००॥
 भवार्णवसमुत्तीर्णाग्निःश्रेयसं समुद्रवान् । आधारान्मुक्तिसौख्यस्य केवलज्ञानदर्शनान् ॥२०१॥
 अनन्तवीर्यसम्पन्नान् स्वभावसमवस्थितान् । सुसमोचीनतायुक्ताग्निःश्रेयसार्णवकर्मणः ॥२०२॥
 भवगाहनधर्मोक्तानमूर्तान् सूक्ष्मतायुजः । गुरुत्वलघुतामुक्तानसंख्यातप्रदेशिनः ॥२०३॥
 श्रमश्रेयगुणाधारान् क्रमादिपरिवर्जितान् । साधारणान् स्वरूपेण स्वार्थकाष्ठामुपागतान् ॥२०४॥
 सर्वथा शुद्धभागांश्च ज्ञातश्रेयाश्चिरञ्जनात् । द्रवधर्ममहाकव्यान् विशुद्धध्यानतेजसा ॥२०५॥
 तेजःपटपरीतेन भक्तितो ब्रह्मपाणिना । संस्तुतान् भवभीतेन चक्रवर्त्यादिभिस्तथा ॥२०६॥
 संसारधर्मनिर्मुक्तान् सिद्धधर्मसमाश्रितान् । सर्वान् वन्दामहे सिद्धान् सर्वसिद्धिसमावाहान् ॥२०७॥
 अस्यां च ये गताः सिद्धिं शिलायां शीलधारिणः । उपगीताः पुराणेषु सर्वकर्मविवर्जिताः ॥२०८॥
 जिनेन्द्रसमतां याताः कृतकृत्या महौजसः । मङ्गलस्मरणैतान् भक्त्या वन्दामहे मुहुः ॥२०९॥

समान मनोहर जान पड़ती थी ॥१६६॥ उस शिलासे जो सिद्ध हुए थे उन्हें नमस्कार कर जिन्होंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगाये थे तथा जो सब प्रकारकी विधि विधानमे निपुण थे ऐसे उन सब लोगोंने भक्ति पूर्वक क्रमसे उस शिलाकी प्रदक्षिणा दी ॥१६७॥

तदनन्तर विनयको धारण करने वाले, नमस्कार करनेमे तत्पर एवं भक्तिसे भरे लक्ष्मण कमर कस कर स्तुति करनेके लिए उद्यत हुए ॥१६८॥ हर्षसे भरे वानरध्वज राजा, जय-जय शब्दका उच्चारण कर सिद्ध भगवान्के निम्नाङ्कित स्तोत्रको पढ़ने लगे ॥१६९॥ स्तोत्र पढ़ते हुए उन्होंने कहा कि हम उन सिद्ध परमेष्ठियोंको नमस्कार करते हैं कि जो अतिशय देदीप्यमान तीन लोकके शिखर पर स्वयं विराजमान हैं, आत्माको स्वरूपभूत स्थितिसे युक्त है तथा पुनर्जन्मसे रहित हैं ॥२००॥ जो संसार सागरसे पार हो चुके हैं, परमकल्याणसे युक्त हैं, मोक्ष सुखके आधार हैं तथा केवलज्ञान और केवलदर्शनसे सहित हैं ॥२०१॥ जो अनन्त बलसे युक्त हैं, आत्मस्वभावमें स्थित हैं, श्रेष्ठतासे युक्त हैं, और जिनके समस्त कर्म क्षीण हो चुके हैं ॥२०२॥ जो अचगाहन गुणसे युक्त हैं, अमूर्तिक हैं, सूक्ष्म गुणसे सहित हैं, गुरुता और लघुतासे रहित तथा असंख्यातप्रदेशी हैं ॥२०३॥ जो अपरिभित—अनन्तगुणोंके आधार हैं, क्रम आदिसे रहित हैं, आत्मस्वरूपकी अपेक्षा सब समान हैं और जो आत्म प्रयोजनकी अन्तिम सीमाको प्राप्त हैं—कृतकृत्य हैं ॥२०४॥ जिनके भाव सर्वथा शुद्ध हैं जिन्होंने जानने योग्य समस्त पदार्थोंको जान लिया है, जो निरञ्जन—कर्म कालिमासे रहित हैं और निर्मल ध्यान शुक्लध्यान रूपी अग्निके द्वारा जिन्होंने कर्मरूपी महाअटवीको भस्म कर दिया है ॥२०५॥ संसार से भयभीत तथा तेज रूपी पटसे परिवृत इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि महापुरुष जिनकी स्तुति करते हैं ॥२०६॥ जो संसार रूप धर्मसे रहित हैं, सिद्ध रूप धर्मको प्राप्त हैं तथा जो सब प्रकारकी सिद्धियोंको धारण करने वाले हैं ऐसे समस्त सिद्ध परमेष्ठियोंको हम नमस्कार करते हैं ॥२०७॥ शीलको धारण करने वाले जो भी पुरुष इस शिलासे सिद्धिको प्राप्त हुए हैं पुराणोंमे जिनका कथन है, जो सर्व कर्मोंसे रहित हैं, जिनेन्द्र देवकी समानताको प्राप्त हुए हैं, कृतकृत्य हैं तथा जो महा प्रतापके धारक हैं उन सबको हम भक्ति पूर्वक मङ्गल स्मरण करते हुए चार-बार वन्दना करते हैं

एवं च सुचिरं स्तुत्वा पुनरेवं वभाषिरे । लक्ष्मीधरं समुद्दिश्य स्थापितैकाग्रमानसाः ॥२१०॥
 शिलायासिंहये सिद्धा ये सिद्धान्ते हतकित्तिवाः । ते विघ्नसूचनाः सर्वे भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२११॥
 अहन्तो मङ्गलं सन्तु तव सिद्धाश्च मङ्गलम् । मङ्गलं साधवः सर्वे मङ्गलं जिनशासनम् ॥२१२॥
 इति मङ्गलनिस्वानैविद्यायस्तलचारिणाम् । शिलामचालयत् क्षिप्रं लक्ष्मणो विमलद्युतिः ॥२१३॥
 सा लक्ष्मणकुमारेण नानालङ्कारभूषणा । केयूरकान्तवाहुभ्यां घृता कुलवधूविर ॥२१४॥
 अथान्तरिक्षे देवानां महाशब्दो महानभूत् । सुग्रीवाद्याश्च राजेन्द्रा विस्मयं परमं ययुः ॥२१५॥
 ततः सिद्धान् प्रमोदाढ्याः प्रणम्य भयवर्जितान् । सम्मेदशिखरस्थं च जिनेन्द्रं मुनिसुव्रतम् ॥२१६॥
 निपया ऋषभादीनामभ्यर्च्य च यथाविधि । सकल भरतक्षेत्रं यन्नमुस्ते प्रदक्षिणम् ॥२१७॥
 सायाह्ने सौम्यवपुषो दिव्यैर्यानेर्मनोजवैः । कृताभिवन्दना शब्दैर्जयनन्दादिभिर्गुणैः ॥२१८॥
 परिवार्य महावीर्यं रामं लक्ष्मणसङ्गतम् । किष्किन्धनगरं प्रापुर्दिविशुश्च महर्द्धयः ॥२१९॥
 शयिताश्च यथास्थानं विस्मितेनान्तरात्मना । एकीभूय पुनः प्रीता हृत्पुन्योन्मत्तं वभाषिरे ॥२२०॥
 वीचयध्वं वासरेः स्वल्पैः पृथिव्यां राज्यमेतयोः । निःशेषैः कण्ठकैर्मुक्तं शक्तिं धारयतोः पराम् ॥२२१॥
 सा निर्वाणशिला येन चालयित्वा समुद्रघृता । उत्साद्यत्यय क्षिप्रं रावणं नात्र संशयः ॥२२२॥
 तथापरे वचः प्राहुः कैलासो येन भूधरः । तदा समुद्रघृतः सार्यं शिलोधारस्य किं समः ॥२२३॥
 आहुरन्ये समुद्धारः कैलासस्य कृतो यदि । विद्यावलयतस्तत्र विस्मयः कस्य जायते ॥२२४॥

॥२०८-२०९॥ इस प्रकार चिर काल तक स्तुति कर एकाग्रचित्तके धारण उन विद्याधारोंने लक्ष्मण को लक्ष्यकर कहा कि इस शिलासे जो सिद्ध हुए हैं तथा अन्य जिन पुरुषोंने पापकर्म नष्ट किये हैं वे सब विघ्न विनाशक तुम्हारे लिए मङ्गलस्वरूप हों ॥२१०-२११॥ अरहन्त भगवान् तुम्हारे लिए मङ्गलस्वरूप हों, सिद्ध परमेष्ठी मंगलरूप हों । सर्वसाधु परमेष्ठी मंगल स्वरूप हों और जिन शासन मङ्गलरूप हो ॥२१२॥ इसप्रकार विद्याधारोंकी मङ्गलध्वनिके साथ, महातेजकी धारण करने वाले लक्ष्मणने शीघ्र ही उस शिलाको हिला दिया ॥२१३॥ तदनन्तर लक्ष्मण कुमारने कुलवधूके समान नाना अलंकारोंसे सुशोभित उस शिलाको बाजूबन्दाँसे सुशोभित अपनी भुजाओंसे ऊपर उठा लिया ॥२१४॥ उसी समय आकाशमें देवोंका महाशब्द हुआ और सुग्रीव आदि राजा परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥२१५॥

तदनन्तर हर्षसे भरे सब लोग भयसे रहित सिद्ध परमेष्ठियों, सम्मेद शिखर पर विराजमान श्री मुनिसुव्रत नाथ जिनेन्द्रकी तथा ऋषभ आदि तीर्थकरोंके निर्वाणस्थान कैलाश आदिकी विधिपूर्वक पूजा कर समस्त भरत क्षेत्रमें घूमें ॥२१६-२१७॥ तदनन्तर चन्दना करनेके वाद सौम्यशरीरके धारक तथा महा वैभवसे सम्पन्न सब लोगोंने सार्यकालके समय मनके समान वेगशाली दिव्य विमानों द्वारा 'जय' 'नन्द' आदि शब्दोंके साथ महापराक्रमी राम लक्ष्मणको घेर कर किष्किन्धनगरमें प्रवेश किया ॥२१८-२१९॥ सब ने यथा स्थान शयन किया । तदनन्तर आश्चर्य चकित चित्तसे एकत्रित हो सब बड़ी प्रसन्नतासे परस्पर इस प्रकार कहने लगे ॥२२०॥ कि तुम लोग परम शक्तिको धारण करने वाले इन दोनोका कुछ ही दिनोंमें पृथिवी पर समस्त कण्ठकों अर्थात् शत्रुओंसे रहित राज्य देखोगे ॥२२१॥ जिसने उस निर्वाण शिलाको चला कर उठा लिया ऐसा यह लक्ष्मण शीघ्र ही रावणको मारेगा इसमें संशय नहीं है ॥२२२॥ कुछ लोग इस प्रकार कहते लगे कि उस समय जिसने कैलाश उठाया था ऐसा रावण क्या इस शिला उठाने वालेके समान है ? ॥२२३॥ कुछ अन्यलोग कहने लगे कि यदि रावणने कैलाश पर्वत उठाया था

पुके च वचनं प्रोक्षुः किं विद्यादैरिमैशुंथा । जगद्धिताय सन्ध्यर्थं किं नोपायो निरूप्यते ॥२२५॥
 तन्मादानांयतां सीतां समभ्यर्च्य दशाननम् । राघवायापरिष्वयामि विग्रहे किं प्रयोजनम् ॥२२६॥
 सङ्ग्रामे तारको नष्टो मेरुकश्च महाबलः । कृतवीर्यसुताधारश्च महासैन्यसमन्विताः ॥२२७॥
 एते खण्डव्रथाधीशा महाभागा महौजसः । अन्ये हि बहवो नष्टा रणे सामन्ततः परम् ॥२२८॥
 अन्योन्यमभिमन्यैवं विद्याविधिविशारदाः । राघवं विनयोपेताः सम्भूय अयुरादरात् ॥२२९॥
 सुग्रीवाद्याः समासीना नयनानन्दकारिणम् । विरेजुः परितो राममसरेन्द्रमिवाभराः ॥२३०॥
 पन्नानाभस्ततोऽवोचत् किमद्याप्यवलम्ब्यते । मया विनान्तरे द्वीपे दुःखं तिष्ठति मैथिली ॥२३१॥
 दीर्घसूत्रत्वमुत्सृज्य चिप्रमद्यैव सर्वथा । त्रिकूटगमने सज्जिः क्रियते न किमुद्यमः ॥२३२॥
 तसूनुर्मन्त्रिणो ब्रुद्धा नयविदतरकोविदाः । सशयेनात्र किं देव कथ्यतामेकनिश्चयः ॥२३३॥
 किं त्वमिच्छसि वैदेहीं विरोधमय रक्षसाम् । विजयः प्राप्यते दुःखं नायं सदृशविग्रहः ॥२३४॥
 भरतस्य त्रिखण्डस्य प्रतिपक्षोऽजितः प्रभुः । सागरद्वीपविख्यात एक एव दशाननः ॥२३५॥
 शङ्कितो धातकीद्वीपो द्योतिषामपि भीतिदः । जान्द्वीपे पर प्राप्ते महिमानं खगाधिप. ॥२३६॥
 शल्यभूतोऽस्य विश्वस्य कृतानेकाङ्कतक्रियः । ईदृशो राघवो राम कथं ससाध्यते त्वया ॥२३७॥
 तस्माद्ब्रुद्धिं रणे त्यक्त्वा यद् वयं संवदामहे । प्रसिद्दं क्रियतां देव तदेवोद्यच्छान्तये ॥२३८॥
 मा भूत्सस्मिन् कृतक्रोधे जगदेतन्महाभयम् । विष्वस्तप्राणिसङ्घातं नष्टनि.शेषसत्क्रियम् ॥२३९॥

तो इससे क्या हुआ क्योंकि विद्याबलके रहते हुए उसके इस कार्यमें किसे आश्चर्य हो सकता है ? ॥२२४॥ कुछ लोग यह भी कहने लगे कि इन व्यर्थके विवादोंसे क्या लाभ है ? जगत्का कल्याण करनेके लिए सन्धिके उपाय क्यों नहीं बताया जाता है ? ॥२२५॥ इसलिए रावणकी पूजा कर सीताको लाया जावे उसे हम रामके लिये सौंप देंगे फिर युद्धका क्या प्रयोजन है ? ॥२२६॥ संग्राममें तारक, महाबलवान् मेरुक और बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित कृतवीर्यके पुत्र आदि मारे गये हैं ॥२२७॥ ये सभी तीन खण्डके स्वामी महाभागवान् तथा महाप्रतापी थे । इनके सिवाय और भी अनेक राजा रणमें सब ओर नष्ट हुए हैं ॥२२८॥

इस प्रकार विद्याओंके प्रयोग करनेमें निपुण सब लोग परस्पर सलाहकर विनय सहित आदर पूर्वक मिलकर रामके पास आये ॥२२९॥ नेत्रोंको आनन्द उत्पन्न करने वाले रामके चारों ओर बैठे हुए सुग्रीव आदि राजा उस समय उस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि अमरेन्द्रके चारों ओर देव सुशोभित होते हैं ॥२३०॥ तदनन्तर रामने कहा कि अब और किसकी अपेक्षा की जा रही है ? दूसरे द्वीपमें सीता मेरे बिना दुःखी होती होगी ॥२३१॥ शीघ्र ही दीर्घसूत्रको छोड़कर आज ही आप लोग त्रिकूटाचल पर चलनेके लिए उद्यम क्यों नहीं करते है ? ॥२३२॥ तब नीतिके विस्तारमें निपुण ब्रुद्ध मन्त्रियोंने कहा कि हे देव ! इस विषयमें संशयकी क्या बात है ? निश्चय बताइए कि ॥२३३॥ आप सीताको चाहते हैं या राक्षसोंके साथ युद्ध ? यदि युद्ध चाहते है तो विजय कठिनाईसे प्राप्त होगी क्योंकि राक्षसोंका और आपका यह युद्ध सदृश युद्ध—बराबरी वाला युद्ध नहीं है ॥२३४॥ क्योंकि रावण द्वीप और सागरमें प्रसिद्ध, तीन खण्ड भरतका शत्रुरहित एक—अद्वितीय ही प्रभु है ॥२३५॥ धातकीखण्ड नामा दूसरा द्वीप भी उससे शक्ति रहता है, वह ज्योतिषी देवोंको भी भय उत्पन्न करने वाला है तथा जम्बूद्वीपमें परम महिमाको प्राप्त अद्वितीय विद्याधारका स्वामी है ॥२३६॥ जो समस्त संसारके लिए शल्य स्वरूप है, तथा जिसने अनेक अद्भुत कार्य किये है ऐसा राक्षस हे राम ! तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२३७॥ इसलिए हे देव ! रणकी भावना छोड़ हम लोग जो कह रहे है वही कीजिए, प्रसन्न हूँजिये और शान्तिके लिए उद्योग कीजिए ॥२३८॥ उसके कुपित होनेपर यह

१. दीर्घसूत्र त्व म० । २. शिल्पभूतोऽस्य । ३. सक्रियम् म० ।

योऽसौ विभीषणः ख्यातः स्वयं ब्रह्मा स कीर्तितः । क्रूरकर्मनिवृत्तात्मा भावितोऽणुव्रतैर्दंडम् ॥२४०॥
 अलंध्यवचनं तस्य क्रुरुते खेचराधिपः । तयोर्हि परमा प्रीतिरन्तरायविवर्जिता ॥२४१॥
 बोधितस्तेन दाक्षिण्याद् यथाः पालनतोऽपि वा । लज्जया वा विदेहस्य तनयां प्रेषयिष्यति ॥२४२॥
 विज्ञापनवचोद्युक्तिकुशलौ नयपेशलः । अन्विष्यतामरं कश्चित्प्रसादो रावणस्य यः ॥२४३॥
 ततो महोदधिर्नाज्ञा ख्यातो विद्याधराधिपः । अन्नर्वादेव वृत्तान्तो भवतां नागतः श्रुतिम् ॥२४४॥
 यन्त्रैर्बहुजनचोदैर्लङ्काऽगम्या निरन्तरम् । कृतातिशयदुःप्रेक्षा सुभीमात्यन्तगह्वरा ॥२४५॥
 एषां मध्ये न परयामि महाविद्यं नभश्चरम् । लङ्कां गत्वा द्रुतं भूयो यः समर्थो निवर्तितुम् ॥२४६॥
 पवनञ्जयराजस्य श्रीशैलः प्रथितः सुतः । विद्यासत्वप्रतापाढ्यो बलोत्तुङ्गः स याच्यताम् ॥२४७॥
 समं दशाननेनास्य विद्यतोऽजर्यमुत्तमम्^१ । युक्तः करोत्यसौ साम्यं निर्विघ्नं पुरुषोत्तमः ॥२४८॥
 प्रतिपन्नैस्ततः सर्वैरेवमस्त्विति सादरैः । मास्तेरन्तिकं दूतः श्रीभूतिः प्रहितो द्रुतम् ॥२४९॥
 शक्तिं दधतापि परां प्राप्यापि परं प्रबोधयामोरभ्येः । भवितव्यं नयरतिर्नारविरिव काले स यात्युदयम् ॥२५०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे कोटिशिलाक्षेपणाभिधानं नाम अष्टचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४८॥

संसार महाभयसे युक्त न हो, प्राणियोंके समूहका विध्वंस न हो तथा समस्त उत्तम क्रियाएँ नष्ट न हों ॥२३६॥ रावणका भाई विभीषण अत्यन्त प्रसिद्ध है, मानो स्वयं ब्रह्मा ही है। वह दुष्टता पूर्ण कार्योंसे सदा दूर रहता है और अणुव्रतोंका दृढ़तासे पालन करता है ॥२४०॥ उसके वचन अलंध्य है वह जो कहता है रावण वही करता है। यथार्थमें उन दोनोंमें निर्वाध परम प्रेम है ॥२४१॥ विभीषण उसे समझावेगा इसलिए, अथवा उदारतासे, अथवा कीर्ति रक्षा के अभिप्रायसे अथवा लज्जाके कारण रावण सीताको भेज देगा ॥२४२॥ इसलिए शीघ्र ही किसी ऐसे पुरुषकी खोज की जाय जो निवेदन करनेवाले वचनोंकी योजनामें कुशल हो, नीति-निपुण हो और रावणको प्रसन्न करनेवाला हो ॥२४३॥

तदनन्तर महोदधि नामसे प्रसिद्ध विद्याधरोंके राजाने कहा कि क्या यह वृत्तान्त आप लोगोंके श्रवणमें नहीं आया ॥२४४॥ कि लंका अनेक जनकोंका विघात करनेवाले यन्त्रोंसे निरन्तर अगम्य कर दी गई है, उसका देखना भी कठिन है तथा अत्यन्त भयङ्कर गम्भीर गर्तोंसे युक्त हो गई है ॥२४५॥ इन सबके बीचमें मैं महाविद्याओंके धारक एक भी ऐसे विद्याधरको नहीं देखता हूँ कि जो लंका जाकर शीघ्र ही पुनः लौटनेके लिए समर्थ हो ॥२४६॥ हों, पवनञ्जय राजाका पुत्र श्रीशैल विद्या, सत्त्व और प्रतापसे सहित है तथा अतिशय बलवान् है सो उससे याचना की जाय ॥२४७॥ इसका दशाननके साथ उत्तम सम्बन्ध भी है इसलिए यदि इसे भेजा जाय तो यह श्रेष्ठ पुरुष निर्विघ्न रूपसे शान्ति स्थापित कर सकता है ॥२४८॥ तदनन्तर सब विद्याधरोंने 'एवमस्तु' कहकर महोदधि विद्याधरका प्रस्ताव स्वीकृत कर श्रीशैल (हनुमान्) के पास शीघ्र ही श्रीभूति नामका दूत भेजा ॥२४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि परम शक्तिके धारक राजाकी भी प्रारम्भ करने योग्य कार्यके विषयमें परम विवेकको प्राप्तकर नीतिज्ञ होना चाहिए क्योंकि ऐसा राजा ही सूर्यके समान समय आनेपर अभ्युदयको प्राप्त होता है ॥२५०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें कोटिशिला उठानेका वर्णन करनेवाला ऋद्धतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४८॥

१. महोदधिनाम्ना म० । २. भवतां श्रुतिं न आगतः । ३. बलोत्तुङ्गः म । बलोत्तुङ्ग ख० । ४. अजर्यं सङ्कतं । विद्यते नय मुत्तमं ख०, म० । ५. बोध म० मारम्भेः म० । ६. नरपतिना ख० ।

एकोनपञ्चाशत्तमं पर्व

ततो नमः समुत्पत्य जगामासौ मरुच्चवः । अत्युत्तुङ्गैर्गृहेः पूर्णं श्रीपुरं श्रीनिकेतनम् ॥१॥
 तत्र हेमद्रवन्त्यस्तलेष्व्यतेजःसमुच्चलम् । कुन्दाभवलभीशीभि रत्ननिर्मितशेखरम् ॥२॥
 सुक्तादामसमाकीर्णं वातायनविराजितम् । उद्यानार्कीर्णपर्यन्तं प्राविशन्मास्तेर्गृहम् ॥३॥
 अपूर्वलोकेसङ्घातं पश्यतस्तस्य साङ्घुतम् । मनोगतागतं भूयो गतं कृच्छ्रेण धीरताम् ॥४॥
 प्रविष्टे भारतेर्गेहं तस्मिन् दूते ससम्भ्रमे । अनङ्गकुसुमोत्पातं जगामेन्दुनखात्मजा ॥५॥
 सस्पन्दं दक्षिणं चक्षुरवधार्य व्यचिन्तयत् । प्रासज्यं विधियोनेन कर्म कर्तुं न शक्यते ॥६॥
 क्षुद्रशक्तिसमासक्ता मानुपास्तावदासताम् । न सुरैरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा ॥७॥
 वेदितागमनस्तावद् दूतो नमंद्वा सभाम् । प्रस्वेदकणसम्पूर्णः प्रतीहार्या प्रवेशितः ॥८॥
 जगादाथ यथावृत्त नि.शेष प्रणताननः । दृषड्काद्रि समायाता. पञ्चनाभादयः पुरा ॥९॥
 शम्बुकस्य वधं युद्धं विषमं खरदूषणम् । पञ्चतागमन तस्य मानवैदत्तमैः सह ॥१०॥
 ततो निशम्य तां वार्तां शोकविह्वलविग्रहा । अनङ्गकुसुमा मूर्च्छामुपेता मुकुलेक्षणा ॥११॥
 चान्दनेन द्रव्येणैतां सिन्धुयमानां क्रियोञ्जिताम् । विलोक्यान्त.पुराम्मोधिः परमं क्षोभमागतः ॥१२॥
 बीजात्तन्त्रीसहस्राणां प्राप्तानां कोणताडनम् । क्रदन्तीनां समं रम्यो ध्वनिः स्त्रीणां समुद्गतः ॥१३॥

तदनन्तर—वायुके समान वेगका धारक श्रीभूति दूत, आकाशमे उड़कर अत्यन्त ऊँचे-ऊँचे महलोसे परिपूर्ण, लक्ष्मीके घर स्वरूप श्रीपुर नगरमे पहुँचा ॥१॥ वहाँ जाकर उसने श्रीशैलके उस भवनमे प्रवेश किया जो स्वर्णमय पानीके लेपसे उत्पन्न तेजसे अत्यन्त देदीप्यमान था, कुन्दके समान उज्वल अट्टालिकाओसे सुशोभित था, रत्नमयी शिखरोसे जगमगा रहा था, मोतियोंकी मालाओंसे व्याप्त था, भरोखोंसे सुशोभित था, और जिसका समीपवर्ती प्रदेश वागवगीचौसे व्याप्त था ॥२-३॥ वहाँ लोगोकी अपूर्व भीड़ तथा आश्चर्यकारी अत्यधिक यातायात देख श्रीभूतिका मन बड़ी कठिनाईसे धीरताको प्राप्त हुआ ॥४॥ जब आश्चर्यमे पड़े हुए श्रीभूति दूतने हनुमान्के घरमें प्रवेश किया तब चन्द्रनखाकी पुत्री अनङ्गकुसुमा उत्पातको प्राप्त हुई ॥५॥ दक्षिण नेत्रको फड़कते देख उसने विचार किया कि दैव योगसे जो कार्य जैसा होना होता है उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता ॥६॥ हीन शक्तिके धारक मनुष्य तो दूर रहें देवोंके द्वारा भी कर्म अन्यथा नहीं किये जा सकते ॥७॥ तदनन्तर अनङ्गकुसुमाकी प्रहासिका सखीने जिसके आगमन की सूचना दी थी, और स्वेदके कणोंसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसे उस श्रीभूति दूतको प्रतीहारिने सभाके भीतर प्रविष्ट कराया ॥८॥

अथानन्तर नम्र मुख होकर उसने सब वृत्तान्त ज्योंका त्यों इस प्रकार सुनाया कि राम आदि दण्डक वनमे आये, शम्बुकका वध हुआ, खरदूषणके साथ चिषम युद्ध हुआ, और उत्तम मनुष्योंके साथ खरदूषण मारा गया ॥९-१०॥ तदनन्तर यह वार्ता सुन अनङ्गकुसुमा शोकसे विह्वल शरीर हो मूर्च्छित हो गई तथा उसके नेत्र निमीलित हो गये ॥११॥ उसका हलन-चलन बन्द हो गया तथा चान्दनेके द्रवसे उसे सींचा जाने लगा, यह देख समस्त अन्तःपुर रूपी सागर परम क्षोभको प्राप्त हुआ ॥१२॥ अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियाँ एक साथ रुदन करने लगीं तो उनके

अनङ्गकुसुमा कृच्छ्रात्कल्मिषता प्राणसङ्गमम् । अश्रुसिक्तस्तनी तारं विललापतिदुःखिता ॥१४॥
 हा तात क प्रयातोऽसि प्रयच्छ वचनं मम । हा आतः किमिदं जातं दीयतां दर्शनं सकृत् ॥१५॥
 वनेऽतिभीषणे कष्टं रणाभिमुखतां गतः । भृगोचरैः कथं तात मरणत्वमुपाहृतः ॥१६॥
 शोकाकुलजनाकीर्णं जाते श्रीशैलवेरमनि । नीतो नर्मदया दूतः प्रदेशं वचनोचितम् ॥१७॥
 पितृभ्रातृशुभं दुःखेन तस्मा चन्द्रनखात्मजा । कृच्छ्रेण शमनं नीता सङ्घिः प्रशमकोविदैः ॥१८॥
 जिनमार्गप्रवीणस्तौ बुद्ध्वा संसारसंस्थितिम् । लोकाचारानुकूलत्वाच्चक्रे प्रेतक्रियाविधिम् ॥१९॥
 अन्येषुदूतमाहूय पवनक्षयनन्दनः । अपृच्छच्छोकसंस्पृष्टः मौल्लोकसमावृतः ॥२०॥
 निःशेषं दूतं यद्ब्रूयं तन्निवेदय साम्प्रतम् । इत्युक्त्वा कारणं मृत्योः खरदूषणमस्मरत् ॥२१॥
 ततोऽस्य क्रोधसंस्रद्धसर्वाङ्गस्य महाद्युतेः । भ्रूस्तरङ्गवती रेजे तडिद्रेखेव चञ्चला ॥२२॥
 ततस्त्रासपरोताङ्गो सुहृद्दूतः प्रतापवान् । जगाद मधुरं प्राज्ञः कोपविध्वंसकारणम् ॥२३॥
 ज्ञातमेव हि देवस्य किष्किन्धाधिपतेः परम् । दयितादुःखमुत्पन्नं तत्समाकाहेतुकम् ॥२४॥
 आर्तस्तेन स दुःखेन पद्मं शरणमागमत् । प्रतोष्य सोऽतिविध्वंसं किष्किन्धनगरं गतः ॥२५॥
 सुग्रीवाकृतिचौरैण समं तत्र महानभूत् । चिरं भ्रान्तमहायोधः सग्रामः श्वसुरस्य ते ॥२६॥
 उत्थाय पद्मनामेन ततो भूयो महौजसा । तस्याहृतस्य नष्टासौ वेताली स्तेयकारणम् ॥२७॥
 ततः साहसगत्याख्यः स्वस्वभावं समाश्रितः । विज्ञातो रामनिर्मुक्तैर्दुःखं नीतः शिखीमुखैः ॥२८॥

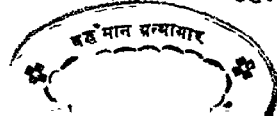
रदनका शब्द ऐसा उठा मानो वीणाओके हजारो तार कोणके ताड़नको प्राप्त हो एक साथ शब्द करने लगे हों ॥१३॥ तदनन्तर अनंगकुसुमा बड़े कष्टसे प्राणोंके समागमको प्राप्त हुई अर्थात् सचेत हुई । सचेत होने पर अश्रुओंसे स्तनोंको सिक्त करती तथा अतिशय दुःख प्रकट करती हुई वह जोर-जोरसे विलाप करने लगी ॥१४॥ वह कहने लगी कि हाय तात ! तुम कहाँ गये मुझे वचन देओ—युद्धसे वार्तालाप करो । हाय भाई ! यह क्या हुआ ? एक बार तो दर्शन देओ ॥१५॥ हे तात ! अत्यन्त भयंकर वनमे रणके सन्मुख हुए तुम भूमिगोचरियोंके द्वारा मरणको कैसे प्राप्त हो गये ? ॥१६॥ इस प्रकार जब श्रीशैलका भवन शोकाकुल मनुष्योंसे भर गया तब अनंगकुसुमाकी नर्मदा—सखी दूतको बात करने योग्य स्थान पर ले गई ॥१७॥ पिता और भाईके दुःखसे संतप्त चन्द्रनखाकी पुत्री अनंगकुसुमा, सान्त्वना देनेमे निपुण सत्युरुषोंके द्वारा बड़ी कठिनाईसे शान्तिको प्राप्त कराई गई ॥१८॥ जिन मार्गमे प्रवीण अनंगकुसुमाने संसारकी स्थिति जानकर लोकाचारके अनुकूल पिताकी मरणोत्तर क्रिया की ॥१९॥

अथानन्तर दूसरे दिन शोकसे व्याप्त तथा मन्त्री आदि मौलवर्गसे परिवृत्त श्रीशैल— हनुमानने दूतको बुलाकर पूछा कि 'हे दूत ! खरदूषणकी मृत्युका जो कुल कारण हुआ है वह सब कहो, यह कह कर हनुमान खरदूषणका स्मरण करने लगा ॥२०-२१॥ तदनन्तर क्रोधसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महादीप्तिमान् हनुमानकी फड़कती हुई भाँह चञ्चल विजली की रेखाके समान जान पड़ती थी ॥२२॥ तत्पश्चात् भयसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महाप्रतापी बुद्धिमानने हनुमानका क्रोध दूर करनेवाले निम्नाङ्कित मधुर वचन कहे ॥२३॥ उसने कहा कि हे देव ! आपको यह तो विदित ही है कि किष्किन्धाके अधिपति सुग्रीवको उसीके समान रूप धारण करनेवाले साहसगति विद्याधरके कारण स्त्रीसम्बन्धी दुःख उपस्थित हुआ था ॥२४॥ उस दुःखसे दुखी हुआ सुग्रीव रामकी शरणमे आया था और राम भी उसका दुःख नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा कर किष्किन्धनगर गये थे ॥२५॥ वहाँ आपके श्वसुर-सुग्रीवका, उसकी आकृतिके चौर—कृत्रिम सुग्रीवके साथ बड़े-बड़े योद्धाओंको धका देनेवाला चिरकाल तक महा-युद्ध हुआ ॥२६॥ तदनन्तर महातेजस्वी रामने उठकर उसे ललकारा । उन्हें देखते ही चोरीका कारण जो वेतालीविद्या थी वह नष्ट हो गई ॥२७॥ तब साहसगति अपने असली स्वरूपको

तच्छ्रुत्वा विगतक्रोधो जातः पवननन्दनः । पुनरुक्त जगौ तुष्टः विकसनसुखपङ्कजः ॥२६॥
 कृत कृतमहो साष्ट्र प्रिय पद्मेन नः परम् । यत्सुग्रीवकुल मज्जदकीर्तौ चिप्रमुद् धृतम् ॥३०॥
 हेमकुम्भोपमं गोत्र अयश-द्रुपगह्वरे । निमज्जद्गुणहस्तेन तेन सन्मतिनोद्घृतम् ॥३१॥
 पृथमादिपर भूरि प्रशसन् रामलक्ष्मणौ । कस्मिन्नपि ममजासौ सारसौख्यमहाण्वि ॥३२॥
 श्रुत्वा पङ्कजरागायाः पितुः शोकपरिचयम् । उत्सवः सुमहात् जातो दानपूजादिसंस्तुतः ॥३३॥
 उद्वेगानन्दसम्पन्नं हतच्छायसमुज्ज्वलम् । श्रीशैलभवनं जातं रसद्वयसमुत्कटम् ॥३४॥
 एवं विपमतां प्राप्ते स्वजने पावनजयिः । किञ्चित्समत्वमाधाय किष्किन्धाभिसुखं ययौ ॥३५॥
 ऋष्याभिगच्छत्स्तस्य वलेनात्यर्थभूरिणा । जगादन्यदिवोद्भूतमाकाशपरिवर्जितम् ॥३६॥
 विमानं सुमहत्तस्य मणिरत्नसमुज्ज्वलम् । प्रमां दिवसरत्नस्य जहार स्वमरीचिभिः ॥३७॥
 गच्छन्तं तं महाभाग्यं शतशो बन्धुपार्थिवाः । अनुजग्मुः सुनासीरं यथा त्रिदशपुङ्गवाः ॥३८॥
 अग्रतः पृष्ठतश्चास्य पार्श्वतश्च जयस्वनैः । गच्छतां खेचरैर्न्द्राणामासीच्छब्दमयं नभः ॥३९॥
 विभ्रमासीद्यदश्वानां विहायस्तलगामिनाम् । मनोहारी गजानां च विलासः स्वतनूचितः ॥४०॥
 महातुरङ्गसंयुक्तैः रथैरुच्चित्केतुभिः । विहायस्तल जातं मन्ये कल्पनगाकुलम् ॥४१॥
 सितानामातपत्राणां मण्डलेन महीयसा । जातं कुमुदखण्डानामिव पूर्णं वियत्तलम् ॥४२॥

प्राप्त हो गया, सबकी पहिचानमें आया और रामके द्वारा छोड़े हुए वाणोंसे मृत्युको प्राप्त हुआ ॥२२॥ यह सुनकर हनुमान् क्रोधरहित हो गया । प्रसन्नतासे उसका मुखकमल खिल उठा और संतुष्ट हो कर उसने बार-बार कहा कि अहो ! रामने बहुत अच्छा किया, मुझे बहुत अच्छा लगा जो उन्होंने अपकीर्तिमें डूबते हुए सुग्रीवके कुलका शीघ्र ही उद्धार कर लिया । ॥२६-३०॥ स्वर्ण कलशके समान सुग्रीवका कुल अपयश रूपी कूपके गर्तमें पड़कर डूब रहा था सो उत्तम बुद्धिके धारक रामने गुण रूपी रस्सी हाथमें ले उसे निकाला है ॥३१॥ इस प्रकार रामलक्ष्मणकी अत्यधिक प्रशंसा करतो हुका हनुमात् किसी अद्भुत श्रेष्ठ सुखरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥३२॥

हनुमानकी दूसरी स्त्री सुग्रीवकी पुत्री पद्मरागा थी सो पिताके शोकका चय सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ उसने दान पूजा आदिके द्वारा महा उत्सव किया ॥३३॥ उस समय हनुमानके भवनमें एक ओर तो शोक मनाया जा रहा था और दूसरी ओर हर्ष प्रकट किया जा रहा था । वह एक ओर तो कान्तिसे शून्य हो रहा था और दूसरी ओर देदीयमान हो रहा था । इस प्रकार दो स्त्रियोंके कारण वह दो प्रकारके रससे युक्त था ॥३४॥ इस प्रकार जब कुटुम्बके लोग विषमताको प्राप्त हो रहे थे तब हनुमान् कुञ्ज-कुञ्ज मध्यस्थताको धारण कर किष्किन्धानगरकी ओर चला ॥३५॥ वैभवके साथ जाते हुए हनुमानकी बहुत बड़ी सेनासे उस समय संसार आकाशसे रहित होनेके कारण ऐसा जान पड़ता था मानो दूसरा ही उत्पन्न हुआ हो ॥३६॥ मणियों और रत्नोंसे जगमगाता हुआ उसका बड़ा भारी विमान, अपनी किरणोंसे सूर्यकी प्रभाको हर रहा था ॥३७॥ जाते हुए उस महाभाग्यशालीके पीछे सैकड़ों मित्रराजा उस प्रकार चल रहे थे जिस प्रकार कि इन्द्रके पीछे उत्तमोत्तम देव चलते हैं ॥३८॥ उसके आगे पीछे और दोनो ओर चलने वाले विद्याधर राजाओंको जयध्वनिसे आकाश शब्दमय हो गया था ॥३९॥ आकाशतलमें चलने वाले उसके घोड़ोंसे आश्चर्य उत्पन्न हो रहा था तथा हाथियोंकी अपने शरीरके अनुरूप मनोहारी चेष्टा प्रकट हो रही थी ॥४०॥ जिनमें बड़े-बड़े घोड़े जुते हुए थे तथा जिन पर पताकार फहरा रही थीं ऐसे रथोंसे उस समय आकाशतल ऐसा जान पड़ता था मानो कल्पवृक्षोंसे व्याप्त ही हो ॥४१॥ धवल छत्रोंके विशाल समूहसे आकाशतल ऐसा जान पड़ता था मानो कुमुदोंके



गम्भीरो दौन्दुभो धीरो ध्वानो ध्वस्तापरध्वनिः । चक्रवालं दिशां व्याप्य प्रतिध्वनिधनः स्थितः ॥४३॥
 सङ्कुलं चलता तेन सैन्येन गगनाङ्गणम् । खण्डखण्डैरिवच्छन्नमन्तरेषु व्यलोकयते ॥४४॥
 भासां भूषणजातानां बहुवर्णयुजां चयैः । विशिष्टशिल्पिना रक्तं नभो वल्लमिवाभवत् ॥४५॥
 ध्वनिं मार्त्तित्यस्य श्रुत्वा सख्य गह्वरम् । तोषं कपिध्वजाः प्रापुः शिखिनोऽद्भुतध्वनिं यथा ॥४६॥
 कृतापणमहाशोभ ध्वजमालासमाकुलम् । रत्नतोरणसंयुक्तं किष्किन्धनगरं कृतम् ॥४७॥
 बहुभिः पूज्यमानोऽसौ विभवैस्त्रिदशोपमैः । विवेश नगरं सद्यः सुग्रीवस्य च पुष्कलम् ॥४८॥
 सुग्रीवेण प्रतीष्टश्च यथाहं रचित्तादरः । कथितं चाखिलं तस्य पद्मनाभादिचेष्टितम् ॥४९॥
 अनेनैव ततो युक्ताः सुग्रीवाद्या नरेश्वराः । धारयन्तः पर हर्षं पद्मनाभमुपाययुः ॥५०॥
 अपश्यच्च नरश्रेष्ठ त लक्ष्मीधरपूर्वजम् । नीलकुञ्चितसूचमातिस्निग्धकेशं मरुत्सुतः ॥५१॥
 लक्ष्मालताविपकाङ्गं कुमारमिव भास्करम् । शशाङ्कमिव लिम्पन्तं कान्तिपङ्केन पुष्करम् ॥५२॥
 नयनानां समानन्दं मनोहरणकोविदम् । अपूर्वकर्मणां सर्गं स्वर्गादिव समागतम् ॥५३॥
 ज्वलद् विशुद्धरुमाम्बुरुहगर्भसमप्रभम् । मनोज्ञा गतनासाग्रं सङ्गतश्रवणद्वयम् ॥५४॥
 मूर्तिमन्तमिवावङ्गं सुण्डरीकनिभेक्षणम् । चापानतश्रुवं पूर्णशारदेन्दुनिभाननम् ॥५५॥
 विम्बप्रवालरकोष्ठं कुन्दरवेतद्विजावलिम् । कन्दुकण्ठं स्रगेन्द्राभवचोभाजं महासुजम् ॥५६॥

समूहसे ही व्याप्त हो ॥४२॥ दूररोंकी ध्वनिको नष्ट करने वाला उसकी दुन्दुभिका धीर गम्भीर शब्द दिशाओंके मण्डलको व्याप्त कर स्थित था तथा उसकी जोरदार प्रतिध्वनि उठ रही थी ॥४३॥ उसकी चलती हुई सेनासे व्याप्त आकाशाङ्गण ऐसा दिखाई देता था मानो बीच-बीचमें खण्ड-खण्डोंसे आच्छादित हो ॥४४॥ उसके नाना प्रकारके भूषणोंके समूहकी कान्तिसे रंगा हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो किसी विशिष्ट—कुशल शिल्पीके द्वारा रंगा वल्ल ही हो ॥४५॥ हनुमान्की तुरहीका गम्भीर शब्द श्रवण कर सब वानरवंशी इस प्रकार संतोषको प्राप्त हुए जिस प्रकार कि मेघका शब्द सुनकर मयूर संतोषको प्राप्त होते हैं ॥४६॥ उस समय किष्किन्ध नगरके बाजारोंमें महाशोभा की गई; ध्वजाओं तथा मालाओंसे नगर सजाया गया और रत्नमयी तोरणोंसे युक्त किया गया ॥४७॥ देवोंके समान अनेक विद्याधरोने बड़े वैभवसे जिसकी पूजा की थी ऐसा हनुमान् सुग्रीवके विशाल महलमें प्रविष्ट हुआ ॥४८॥ सुग्रीवने यथायोग्य आदरकर उसका सम्मान किया तथा राम आदिकी समस्त चेष्टाएँ उसके समक्ष कहीं ॥४९॥ तदनन्तर हनुमान्से युक्त सुग्रीव आदि राजा परमहर्षको धारण करते हुए रामके समीप आये ॥५०॥ तत्पश्चात् हनुमान्ने उन श्रीरामको देखा तो मनुष्योंमें श्रेष्ठ थे, लक्ष्मणके अग्रज थे, जिनके केश काले, घुँघराले, सुदृढ तथा अत्यन्त स्निग्ध थे ॥५१॥ जिनका शरीर लक्ष्मीरूपी लतासे आलिङ्गित था, जो बालसूर्यके समान जान पड़ते थे अथवा जो कान्तिरूपी पङ्केके द्वारा आकाशको लिप्त करते हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित थे ॥५२॥ जो नेत्रोंको आनन्द देनेवाले थे, मनके हरण करनेमें निपुण थे, अपूर्व कर्मोंकी मानो सृष्टि ही थे और स्वर्गसे आये हुएके समान जान पड़ते थे ॥५३॥ देदीयमान निर्मल स्वर्णकमलके भीतरी भागके समान जिसकी प्रभा थी, जिनकी नासाका अग्रभाग मनोहर था, जिनके दोनों कर्ण उत्तम सुडौल अथवा सज्जनोंको प्रिय थे ॥५४॥ जो मूर्तिधारी कामदेवके समान जान पड़ते थे, जिनके नेत्र कमलके समान थे, जिनकी भौह चढ़े हुए धनुषके समान नभीभूत थी, जिनका मुख शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान था ॥५५॥ जिनका ओंठ विम्ब अथवा मूंगा या किसलयके समान

१. वयैः म० । २. कान्तिपद्मेन । ३. पुष्कलम् ख० । ४. मनोशा गतनासाग्र । ५. सङ्गतं श्रवणद्वयम् म० ।

श्रीवन्सकान्तिसम्पूर्णमहाशोभस्तनान्तरम् । गम्भीरनाभिवत्साममध्यदेशविराजितम् ॥५७॥
 प्रशान्तगुणसम्पूर्णं नानालक्षणभूपितम् । सुकुमारकरं वृत्तपर्विरोद्धयस्तुतम् ॥५८॥
 कूर्मपृष्ठमहातेजःसुकुमारक्रमद्वयम् । चन्द्राकुरारुणच्छायागणपंकिसमुज्ज्वलम् ॥५९॥
 अक्षोभ्यसत्त्वगम्भीरं वज्रसङ्घातविग्रहम् । सर्वसुन्दरसन्दोहमिव कृत्वा विनिर्मितम् ॥६०॥
 महाप्रभावसम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । प्रियाङ्गनावियोगेन बालसिंहमिवाकुलम् ॥६१॥
 शक्येव रहितं शक्रं रोहिण्येव विना विधुम् । रूपसौभाग्यसम्पन्नं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥६२॥
 शौर्यसाहाय्यसंयुक्तं मेधाविगुणसंयुतम् । एवंविधं समालोक्य भारुतिः चोभमागतः ॥६३॥
 अचिन्तयन्न सम्भ्रान्तस्तत्प्रभाववशीकृतः । तच्छरीरप्रभाजालसमालिङ्गितविग्रहः ॥६४॥
 श्रीमानयमसौ राजा रामो दशरथात्मजः । यस्येह लक्ष्मणे भ्राता लोकश्रेष्ठः स्थितो वयो ॥६५॥
 यस्यालोक्य तदा संस्थे^१ छत्रं शीतांशुसन्निभम् । सा साहसगतेर्माया वैताली परिनिःसृता ॥६६॥
 दृष्ट्वा वज्रवरं^२ पूर्वं हृदयं यन्न कम्पितम् । तदथ मम दृष्ट्वै^३नं संचोभं परमं गतम् ॥६७॥
 इति विस्मयमापन्नः समनुसृत्य तान् गुणान् । ससार^४ पावनिः पद्मं श्रीमदम्बोजलोचनम् ॥६८॥
 दूराद्दृष्ट्या य दृष्ट्वं पश्यलक्ष्मीधरादिभिः । असौ प्रहृष्टचेतोभिः परिष्वक्तो यथाक्रमम् ॥६९॥
 परस्परं समालोक्य सम्भाष्य विनयोषितम् । उपधानविचित्रेषु^५ स्वासनेष्वववस्थिरे ॥७०॥

लाल था जिसकी दाँतोकी पंक्ति कुन्द कुसुमके समान शुक्ल थी, कण्ठ शङ्खके समान था, जो सिंहके समान विस्तृत वज्रस्थलके धारक थे, महाभुजाओंसे युक्त थे ॥५६॥ जिनके स्तनोका मध्यभाग श्रीवत्स चिह्नकी कान्तिसे परिपूर्ण महाशोभाको धारण करनेवाला था, जो गम्भीर नाभिसे युक्त तथा पतली कमरसे सुशोभित थे ॥५७॥ जो प्रशान्त गुणोंसे युक्त थे, नाना लक्षणोंसे विभूषित थे, जिनके हाथ अत्यन्त सुकुमार थे, जिनकी दोनों जोंघे गोल तथा स्थूल थीं ॥५८॥ जिनके दोनों चरण कछुवैके पृष्ठभागके समान महातेजस्वी तथा सुकुमार थे, जो चन्द्रमाकी किरणरूपी अङ्गुरोंसे लाल-लाल दीखनेवाली नखावलीसे उज्ज्वल थे ॥५९॥ जो अक्षोभ्य धैर्यसे गम्भीर थे, जिनका शरीर मानो वज्रका समूह ही था, अथवा समस्त सुन्दर वस्तुओंको एकत्रितकर ही मानो जिनकी रचना हुई थी ॥६०॥ जो महाप्रभावसे युक्त थे, न्यग्रोध अर्थात् वट-शुद्धके समान जिनका मण्डल था, जो प्रिय स्त्रीके विरहके कारण बालसिंहके समान व्याकुल थे ॥६१॥ जो इन्द्राणीसे रहित इन्द्रके समान, अथवा रोहिणीसे रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे, जो रूप तथा सौभाग्य दोनोंसे युक्त थे, समस्त शास्त्रोंमें निपुण थे ॥६२॥ शूर-वीरताके माहात्म्यसे युक्त थे तथा मेधा-सद्बुद्धि आदि गुणोंसे युक्त थे । ऐसे श्रीरामको देखकर हनुमान् चोभको प्राप्त हुआ ॥६३॥

तदनन्तर जो रामके प्रभावसे वशीभूत हो गया था और उनके शरीरकी कान्तिके समूहसे जिसका शरीर आलिङ्गित हो रहा था ऐसा हनुमान् संभ्रममें पड़ विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह वही दशरथके पुत्र लक्ष्मीमान् राजा रामचन्द्र हैं, लोकश्रेष्ठ लक्ष्मण जैसा भाई जिनका आज्ञाकारी है ॥६५॥ उस समय युद्धमें जिनका चन्द्रतुल्य छत्र देखकर साहसगति की वह वैताली विद्या निकल गई ॥६६॥ मेरा जो हृदय पहले इन्द्रको देखकर भी कम्पित नहीं हुआ वह आज इन्द्रके देखकर परम चोभको प्राप्त हुआ है ॥६७॥ इस प्रकार आश्चर्यको प्राप्त हुआ हनुमान् इनके गुणोंका अनुसरण कर कमललोचन रामके पास पहुँचा ॥६८॥ जिनका चित्त हर्षित हो रहा था ऐसे राम, लक्ष्मण आदिने इसे देख दूरसे ही उठकर यथाक्रमसे इसका आलिङ्गन किया ॥६९॥ परस्पर इक दूसरेको देखकर तथा विनयके योग्य वार्तालापकर सब

तत्र भद्रासने रम्ये स्थितः काकुत्स्थनन्दनः । केयूरभूषितभुजो ज्वलन्निभ्रया समन्ततः ॥७१॥
 स्वच्छनीलान्बरधरश्चूडामणिरिवोज्ज्वलः । रराज वरहारेग सोढुचन्द्र इवोद्गतः ॥७२॥
 दिव्यपीताम्बरधरो हारकेयूरकुण्डलो । सुमित्रातनयो रेजे सतडिज्जलदो यथा ॥७३॥
 वानराभोगमुकुटः सुरवारणविक्रमः । अभास्सुग्रीवराजोऽपि लोकपाल इवोर्जितः ॥७४॥
 विराधितः कुमारोऽपि सौमित्रेः पृष्ठतः स्थितः । अलचयत नृसिंहस्य चक्ररत्नमिवौजसा^१ ॥७५॥
 हनुमानप्यल रेजे पद्मनाभस्य धीमतः । समीपे पूर्णचन्द्रस्य स्फीतो बुध इवोदितः ॥७६॥
 सुगन्धिमाल्यवस्त्राद्यैरलङ्कारैश्च भूषितौ । अङ्गाङ्गद्वय^२ भासेतां यमवैश्रवणाविव ॥७७॥
 नलनीलप्रभृतयः शतशोऽन्ये च पार्थिवाः । आसीना रेखुरत्यन्तमावृत्य रघुनन्दनम् ॥७८॥
 पञ्चसद्वन्धताम्बूलगन्धसङ्गतमाहता । विभूषणकृतोद्योता सा समेन्द्रसभोपमा ॥७९॥
 विस्मित्य सुचिरं राम प्रीतः पावनिरब्रवीत् । समर्चं न गुणा ग्राह्या भवतो रघुनन्दन ॥८०॥
 इहापि निखिले लोके दृश्यते स्थितिरिदृशी । किमपि प्रियवक्त्रणां प्रत्यक्षगुणकीर्तनम्^३ ॥८१॥
 आसीद्यस्याधिमाहात्म्यं श्रुतमस्माभिरुर्जितम् । दृष्टः सत्त्वहितः स त्वं सरववान् चक्षुषा स्वयम् ॥८२॥
 सर्वसौन्दर्ययुक्तस्य गुणरत्नाकरस्य ते । शुभ्रेण यशसा राजन् जगदेतदलङ्कृतम् ॥८३॥

नाना प्रकार तालियोसे सुशोभित अपने-अपने आसनोपर बैठ गये ॥७०॥ वहाँ जो उत्तम आसनपर विराजमान थे जिनकी भुजा बाजूबन्दसे सुशोभित थी, जो लक्ष्मीके द्वारा सब ओरसे देदीप्यमान् थे जो स्वच्छ नीलवस्त्र धारण किये हुए थे तथा उत्तम हारसे सुशोभित थे ऐसे श्रीराम नक्षत्र सहित उदित हुए चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे ॥७१-७२॥ दिव्य पीताम्बरको धारण करने वाले तथा हार केयूर और कुण्डलोंसे अलंकृत लक्ष्मण विजली सहित मेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७३॥ जिसका सुविस्तृत मुकुट वानरके चिह्नसे युक्त था, तथा देवगज—घेरावतके समान जिसका पराक्रम था ऐसा सुग्रीवराजा भी अतिशय बलवान् लोकपालके समान सुशोभित हो रहा था ॥७४॥ लक्ष्मणके पीछे बैठा विराधित कुमार भी अपने तेजसे ऐसा दिखाई देता था मानो नारायणके समीप रक्खा हुआ चक्ररत्न ही हो ॥७५॥ अतिशय बुद्धिमान् रामचन्द्रके समीप हनुमान् भी ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पूर्णचन्द्रके समीप उदित हुआ अत्यन्त देदीप्यमान् बुधग्रह ही हो ॥७६॥ सुगन्धित माला तथा वस्त्रादि एवं अलंकारोसे अलंकृत अङ्ग और अङ्गद्वय यम तथा वैश्रवणके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७७॥ इनके सिवाय रामको घेर कर बैठे हुए नल नील आदि सैकड़ों अन्य राजा भी उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥७८॥ नाना प्रकारकी उत्तम गन्धसे युक्त ताम्बूल तथा सुगन्धित अन्य पदार्थोंके समागमसे जहाँ वायु सुगन्धित हो रही थी तथा जहाँ आभूषणोंके द्वारा प्रकाश फैल रहा था ऐसी वह सभा इन्द्रकी सभा के समान जान पड़ती थी ॥७९॥

तदनन्तर चिरकाल तक आश्चर्यमें पड़कर प्रीतियुक्त हनुमानने रामसे कहा कि हे राघव ! यद्यपि आपके गुण आपके ही समर्च नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस लोकमें भी ऐसी ही रीति देखी जाती है फिर भी प्रत्यक्ष ही आपके गुण कथन करनेकी उत्कट लालसा है सो ठीक ही है क्योंकि जो प्रिय वक्ता है उन्हें प्रत्यक्ष ही गुणोंका कथन करना अद्भुत आह्लादकारी होता है ॥८०-८२॥ जिनका बलपूर्ण लोकोत्तर माहात्म्य हमने पहलेसे सुन रक्खा था उन प्राणि हितकारी वैश्याली आपको मैं स्वयं नेत्रोंसे देख रहा हूँ ॥८२॥ हे राजन् ! आप सम्पूर्ण सौन्दर्यसे युक्त हैं,

१. स्वस्थ म० । २. मुकुटमुखारण म० । ३. -मिवौजसा म० । ४. सुगन्ध म० । ५. ववासन्तौ म० ख०, क० । ६. कीर्तिराम ख० ।

धनुलम्बोदये लब्धः सहस्राभररक्षिते । सीतास्वयंवरैःस्वामिः श्रुतस्त्वव पराक्रमः ॥८४॥
 पिता दशरथो यस्य यस्य भामण्डलः सुहृत् । भ्राता यस्य च सौमित्रिः स त्वं राम जगत्पतिः ॥८५॥
 अहो शक्तिरहोरूपमेव नारायणः स्वयम् । समुद्रावर्तचपशेयो यत्नज्ञाकरणे रतः ॥८६॥
 अहो धैर्यमहो त्यागो यत्पितुः पालयन् वचः । महाप्रतिभयाकारं प्रविष्टो दण्डकं वनम् ॥८७॥
 पृथक् कुरुते वन्द्यस्तुष्टश्च त्रिदशाधिपः । अहो त्वया नाथ कृतं यदस्माकमतिप्रियम् ॥८८॥
 सुग्रीवरूपसम्पन्नं हत्वा संयति साहसम् । यत्कपिध्वजवंशस्य कलङ्को दूरमुन्मिक्तः ॥८९॥
 विद्याबलविधिज्ञैर्घृत्य मायामर्थं वधुः । अस्माभिरपि नो सह्यं दुर्जयं च विशेषतः ॥९०॥
 तेन सुग्रीवरूपेण गृहीतुं प्लावगं बलम् । दर्शनादेव शुष्माकं तद्रूपं तस्य निःसृतम् ॥९१॥
 कर्तुं प्रत्युपकारं यो न शक्नोऽप्युपकारिणः । सुलभां भावशुद्धिं स तस्मै न कुरुते कुतः ॥९२॥
 का तस्य बुद्धिन्यायिषु भवेदेकमपि क्षणम् । यः कृतस्योपकारस्य विशेषं नावबुध्यते ॥९३॥
 स्वपाकादपि पापीयान् लुब्धकादपि निर्घृणः । असम्भाष्यः सतां नित्यं योऽकृतज्ञो नराधमः ॥९४॥
 स्वशरीरमपि त्यक्त्वा सत्यं वयमनन्यगाः । सर्वे समुद्युताः कर्तुमुपकारं तव प्रभो ॥९५॥
 गत्वा प्रबोधधिप्यामि त्रिकूटाधिपतिं बुधम् । तव पत्नीं महाबाहो त्वरावानानायम्यहम् ॥९६॥
 सीताया वदनाम्बोज प्रसन्नोऽनुमिबोदितम् । सन्देहेन विनिर्मुक्तं शीघ्रं पश्यसि राघव ॥९७॥

तथा गुणरूपी रत्नोकी आकर अर्थात् खान अथवा समुद्र हैं । आपके शुक्ल यशसे यह संसार अलंकृत हो रहा है ॥८३॥ हे नाथ ! वज्रावर्त धनुषकी प्राप्तिसे जिसका अश्रुदय हुआ था तथा एक हजार देव जिसकी रक्षा करते थे ऐसे सीताके स्वयंवरमें आपको जो पराक्रम प्राप्त हुआ था वह सब हमने सुना है ॥८४॥ दशरथ जिनका पिता है, भामण्डल जिनका मित्र है, और लक्ष्मण जिनका भाई है, ऐसे आप जगत्के स्वामी राजा राम हैं ॥८५॥ अहो ! आपकी शक्ति अद्भुत है, अहो ! आपका रूप आश्चर्यकारी है कि सागरावर्त धनुषका स्वामी नारायण स्वयं ही जिनकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर है ॥८६॥ अहो ! आपका धैर्य आश्चर्यकारी है, अहो ! आपका त्याग अद्भुत है जो पिताके वचनका पालन करते हुए आप महाभय उत्पन्न करनेवाले दण्डक वनमें प्रविष्ट हुए हैं ॥८७॥ हे नाथ ! आपने हम लोगोंका जो उपकार किया है वह न तो भाई ही कर सकता है और न संतुष्ट हुआ इन्द्र ही ॥८८॥ आपने सुग्रीवका रूप धारण करनेवाले साहस-गतिको युद्धमें मारकर वानरवंशका कलंक दूर किया है ॥८९॥ विद्याबलकी विधिके जाननेवाले हम लोग भी जिसके मायामय शरीरको सहन नहीं कर सकते थे तथा हम लोगोंके लिए भी जिसका जीतना कठिन था उस सुग्रीव रूपधारी साहसगतितने वानर वंशी सेनाको प्राप्त करनेके लिए कितना प्रयत्न किया परन्तु आपके दर्शनमात्रसे उसका वह रूप निकल गया ॥९०-९१॥ जो अत्यन्त उपकारी मनुष्यका प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं है वह उसके विषयमें भावशुद्धि क्यों नहीं करता अर्थात् उसके प्रति अपने परिणाम निर्मल क्यों नहीं करता जब कि यह भावशुद्धि विषकुल ही सुलभ है ॥९२॥ जो मनुष्य, किये हुए उपकार की विशेषताको नहीं जानता है उसको एक अङ्गके लिए भी न्यायमें बुद्धि कैसे हो सकती है ? ॥९३॥ जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ है वह चाण्डालसे भी अधिक पापी है, शिकारीसे भी अधिक निर्दय है और सत्यरुषीसे निरन्तर वार्तालाप करनेके लिए भी योग्य नहीं है ॥९४॥ हे प्रभो ! हम सब किसी अन्य की शरणमें न जाकर आपकी ही शरणमें आये हैं और सचमुच ही अपना शरीर छोड़कर भी आपका उपकार करनेके लिए उद्यत हैं ॥९५॥ हे महाबाहो ! मैं जाकर रावणको समभाऊँगा । वह बुद्धिमान है अतः अवश्य समझेगा और मैं शीघ्र ही आपकी पत्नीको वापिस ले आता हूँ ॥९६॥ हे राघव !

मन्त्री जाम्बूनदोऽवोचत्ततो वाक्यं परं हितम् । वत्स वत्स मरुपुत्र त्वमेकोऽस्माकमाश्रयः ॥६८॥
 अप्रमत्तेन गन्तव्यं लङ्को रावणपालिताम् । न विरोधः क्वचित् कार्यः कदाचित् केनचित्सह ॥६९॥
 एवमस्त्विति सम्भाष्य तं सम्प्रस्थितमुन्नतम् । विलोक्य परमां प्रीतिं पुद्गनाभः समागमत् ॥१००॥
 पुनः पुनः समाहूय मारुतिं चारुलक्षणम् । सर्वादरं जगादेदं स्फीता राजीवलोचनः ॥१०१॥
 महाकथादुच्यतां सीता त्वद्वियोगात् स राघवः । अधुना विन्दते साधि न मनोनिर्वृतिं क्वचित् ॥१०२॥
 अत्यन्तं तद्दहं मन्ये हतं पौरुषमात्मनः । प्रतिरोधं प्रपन्नासि वर्तमानेऽपि यन्मयि ॥१०३॥
 वेधि निर्मलशोकाढ्या यथा त्वं मद्नुव्रता । जीवितं^१ वान्कृसि त्यक्तुं मद्दियोगेन दुःखिता ॥१०४॥
 अलं तथापि सद्गन्त्रे दुःसमाधानमृच्युना । धार्यन्तां मैथिलिं प्राणा न जीतं त्यक्तुमर्हसि ॥१०५॥
 दुर्लभः सङ्गमो भूयः पूजितः सर्ववस्तुषु । ततोऽपि दुर्लभो धर्मो जिनेन्द्रवदनुदेरातः ॥१०६॥
 दुर्लभाद्रप्यलं तस्मान्मरणं सुसमाहितम् । तस्मिन्नसति जन्मेदं तुषनिःसारमाहितम् ॥१०७॥
 इदं च प्रत्ययोत्पादि प्रियायै मम जीवतः । सततं संस्तुतं देवमङ्गुलीयकमुत्तमम् ॥१०८॥
 वायुपुत्रं द्रुतं गत्वा सीतायास्तं महाप्रभम् । ममापि प्रत्ययकरं चूडामणिमिहानय ॥१०९॥
 यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा रत्नवानरमौलिभृत् । कृताञ्जलिपुटो नत्वा सौमित्रिं च समोऽञ्जलिः ॥११०॥
 वहिर्निर्नयौ हृष्टः पूर्यमाणो विभूतिभिः । क्षोभयन् तेजसा सर्वं सुप्रीवभवनाजिरम् ॥१११॥

इसमें संदेह नहीं कि तुम उदित हुए चन्द्रमाके समाप्त निर्मल सीताका मुखकमल शीघ्र ही देखोगे ॥६७॥

तदनन्तर सुप्रीवके मन्त्री जाम्बूनदने परम हितकारी वचन कहे कि हे वत्स हनुमन् ! हम लोगोंका आधार एक तू ही है ॥६८॥ अतः तुझे सावधान होकर रावणके द्वारा पालित लंका जाना चाहिए और कहीं कभी किसीके साथ विरोध नहीं करना चाहिए ॥६९॥ 'एवमस्तु'—'ऐसा ही हो' यह कहकर उदार हनुमान् लंकाकी ओर प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हुआ सो उसे देख राम परम प्रीतिको प्राप्त हुए ॥१००॥ विदलित कमललोचन रामने सुन्दर लक्ष्मणोंके धारक हनुमान्को बार-बार बुलाकर बड़े आदरके साथ यह कहा कि तुम मेरी ओरसे सीतासे कहना कि हे साधि ! इस समय राम तुम्हारे विद्योगसे किसी भी वस्तुमें मानसिक शान्तिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं—उनका मन किसी भी पदार्थमें नहीं लगता है ॥१०१-१०२॥ मेरे रहते हुए भी जो तुम अन्यत्र प्रतिरोध—रुकावटको प्राप्त हो रही हो सो इसे मैं अपने पौरुषका अत्यधिक वात समझता हूँ ॥१०३॥ तुम जिस प्रकार निर्मल शीलव्रतसे सहित हो तथा एक ही व्रत धारण करती हो उससे समझता हूँ कि तुम मेरे विद्योगसे दुःखी होकर यद्यपि जीवन छोड़ना चाहती होगी पर हे सुमुखि ! तो भी छोटे परिणामोंसे मरना व्यर्थ है । हे मैथिलि ! प्राण धारण करो । जीवनका त्याग करना उचित नहीं है ॥१०४-१०५॥ सर्व वस्तुओंका पुनः उत्तम समागम प्राप्त होना दुर्लभ है और उससे भी दुर्लभ अरहन्त भगवान्के सुखारविन्दसे प्रकट हुआ धर्म है ॥१०६॥ यद्यपि उक्त धर्म दुर्लभ है तो भी समाधि-भरण उसकी अपेक्षा दुर्लभ है क्योंकि समाधि भरणके बिना यह जीवन तुषके समान साररहित देखा गया है ॥१०७॥ और प्रियाके लिए मेरे जीवित रहनेका प्रत्यय—विश्वास उत्पन्न हो जाये इसलिए यह सदा की परिचित्त उत्तम अंगूठी उसे दे देना ॥१०८॥ तथा हे पवनपुत्र ! तुम शीघ्र ही जाकर मुझे विश्वास उत्पन्न करनेवाला सीताका महा कान्तिमान् चूडामणि यहाँ ले आना ॥१०९॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कह कर रत्नमय वानरसे विहित मुकुटको धारण करनेवाला हनुमान् राम तथा लक्ष्मणको हाथ जोड़ नमस्कार कर बाहर निकल आया । उस समय वह अत्यन्त हर्षित था, विभूतियोंसे युक्त था और अपने तेजसे सुप्रीवके भवन-

१. चारुतामरसेक्षणम् ज० । २. कमलनेत्रः स्फीत्या राजीवलोचनः म० । ३. जीवितं म० ।

४. मैथिली म० । ५. कृताञ्जलिः म० ।

सन्दिदेश च सुग्रीवं यावदागमनं भ्रम । स्थातव्यं तावदत्रैव प्रसादपरिवर्जितैः ॥११२॥
विमानं चारुशिखरमारूढो मारुतिस्ततः । विभाति मस्तके मेरोञ्चैत्यालय इवोज्ज्वलः ॥११३॥
प्रययौ परया धृत्या सितच्छत्रोपशोभितः । विलसद्दससङ्काशैश्चामरैरुपनीवितः ॥११४॥
वायुशार्वससैरश्वैर्जङ्गमैर्द्विसमैर्गजैः । सैन्यैश्चिदशसङ्काशैर्जंगाम परितो वृतः ॥११५॥
एवं युक्तो महाभृत्या रामादिभिरुदीक्षितः । समाक्रम्य रवेर्गार्गमयासीत्सुनिरन्तरम् ॥११६॥

उपजातिवृत्तम्

पूर्णं जगत्तिष्ठति जन्तुवर्गेर्नानाविधैरुत्तमभोगयुक्तैः ।
कश्चित्तु तेषां परमार्थकृत्ये नियुज्यते यत्परमं यशस्तत् ॥११७॥
कृतं परेणाप्युपकारयोगं स्मरन्ति नित्यं कृतिनो मनुष्याः ।
तेषां न तुल्यो भुवने शशाङ्को नवा कुबेरो न रविर्न शक्रः ॥११८॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनुमत्प्रस्थानं नाम एकोनपञ्चाशत्तमं पर्व ॥४६॥

सम्बन्धी समस्त आंगनको क्षोभयुक्त कर रहा था ॥११०-१११॥ उसने सुग्रीवसे कहा कि जब तक मैं न आ जाऊँ तब तक आप सबको यहीं सावधान होकर ठहरना चाहिए ॥११२॥

तदनन्तर हनुमान् सुन्दर शिखरसे युक्त विमान पर आरूढ हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि सुमेरुके शिखर पर देदीप्यमान चैत्यालय सुशोभित होता है ॥११३॥ तत्परचात् उसने परम कान्तिसे युक्त हो प्रयाण किया । उस समय वह सफेद छत्रसे सुशोभित था और उड़ते हुए हंसोकी समानता करनेवाले चमर उस पर ढोरे जा रहे थे ॥११४॥ वह वायुके समान वेगशाली धोड़ों, चलते-फिरते पर्वतोंके समान हाथियों और देवोंके समान सैनिकोंसे घिरा हुआ जा रहा था ॥११५॥ इस प्रकार जो महाविभूतिसे युक्त था, तथा राम आदि जिसे ऊपरको दृष्टिकर देख रहे थे, ऐसा वह हनुमान् सूर्यके मार्गका उल्लङ्घन कर निरन्तर आगे बढ़ा जाता था ॥११६॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! यह समस्त संसार नाना प्रकारके उत्तम भोगोंसे युक्त जन्तुओंसे भरा हुआ है उनमेंसे कोई विरला पुरुष ही परमार्थरूप कार्यमें लगता है तथा परम यशको प्राप्त होता है ॥११७॥ जो उत्तम मनुष्य दूसरेके द्वारा किये हुए उपकारका निरन्तर स्मरण रखते हैं इस संसारमें उनके समान न चन्द्रमा है, न कुबेर है, न सूर्य है और न इन्द्र ही है ॥११८॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित, पद्मपुराणमें हनुमान्के प्रस्थानका वर्णन करनेवाला उनचासवों पर्व समाप्त हुआ ॥४६॥

पञ्चाशत्तमं पर्व

अथासावाङ्गनो गच्छन्नम्बरे परमोदयः । स्वसारमिव वैदेहीमानिनीपुरराजत् ॥१॥
 शुद्धराज्ञापवृत्तस्य विनीतस्य महात्मनः । शुद्धभावस्य तस्यासीद्दुस्सवः कोऽपि चैतसः ॥२॥
 परयतः प्रौढया दृष्ट्या स्थितस्य रविगोचरे । दिशां मण्डलमस्यासीच्छरीरावयवोपमम् ॥३॥
 लङ्कां जिगमिषोरस्य महेन्द्रनगरोपमम् । महेन्द्रनगरं दृष्टेराभिमुख्यमुपागतम् ॥४॥
 वेदिकापुण्डरीकामैः प्रासादैः शशिपाण्डुरैः । पर्वतस्य स्थितं मूर्ध्नि तद्विदूरे प्रकाशते ॥५॥
 वज्रपाणेरिवामुख्यं तस्मिन् वालिपुरोपमे । न बभूवतरां प्रीतिः तस्मादेवमचिन्तयत् ॥६॥
 इदं शिखरिणो मूर्ध्नि तन्महेन्द्रपुरं स्थितम् । महेन्द्रको नृपो यत्र दुर्मतिः सोऽवतिष्ठते ॥७॥
 दुःखतापितसर्वाङ्गा माता येनागता मम । निर्वासिता मयि प्राप्ते कुचिवासं दुरात्मना ॥८॥
 एपाऽसौ विजनेजप्ये गुहा यत्र स सन्मुनिः । पर्यङ्कयोगयुक्तात्मा नाम्नामितगतिः स्थितः ॥९॥
 अस्यां भगवता तेन साधुवाक्यैः कृपाकृता । माता मां जनिताश्रवासा प्रसूता बन्धुवर्जिता ॥१०॥
 श्रुतं केसरिजं कृच्छ्रं श्रुत्वा मातुरूपप्लवम् । सावीश्व सङ्गमं सैषा रम्या रम्या च मे गुहा ॥११॥
 मातरं शरणं प्राप्तां मम निर्वास्य यः कृती । व्यसनप्रतिदानेन भहेन्द्रं किन्तु तं भजेत् ॥१२॥
 अहयुरयमत्यन्तं मां किल द्वेष्टि सन्ततम् । महेन्द्र (महेन्द्रो) गर्भमेतस्य तस्मादपनयाम्यहम् ॥१३॥

अथानन्तर परम अभ्युदयको धारण करनेवाला हनुमान आकाशमें जाता हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो वहिन सीताको लेनेके लिए भामण्डल ही जा रहा हो ॥१॥ मित्र— श्रीरामकी आज्ञामें प्रवृत्त, चिनचवान, उदाराशय एवं शुद्धभावके धारक हनुमानके हृदयमें उस समय कोई अद्भुत आनन्द छाया हुआ था ॥२॥ सूर्यके मार्गमें स्थित हनुमान् जब प्रौढ दृष्टिसे दिङ्मण्डलकी ओर देखता था तब उसे दिङ्मण्डल शरीरके अवयवोंके समान जान पड़ता था ॥३॥ लङ्काकी ओर जानेके लिए इच्छुक हनुमान्की दृष्टिके सामने राजा महेन्द्रका नगर आंघा जो इन्द्रके नगरके समान जान पड़ता था ॥४॥ वह नगर पर्वतके शिखर पर स्थित था तथा वेदिका पर स्थित सफेद कमलोंके समान आभाको धारण करनेवाले चन्द्रतुल्य धवल भवनोंके द्वारा दूरसे ही प्रकाशित हो रहा था ॥५॥ जिस प्रकार बालिके नगरमें इन्द्रको प्रीति नहीं हुई थी उसी प्रकार राजा महेन्द्रके उस नगरमें हनुमान्को कोई प्रीति उत्पन्न नहीं हुई अपितु उसे देखकर वह विचार करने लगा ॥६॥ कि यह पर्वतके शिखर पर राजा महेन्द्रका नगर स्थित है जिसमें कि वह दुर्बुद्धि राजा महेन्द्र निवास करता है ॥७॥ मेरे गर्भवासके समय दुःखसे भरी मेरी माता इसके नगर आई पर इस दृष्टने उसे निकाल दिया ॥८॥ तब मेरी माता निर्जन वनकी उस गुफामें—जिसमें कि पर्यक योगसे अमितगति नामा मुनि विराजमान थे—रही । इसी गुफामें उन दयालु मुनिराजने उत्तम वचनोंके द्वारा उसे सान्त्वना दी और बन्धुजनोसे रहित अकेली रहकर उसने मुझे जन्म दिया ॥९-१०॥ इसी गुफामें माताको सिधसे उत्पन्न कष्ट प्राप्त हुआ था और इसी गुफामें उसे मुनिराजका सन्निधान प्राप्त हुआ था इसलिए यह गुफा मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥११॥ जो मेरी शरणागत माताको निकाल कर कृतकृत्य हुआ था उस महेन्द्रको अब मैं कष्टका बदला देकर क्या उसकी सेवा करूँ ॥१२॥ यह महेन्द्र बड़ा अहंकारी है तथा मुझसे निरन्तर द्वेष रखता है इसलिए इसका गर्व अवश्य ही दूर करता हूँ ॥१३॥

१. -नमीधुः राज सः म०, व० । २. लङ्का म० । ३. मुख्यस् म० । ४. स्थिताः म० । ५. उरुप्लम्, म० । ६. किन्तु न यजेत् म०, क० ।

प्रलम्बाबुद्वन्द्वोरुनादा दुन्दुभयस्ततः । महालम्पाकभैरवश्च पटहाश्च समाहताः ॥१३॥
 ध्माताः शङ्खा जगत्कम्पा भट्टैरुक्लृष्टचेष्टितैः । युद्धराण्डैः समुक्लृष्टं समुल्लासितहेतिभिः ॥१५॥
 श्रुत्वा परबलं प्राप्तं महेन्द्रः सर्वसेनया । प्रत्यैक्षत विविङ्कन्य मेघवृन्दमिवाचलः ॥१६॥
 सप्रहरीस्ततो लम्बैर्दृष्ट्वासीदक्लिप्तं बलम् । चापमुद्यम्य माहेन्द्रिः प्रातरुद्धरी रथस्थितः ॥१७॥
 हनूमाविषुभित्तस्य धनुस्तिसृधिरायतम् । चिच्छेद गुप्तिभिर्योगी यथामानं समुत्थितम् ॥१८॥
 चापं यावद्वितीर्य स गृह्णात्याकुलमानसः । शरैस्तावद्रथान्मुक्ताः प्रचण्डास्तस्य बाजिनः ॥१९॥
 रथात्ते विगताः शीघ्राप्रपला वन्नमुच्छ्रयम् । हपीकाणीव मनसो मुक्तानि विपर्यैपिणः ॥२०॥
 माहेन्द्रिरथ स भ्रान्तो विमानं वरमाश्रितः । तदप्यश्व शरैर्लुप्तं मत्तं दुष्टमतेरिव ॥२१॥
 माहेन्द्रिसुदितो भूयो विद्याबलविकारगः । पतत्रिचक्रकनकैर्युयुधेऽल्लातभासुरैः ॥२२॥
 विद्ययाऽनिलपुत्रोऽपि तं शक्यौघमवारयत् । यथात्मचिन्तया योगी परीपहृदकम्बकम् ॥२३॥
 निर्दयोन्युक्तशखोऽस्तावास्तृणानो महानिवत् । गृहोत्तो वायुपुत्रेण गल्लेनेव पक्ष्मः ॥२४॥
 प्रासरोर्धं सुतं दृष्ट्वा महेन्द्रः क्रोधलोहितः । रथी मारुतिमभ्यार रामं सुग्रीवरूपवत् ॥२५॥
 अर्काभस्थन्दतः सोऽपि हरिहारो धनुर्धरः । शूराणामग्रणी दीप्तो मातुः पितरमभ्रगात् ॥२६॥

तदनन्तर ऐसा विचार कर उसने धूमते हुए मेघ-समूहके समान उच्च शब्द करनेवाली दुन्दुभिर्यौ, महा विकट शब्द करनेवालीं भेरिर्यौं और नगाड़े वजवाये ॥१३॥ उद्वृष्ट चेष्टाओंको धारण करनेवाले योद्धाओंने जगत्को कम्पा देनेवाले शङ्ख फूँके तथा शस्त्रोको चमकानेवाले रणवीर योद्धाओंने जोरसे गर्जना की ॥१५॥ पर बलको आया सुन, राजा महेन्द्र सर्व सेनाके साथ बाहर निकला और जिस प्रकार पर्वत, मेघसमूहको रोकता है उसी प्रकार उसने हनूमान्के दलको रोका ॥१६॥ तदनन्तर लगी हुई चोटोंसे अपनी सेनाको नष्ट होती देख, छत्रधारी, तथा रथ पर बैठा हुआ राजा महेन्द्रका पुत्र धनुष तानकर सामने आया ॥१७॥ सो हनूमान् तीन बाण छोड़ कर उसके लम्बे धनुषको उस तरह छेद डाला जिस तरह कि मुनि तीन गुप्तियोंके द्वारा उठते हुए मानको छेद डालते हैं ॥१८॥ वह व्याकुल चित्त होकर जब तक दूसरा धनुष लेता है तब तक हनूमान्ने तीक्ष्ण बाण चलाकर उसके चञ्चल घोड़े रथसे छुड़ा दिये ॥१९॥ सो रथसे छूटे हुए वे चञ्चल घोड़े शीघ्र ही इधर-उधर इस प्रकार धूमने लगे जिस प्रकार कि विषयाभिलाषी मनुष्यको मनसे छूटी हुई इन्द्रियाँ इधर-उधर धूमने लगती हैं ॥२०॥ अध्यानन्तर महेन्द्रका पुत्र घबड़ा कर उत्तम विमान पर आरूढ हुआ सो हनूमान्के वाणोंसे वह विमान भी उस तरह खण्डित हो गया जिस तरह कि किसी दुर्वुद्धिका मत्त खण्डित हो जाता है ॥२१॥ तदनन्तर विद्याके बलसे विकारको प्राप्त हुआ महेन्द्रपुत्र पुनः हर्षित हो अलातचक्रके समान देदीप्यमान बाण चक्र तथा कनक नामक शस्त्रोंसे युद्ध करने लगा ॥२२॥ तब हनूमान्ने भी विद्याके द्वारा उस शस्त्र समूहको उस तरह रोका जिस तरह कि योगी आत्मध्यानके द्वारा परीषहोंके समूहको रोकता है ॥२३॥ तदनन्तर जो निर्दयताके साथ शस्त्र छोड़ रहा था और प्रचण्ड अग्निके समान सब ओरसे आच्छादित कर रहा था ऐसे महेन्द्र पुत्रको हनूमान्ने उस तरह पकड़ लिया जिस तरह कि गरुड़ सर्पको पकड़ लेता है ॥२४॥ पुत्रको पकड़ा देख क्रोधसे लाल होता हुआ महेन्द्र रथ पर सवार हो हनूमान्के सन्मुख उस तरह आया जिस तरह कि सुग्रीवका रूप धारण करनेवाला कृत्रिम सुग्रीव रामके सन्मुख आया था ॥२५॥

तदनन्तर जिसका रथ सूर्यके समान देदीप्यमान था, जो सुन्दर हारका धारक था, धनुर्धारी था, शूरोंमें श्रेष्ठ था तथा अतिशय देदीप्यमान था ऐसा हनूमान् भी माताके पिता राजा

१. जगत्काम ० । २. सग्रहारे ततो लम्बे ज० । ३. मुक्ता निर्विपर्यैपिणः ० । ४. अर्काभः स्थन्दनः ० ।

तयोरभून्महत्संख्यं क्रकवासिशिलीमुखैः । परस्परकृताघातं वायुवप्रयाद्वयोरिव^१ ॥२७॥
 सिंहाविव महारोपी^२ तावुद्धृतवलान्वितौ । ज्वलत्स्फुल्लिङ्गरकाक्षौ श्वसन्तौ भुजगाविव ॥२८॥
 परस्परकृताक्षेपी गर्वाहासस्फुटस्वनी । धिक् ते शौर्यमहोयुद्धमित्याश्रिवचनोद्यतौ ॥२९॥
 चक्रतुः परम युद्धं मायाबलसमन्वितौ । हाकारजयकारादि कारयन्तौ सुहृन्निजैः ॥३०॥
 महेन्द्रोऽथ महावीर्यो विक्रियाशक्तिसङ्गतः । क्रोधस्फुरितदेहश्रीर्मुमोचायुधसंहतिम् ॥३१॥
 सुपुण्ड्रीः परशुन् वाणान् शतघ्नीमुद्गरान् गदाः । शिखराणि^३ च शैलानां शालन्यप्रोघपादपान् ॥३२॥
 एतैरन्यैश्च त्रिविधैरायुधैर्मरुत्सुतः । न विन्यथे यथा शैलो महामेघकदम्बकैः ॥३३॥
 तद्विष्यमायया स्पृष्टं शस्त्रवर्षं महेन्द्रजम् । उल्काविद्याप्रभावेग वायुसूनुर्चूर्णयत् ॥३४॥
 उत्पत्य च रथे तस्य निपत्य सुमहाजवः । ककुप्करिकराकारकराम्बां कृतरोधनम् ॥३५॥
 मातामहं समादाय बलं विभ्रदनुत्तमम् । दत्तसाधु^४स्त्वनः शूरैः समारोहञ्जितं रथम् ॥३६॥
 उल्कालाङ्गुलपाणिं तं दौहित्रं परमोदयम् । प्रशंसितुं समारब्धो महेन्द्रः सौम्यथा गिरा ॥३७॥
 अहो ते वत्स माहात्म्यं परमेतन्मया श्रुतम् । पूर्वमासीद्विद्वानां तु नियतं प्रत्यङ्गोचरम् ॥३८॥
 आसीदेवेन्द्रयुद्धेऽपि निजितो यो न केनचित् । विजयार्धनगस्योर्दमहाविद्यायुधाकुले ॥३९॥

महेन्द्रके सम्युख गया ॥२६॥ तदनन्तर वायुके वशीभूत दो मेघोमे जिस प्रकार परस्पर टक्कर होती है उसी प्रकार उन दोनोंमें करोत, खड्ग तथा वाणोंके द्वारा परस्पर एक दूसरेका घात करनेवाला महायुद्ध हुआ ॥२७॥ जो सिंहाँके समान महाक्रोधी तथा उल्कट बलसे सहित थे, जिनके नेत्र देदीप्यमान तिलगोके समान लाल थे, जो सर्पोंके समान साँसे भर रहे थे—फुँकार रहे थे, जो एक दूसरेपर आक्षेप कर रहे थे, जिनके अहङ्कारपूर्ण हास्यका स्फुट शब्द हो रहा था, 'तेरी शूर-वीरताको धिक्कार है, अहो! युद्ध करने चला है' जो इस प्रकारके शब्द कह रहे थे, जो मायाबलसे सहित थे और जो अपने पक्षके लोगोंसे कभी हा-हाकार कराते थे तो कभी जय-जयकार कराते थे ऐसे हनूमान् तथा राजा महेन्द्र दोनों ही चिरकाल तक परमयुद्ध करते रहे ॥२८-३०॥ तदनन्तर जो महाबलवान् था, विक्रिया शक्तिसे संगत था और क्रोधसे जिसके शरीरकी शोभा देदीप्यमान हो रही थी ऐसा महेन्द्र हनूमानके ऊपर शस्त्रोंका समूह छोड़ने लगा ॥३१॥ सुपुण्ड्री, परशु, वाण, शतघ्नी, मुद्गर, गदा, पहाड़ोंके शिखर और सागौन तथा चटके वृक्ष उसने हनूमान्पर छोड़े ॥३२॥ सो इनसे तथा नाना प्रकारके अन्य शस्त्रोंके समूहसे हनूमान् उस तरह विचलित नहीं हुआ जिस प्रकार कि महामेघोंके समूहसे पर्वत विचलित नहीं होता है ॥३३॥ राजा महेन्द्रकी दिव्यमायासे उत्पन्न शस्त्रोंको उस वर्षाको पवन-पुत्र हनूमान्ने अपनी उल्का-विद्याके प्रभावसे चूर-चूर कर डाला ॥३४॥ और उसी समय वेगसे भरे, दिग्गजोंके शुण्डादण्डके समान विशाल हाथोंसे युक्त तथा उत्तम बलको धारण करनेवाले हनूमान्ने मातामह महेन्द्रके रथपर उछलकर उसे रोकनेपर भी पकड़ लिया । शूर वीरोने उसे साधुवाद दिया और वह पकड़े हुआ मातामहको लेकर अपने रथपर आरूढ हो गया ॥३५-३६॥ वहाँ जिसकी विक्रियाकृत लाङ्गल और हाथोंसे उल्काएँ निकल रही थीं तथा जो परम अभ्युदयको धारण करनेवाला था ऐसे दौहित्र-हनूमान्की वह महेन्द्र सौम्य वाणी द्वारा स्तुति करने लगा ॥३७॥ कि अहो वत्स ! तेरा यह उत्तम माहात्म्य यद्यपि मैंने पहलेसे सुन रक्खा था पर आज प्रत्यक्ष ही देख लिया ॥३८॥ विजयार्ध पर्वतके ऊपर महाविद्याओं तथा शस्त्रोंसे आकुल इन्द्र

१. वायुवशंगतमेवयोरिव । २. मुद्धृतवलान्वितौ म० । ३. शिखरिणि च म० । ४. साधुः त्वनः म० ।

असौ प्रसन्नकीर्तिर्मे पुत्रो माहात्म्यसङ्गतः । स्वया पराजितः प्राप्सो रोधुं चित्रमिदं परम् ॥४०॥
 अहो पराक्रमो भद्र तव धैर्यमहो परम् । अहो रूपमनौपम्यमहो संग्रामशौण्डित्य ॥४१॥
 प्रजातन स्वया वत्स महानिश्चययोगिना । कुलमुद्योतितं सर्वमस्मदीयं सुकर्मणा ॥४२॥
 विनयावैपुणैर्युक्तो राशिः परमतेजसः । कल्याणमूर्तिरत्यर्थं कल्पवृक्षस्त्वमुद्गतः ॥४३॥
 जगतो गुरुभूतस्त्वं बान्धवानां समाश्रयः । दुःखादित्यप्रतप्तानां समस्तानां घनावचनः ॥४४॥
 इति प्रशस्य तं स्नेहाद्बुद्धज्ञातृश्वलङ्करः । अजिघ्रन्मस्तके नम्रं पुलकी परिपस्वजे ॥४५॥
 प्रणम्य वायुपुत्रोऽपि तमार्यं विहितोऽङ्गलिः । अतिचिद्विनीतात्मा क्षणाद्यातोऽन्यतामिव ॥४६॥
 मया शिशुत्तया किञ्चिदार्यं यत्ते विचेष्टितम् । दोषमेवं समस्तं मे प्रतीच्य च्छन्दुमर्हसि ॥४७॥
 समस्तं च समाख्यातं तेनागमनकारणम् । पञ्चागमादिकं यावदात्मागमनमादृतम् ॥४८॥
 अहमार्यं गमिष्यामि त्रिकूटमतिकारणम् । त्वं किष्किन्धपुरं गच्छ कार्यं दाशरथेः कुरु ॥४९॥
 इत्युक्त्वा वायुसम्भूतः खमुत्पत्य ययौ सुखम् । त्रिकूटाभिमुखः क्षिप्रं सुरलोकनिवासरः ॥५०॥
 गत्वा महेन्द्रकेतुश्च तनयां नयकोविदः । प्रसन्नकीर्तिना सार्द्धं घत्सलः समपूजयत् ॥५१॥
 मातापितृसमायोगं सोदरस्य च दर्शनम् । अङ्गनासुन्दरी प्राप्य जगाम परमां धृतिम् ॥५२॥
 महेन्द्रं निवृत्तं श्रुत्वा किष्किन्धाभिमुखोऽगामन् । विराधितप्रवृत्तयस्तोपमाययुस्त्वमम् ॥५३॥

विद्याधरके युद्धमें भी जो किसोके द्वारा पराजित नहीं हुआ था तथा जो माहात्म्यसे युक्त था ऐसा मेरा पुत्र प्रसन्नकीर्ति तुमसे पराजित हो बन्धनको प्राप्त हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है ॥३६-४०॥ अहो भद्र ! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है, तुम्हारा धैर्य परम आश्चर्यकारी है, अहो तुम्हारा रूप अनुपम है और युद्धको सामर्थ्य भी आश्चर्यकारी है ॥४१॥ हे वत्स ! निश्चयको धारण करनेवाले तुमने हमारे पुण्योदयसे जन्म लेकर हमारा समस्त कुल प्रकाशमान किया है ॥४२॥ तू विनयादि गुणोसे युक्त है, परम तेजकी राशि है, कल्याणको मूर्ति है तथा कल्पवृक्षके समान उदयको प्राप्त हुआ है ॥४३॥ तू जगत्का गुरु है, बान्धवजनोंका आधार है और दुःखरूपी सूर्यसे सन्तप्त समस्त मनुष्योंके लिए मेघस्वरूप है ॥४४॥ इस प्रकार प्रशंसा कर स्नेहके कारण जिसके नेत्रोंसे अश्रु छलक रहे थे तथा जिसके हाथ हिल रहे थे, ऐसे मातामह महेन्द्रने उसका मस्तक सूँघा और रोमाञ्चित हो उसका आलिङ्गन किया ॥४५॥ वायुपुत्र—हनूमानने भी हाथ जोड़कर उन आर्य-मातामहको प्रणाम किया तथा क्षमाके प्रभावसे विनीतात्मा होकर वह क्षणभरमे ऐसा ही गया मानो अन्य रूपताको ही प्राप्त हुआ हो ॥४६॥ उसने कहा कि हे आर्य ! मैंने लड़कपनके कारण आपके प्रति जो कुछ चेष्टा की है सो हे पूज्य ! मेरे इस समस्त अपराधको आप क्षमा करनेके योग्य है ॥४७॥ उसने रामचन्द्रके आगमनको आदि लेकर अपने आगमन तकका समस्त वृत्तान्त बड़े आदरके साथ प्रकट किया ॥४८॥ उसने यह भी कहा कि हे आर्य ! मैं अत्यावश्यक कारणसे त्रिकूटाचलको जाता हूँ तब तक तुम किष्किन्धपुर जाओ और श्रीरामका काम करो ॥४९॥ इतना कह हनूमान् आकाशमें उड़कर शीघ्र त्रिकूटाचलकी ओर सुखपूर्वक इस प्रकार गया जिस प्रकार कि देव स्वर्गकी ओर जाता है ॥५०॥ नीति निपुण तथा स्नेहपूर्ण राजा महेन्द्र केतुने अपने प्रियपुत्र प्रसन्नकीर्तिके साथ जाकर पुत्री—अंजनाका सम्मान किया ॥५१॥ अंजना सुन्दरी, माता-पिताके साथ समागम तथा भाईका दर्शन प्राप्तकर परम धैर्यको प्राप्त हुई ॥५२॥ राजा महेन्द्रको आया सुनकर किष्किन्धाका पति सुभीव उसे लेनेके लिए सन्मुख गया तथा विराधित आदि उत्तम सन्तोपको प्राप्त हुआ ॥५३॥

वंशस्थवृत्तम्

पुरा विशिष्टं चरितं कृतात्मनां सुचेतसामुत्तमचारतेजसाम् ।
 सहात्मनामुन्नतगर्वशालिनो भवन्ति वरयाः पुरुषा बलान्विताः ॥५३॥
 ततः समन्ताद्भुपाह्य मानसं जना यत्तद्ध्वं सततं सुकर्मणि ।
 फलं यदीयं समवाप्य पुष्कलं रवेः समानामुपयाय दीप्तताम् ॥५४॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यश्रीकृष्णे पद्मपुराणे महेन्द्रद्वहितासमागमामिधानं
 नाम पञ्चाशत्तमं पर्व ॥५०॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि कृतकृत्य, सुचेता, तथा उत्तम सुन्दर तेजको धारण करनेवाले पुण्यात्मा और जीवोंका पूर्व चरित ही ऐसा विशिष्ट होता है कि उन्नत गर्वसे सुशोभित बलशाली मनुष्य उनके आधीन—आज्ञाकारी होते हैं ॥५३॥ इसलिए हे भव्यजनो ! सब ओरसे मनकी रक्षाकर सदा उस शुभ कार्यमें यत्न करो कि जिसका पुष्कल फल पाकर सूर्यके समान दीप्तताको प्राप्त होओ ॥५४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे असिद्ध रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें महेन्द्रका पुत्रीके साथ समागमका वर्णन करनेवाला पचासवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५०॥

एकपञ्चाशत्तमं पर्व

श्रीशैलस्य विषयलुचैर्विमानस्थस्य गच्छतः । वभूव सुगुणैर्युक्तो द्वीपो दधिमुखोऽन्तरे ॥१॥
यस्मिन् दधिमुखं नाम प्रासादद्वैविध्याण्डुरैः । पुरं परममायामि चारुकाञ्चनतोरणम् ॥२॥
नवनेत्रप्रतीकाशैरुद्यानैः कुसुमोज्ज्वलैः । प्रदेशा यस्य शोभन्ते सनत्तन्नाम्बरोपमा ॥३॥
स्फटिकस्वच्छकलिला वाप्य. सोपानशोभिताः । पद्मोःपलादिभिरङ्गना यत्र भान्ति कचिद् कचिच्च ॥४॥
तस्मिन् विप्रकृष्टे तु देशे नगरगोचरात् । बृहत्पणलतावल्लीद्रुमकण्टकसङ्घटे ॥५॥
शुष्कागकृतसंरोधे रौद्रश्यापदनादिते । धोरेऽतिपरुषाकारे प्रचण्डानिलचञ्चले ॥६॥
पतितोदारवृक्षौघे महाभयसमावहे । विशुद्धचारसरसि कङ्कमृद्धादिसेविते ॥७॥
दुर्बने विजने राजन् साधुयुग्म नभश्चरम् । अष्टाह लम्बितभुज योगमुग्रमुपाश्रितम् ॥८॥
तस्य क्रोशचतुर्भागमात्रदेशे व्यवस्थिताः । मनोज्ञनयनाः कन्याः सितवस्त्रा जटाधराः ॥९॥
तप्यन्ते विधिवद्घोरं तपस्तपः सुचेतसः । शोभालोकत्रयस्यैव नवभूषणतां गताः ॥१०॥
अथासौ साधुयुगलं ग्रथयमानं महान्विना । अञ्जनातनयोऽपरयत् पादपद्मयनिश्चलम् ॥११॥
असमाप्तमताः ताश्च कन्याः लावण्यपूरिताः । उद्गमद्भूमजालेन स्पृष्टा बहलवर्तिना ॥१२॥
अथातस्वीं सनिर्ग्रन्थौ युक्तयोगौ शिवस्पृहौ । त्यक्तारागादिसङ्केच्छौ निरस्तांशुकभूपणौ ॥१३॥

अथानन्तर जब हनुमान् विमानमें बैठकर आकाशमें बहुत ऊँचे जा रहा था तब उत्तम गुणोसे युक्त दधिमुख नामक द्वीप बीचमें पड़ा ॥१॥ उस दधिमुख द्वीपमें एक दधिमुख नामका नगर था जो दहीके समान सफेद महलोंसे सुशोभित तथा लम्बायमान स्वर्णके सुन्दर तोरणोसे युक्त था ॥२॥ नवीन मेघके समान श्याम तथा पुष्पोसे उज्ज्वल उद्यानोसे उसके प्रदेश ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोंसे सहित आकाशके प्रदेश ही हों ॥३॥ उस नगरमें जहाँ-तहाँ स्फटिकके समान स्वच्छ जलसे भरी, सीढ़ियोंसे सुशोभित एवं कमल तथा उत्पल आदिसे आच्छादित वापिकाएँ सुशोभित थीं ॥४॥ नगरसे दूर चलकर एक महाभयङ्कर घन भिला जो बड़े-बड़े वृणों, लताओं, वेलों, वृक्षों और काँटोंसे न्याप्त था ॥५॥ वह घन सूखे वृक्षोंसे घिरा था, भयङ्कर जङ्गली पशुओंके शब्दसे शब्दायमान था, भयङ्कर था, अत्यन्त कठोर था, प्रचण्ड वायुसे चञ्चल था, गिरे हुए बड़े-बड़े वृक्षोंके समूहसे युक्त था, महाभय उत्पन्न करनेवाला था, अत्यन्त खारे जलके सरोवरोंसे सहित था, कङ्क, गृद्ध आदि पक्षियोंसे सेवित था तथा मनुष्योंसे रहित था । गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वनमें दो चारण ऋद्धिवासी मुनि आठ दिनका कठिन योग लेकर विराजमान थे । उनकी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं ॥६-८॥ उन मुनियोंसे पात्रकौश दूरी पर तीन कन्याएँ, जिनके नेत्र अत्यन्त मनोहर थे, जो शुक्लवस्त्रसे सहित थीं, जटाएँ धारण कर रही थीं, शुद्ध हृदयसे युक्त थीं, तीन लोककी मानो शोभा थीं । और नूतन आम्रपुष्प स्वरूप थीं, विधिपूर्वक घोर तप कर रही थीं ॥९-१०॥

तदनन्तर हनुमान्ने देखा कि दोनों मुनि महाभगिनिसे ग्रस्त हो रहे हैं और वृक्ष युगलके समान निश्चल खड़े हैं ॥११॥ जिनका व्रत समाप्त नहीं हुआ था तथा जो लावण्यसे युक्त थीं ऐसी वे तीनो कन्याएँ भी निकलते हुए अत्यधिक धूमसे स्पृष्ट हो रही थीं ॥१२॥ उन्हें देख

१. -मायाति म० । २. विप्रकृष्टेन म० । ३. धोरे पतिवषाकारे म० । ४. दुर्बने म० । ५. राजत् म० । ६. गतः म० । ७. उद्गमद्भूम- म० ।

प्रलम्बितमहाबाहू प्रशान्तवदनाकृती । युगान्तापितसद्दृष्टी प्रतिमास्थानमाश्रितौ ॥१४॥
 मृत्युजीवननिःकांक्षावनघी शान्तमानसौ । समप्रियाप्रियासङ्घौ समपापाणकाञ्चनौ ॥१५॥
 दावेन महता राजन् तेनात्यासन्नवर्तिना । अभिभूतौ समालोक्य वात्सल्यं कर्तुं सुद्यतः ॥१६॥
 आकृत्य सागरजलं मेघहस्तः ससम्भ्रमः । अवर्षदुन्नतो ध्योमिन् परम भक्तिसङ्गतः ॥१७॥
 सुभृशं तेन वल्लिः स चारिपूरेण नाशितः । महाक्रोध इवोद्भूतः क्षान्तिभविन साधुना ॥१८॥
 यावच्च कुरुते पूजां भक्त्या पवननन्दनः । तयोर्भेदन्तयोर्नानापुष्पादिद्रव्यसम्पदा ॥१९॥
 तावत्ताः सिद्धसंसाध्या मेरुं कृत्वा प्रदक्षिणम् । तत्सकाशमनुप्राप्ताः कुमार्यः सुमनोहराः ॥२०॥
 प्रणेशुश्च समं तेन साधू ध्यानपरायणौ । विनयान्वितया बुद्धया प्रशशसुश्च मारुतिम् ॥२१॥
 अहो जिनेश्वरे भक्तिव्रजता कापि यद्भुतम् । त्वया तात परित्राता वयं साधुसमाश्रयात् ॥२२॥
 अस्मद्द्वारसमायातो महानयमुपप्लवः । स्तोकेनाप्तो न योगिभ्यामहो नो भवितव्यता ॥२३॥
 अथाङ्गनात्मजोऽपृच्छदेवं संशुद्धमानसः । भवन्त्य इह निःशून्ये का वनेऽत्यन्तमीपणे ॥२४॥
 अवोचज्जयायसी तासां पुरे दधिसुखाङ्गये । अत्र गन्धर्वराजस्य वयं तिलोऽमरासुताः ॥२५॥
 प्रथमा चन्द्रलेखालया ज्ञेया विद्युत्प्रभा ततः । अन्या तरङ्गमालेति सर्वगोत्रस्य वल्लभाः ॥२६॥

हनुमानके हृदयमें उन सबके प्रति बड़ी आस्था उत्पन्न हुई । तदनन्तर जो योग अर्थात् ध्यानसे युक्त थे, मोक्ष की इच्छासे सहित थे, जिन्होंने रागादि परिग्रहकी इच्छा छोड़ दी थी, वस्त्र तथा आभूषण दूर कर दिये थे, भुजाएँ नीचेकी ओर लटका रखी थीं, जिनके मुखकी आकृति अत्यन्त शान्त थी, युगप्रमाण दूरी पर जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जो प्रतिमा योगसे विराजमान थे, जीवन और मरणकी आकांक्षासे रहित थे, निष्पाप थे, शान्तचित्त थे, इष्ट अनिष्ट समागममें मध्यस्थ थे, तथा पाषाण और काञ्चनमें जो समभाव रखते थे ऐसे उन दोनों मुनियोंको अत्यन्त निकटवर्ती बड़ी भारी दावानलसे आक्रान्त देख, हे राजन् ! हनूमान् वात्सल्यभाव प्रकट करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१३-१६॥ भक्तिये भरे हनूमान्ने शीघ्रतासे समुद्रका जल खींच, मेघ हाथमें धारण किया और आकाशमें ऊँचे जाकर अत्यधिक वर्षा की ॥१७॥ उस वरसे हुए जलप्रवाहसे वह दावाग्नि उस प्रकार शान्त हो गई जिस प्रकार कि उत्पन्न हुआ महाक्रोध, मुनिके क्षमाभावसे शान्त हो जाता है ॥१८॥ भक्तिये भरा हनूमान् जवतक नामा प्रकारकी पुष्पादि सामग्रीसे उन दोनों मुनियोंकी पूजा करता है, तब तक जिनके मनोरथ सिद्ध हो गये थे ऐसी वे तीनों मनोहर कन्याएँ मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देकर उसके पास आ गईं ॥१९-२०॥ उन्होंने ध्यानमें तत्पर दोनों मुनियोंको हनूमान्के साथ-साथ विनयपूर्वक नमस्कार किया तथा हनूमान्की इस प्रकार प्रशंसा की कि अहो ! तुम्हारी जिनेन्द्रदेवमें बड़ी भक्ति है जो शीघ्रतासे कहीं अन्यत्र जाते हुए तुमने मुनियोंके आश्रयसे हम सबकी रक्षा की ॥२१-२२॥ हमारे निमित्तसे यह महा उपद्रव उत्पन्न हुआ था सो मुनियोंको रक्षमात्र भी प्राप्त नहीं हो पाया । अहो ! हमारी भवितव्यता धन्य है ॥२३॥

अथानन्तर पवित्र हृदयके धारक हनूमान्ने उनसे इस प्रकार पूछा कि इस अत्यन्त भयङ्कर निर्जन वनमें आपलोग कौन है ? ॥२४॥ तदनन्तर उन कन्याओंमें जो ज्येष्ठ कन्या थी वह कहने लगी कि हम तीनों दधिसुख नगरके राजा गन्धर्वकी अमरानामक रानीकी पुत्रियाँ हैं ॥२५॥ इनमें प्रथम कन्या चन्द्रलेखा, दूसरी विद्युत्प्रभा और तीसरी तरङ्गमाला है । हम सभी

यावन्तो भुवने केचिद्विजयाद्वादिस्मभवाः । विद्याधरकुमारान्द्राः कुलपुष्करभास्कराः ॥२७॥
 तेऽस्मद्गर्भे शिवं कापि न विन्दन्तेऽर्थिनो भृशम् । दुष्टस्त्वङ्गारको नाम तापं धत्ते विरोधतः ॥२८॥
 अन्यदापरिवृष्टश्च तातेनाष्टाङ्गविन्मुनिः । स्थानेषु भगवन् केषु भव्या दुहितरो मम ॥२९॥
 सोऽजोचत् साहसगतिं यो हनिष्यति संयुगे । आसां कतिपयाहोभी रमणोऽसौ भविष्यति ॥३०॥
 निशम्यामोषवाक्यस्य मुनेस्त्वद्वचनं ततः । अचिन्तयत् पिताऽस्माकं विधाय स्मेरमाननम् ॥३१॥
 कस्त्वसौ भविता लोके नरो वज्रायुधोपमः । विजयाधोत्तरश्रेणीश्रेष्ठं यो हन्ति साहसम् ॥३२॥
 अधवा न मुनेर्वाक्यं कदाचिज्ज्ञायतेऽनृतम् । इति विस्मयमाविष्टः पिता माता जनस्तथा ॥३३॥
 चिरं प्रार्थयमानोऽपि यदासौ लब्धवाञ्छनः । तदास्मद्दुःखचिन्तास्थः सञ्जातोऽङ्गारकेतुकः ॥३४॥
 ततः प्रभृति चारुमाकमयमेव मनोरथः । द्रव्यामस्तं कदा वीरमिति साहसपुद्गलम् ॥३५॥
 एतच्च वनमायाता दारुणद्रुमसङ्घटम् । मनोऽनुगामिनीं नाम विद्यां साधयितुं पराम् ॥३६॥
 दिवसो द्वादशोऽस्माकं वसन्तीनामिहान्तरे । प्राप्तस्य साधुयुग्मस्य वर्तते दिवसोऽष्टमः ॥३७॥
 अङ्गारकेतुना तेन वीक्षिताश्च दुरात्मना । ततस्तेनानुवन्धेन क्रोधेन पूरितोऽभवत् ॥३८॥
 ततोऽस्माकं वर्षं कर्तुमेता दश दिशः ज्जणात् । धूमाङ्गारकवर्षेण वह्निना पिञ्जरीकृताः ॥३९॥
 पदभिः संवत्सैः साप्रैर्यदुःसाध्यं प्रसाध्यते । दत्त्वाङ्गमुपसर्गस्य तदद्यैव हि साधितम् ॥४०॥
 इहापि महाभाग नामविष्यद् भवान् यदि । अथक्याम हि योगिभ्यां सहारण्ये ततो भ्रुवम् ॥४१॥

अपने समस्त कुलके लिए अत्यन्त प्यारी है ॥२६॥ इस संसारमें अपने कुलरूपी कमलोंको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान, विजयार्थ आदि स्थानोंमें उत्पन्न हुए जितने कुल विद्याधर कुमार हैं वे सब हम लोगोंके अत्यन्त इच्छुक हो कहीं भी सुख नहीं पा रहे हैं । उन कुमारोंमें अङ्गारक नामक दुष्ट कुमार विशेष रूपसे सन्तापको धारण कर रहा है ॥२७-२८॥ किसी एक दिन हमारे पिताने अष्टाङ्ग निमित्तके ज्ञाता मुनिराज से पूछा कि हे भगवन् ! मेरी पुत्रियों किन स्थानोंमें जावेंगी ॥२९॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि जो युद्धमें साहसगतिको मारेगा वह कुल ही दिनोंमें इनका भर्ता होगा ॥३०॥ तदनन्तर अमोघ वचनके धारक मुनिराजका वह वचन सुन हमारे पिता मुखको मन्द हास्यसे युक्त करते हुए विचार करने लगे कि ॥३१॥ संसार में इन्द्रके समान ऐसा कौन पुरुष होगा जो विजयार्थ पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें श्रेष्ठ साहसगतिको मार सकेगा ॥३२॥ अथवा मुनिके वचन कभी मिथ्या नहीं होते यह विचार कर माता - पिता आदि आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥३३॥ चिरकाल तक याचना करने पर भी जब अंगारक हम लोगोंको नहीं पा सका तब वह हम लोगोंको दुःख देनेवाले कारणोंकी चिन्तामें निमग्न हो गया ॥३४॥ उस समयसे लेकर हम लोगका यही एक मनोरथ रहता है कि हम साहसगतिको नष्ट करनेवाले उस वीरको कब देखेंगे ॥३५॥ हम तीनों कन्याएँ मनोनुगामिनी नामक उत्तम विद्या सिद्ध करनेके लिए कठोर वृत्तोंसे युक्त इस वनमें आई थीं ॥३६॥ यहाँ रहते हुए हम लोगोंका यह बारहवाँ दिन है और इन दोनों मुनियोंको आये हुए आज आठवाँ दिवस है ॥३७॥ तदनन्तर उस दुष्ट अंगारकेतुने हम लोगोंको यहाँ देखा और एक पूर्वाक संस्कारके कारण वह क्रोधसे परिपूर्ण हो गया ॥३८॥ तत्पश्चात् हम लोगोंका वध करनेके लिए उसने उसी क्षण दशों दिशाओंको धूम तथा अंगारकी वर्षा करनेवाली अग्निसे पिञ्जर वर्ण—पीत वर्ण कर दिया ॥३९॥ जो विद्या छः वर्षसे भी अधिक समयमें बड़ी कठिनाईसे सिद्ध होती है वह विद्या उपसर्गका निमित्त पाकर आज ही सिद्ध हो गई ॥४०॥ हे महाभाग ! यदि इस आपत्तिके समय आप यहाँ नहीं होते तो निश्चित ही हम सब दोनों मुनियोंके साथ-साथ वनमें जल जातीं ॥४१॥

साधु साध्विति संस्मित्य ततो मारुतिरब्रवीत् । भवतीनां श्रमः श्लाघ्यः फलयुक्तश्च निश्चयः ॥१२॥
 अहो वो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथः । अहो भव्यत्वमुत्तुङ्गं येन विद्या प्रसाधिता ॥१३॥
 आल्यातं च क्रमात् सर्वं यथावृत्तं सविस्तरम् । पद्मागमादिकं यावदास्मागमनकारणम् ॥१४॥
 तत्पश्च श्रुतवृत्तान्तो गन्धर्वोऽमरया सह । समागतो महातेजास्तमुद्देशं सहानुगः ॥१५॥
 नभश्चरसमायोगे देवागमनसंनिभे । ज्ञेनेन तद्द्वनं जातं सर्वं नन्दनसुन्दरम् ॥१६॥
 किष्किन्धं च पुरं गत्वा भूत्या दुहितृभिः समम् । शासने पद्मनाभस्य गन्धर्वो रतिमाश्रयत् ॥१७॥
 ताश्च निस्सामसौभाग्या विभूत्या परयान्विताः । उपनिन्ये पराः कन्या रामायाः किल्टकर्मणे ॥१८॥
 पृताभिरपरामिश्च सेव्यमानो विभूतिभिः । अपश्यन् जानकों पशो मेने शून्या दृशो दृश ॥१९॥

अतिरुचिरावृत्तम्

गुणान्वितैर्भवति जनैरलङ्कृता समस्तभूः शुभललितैः सुसुन्दरैः ।
 विना जनं मनसि कृतास्पदं सदा ब्रजत्यस्तौ गहनवनेन वृक्षयताम् ॥५०॥
 पुराकृतादृतिनिचितात् समुक्कटाजनः परां रतिमनुयाति कर्मणः ।
 ततो जगत्सकलमिदं स्वगोचरे प्रवर्तते विधिरविणा प्रकाशते ॥५१॥

इत्यार्षे रत्नपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मस्य गन्धर्वकन्यालामाभियानं नाम एकपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५१॥

तदनन्तर हनुमान्ने 'ठीक है' 'ठीक है' इस तरह मन्दहास पूर्वक कहा कि आप लोगोंका श्रम प्रशंसनीय है तथा निश्चित ही फलसे युक्त है ॥१२॥ अहो ! तुम सबकी बुद्धि निर्मल है । अहो ! तुम सबका मनोरथ योग्य स्थानमें लगा । अहो ! तुम्हारी उत्तम होनहार थी जिससे यह विद्या सिद्ध की ॥१३॥ तत्पश्चात् हनुमान्ने रामके आगमनको आदि लेकर अपने वहाँ आने तक का समस्त वृत्तान्त अर्थात् ल्यों विस्तारके साथ क्रमपूर्वक कहा ॥१४॥ तदनन्तर समाचार सुन कर महा तेजस्वी गन्धर्व राजा अपनी अमरा नामकी रानी और अनुचरोंके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥१५॥ इस प्रकार ज्ञेन भरमें वह समस्त वन देवागमनके समान विद्याधरोंका समागम होनेसे नन्दन वनके समान हो गया ॥१६॥ तदनन्तर राजा गन्धर्व पुत्रियोंको साथ ले वड़े वैभवसे किष्किन्धपुर गया और वहाँ रामकी आज्ञामें रह कर प्रीतिको प्राप्त हुआ ॥१७॥ उसने असीम सौभाग्यकी धारक तथा परम विभूतिसे युक्त तीनों उत्कृष्ट कन्याएँ शान्त चेष्टाके धारक रामके लिये समर्पित की ॥१८॥ सो राम इन कन्याओंसे तथा अन्य विभूतियोंसे यद्यपि सेव्यमान रहते थे तथापि सीताको न देखते हुए वे दृशो दिशाओंको शून्य मानते ॥१९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि समस्त भूमि गुणोंसे सहित, शुभ चेष्टाओंके धारक तथा अतिशय सुन्दर मनुष्योंसे अलङ्कृत रहे तो भी मनमें वास करनेवाले मनुष्यके विना वह भूमि गहन वन की तुल्यता धारण करती है ॥२०॥ पूर्वोपाजित तथा तीव्र रूपसे वन्धको प्राप्त हुए उत्कट कर्मसे यह जीव परम रतिको प्राप्त होता है और उस रतिके कारण यह समस्त संसार अपने अर्धांग रहता है तथा कर्म रूपी सूर्यसे प्रकाशमान होता है ॥५१॥

इस प्रकार आर्षे नामसे असिद्ध, रत्नपेणाचार्यकथित पद्मपुराणमें रामको गन्धर्व कन्याओंकी आसिका वर्णन करनेवाला इक्कावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५१॥

१. 'भवतीनां श्रमः' इत्यारभ्य 'अहो वो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथः' इत्यन्तः पाठः २० युक्तके नास्ति । २. जनैः मः ।

द्विपञ्चाशत्तमं पर्व

असी पवनपुत्रोऽपि प्रतापाढ्यो महाबलः । त्रिकूटाभिमुखोऽयासीत् सोमवन्मन्दरं प्रति ॥१॥
 अथास्य व्रजतो ज्योतिर्न सुमहाकासुंकाकृतिम् । वक्रमेध्याप्रतीकाशं जातं सैन्यं निरोधवत् ॥२॥
 उवाच च गतिः केन मम सैन्यस्य विन्निताम् । अहो विज्ञायता चिभ्रं कस्येदमनुवेष्टितम् ॥३॥
 किं स्यात्सुरनाथोऽयं चमरो गर्वपर्वतः । आखण्डलः शिखण्डी वा नैवामेकोऽपि युज्यते ॥४॥
 प्रतिमा किन्तु जैनेन्द्री शिखरेऽस्य महाभृतः । भवेद् वा भगवान् कश्चिन्मुनिश्चरमविग्रहः ॥५॥
 तस्य तद्गचनं श्रुत्वा वितर्ककृतवर्चनम् । मन्त्री पृथुमतिर्नाम वाक्यमेतदुदाहरत् ॥६॥
 निवर्त्तस्व महाबुद्धे श्रीशैल ननु किं तव । क्रूरयन्त्रयुतो नार्यं मायाशालो मर्ति गतः ॥७॥
 चक्षुस्ततो नियुज्यासावपदयत्पद्मलोचनः । दुःप्रवेशं महाशालं विरक्तस्त्रीमनःसमम् ॥८॥
 अनेकाकारवक्त्राढ्य भीममाशालिकात्मकम् । त्रिदशैरपि दुर्लभं सर्वभयं प्रभासुरम् ॥९॥
 सङ्कोटकटतीक्ष्णाग्रकक्रवावलिबेष्टितम् । रुधिरोद्गारजिह्वाग्रसहस्रज्वलस्रचटम् ॥१०॥
 स्फुरद्भुजङ्गविस्कारिफणाशूकरायन्दिनम् । विषधूमान्धकारान्तज्वलदङ्गारदुःसहम् ॥११॥
 यस्तं संपतितं मूढात्मा शौर्यमानसमुद्धतः । निःक्रामति न भूयोऽसौ सङ्कोटोऽहिमुखादिव ॥१२॥
 लङ्काशालपरिचेष सूर्यमार्गसमुन्नतम् । दुर्लभं दुर्गिरीचयं च सर्वदिक्षु सुयोजितम् ॥१३॥
 युगान्तकालमेधौघनिर्घोषसमपीपणम् । हिस्राग्रन्थमिवात्यन्तपापकर्माविनिर्मितम् ॥१४॥

अथानन्तर प्रतापसे सहित महाबलवान् हनूमान् त्रिकूटाचलके सम्मुख इस प्रकार चला जिस प्रकार कि सुमेरुके सम्मुख सोम चलता है ॥ १ ॥ तदनन्तर आकाशमे चलते हुए हनूमान् की सेना अचानक रुककर किसी बड़े धनुषके समान हो गई और ऐसी जान पड़ने लगी मानो कुटिल मेघोका समूह ही हो ॥ २ ॥ यह देख, हनूमान्ने कहा कि मेरी सेनाकी गति किसने रोकी है ? अहो ! शीघ्र ही मालूम करो कि यह किसकी चेष्टा है ? ॥ ३ ॥ क्या यहाँ असुरोंका इन्द्रचमर है, अथवा इन्द्र है या शिखण्डी है ? अथवा इनमेसे यहाँ एकका भी होना उचित नहीं जान पड़ता ॥ ४ ॥ किन्तु हो सकता है कि इस पर्वतकी शिखर पर जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमा हो, अथवा कोई ऐश्वर्यवान् चरम शरीरी सुनिराज विराजमान हो ॥ ५ ॥ तदनन्तर हनूमान्के वितर्कपूर्ण वचन सुनकर पृथुमनि मन्त्रीने यह वचन कहे कि हे महाबुद्धिमत् श्रीशैल ! तुम शीघ्र ही लौट जाओ, तुम्हें इससे क्या प्रयोजन है ? यह आगे क्रूर यन्त्रोंसे युक्त मायामयी कोट जान पड़ता है ॥ ६-७ ॥ तत्पश्चात् कमललोचन हनूमान्ने स्वयं दृष्टि डालकर उक्त मायामयी महाकोटको देखा । वह कोट विरक्त स्त्रीके मनके समान दुष्प्रवेश था ॥ ८ ॥ अनेक आकारके मुखोंसे सहित था, भयङ्कर पुतलियोंसे युक्त था, सबको भक्षण करनेवाला था, देदीप्यमान था और देवोंके द्वारा भी दुर्गम्य था ॥ ९ ॥ जिनके अग्रभाग संकटसे उक्तत तथा अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसी करौतोंकी श्रेणीसे वह कोट वेष्टित था, तथा उसके तट रुधिरकी उगलनेवाली हजारों जिह्वाओंके अग्रभागसे सुस्रोभित थे ॥ १० ॥ चञ्चल सर्पोंके तने हुए फणाओंकी शूत्कारसे शब्दायमान था तथा जिनसे विषैला धूम रूपी अन्धकार बढ रहा था ऐसे जलते हुए अंगारोंसे ढुसह था ॥ ११ ॥ शूर वीरताके अहंकारसे उद्धत जो मनुष्य उस कोटके पास जाता है वह फिर उस तरह लौटकर नहीं आता जिस प्रकार कि सोंपके मुखसे मेंडक ॥ १२ ॥ यह लंकाके

१. चक्रे, मेध्या प्रतीकाश म० । २. तिरोभवत् म० । ३. खगतिः म० । ४. विन्निता म० ।
 ५. सुमीश्वरमविग्रहः (?) म० । ६. महान् बुद्धे ख० । ७. युतेनार्यं म०, ३० । ८. जिह्वायं म० ।

तं दृष्ट्वा मास्तिर्दध्यावहो नाथेन रक्षसाम् । दाक्षिण्यमुज्जितं पूर्वं मायाप्राकारकारिणा ॥१५॥
 उन्मूल्यस्त्रिदं यन्त्रं विद्याबलसमूजितम् । मानमुन्मूलयाम्यस्य ध्यानी मोहमलं यथा ॥१६॥
 युद्धे च मानसं कृत्वा तत्सैन्यं १६६ महास्वनम् । गगने सागराकारं समयेऽतिष्ठिपत् सुधाः ॥१७॥
 विद्याकत्रचयुक्तं च १६६ कृत्वात्मानं गदाकरः । विवेश सालकावक्त्रं राहुवक्त्रं रविर्यथा ॥१८॥
 ततः कुचिगुहां तस्याः परीतकैकसावृताम् । विद्यानलैरलं तीक्ष्णैः कैसरीयं व्यपाटयत् ॥१९॥
 निर्दयैश्च गदावातैर्घोरघोरैश्चूर्णयत् । घातिकर्मस्थितिं यद्बद्धधानी भावैः सुनिर्मलैः ॥२०॥
 अथाशालिकविद्याया यास्या भेदं भयावहम् । समो नीलाम्बुवाहानामभूच्छटचटाध्वनिः ॥२१॥
 तेन सम्भाष्यमानोऽसौ शालो नष्टोऽतिचञ्चलः । स्तोत्रेणैव जिनेन्द्राणां कल्पः कर्मसञ्चयः ॥२२॥
 ततस्तन्निन्दं श्रुत्वा युगान्तजलदोन्नतम् । दृष्ट्वा विशीर्यमाणं च यन्त्रप्राकारमण्डलम् ॥२३॥
 १६६ राजन् वज्रमुखः क्रुद्धः शालरक्षाधिकारवान् । त्वरितं रथमारुह्य सिंहो दावसिवाभ्यगात् ॥२४॥
 ततोऽभिमुखमेतस्य वीक्ष्य मासूतनन्दनम् । नानायानयुधा योधाः प्रचण्डा योद्बुधुद्यतः ॥२५॥
 बलं वाज्रमुखं दृष्ट्वा प्रबलं योद्बुधुद्यतम् । परम जोभमायातं हनूमत्सैन्यमुत्थितम् ॥२६॥
 किमत्र बहुनोक्तेन प्रवृत्तं तत्तथा रणम् । यथा स्वामिकृते पूर्वं सस्माननविमाने ॥२७॥

कोटका घेरा सूर्यके मार्ग तक ऊँचा है, दुर्लभ्य है, दुर्निरीक्ष्य है, सब दिशाओंमें फैला है, प्रलय कालीन मेघसमूहकी गर्जनाके समान तीक्ष्ण गर्जनासे भयङ्कर है, तथा हिसामय शास्त्रके समान अत्यन्त पापकर्मा जनोंके द्वारा निर्मित है ॥ १४॥ उसे देखकर हनुमान्ने विचार किया कि अहो ! मायामयी कोटका निर्माण करनेवाले रावणने अपनी पहलेकी सरलता छोड़ दी है ॥ १५ ॥ मैं विद्याबलसे बलिष्ठ इस यन्त्रको उखाड़ता हुआ इसके मानको उस तरह उखाड़ दूँगा, जिस तरह कि ध्यानी मनुष्य मोहको उखाड़ देता है ॥ १६ ॥

तदनन्तर बुद्धिमान् हनुमान्ने युद्धमें मन लगाकर अर्थात् युद्धका विचार कर अपनी गरजती हुई समुद्राकार सेनाको तो संकेत देकर आकाशमें खड़ा कर दिया और अपने स्वयं विद्यामय कवच धारणकर तथा गदा हाथमें ले पुतलीके मुखमें उस तरह घुस गया जिस तरह कि राहुके मुखमें सूर्य प्रवेश करता है ॥ १७-१८॥ तत्परचात् चारों ओरसे हड्डियाँसे आवृत उस पुतलीकी उदररूपी गुहाको उसने सिंहकी भोंति विद्यामयी तीक्ष्ण नखोंसे अच्छी तरह चीर डाला ॥ १९ ॥ और भयंकर शब्द करनेवाले गदाके निर्दय प्रहारोंसे उसे उस प्रकार चूर-चूर कर डाला जिस प्रकार कि ध्यानी मनुष्य अपने अतिशय निर्मल भावोंसे घातिया कर्मोंकी स्थितिको चूर-चूर कर डालता है ॥ २० ॥ तदनन्तर भङ्गको प्राप्त होती हुई आशालिक विद्याका नील मेघोंके समान भयंकर चट-चट शब्द हुआ ॥ २१ ॥ उस शब्दसे यह अतिशय चंचल मायामय कोट इस प्रकार नष्ट हो गया जिस प्रकार कि जिनेन्द्र भगवान्की स्तुतिसे पापकर्मोंका समूह नष्ट हो जाता है ॥२२॥ तदनन्तर प्रलयकालके मेघोंके समान उन्नत उस शब्दको सुनकर तथा यन्त्रमय कोटको नष्ट होता देख, कोटकी रक्षाका अधिकारी वज्रमुख नामका राजा कुपित हो शीघ्र ही रथ पर आरूढ़ हो हनुमान्के सन्मुख उस प्रकार आया जिस प्रकार कि सिंह दावानलके सन्मुख जाता है ॥ २३-२४ ॥ तदनन्तर हनुमान्को उसके सन्मुख देख, नाना प्रकारके वाहनों और शस्त्रोंसे सहित प्रचण्ड योधा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥ २५ ॥ इधर वज्रमुखकी प्रबल सेनाको युद्धके लिए उद्यत देख परम क्षोभको प्राप्त हुई हनुमान्की सेना भी युद्धके लिए उठी ॥ २६ ॥ आचार्य कहते हैं कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? उन दोनों सेनाओंमें उस तरह युद्ध हुआ जिस तरह कि पहले स्वामीके द्वारा किये हुए सम्मान और तिरस्कारमें होता है ॥ २७ ॥

१. -मूर्जितं म० । २. -कारिणा म० । ३. मोहमलं म०, ख० । ४. सुमहास्वनं म० । ५. कृत्वा मानं म० । ६. राजा म० । ७. वज्रमुखं म० । ८. सस्मानं म०, व० ।

स्वामिनो दृष्टिमागँस्थाः सुभटाः कृतगर्जिताः । जीवितेष्वपि विस्नेहा बभूवुः किमिहोच्यताम् ॥२८॥
 ततः कपिश्वजैर्नौवाश्विरकृतमहाहवाः । वज्रायुधस्य निर्भङ्गाः क्षणान्प्रुरितस्ततः ॥२९॥
 चक्रेणानिलसुनुश्व तेजोऽहरत् विद्विषाम् । ऋचविन्ममिवाकाशादपातयद्रेः शिरः ॥३०॥
 संख्ये पितृवर्षं दृष्ट्वा तं लङ्कासुन्दरी तदा । नियम्य कृच्छ्रतः शोकममर्षविवदूषिता ॥३१॥
 जवनाश्वरथारूढा कुण्डलोद्योतितानना । शरासनायतोरस्का कुञ्चितभ्रूलतायुगा ॥३२॥
 उत्क्रेव सङ्गतादित्यतेजोमण्डलवारिणी । धूमोद्गारसमायुक्ता घनप्राग्भारवत्तिनी ॥३३॥
 संरम्भवशस्त्रफुल्लोहिताम्भोजलोचना । क्रूरसंघटविन्वोष्ठी क्रुद्धेव श्रीः शचीपतेः ॥३४॥
 अथावदिधुमुद्गुथय कथ्यमाना मनोहरा । मया श्रीशैल दृष्टोऽसि तिष्ठ ते शक्तिरस्ति चेत् ॥३५॥
 अद्य ते रावणः क्रुद्धो नभश्चरमहेश्वरः । करिष्यति यदेतत्ते करोमि हतचेष्टितं ॥३६॥
 १ ह्यं यमालयं पापं भवन्त प्रेपयाम्यहम् । दिग्मूढ इव जातस्त्वमनिष्टस्यानगोचरः ॥३७॥
 तस्यास्त्वरितमायान्स्था यावच्छत्रमपातयत् । वाणेन तावदेतस्य तथा चापं द्विधा कृतम् ॥३८॥
 सा यावदगृहीच्छक्तिं तावन्महाहिता शरीः । नभश्चक्रं समायान्ती मित्रा शक्तिश्च सान्तरैः ॥३९॥
 सा विद्याबलगम्भीरा वज्रदण्डसमान् शरान् । परशुकुन्तचक्राणि शतघ्नीमुशालान् शिलाः ॥४०॥
 बर्षं धायुपुत्रस्य रथे हिमवद्भुक्ते । विकाले वारिणो भेदान् मेघसन्ध्या यथोन्नता ॥४१॥

जो योद्धा स्वामीकी दृष्टिके मार्गमें स्थित थे अर्थात् स्वामी जिनकी ओर दृष्टि उठाकर देखता था वे योद्धा गर्जना करते हुए प्राणोंका भी स्नेह छोड़ देते थे इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय ? ॥ २८ ॥ तदनन्तर जिन्होंने चिरकाल तक बड़े-बड़े युद्ध किये थे ऐसे वज्रायुद्धके योद्धा वानरोके द्वारा क्षणभरमें पराजित होकर इधर-उधर नष्ट हो गये—भाग गये ॥ २९ ॥ और हनुमानने चक्रके द्वारा शत्रुओंका तेज हर लिया तथा नक्षत्र विन्वके समान शत्रुका शिर काटकर आकाशसे नीचे गिरा दिया ॥ ३० ॥ युद्धमें पिताका वध देख वज्रायुधकी पुत्री लंकासुन्दरी कठिनाईसे शोकको रोककर क्रोधरूपी विषसे दूषित हो हनुमानकी ओर दौड़ी । उस समय वह वेगशाली घोड़ोंके रथ पर बैठी थी, कुण्डलोंके प्रकाशसे उसका मुख प्रकाशित हो रहा था, धनुषके समान उसका वक्षस्थल आयत था, उसकी दोनों शृकुटियों टेढ़ी हो रही थीं, वह ऐसी जान पड़ती थी मानो उल्का ही प्रकट हुई हो, वह सूर्यके समान तेजका मण्डल धारण कर रही थी, धूमके उद्गारसे सहित थी, अर्थात् उसके शरीरसे कुछ कुछ धुआँ-सा निकलता दिखता था और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो मेघसमूहके बीचमें विद्यमान थी, क्रोधके कारण उसके नेत्र फूले हुए लाल कमलोंके समान जान पड़ते थे, वह क्रोधसे अपना ओठ चाव रही थी, तथा ऐसी जान पड़ती थी मानो क्रोधसे भरी इन्द्रकी लक्ष्मी ही हो ॥ ३१-३४ ॥ वह देखनेमें सुन्दर थी तथा अपनी प्रशंसा कर रही थी, इस तरह धनुष पर वाण चढ़ाकर वह दौड़ी और बोली कि अरे श्रीशैल ! मैंने तुम्हे देख लिया है, यदि तुम्हमें कुछ शक्ति है तो खड़ा रह ॥ ३५ ॥ आज क्षुपित हुआ विद्याधरोंका राजा रावण तेरा जो कुछ करेगा रे नीच ! वही मैं तेरा करती हूँ ॥ ३६ ॥ यह मैं तुम्ह पापीको यमराजके घर भेजती हूँ, तू दिग्भ्रान्तकी तरह आज इस अनिष्ट स्थानमें आ पड़ा है ॥ ३७ ॥ वेगसे आती हुई लंकासुन्दरीका छत्र जब तक हनुमानने नीचे गिराया तब तक उसने एक बाण छोड़ कर हनुमानके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३८ ॥ लंकासुन्दरी जब तक शक्ति नामक शस्त्र उठाती है तब तक हनुमानने वाणोंसे आकाशको आच्छादित कर दिया और आती हुई उसकी शक्तिको बीचमें ही तोड़ डाला ॥ ३९ ॥ विद्यावलसे गम्भीर लंकासुन्दरीने हनुमानके हिमालयके समान ऊँचे रथपर वज्रदण्डके समान वाण, परशु, कुन्त, चक्र, शतघ्नी, मुसल तथा शिलाएँ उस प्रकार वरसाईं जिस प्रकार कि उत्पातके समय उच्च

१. कच्छमाना म० । २. मनोहरं ल०, ज०, क० । ३. हतचेष्टितः म० । ४. इमं म० । ५. शिलान् म० ।

तथा नानायुधादोपैः सर्ववेगसमीरितैः । आच्छाद्यत महातेजाः शुचिसूर्य इवाम्बुदैः ॥४२॥
 विक्रान्तः स च शङ्खावमनिर्विण्णोऽन्तरस्थितम् । व्यपोहत निवैः शक्तेः मायात्रिधिविशारदः ॥४३॥
 शराः शरैरुत्प्लवन्त तोमराद्याः स्वजातिभिः । शक्तयः शक्तिभिर्बुद्धा समोक्ता दूरसुघनुः ॥४४॥
 चक्रक्रकचसंबर्तकनकाटोपपिञ्जरम् । बभूव भीषणं व्योम विद्युद्दिशिव सङ्कुलम् ॥४५॥
 तं लङ्कासुन्दरी भूयो रूपेगालव्यसन्निभा । धीरा स्वभावतो राजन् लक्ष्मीः कमललोचना ॥४६॥
 ज्ञानध्यानहरैः कान्तैर्दुर्दुर्गैर्गुणसन्नतैः । लावण्याहतसौन्दर्यैर्मनोऽन्तर्भेदकोविदैः ॥४७॥
 नेत्रचापविनिर्मुक्तैर्विन्ध्यधे स्मरसायकैः । तथेतरधनुर्मुक्तैः शरैराकर्णसंहतैः ॥४८॥
 विदमये जगतः शक्ता सीमान्यगुणगर्विता । तस्यालसक्रियस्यैवं प्रविष्टा हृद्रयोदरम् ॥४९॥
 शरशक्तिशतध्वनीभिर्न तथा समपीड्यत । यथा मदनवाणोधिर्ममद्वारणकारिभिः ॥५०॥
 इयं मनोहराकारा ललितैर्विशिखैरपि । सवाह्याभ्यन्तरं हृत्ति मामित्येवमचिन्तयत् ॥५१॥
 वरमस्मिन् दृष्टे मृत्युः पूर्वाभ्यन्तस्य सायकैः । अनया विप्रयुक्तस्य आवितं न सुरालये ॥५२॥
 चिन्तयत्येवमेतस्मिन् साप्यनङ्गेन चोदिता । त्रिकूटसुन्दरी कन्या कल्पासकमानसा ॥५३॥
 विकस्वरमनोदेहं तं पद्मच्छद्रलोचनम् । भवालेन्दुसुप्तं बाल किरीटन्यस्तवानरम् ॥५४॥
 मूर्त्तियुक्तमिवाहं सुन्दरं बाधुनन्दनम् । हन्तुं ससुघतां शक्तिं सज्जहार त्वरावती ॥५५॥

मेधावली नाना प्रकारके जल धरसाती है ॥४०-४१॥ उसके पूर्ण वेगसे छोड़े हुए नाना प्रकारके शस्त्र समूहसे महातेजस्वी हनूमान् उस तरह आच्छादित हो गया जिस प्रकार कि मेघोंसे आपादका सूर्य आच्छादित हो जाता है ॥४२॥ इतना सत्र होने पर भी खेदसे रहित, पराक्रमी एवं मायाके विस्तारमें निपुण हनूमान्ने अपने शस्त्रोंके द्वारा उसके शस्त्र समूहको बीचमें ही दूर कर दिया ॥४३॥ उसके बाण बाणोंसे लुप्त हो गये, तोमर आदि तोमर आदिके द्वारा, तथा शक्तिशक्तियोंके द्वारा खण्डित होकर उल्काओंके समान दूर जा गिरी ॥४४॥ चक्र, क्रकच, संबर्तक तथा कनक आदिके विस्तारसे पीतवर्ण आकाश ऐसा भयंकर हो गया मानो त्रिजलियोंसे ही व्याप्त होगया हो ॥४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनन्तर रूपसे अनुपम, स्वभावसे धीर, कमललोचना, लक्ष्मीके समान लंकासुन्दरी, नेत्ररूपी धनुषसे छोड़े हुए कामके बाणों अर्थात् कटाक्षोंसे हनूमान्को इधर जुदा भेद रही थी और इधर अन्य धनुषसे छोड़े तथा कान तक खींचे हुए बाणोंसे जुदा भेद रही थी । लङ्कासुन्दरीके वे कामबाण, ज्ञान-ध्यानके हरनेवाले थे, मनोहर थे, दुर्घर थे, गुणोंसे युक्त थे, लावण्यके द्वारा सौन्दर्यको हरनेवाले थे, और मनके भीतर भेदनेमें निपुण थे ॥४६-४८॥ इस तरह जगतको आश्चर्य करनेमें समर्थ तथा सौभाग्यरूपी गुणसे गर्वित लंकासुन्दरी हनूमान्के हृदयके भीतर प्रविष्ट होगई ॥४९॥ वह हनूमान्, बाण, शक्ति तथा शतध्वनी आदि शस्त्रोंसे इस प्रकार पीड़ित नहीं हुवा था जिस प्रकार कि सूर्यको त्रिद्वारण करनेवाले कामके बाणोंसे पीड़ित हुवा था ॥५०॥ हनूमान् विचार करने लगा कि यह मनोहराकार की धारक, अपनी ललित चेष्टा रूपी बाणोंसे युक्त भीतर और बाहर दोनों ही स्थानों पर घायल कर रही है ॥५१॥ इस युद्धमें बाणोंसे भरकर मर जाना अच्छा है किन्तु इसके बिना स्वर्गमें भी जीवन विताना अच्छा नहीं है ॥५२॥ इधर इस प्रकार हनूमान् विचार कर रहा था उधर जिसका मन दयामें आसक्त था तथा जो त्रिकूटाचलकी अद्वितीय सुन्दरी थी ऐसी कन्या लंका सुन्दरीने कामसे प्रेरित हो, देवीप्यमान मन तथा शरीरके धारक, कमलदललोचन, तरुण चन्द्रवदन, सुकूट पर वानरका चिह्न धारण करनेवाले, नवयौवनसे युक्त एवं मूर्त्तिधारी कामदेवके समान सुन्दर हनूमान्को मारनेके लिए उठाई हुई शक्ति

दधौ च मारयाम्येतं कथं द्रोपमपि भ्रितम् । रूपेणानुपमानेन छिन्ते मर्माणि यो मम ॥५६॥
यद्यनेन समं सक्ता कामभोगोद्दययुतिम्^१ । न निषेवे च लोकेऽस्मिन् ततो मे जन्म निष्फलम् ॥५७॥
अतः सत्वथमुद्दिश्य स्वनामाङ्गं हनूमते । प्रजिघाय शरं मुग्धा विह्वलेनान्तरात्मना ॥५८॥
पराजिता त्वया नाथ साहं मन्मथसायकैः । सुरैरपि न या शक्या जेतुं सङ्घातवर्तिभिः ॥५९॥
प्रवाच्य मारुतिर्बाणमङ्गं स्वैरमुपागतम् । घृति परां परिप्राप्तौ रथादरमवातरत् ॥६०॥
उपसृत्य च तां कन्यां मृगोन्द्रसमविक्रमः । कृत्वाङ्के गाढमालिङ्गत् कामो रतिमिवापरम् ॥६१॥
अथ^२ प्रशान्तवैरासावल्लुद्दिनलोचना । तातप्रयाणशोकार्ता जगदे वायुसूनुना ॥६२॥
मा रोदीः सौम्यवक्त्रे^३ ल्वमलं शोकेन भामिनि । विहिता गतिरेपैव चात्रधर्मे सनातने ॥६३॥
ननु ते ज्ञातमेवैतद्यथा राज्यविधौ स्थिताः । पित्रादीनपि निष्पन्ति नराः कर्मबलेरिताः ॥६४॥
वृथा रोदिषि किन्त्वेतद्ध्यानमार्तं विवर्जय । अस्मिन् हि सकले लोके विहितं भुञ्जते प्रिये ॥६५॥
निहितोऽयमनेनेति द्विद्वन्न व्याजमात्रकम् । आयुःकर्मानुभावेन प्राप्तकालो विपद्यते ॥६६॥
वचोभिरेभिरन्यैश्च मुक्तशोका व्यराजत । सहिता वातिनां यद्वदिन्दुना निर्घना निशा ॥६७॥
प्रेमनिर्भरपूर्णेन तयोरालिङ्गनेन सः । सद्ग्रामजः श्रमो दूरमथायातः सुचेतसोः ॥६८॥

शीघ्र ही संहत करली—पीछे हटा ली ॥ ५३-५५ ॥ वह विचार करने लगी कि यद्यपि यह पिताके मारनेसे द्रोपी है तो भी जो अनुपम रूपसे मेरे मर्मस्थान विदार रहा है ऐसे इसे किस प्रकार मारूँ ? ॥ ५६ ॥ यदि इसके साथ मिलकर कामभोगरूपी अभ्युदयका सेवन न करूँ तो इस लोकमे मेरा जन्म लेना निष्फल है ॥ ५७ ॥ तदनन्तर विह्वल मनसे मुग्ध उस लंकासुन्दरीने समीचीन मार्गके उद्देश्यसे अपने नामसे अंकित एक बाण हनूमानके पास भेजा ॥ ५८ ॥ उस बाणमें उसने यह भी लिखा था कि हे नाथ ! जो मैं इकट्ठे हुए देवाँके द्वारा भी नहीं जीती जा सकती थी वह मैं, आपके द्वारा कामके बाणोंसे पराजित हो गई ॥ ५९ ॥ गोदमे आये हुए उस बाणको अच्छी तरह बॉच कर परम धैर्यको प्राप्त हुआ हनूमान् शीघ्र ही रथसे उतरा ॥ ६० ॥ और उसके पास जाकर सिंहके समान पराक्रमी हनूमान्ने उसे गोदमे विठा उसका ऐसा गाढ आलिङ्गन किया मानो कामदेवने दूसरी रतिका ही आलिङ्गन किया हो ॥ ६१ ॥

तदनन्तर जिसका बैर शान्त हो गया था, जिसके नेत्रोंसे दुर्दिनकी भौंति अवरिल अश्रुओंको वर्षा हो रही थी तथा जो पिताके मरण-सम्बन्धी शोकसे पीड़ित थी ऐसी उस लंकासुन्दरीसे हनूमान्ने कहा ॥ ६२ ॥ कि हे सौम्यमुखि ! रोओ मत । हे भामिनि ! शोक करना व्यर्थ है । सनातन सृत्रिय धर्मकी तो यही रीति है ॥ ६३ ॥ यह तो तुम्हें विदित ही है कि राजकार्यमें स्थित मनुष्य, कर्मबलसे प्रेरित हो पिता आदिको भी मार डालते हैं ॥ ६४ ॥ व्यर्थ ही क्यों रोती हो ? इस आर्तव्यानको छोड़ो । हे प्रिये ! इस समस्त संसारमें अपना किया हुआ ही सब भोगते हैं अर्थात् जो जैसा करता है वैसा भोगता है ॥ ६५ ॥ 'यह शत्रु इसके द्वारा मारा गया' यह कहना तो छलमात्र है यथार्थमे तो आयुक्रमके प्रभावसे समय पाकर यह जीव मरता है ॥ ६६ ॥ इस प्रकार इन तथा अन्य वचनोंसे जिसका शोक छूट गया था ऐसी लंकासुन्दरी हनुमान् के साथ इस प्रकार सुरोभित हो रही थी जिस प्रकार कि मेघरहित रात्रि चन्द्रमाके साथ सुरोभित होती है ॥६७॥ तदनन्तर उत्तम हृदयके धारक उन दोनोंका संग्रामसे उत्पन्न हुआ श्रम, प्रेमरूपी निर्भरसे परिपूर्ण आलिङ्गनके द्वारा दूर भाग गया ॥६८॥

१. युतिः म० । कामभोगादय युतिम् ज० । २. प्रोवाच म० । ३. प्रशान्तवैरा + अतौ + अवल्लुद्दिन ।
४. सौम्यवक्त्रे म० । ५. वातस्यापत्वं पुमान् वातिः; तेन हनूमता ।

ततो यत्र नभोदेशे स्तम्भिन्या विद्यया खंराः । स्तम्भिता बलमत्रैव रचितावासमाश्रितम् ॥६६॥
 सन्ध्यारकाभ्रसङ्काशं गीर्वाणनगरोपमम् । श्रीशैलस्य तद्व्यन्तं शिविरं पर्यराजत ॥७०॥
 गजवाजिभिमानस्या रथस्थाश्च महानृपाः । तत्पुरं ध्वजमालाढ्यं विविशुः पृष्टवातयः ॥७१॥
 स्थितास्तत्र यथान्यायं लघ्नोत्साहसमुत्सवाः । कथाभिरतिचित्राभिः सुरसुद्राम्भजनभिः ॥७२॥
 अथ तत्स्वरीतात्मानं वार्तिं गन्तुं समुद्यतम् । बाला विश्रब्धमप्राप्तीदिति प्रेमपरायणा ॥७३॥
 विविधागोभिरापूर्णाः श्रुतदुःसहविक्रमः । कान्तं लङ्कां किमर्थं त्वं वद गन्तुं समुद्यतः ॥७४॥
 तस्यै जगाद वृत्तान्तमशेषं वायुनन्दनः । कृत्यं प्रत्युपकारस्य बान्धवैरनुमोदितम् ॥७५॥
 सीतया सह रामस्य भद्रे भद्रसमागमः । हृतया राक्षसेन्द्रेण कर्तव्यः सर्वथा मया ॥७६॥
 साञ्जवीतु समतिक्रान्तं सौहार्दं तपुरातनम् । श्रद्धास्नेहस्ये नष्टा प्रदीपस्य यथा शिखा ॥७७॥
 आसीद् रथ्योपशोभाढ्यां ध्वजमालाङ्गुलीकृतम् । प्राविचदाहतो लङ्कां भवान् द्विविधामरः ॥७८॥
 अधुना त्वधि दोषाद्ये रावणश्रेण्डशासनः । प्रकाशं ब्रजति क्रोधं गृहीष्यति च संशयः ॥७९॥
 यदोपलभ्यते चार्त्वीं विशुद्धिः कालदेशयोः । विशुद्धात्मानमव्यग्रं तदा तं द्रष्टुमर्हसि ॥८०॥
 एवमेवेति शोऽञ्जोचधद्रवीपि विचक्षणैः । आकृतं तस्य विज्ञातुं गत्वा बान्ध्यामि सुन्दरि ॥८१॥
 कीदृशी वा सती सीता रूपेण प्रथिता भवेत् । चालितं मेरुवद्दीरं रावणस्य मनो यथा ॥८२॥

तदनन्तर स्तम्भिनी विद्याके द्वारा आकाशके जिस प्रदेशमें विद्याधर रोक दिये गये थे प्रदेशमें आघास बनाकर वह सेना ठहराई गई ॥६६॥ सन्ध्याके रक्त मेघके समान दिखनेवाला उसी हनूमानका वह शिविर देवनगरके तुल्य अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥७०॥ उस सेनामें जो बड़े-बड़े राजा थे उन्होंने हनूमानसे पूछकर हाथियों, घोड़ों, विमानों तथा रथोंपर सवार हो ध्वजाओंके समूहसे युक्त उस नगरमें प्रवेश किया ॥७१॥ वे शूर-वीरोंके संग्रामसे उत्पन्न नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए उस नगरमें उत्साह और उल्लासको प्राप्तकर यथायोग्य ठहरे ॥७२॥

अथानन्तर जिसका मन शीघ्रतासे युक्त था ऐसे हनूमानको जानेके लिए उद्यत देख प्रेमसे भरी लङ्कासुन्दरीने पकान्तमें उससे पूछा कि ॥७३॥ हे नाथ ! आप रावणके दुःसह पराक्रमकी बात सुन चुके है और स्वयं नाना अपराधोंसे परिपूर्ण हैं फिर किसलिए लंका जानेको उद्यत हैं सो तो कहो ॥७४॥ इसके उत्तरमें हनूमानने उसे सब वृत्तान्त कहा और यह बताया कि प्रत्युपकारका करना बन्धुजनोंके द्वारा अनुमोदित है ॥७५॥ हे भद्रे ! राक्षसोंका इन्द्र रावण सीताको हर ले गया है सो उसके साथ रामका समागम मुझे अवश्य करना है ॥७६॥ यह सुन लंका-सुन्दरीने कहा कि रावणके साथ आपका जो पुराना सौहार्द था वह नष्ट हो चुका है जिस प्रकार त्रेत्रके नष्ट हो जानेसे वीपकी शिखा नष्ट हो जाती है उसी प्रकार आपके प्रति श्रद्धाके नष्ट हो जानेसे रावणका सौहार्द नष्ट हो गया है ॥७७॥ एक समय था कि जब आपमागीकी शोभासे युक्त तथा ध्वजाओंकी पंक्तिसे अलङ्कृत लङ्कामें बड़े आदरके साथ उस तरह प्रवेश करते थे जिस तरह कि देव स्वर्गमें प्रवेश करता है ॥७८॥ परन्तु आज आप अपराधी होकर यदि लंकामें प्रकट रूपसे जाते हैं तो कठोर शासनको धारण करनेवाला रावण आपपर क्रोध प्रहण करेगा इसमें संशय नहीं है ॥७९॥ अतः जिस समय देश और कालकी उत्तम शुद्धि-अनुकूलता प्राप्त हो तथा रावणका हृदय शुद्ध एवं व्यग्रता रहित हो उस समय उसका साक्षात्कार करना योग्य है ॥८०॥ इसके उत्तरमें हनूमानने कहा कि विदुषि ! तुमने जैसा कहा है यथार्थमें वैसा ही है । किन्तु हे सुन्दरि ! मैं रावणका अभिप्राय जानना चाहता हूँ ॥८१॥ और यह भी देखना चाहता हूँ कि वह

एवमुक्त्वा मरुत्पुत्रस्तद्विन्ध्यस्तमहाबलः । तथा मुक्तो विवेकिन्या त्रिकूटाभिमुखं ययौ ॥८३॥

- दोधकवृत्तम्

चित्रमिदं परमत्र नुलोकैः यत्परिहाय भृशं रसमेकम् ।
तत्क्षणमेव विशुद्धशरीरं जन्तुरुपति रसान्तरसङ्गम् ॥८४॥
कर्मविचेष्टितमेतदमुस्मिन् किन्त्वयवाद्भुतमस्ति निसर्गे ।
सर्वमिदं स्वशरीरनिबद्धं दक्षिणसुत्तरतरच रवीहा ॥८५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनूमत्सङ्घासुन्दरीकन्यालामाभिधानं नाम
द्विपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५२॥

सती सीता कैसी रूपवती है कि जिसने मेरुके समान धीर, वीर रावणका मन विचलित कर दिया है ॥८२॥ इस प्रकार कहकर तथा अपनी सेना उसीके पास छोड़कर हनूमान् उस विवेकवतीसे छूटकर त्रिकूटाचलकी ओर चला ॥८३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस संसारमे यह परम आश्चर्यकी बात है कि प्राणी एक रसको छोड़कर उसी क्षण विशुद्ध रूपको धारण करनेवाले दूसरे रसको प्राप्त हो जाता है ॥८४॥ सो इस संसारमें यह प्राणियोंके कर्मकी ही अद्भुत चेष्टा है । जिस प्रकार सूर्यकी गति कभी दक्षिण दिशाकी ओर होती है और कभी उत्तर दिशाकी ओर । उसी प्रकार प्राणियोंके शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाला यह सब व्यवहार कर्मकी चेष्टानुसार कभी इस रसरूप होता है और कभी उस रसरूप होता है ॥८५॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हनूमान्को लका-
सुन्दरी कन्याकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला चावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५२॥

त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व

मगधेन्द्र ततो वातिः प्रभावोदयसद्गतः । लङ्कां विवेश निःशङ्कः स्वल्पानुगसमन्वितः ॥१॥
द्वारे च रचिताभ्यर्चं विभीषणनिकेतनम् । विवेश योग्यमेतेन सम्मानं च समाहृतः ॥२॥
ततः स्थित्वा क्षणं किञ्चित् संस्पृष्टाभिः परस्परम् । चार्ताभिरिति सद्वाक्यं व्याजहार मरुत्सुतः ॥३॥
उचितं किमिदं कर्तुं यद्वाश्याद्दपतिः स्वयम् । क्रुते क्षुद्रवल्कश्चिञ्चोरणं परयोपितः ॥४॥
मर्यादानां नृपो मूलमापगानां यथा नगः । अनाचारे स्थिते तस्मिन् लोकेत्तत्र प्रवर्तते ॥५॥
ईदृशे चरिते कृत्ये सर्वलोकविनिन्दिते । सहनीयं समस्तानां दुःखमेष्यति नो भुवम् ॥६॥
तत् क्षेमङ्करमस्माकं हिताथ जगतां तथा । उच्यतां रावणः शोभं वचो न्यायानुपालकम् ॥७॥
यथा किल द्वये लोके निन्दनीयं विचेष्टितम् । मा कार्षीः जगतो नाथ कीर्तिविध्वंसकारणम् ॥८॥
विमलं चरितं लोके न केवलमिहेष्यते । किन्तु गीर्णलोकेऽपि रचिताङ्गलिभिः सुरैः ॥९॥
कैकर्सानन्दनोऽनोचद् बहुशोऽभिहितो मया । ततः प्रवृत्ति नैवासौ मया सम्भापते समम् ॥१०॥
तथापि भवतो वाक्यान् श्वः समेत्य नरेवरम् । वक्तास्मि किन्तु दुःखेन त्यक्त्यत्येतदसौ ग्रहम् ॥११॥
अहोऽर्थकादर्शं जातं सीताया वक्ष्यनोष्मणे । तथापि विरतिः काचिह्लङ्घेन्द्रस्य न जायते ॥१२॥
तच्छ्रुत्वा वचन सद्यः महाकाश्यसद्गतः । प्रमदाह्वयमुद्यानं मास्तिर्गन्तुसुद्यतः ॥१३॥
अपरयत्नं लताजालैस्तत्र वैराकुलीकृतम् । अरुणैः पल्लवैः व्याप्तं वरुणीकरचारुभिः ॥१४॥

अथानन्तर-गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधराज ! प्रभाव और अभ्युदयसे सहित तथा स्वल्प अनुचरोंसे युक्त हनुमान्ने निःशङ्क होकर लङ्कामें प्रवेश किया ॥१॥ वहाँ जिसके द्वारपर सत्कार किया गया था ऐसे विभीषणके महलमें प्रवेश किया और विभीषणने यथायोग्य उनका सम्मान किया ॥२॥ तदनन्तर वहाँ परस्पर इधर-उधरकी कुछ वार्ताएँ करते हुए क्षण भर ठहर कर हनुमान्ने इस प्रकारके सद्बचन कहे कि तीन खण्डका अधिपति किसी बुद्ध मनुष्यकी तरह पर-स्त्रीकी चोरी करता है सो क्या ऐसा करना उचित है ? ॥३-४॥ जिस प्रकार पर्वत नदियोंका मूल है उसी प्रकार राजा मर्यादाओंका मूल है । यदि राजा स्वयं अनाचारमें स्थित रहता है तो उसकी प्रजा भी अनाचारमें प्रवृत्ति करने लगती है ॥५॥ फिर ऐसा कार्य तो सर्वलोक विनिन्दित है—सब लोगोंकी निन्दाका पात्र है । इसके करने पर सब लोगोंको दुःख सहन करना पड़ता है और हम लोगोंको तो निश्चित ही दुःख प्राप्त होता है ॥६॥ इसलिए हम सबके कल्याणके लिए तथा जगत्के हितके लिए शीघ्र ही रावणसे ऐसे वचन कहिये जो न्यायकी रक्षा करनेवाले हों ॥७॥ उन्हें बतलाइये कि हे जगत्के नाथ ! दोनों लोकोंमें निन्दनीय तथा कीर्तिको नष्ट करनेवाली चेष्टा मत कीजिये ॥८॥ निर्मल-निर्दोष चरित्रकी न केवल इस लोकमें चाह है अपितु स्वर्गलोकमें देव भी हाथ जोड़कर उसकी चाह करते हैं ॥९॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि मैंने रावणसे अनेक बार कहा है पर वह उस समयसे मेरे साथ बात ही नहीं करता है ॥१०॥ फिर भी आपके कहनेसे मैं कल राजाके पास जाकर कहूँगा किन्तु यह निश्चित है कि वह बड़े दुःखसे ही इस दृष्टको छोड़ेगा ॥११॥ यद्यपि आज सीताको आहार पानी छोड़े ग्यारहवाँ दिन है तथापि लङ्काधिपतिको कुछ भी विरति है—इस कार्यसे रज्जुमात्र भी विरक्तता नहीं है ॥१२॥ विभीषणके यह वचन सुन महा दयाभावसे युक्त हनुमान् प्रमदोद्यानमें जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१३॥ जाकर उसने उस प्रमदोद्यानको देखा जो कि नई-नई लताओंके

१. त्रिखण्डभरताधिपः । २. विभीषणः । ३. त्यज्यते न ह्यसौ म० । ४. वल्लमोऽरुणे म० । ५. स्तन वैराकुलीकृतम् म० ।

अमरमावृत्तैर्गुणैः सुजातैर्वद्मशेखरम् । फलैरानतशाखाग्रं किञ्चित् पवनकम्पितम् ॥१५॥
 पद्मादिच्छादितैः स्वच्छैः सरोभिः सदलङ्कृतम् । भासुरं कल्पवल्लीभिः सङ्घातभिर्महातरुम् ॥१६॥
 शीर्षाङ्गकुलदेशाभं प्रसूनरजसावृतम् । नन्दनस्य दधत्साम्यमनेकाद्भुतसङ्कलम् ॥१७॥
 ततो लीलां बहून् रम्यां वायू राजीवलोचनः । विवेश परमोद्यानं सीतादर्शनकाङ्क्षया ॥१८॥
 प्रजिवाय च सर्वसु दिक्षु चक्षुरतिव्वरम् । विविचद्गुमदेशेषु गहनेषु दलादिभिः ॥१९॥
 इष्टा च दूरतः सीतामन्यदर्शनवर्जितः । अचिन्तयदसी सैषा रामदेवस्य सुन्दरी ॥२०॥
 स्निग्धञ्जलनसङ्काशा वाष्पपूरितलोचना । करविन्यस्तवक्त्रेन्दुमुक्तकेशी कृशोदरी ॥२१॥
 अहो रूपमिदं लोके जिताशेषमनोहरम् । परमां ख्यातिमायातं सत्यवस्तुनिबन्धनम् ॥२२॥
 रहिता शतपत्रेण नास्या लक्ष्मीः समा भवेत् । दुःखार्णवं गताभ्येषा सदशी नान्ययोपिता ॥२३॥
 निपत्य शिखराद्द्वेरेस्य मृत्युमुपैम्यहम् । विरहे पद्मनाभस्य धारयामि न जीवितम् ॥२४॥
 कृतप्रचिन्तनामेव वैदेहीं पवनात्मजः । निःशब्दपादसम्पातः प्राहो रूपान्तरं दधत् ॥२५॥
 ततोऽङ्गुलीयकं तस्या विससर्जाङ्गवाससि । सहसा सा तमालोक्ष्य स्मेराऽभ्रूपुलकाचिता ॥२६॥
 तस्यामेवमवस्थायाम् गत्वा नार्यस्वरान्विताः । तोषाद्वर्षयन् दिष्ट्या रावणं तत्परायणम् ॥२७॥

समूहसे ज्योतिषा था, उत्तम स्त्रियोंके हाथोंके समान सुन्दर लाल-लाल पल्लवोंसे युक्त था, अमरोसे आच्छादित सुन्दर गुच्छोंके द्वारा जिस पर सेहरा बंध रहा था, जहाँ फलोंके भारसे शाखाओंके अप्रभाग नम्रीभूत हो रहे थे, जो वायुके द्वारा कुल-कुल हिल रहा था, कमल आदिसे आच्छादित स्वच्छ सरोवरोंसे जो अलङ्कृत था, जो बड़े-बड़े वृक्षोंसे लिपटी हुई कल्पलताओंसे देदीप्यमान था, जो देवकुल प्रदेशके समान जान पड़ता था, फूलोंकी परागसे आवृत था, अनेक आश्चर्योंसे ज्योतिषा था तथा नन्दनवनकी समानता धारण कर रहा था ॥१४-१७॥ तदनन्तर मनोहर लीलाको धारण करता हुआ कमल लोचन हनूमान् सीताके दर्शनकी इच्छासे उस उत्कृष्ट उद्यानमें प्रविष्ट हुआ ॥१८॥ वहाँ जाकर उसने शीघ्र ही समस्त दिशाओंमें तथा पल्लवों आदिसे सघन नाना वृक्षोंके समूहमें दृष्टि डाली ॥१९॥ वहाँ दूरसे ही सीताको देखकर वह अन्य वस्तुओंके दर्शनसे रहित हो गया अर्थात् उसी ओर टकटकी लगाकर देखता रहा। तदनन्तर उसने विचार किया कि वह रामदेवकी सुन्दरी यही है ॥२०॥ यह स्निग्ध अग्निके समान है, इसके नेत्र आँसुओंसे भर रहे हैं, वह हथेलीपर मुखरूपी चन्द्रमाको रखे हुई है, केश इसके खुले हुए हैं तथा उदर इसका अत्यन्त कृश है ॥२१॥ उसे देखकर हनूमान् विचार करने लगा कि अहो ! लोकमें इसका रूप समस्त मनोहर पदार्थोंको पराजित करने वाला है, परम ख्यातिको प्राप्त है तथा सत्य वस्तुओंका कारण है ॥२२॥ कमलसे रहित लक्ष्मी अर्थात् कमलसे निकली हुई साक्षात् लक्ष्मी इसकी बराबरी नहीं कर सकती। अहो ! यह दुःखरूपी सागममें निमग्न है तो भी अन्य स्त्रियोंके समान नहीं है ॥२३॥ वह इस प्रकार विचार कर रही थी कि मैं इस पर्वतके शिखरसे गिरकर मृत्युको प्राप्त कर सकती हूँ परन्तु रामके विरहमें जीवन नहीं धारण करूँगी ॥२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई सीताके पास, हनूमान् चुपचाप पैर रखता हुआ दूसरा रूप धारण कर गया ॥२५॥

तदनन्तर हनूमान्ने सीताकी गोदके बक्षपर अंगूठी छोड़ी उसे देखकर वह सहसा हँस पड़ी तथा रोमाञ्चोंसे युक्त हो गई ॥२६॥ सीताकी ऐसी अवस्था होनेपर वहाँ जो स्त्रियों थीं उन्होंने शीघ्रतासे जाकर सीताका समाचार जाननेमें तत्पर रहनेवाले रावणको शुभ समाचार

सन्तुष्टोऽङ्गनातं ताम्यो वस्त्ररत्नादिकं ददौ । श्रुत्वा स्मेराननां सीतां सिद्धं कार्यं विचिन्तयन् ॥२८॥
 विधातुं महिमानं च किञ्चिदादिशदुत्सुकः । सुधापूरनिव प्राज्ञः समुल्लासधरे हृदि ॥२९॥
 स्वनयवचनाद् साध्वी सर्वान्तःपुरसंयुता । गता मन्दोदरी शीघ्रं यत्रासौ जनकात्मजा ॥३०॥
 विक्रान्त्यष्टुति सीतां द्रष्टु मन्दोदरी चिराद् । जगौ बाले त्वयाऽस्माकं परमोऽनुग्रहः कृतः ॥३१॥
 अधुना भज लोकेशं रावणं शोकवर्जिता । सुराणां श्रीरिवाधीशं लब्धनिःशेषसम्पदम् ॥३२॥
 इत्युक्त्वा कुपिताबोच्यदर्शनां भवतीरितम् । पद्मः खेचरि जानाति त्रिभते ते पतिभ्यु वम् ॥३३॥
 वार्ता समागता भर्तुरिति तोषमुपागता । अकार्षं वदन् स्मेरं भजन्ती परमां हृत्तम् ॥३४॥
 इति ता वचनं श्रुत्वा राक्षसेशस्य योषितः । ऊचुः क्षुद्रववतेन लपत्येपेति सस्मिता ॥३५॥
 ततः श्रेणिक वैदेही नितान्तं तुह्यया गिरा । परमं वित्मयं प्राप्ता जगादैवं समुत्सुका ॥३६॥
 गताया व्यसनं घोरमत्थिधर्त्वापे महाभये । कोऽयं सत्तिहितः साधुर्वन्धुभूतोऽतिवत्सलः ॥३७॥
 ततो नमस्त्वतः सूत्रेवमर्थितदर्शनः । अभिप्रायमिमं चक्रे साधुतायुक्तमानसः ॥३८॥
 परार्थं यः पुरस्कृत्य पुनः स्वं विनिर्गृहति । सोऽतिभीरुवत्यात्यन्तं जायते निकृतो नरः ॥३९॥
 परमापदि सादन्तं जनं सन्धारयन्ति ये । अनुकम्पनशोलानां तेषां जन्म सुनिर्मलम् ॥४०॥
 हानिः पुरुषकारस्य न चात्मनि निदर्शिते । प्रकाश्ये गुरुतां याति जगति श्रीयशस्विनी ॥४१॥

सुना हर्षसे वृद्धिगत किया ॥२८॥ रावणने सन्तुष्ट होकर उन स्त्रियोके लिए अपने शरीरपर स्थित वस्त्र तथा रत्न आदिक दिने और सीताको प्रसन्नमुखी सुन अपना कार्य सिद्ध हुआ समझा ॥२८॥ उसके हृदयमें इतना उल्लास हुआ मानो अमृतके पूरको ही प्राप्त हुआ हो । उसी समय उसने उत्सुक हो अनिर्वचनीय उत्सव करनेका आदेश दिया ॥२९॥ अपने पतिके कहनेसे पतिव्रता मन्दोदरी भी समस्त अन्तःपुरके साथ शीघ्र ही वहाँ गई जहाँ सीता विद्यमान थी ॥३०॥ बहुत दिन बाद आज जिसके मुखकमलकी कान्ति विकसित हो रही थी ऐसी सीताको देख मन्दोदरीने कहा कि हे बाले ! आज तूने हम सब पर बड़ा अनुग्रह किया है ॥३१॥ जिस प्रकार समस्त सम्पदाभोसे युक्त देवेन्द्रकी लक्ष्मी सेवा करती है उसी प्रकार तू भी अब शोक रहित हो जगत्पति रावणकी सेवा कर ॥३२॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर सीताने कुपित होकर कहा कि हे विद्याधर ! यदि तेरा यह कहना राम जान पावें तो तेरा पति निश्चित ही मारा जावे ॥३३॥ आज मेरे भर्ताका समाचार आया है इसलिए सन्तोषको प्राप्त हो परम धैर्यको प्राप्त हुई हूँ और इसीलिए मैंने मुखको मन्दहास्यसे युक्त किया है ॥३४॥ सीताके यह वचन सुनकर रावणकी स्त्रियो कहने लगीं कि छुषाके कारण इसे वायुरोग हो गया है इसीलिए यह हँसती हुई ऐसा बक रही है ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इसके बाद परम आश्चर्यको प्राप्त हुई सीताने अत्यन्त उत्सुक हो अतिशय उच्च वाणीमें इस प्रकार कहा कि जो समुद्रके भीतर विद्यमान महाभयदायक इस द्वीपमें कष्टको प्राप्त हुई है ऐसा मेरा कौन स्नेही उत्तम बन्धु यहाँ निकट आया है ॥३६-३७॥

तदनन्तर जिसके दर्शनकी प्रार्थनाकी गई थी तथा जिसका मन सज्जनतासे युक्त था ऐसे हनूमान्ने इस प्रकार विचार किया कि ॥३८॥ जो मनुष्य दूसरेका कार्य आगेकर अर्थात् पहलेसे स्वीकृतकर फिर अपने आपको छिपाता है वह अत्यन्त भीरु होनेके कारण नीच मनुष्य होता है ॥३९॥ और जो आपत्तिमें पड़े हुए दूसरे मनुष्यको आलम्बन देते हैं उन दयालु मनुष्योंका जन्म अत्यन्त निर्मल होता है ॥४०॥ इसके सिवाय अपने आपको प्रकटकर देनेमें पुरुषत्वकी कुछ हानि भी तो नहीं मालूम होती अपितु प्रकटकर देनेपर यशस्विनी लक्ष्मी संसारमें गौरवको प्राप्त होती है ॥४१॥ तदनन्तर हनूमान् भामण्डलकी नौई हजारों उत्तम स्त्रियोके बीच

उत्तमस्त्रीसहस्राणां ततो मध्यगताभिमाम् । प्रभामण्डलकरोऽसौ पद्मपत्नीसुपागमत् ॥४२॥
निःशङ्कद्विपक्रान्तः सम्पूर्णैन्दुसमादनः । सहस्रांशुसमो दीप्या मात्थान्वरविभूषितः ॥४३॥
रूपेणाप्रतिमो युक्तः क्रान्त्या निर्द्युगचन्द्रमा । किरिटे वानरं विभ्रदामोद्गाहृतपटपदः ॥४४॥
चन्दनाचितसर्वाङ्गः पीतचर्चिविराजितः । ताम्बूलारक्तविम्बोष्ठः प्रलम्बांशुकरोमितः ॥४५॥
चलकुण्डलविद्योतविहसद्गाण्डमण्डलः । परं सहननं विभ्रद्वीर्षेणान्तविनर्जितः ॥४६॥
सर्पन् सीतां समुद्दिश्य हनूमान् गुणभूषणः । महाप्रतापसंयुक्तः शोभासुपथयौ पराम् ॥४७॥
क्रान्तिभासिसुखं दृष्ट्वा तं युतं परया श्रिया । पद्मायतेक्षणा नार्यस्ता बन्धुः समाकुलाः ॥४८॥
दधती हृदये कम्पं मन्दोद्गर्थासविस्मया । ससोलोकत सोतायाः समीपे वायुनन्दनम् ॥४९॥
उपगम्य ततः सीतां विनीतः पवनात्मजः । करकुङ्कुमलमाधाय मस्तके नम्रतायुषि ॥५०॥
कुलं गोत्रं च संश्राव्य पितरं जननीं तथा । अवेदयन्च विभ्रच्छं पद्मनाथेन चोदितम् ॥५१॥
त्रिविष्टपसमे साध्वि विमाने विभवान्विते । रतिं न लभते रामो मग्नस्त्वहिराहर्णवे ॥५२॥
त्यक्तनिःशेषकर्तव्यो मौनं प्रायेण धारयन् । स त्वां मुनिरिव ध्यायन्नैकतानोऽवतिष्ठते ॥५३॥
वेणुतन्त्रीसमायुक्तं गीतं प्रवरयोपिताम् । न कर्णजाहमेतस्य कदाचिद्यति पावने ॥५४॥
सदा करोति सर्वस्मै कथां स्वामिनि ते मुदा । त्वदीक्षणाशया प्राणान् बद्ध्वा धत्ते स केवलम् ॥५५॥
इति तद्बचनं श्रुत्वा पतिजीवनवेदनम् । प्रमोदं परमं प्राप्ता सीता विकसितेक्षणा ॥५६॥
विषादं सहता भूयो जलप्ररितलोचना । ऊचे शान्ता हनूमन्तं विनीतं स्वितमप्रतः ॥५७॥

वैठी हुई सीताके समीप गया ॥४२॥ जो शङ्का रहित हाथीके समान पराक्रमी था, जिसका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर था, जो दीप्तिसे सूर्यके समान था, माला और बखोसे सुशोभित था । रूपसे अनुपम था । क्रान्तिसे मृग रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ता था, मुकुटमें वानरका चिह्न धारण कर रहा था, सुगन्धिसे जो भ्रमरोको आकर्षित कर रहा था, चन्दन से जिसका समस्त शरीर चर्चित था, जो पीत विलेपनसे सुशोभित था, जिसका विम्बोष्ठ ताम्बूलके रससे लाल था, जो नीचे लटकते हुए बखसे सुशोभित था, चञ्चल कुण्डलके प्रकाशसे जिसका गण्डस्थल सुशोभित हो रहा था, जो उच्छ्रित संहननको धारण कर रहा था, जिसके पराक्रमकी सीमा नहीं थी, जो गुणरूपी आभूषणसे युक्त था, तथा महाप्रतापसे सहित था ऐसा हनूमाच सीताको लक्ष्यकर धीरे-धीरे जाता हुआ परम शोभाको प्राप्त हो रहा था ॥४३-४७॥ जिसका मुख क्रान्तिसे सुशोभित था, ऐसे उच्छ्रित लक्ष्मीसे युक्त हनूमानको देखकर वे कमललोचना स्त्रियों व्याकुल हो उठीं ॥४८॥ जिसके हृदयमें कम्पकंपी छूट रही थी ऐसी मन्दोद्गरीने सीताके समीप हनूमानको बड़े आश्चर्यके साथ देखा ॥४९॥

तदनन्तर सीताके समीप पहुँचकर परम विनीत हनूमानने मुझे हुए मस्तकपर अञ्जलि बौध पहले अपने कुल, गोत्र तथा माता-पिताका नाम सुनाया । उसके बाद निश्चित हो रामका सन्देश कहा ॥५०-५१॥ उसने कहा कि हे पतिव्रते ! तुम्हारे विरहरूपी सागरमें डूबे राम, स्वर्गके समान वैभवसे युक्त विमानमें भी रतिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं ॥५२॥ अन्य सब कार्य छोड़कर वे प्रायः मौन धारण किये रहते हैं और मुनिकी भाँति एकाग्र चित्त हो तुम्हारा ध्यान करते हुए बैठे रहते हैं ॥५३॥ हे पावने—हे पवित्र कारिणि ! चाँसुरी तथा वीणासे युक्त उत्तम स्त्रियोंका संगीत कभी भी उनके कर्णमूलमें नहीं पहुँचता है ॥५४॥ हे स्वामिनि ! वे सदा सबके सामने बड़े हर्षसे तुम्हारी ही कथा करते रहते हैं और केवल तुम्हारे दर्शनको अभिलाषासे ही प्राणोंको बौधकर धारण किये हुए हैं ॥५५॥ इस प्रकार पतिके जीवनको सूचित करनेवाले हनूमानके वचन सुन सीता परम प्रमोदको प्राप्त हुई । उसके नेत्र-कमल खिल उठे ॥५६॥

तदनन्तर विषादको प्राप्त, शान्त सीताने नेत्रोंमें जल भरकर सामने बैठे हुए विनयी

साहमस्यामवस्थायां निमगना कपिलचण । तुष्टा किं ते प्रयच्छामि हृतेन विधिनाम्निता ॥५८॥
 ऊचे च वायुपुत्रेण दर्शनेनैव ते शुभे । अद्य मे सुलभं सर्वं जातं जगति पूजिते ॥५९॥
 ततो मुक्ताफलस्यूलवाष्पविन्दुचिताधरा । सीता श्रीरिच दुःखार्तां पप्रच्छ कपिलचणम् ॥६०॥
 भकरप्राहनक्रादिकोभितं भीममर्णवम् । भद्रं दुस्तरमुल्लस्य विस्तीर्णं कथमागतः ॥६१॥
 अवस्थां वा गतामेतां कार्यैस्सिद्धिमागताम् । किमर्थं मामिहागत्य नयस्याश्वासमुत्तमम् ॥६२॥
 लावण्यद्युतिरूपाढ्यः कान्तिसागरसंभुतः । श्रिया कीर्त्यां च संयुक्तः प्रियो मे भद्रं बान्धव ॥६३॥
 प्रदेशे स त्वया करिम्बं प्राणनाथो ममेक्षितः । सत्यं जीवति सद्गोत्रं कचिल्लक्ष्मणसङ्गतः ॥६४॥
 किं तु दुःखेचरैः संख्ये भीमैः व्यापादितोऽनुजः । लक्ष्मणेनैव तुल्यः स्यात्पद्मः पद्माभलोचनः ॥६५॥
 किं वा मद्द्विरहादुग्रुहं नाथः समाश्रितः । संदिश्य भवतः किञ्चिद्दने लोकान्तरं गतः ॥६६॥
 जिनेन्द्रविहिते मार्गे निःशेषप्रस्थवर्जितः । तपस्यन् किमसावास्ते भवनिर्वदपण्डितः ॥६७॥
 शिथिलीभूतनिःशेषशरीरस्य वियोगतः । अङ्गुलीतरच्युतं प्राप्तं त्वया स्यादङ्गुलीयकम् ॥६८॥
 त्वया सह परिश्रितिर्नासीदेव मम प्रभोः । कार्येण रहितः प्राप्तः कथं त्वं तस्य मित्रताम् ॥६९॥
 न च प्रत्युपकाराय शक्ता तुष्टाप्यहं तव । अङ्गुलीयकमेतच्च समानीतं कृपावता ॥७०॥
 एतत्सर्वं मम आतः समाचवच विशेषतः । सत्येन श्रावितः पित्रोर्देवस्य च मनोजुषः ॥७१॥
 इति पृष्टः समाधानो शास्त्राम्बुकिरीटभृद् । शिरस्थकरराजीवो जगद् विकचेक्षणः ॥७२॥

हनुमान्से कहा कि हे कपिध्वज ! मैं इस अवस्थामें निमग्न तथा दुर्भाग्यसे युक्त हूँ । सन्तुष्ट होकर तुम्हें क्या दूँ ? ॥५७-५८॥ इसके उत्तरमें हनुमान्ने कहा कि हे शुभे—हे मङ्गलरूपिणि ! हे पूजिते ! आज आपके दर्शनसे ही मुझे संसारमें सब कुल सुलभ हो गया है ॥५९॥ तदनन्तर मोतियोंके समान बड़ी-बड़ी अश्रुओंकी बूँदोंसे जिसका आँठ व्याप्त हो रहा था तथा जो दुःखसे पीड़ित लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ऐसी सीताने हनुमान्से पूछा कि हे भद्र ! भकर—प्राह तथा नाक आदिसे कोभित इस भयंकर दुस्तर तथा लम्बे-चौड़े समुद्रको लौंघकर तू किस प्रकार आया है ? ॥ इस अवस्था अथवा कार्यकी सिद्धिको प्राप्त हुई जो मैं हूँ सो मुझे यहाँ आकर तू किसलिए उत्तम वैयर्थ प्राप्त करा रहा है ॥६०-६२॥ हे भद्र ! तू लावण्य-कान्ति तथा रूपसे सहित, कान्तिरूपी सागरसे घिरा, तथा लक्ष्मी और कीर्तिसे युक्त मेरा व्यारा भाई ही है ॥६३॥ तूने मेरे प्राणनाथको कहाँ देखा था ? हे कुलोन ! क्या सचमुच ही मेरे प्राणनाथ, लक्ष्मणके साथ कहीं जीवित हैं ? ॥६४॥ ऐसा तो नहीं है कि उन भयंकर दुष्ट विद्याधारकों द्वारा युद्धमे झोटा भाई लक्ष्मण मारा गया हो और उस दुःखसे दुःखी हो कमललोचन राम भी उसीकी तुल्य अवस्थाको प्राप्त हो गये हों ॥६५॥ अथवा तुम्हें सन्देश देनेके बाद मेरे विरहसे अत्यन्त उग्र दुःखको प्राप्त हो नाथ, किसी वनमें लोकान्तरको प्राप्त हो गये हों ? ॥६६॥ अथवा वे संसारसे विरक्त रहनेमें निपुण थे अतः समस्त परिग्रहका त्यागकर जिनेन्द्र प्रणीत मार्गमें दीक्षित हो कहीं तपस्या करते हुए विद्यमान हैं ? ॥६७॥ अथवा वियोगके कारण जिनका समस्त शरीर शिथिल हो गया है ऐसे श्रीरामकी अँगुलीसे यह अँगुठी कहीं गिर गई होगी सो तुम्हें मिली है ? ॥६८॥ तुम्हारे साथ मेरे स्वामीका परिचय पहले नहीं था फिर विना कारण तू उनकी मित्रताकी कैसे प्राप्त हो गया ? ॥६९॥ तू दयालु होकर यह अँगुठी लाया है सो सन्तुष्ट होकर भी मैं तेरा प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥७०॥ हे भाई ! तू अपने माता-पिता अथवा हृदयमें विद्यमान श्रीजिनेन्द्रदेवके कारण सत्य ही कथन करेगा ॥७१॥ इस प्रकार पूछे जानेपर चित्तकी एकाग्रतासे युक्त, वानर-चिह्नित मुकुटको धारण करनेवाला, तथा विकसित नेत्रोंसे सहित

१. प्राणनाथे म० । २. व्यापादितानुजः क०, ख० । ३. ते पश्यन् (?) म० । ४. मनोजुषा न०
 वारण-म० ।

सायके रविहासाख्ये लक्ष्मणेन निर्जीकृते । गत्वा चन्द्रनखाग्निष्ठा रमणं समरोपयत् ॥७३॥
 यावदाहूयते स्वामी रक्षसां सुमहाबलः । दूषणस्तावदायातो योद्भुं दाशरथिं द्रुतम् ॥७४॥
 लक्ष्मणो दूषणेनामा युध्यते यावदुद्धतम् । तावद्दशमुखः प्राप्तस्तमुद्देशं बलान्वितः ॥७५॥
 धर्माधर्मविवेकज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः । सवर्ती वीच्य स क्षुद्रो बभूव मनसो वशः ॥७६॥
 भ्रष्टनिःशेषनीतिश्च निस्सारीभूतचेतनः । मायासिंहस्वनं चक्रे भवतीस्तेनकारणम् ॥७७॥
 श्रुत्वा सिंहस्वनं पद्मो ययौ यावद्गणस्थितम् । लक्ष्मणं तावदेतेन पापेन त्वमिहाहूता ॥७८॥
 प्रेषितः पद्मनाभश्च लक्ष्मणेन त्वरावता । गत्वा भूयस्तमुद्देशं न त्वामैतत् सचमे ॥७९॥
 ततश्चिरं धनं भ्रान्त्वा त्वद्गवेषणकारणम् । ईक्षाञ्चक्रे रलयप्राणं मृत्वासास्रं जटायुपम् ॥८०॥
 तस्मै दत्त्वा स जैनैर्नदीं प्रियमाणाथ देशनाम् । भवतस्थे वने दुःखी भवतीगतमानसः ॥८१॥
 गतश्च लक्ष्मणः पद्मं निहृत्य खरदूषणम् । आनीता रत्नजटिना त्वत्प्रवृत्तिः प्रियस्य ते ॥८२॥
 सुग्रीवरूपसंयुक्तः पद्मनाभेन साहसः । बलं हन्तुं समुद्युक्तो विद्यया वर्जितो हतः ॥८३॥
 कृतस्यायोपकारस्य कुलपात्रनकारिणः । अहं प्रत्युपकाराय प्रेषितो गुरुवान्धवैः ॥८४॥
 प्रीत्या विमोचयामि त्वां विप्रहो नि.प्रयोजनः । कार्यसिद्धिरिहामीष्टा सर्वथा, नयशालिभिः ॥८५॥
 सोऽयं लङ्कापुरीनाथो घृणावाप्य विनयान्वितः । धर्मार्थकामवान् धीरो हृदयेन सृष्टुः परम् ॥८६॥
 सौम्यः क्रौर्यविनिर्मुक्तः सत्यव्रतकृतस्थितिः । करिष्यति वचो नूनं मम त्वामर्पयिष्यति ॥८७॥

हनुमान्, हस्त-कमल जोड़ मस्तकसे लगा इस प्रकार कहनेलगा ॥७२॥ कि जब लक्ष्मणने सूर्यहास खङ्ग अपने आधीनकर लिया और चन्द्रनखाको जब राम-लक्ष्मणने चाहा नहीं तब उसने अपने पति खरदूषणको रोषयुक्त कर दिया अर्थात् विपरीत भिड़ाकर उसे कुपित कर दिया ॥७३॥ सहायताके लिए जब तक महाबलवान् राक्षसोंके स्वामी—रावणको बुलाया तबतक खरदूषण शीघ्र ही युद्ध करनेके लिए रामके समीप आया ॥७४॥ उधर लक्ष्मण जब तक खरदूषणके साथ विकट युद्ध करता है तब तक इधर अतिशय बलवान् रावण उस स्थान पर आता है ॥७५॥ यद्यपि रावण धर्म अधर्मके विवेकको जाननेवाला एवं समस्त शास्त्रोंका विशारद था, तो भी वह क्षुद्र आपको देख मनके बरगीभूत हो गया ॥७६॥ तदनन्तर जिसकी समस्त नीति भ्रष्ट हो गई थी और चेतना निःसार हो चुकी थी ऐसे उस रावणने आपको चुरानेके लिए मायामय सिंहनाद किया ॥७७॥ उस सिंहनादको सुन जब तक राम, युद्धमें स्थित लक्ष्मणके पास गये तब तक यह पापी तुम्हें हरकर यहाँ ले आया ॥७८॥ उधर लक्ष्मणने शीघ्र ही युद्धक्षेत्रसे रामको वापिस किया सो वहाँसे आकर जब वे पुनः उस स्थानपर आये तब हे पतिव्रते ! उन्होंने तुम्हें नहीं देखा ॥७९॥ तदनन्तर तुम्हें खोजनेके लिए चिरकाल तक वनमें भ्रमण कर उन्होंने शिथिल प्राण एवं मरण-सन्न जटायुको देखा ॥८०॥ तदनन्तर उस मरणोन्मुखके लिए जिनेन्द्र धर्मका उपदेश देकर वे दुःखी हो वनमें बैठ गये । उस समय उनका मन एक आपमें ही लग रहा था ॥८१॥

लक्ष्मण, खरदूषणको मारकर रामके पास आये और रत्नजटी तुम्हारे पतिके लिए तुम्हारा घृसान्त ले आया ॥८२॥ इसी वीचमे सुग्रीवके रूपसे युक्त साहस गति नामका विद्याधर रामको मारनेके लिए उद्यत हुआ परन्तु रामके प्रभावसे विद्यासे रहित होनेके कारण वह स्वयं मारा गया ॥८३॥ इस प्रकार रामने हमारे कुलको पवित्र करनेवाला यह जो महान् उपकार किया था उसका बदला चुकानेके लिए ही गुरुजनोने मुझे भेजा है ॥८४॥ मैं तुम्हें प्रीतिपूर्वक छुड़वाता हूँ । युद्ध करना निष्प्रयोजन है, क्योंकि नीतिज्ञ मनुष्योंको सब तरहसे कार्यकी सिद्धि करना ही संसारमें इष्ट है ॥८५॥ यह लंकापुरीका राजा रावण दयालु है, विनयी है, धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्गसे सहित है, धीर है, हृदयसे अत्यन्त कोमल है ॥८६॥ सौम्य है, क्रूरतासे रहित है और सत्यव्रतका पालनेवाला है, अतः निश्चित ही मेरा क्रहा करेगा और तुम्हें मेरे

कीर्तिरस्य निजा पास्त्या धवला लोकविभ्रुता । लोकापवादतश्चैप विभेति नितरं कृती ॥८८॥
 सतः परं प्ररिप्राप्ता प्रमोदं जनकात्मजा । हनुमन्तमिदं वाच्यं जगद् विपुलेज्जना ॥८९॥
 पराक्रमेण धैर्येण रूपेण विनयेन च । कपिध्वजास्त्वया तुल्याः कियन्तो मत्प्रियाश्रिताः ॥९०॥
 मन्दोदरी ततोऽबोचच्छूराः सत्त्वयशोऽर्निवताः । गुणोक्ता न शंसन्ति धीराः स्वं स्वयमुत्तमाः ॥९१॥
 वैदेहि तव न ज्ञातः किमयं येन पृच्छसि । कपिध्वजः समानोऽस्य वास्येऽयस्मिन्न विद्यते ॥९२॥
 विमानवाहनघण्टासंघट्टपरिमण्डले । रणे दशमुखस्यायं प्राहः साहाय्यकं परम् ॥९३॥
 दशाननसहायत्वं कृतं येन महारणे । स हनूमानितिख्यातश्चाक्षनातनयः परः ॥९४॥
 महापदि निमग्नस्य दशवक्त्रस्य विद्विपः । खेटामनोव्यधामिख्या एकेनानेन निर्जिताः ॥९५॥
 अनङ्गकुसुमा लब्धा येन चन्द्रनखात्मजा । गम्भीरस्य जनो यस्य सदा बान्धुञ्जति दर्शनम् ॥९६॥
 अस्य पौरसमुद्रस्य यः कान्तः शिशिरांशुवत् । सहोदरसमं वेत्ति यं लङ्कापरमेश्वरः ॥९७॥
 हनूमानिति विख्यातः सोऽयं सकलविष्टपे । गुणैः समुन्नतो नीतो दूतत्वं चित्तिगोचरैः ॥९८॥
 अहो परमिदं चित्रं निन्दनीयं विरोपतः । नीतः प्राकृतवल्कश्चिद्भ्रूयैवदृष्टयतामयम् ॥९९॥
 इत्युक्ते वचनं वातिर्जगाद् स्थिरमानसः । अहो परममूढत्वं भवत्येदमनुष्ठितम् ॥१००॥
 सुखं प्रसादतो यस्य जीव्यते विभवान्वितः । अकार्यं बान्धुवस्तस्य द्रीयते न मतिः कथम् ॥१०१॥
 आहारं भोजनकामस्य विज्ञातं विपमिश्रितम् । मित्रस्य कृतकामस्य कथं न प्रतिपिष्यते ॥१०२॥

लिए सौंप देगा ॥८७॥ इसे अपनी लोकप्रसिद्ध उज्ज्वल कीर्तिकी भी तो रक्षा करना है अतः यह विद्वान् लोकापवादसे बहुत डरता है ॥८८॥

तदनन्तर परम हर्षको प्राप्त हुई विशाल लोचना सीता हनूमानसे यह वचन बोली कि पराक्रमसे, धैर्यसे, रूपसे और विनयसे तुम्हारी सदृशता धारण करनेवाले कितने वानरध्वज हमारे प्राणनाथके साथ हैं ? ॥८९-९०॥ तब मन्दोदरी बोली कि जो शूरवीर हैं, सत्त्व और यशसे सहित हैं, गुणोंसे उत्कट हैं तथा धीर-वीर हैं ऐसे उत्तम पुरुष स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते ॥९१॥ हे वैदेहि ! तू इसे क्या जानती नहीं है जिससे ऐसा पूछ रही है ? इस भरत क्षेत्र भरमें इसके समान दूसरा वानर ध्वज नहीं है ॥९२॥ विमानों तथा नाना प्रकारके वाहनोंके समूहकी जहाँ अत्यधिक भीड़ होती है ऐसे संग्राममें यह रावणकी परम सहायता करता है ॥९३॥ जिसने महायुद्धमें रावणकी सहायता की है ऐसा यह हनूमान् इस नामसे प्रसिद्ध अखनाका उत्कृष्ट पुत्र है ॥९४॥ एक बार रावण महा विपत्तिमें फँस गया था तब उसके ऐसे अनेक शत्रु विद्याधरोंको इसने अकेले ही मार भगाया था जिनके कि नाम सुननेमात्रसे मनको पीड़ा होती थी ॥९५॥ जिसने चन्द्रनखाकी पुत्री अनंग कुसुमा प्राप्त की है ! जो इतना गम्भीर है कि मनुष्य सदा जिसके दर्शनकी इच्छा करते हैं ॥९६॥ जो यहाँके नागरिक जन रूपी समुद्रको वृद्धिज्ञत करनेके लिए चन्द्रमाके समान मनोहर है और लङ्काका अधिपति रावण जिसे भाईके समान समझता है ॥९७॥ ऐसा यह हनूमान् समस्त संसारमें प्रसिद्ध, उत्कृष्ट गुणोंका धारक है फिर भी भूमि गोचरियोंने इसे दूत बनाया है ॥९८॥ यह बड़े आश्चर्यकी बात है । इससे अधिक निन्दनीय और क्या होगा कि इसे साधारण मनुष्यके समान, भूमि गोचरियोंने दासता प्राप्त करायी है अर्थात् अपना दास बनाया है ॥९९॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर दृढचित्तके धारक हनूमान्ने इस प्रकार कहा कि अहो ! तुमने जो यह कार्य किया है सो परम मूर्खता की है ॥१००॥ जिसके प्रसादसे वैभवके साथ सुखपूर्वक जीवन वितायी जा रहा है वह यदि अकार्य करना चाहता है तो उसे सद्बुद्धि क्यों नहीं दी जाती है ? ॥१०१॥ इच्छानुसार काम करनेवाला मित्र यदि विपमिश्रित भोजन करना चाहता है तो उसे मना क्यों नहीं

भवितव्यं कृतज्ञेन जनेन सुखमीयुषा । वेत्ति स्वार्थं न यस्तस्य जीवितं पशुना समम् ॥१०३॥
 मन्दोदरि परं गर्वं निःसारं वहसे मुधा । यद्ग्रमहिपी भूत्वा दूतीत्वमसि संश्रिता ॥१०४॥
 क्व यातमधुना तत्ते सौभाग्यं रूपमुन्नतम् । अन्यस्त्रीगतचित्तस्य दूतीत्वं संश्रितासि यत् ॥१०५॥
 प्राकृता परमा सा त्वं वर्त्तसे रतिवस्तुनि । महिपीत्वं न मन्येऽहं जाता गौरसि दुर्भगे ॥१०६॥
 मन्दोदरी ततोऽबोचद् कोपालिङ्गितमानसा । अहो तव सद्रोपस्य प्रगल्भत्वं निरर्थकम् ॥१०७॥
 दूतत्वेनागतं सीतां यदि त्वां वेत्ति रावणः । भवेत्प्रकरणं तत्ते जातं यन्नैव कस्यचित् ॥१०८॥
 येनैवेन्दुनखानाथो दैवयोगेन मारितः । पुरस्कृत्य तमेवाप्य कथं सुप्रीवकादयः ॥१०९॥
 भृत्यत्वं दशवक्त्रस्य विस्मृत्य स्वल्पचेतसः । स्थिताः किमथवा कुयुर्वराकाः कालचोदिताः ॥११०॥
 अतिमूढहात्मानो निर्लज्जाः क्षुद्रवृत्तयः । अकृतज्ञा वृथोत्सिकाः स्थितास्ते मृत्युसन्निधौ ॥१११॥
 इत्युक्ते वचनं सीता जगौ कोपसमाश्रिता । मन्दोदरि सुमन्दा त्वमेवं या कथ्यसे वृथा ॥११२॥
 शूरकोविदगोष्ठापु कौर्त्यमानो न किं ल्वया । प्रियो मे पद्मनाभोऽसौ श्रुतोऽप्यङ्कतविक्रमः ॥११३॥
 वज्रावर्तधनुर्घोषं श्रुत्वा यस्य रणागमे । भयञ्जरितकम्पाङ्गाः सीदन्ति रणशालिनः ॥११४॥
 लक्ष्मीधरोऽनुजो यस्य लक्ष्मीनिलयविग्रहः । शत्रुपञ्चचर्यं कर्तुं समर्थो वीक्षणादपि ॥११५॥
 किमत्र बहुनोक्तेन समुत्तीर्य महार्णवम् । पतिरेप समायाति लक्ष्मणेन समन्वितः ॥११६॥

किया जाता है ? ॥१०२॥ सुख प्राप्त करनेवाले मनुष्यको कृतज्ञ होना चाहिए । जो सुखदायकके लाभको नहीं समझता है उसका जीवन पशुके समान है ॥१०३॥ हे मन्दोदरि ! तुम व्यर्थ ही निःसार गर्वं धारण करती हो जो पटराज्ञी होकर भी दूतीका कार्य कर रही हो ॥१०४॥ तुम्हारा वह सौभाग्य तथा उन्नतरूप इस समय कहाँ गया जो परस्त्रीसक्त पुरुषकी दूती बनने बैठी हो ? ॥१०५॥ जान पड़ता है कि तुम रतिकार्यके विषयमें अत्यन्त साधारण स्त्री हो गई हो । अब मैं तुममें महिषीत्व (पट्टरानी पना) नहीं मानता, हे दुर्भगे ! अब तो तुम गौ हो गई हो ॥१०६॥

तदनन्तर जिसका मन क्रोधसे आलिङ्गित हो रहा था ऐसी मन्दोदरीने कहा कि अहो ! अपराधी होकर भी तू निरर्थक प्रगल्भता बता रहा है—बढ़-बढ़कर बात कर रहा है ॥१०७॥ तू दूत बनकर सीताके पास आया है यदि यह बात रावण जान पायेगा तो तेरी वह दशा होगी जो किसीकी नहीं हुई होगी ॥१०८॥ जिसने दैव योगसे चन्द्रनखाके पति-खरदूषणको मारा है उसीको आगे कर ये क्षुद्रचेता सुप्रीवादि रावणकी दासता भूल एकत्रित हुए हैं, सो यमके प्रेरे ये नीच कर ही क्या सकते हैं ? ॥१०९-११०॥ जान पड़ता है कि जिनकी आत्मा अत्यन्त मूढ़तासे उपहत है, जो निर्लज्ज हैं, क्षुद्रचेष्टाके धारक हैं, अकृतज्ञ हैं, और व्यर्थ ही अहंकारमें फूल रहे हैं ऐसे वे सब मृत्युके निकट आ पहुँचे हैं ॥१११॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहने पर सीताने क्रुपित होकर कहा कि हे मन्दोदरि ! तू अत्यन्त मूर्ख है जो इस तरह व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रही है ॥११२॥ शूरवीर तथा विद्वानोंकी गोष्ठीमें जिनकी अत्यन्त प्रशंसा होती है तथा जो अद्भुत पराक्रमके धारक हैं ऐसे मेरे पति रामका नाम क्या तूने नहीं सुना है ? ॥११३॥ रणके प्रारम्भमें जिनके वज्रावर्त धनुषका शब्द सुनकर युद्धमें निपुण मनुष्य ज्वरसे कोपते हुए दुःखी होने लगते हैं ॥११४॥ जिसके शरीरमें लक्ष्मीका निवास है ऐसा लक्ष्मण जिनका छोटा भाई है ऐसा भाई कि जो देखनेमात्रसे शत्रुपञ्चका क्षय करनेमें समर्थ है ॥११५॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हमारा पति लक्ष्मणके साथ समुद्रको तैरकर

परयात्मीयं पतिं युद्धे स्वल्पकैरेव वासरेः । निहतं मम नाथेन जगदुत्कटतेजसा ॥११७॥
 एषा शन्तासि वैधव्यं क्रन्दस्येषा चिरोत्थिता । या त्वं पापतेभर्तुरनुकूलत्वमागता ॥११८॥
 मयदैव्यात्मजा ताम्रमेघमुक्तातिकोपगा । परम क्षोभमायाता कम्पमानाऽधराधरा ॥११९॥
 एका नानासपत्नीनां सहस्रैः सम्भ्रमस्तृशशाम् । अष्टादशभिरत्युग्रैः कोपकम्पितमूर्तिभिः ॥१२०॥
 समं करतलैर्हन्तुमुद्यता वेगधारिभिः । निर्भर्त्सनमतिक्रूरैराक्रोशैः कुर्वती शृशम् ॥१२१॥
 श्रीमांस्तावन्मरुतुजः समुत्थाय जवान्वितः । अवस्थितोऽन्तरे तासां सरितामिव भूधरः ॥१२२॥
 ता दुःखदेवतः सर्वा वैदेहीं हन्तुमुद्यताः । वेदना इव वैद्येन श्रीशैलेन निवारिताः ॥१२३॥
 पादताडितभूभाग विभूपादरचर्जिताः । ययुः क्रूराशयः सर्वां वनितास्ता दृशाननम् ॥१२४॥
 आजनेन ततः सीता प्रणिपत्य महादरम् । विज्ञापिता सुवाक्येन भोजनं प्रति साञ्जना ॥१२५॥
 समर्थितप्रतिज्ञातौ सुनिर्मलमनोरया । अभ्युपागच्छदाहारं कालदेशज्ञानसा ॥१२६॥
 ससागरा मही देवि रामदेवस्य शासने । वर्त्तते तेन नैवेदमन्नं सन्त्यक्तुमर्हसि ॥१२७॥
 एवं हि बोधिता तेन वैदेही करुणावनिः । ऐच्छदन्न यतः साध्वी सर्वाचारविचक्षणा ॥१२८॥
 इरा नाम ततस्तेन चोदिता कुलपालिता । यथाज्ञं प्रवरं श्लाघ्यं नृत्तमानीयतामिति ॥१२९॥
 युक्ता कन्या स्वशिविरं श्रीशैलेन क्षपाक्षये । भानावभुदिते जातो विभीषणसमागमः ॥१३०॥

अभी आता है ॥११९६॥ तू कुल ही दिनोंमें लोकोत्तर तेजके धारक मेरे पतिके द्वारा अपने पतिको युद्धमें मरा हुआ देखेगी ॥११९७॥ जो तू पापमें प्रीति रखनेवाले पतिकी अनुकूलताको प्राप्त हुई है सो इसके फलस्वरूप वैधव्यको प्राप्त होगी और पतिरहित होकर चिरकालतक रुदन करेगी ॥११९८॥ इस प्रकार कठोर वचन कहनेपर जो अत्यन्त कोपको प्राप्त हो रही थी तथा जो कोंपते हुए ओठको धारण कर रही थी । ऐसी मन्दोदरी परम क्षोभको प्राप्त हुई ॥११९९॥ यद्यपि मन्दोदरी एक थी तो भी वह संभ्रमको प्राप्त तथा क्रोधसे कम्पित शरीरको धारण करनेवाली अपनी अठारह हजार सपत्नियोंके साथ सीताको वेगशाली करतलोसे मारनेके लिए उद्यत हुई । वह उस समय अत्यन्त क्रूर अपशब्दोंसे उसका अत्यधिक तिरस्कार कर रही थी ॥१२०-१२१॥ उसी समय लक्ष्मीसे सुशोभित तथा वेगसे युक्त हनुमान् उठकर उन सबके बीचमें उस प्रकार खड़ा हो गया जिस प्रकार कि नदियोंके बीच कोई पर्वत आ खड़ा होता है ॥१२२॥ दुःखकी कारण, तथा सीताको मारनेके लिए उद्यत उन सब स्त्रियोंको हनुमान्ने उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार कि वैद्य वेदनाओंको रोक देता है ॥१२३॥ तदनन्तर जो पैरोसे पृथिवीके प्रदेश ताडित कर रही थी तथा जिन्होंने आभूषण धारण करनेका आदर छोड़ दिया था ऐसी दुष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाली वे सब स्त्रियाँ रावणके पास गई ॥१२४॥

तदनन्तर साधु स्वभावके धारक हनुमान्ने बड़े आदरके साथ सीताको प्रणाम कर उत्तम वचनोंके द्वारा भोजन करनेकी प्रार्थना की ॥१२५॥ सो जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी थी । जिसका मनोरथ निर्मल था और जिसका मन देश कालका ज्ञाता था ऐसी सीताने आहार ग्रहण करना स्वीकृत कर लिया ॥१२६॥ प्रार्थना करते समय हनुमान्ने इस प्रकार समझाया था कि हे देवि ! यह समुद्र सहित पृथिवी राम देवके शासनमें है इसलिए यहाँका यह अन्न छोड़नेके योग्य नहीं है ॥१२७॥ इस प्रकार समझाये जाने पर दयाकी भूमि सीताने अन्न ग्रहण करनेकी इच्छाकी थी, सो ठीक ही है क्योंकि वह पतिव्रता सब प्रकारका आचार जाननेसे निपुण थी ॥१२८ तदनन्तर हनुमान्ने इरा नामकी कुलपालितासे कहा कि शीघ्र ही उत्तम तथा प्रशंसनीय अन्न लाओ ॥१२९॥ इस प्रकार कहने पर कन्या अपने शिविर अर्थात् डेरेमें गई और रात्रि समाप्त होने तथा सूर्योदय होने पर हनुमान्का विभीषणके साथ समागम हुआ ॥१३०॥

आहारो वायुपुत्रेण तत्र भुक्तो मनोहरः । एवं कर्तव्ययोगेन सुहृतांस्ते त्रयो गताः ॥१३१॥
 सुहृत्तैश्च चतुर्थं तु समानोत्तमिरास्त्रिया । आहारं मैथिलीसुकमिति जानन्ति कोविदाः ॥१३२॥
 चन्दनादिभिरालिप्ते भूतले दर्पणप्रभे । पुण्योपकारसम्पन्ने नलिनीपत्रशोभिति ॥१३३॥
 सद्गन्धं त्रियुल स्वच्छं पथ्यं पेयादिपूर्वकम् । स्थात्यादिभिर्महापात्रैः सौवर्णोदिराहृतम् ॥१३४॥
 घृतसूपदक्षिभिः काश्चित्पात्रो राजन्ति पूरिताः । कुन्दपुष्पसम्बुधयैः शालीनां काश्चिदोदनैः ॥१३५॥
 पट्टरसैरुपदशैश्च काश्चिद्रोचनकारिभिः । व्यञ्जनैस्तरलैः काश्चित्पिण्डोवन्धोचितैस्तथा ॥१३६॥
 पयसा सस्कृतैः काश्चिदन्याः परमदाधिकैः । लेह्यैः काश्चिन्महास्वादैरन्याः पञ्चान्निपेचितैः ॥१३७॥
 एवं परममाहारनिरा परिजनान्विता । हनूमन्तं पुरस्कृत्य भ्रातृभावेन धत्सला ॥१३८॥
 महाश्रद्धान्वितस्वान्ता प्रणिपत्य जिनेश्वरान् । सनाथ्य नियमं धीरा ध्यातात्तिसमागमा ॥१३९॥
 निधाय हृदये राममभिरामं पतिव्रता । पवित्राङ्गा दिने सुहृत्के साधुलोकप्रपूजितम् ॥१४०॥
 रविरश्मिकृतोद्योतं सुपवित्र मनोहरम् । पुण्यवर्धनमारोग्यं दिवाभुक्तं प्रशस्यते ॥१४१॥
 निवृत्तभोजनविधिः किञ्चिद्विश्रब्धतां गता । विज्ञापितेति भूयोऽपि सीता पवनसूनुना ॥१४२॥
 आरोह देवि मे स्कन्धे पवित्रे गुणभूषणे । समुह्य नदीनाथं नेष्यामि भवती क्षणात् ॥१४३॥
 पश्य त त्रिभैर्युक्तं राशवं त्वत्परायणम् । भवद्योगसमानन्दं जनोऽनुभवतु प्रियः ॥१४४॥

हनूमान्ने विभोषणके घर ही मनोहर आहार ग्रहण किया । इस प्रकार कर्तव्य कार्य करते हुए तीन सुहृत् निकल गये ॥१३१॥ तदनन्तर चतुर्थ सुहृत्तमें इरा, सीताके भोजनके योग्य आहार ले आई ॥१३२॥ वहाँकी भूमि चन्दनादिसे लीपकर दर्पणके समान स्वच्छ की गई, फूलोंके उपलरसे सजाई गई जिससे वह कमलिनो पत्रके समान सुशोभित हो उठी ॥१३३॥ स्वर्ण आदिसे बने हुए स्थाली आदि बड़े-बड़े पात्रोंमें सुगन्धित, अत्यधिक, स्वच्छ और हितकारी पेय आदि पदार्थ लाये गये ॥१३४॥ वहाँ कितनी ही थालियों थीं, दाल आदिसे भरी हुई सुशोभित हो रहीं थीं, कितनी ही कुन्दके फूलके समान उज्ज्वल धानके भातसे युक्त थी ॥१३५॥ कितनी ही थालियों रुचि बढ़ानेवाले पट्टरसके भोजनोंसे परिपूर्ण थीं, कितनी ही पतलीं तथा कितनी ही पिण्ड बँधनेके योग्य व्यञ्जनोंसे युक्त थीं ॥१३६॥ कितनी ही दूधसे निर्मित, कितनी ही दहीसे निर्मित पदार्थोंसे युक्त थीं, कितनी ही चाटनेके योग्य रवड़ी आदिसे, कितनी ही महास्वादप्रि भोजनोंसे तथा कितनी ही भोजनके बाद सेवन करने योग्य पदार्थोंसे परिपूर्ण थीं ॥१३७॥ इस प्रकार इरा अपने परिजनके साथ उत्तम आहार ले आई, सो हनूमान्को आगे कर जिसके भाईका स्नेह उमड़ रहा था, ऐसी सीताने हृदयमें महाश्रद्धा धारण कर जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया, 'जब तक पतिका समाचार नहीं मिलेगा तब तक आहार नहीं लेंगी' यह जो नियम लिया था उसको बड़ी धीरतासे समाप्त किया । अतिथियोंके समागमका विचार किया, स्नानादिकसे शरीरको पवित्र किया । तदनन्तर अभिराम (मनोहर) रामको हृदयमें धारणकर उस पतिव्रताने दिनके समय साधुजनोंके द्वारा प्रशंसित उत्तम आहार ग्रहण किया, सो ठीक ही है क्योंकि जो सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित है, अतिराय पवित्र है, मनोहर है, पुण्यको बढ़ानेवाला है, आरोग्यदायक है और दिनमें ही ग्रहण किया जाता है ऐसा भोजन ही प्रशंसनीय माना गया है ॥ १३८-१४१॥

तदनन्तर भोजन करनेके बाद जब सीता कुछ विश्रामको प्राप्त हो चुकी तब हनूमान्ने जाकर उससे पुनः इस प्रकार निवेदन किया कि हे देवि ! हे पवित्रे ! हे गुणभूषणे ! मेरे कन्धे पर चढ़ो मैं समुद्रको लॉचकर अभी क्षण भरमें आपको ले चढ़ूँगा ॥१४२-१४३॥ तुम वैभवसे युक्त एवं तुम्हारे

ततोऽञ्जलिपुटं बद्ध्वा रुदती जनकालम्बा । जगादादरसंयुक्ता विचिन्तितयथास्थितिः ॥१४५॥
 'अन्तरेण प्रभोराज्ञां गमनं मे न युज्यते । इत्यवस्थां गता दास्ये तस्मै किमहमुत्तरम् ॥१४६॥
 प्रत्येति नाधुना लोकः शुद्धिं मे सृष्टुना विना । नाथ एव ततः क्लृप्यं मम ज्ञास्यति साम्प्रतम् ॥१४७॥
 थावन्नोपद्रवः कश्चिन्नापते दशवक्त्रकात् । तावद्ब्रह्म द्रुतं भ्रातर्नालम्बनमिह क्षणम् ॥१४८॥
 त्वया मद्ब्रह्मनाद् वाच्यः सम्यक् प्राणमहेश्वरः । अभिधानैरिन्मैर्मुनिं निधाय करकुण्डमलम् ॥१४९॥
 तस्मिन् देव मया सार्द्धं मुनयो व्योमचारिणः । वन्दिताः परमं भक्त्या त्वया स्तवनकारिणा ॥१५०॥
 विमलाम्बसि पद्मिण्या नितरासुपशोभिते । सरसि क्रीडतां स्वेच्छमस्माकमतिमुन्दरम् ॥१५१॥
 आरण्यकस्तदा हस्ती समायातो भयङ्करः । ततो मया समाहृतस्वमुन्मप्रो जलान्तरात् ॥१५२॥
 उद्दामाऽसौ महानागश्चाक्रीडनकारिणा । समस्तं त्याजितो दुर्षं भवता निश्चलीकृतः ॥१५३॥
 आसीच्च नन्दनच्छाये वने पुष्पभरानते । शाखां पल्लवलोभेन नमयन्ती प्रयासिनी ॥१५४॥
 भ्रमद्भिश्चञ्चलैर्दृगैरभिभूता ससम्भ्रमा । भुजाग्यां भवतारिण्य जनिताकुलतोऽिभ्रता ॥१५५॥
 उद्यन्तमन्यदा भानुं माहेन्द्रोदिविभूषणम् । अहमम्भोजपण्डस्य त्वया सह तटे स्थिता ॥१५६॥
 अशंसिपं ततः किञ्चिद्विष्यारसमुपेयुषां । बालेनोत्पलनालेन मधुरं ताडिता त्वया ॥१५७॥
 अन्यदा रतिशैलस्य प्राग्भारस्य मया प्रिय । पृष्टस्त्वमिति विभ्रत्या कौतुकं परशोभया १५८॥
 एतस्मिन् कुसुमैः पूर्णां विपुला स्निग्धतास्रुपः । किन्नामानो द्रुमा नाथ मनोहरणकोविदाः ॥१५९॥

ध्यानमे तत्पर रहनेवाले रामके दर्शन करो तथा प्रेमी जन—मित्रगण आप दोनोके समागमसे उत्पन्न होनेवाले हर्षका अनुभव करें ॥१४४॥ तदनन्तर सब स्थितिका यथायोग्य विचार करनेवाली एवं आदरसे संयुक्त सीताने हाथ जोड़कर रोती हुई यह कहा कि स्वामीकी आज्ञाके बिना मेरा जाना योग्य नहीं है । इस अवस्थामे पड़ी हुई मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगी ॥१४५-१४६॥ इस समय लोग सृष्ट्युके बिना मेरी शुद्धिका प्रत्यय नहीं करेगे, इसलिए प्राणनाथ ही आकर मेरे कार्यको योग्य जानेने ॥१४७॥ हे भाई ! जब तक रावणकी ओरसे कोई उपद्रव नहीं होता है तब तक तू शीघ्र ही यहाँसे चला जा । यहाँ क्षणभर भी विलम्ब मत कर ॥१४८॥ तू हाथ जोड़ मस्तकसे लगा, इन परिचायक कथानकोके साथ-साथ मेरे वचनोंमें प्राणनाथसे अच्छी तरह कहना कि हे देव ! उस वनमें एक दिन स्तवन करते हुए आपने मेरे साथ बड़ी भक्तिसे आकाशगामी मुनियोंकी वन्दना की थी ॥१४९-१५०॥ एक बार निर्मल जलसे युक्त तथा कमलिनियोंसे सुशोभित सरोवरमें हमलोग इच्छानुसार सुन्दर क्रीड़ा कर रहे थे कि इतनेमें एक भयङ्कर जङ्गली हाथी वहाँ आ गया था, उस समय मैंने आपको पुकारा था सो आप जलके मध्यसे तत्काल ऊपर निकल आये थे ॥१५१-१५२॥ और सुन्दर क्रीड़ा करते हुए आपने उस उल्लङ्घ महाहस्तीका सब गर्व छुड़ाकर उसे निश्चल कर दिया था ॥१५३॥ एक बार नन्दनवनके समान सुन्दर तथा फूलोके भारसे झुके हुए वनमें, मैं नूतन पत्रोंके लोभसे प्रयत्नपूर्वक वृक्षको एक शाखाको झुका रही थी । तब उड़ते हुए चञ्चल भ्रमरोंने धावा बोलकर मुझे आकुल कर दिया था, उस समय मुझ बबड़ाया हुईको आपने अपनी भुजाओसे आलङ्गन कर छुड़ाया था ॥१५४-१५५॥ एक बार मैं आपके साथ कमलवनके तटपर वैठी थी उसी समय पूर्व दिशाके आभूषणस्वरूप सूर्यको उदित होता देख मैंने उसकी प्रशंसाकी थी तब आपने कुछ ईर्ष्यारसको प्राप्त हो मुझे नीलकमलकी एक छोटी-सी दंडीसे मधुर रीतिसे ताडित किया ॥१५६-१५७॥ एक बार रतिगिरिके शिखर पर अत्यधिक शोभाके कारण कौतुकको धारण करती हुई मैंने आपसे पूछा था कि हे प्रिय ! इधर फूलोंसे परिपूर्ण, विशाल, स्निग्धताको धारण करनेवाले एवं मनके हरण करनेमें निपुण ये कौनसे वृक्ष है ? ॥१५८-१५९॥ तब इस प्रकार

१. विना । २. साहृतः म० । ३. उद्दामोऽसौ म० । ४. रतिभूता म० ।

ततस्त्वयेति पृष्टेन प्रसन्नमुखशोभिना । आख्यातमिति देव्येते यथा नन्दिद्वुमा इति ॥१६०॥
 कर्णकुण्डलनद्याश्च स्थितास्तीरे वयं यदा । तदा सन्निहितौ जातौ मध्याह्ने च्योमगौ मुनि ॥१६१॥
 त्वया मया च भिक्षार्थं तयोरगतयोस्ततः । अभ्युत्थाय महाश्राद्धं रचितं पूजितं महत् ॥१६२॥
 अन्नं च परमं ताभ्यां दत्तं विधिसमन्वितम् । पञ्च चातिशया जातास्तत्प्रभावेन सुन्दराः ॥१६३॥
 पात्रदानमहोदानं महादानमिति ध्वनिः । अन्तरिक्षेऽमरैश्चक्रे साधु सम्यग्ध्वनिश्रितः ॥१६४॥
 अदृष्टतनुमिदं वैदुर्न्दुभिः सध्वनिः कृतः । पपात गगनाद्बृष्टिः कौसुमां नृजनादिता ॥१६५॥
 सुखशीतो ववौ वायुः सुगन्धिर्वीरजो मृटुः । मणिरस्नसुवर्णार्हा धाराश्रममपूरयत् ॥१६६॥
 चूडामणिमिमं चोद्धृष्टं दृढप्रत्ययकारणम् । दर्शयिष्यसि नाथाय तस्यात्यन्तमयं प्रियः ॥१६७॥
 जानामि नाथ ते भावं प्रसादिनमलं मयि । तथापि यत्नतः प्राणाः पाल्याः सङ्गमनाशया ॥१६८॥
 प्रमादाद्भवतो जातो वियोगोऽयं मया सह । साम्प्रतं त्वयि यत्स्थे सङ्गमो नो विस्मयः ॥१६९॥
 इत्युक्ते रुदतीं सीतां समाश्राप्य प्रयत्नतः । यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा निरैत्सीताप्रदेशतः ॥१७०॥
 पाण्यङ्गुलीयकं सीता तदाशक्तशरीरिका । मानसस्य कृताश्र्वसं मेने पत्युः समागमम् ॥१७१॥
 अथोद्यानगता नार्यंक्षस्तसारङ्गलोचनाः । वायुनन्दनमालोक्य स्मितविक्रितसङ्गताः ॥१७२॥
 परस्परं समालापमिति कर्तुं समुद्यताः । अस्य पुष्पनगस्योद्धुं कोऽप्यहो नरपुङ्गवः ॥१७३॥
 अवतीर्णः किमेपः स्याद्विग्रही कुसुमायुधः । देवः कोऽपि तु शीलस्य शोभां द्रष्टुं समागतः ॥१७४॥

पूछे जाने पर आपने प्रसन्नमुख मुद्रासे सुशोभित हुए कहा था कि हे देवि ! ये नन्दि वृद्ध हैं ॥१६०॥ एक बार हम सब कर्णकुण्डल नदीके तीर पर ठहरे हुए थे, उसी समय मध्याह्न कालमें दो आकाशगामी मुनि निकट आये थे ॥१६१॥ तब आपने और मैंने लठकर, भिक्षाके लिए आये हुए उन मुनियोंकी बड़ी श्रद्धाके साथ विशाल पूजा की थी ॥१६२॥ तथा विधिपूर्वक उन्हें उत्तम आहार दिया था, उसके प्रभावसे वहाँ अत्यन्त सुन्दर पञ्च आश्चर्य हुए थे ॥१६३॥ आकाशमें देवोंने यह मधुर शब्द किये कि अहो ! पात्रदान ही दान है, यही सबसे बड़ा दान है ॥१६४॥ जिनका शरीर दीख नहीं रहा था ऐसे देवोंने दुन्दुभि वाजे बजाये, आकाशसे जिसपर भ्रमर शब्द कर रहे थे ऐसी पुष्पवृष्टि हुई ॥१६५॥ सुखकारी, शीतल, सुगन्धित एवं धूलि रहित कोमल वायु चली थी और मणि, रत्न तथा सुवर्णकी धाराने उस आश्रमको भर दिया था ॥१६६॥ हे भाई ! इसके बाद दृढ़ विरवासका कारण यह उत्तम चूडामणि प्राणनाथको दिखाना, क्योंकि यह उन्हें अत्यन्त प्रिय था ॥१६७॥ ऊपरसे यह सन्देश कहना कि हे नाथ ! आपका मुझपर अतिशय प्रसन्नतासे भरा जो भाव है उसे मैं यद्यपि जानती हूँ तो भी पुनः समागमकी आशासे प्राण प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने योग्य हैं ॥१६८॥ प्रसादके कारण मेरे साथ आपका यह वियोग हुआ है परन्तु इस समय जब कि आप प्रयत्न कर रहे हैं तब हम दोनोंका समागम निःसन्देह होगा ॥१६९॥ इतना कह कर सीता रोने लगी, तदनन्तर उसे प्रयत्नपूर्वक सान्त्वना देकर और 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर हनूमान्, सीताके उस स्थानसे वाहर निकल आया ॥१७०॥ उस समय जिसका शरीर अशक्त हो रहा था ऐसी सीताने अङ्गुलिको हाथमें पहिनकर ऐसा माना था मानो मनको आनन्द देनेवाला पतिका समागम ही प्राप्त हुआ हो ॥१७१॥

अद्यानन्तर उस उद्यानमें भयभीत मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली जो स्त्रियों थी वे हनूमान्को देख मन्द मुसकान और आश्चर्यसे युक्त हो परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगी कि अहो ! इस फूलोंके पर्वतके ऊपर यह कोई श्रेष्ठ पुरुष अवतीर्ण हुआ है सो क्या यह शरीरधारी कामदेव है ? अथवा पर्वतकी शोभा देखनेके लिए कोई देव आया है ? ॥१७२-१७४॥

तासामाकुलिका काचिन्निधाय शिरसि स्वजम् । उपवीणनमारंभे कर्तुं किन्नरनिस्वना ॥१७५॥
 काचिदिन्द्रमुखी वामे हस्तेऽवस्थाप्य दर्पणम् । दिदृक्षन्ती समालोक्य तं बभूवन्थयामनाः ॥१७६॥
 हृष्यत्काचिदभिज्ञाय वधुरिदमचिन्तयत् । अलक्ष्यद्वारसन्मानः कुतो मोक्षतिरागतः ॥१७७॥
 वरस्त्रीजनमुद्याने कृत्वा सम्भ्रान्तमानसम् । हारमात्र्याम्बरधरो भास्वान् वह्निकुमारवत् ॥१७८॥
 निसर्गकान्तया गत्या प्रदेशं किञ्चिदभ्यगात् । तथाविधां च तां वार्त्तामश्रुणोद्वाचसाधिपः ॥१७९॥
 क्रोधसंसृष्टचित्तेन निरपेक्षत्वमोयुषा । तावदाज्ञापिताः शूरा रावणेनोऽप्रकिङ्कराः ॥१८०॥
 विचारेण न वः कृत्यं पुष्पोद्यानशिरेति यः । मद्रोही कोऽप्यथ च्छिप्रं नीयतामन्तमायुषः ॥१८१॥
 अमो ततः समागत्य दध्युर्विस्मयमागताः । किमिन्द्रजिन्नरेशः स्याद्वास्करः श्रवणोऽथवा ॥१८२॥
 परथामस्तावदित्युक्त्वा तैरित्युक्तं समन्ततः । भो भो श्रुत्य निःशेषा उद्यानस्याभिरक्षकाः ॥१८३॥
 किं तिष्ठत सुविश्रन्थाः किङ्कराः कृतित्वां प्रिताः । किमिति श्रुतमस्माभिः कथ्यमानमिदं बहिः ॥१८४॥
 कोऽप्युदामतयोद्यानं प्रविष्टो दुष्टक्षेत्रः । स च्छिप्रं मार्यतामेप गृह्यतां दुर्विनीतकः ॥१८५॥
 धावध्वमसकौ कोऽसौ सोऽयमेव यतः कुतः । कस्य कस्तादृशः स्वैति किङ्करध्वनिरुद्गतः ॥१८६॥
 ततः काशुम्भिकान् दृष्ट्वा शाक्तिकान् गदिकांश्च तान् । खड्गिकान् कौन्तिकान्, बद्धसह्यातानायतो बहून् १८७
 किञ्चित् सम्भ्रान्तधीर्वातिभृगाधिपपराक्रमः । रत्नशाखासृगच्छायासमुद्दीपितपुष्करः ॥१८८॥
 अवरोहंस्ततो देशात्तरदृश्यत किङ्करैः । आकुलत्वविनिर्मुक्तः प्रलम्बं विभ्रदम्बरम् ॥१८९॥

उन स्त्रियोंमें कामसे आकुल होकर कोई स्त्री शिर पर माला रख किन्नरके समान मधुर स्वरसे वीणा बजाने लगी ॥१७५॥ कोई चन्द्रमुखी बाँये हाथमें दर्पण रख उसमें हनुमान्का प्रतिबिम्ब देखने की इच्छा करती हुई अन्यथा चित्त हो गई ॥१७६॥ कोई स्त्री कुछकुछ पढ़िचान कर यह विचार करने लगी कि जिसे द्वारपर सन्मान प्राप्त नहीं हुआ ऐसा यह हनुमान् यहाँ कहाँ आ गया ? १७७॥ इस प्रकार बनमें स्थित उत्तम स्त्रियोंको सम्भ्रान्त चित्त कर हार, माला तथा उत्तम वस्त्रोंको धारण करनेवाला एवं अग्निकुमारके समान देदीप्यमान हनुमान्, अपनी स्वभावसुन्दर चालसे किसी स्थानकी ओर जा रहा था कि रावणने यह सब समाचार सुना ॥१७८-१७९॥ सुनते ही जिसका चित्त आगबबूला हो गया था तथा जो निरपेक्ष भावको प्राप्त हो चुका था—सब प्रकारका स्नेह भुला चुका था ऐसे रावणने उसी समय अपने शूरवीर प्रधान किङ्करोको आज्ञा दी कि तुम लोगोंको विचार करनेसे प्रयोजन नहीं है । पुष्पोद्यानसे जो पुरुष बाहर निकल रहा है वह कोई द्रोही है उसे शीघ्र ही आयुका अन्त कराया जाय—मारा जाय ॥१८०-१८१॥

तदनन्तर किङ्कर आकर आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगे कि क्या यह इन्द्रको जीतनेवाला कोई राजा है, या सूर्य है अथवा श्रवण नक्षत्र है ? १८२॥ अथवा कुछ भी हो चल्कर देखते हैं इस प्रकार कह कर उन्होंने सब ओर आवाज लगायी कि हे उद्यानके समस्त रक्षको ! सुनो, तुम लोग निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हो ? हमने उद्यानके बाहर चर्चा सुनी है कि कोई एक दुष्ट विद्याधर अपनी उदण्डतासे उद्यानमें प्रविष्ट हुआ है सो यह कथा बात है ? उस दुर्विनीतको शीघ्र ही मारा जाय अथवा पकड़ा जाय ॥१८३-१८४॥ रावणके प्रधान किङ्करोंकी बात सुनकर उद्यानके रक्षक किङ्करोंने 'दौड़ो, कौन है वह, यहीं कहीं होगा, वह किसका कौन है ? उसके समान कौन कहाँ है ?' इस प्रकारका हल्ला मचाया ॥१८५॥ उन किङ्करोंमें कोई धनुष लिए हुए थे, कोई शक्ति धारण कर रहे थे, कोई गदाके धारक थे, कोई-तलवारोंसे युक्त थे, कोई भाले संभाले हुए थे, और कोई मुण्डके-मुण्ड बनाकर बहुसंख्यामें आ रहे थे । उन सबको देख हनुमान्को मनमें कुछ सम्भ्रम उत्पन्न हुआ परन्तु वह तो सिंहके समान पराक्रमी था उसने रत्नमयी बानर जैसी कान्तिसे आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥१८७-१८८॥ तदनन्तर आकुलता

ततस्तमुद्यदादित्यमण्डलप्रतिमस्विपम् । प्रदद्याधरमालोक्य विशीर्णाः किङ्करा गणाः ॥१६०॥
 ततः किलपरैः क्रूरैः प्रथयातैः किङ्करादिपैः । तत्किङ्करबलं गच्छदितञ्जेनश्च धारितम् १६१॥
 शक्तिमरचक्रासिगदाक्रमुकपाणय । सर्वतो वास्तृणञ्चेत् मुखराः किङ्करास्ततः ॥१६२॥
 मुमुक्षुश्च धनं शस्त्रं ज्येष्ठवाता यथा बुभुसम् । अदृष्टमास्करोद्योता, परं सङ्घातवर्तिनः ॥१६३॥
 उत्पात्य वायुपुत्रोऽपि निःशक्तो धीरपुङ्गवः । संघातं वृद्धवृक्षाणां शिलानां वारमक्षिपत् ॥१६४॥
 भीमभोगिमहद्भोगमास्वङ्गजवेरितैः । पादपादिभिराहिसन् कालमेव इवोन्नतः ॥१६५॥
 अश्वस्थान् शालन्यप्रोवाञ्चान्दिचम्पककेसरान् । नीपाशोककदम्बांश्च पुञ्जागानर्जुनान् धवान् ॥१६६॥
 आप्रानाम्रातकांझोत्रा (स्तुणराजान्) स्थवीयसैः । विशालान् पनसाद्यांश्च चिचिेष क्षेपत्रजितः ॥१६७॥
 वमङ्ग त्वरितं कांश्चिदपराबुद्धमूल्यत् । मुष्टिपादप्रहारेण पिपेपान्यान् महाबलः ॥१६८॥
 आङ्गुपारसम तेन सैन्यमेकेन तल्लुतम् । समाकुलं गतं क्वापि जणेन प्रियजीवितम् ॥१६९॥
 सहायैर्भृगराजस्य कुर्वतो मृगशासनम् । कियद्भिरपरैः कृत्यं त्यक्त्वा सत्वं सहोद्भवम् ॥२००॥
 पुष्पाद्रेवतीर्णस्य कंकुब्जलयरोधनम् । भूयो युद्धमभू दुर्गं प्रान्तविष्वस्तकिङ्करम् ॥२०१॥

से रहित एवं लटकते हुए लम्बे वस्त्रको धारण करनेवाला हनूमान् जब उद्यानके उस प्रदेशसे नीचे उतर रहा था तब किङ्करोने उसे देखा ॥१८६॥ उस समय क्रोधके कारण हनूमान्की कान्ति उदित होते हुए सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान हो रही थी तथा वह अपना ओठ चवा रहा था । उसे देख किङ्करोके मुण्ड भाग खड़े हुए ॥१९०॥ तदनन्तर जो किङ्करोमें प्रधान क्रूर एवं प्रसिद्ध दूसरे किङ्कर थे उन्होंने इधर-उधर भागते हुए किङ्करोके दलको इकट्ठा किया ॥१९१॥ तदनन्तर जिनके हाथमें शक्ति, तोमर, चक्र, खड्ग, गदा और धनुष थे ऐसे उन किङ्करोने चिल्ला कर सब ओरसे हनूमान्को घेर लिया ॥१९२॥ वे किङ्कर इतनी अधिक भीड़ इकट्ठी कर विद्यमान थे कि उनके कारण सूर्यका प्रकाश भी अदृष्ट हो रहा था । तदनन्तर जिस प्रकार जेठ मासकी वायु भूसा उड़ाती है उसी प्रकार वे अत्यधिक शस्त्र छोड़ने लगे ॥१९३॥ धीरशिरोमणि पवन-पुत्र हनूमान् यद्यपि शस्त्र रहित था परन्तु तो भी उसने बड़े-बड़े वृक्षों और शिलाओंके समूह उखाड़-उखाड़कर फेंके ॥१९४॥ भयंकर शेषनागके शरीरके समान सुशोभित सुजाओंके वेगसे फेंके हुए वृक्ष आदिसे प्रहार करता हुआ हनूमान् उस समय प्रलयकालके उन्नत मेघके समान जान पड़ता था ॥१९५॥ हनूमान् बिना किसी चिलम्बके पीपल, सागौन, वट, नन्दी, चम्पक, बकुल, नीम, अशोक, कदम्ब, नागकेसर, कोहा, धवा, आम, मिलमों, लोघ्र, खजूर तथा कटहल आदिके बड़े मोटे तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको उखाड़कर फेंक रहा था ॥१९६-१९७॥ उस महावलवान्ने कितने ही लोगोको शीघ्र ही खण्डित कर दिया, कितने ही योधाओंको उखाड़ डाला—पैर पकड़कर पछाड़ दिया और कितने ही किङ्करोको लात तथा घुँसोके प्रहारसे पीस डाला ॥१९८॥ उस अकेलेने ही समुद्रके समान भारी सेनाकी वह दशा की कि जिससे वह ध्याकुल हो क्षुभ भरमे प्राण वचाकर कहीं भाग गई ॥१९९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मृगोपर शासन करनेवाले मृगराज—सिंहको अन्य सहायकोकी क्या आवश्यकता है ? और जो स्वाभाविक तेजको छोड़ चुके हैं उन्हें दूसरे सहायकोसे क्या लाभ है—निस्तेज मनुष्यका अन्य सहायक क्या भला कर सकते हैं ? ॥२००॥

तदनन्तर पुष्पगिरिसे नीचे उतरे हुए हनूमान्का दिङ्मण्डलको रोकनेवाला तथा जिसमें

१. वाङ्मयञ्चेत् म० । २. यथाम्बुदम् म० । ३. अतित्यूलान् । ४. सागरसदृशम् । ५. चक्रवर्त्तय-रोधनम् म० ।

सभावापीविमानानामुद्यानोत्तगसन्ननाम् । चूर्णितानां तदाघातैर्भूमयः केवलाः स्थिताः ॥२०२॥
 पादमार्गप्रदेशेषु ध्वस्तेषु वनवेरमसु । महारथ्यापथा जाताः शुक्रसागरसन्निभाः ॥२०३॥
 भ्रमोत्तुङ्गपणश्रेणिः पातितान्नेककिङ्करः । वभूव राजमार्गोऽपि महासग्रामभूससः ॥२०४॥
 पतन्न्रिस्तोरणैस्तुङ्गैः कमिपत्तच्चजपक्तिभिः । वभूवाम्बरमुत्पातादिव अरयत्सुरायुधम् ॥२०५॥
 जङ्घावेगात्समुद्यन्नी रजोभिर्बहुवर्णकैः । इन्द्रायुधसहस्राणि रचितानीव पुष्करे ॥२०६॥
 पाद्वावष्टम्भभिन्नेषु भूभागेषु निमज्जताम् । वभूव गृहशैलानां पातालेष्विव निस्वनः ॥२०७॥
 दृष्ट्वा कञ्चित्करेणान्यं कञ्चित्पादेन किङ्करम् । उरसा कञ्चित्सेन वातेनान्यं जवान सः ॥२०८॥
 आलीयमानमात्राणां किङ्कराणां सहस्रशः । पततामुष्करै रथ्या जाता पूरसमागता ॥२०९॥
 हाहाहीकारगम्भीरः पौराणामुदगतो ध्वनिः । ष्वचिच्च रत्नकूटानां भङ्गात्कणकणस्वनः ॥२१०॥
 वेगेनोपततस्तस्य समाकृष्टमहाध्वजाः । कोपादिबोधयुः पश्चात्कृतघण्टादिनिःस्वनाः ॥२११॥
 उन्मूलितमहालाना वन्नमुः परमा गजाः । वायुमण्डलपर्णानामश्वास्तुल्यत्वमागताः ॥२१२॥
 अधस्तात् स्फुटिता वाप्यः प्राप्ताः पङ्कचशोपताम् । चक्रारूढेव निःशेषा जाता लङ्का समाकुला ॥२१३॥
 लङ्काकमलिनीखण्डं ध्वस्तराक्षसमीनकम् । श्रीशैलवारणो यावद्विचोभ्य वहिराश्रितः ॥२१४॥

निकटवर्ती किङ्कर मारे गये थे ऐसा भयंकर युद्ध पुनः हुआ ॥२०१॥ उस समय हनुमान्के प्रहारसे जो चूर-चूर किये गये थे ऐसे सभा, वापिका, विमान तथा वाग बगीचोसे सुशोभित भकानोंमें केवल भूमि ही शेष रह गई थी ॥२०२॥ उसके पैदल चलनेके मार्गोंमें जो वाग-बगीचे तथा महल थे उन सबको उसने नष्ट कर दिया था, जिससे वे लम्बे-चौड़े मार्ग सुखे समुद्रके समान हो गये थे ॥२०३॥ जहाँ अनेक ऊँची-ऊँची टुकानोंकी पंक्तियाँ तोड़ कर गिरा दी गई थीं, तथा अनेक किंकर मारकर गिरा दिये गये थे ऐसा राजमार्ग भी महायुद्धकी भूमिके समान हो गया था ॥२०४॥ गिरते हुए ऊँचे-ऊँचे तोरणों और कोंपती हुई ध्वजाओकी पंक्तिसे उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो उत्पातके कारण उससे वज्र ही गिर रहा हो ॥२०५॥ जङ्घाओके वेगसे उड़ती हुई रङ्ग विरङ्गी धूलियोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशमें हजारों इन्द्रधनुष ही बनाये गये हों ॥२०६॥ चरणोंके प्रहारसे विदीर्ण हुई भूमिमें महलरूपी पर्वत नीचेको धँस रहे थे जिससे ऐसा भारी शब्द हो रहा था मानो वे महल रूपी पर्वत पातालमें ही धँसे जा रहे हों ॥२०७॥ वह किसी किङ्करको दृष्टिसे मार रहा था, किसीको हाथसे पीस रहा था, किसीको पैरसे पीट रहा था, किसीको वज्रःस्थलसे मार रहा था, किसीको कन्धेसे नष्ट कर रहा था और किसीको वायुसे ही उड़ा रहा था ॥२०८॥ आते ही साथ गिरनेवाले हजारों किंकरोंके समूहसे वह लम्बा चौड़ा मार्ग ऐसा हो गया था मानो उसमें पूर ही आ गया हो ॥२०९॥ कहीं नागरिक जनोका हा हा ही आदिका गम्भीर शब्द उठ रहा था तो कहीं रत्नमयी शिखरोंके टूटनेसे कण-कण शब्द हो रहा था ॥२१०॥ जब हनुमान् ऊपरको छलांग भरता था तब उसके वेगसे बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ खिंचीं चली जाती थीं जिससे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो घण्टाका शब्द करती हुईं क्रोधसे उसके पीछे ही उड़ी जा रहीं हों ॥२११॥ बड़े-बड़े हाथी खम्भे उखाड़ कर ईधर-उधर घूमने लगे और घोड़े वायु मण्डलसे उड़ते हुए पत्तोंकी तुल्यताको प्राप्त हो गये ॥२१२॥ वापिकाएँ नीचेसे फूटकर बह गईं जिससे उनमें कीचड़ मात्र ही शेष रह गया तथा सम्पूर्ण लंका चक्र पर चढ़ी हुईके समान व्याकुल हो उठी ॥२१३॥ जिसमें राक्षसरूपी मीन मारे गये थे ऐसे लंकारूपी कमलवनको क्षोभितकर ज्योंही हनुमानरूपी हाथी बाहर आया ॥२१४॥

तावत्तयद्ववाहेन समं संनह्य वेगतः । पश्चादिन्द्रजितो लम्नो द्विपस्थन्दमभ्यगः ॥२१५॥
 हनूमान्यावदेतेन समं योद्धुं समुद्यतः । प्राप्तं तावदितं तस्य बलं यन्मेघपृष्ठगम् ॥२१६॥
 बाह्यावां भुवि लङ्कामां महाप्रतिभयं रणम् । जातं हनूमतः खेटैः लज्जमण्येव दौषणम् ॥२१७॥
 युक्तं सुचतुररद्वै रथमारुह्य पावनिः । समुद्ध्यत्य शरं सैन्यं राक्षसानामधायत ॥२१८॥
 अनेन्द्रजितवीरेण पार्श्वमैहोरैरैस्सितः^१ । चिरमायोपितो नीतः पुरं किञ्चिद्विचिन्तयन् ॥२१९॥
 ततो नगरलोकेन विश्रब्धं स निरीक्षितः । कुर्वन् भङ्गनमासीथो विद्युहण्डवदीक्षितः ॥२२०॥
 प्रवेशितस्य चास्थान्यां तस्य दोषान् दशाननः । कथ्यमानान् शृणोति स्म तद्विद्विः पुरुषैर्निजे ॥२२१॥
 दूताहूतः समायातः किष्किन्ध स्वपुरादयम् । महेन्द्रनगरध्वंसं चक्रे तं च वयं रिपोः ॥२२२॥
 साधूपसर्गमथने द्वीपे दधिमुखान् ह्वये । गन्धर्वकन्यकास्तित्त्वा पद्मस्यभयनुमोदिताः ॥२२३॥
 विध्वंसं वज्रशालस्य चक्रे वज्रमुखस्य च । कन्यामाम्भिलपन्नस्य बहिरस्थापयद् बलम् ॥२२४॥
 भग्नं पुष्पनगोधानं तत्पात्य^२ विह्वलीकृतः^३ । बहवः किङ्करा ध्वस्ताः प्रंपादि च विनाशितम् ॥२२५॥
 घटस्तनविसुक्तेन पुत्रस्नेहान्निरन्तरम् । पयसा पोषिताः स्त्रीभिर्वृक्षका ध्वंसमाहृताः ॥२२६॥
 वृक्षैर्विजोयिता बह्व्यस्तरलायितपल्लवाः । धरण्यां पतिता भान्ति विधवा इव योषिताः ॥२२७॥
 फलयुष्पनरान्ना विविधास्तत्तृजातयः । रमशाचपादपच्छाया पतेन ध्वसिताः स्थिताः ॥२२८॥

त्योही हाथियोंके रथपर सवार इन्द्रजित मेघवाहनके साथ तैयार होकर शीघ्र ही उसके पीछे लग गया ॥२१५॥ हनूमान् जब तक इसके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ तब तक मेघवाहन के पीछे लगी सेना आ पहुँची ॥२१६॥ तदनन्तर लंकाकी बाह्यभूमिमें हनूमान्का विद्याधरोके साथ उस तरह महाभयङ्कर युद्ध हुआ जिस प्रकार कि लज्जमणका खरदूषणके साथ हुआ था ॥२१७॥ हनूमान् चार घोड़ोंसे जुते रथ पर सवार हो बाण खींचकर राक्षसोंकी सेनाकी ओर दौड़ा ॥२१८॥

अथानन्तर चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद जो चीर इन्द्रजितके द्वारा नागपाशसे बाँध लिया गया था ऐसा हनूमान् कुछ विचार करता हुआ नगरके भीतर ले जाया गया ॥२१९॥ जो पहले तोड़-फोड़ करता हुआ विद्युद्दण्डके समान देखा गया था वही हनूमान् अब नगरवासियोंके द्वारा निश्चिन्ततापूर्वक देखा गया ॥२२०॥ तदनन्तर वह रावणकी सभामें ले जाया गया वहाँ रावणने अपने विद्व पुरुषोंके द्वारा कहे हुए उसके अपराध श्रवण किये ॥२२१॥ विद्व पुरुषोंने उसके विषयमें बताया कि यह दूतके द्वारा बुलाये जाने पर अपने नगरसे किष्किन्ध नगर गया । वहाँसे लंका आते समय इसने राजा महेन्द्रका नगर ध्वस्त किया तथा उसे शत्रुके आधीन किया ॥२२२॥ दधिमुखनामक द्वीपमें मुनियुगलका उपसर्ग दूर किया और गन्धर्वराजकी तीन कन्याएँ रामको बरनेके लिए उत्सुक थीं सो उनका अनुमोदन किया ॥२२३॥ राजा वज्रमुखके वज्रकोटका विध्वंस किया तथा उसकी कन्या लंकासुन्दरोकी स्वीकृत कर उसके नगरके बाहर अपनी सेना रक्खी ॥२२४॥ पुष्पगिरिका उद्यान नष्ट किया, उसकी रत्न स्त्रियोंकी विह्वल किया, बहुतेसे किंकर नष्ट किये और प्रपा-पानी पीने आदिके स्थान विनष्ट किये ॥२२५॥ स्त्रियोंने जिन्हें पुत्रके समान स्नेहसे घट रूपी स्तनोंसे छोड़े हुए जलके द्वारा निरन्तर पुष्ट किया था वे छोटे-छोटे वृक्ष इसने नष्ट कर दिये हैं ॥२२६॥ जिनके पल्लव चञ्चल हो रहे हैं ऐसी लताएँ इसने वृक्षोंसे अलग कर पृथिवीपर गिरा दी है जिससे वे विधवा स्त्रियोंके समान जान पड़ती हैं ॥२२७॥ फल और फूलोंके भारसे झुकी हुई नाना वृक्षोंकी जातियों इसके द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गई हैं जिससे वे

१. महोरगसम्बन्धिभिः । २. वद्धः रिमतः ख० । ३. तत्पाल्या विह्वलाः कृताः व० । ४. प्रपा पानीय-शालिका तत्पृथ्विति ।

अपराधानिमान् श्रुत्वा रावणः कोपमागतः । अवन्ध्यत्तमाहूय विनायां लोहशृङ्खलैः ॥२२६॥
 उपविष्टोऽर्कसङ्घाशो दशास्यः सिंहविष्टरे । पूजायोग्यं पुरा वातिमाक्रोशदिति निर्दयम् ॥२३०॥
 उद्बुद्धोऽयमसौ पापः निरपेक्षपोज्जितः । अयुनैतस्य का द्वाया धिरोतेनेषितेन किम् ॥२३१॥
 व्यापाद्यते न किं द्रुष्टः कर्ता नानागसामयम् । कथं न गणितं पूर्वं मम दाक्षिण्यमुन्नतम् ॥२३२॥
 ततस्तम्भण्डप्रान्तस्थिताः प्रवरविभ्रमाः । महाभाग्या विलासिन्यो नवयौवनपूजिताः ॥२३३॥
 कोपस्मितसमायुक्ता निर्मालितविलोचनाः । विधाय शिरसः कम्पनेवमूचुरनादरात् ॥२३४॥
 प्रसादाद्यस्य यातोऽसि प्रभुतां क्षितिमण्डले । पृथिव्यां विचरन् स्वेच्छं समस्तबलवर्जितः ॥२३५॥
 पुतत्तत्त्वामिनः प्रतीर्भवता दक्षितं फलम् । भूमिगोचरदूतस्य यत्प्राप्तोऽस्यतिनिन्दितम् ॥२३६॥
 सुकृतं दशवक्त्रस्य कथमाधाय घृष्टतः । वसुधादिण्डनकिलौ भवता तौ पुरस्कृतौ ॥२३७॥
 पवनस्य सुतो न त्वं जातोऽस्यन्येन केनचित् । अदृष्टमकुलोनस्य निवेदयति चेष्टितम् ॥२३८॥
 चिह्नानि विद्वजातस्य सन्ति नाज्ञेषु कानिचित् । अनायमाचरन् किञ्चिज्जायते नोचगोचरः ॥२३९॥
 मत्ताः केसरिणोऽरण्ये शृगालानाश्रयन्ति किम् । नहि नीचं समाश्रित्य जीवन्ति कुलजा नराः ॥२४०॥
 सर्वस्वेनापि यः पूज्यो यद्यप्यसकृदागतः । सुचिरादागतो द्रोही त्वं निग्राह्यस्तु वर्तसे ॥२४१॥
 इमैर्निगदितैः क्रोधात् प्रहस्योवाच मारुतिः । को जानाति विना पुण्यनिग्राह्यः को विधेरिति ॥२४२॥

श्मशानके वृद्धोके समान जान पड़ने लगी है ॥२२८॥ हनूमानके इन अपराधोंको सुनकर रावण क्रोधको प्राप्त हुआ तथा विशिष्ट प्रकारके नागपाशसे वेष्टित हुए उसे समीपमे बुलाकर लोहेकी साँकलोंसे बंधवा दिया ॥२२६॥

नदनन्तर सिंहासनपर बैठता, सूर्यके समान देदीप्यमान रावण, पहले जिसको पूजा करता था ऐसे हनूमानके प्रति निर्दयताके साथ इस प्रकार, कठोर वचन बचने लगा ॥२३०॥ कि यह दुराचारी है, पापी है, निरपेक्ष है, निर्लज्ज है, अब इसकी क्या शोभा है ? इसे धिक्कार है, इसके देखनेसे क्या लाभ है ? ॥२३१॥ नाना अपराधोंको करनेवाला यह द्रुष्ट क्यों नहीं मारा जाय ? अरे ! मैंने पहले इसके साथ जो अत्यन्त उदारताका व्यवहार किया इसने उसे कुछ भी नहीं गिना ॥२३२॥ तदनन्तर रावणके समीप ही उत्तम चेष्टाओंसे युक्त महाभाग्यशाली एवं नवयौवनसे सुशोभित जो विलासिनी स्त्रियों खड़ी थीं वे क्रोध तथा मन्द हास्यसे युक्त हो नेत्र बन्द करतीं तथा शिर हिलाती हुई अनादरसे इस प्रकार कहने लगीं कि हे हनूमान् ! तू जिसके प्रसादसे पृथिवीमण्डलपर प्रभुताको प्राप्त हुआ है तथा समस्त प्रकारके बलसे रहित होकर भी पृथिवीपर इच्छानुसार सर्वत्र भ्रमण करता है ॥२३३-२३५॥ उस स्वामीकी प्रसन्नताका तूने यह फल दिखाया है कि भूमिगोचरियोंकी अतिशय निन्दनीय दूतताको प्राप्त हुआ है ॥२३६॥ रावणके द्वारा किये हुए उपकारको पीछे कर तुमने पृथिवीपर परिभ्रमण करनेसे खेदको प्राप्त हुए राम लक्ष्मणको कैसे आगे किया ॥२३७॥ जान पड़ता है कि तू पवनज्ञयका पुत्र नहीं है, किसी अन्यके द्वारा उत्पन्न हुआ है, क्योंकि अकुलीन मनुष्यकी चेष्टा ही उसके अदृष्ट कार्यको सूचित कर देती है ॥२३८॥ जारसे उत्पन्न हुए मनुष्यके शरीरपर कोई चिह्न नहीं होते, किन्तु जब वह खोटा आचरण करता है तभी नीच जान पड़ता है ॥२३९॥ वनमे क्या मदीनभक्त सिंह सियारोकी सेवा करते हैं ? ठीक ही कहा है कि कुलीन मनुष्य नीचका आश्रय लेकर जीवित नहीं रहते ॥२४०॥ तू यद्यपि पहले अनेक बार आया फिर भी सर्वस्वके द्वारा पूज्य रहा परन्तु अबकी बार बहुत काल बाद आया और राजद्रोही बनकर आया अतः निग्रह करनेके योग्य है ॥२४१॥ इन वचनोंसे हनूमानको क्रोध आ गया जिससे वह हँस कर बोला कि कौन जानता है पुण्यके विना विधाताका

स्वयं दुर्मतिना साहमनेनासन्नमृत्युना । इतो दिनैः कतिपयैर्द्रव्यामः क्व प्रयास्यथ ॥२४३॥
 सौमित्रिः सह पञ्चन बलोलुङ्गः समापतन् । न मेव इव संरोद्धुं नगैः शक्तो भवेन्नृपैः ॥२४४॥
 अरुः परसाहारैः कामिकैरमृतोपमैः । याति कश्चिद्यथा नाशमेकेन विषबिन्दुना ॥२४५॥
 अरुः स्त्रीसहस्रोधैरिन्धनैरिव पावकः । परस्त्रीतृणगया सोऽप्यं विनाशं क्षिप्रमेष्यति ॥२४६॥
 या येन भाविता बुद्धिः शुभाशुभगता दृढम् । न सा शक्याऽन्यथाक्त्तुं पुरन्दरसमेरुपि ॥२४७॥
 निरर्थकं प्रियशतैर्दुर्मतौ दीयते मतिः । नूनं विहितमस्मैतद्बिहितेन हतो हतः ॥२४८॥
 प्राप्ते विनाशकालेऽपि बुद्धिर्जन्तोर्विनश्यति । विधिना प्रेरितस्तेन कर्मपाकं विचेष्टते ॥२४९॥
 मर्त्यधर्मा यथा कश्चित्सुगन्धि मधुर पयः । प्रमादी विषसन्निभं पीत्वा ध्वंसं प्रपद्यते ॥२५०॥
 तथाविधो दशास्य त्व परस्त्रीसुखलोलुपः । वचनेन विना क्षिप्रं विनाशं प्रतिपत्स्यते ॥२५१॥
 गुरून् परिजनं बृहान् मित्राणि प्रियवान्धवान् । मात्रादीनपकर्ण्य त्वं प्रवृत्तः पापवस्तुनि ॥२५२॥
 कदाचारसमुद्रे त्वं मदनानवर्तमध्यगः । प्राप्सो नरकपातालं कष्टं दुःखमवाप्स्यसि ॥२५३॥
 स्वया दशास्य जातेन महारत्नश्रवो नृपात् । अन्वयोऽधमपुत्रेण रघुसां ह्यमाहृतः ॥२५४॥
 अनुपालितमर्यादाः चित्वा पूजितचेष्टिताः । पुत्रवा भवतो वंश्यास्त्वं तु तेषां पुलाकवत् ॥२५५॥
 इत्युक्तः क्रोधसंरक्तः खन्नमालोक्य रावणः । जगाद् हुविनीतोऽप्य सुदुर्वचननिर्भरः ॥२५६॥
 त्यक्तमृत्युभयो विशन्नग्रहमत्वं ममाग्रतः । द्राक् खलोकियता मध्ये नगरस्य दुरीहितः ॥२५७॥

निग्राह-दण्ड देने योग्य कौन है ॥२४२॥ जिसकी मृत्यु निकट है ऐसे इस दुर्बुद्धिके साथ स्वयं ही यहाँ कुछ दिनोंमें देखेंगे कहाँ जाओगे ॥२४३॥ प्रचण्ड बलका धारी लक्ष्मण रामके साथ आ रहा है सो जिसप्रकार पर्वत मेघको नहीं रोक सकते उसी प्रकार राजा उसे नहीं रोक सकते ॥२४४॥ जिस प्रकार इच्छानुसार प्राप्त हुए अमृत तुल्य उत्तम आहारोंसे रोग नहीं होने वाला कोई मनुष्य विषकी एक बूँदसे नाशको प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जो ईधनोसे अधिके समान हजारों खियोंके समूहसे रोग नहीं हुआ ऐसा यह दशानन परस्त्रीकी वृष्णासे शीघ्र ही नाशको प्राप्त होगा ॥२४५-२४६॥ जिसने जो शुभ-अशुभ बुद्धि प्राप्त की है उसे इन्द्रके समान पुरुष भी अन्यथा करनेके लिए समर्थ नहीं हैं ॥२४७॥ दुर्बुद्धि मनुष्यके लिए सैकड़ों प्रियवचनोंके द्वारा हितका उपदेश व्यर्थ ही दिया जाता है । जान पड़ता है कि इसकी यह होनहार निश्चित ही है अतः वह अपनी होनहारसे ही नष्ट होता है ॥२४८॥ विनाशका अवसर प्राप्त होनेपर जीवकी बुद्धि नष्ट हो जाती है । सो ठीक है, क्योंकि भवितव्यताके द्वारा प्रेरित हुआ यह जीव कर्मोदयके अनुसार चेष्टा करता है ॥२४९॥ जिस प्रकार कोई प्रमादी मनुष्य विषमिश्रित सुगन्धित मधुर दुग्ध पीकर विनाशको प्राप्त होता है उसी प्रकार हे रावण ! तू परस्त्री सुखका लोभी हुआ विना कुछ कहे ही शीघ्र ही विनाशको प्राप्त होगा ॥२५०-२५१॥ गुरु, परिजन, वृद्ध, मित्र, प्रियबन्धु तथा माता आदिको अनसुना कर तू पापकर्ममें प्रवृत्त हुआ है ॥२५२॥ तू दुराचार रूपी समुद्रमें कामरूपी भ्रमरके बीच फँसकर नीचे नरकमें जावेगा और वहाँ अतिशय दुःख प्राप्त करेगा ॥२५३॥ हे दशानन ! महाराजा रत्नश्रवासे उत्पन्न हुए तुझ अधम पुत्रने राक्षसांका वंश नष्ट कर दिया ॥२५४॥ तुम्हारे वंशज प्रीथिवीपर मर्यादाका पालन करनेवाले प्रशस्त चेष्टाके धारक उत्तम पुरुष हुए परन्तु तू उन सर्वमें झिलकेके समान निःसार हुआ है ॥२५५॥

इस प्रकार कहनेपर रावण क्रोधसे लाल हो गया । वह कृपाणकी ओर देखकर बोला कि यह उदण्ड अत्यधिक दुर्वचनोसे भरा है तथा मृत्युका भय छोड़कर मेरे सामने बड़पन धारण कर रहा है अतः नगरके बीच ले जाकर इस दुष्ट की शीघ्र ही दुर्दशा की जाय ॥२५६-२५७॥

१. सत्यधर्मो म० । २. वमनेन म० । ३. तपकर्मत्वं म० । ४. नु म० ।

४४-२

सशब्दैरायतैः स्यूलेत्रैर्दो रज्जुभिरायतैः । ग्रीवायां हस्तपादे च रेणुस्कृतिविग्रहः ॥२५॥
 वैशितः किङ्करैः श्रुतैर्भ्रम्यतां च गृहे गृहे । हास्यमानः खरैर्वाक्यैः कृतमण्डलसूक्तः ॥२५॥
 इमकं वनिता दृष्ट्वा नराक्ष पुरवासिनः । शोचन्ति कृतधिकारां विकृता कम्पिताननाः ॥२६०॥
 क्षितिगोचरदूतोऽयं सोऽयं दूतः प्रपूजितः । पश्यतैनमित्ति स्वानः पुरे सर्वत्र घोष्यताम् ॥२६१॥
 ततस्तैर्विधाक्रोशैः संप्राप्तः कोपमुत्तमम् । अयासीद् बन्धनं क्षित्वा मोहपाशं यथा यतिः ॥२६२॥
 पादविन्यासमात्रेण भंक्त्वा गोपुरमुन्नतम् । द्वाराणि च तथान्यानि खमुत्पत्य ययौ मुदा ॥२६३॥
 शक्रप्रासादसङ्काशा भवनं रचसां विभोः । हनूमत्पादघातेन विस्तीर्णं स्तम्भसङ्कुलम् ॥२६४॥
 पतता वेशमना तेन यन्त्रितापि महानगैः । धरणी कम्पमानीता पादवेगात्तुघाततः ॥२६५॥
 भूमिसम्प्राप्तसौवर्णप्राकारं रन्ध्रगह्वरम् । वज्रचूर्णितशीलामं जातं दाशसुखं गृहम् ॥२६६॥
 कपिमौलिभृतामीश श्रुत्वैवंविधविक्रमम् । प्रमोदं जानको प्राप्ता विषादं च मुहुर्मुहुः ॥२६७॥
 वज्रोदरी ततोऽवोचत् किं वृथा देवि रोदिषि । सन्त्रोदय शृङ्खलं पश्य यातं मारुतिमम्बरम् ॥२६८॥
 निशम्य वचनं तस्या विकसजेन्नपङ्कजा । गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा निजसैन्यसमागतम् ॥२६९॥
 अचिन्तयदयं वार्तां मखं नाथस्य मे ध्रुवम् । कथयिष्यति यस्यैप गच्छतः प्रवरो जवः ॥२७०॥
 पृष्ठतश्चास्य सानन्दा पुण्याक्षलिममुन्नत । समाधानपरा भूत्वा श्रीरिवेशस्य तेजसाम् ॥२७१॥
 उवाच च प्रहाः सर्वे भवन्तु सुखदास्तव । हतविघ्नश्चिरंजीव भोगवान् वायुनन्दन ॥२७२॥

शब्द करनेवाली लम्बी मोटी लोहेकी सांकलोंसे इसे गरदन तथा हाथों और पैरोंमें कसकर बंधा जाय, घूळिसे इसकी शरीर धूसर किया जाय, दुष्ट किंकर इसे घेर कर कठोर वचनोंसे इसकी हँसी करे तथा घर-घर घुमावे । इस दुर्दशासे यह रो उठेगा ॥२५८-२५९॥ इसे देख खियाँ तथा नगरके लोग धिक्कार देते तथा मुखको विकृत और कम्पित करते हुए इसके प्रति शोक प्रकट करेंगे ॥२६०॥ इसके आगे-आगे नगरमें सर्वत्र यह घोषणा की जाय कि यह वही सम्मानको प्राप्त हुआ भूमिगोचरीका दूत है इसे सब लोग देखें ॥२६१॥

तदनन्तर उन विविध प्रकारके अपशब्दोंसे परम क्रोधको प्राप्त हुआ हनूमान बन्धनको छेड़कर उस प्रकार चला गया जिस प्रकार कि यति मोहरूपी पाशको छेड़ कर चला जाता है ॥२६२॥ वह पैर रखने मात्रसे उन्नत गोपुर तथा अन्य दरवाजोंको तोड़कर हर्ष पूर्वक आकाश में जा उड़ा ॥२६३॥ रावणका जो भवन इन्द्रभवनके समान था वह हनूमानके पैरकी आघातसे इस प्रकार विखर गया कि उसमें खाली खम्भे-ही-खम्भे शेष रह गये ॥२६४॥ यद्यपि वहाँकी पृथिवी बड़े-बड़े पर्वतोंसे जकड़ी हुई थी तथापि चरणोंके वेगके अनुपातसे गिरते हुए उस भवनके द्वारा हिल उठी ॥२६५॥ जिसका स्वर्णमय कोट भूमिमें मिल गया था तथा जिसमें अनेक गहरे गड्ढे हो गये थे ऐसा रावणका घर वज्रसे चूर-चूर हुए पर्वतके समान हो गया ॥२६६॥ मुकुटमें कपिका चिह्न धारण करने वाले वानरवंशियोके राजा हनूमानको इस प्रकारका पराक्रमी सुन सीता हर्षको प्राप्त हुई तथा बन्धनका समाचार सुन बार-बार विषादको प्राप्त हुई ॥२६७॥ तदनन्तर पासमें बैठी हुई वज्रोदरीने कहा कि हे देवि ! व्यर्थ ही क्यों रुदन करती हो ? देखो, वह हनूमान बन्धन तोड़कर आकाशमें उड़ा जा रहा है ॥२६८॥ उसके उक्त वचन सुन तथा अपनी सेनाके साथ हनूमानको जाता देख सीताके नयन-कमल खिल उठे ॥२६९॥ वह विचार करने लगी कि जिसका जाते समय यह तीव्र वेग है ऐसा यह हनूमान अवश्य ही मेरे लिए मेरे नाथकी वार्ता कहेगा ॥२७०॥ इस प्रकार विचार कर सावधान चित्त की धारक सीताने हर्ष पूर्वक हनूमानके पीछे उस प्रकार पुण्याक्षलि छोड़ी जिस प्रकार कि लक्ष्मी तेजके स्वामीके पीछे छोड़ती है ॥२७१॥ साथ ही उसने यह कहा कि हे पवन

मालिनीवृत्तम्

इति सुविहितवृत्ताः पूर्वजन्मगुदाराः सकलभुवनरोषि व्याप्यर्षातिप्रधानाः ।
 अभिसरपरिसुक्ताः कर्म तत्कतुमीशाः जनयति परमं तद्विस्मयं दुर्विचिन्त्यम् ॥२७३॥
 भजत सुकृतसङ्ग तेन निमुच्य सर्वं विरसफलविधायि क्षुद्रकर्म प्रयत्नात् ।
 भवत परमसौख्यास्वादलोभप्रसक्ताः परिजितरविभासो जन्तवः कान्तलीलाः ॥२७४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यग्रीको पद्मपुराणो हनूमत्प्रत्याभिगमनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५३॥

पुत्र ! समस्त ग्रह तेरे लिए सुखदायक हो तथा तू धिञ्जोंको नष्ट कर भोग युक्त होता हुआ चिरकाल तक जीवित रह ॥२७२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिन्होंने पूर्वजन्ममें उत्तम आचरण किया है, जो उदार है, तथा जिनकी कीर्तिका समूह समस्त संसारमें व्याप्त है ऐसे मनुष्य परिश्रमणसे रहित हो वह कर्म करनेके लिए समर्थ होते हैं जो कि बहुत भारी अचिन्तनीय आश्चर्य उत्पन्न करता है ॥२७३॥ इसलिए नीरस फल देनेवाले समस्त लुद्र कर्मको प्रयत्न पूर्वक छोड़ कर एक पुण्यका ही समागम प्राप्त करो जिससे परम सुखके आस्वाद्के लोभी हो, पुरुष अपनी प्रभासे सूर्यकी प्रभाको जीतने वाला एवं मनोहर लीलाओंका धारक होता है ॥२७४॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हनूमान्के लौटने आदिका वर्णन करनेवाला तिरपनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५३॥

चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाससाद् कैष्किन्धं हनूमान् बलमग्रतः । विधाय पुरिविष्वस्तध्वजङ्घनादिचारुतम् ॥१॥
 बहिर्निष्क्रान्तकैष्किन्धिजनसागरवीक्षितः । विवेश नगरं धीरो निसर्गोदारविभ्रमः ॥२॥
 विचिताङ्गान् महायोधान् दृष्टुं नगरयोपिताम् । गवाक्षापितवक्राणां संभ्रमः परमोऽभवत् ॥३॥
 प्राप्य च वासमारम्यं हितो भूत्वा पिता यथा । वातिरावासयत् सैन्यं यथायोग्यं समन्ततः ॥४॥
 ततः सुग्रीवराजेन संगत्य ज्ञापितक्रियः । जगाम पद्मनाभस्य पादमूलं निवेदितुम् ॥५॥
 प्रिया जीवति ते भद्रेत्येवमागत्य मारुतिः । वेदयिष्यति मे साङ्घुरिति चिन्तामुपागतम् ॥६॥
 शीणमप्यभिरामाङ्गं शीयमाणं निरङ्कुशम् । वियोगवह्निना नागं दाबेनैवाकुलीकृतम् ॥७॥
 वर्तमानं महाशोकपाताले द्विष्टविषमम् । पथं वातिरुपासपंन् मूर्धन्यस्तकराम्बुदत् ॥८॥
 प्रथमं वात्सिना हर्षप्रियमाणोरुचक्षुषा । वक्रत्रेण जानकीवातां शिष्टावाचां ततोऽखिला ॥९॥
 अभिज्ञानादिकं सर्वं निवेद्योक्तं स सीतया । चूडामणि नरेन्द्राय समर्प्यागात् कृताधत्ताम् ॥१०॥
 चिन्तयेव हतचङ्गायः निपण्णः श्रान्तवक्त्रे । शोकवल्गान्त इवासीत्स वेणोर्वन्धमलीमसः ॥११॥

अथानन्तर—जिसकी ध्वजाओं और छत्रादिकी सुन्दरता नष्ट हो गई थी ऐसी सेना आगे कर हनूमान् किष्किन्धा नगरीको प्राप्त हुआ ॥१॥ तदनन्तर किष्किन्धा निवासी मनुष्योंकी सागरके समान अपार भीड़ने बाहर निकल कर जिसके दर्शन किये थे, जो धीर था तथा स्वभावसे ही उत्तम चेष्टाओंका धारक था ऐसे हनूमान्ने नगरमें प्रवेश किया ॥२॥ उस समय क्षत-विक्षत शरीरके धारक महायोधाओंको देखनेके लिए जिन्होंने भरोखोंमें मुख लगा रक्खे थे, ऐसी नगर-निवासिनी स्त्रियोंमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ ॥३॥ तत्पश्चात् अपने निवास स्थान पर आकर हनूमान्ने पिताकी तरह हितकारी हो सेनाको सब ओर यथायोग्य ठहराया ॥४॥ तदनन्तर राजा सुग्रीवके साथ मिलकर, लंकामें जो कार्य हुआ था वह उसे बतलाया । तत्पश्चात् समाचार देनेके लिए रामके चरणमूलमें गया ॥५॥ उस समय श्रीराम इस प्रकारकी चिन्ता करते हुए बैठे थे कि सत्पुरुष हनूमान् आकर मुझसे कहेगा कि हे भरत ! तुम्हारी प्रिया जीवित है ॥६॥ अत्यन्त सुन्दर शरीरके धारक राम शीण हो चुके थे तथा उत्तरोत्तर क्षीण होते जा रहे थे । वे वियोगरूपी अग्निसे उस तरह आकुलित हो रहे थे जिस तरह कि दावानलसे कोई हाथी आकुलित होता है ॥७॥ वे महा शोकरूपी पातालमें विद्यमान थे तथा समस्त संसारसे उन्हें द्वेष उत्पन्न हो रहा था । हनूमान् हस्तकमल जोड़कर तथा मस्तकसे लगाकर उनके पास गया ॥८॥ प्रथम तो हनूमान्ने, जिसके विशाल नेत्र, हर्षसे युक्त थे ऐसे मुखके द्वारा जानकीका समाचार कहा और उसके बाद उत्तम वचनोंके द्वारा सब समाचार प्रकट किया ॥९॥ सीताने जो कुछ अभिज्ञान अर्थात् परिचय कारक वृत्तान्त कहे थे वे सब कह चुकनेके बाद उसने राजा रामचन्द्रके लिए चूडामणि दिया और इस तरह वह कृतकृत्यताको प्राप्त हुआ ॥१०॥ वह चूडामणि कान्ति रहित था, सो ऐसा जान पड़ता था मानों चिन्ताके कारण ही उसकी कान्ति जाती रही हो । वह रामके हाथमें इस प्रकार विद्यमान था मानों थककर ही बैठा हो और सीताकी चोटीमें बँधे रहनेसे मलिन हो गया था सो ऐसा जान पड़ता था मानों शोकसे ही दुःखी होकर मलिन हो

पद्मस्याञ्जलिर्वातोऽसौ पतद्वाप्यो हतप्रभः । दशा दष्टो नु पांसो नु वार्ता पृष्टानु संभ्रमात् ॥१२॥
 आसीनमङ्गलावेनं दौर्बल्यविरलाङ्गुली । गलत्किरणधारीष शुशोच धरणीपतिः ॥१३॥
 पूरिताञ्जलिमंशुनामालोकेन तमानने । चक्रे सोऽपि रुदित्वैव नरेशः सलिलाञ्जलिम् ॥१४॥
 प्रियायास्तद्भिज्ञानं यत्राप्यङ्गे नियोजितम् । तेन तस्यापि वैदेहीपरिष्वङ्ग इवामवत् ॥१५॥
 सर्वव्यापी ससुम्नित्रो रोमाञ्चः कर्कशो घनः । अङ्गेष्वसम्भवस्तस्य प्रमोद इव निर्भरः ॥१६॥
 अमृच्छच्च परिष्वज्य मारुति कृतसम्भ्रमः । अपि सत्यं प्रिया प्राणान् धारयत्यतिकोमला ॥१७॥
 जगाद् प्रणतो वातिः नाथ जीवति नान्यथा । मया वार्त्ता समानीता सुखी भव इलापते ॥१८॥
 किन्तु त्वद्विरहोदारदावमध्यविवर्तिनी । गुणौघनिम्नगा बाला नेत्राग्नुकृतदुर्दिना ॥१९॥
 वेणीव्रन्धुच्युतिच्छायमूर्द्धजात्यन्तदुःखिता । सुदुर्निधसती दीनं चिन्तासागरवर्तिनी ॥२०॥
 तन्दूरी स्वभावेन विशेषेण वियोगतः । आराध्यमानिका स्त्रीभिः क्रुद्धाभी रक्षसां विभोः ॥२१॥
 सतत चिन्तयन्ती त्वां त्यक्तसर्वतनुस्थितिः । दुःखं जीवति ते कान्ता कुरु देव यथोचितम् ॥२२॥
 सार्मारिणवच. श्रुत्वा न्दानपद्मवृणश्चिरम् । चिन्तयाकुलितः पद्मो बभूवात्यन्तदुःखितः ॥२३॥
 दौर्बन्धुर्णं च निद्रवस्य स्रस्तालसशरीरभृत् । निनिन्द जीवितं स्वस्य जन्म चानेकया भृशम् ॥२४॥

गया हो ॥११॥ वह प्रभाहीन चूडामणि रामकी अञ्जलिमें पहुँचकर ऐसा लगने लगा मानो अश्रु ही छोड़ रहा हो । रामने उसे बड़ी उत्सुकताके कारण नेत्रोंसे देखा था, या पिया था, या उससे कुराल समाचार पूछा था सो कहनेमें नहीं आता ॥१२॥ दुर्बलताके कारण जिसकी अंगुलियों विरल हो गई थीं ऐसी अञ्जलिमें विद्यमान तथा जिससे किरणरूपी धाराओका समूह भर रहा था ऐसे उस चूडामणिके प्रति रामने शोक प्रकट किया ॥१३॥ तदनन्तर किरणोंके प्रकाशसे जिसने अञ्जलि भर दी थी ऐसे उस चूडामणिको रामने मस्तक पर धारण किया । उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उस चूडामणिने स्वयं रोकर ही जलकी अञ्जलि भर दी हो ॥१४॥ प्रियाके उस अभिज्ञानको रामने अपने जिस अङ्गपर धारण किया उसीने मानो सीताका आलिङ्गन प्राप्त कर लिया था ॥१५॥ उस समय उनके समस्त अङ्गोंमें जिसकी संभावना भी नहीं थी ऐसा सर्वव्यापी, कठोर तथा सघन रोमाञ्च निकल आया मानो हर्षका निर्भर ही फूट पड़ा हो ॥१६॥ रामने वड़े संभ्रमके साथ हनूमान्का आलिङ्गन कर उससे पूछा कि क्या सचमुच ही मेरी कोमलाङ्गी प्रिया प्राण धारण कर रही है—जीवित है ? ॥१७॥ इसके उत्तरमें हनूमानने नम्रीभूत होकर कहा कि हे नाथ ! जीवित है । मैं अन्यथा समाचार नहीं लाया हूँ, हे राजन् ! सुखी होइए ॥१८॥ किन्तु इतना अवश्य है कि गुणोंके समूहकी नदी स्वरूप वह बाला तुम्हारे विरह-रूपी दाधानलके मध्यमें वर्तमान है, अश्रुओंके द्वारा दुर्दिन बना रही है—निरन्तर वर्षा करती रहती है ॥१९॥ वेणीव्रन्धनके छूट जानेसे उसके केश कान्तिहीन हो गये हैं, वह अत्यन्त दुःखी है, धार-धार दीनतापूर्वक सांसे भरती है और चिन्तारूपी सागरमें डूबी है ॥२०॥ वह कुरोद्री तो स्वभावसे ही थी पर अब आपके वियोगसे और भी अधिक कुरोद्री जान पड़ती है । रावणकी क्रोधभरीं स्त्रियों उसकी निरन्तर आराधना करती रहती हैं ॥२१॥ वह शरीरकी सर्व चिन्ता छोड़ निरन्तर आपकी ही चिन्ता करती रहती है । इस तरह हे देव ! आपकी प्रियवल्लभा दुःखमय जीवन व्यतीत कर रही है अतः यथायोग्य प्रयत्न कीजिए ॥२२॥ हनूमानके उक्त वचन सुन कर रामके नेत्रकमल न्दान हो गये । वे बहुत देर तक चिन्तासे आकुलित हो अत्यन्त दुःखी हो बैठे ॥२३॥ शिथिल एवं अलसाये शरीरको धारण करनेवाले राम लम्बी तथा गरम सांस

१. जातोऽसौ म० । २. पृष्ठानुसम्भ्रमात् म० । ३. रुदित्वा च० म० । ४. हे महीपते ! ।
 ५. च्युतच्छाय ख० ।

ततस्तदिक्रितं ज्ञात्वा सौमित्रिदिग्मवर्वात् । किं शोचसि महाबुद्धे कर्तव्ये दीयतां मनः ॥२५॥
 लचयते दीर्घसूत्रम् किष्किन्धनगरप्रभोः । कृताह्वानश्च भूयोऽपि सीताभ्राता चिरायति ॥२६॥
 'दशास्य कस्थ नगरी' श्वो गन्तास्म विसंशयम् । नौभिरर्णवमुत्तीर्य वाङ्मुभ्यामेव वा कुतम् ॥२७॥
 अथोचे सिहनादास्यो मधुरो खेचरो महान् । अभिमानिसमं मैवं भाषिष्ठाः कोविदो भवान् ॥२८॥
 भवतो या गतिः सैव जातास्माकमिहाधुना । अतो निरूप्य कर्तव्यं सर्वेभ्यो हितमादरात् ॥२९॥
 गत्वा पवनपुत्रेण सप्राकारादिगोपुरा । लङ्का विध्वंसिता तेन सोद्यानोपवनान्विता ॥३०॥
 अधुना रावणे क्रुद्धे महाविद्याधराधिपे । सङ्घातमृत्युरस्माकं सम्प्राप्तोऽयं विधेवशात् ॥३१॥
 ऊचे चन्द्रमरीचिश्च परं वचनमूर्जितम् । किं त्वं हरेरिव प्राप्तः सन्त्रासं भृगवत्परम् ॥३२॥
 विभेति दसवक्त्राङ्गः को वासौ किं प्रयोजनम् । अन्यायकारिणस्तस्य वर्तते मृत्युरग्रतः ॥३३॥
 अस्माकं बहवः सन्ति खेचरेन्द्रा महारथाः । विद्याविभवसम्पन्नाः कृताश्रयाः सहस्रशः ॥३४॥
 खयातो घनगतिस्तीव्रो भूतनादो गजस्वनः । क्रूरः केली किलो भीमः कुण्डो गोरतिरङ्गदः ॥३५॥
 नलो नीलो तडिद्वक्त्रो मन्दरोऽशनिर्णवः । चन्द्रज्योतिर्मृगेन्द्रह्रौ वज्रदंष्ट्रो दिवाकरः ॥३६॥
 उल्काङ्गुलदिव्यास्त्रप्रत्युहोऽस्मिन्तपीरुपः । हनूमान् सुमहाविद्यः प्रभामण्डलसुन्दरः ॥३७॥
 महेन्द्रकेतुरभ्युत्समीरणपराक्रमः । प्रसन्नकीर्तिस्त्वृत्तः सुतास्तस्य महाबलाः ॥३८॥

भरकर अपने जीवनकी अनेक प्रकारसे अत्यधिक निन्दा करने लगे ॥२४॥ तदनन्तर उनकी चेष्टा जानकर हनूमान्ने यह कहा कि हे महाबुद्धिमान् ! शोक क्यों करते हो ? कर्तव्यमे मन दीजिए ॥२५॥ किष्किन्ध नगरके राजा सुग्रीवकी दीर्घसूत्रता जान पड़ती है और सीताका भाई भामण्डल वार-वार बुलाने पर भी देर कर रहा है ॥२६॥ इसलिए हम लोग नौकाओं अथवा भुजाओंसे ही शीघ्र समुद्रको तैर कर कल ही निःसन्देह नीच रावणकी नगरी लंकाको चलेगे ॥२७॥

तदनन्तर सिहनाद नामक महाबुद्धिमान् विद्याधरने कहा कि इस तरह अभिमानीके समान मत कहे । आप विद्वान् पुरुष है ॥२८॥ आपकी जो दशा लंकासे हुई है वही इस समय यहाँ हम लोगोंकी होगी इसलिए आदरपूर्वक सब कुल निश्चयकर हितकारी कार्य करना चाहिए ॥२९॥ पवन पुत्र हनूमान्ने कोट, अट्टालिकाएँ तथा गोपुरासे सहित एवं बाग-बगीचोंसे सुशोभित लंकापुरीको नष्ट किया है ॥३०॥ इसलिए महाविद्याधरोंका अधिपति रावण इस समय क्रुद्ध हो रहा है और उसके क्रुद्ध होनेपर दैव वश हम सबको यह सामूहिक मृत्यु प्राप्त हुई है ॥३१॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचि नामक विद्याधरने अत्यन्त ओजपूर्ण वचन कहे कि क्या तुम सिहसे हरिणके समान अत्यन्त भयको प्राप्त हो रहे हो ? ॥३२॥ भयभीत तो रावणको होना चाहिए अथवा वह कौन है और उससे क्या प्रयोजन है ? उसने अन्याय किया है इसलिए मृत्यु उसके आगे नाच रही है ॥३३॥ हमारे पास ऐसे बहुत विद्याधर राजा हैं जो महावेग शाली हैं तथा जिन्होंने हजारों बार अपने चमत्कार दिखाये हैं ॥३४॥ उनके नाम हैं घनगति, तीव्र, भूतनाद, गजस्वन, क्रूर, केलीकिल, भीम, कुण्ड, गोरति, अङ्गद, नल, नील, तडिद्वक्त्र, मन्दर, अशनि, अर्णव, चन्द्रज्योति, मृगेन्द्र, वज्रदंष्ट्र, दिवाकर, उल्का और लाङ्गूल नामक दिव्य अस्त्रोंके समूहसे निर्वाण पौरुषको धारण करनेवाला हनूमान्, महाविद्याओंका स्वामी भामण्डल, तीव्र पवनके समान पराक्रमका धारक महेन्द्रकेतु, अद्भुत पराक्रमी प्रसन्नकीर्ति और उसके महाबलवान् पुत्र । इनके सिवाय किष्किन्धनगरके स्वामी राजा सुग्रीवके और भी अनेक

१. 'दशास्य नगरी' श्वो हि गन्तास्मेति विसंशयम्' म० १-२-भाषिष्ठ भ०-१ ३. सताकापत्रिगोपुरा
 म० । ४. वक्त्रास्यः ख० । ५. गोरतिरंगदः ज० ।

किष्किन्धस्वामिनोऽन्येऽपि सामन्ताः परसौजसः । विद्यन्तेऽर्चतकर्माणो निभृत्वाः शासनैपिणः ॥३६॥
 ततस्त्वद्दहनं श्रुत्वा खेचराश्चक्रुरानतम् । लक्ष्मीधराग्रजं तेन निदग्धुर्विनयान्वितम् ॥४०॥
 श्येष्वाब्धकिरे तस्य वदनेऽन्यकसौम्यके । भ्रुकुटीजालकं भीमं मृत्योरिव लतागृहम् ॥४१॥
 लङ्कायां तेन विन्यस्तां दृष्टिं शोणस्फुरत्विपम् । केतुरेखामिवोद्याताम् राक्षसक्षयशंसिनीम् ॥४२॥
 तामेव च पुनर्यस्तां चिरमध्यस्थतां गते । दृष्टस्थामिनि निजे चापे कृतान्तभ्रूलतोपमे ॥४३॥
 कोपकम्परलथं चास्य केशभारं स्फुरद्युतिम् । निधानमिव कालस्य निरोद्धुं तमसा जगत् ॥४४॥
 तथाविधं च तद्दहनं ज्योतिर्वलयमध्यगम् । जरठीभवदुत्पातप्रभाभास्करसन्निभम् ॥४५॥
 गृहीतगमनकवेडं रक्षसां नाशनायतम् । दृष्ट्वा ते गमने सज्जा जाता सम्भ्रान्तमानसाः ॥४६॥
 राघवाकृतमुवास्ते सम्पूज्येन्दुश्रुतेगिराम् । चलिताः व्योमगाश्चित्रहेतयः सम्पदान्विताः ॥४७॥
 प्रयाणतृणसङ्घातं नाद्रूपरितगह्वरम् । द्वापयित्वा रणौत्सुक्यौ प्रस्थितौ रघुनन्दनौ ॥४८॥
 बहुले मार्गशीर्षस्य पञ्चम्यामुदिते रवौ । सोत्साहैः शकुनैरभिस्तेषां ज्ञेयं प्रयाणकम् ॥४९॥
 दक्षिणावर्त्तनिर्धूमवज्ज्वाला रम्यस्वनः शिखी । परमालङ्कृता नारी सुरभिरेरकोऽनिलः ॥५०॥
 निर्ग्रन्थसंयतरङ्गं गम्भीरं वाजिहेपितम् । घण्टानिस्वजितं कान्तं कलशो दधिपूरितः ॥५१॥

महापराक्रमी सामन्त हैं जो कार्यको प्रारम्भकर बीचमे नहीं छोड़ते, आज्ञाकारी हैं और आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ ३५-३६ ॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचिके वचन सुनकर विद्याधरोने अपने नीचे नेत्र विनयपूर्वक रामके ऊपर लगाये अर्थात् उनकी ओर देखा ॥४०॥ तत्पश्चात् जिसका सौम्यभाव अव्यक्त था ऐसे रामके मुखपर उन्होंने वह भयङ्कर भ्रुकुटीका जाल देखा जो कि यमराजके लतागृह-निकुञ्जके समान जान पड़ता था ॥४१॥ उन्होंने देखा कि श्रीराम लङ्काकी ओर जो लाल-लाल दृष्टि लगाये हुए है, वह राक्षसोका क्षय सूचित करनेके लिए उदित केतुकी रेखाके समान जान पड़ती है ॥४२॥ तदनन्तर उन्होंने देखा कि रामने वही दृष्टि अपने उस सुदृढ़ धनुष पर लगा रक्खी है जो चिरकालसे मध्यस्थताको प्राप्त हुआ है, तथा यमराजकी भ्रुकुटीरूपी लताकी उपमा धारण करनेवाला है । ॥४३॥ उनका केशोंके समूह क्रोधसे कम्पित तथा शिथिल होकर बिखर गया था और ऐसा जान पड़ता था मानो अन्धकारके द्वारा जगत्को व्याप्त करनेके लिए यमराजका खजाना ही खुल गया था ॥४४॥ तेजोमण्डलके बीचमें स्थित उनका उस प्रकारका मुख ऐसा जान पड़ता था मानो प्रलय कालका देदीप्यमान तरुण सूर्य ही हो ॥४५॥ इस तरह राक्षसोंका नाश करनेके लिए जो गमन सम्बन्धी लतावली कर रहे थे ऐसे रामको देखकर उन सब विद्याधारोके मन लुभित हो उठे तथा सब शीघ्र ही प्रस्थान करनेके लिए लयत हो गये ॥४६॥

अथानन्तर रामकी चेष्टाओसे प्रेरित हुए समस्त विद्याधर चन्द्रमरीचिकी वाणीका सन्मान कर आकाशमार्गसे चल पड़े । उस समय वे सब विद्याधर नानाप्रकारके शस्त्र धारण किये हुए थे और उत्तमोत्तम सम्पदाओसे सहित थे ॥४७॥ युद्धकी उत्कण्ठासे युक्त राम और लक्ष्मणने, ध्वनिके द्वारा गुफाओको पूर्ण करनेवाले प्रयाणकालिक बाजे वज्रवा कर प्रस्थान किया ॥४८॥ मार्गशीर्ष वदी पञ्चमीके दिन सूर्योदयके समय उन सबका प्रस्थान हुआ था और प्रस्थान कालमे होनेवाले निम्नाङ्कित शुभ शक्तुनोसे उनका उत्साह बढ़ रहा था ॥४९॥ उस समय उन्होंने देखा कि 'निर्धूम अम्निकी ज्वाला दक्षिणावर्त्तसे प्रव्रलित हो रही है, समीप ही मयूर मनोहर शब्दकर रहा है, उत्तमोत्तम अलंकारोसे युक्त स्त्री सामने खड़ी है, सुगन्धिकी फैलानेवाली वायु बह रही है ॥५०॥ निर्ग्रन्थ मुनिराज सामनेसे आ रहे हैं, आकाशमें छत्र फिर रहा है, घोड़ोंकी गम्भीर

१. कृतकर्माणो ज०, क० । २. चक्रुरानलं ज० । ३. दृष्ट्वा म० । ४. नठरीभव-म० । ५. गमने ज० । ६. सोत्साहं च दापयित्वा म० ।

दक्षिणदितरं दृष्टो वामतो गोमयं नवम् । वायसो विस्फुरत्पक्षो निरुक्तमधुरस्वरः ॥५२॥
 मेरीशङ्करवः सिद्धिर्षयं नन्दं ब्रजं द्रुतम् । निर्विघ्नमिति शब्दाश्च तेषां मङ्गलमुद्युतः ॥५३॥
 चतुर्विन्ध्यः सभायातैः पुर्यमाणो नसश्चरैः । सुग्रीवो गन्तुमुद्युतः सितपक्षविधुपमः ॥५४॥
 नानायागविमानास्ते नानावाहनकैतनाः । ब्रजन्तो व्योम्नि वेगेन वसुः सेचरपुङ्गवाः ॥५५॥
 किष्किन्वाधिपतिर्वातिः शक्यो दुर्मर्षणो नलः । नीलः कालः सुपेणश्च कुमुदाद्यास्तथाः नृपाः ॥५६॥
 पृते ध्वजोपरिन्त्यस्तमहाभासुरवानराः । अग्रमामा इवाकारं प्रवृत्ताः सुमहाबलाः ॥५७॥
 रेजे विराधितस्यापि हारो निर्गर्भमासुरः । जाम्बवस्य महावृक्षो व्याघ्रो सिंहरवस्य च ॥५८॥
 बार्णो मेघकान्तस्य श्रेयाणामन्वयागताः । ध्वजेषु चिह्नतां याता भावाश्चत्रेषु चोच्चवलाः ॥५९॥
 तेषां बभूव तेजस्वी भूतनादः पुरस्सरः । लोकपालोपमस्तस्य स्थितः पश्चान्मरुत्सुतः ॥६०॥
 वृत्तः सामन्तचक्रेण ययात्वं परमौजसः । लङ्कां प्रति ब्रजन्तस्ते रेवुः सज्जातस्मदाः ॥६१॥
 सुकेशननयाः पूर्वं लङ्कां माल्यादयो यथा । विमानशिखरारूढाश्चेलः पद्मादयो नृपाः ॥६२॥
 पार्श्वस्थः पद्मनाभस्य विराधितनमदचरः । पृष्ठतो जाम्बवस्तस्यौ सचिर्वरन्वितो निजैः ॥६३॥
 वामे सुजे सुपेणश्च सुग्रीवो दक्षिणे स्थितः । निमेषेण च सम्प्राप्ता वेल्न्धरमहोदधरम् ॥६४॥
 वेल्न्धरपुरत्वामां समुद्रो नाम तत्र च । नलस्य परमं युद्धमातिष्यं समुपानयम् ॥६५॥

हिनहिनाहट फेल् रही है, धण्टाका मधुर शब्द हो रहा है, दहीसे भरा कलश सामनेसे आ रहा है ॥५१॥ वायों और नवीन गोचरको धार-धार विशेरता तथा पङ्क्तियों फैलाता हुआ काक मधुर शब्द कर रहा है ॥५२॥ मेरी और शङ्करा शब्द हो रहा है, सिद्धि हो, जय हो, समृद्धिमान् होओ, तथा किसी विघ्न-बाधाके बिना ही शीघ्र प्रस्थान करो ! इत्यादि मङ्गल शब्द हो रहे हैं ॥५३॥ इन मङ्गलरूप शुभशक्तियोंसे उन सबका उत्साह वृद्धिगत हो रहा था । चारों दिशाओंसे आये हुए विद्याधरोंसे जिसकी सेना बढ़ रही थी और इसीलिए जो शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी उगम धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव चलनेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥ जो नाना प्रकारके यान और विमानोंसे सहित थे तथा जिनका वाहनों पर नाना प्रकारकी पताकाएँ फहरा रही थीं ऐसे वे सब विद्याधर राजा वेगसे आकाशमें जाते हुए अत्यधिक सुरोभित हो रहे थे ॥५५॥ किष्किन्ध-नगरके राजा सुग्रीव, हनुमान्, शक्य, दुर्मर्षण, नल, नील, काल, सुपेण तथा कुमुद आदि राजा आकाशमें उड़ै जा रहे थे, सो जिनकी ध्वजाओंमें अत्यन्त देदीप्यमान बानरके चिह्न थे ऐसे ये महाबलवान् विद्याधर ऐसे जान पड़ते थे मानो आकाशको त्रसनेके लिए ही उद्यत हुए हों ॥५६-५७॥ विराधितकी ध्वजामें निर्भरके समान हार, जाम्बवके ध्वजामें महावृक्ष, सिंहरवकी ध्वजामें व्याघ्र, मेघकान्तकी ध्वजामें हाथी तथा अन्य विद्याधरोंकी ध्वजाओंमें वंश-परम्परासे चले आये अनेक चिह्न सुरोभित थे । ये सभी उज्ज्वल छात्रोंके धारक थे ॥५८-५९॥ अत्यन्त तेजस्वी भूतनाद उनके आगे चल रहा था और लोकपालके समान हनुमान् उसके पीछे स्थित था ॥६०॥ यथायोग्य सामन्तोंके समूहसे घिरे, परम तेजस्वी तथा हर्षसे भरे वे सब विद्याधर लङ्का जाते हुए अत्यधिक सुरोभित हो रहे थे ॥६१॥ जिस प्रकार पहले सुकेशके पुत्र माल्य आदि ने लङ्काकी ओर प्रयाण किया था उसी प्रकार राम आदि राजाओंने विमानोंके अग्रभागपर आरूढ़ हो लङ्काकी ओर प्रयाण किया ॥६२॥ विराधित विद्याधर रामकी बगलमें स्थित था और अपने मन्त्रियोंसे सहित जाम्बव उनके पीछे चल रहा था ॥६३॥ वायें हाथकी ओर सुपेण और दाहिने हाथकी ओर सुग्रीव स्थित था । इस प्रकार व्यवस्थासे चलते हुए वे सब निमेष मात्रमें वेल्न्धर नामक पर्वतपर जा पहुँचे ॥६४॥ वेल्न्धर नगरका स्वामी समुद्र नामका विद्याधर था

ततो नलने सस्रपद्मं जित्वा निहतसैनिकः । बद्धो बाहुबलाढ्येन समुद्रः खेचरः परः ॥६६॥
 सम्पूज्य च पुनमुक्तः पद्मनाभस्य शासने । स्थापितोऽवस्थिताश्वैते पुरे तत्र यथोचितम् ॥६७॥
 सत्यश्रीः कमला चैव गुणमाला तथापराः । रत्नचूला तथा कन्या समुद्रेण प्रमोदिना ॥६८॥
 कल्पिताः । पुरुषोभाङ्गा योषिद्गुणविभूषिताः । लक्ष्मीधरकुमाराय सुरस्त्रीसमविभ्रमाः ॥६९॥
 तत्रैका रजनीं स्थित्वा सुवेलमचलं गताः । सुवेलनगरे तत्र सुवेलो नाम खेचरः ॥७०॥
 जित्वा तमपि सहस्रांसे हेलामात्रेण खेचराः । चिक्रीडमुदितास्तत्र त्रिदशा इव नन्दने ॥७१॥
 तत्राद्ययवने रम्ये सुखेनाक्षेपितक्षपाः । अन्येद्युःख्यता गन्तुं लङ्का तेन सुविभ्रमाः ॥७२॥
 तुह्यप्राकारयुक्तां तां हेमसदासमाकुलाम् । कैलासशिखराकारैः पुण्डरीकैर्विराजिताम् ॥७३॥
 विचित्रैः कुट्टिमतलैरालोकैनावभासतीम् । पद्मोद्यानसमायुक्तां प्रपादिकृत्विभूषणाम् ॥७४॥
 चैत्यालयैरलङ्कितानां नानावर्णसमुज्ज्वलैः । विभूषितां पवित्रां च महेन्द्रनगरीसमाम् ॥७५॥
 लङ्कां दृष्ट्वा समासज्जां सर्वं खेचरपुङ्गवाः । हंसद्वीपकृतावाता बभूवुः परमोदयाः ॥७६॥
 युद्धे हंसरथ तत्र विजित्य सुमहाबलम् । रम्ये हंसपुरे क्रीडां चक्रुरिच्छानुगामिनीम् ॥७७॥
 मुहुः प्रेषितदूतौऽयमद्य श्वो वा विशंसयम् । भामण्डलः समायातीत्येवमाकांक्षयास्थिताः ॥७८॥

मन्दाक्रान्ता

यं यं देशं विहितसुकृताः प्राणभाजः श्रयन्ते तस्मिस्तस्मिन् विजितरिपवो भोगसङ्गं भजन्ते ।
 नद्येतेषां परजनमतं किञ्चिद्दापयुत्तानाम् सर्वं तेषां भवति मनसि स्थापितं हस्तसक्तम् ॥७९॥

सो उसने परम युद्धके द्वारा नलका आतिथ्य किया ॥६५॥ तदनन्तर बाहुबलसे युक्त नलने
 सद्दाके साथ उसके सैनिक मार डाले और उसे बंध लिया ॥६६॥ तदनन्तर रामका आज्ञाकारी
 होनेपर उसे सन्मानित कर छोड़ दिया तथा उसी नगरका राजा बना दिया । राम आदि सन्त
 लोग भी उसके नगरमें यथायोग्य ठहरे ॥६७॥ राजा समुद्रकी सत्यश्री, कमला, गुणमाला और
 रत्नचूला नामकी कन्याएँ थीं जो उत्तम शोभासे युक्त थीं, स्त्रियोंके गुणोंसे विभूषित थीं तथा
 देवाङ्गनाओंके समान जान पड़ती थीं । हर्षसे भरे राजा समुद्रे ने सब कन्याएँ लक्ष्मणके लिए
 समर्पित की ॥६८-६९॥ उस नगरमें एक रात्रि ठहरकर सब लोग सुवेलगिरिको चले गये ।
 वहाँ सुवेल नगरमें सुवेल नामका विद्याधर राज्य करता था ॥७०॥ सो उसे भी युद्धमें अनायास
 जीतकर विद्याधरीने हर्षित हो वहाँ उस प्रकार क्रीडा की जिस प्रकार कि देव नन्दन वनमें रहते
 हैं ॥७१॥ वहाँ अक्षय नामक मनोहर वनमें कुरालता पूर्वक रात्रि व्यतीत कर दूसरे दिन उत्तम
 शोभाको धारण करनेवाले विद्याधर लङ्का जानेके लिए उद्यत हुए ॥७२॥

तदनन्तर जो ऊँचे प्राकारसे युक्त थी, सुवर्णमय भवनोसे व्याप्त थी, कैलासके शिखरके
 समान सफेद कमलोंसे सुशोभित थी, नाना प्रकारके फसों और प्रकाशसे देदीप्यमान थी, कमल
 वनोंसे युक्त थी, प्याऊ आदिकी रचनाओंसे अलंकृत थी, नाना रङ्गोंसे उज्ज्वल ऊँचे-ऊँचे जिन-
 मन्दिरोंसे अलंकृत तथा पवित्र थी और महेन्द्रकी नगरीके समान जान पड़ती थी ऐसी लङ्काको
 निकटवर्तिनी देख परम वैभवके धारक विद्याधर हंसद्वीपमें ठहर गये ॥७३-७६॥ वहाँके हंसपुर
 नामा नगरमें महाबलवान् राजा हंसरथको जीतकर सबने इच्छानुसार क्रीडा की ॥७७॥ जिसके
 पास बार-बार दूत भेजा गया है ऐसा भामण्डल आज या कल अवश्य आ जावेगा इस प्रकार
 प्रतीक्षा करते हुए सब वहाँ ठहरे थे ॥७८॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि पुण्यात्मा प्राणी जिस-जिस देशमें जाते हैं उसी-उसी देशमें वे
 शत्रुओंको जीतकर भोगोंका समागम प्राप्त करते हैं । उद्यमशील पुण्यात्मा जीवोंके लिए कोई भी

तस्माद् भोगं भुवनविकटं भोक्तुकामेन कृत्यः । श्लाघ्यो धर्मो जिनवरमुखाद्दुद्गतः सर्वसारः ।
 आस्तां तावत्स्वयंपरिचितो भोगसङ्गोऽपि मोक्षम् । धर्मादस्माद्ब्रजति रवितोऽप्युज्ज्वलं भव्यलोकः ॥८०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे लङ्काप्रस्थानं नाम चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५४॥

वस्तु परके हाथमें नहीं रहती । समस्त मनचाही वस्तुएँ उनके हाथमें आ जाती हैं ॥७६॥ इसलिए जो भव्य संसारमें उत्तम भोग भोगना चाहता है उसे जिनेन्द्रदेवके सुखारविन्दसे उदित सर्व-
 श्रेष्ठ प्रशंसनीय धर्मका पालन करना चाहिए । क्योंकि भोगोंका नश्वर संगम तो दूर रहा वह इस धर्मके प्रभावसे सूर्यसे भी अधिक उज्ज्वल मोक्षको प्राप्त कर लेता है ॥८०॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लंकाके लिए प्रस्थानका
 वर्णन करनेवाला चौवनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाभ्यर्णस्थितं ज्ञात्वा प्रतिसैन्यबलं पुरु । युगान्तान्भोषिवेलेव लङ्का चोभमुपागतम् ॥१॥
सम्भ्रान्तमानसः किञ्चित्कोपमाद्य दशाननः । चक्रे रणकर्यां लोको वृद्बन्धव्यवस्थितः ॥२॥
महार्णवर्वा भेर्यस्ताडिताः सुभयावहाः । दूर्यशङ्खस्वनस्तुहो यन्नाम गगनङ्गणे ॥३॥
रणभेरीनिनादेन परं प्रमुदिता भटाः । सन्नद्धा रावणं तेन प्राप्ता स्वामिहितैषिणः ॥४॥
मारीचोऽमलचन्द्रश्च भास्करः स्यन्दनो विभुः । तथा हस्तप्रहस्ताद्याः सन्नद्धाः स्वामिनं श्रिताः ॥५॥
अथ लङ्केश्वरं वीरं सद्गामाय समुद्यतम् । विभीषणोऽभ्युपागम्य प्रणम्य रचिताक्षलिः ॥६॥
शास्त्रानुगतमैत्थुर्द्धं शिष्टानामविसम्मत्तम् । आयत्यां च तदात्वे च हितं स्वस्य जनस्य च ॥७॥
शिवं सौम्याननो वाक्यं पदवाक्यविशारदः । प्रमाणकोविदो धीरः प्रशान्तमिदमब्रवीत् ॥८॥
विस्तीर्णां प्रवरा सम्पन्महेन्द्रस्येव ते प्रभोः । स्थिता च रोदसी व्याप्य कीर्तिः कुन्ददलामला ॥९॥
खीहेतोः क्षणमात्रेण सेयं मागाः परिच्यम् । स्वामिन् सन्ध्याभ्ररेखेव प्रसीद परमेश्वर ॥१०॥
क्षिप्रं समर्प्यतां सीता तव किं कार्यमेतथा । दृश्यते न च दोषोऽत्र प्रस्पष्टःकेवलो गुणः ॥११॥
सुखोदयौ निमग्नरूढं स्वस्थस्तिष्ठ विचक्षण । अनवद्यो महाभोगस्तवात्मीयं समन्ततः ॥१२॥

अथानन्तर शत्रुकी बड़ी भारी सेनाको निकटमे स्थित जानकर लंका, प्रलयकालीन समुद्रकी वेलाके समान चोभको प्राप्त हुई ॥१॥ जिसका चित्त संभ्रान्त हो रहा था ऐसा रावण कुछ क्रोधको प्राप्त हुआ और झुण्डोंके बीच बैठे हुए लोग रणकी चर्चा करने लगे ॥२॥ जिनका शब्द महासागरकी गर्जनाके समान था ऐसी भय उत्पन्न करने वाली भेरियों वजाई गई तथा तुरही और शङ्खोंका विशाल शब्द आकाशरूपी अङ्गणमें घूमने लगा ॥३॥ इस रणभेरीके शब्दसे परम प्रभोदको प्राप्त हुए, स्वामीके हितचिन्तक योद्धा तैयार होकर रावणके समीप आने लगे ॥४॥ मारीच, अमलचन्द्र, भास्कर, स्यन्दन, हस्त, प्रहस्त आदि अनेक योद्धा कवच धारण कर स्वामीके पास आये ॥५॥

अथानन्तर लंकाके अधिपति वीर रावणको युद्धके लिए उद्यत देख विभीषण उसके समीप गया और हाथ जोड़ प्रणामकर शास्त्रानुकूल, अत्यन्त श्रेष्ठ, शिष्ट मनुष्योंके लिए अत्यन्त इष्ट, आगामी तथा वर्तमान कालमें हितकारी, आनन्दरूप एवं शान्तिपूर्ण निम्नाङ्कित वचन कहने लगा । विभीषण, सौम्यमुखका धारी, पदवाक्यका विद्वान्, प्रमाणशास्त्रमें निपुण एवं अत्यन्त धीर था ॥६-८॥ उसने कहा कि हे प्रभो ! आपकी संपदा इन्द्रकी संपदाके समान अत्यन्त विस्तृत तथा उत्कृष्ट है और आपकी कुन्दकलीके समान निर्मल कीर्ति आकाश एवं पृथिवीको व्याप्त कर स्थित है ॥६॥ हे स्वामिन् ! हे परमेश्वर ! परस्त्रीके कारण आपकी यह निर्मल कीर्ति संध्याकालीन मेघकी रेखाके समान क्षणभरमे नष्ट न हो जाय अतः प्रसन्न होओ ॥१०॥ इसलिए शीघ्र ही सीता रामके लिए सौंप दी जाय । इससे आपको क्या कार्य ही है ? सौंप देनेमें दोष नहीं दिखायी देता किन्तु गुण ही स्पष्ट दिखायी देता है ॥११॥ हे बुद्धिमन् ! तुम तो सुखरूपी सागरमे निमग्न हो सुखसे बैठो । तुम्हारे अपने सब महाभोग सब ओरसे निर्दोष

समाने जानकी तस्मिन् पद्मनाभे नियुज्यताम् । निजः प्रकृतिसम्बन्धः सर्वथैव प्रशस्यते ॥१३॥
 श्रुत्वा तदिन्द्रजिह्वाक्यं जगाद पितृचित्तवित् । स्वभावात्यन्तमानाढ्यमागमप्रतिकूलनम् ॥१४॥
 साधो केनासि पृष्टस्त्वं कोऽधिकारोऽपि वा तव । येनैवं भापसे वाक्यमुन्मत्तगदितोपमम् ॥१५॥
 अत्यन्तं यद्यधीरस्त्वं भीरुश्च क्लीबमानसः । स्ववैरमंविधरे स्वस्थस्तिष्ठ किं तव भापितैः ॥१६॥
 यदर्थं मत्तमातङ्गमहावृन्दाभनकारिणि । पतद्विधिघण्टावै सङ्ग्रामेऽत्यन्तभीषणे ॥१७॥
 हत्वा शत्रून् समुद्रवृत्तास्तीक्ष्णया खड्गधारया । भुजेनोपाउर्यते लक्ष्मीः सुकृच्छ्राद् वीरसुन्दरी ॥१८॥
 सुदुर्लभामिदं प्राप्य तत्खीरलमनुत्तनम् । मूढवन्मुच्यते कस्मात् त्वयाऽव्यर्थमुदाहृतम् ॥१९॥
 ततो विभीषणोऽनोचदिति निर्भर्त्सनोद्यतः । पुत्रनामासि शत्रुस्त्वमस्य दुःस्थितचेतसः ॥२०॥
 महाशीतपरीतस्त्वमजानन् हितमात्मनः । अन्यचिन्तातुरोधेन हिमवारिणि मज्जसि ॥२१॥
 उद्गतं भवने वल्लिं शुष्कैः पूर्यसीन्धनैः । अहो मोहग्रहातंस्य विपरीतं तवेहितम् ॥२२॥
 जाम्बूनदमयो यावत्सप्रकारविमानिका । लक्ष्मणेन शरैस्तीक्ष्णैर्लङ्का न परिचूष्यते ॥२३॥
 तावन्तुपसुतां साध्वीं पद्माय स्थिरचेतसे । क्षेमाय सर्वलोकस्य युक्तमप्यतिष्ठं दूतम् ॥२४॥
 नैया सीता समानीता पित्रा तव कुटुम्बिना । रक्षोभोगिविलं लङ्कामेपानीता विप्रीपथिः ॥२५॥
 सुमित्रानन्दनं क्रुद्धं तं लक्ष्मीधरऽज्ञवम् । सिंहं रणमुखे शक्ता न यूयं व्यूहितु गजाः ॥२६॥

हैं ॥१२॥ श्रीराम यहाँ पधारते हैं सो उनका सम्मानकर सीता उन्हें सौंप दी जाय क्योंकि अपने स्वभावका सम्बन्ध ही सर्व प्रकारसे प्रशंसनीय है ॥१३॥

तदनन्तर पिताके चित्तको जाननेवाला इन्द्रजित् विभीषणके उक्त वचन सुन, स्वभावसे ही 'अत्यन्त मानपूर्ण तथा आगमके विरुद्ध निम्नाङ्कित वचन बोला ॥१४॥ उसने कहा कि हे भले पुरुष ! तुमसे किसने पूछा है ? तथा तुम्हें क्या अधिकार है ? जिससे इस तरह उन्मत्तके वचनोंके समान वचन बोले जा रहे हो ? ॥१५॥ यदि तुम अत्यन्त अधीर-डरपाँक या नपुंसक जैसे दीनहृदयके धारक हो तो अपने घरके थिलमें आरामसे बैठो । तुम्हें इस प्रकारके शब्द कहनेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१६॥ जिसके लिए मद्दोन्मत्त हाथियोंके भुण्डसे अन्धकार युक्त, पड़ते हुए अनेक शखोंके समूहसे सहित एवं अत्यन्त भयदायक संभ्रामसे तलवारकी पैनी धारासे उदण्ड शत्रुओंको मारकर अपनी सुजाओ द्वारा बड़े कष्टसे वीर सुन्दरी लक्ष्मीका उपाजन किया जाता है ऐसे उस सर्वोत्कृष्ट अत्यन्त दुर्लभ स्त्री-रत्नको पाकर मूर्ख पुरुषकी तरह क्यों छोड़ दिया जाय ? इसलिए तुम्हारा यह कहना व्यर्थ है ॥१७-१६॥

तदनन्तर डॉट दिखानेमें तत्पर विभीषणने इस प्रकार कहा कि तू मलिनचित्तको धारण करनेवाले इस रावणका पुत्र नामधारी शत्रु है ॥२०॥ तू अपना हित नहीं जानता हुआ महाशीत की बाधासे युक्त हो दूसरेकी इच्छानुसार शीतल जलमें डूब रहा है गोता लगा रहा है ॥२१॥ तू गृहमें लगी अग्निको रूखे इन्धनसे पूर्ण कर रहा है, अहो ! मोहरूपी पिशाचसे पीड़ित होनेके कारण तेरी विपरीत चेष्टा हो रही है ॥२२॥ इसलिए यह कोट तथा उत्तम भवनासे युक्त सुवर्णमयी लङ्का जबतक लक्ष्मणके वाणोंसे चूर नहीं की जाती है तबतक गम्भीर चित्तके धारक रामके लिए शीघ्र ही पतिव्रता राजपुत्री-सीताका सौंप देना सब लोकोके कल्याणके लिए उचित है ॥२३-२४॥ तेरा दुर्बुद्धि पिता यह सीता नहीं लाया है किन्तु राक्षसरूपी सर्पोंके रहनेके लिए थिलस्वरूप इस लङ्का नगरीमें विषकी औषधि लाया है ॥२५॥ लक्ष्मीधरोंमें श्रेष्ठ एवं क्रोधसे युक्त लक्ष्मण सिद्धके समान है और तुम लोग हाथियोंके तुल्य हो अतः रणके अग्रभागमें उसे

अर्णवाहं धनुर्ष्यस्य यस्यादित्यमुखाः शराः । पक्षे भामण्डलो यस्य स कथं जीयते जनैः ॥२७॥
 ये तस्य प्रणतास्तुङ्गाः खेचराणां महाधिपाः । महेन्द्रा मलयार्स्ताराः श्रीपर्वततनूरुहाः ॥२८॥
 किष्किन्धाखिपुरा रत्नद्वीपवेलन्धरालकाः । कैलीकिला खतिलका सन्ध्याह्वाः हैहयास्तथा ॥२९॥
 प्राग्भारतधिवक्त्राश्च तथायै सुमहाबलाः । विद्याविभवसम्पन्नास्ते तु विद्यावरा न किम् ॥३०॥
 एवं प्रचदमानं तं क्रोधपेरितमानसः । उत्खाय रावणः खड्गमुद्रतो ह्यनुसुद्यतः ॥३१॥
 तेनापि कोपवश्येन दृष्टान्तेनोपदेशने । उन्मूलितः प्रचण्डेन स्तम्भो वज्रमयो महान् ॥३२॥
 युद्धार्थमुद्रतापैतौ आतरात्रुप्रतेजसौ । सचिवैर्वारितौ कृच्छ्राङ्गतौ स्वं स्वं निवेशनम् ॥३३॥
 कुम्भकर्मोन्द्रजिन्मुख्यैरैतैः प्रत्यायितस्ततः । जगाद् रावणो विभ्रन्मानसं पीरुपाशयम् ॥३४॥
 आश्रयाश्च^१ इव स्वस्य स्थानस्थाहिततत्परः । दुरात्मा मत्पुरीतोऽयं परिनिःक्रामतु द्रुतम् ॥३५॥
 अनर्थोद्यतचित्तं स्थितेन किमिहामुना । स्वाह्वेनापि न मे कृत्यं प्रतिकूलप्रवृत्तिना ॥३६॥
 तिष्ठन्तमिह मृत्युं चेदेतर्कं न नयाम्यहम् । ततो रावण एवाहम् न भवामि विसंशयम् ॥३७॥
 श्रीरत्नश्रवसः पुत्रः सोऽप्यहं न भवामि किम् । इत्युक्त्वा निर्ययी मानी लङ्कातोऽयं विभीषणः ॥३८॥
 साम्प्रतिश्रौक्षस्त्राभिः^३ त्रिशद्भिः परिवारितः । अज्ञोहिर्णाभिरुद्युक्तो गन्तुं पन्नस्य संश्रयम् ॥३९॥
 विद्युद्घनेभञ्जोन्द्रप्रचण्डचपलाभिधाः । उद्गाताशनिसङ्घाताः कालाद्याश्च महाबलाः ॥४०॥
 शूराः परमसामन्ता विभीषणसमाश्रयाः । सान्तः पुराः ससर्वैश्च नानाशस्त्रविराजिताः ॥४१॥

घेरनेके लिए तुम समर्थ नहीं हो ॥२६॥ जिसके पास सागरावर्त धनुष और आदित्यमुख वाण हैं तथा भामण्डल जिसके पक्षमें है वह तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२७॥ जो महेन्द्र, मलय, तीर, श्रीपर्वत, किष्किन्धा, त्रिपुर, रत्नद्वीप, वेलन्धर, अलका, कैलीकिल, गगनतिलक, संध्या, हैहय, प्राग्भार तथा दधिमुख आदिके बड़े-बड़े अभिमानी राजा तथा विद्याविभवसे सम्पन्न अतिशय बलवान् अन्य नृपति उन्हें प्रणाम कर रहें हैं—उनसे जा मिले हैं, सो क्या वे विद्याघर नहीं हैं ॥२८-३०॥ इस प्रकार उच्च स्वरसे कहनेवाले विभीषणको मारनेके लिए उधर क्रोधसे भरा रावण तलवार उभार कर खड़ा हो गया ॥३१॥ और इधर उपदेश देनेके लिए जिसका दृष्टान्त दिया जाता था ऐसे महाबलवान् विभीषणने भी क्रोधके वशीभूत हो एक वज्रमयी बड़ा खम्भा उखाड़ लिया ॥३२॥ युद्धके लिए उद्यत, उग्र तेजके धारक इन दोनों भाइयोंको मन्त्रियोंने बड़ी कठिनाईसे रोका । तदनन्तर रोके जाने पर वे अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥३३॥

तत्पश्चात् कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् आदि मुख्य-मुख्य आप्त जनोने जिसे विश्वास दिलाया था ऐसा रावण कठोर चित्तको धारण करता हुआ बोला कि जो अग्निके समान अपने ही आश्रयका अहित करनेमें तत्पर है ऐसा यह दुष्ट शीघ्र ही मेरे नगरसे निकल जावे ॥३४-३५॥ जिसका चित्त अनर्थ करनेमें उद्यत रहता है ऐसे इसके यहाँ रहनेसे क्या लाभ है ? मुझे तो विपरीत प्रवृत्ति करनेवाले अपने अङ्गसे भी कार्य नहीं है ॥३६॥ यहाँ रहते हुए इसे यदि मैं मृत्युको प्राप्त न कराऊँ तो मैं रावण ही नहीं कहलाऊँ ॥३७॥

अथानन्तर 'क्या मैं भी रत्नश्रवाका पुत्र नहीं हूँ' यह कहकर मानी विभीषण लङ्कासे निकल गया ॥३८॥ वह सुन्द्र शस्त्रोंको धारण करनेवाली कुल अधिक तीस अक्षौहिणी सेनाओंसे परिवृत्त हो रामके समीप जानेके लिए उद्यत हुआ ॥३९॥ विद्युद्घन, इभवज, इन्द्रप्रचण्ड, चपल, काल, महाकाल आदि जो बड़े-बड़े शूरवीर सामन्त विभीषणके आश्रयमें रहनेवाले थे वे वज्रमय शस्त्र उभारकर अपने-अपने अन्तःपुर और सारभूत श्रेष्ठ धन लेकर नाना शस्त्रोंसे सुशो-

१. पौरुषाशयम् म० । २. अग्निरिव, आश्रयस्य ख०, म० । ३. शस्त्राभिः ख० ।

प्रजन्तो बाहनैश्चित्रैश्छादयित्वा नभस्तलम् । परिच्छदसमायुक्ताः हंसद्वीपं समागताः ॥४२॥
 द्वीपस्य तस्य पर्यन्ते सुमनोज्ञे ततस्तटे । ते सरिच्छुम्बिते तस्थुः सुरा नन्दीश्वरे यथा ॥४३॥
 विभीषणागमे जाते जातो वानरिणां महान् । हिमागमे दरिद्राणामिवाकम्पः समन्ततः ॥४४॥
 समुद्रावर्तंशुसूर्गहासं लक्ष्मीशुदैक्षत । वज्रावर्तं धनुः पद्मः परामृशदुदावरः ॥४५॥
 अमन्त्रयन्त सम्भूय मन्त्रिणः स्वैरमाकुलाः । सिंहाद्वैमिव व्रतं वृन्दधन्मगमाद् बलम् ॥४६॥
 युवा विभीषणैनाथ दण्डपाणिर्विचक्षणः । प्रेषितः पद्मनाथस्य सकाशं मधुरावरः ॥४७॥
 समायासुपविष्टोऽसौ कृतप्रणतिराहृतः । निजगादासुपूर्वेण विरोधं आसुसम्भवम् ॥४८॥
 इति चावेदयन्नाथ तव पद्म विभीषणः । पादौ विज्ञापयत्येवं धर्मकार्यसमुद्यतः ॥४९॥
 भवन्तं शरणं भक्तः प्राप्तोऽहं श्रितवत्सल । आज्ञादानेन मे तस्मात्प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥५०॥
 प्रदेशान्तरमेतस्मिन् प्रतीहारेण आपिते । सम्मन्त्रो मन्त्रिभिः सादं पद्मस्यैवमजायत ॥५१॥
 मत्तिकान्तोऽववीतपद्मं कदाचिच्छदमनैपकः । प्रेषितः स्याद्वशास्येन विचित्रं हि वृषेहितम् ॥५२॥
 परस्परविधाताद्वा कलुषत्वमुपागतम् । प्रसादं पुनरप्येति कुलं जलमिव भ्रुवम् ॥५३॥
 ततो मत्तिसमुद्रेण जगदे मतिशालिना । विरोधो हि तयोर्जातः श्रूयते जनवक्त्रतः ॥५४॥
 धर्मपक्षो महार्हातिः शास्त्राम्बुच्छालिताश्रयः । अनुग्रहपरो नित्यं श्रूयते हि विभीषणः ॥५५॥
 सौन्दर्यकारणं नात्र कर्महेतुः प्रथक् प्रथक् । सततं तत्प्रभावेण स्थिता जगति चित्रता ॥५६॥

भित होते हुए चल पड़े ॥४०-४१॥ नाना प्रकारके वाहनोंसे आकाशको आच्छादित कर अपने परिवारके साथ जाते हुए वे हंसद्वीपमें पहुँचे ॥४२॥ और नदियोंसे सुशोभित उस द्वीपके सुन्दर तट पर इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि देव नन्दीश्वर द्वीपमें ठहरते हैं ॥४३॥ जिस प्रकार शीतकालके आनेपर दरिद्रोंके शरीरमें सब ओरसे कँपकँपी छूटने लगती है उसी प्रकार विभीषणका आगमन होते ही वानरोंके शरीरमें सब ओरसे कँपकँपी छूटने लगी ॥४४॥ सागरावर्त धनुषको धारण करनेवाले लक्ष्मणने सूर्यहास खड्गकी ओर देखा तथा उत्कृष्ट आदर धारण करनेवाले रामने वज्रावर्त धनुषका स्पर्श किया ॥४५॥ घबड़ाये हुए मन्त्री एकत्रित हो इच्छासुसार मन्त्रणा करने लगे तथा जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर हाथियोंकी सेना भुण्डके रूपमें एकत्रित हो जाती है उसी प्रकार वानरोंकी समस्त सेना भयभीत हो भुण्डके रूपमें एकत्रित होने लगी ॥४६॥

तदनन्तर विभीषणने अपना बुद्धिमान् एवं मधुरभाषी द्वारपाल रामके पास भेजा ॥४७॥ बुलाये जानेपर वह सभामे गया और प्रणाम कर बैठ गया । तदनन्तर उसने यथाक्रमसे दोनों भाइयोंके विरोधकी बात कही ॥४८॥ तत्पश्चात् यह कहा कि हे नाथ ! हे पद्म ! सदा धर्म कार्यमें उद्यत रहनेवाला विभीषण आपके चरणोंमें इस प्रकार निवेदन करता है कि हे आश्रितवत्सल ! मैं भक्तिसे युक्त हो आपकी शरणमें आया हूँ, सो आप आज्ञा देकर मुझे कृतकृत्य कीजिए ॥४९-५०॥ इस प्रकार जब द्वारपालने कहा तब रामके निकटस्थ मन्त्रियोंके साथ इस तरह उत्तम सलाह हुई ॥५१॥ मत्तिकान्त मन्त्रीने कहा कि कदाचित् रावणने जलसे इसे भेजा हो क्योंकि राजाओंकी चेष्टा विचित्र होती है ॥५२॥ अथवा परस्परके विरोधसे कलुषताकी प्राप्त हुआ कुल, जलकी तरह निश्चित ही फिरसे प्रसाद (पक्षमें स्वच्छता) को प्राप्त हो जाता है ॥५३॥ तदनन्तर बुद्धिशाली मत्तिसागर नामक मन्त्रीने कहा कि लोगोंके मुखसे यह तो सुना है कि इन दोनों भाइयोंमें विरोध हो गया है ॥५४॥ सुना जाता है कि विभीषण धर्मका पक्ष ग्रहण करनेवाला है, महानीतिमान् है, शास्त्ररूपी जलसे उसका अभिप्राय धुला हुआ है और निरन्तर अनुग्रह-रूपकार करनेमें तत्पर रहता है ॥५५॥ इसमें भाईपना कारण नहीं है किन्तु अपना प्रथक्-प्रथक् कर्म ही

प्रकृतोऽस्मिन् स्वभाष्यान् श्रुतो कुस्त नैषिक । गिरिगोभूतिनामानावभूतो बटुकी किल ॥५७॥
 तस्मिन् सूर्यदेवस्य राक्षी नाम्ना मतिप्रिया । अददाद् व्रतकं ताभ्यामिदं सुकृतवान्छुया ॥५८॥
 भोदनच्छादिते हेमपूर्णे पृथुकपालिके । गिरिः सुवर्णमालोक्त्य लोभादितरमक्षिणोत् ॥५९॥
 अन्त्यब्ध खलु कौशम्ब्यां वणिग्नाम्ना बृहद्घनः । तन्नायौ कुरुविन्दाख्या तस्य पुत्रौ बभूवतुः ॥६०॥
 अहिदेवमर्हादेवौ तौ मृते जनके गतौ । सुयनौ यानपात्रेण विभवच्छेदभीरुकौ ॥६१॥
 सर्वभाष्येन तौ रत्नमेकमानयतां परम् । यस्य तज्जायते हस्ते स जिवांसति होतरम् ॥६२॥
 परस्परं च दुश्चिन्तां तौ विवेद्य समं गतौ । मात्रे चानीय तद्गत्वं विरागाभ्यां समर्पितम् ॥६३॥
 माता विप्रेण तौ हन्तुमैच्छद्दयोधमिता पुनः । कालिन्ध्यां तैर्विरकेस्तद्गत्वं त्रिसं भयोऽगिलत् ॥६४॥
 आनाथिकगृहीतोऽसौ विक्रीतस्तद्गृहे पुनः । ततस्तयोः स्वसा मस्य छिन्द्याना रत्नमैवत ॥६५॥
 मातरं भ्रातरौ वैषा विष्यान्कुरु ततोऽलपत् । लोभमोहप्रभावेण स्नेहाच्च शममागता ॥६६॥
 प्राग्वा विश्रुत्पूर्वं तद्गत्वं ज्ञाताकृताः परस्परम् । संसारभावनिर्विण्णाः समस्तास्ते प्रवन्नतुः ॥६७॥
 तस्माद्द्रव्यादिलोभेन भ्रात्रादीनामपि स्फुटम् । ससारे जायते वैरं यौनवन्धो न कारणम् ॥६८॥
 दरयते वैरमेतस्मिन् दैवयोगापुनः शमः । गोभूतिः सोदरो लोभाद्विरिणा हत एव सः ॥६९॥
 तस्मात्प्रवितदूतोऽयं महाशुद्धिविभीषणः । आनीयतां न योनीयदृष्टान्तोऽत्र परिस्फुटः ॥७०॥

कारण है। कर्मके प्रभावसे ही संसारमें यह विचित्रता स्थित है ॥५६॥ इस प्रकरणमें तुम एक कथा सुनो—नैषिक नामक ग्राममें गिरि और गोभूति नामक दो ब्राह्मणोंके बालक थे ॥५७॥ उसी ग्राममें राजा सूर्यदेवकी रानी मतिप्रियाने पुण्यकी इच्छासे एक व्रतके रूपमें उन दोनों बालकोंके लिए मिट्टीके बड़े-बड़े कपालोंमें स्वर्ण रखकर तथा ऊपरसे मात ढककर दान दिया। उन दोनों बालकोंमें से गिरि नामक बालकने देख लिया कि इन कपालोंमें स्वर्ण है तब उसने स्वर्णके लोभ से दूसरे बालकको मार डाला और उसका स्वर्ण स्वयं ले लिया ॥५८-५९॥ दूसरी कथा यह है कि कौशम्बी नामा नगरीमें एक बृहद्घन नामका वणिक रहता था। कुरुविन्दा उसकी स्त्रीका नाम था और उससे उसके अहिदेव और मर्हादेव नामके दो पुत्र हुए थे। जब उन पुत्रोंका पिता मर गया तब वे जहाजमें बैठकर कहीं गये। 'सूनेमें कोई धन चुरा न ले' इस भयसे वे अपना सारभूत धन साथ ले गये थे। वहाँ सब बर्तन आदि बेचकर वे एक उत्तम रत्न लाये। वह रत्न दोनों भाइयोंमें से जिसके हाथमें जाता था वह दूसरे भाईको मारनेकी इच्छा करने लगता था ॥६०-६२॥ दोनों भाई अपने छोटे विचार एक दूसरेको बताकर साथ-ही-साथ घर आये और दोनोंने विरक्त होकर वह रत्न माताके लिए दे दिया ॥६३॥ माताने भी विष देकर पहले उन दोनों पुत्रोंको मारनेकी इच्छा की परन्तु पीछे चल्कर वह ज्ञानको प्राप्त हो गई। तदनन्तर माता और दोनों पुत्रोंने विरक्त होकर वह रत्न यमुना नदीमें फेंक दिया जिसे एक मच्छने निगल लिया ॥६४॥ उस मच्छको एक धीवर पकड़ लाया जो इन्हीं तीनोंके घर बेचा गया। तदनन्तर इनकी बहिनने मच्छको काटते समय वह रत्न देखा ॥६५॥ सो लोभ और मोहके प्रभावसे वह माता तथा दोनों भाइयोंको विष देकर मारनेकी इच्छा करने लगी, परन्तु स्नेहवशा पीछे शान्त होगई ॥६६॥ तदनन्तर परस्पर एक दूसरेका अभिप्राय जानकर उन्होंने उस रत्नको पत्थरसे चूर-चूरकर फेंक दिया और उसके बाद संसारकी दशासे विरक्त हो सभी ने दीक्षा धारण कर ली ॥६७॥ इस कथासे यह स्पष्ट सिद्ध है कि द्रव्य आदिके लोभसे भाई आदिके बीच भी संसारमें वैर होता है इसमें योनि सम्बन्ध कारण नहीं है ॥६८॥ इस कथामें वैर दिखाई तो दिया है परन्तु दैवयोगसे पुनः शान्त होता गया है और पूर्व कथामें गिरिने अपने सगे भाई गोभूतिको मार ही डाला है ॥६९॥ इसलिये दूत भेजनेवाले इस महाशुद्धिमान् विभी-

१. नैषिके म० । २. उदन ज०, ख० । ३. यमुनाया । ४. शममागताः म० । ५. ज्ञाताकृताः म० ।

ततो दण्डिनमाहूय जगुरेत्विति तेन च । गत्वा निवेदिते प्राप्ते पथं रत्नश्रवणसुतः ॥७१॥
 ऊचे विभीषणो नत्वा प्रभुः त्वमिह जन्मनि । परत्र जिननाथश्च मयाय निश्चयः प्रभो ॥७२॥
 समये हि कृते तेन प्रोचे रामो विसंशयम् । योजयामि त्वक लङ्कां भव सन्देहवर्जितः ॥७३॥
 विभीषणसमायोगे वर्त्तते श्रावदुरसवः । तावत्सिद्धमहाविद्यः प्राप्तः पुष्पवतीसुतः ॥७४॥
 प्रभामण्डलमायात विजयाद्वैष्णवाधिपम् । पथादयः परं दृष्ट्वा समानर्तुः प्रभाविणम् ॥७५॥
 निर्वाह्य दिवसान्वष्टौ नगरे हंसनामनि । सम्यग्निश्चितकर्तव्या लङ्कामियुष्ममवजन् ॥७६॥
 स्यन्दनैर्विधिषैर्यनिः स्थूरीपृष्ठैर्मरुजवैः । प्रावृषेण्यघनच्छायैरनेकपकदम्बकैः ॥७७॥
 अनुरागोक्तैर्भूर्यैः धीरैः सन्नाहभूषणैः । ययुः खेचरसामन्ताः समन्ताच्छत्रपुष्कराः ॥७८॥
 अग्रप्रायाणकन्यस्ताः प्रवीराः कपिकेतवः । सङ्घप्रामथरणी प्रापुस्तद्योन्यत्वमुदाहृतम् ॥७९॥
 विशतिथोजनान्यस्या रुन्द्रतापरिकीर्तितः । आयामस्य तु नैवास्ति परिच्छेदो रणक्षितेः ॥८०॥
 नानायुधविचिह्नानां सहस्रैरुपलक्षिता । मृत्युचक्रमणिधमेव ममवर्त्तत युद्धशूः ॥८१॥
 ततो नागाद्वर्षद्विहानां दुन्दुभीनां च निःस्वनम् । श्रुत्वा हर्षं दशस्योऽगाधिरागैरणोत्सवः ॥८२॥
 आज्ञादानेन चाक्षेयान् सामन्तान्सर्मबोभवत् । नहि ते वञ्छितास्तेन युद्धानन्देन जातुचित् ॥८३॥
 भास्कराभाः पथोदाह्वानः काञ्चना श्योमवह्वभाः । गन्धर्वगीतनगराः कम्पनाः शिवमन्दिराः ॥८४॥

षणको बुलाया जाय । इसके विषममें योनि सम्बन्धी दृष्टान्त स्पष्ट नहीं होता अर्थात् एक योनिसे उत्पन्न होनेमे कारण जिस प्रकार रावण दुष्ट है उसी प्रकार विभीषणको भी दुष्ट होना चाहिये यह बात नहीं है ॥७०॥

तदनन्तर द्वारपालको बुलाकर सबने कहा कि विभीषण आवे । तत्पश्चात् द्वारपालके द्वारा जाकर खबर दी जानेपर विभीषण रामके पास आया ॥७१॥ उसने आते ही प्रणामकर कहा कि हे प्रभो ! मेरा यह निश्चय है कि इस जन्ममें आप मेरे स्वामी हैं और पर जन्ममें भी श्री जिनेन्द्र देव ॥७२॥ जब विभीषण निरल्लताकी शपथ कर चुका तब रामने संशय रहित होकर कहा कि युद्धे लंकाका राजा बनाऊंगा, सन्देह रहित होओ ॥७३॥ इधर विभीषणका समागम होनेसे जब तक उत्सव मनाया जा रहा था तब तक उधर अनेक महाविद्याओंको सिद्ध करनेवाला पुष्पवतीका पुत्र भामण्डल आ पहुँचा ॥७४॥ विजयार्थके अधिपति, परम प्रभावशाली भामण्डल को आया देख राम आदिने उसका अत्यधिक सन्मान किया ॥७५॥ तदनन्तर उस हंस नामक नगरमें आठ दिन वित्ताकर और अपने कर्तव्यका अच्छी तरह निश्चितकर सबने लंकाकी ओर प्रयाण किया ॥७६॥

अथानन्तर रथों, नाना प्रकारके वाहनो, वायुके समान वेगशाली घोड़ों, वर्षाकालीन मेवोंके समान कान्तिवाले हाथियोंके समूहो, अनुरागसे भरे भूतयो और कवचरूपी आभूषणोंसे विभूषित वीर योद्धाओंके द्वारा जिन्होंने आकाशको सब ओरसे आच्छादित कर लिया था ऐसे विद्याधर राजा बड़े उत्साहसे आ रहे थे ॥७७-७८॥ वे सबके आगे चलनेवाले अत्यन्त वीर बानरवंशी राजा युद्धकी भूमिमें सबसे पहले जा पहुँचे सो यह उनके लिये उचित ही था ॥७९॥ इस रणभूमिकी चौड़ाई बीस योजन थी और लम्बाईका कुछ परिमाण ही नहीं था ॥८०॥ नाना प्रकार शस्त्र और विविध चिह्नोंको धारण करनेवाले हजारों योद्धाओंसे सहित वह युद्धकी भूमि मृत्युके चक्ररत्नकी भूमिके समान जान पड़ती थी ॥८१॥ तदनन्तर जिसे चिरकाल बाद रणका उत्सव प्राप्त हुआ था ऐसा रावण हाथी, घोड़े, सिंह और दुन्दुभियोंका शब्द सुन मरम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८२॥ उसने आज्ञा देकर समस्त सामन्तोंका आदर किया सो ठीक ही है क्योंकि उसने उन्हें युद्धके आनन्दसे कभी वंचित नहीं किया था ॥८३॥ सूर्यामपुर, मेघपुर,

सूर्योदयामृताभिस्थ्याः शोभासिंहपुराभिधाः । नृत्यगीतपुरालक्ष्मीकिन्नरस्वनसंज्ञकाः ॥८५॥
 बहुनादा महाशैलाश्रकाह्वा सुरनूपुराः । श्रीमन्तो मलयानन्दाः श्रीगुहा श्रीमनोहराः ॥८६॥
 रिपुञ्जयाः शशिस्थानाः मार्तण्डामविशालकाः । ज्योतिर्दण्डाः परिचोदा अश्वरत्नपराजयाः ॥८७॥
 पद्ममाद्याः पुराभिस्थाः महाखेचरपार्थिवाः । सचिवैरन्विताः प्रीता दशाननसुपागताः ॥८८॥
 अश्ववाहनसन्नाहप्रभृतिप्रतिपत्तिभिः । रावणोऽपूजयद्भूपान् सुत्रामा त्रिदशानिव ॥८९॥
 अचौहिणीसहस्राणि चचारि त्रिककुप् प्रभोः । स्वशक्तिजनितं प्रोक्तं बलस्य प्रमितं ब्रुवैः ॥९०॥
 एकमचौहिणीनां तु किष्किन्धनगरप्रभोः । सहस्रं साग्रमेकं तु भामण्डलविभोरपि ॥९१॥
 सुग्रीवः सचिवैः सार्कं तथा पुष्पवतीसुतः । आवृत्य परमोद्युक्तौ तस्थतुः पद्मलक्ष्मणौ ॥९२॥
 अनेकगोत्रचरणा नानाजत्युपलक्षणाः । नानागुणक्रियास्थिता नानाशब्दा नभश्चराः ॥९३॥
 पुण्यानुभावेन महानराणां भवन्ति शत्रोरपि पार्थिवाः स्वाः ।
 क्लृप्यभाजा तु चिरं सुशक्तां विनाशकाले परतां भजन्ते ॥९४॥
 भ्राता ममायं सुहृदेप वश्यो ममैष बन्धुः सुखदः सदेहि ।
 संसारवैचित्र्यविदा नरेण नैतन्मनीपारविणा विचिन्त्या ॥९५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराण्ये विभीषणसमागमामिधानं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५५॥

काञ्चनपुर, गगनवल्लभपुर, गन्धर्व गीतनगर, कंपनपुर, शिवमन्दिरपुर, सूर्योदयपुर, अमृतपुर, शोभापुर, सिंहपुर, नृत्यगीतपुर, लक्ष्मीगीतपुर, किन्नरगीतपुर, बहुनादपुर, महाशैलपुर, चक्रपुर, सुखपुर, श्रीमन्तपुर, मलयानन्दपुर, श्रीगुहापुर, श्रीमनोहरपुर, रिपुञ्जयपुर, शशिस्थानपुर, मार्तण्डाभपुर, विशालपुर, ज्योतिर्दण्डपुर, परिचोदपुर, अश्वपुर, रत्नपुर और पराजयपुर आदि अनेक नगरोंके बड़े-बड़े विद्याधर राजा, प्रसन्न हो, अपने-अपने मन्त्रियोंके साथ रावणके समीप आ गये ॥८४-८८॥ रावणने अस्त्र, वाहन तथा कवच आदि देकर उन सब राजाओंका उस तरह सन्मान किया जिस तरह कि इन्द्र देवोंका सन्मान करता है ॥८९॥ विद्वानोंने रावणकी सेनाका प्रमाण चार हजार अक्षौहिणी दल बतलाया है। उनका यह दल अपनी सामर्थ्यसे परिपूर्ण था ॥९०॥ किष्किन्धनगर के राजा सुग्रीवकी सेनाका प्रमाण एक हजार अचौहिणी और भामण्डलकी सेनाका प्रमाण कुछ अधिक एक हजार अचौहिणी दल था ॥९१॥ परम उद्योगी सदा सावधान रहनेवाले सुग्रीव और भामण्डल, अपने-अपने मन्त्रियोंके साथ सदा राम लक्ष्मणके समीप रहते थे ॥९२॥ उस समय युद्ध-भूमिमें नानावंश, नानाजातियों, नानागुण तथा नानाक्रियाओंसे प्रसिद्ध एवं नानाप्रकारके शब्दोंका उच्चारण करनेवाले विद्याधर एकत्रित हुए थे ॥९३॥ गौतमम्बामी कहते हैं कि हे राजन् ! पुण्यके प्रभावसे महापुरुषोंके शत्रु राजा भी आत्मीय हो जाते हैं और पुण्यहीन मनुष्योंके चिरकालीन मित्र भी विनाश के समय पर हो जाते हैं ॥९४॥ यह मेरा भाई है, यह मेरा मित्र है, यह मेरे आधीन है, यह मेरा बन्धु है और यह मेरा सदा सुख देनेवाला है, इस प्रकार बुद्धिरूपी सूर्यसे सहित तथा संसारकी विचित्रताको जाननेवाले मनुष्यको कभी नहीं विचारना चाहिए ॥९५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण्ये विभीषणके समागमका वर्णन करनेवाला पचपनवो पर्व पूर्ण हुआ ॥५५॥

सुपीवरसुजो चीरो दुर्धरखिवशैरपि । भुवने कस्य न ज्ञातः कुम्भकर्णो महाबलः ॥३१॥
 - खिशूलधरः सङ्ख्ये कालाग्निरिव दीप्यते । सोऽयं विजीयते केन जगदुत्कटविक्रमः ॥३२॥
 यस्यात्पत्रमालोभ्य शरदिन्दुमिवोद्गतम् । शत्रुसैन्यतमोर्ध्वंससुपयाति समन्ततः ॥३३॥
 उदात्ततेजस्तस्थ सधातुं यस्याग्रतोऽपि कः । समर्थः पुरुषो लोके निजजीवितनिस्पृहः ॥३४॥
 इति बहुविधवाचां द्वेपरागाभितानां प्रकटितनिजचित्तप्रार्थनासङ्कटानाम् ।
 द्वितयबलजनानां दृष्टनानाक्रियाणाम् अजनि जनितशङ्को भावमाग्नौ विचित्रः ॥३५॥
 चरितजननकालाऽभ्यंस्तरागेतराणां भवमपरमितानामप्यथं चित्तमार्गः ।
 भवति खलु तथैव व्यक्तमेतं हि लोकं स्वचरितरविरेव प्रेरयत्यात्मकार्ये ॥३६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्येप्रोक्ते पद्मपुराणे—उभयबलप्रमाणाविधानं नाम षट्पञ्चाशत्तमं पर्वं ॥५६॥

तेजस्वी मनुष्योंके मस्तकपर अधिष्ठित है अर्थात् समस्त प्रतापी मनुष्योंमें श्रेष्ठ है ऐसे (अर्ध)
 चक्रवर्ती रावणका नाम भी सुननेके लिए कौन समर्थ है ? ॥३०॥ जिसकी भुजाएँ अत्यन्त स्थूल
 हैं एवं जो देवोंके द्वारा भी दुर्धर है—रोका नहीं जा सकता ऐसे महाबलवान् कुम्भकर्णको कौन
 नहीं जानता ? ॥३१॥ जो त्रिशूलका धारक, युद्धमें प्रलयकालकी अग्निके समान देदीप्यमान होता
 है तथा जिसका पराक्रम संसारमें सबसे अधिक है ऐसा यह कुम्भकर्ण किसके द्वारा जीता जा
 सकता है ? ॥३२॥ उदित हुए शरत्कालीन चन्द्रमाके समान जिसका छत्र देखकर शत्रुओंकी
 सेनारूपी अन्धकार सब ओरसे नष्ट हो जाता है उस प्रबल पराक्रमी कुम्भकर्णके सामने संसारमें
 ऐसा कौन समर्थ मनुष्य है जो अपने जीवनसे निःस्पृह हो खड़ा होनेके लिए भी समर्थ हो
 ॥३३-३४॥ इस प्रकार जो नाना भौतिके वचन बोल रहे थे, जो राग और द्वेषके आधार थे,
 जिन्होंने अपने मनोगत विचारोंके संकट प्रकट किये थे, तथा जिनकी नाना प्रकारकी क्रियाएँ
 देखी गई थीं । ऐसे उभयपक्षके लोगोंकी विचारधारा विचित्र एवं शङ्काको उत्पन्न करनेवाली
 हुई थीं ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य संयम उत्पत्तिके-योग्य समयमें भी रागी,
 द्वेषी बने रहते हैं अन्य भवमें पहुँच जानेपर भी उनका मनोमार्ग वास्तवमें वैसा ही रहा आता
 है—राग द्वेषका अभ्यासी बना रहता है सो उचित ही है क्योंकि मनुष्यका अपना चारित्ररूपी
 सूर्य ही उसे आत्म-कार्यमें प्रेरित करता रहता है ॥३६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें राम और रावणकी
 सेनाओं के प्रयाणका कथन करनेवाला छपनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५६॥

सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व

परसैन्यसमारलेपममृत्यन्तोऽथ मानवाः । उद्गच्छद्दर्पसंचोभ्या हृष्टाः सन्नद्धमुखताः ॥१॥
 उद्देष्टेव दयिताबाहुपाशं कृच्छ्रेण केचन । संक्षुभ्य सिंहसङ्काशा लङ्कातो निर्ययुर्मटाः ॥२॥
 वीरपत्नी प्रिय काचिदास्त्रियैवमभापत । श्रुतानेकमहायोधपरमाहवविभ्रमा ॥३॥
 सङ्ग्रामे विचिंतः पृष्टे यदि नाथागमिष्यसि । दुर्यशस्तदहं प्राणान् मोक्षयामि श्रुतिमात्रतः ॥४॥
 किङ्कराणामतः पत्न्यो वीराणामेतिगर्विताः । धिक्शब्दं मे प्रदात्यन्ति किं तु कष्टमतः परम् ॥५॥
 रणप्रत्यागतं धीरसुरोन्नमनविभूषणम् । विशीर्णकवचं प्राप्तजयलब्धभटस्तवम् ॥६॥
 द्रक्ष्यामि यदि धन्याहं भवन्तमविकल्पनम् । जिनेन्द्रानर्चयिष्यामि ततो जाम्बूनदाम्बुजैः ॥७॥
 आभिसुख्यगतं मृत्युं वरं प्राप्ता महाभटाः । पराङ्मुखा न जीवन्तो धिक्शब्दमलिनीकृताः ॥८॥
 स्तनद्वयसमुत्पीडं काचिदास्त्रिय मानवम् । जगाद पुनरेव सा प्रहर्ष्यामि जयान्वितम् ॥९॥
 भवद्बन्धस्थलस्यानारकचन्दनचर्चया । परां स्तनद्वयं शोभां मम यात्यति सर्वथा ॥१०॥
 प्रातिवेशिकयोधानामपि पत्नीं जितप्रियाम् । न सहे कुत एवेश सहिष्ये त्वां विनिर्जितम् ॥११॥
 काचिज्जगाद ते नाथ हृत्पाशं व्रणभूषणम् । पुराणं रुढकं जातं ततो नैवातिशोभसे ॥१२॥
 अतो नवव्रणन्यस्तस्तनमण्डलसौख्यदम् । द्रक्ष्येऽहं वीरपत्नीमिदिकसिमुखपङ्कजा ॥१३॥

अथानन्तर परचक्रके आक्रमणको नहीं सहन करनेवाले मनुष्य उठते हुए अहंकारसे लुभित हो हर्ष पूर्वक कवच आदिक धारण करनेके लिए उद्यत हुए ॥१॥ सिंहकी समानता करनेवाले कितने ही शूर-वीर योद्धा गलेमे पड़े हुए प्राणवल्लभाके वाहुपाशको बड़ी कठिनाईसे दूरकर लुभित हो लंकासे बाहर निकल आये ॥२॥ जिसने महायुद्धमें अनेक बड़े-बड़े योद्धाओंकी चेष्टाओंका वर्णन सुन रक्खा था, ऐसी किसी वीरपत्नीने पतिका आलिङ्गनकर इस प्रकार कहा कि ॥३॥ हे नाथ ! यदि संग्राममें घायल होकर पीछे आओगे तो बड़ा अपयश होगा और उसके सुनने मात्रसे ही मैं प्राण छोड़ दूंगी ॥४॥ क्योंकि ऐसा होनेसे वीर किङ्करीकी गर्वाली पत्नियों मुझे धिक्कार देंगी । इससे बढकर कष्टकी बात और क्या होगी ? ॥५॥ जिनके वक्षस्थलमें घाय आभूषणके समान सुरोभित हैं, जिनका कवच टूट गया है, प्राप्त हुई विजयसे योद्धागण जिनकी स्तुति कर रहे हैं, जो अतिशय धीर हैं तथा गम्भीरताके कारण जो अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं कर रहे हैं ऐसे आपको युद्धसे लौटा हुआ यदि देखूंगी तो मैं सुवर्णमय कमलोंसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करूंगी ॥६-७॥ महायोद्धाओंका सम्मुखागत मृत्युको प्राप्त हो जाना अच्छा है किन्तु पराङ्मुखको धिक्कार शब्दसे मलिन जीवन विताना अच्छा नहीं है ॥८॥ कोई स्त्री दोनो स्तनोसे पतिका आलिङ्गनकर बोली कि जब आप विजयी हो लौटकर आवेंगे तब फिर ऐसा ही आलिङ्गन करूंगी ॥९॥ आपके वक्षस्थलके गाढ़े-गाढ़े रक्करूपी चन्दनोकी चर्चासे मेरे दोनो स्तन सब प्रकारसे परम शोभाको प्राप्त होंगे ॥१०॥ हे स्वामिन् ! जिसका पति हार जाता है ऐसी पड़ोसी योद्धाओंकी पत्नीको भी मैं सहन नहीं करती फिर हारे हुए आपको किस प्रकार सहन करूंगी ? ॥११॥ कोई स्त्री बोली कि हे नाथ ! आपका यह अभाग्य पुराणा धाररूपी आभूषण रुढ हो गया है—पुरकर सूख गया है, इसलिए आप अधिक सुरोभित नहीं हो रहे हैं ॥१२॥ अब नूतन धावपर रखे हुए स्तनमण्डलको सुख पहुँचानेवाले आपको जब देखूंगी तो मेरा

१. उद्देष्टेव म० । २. योर्धं म० । ३. विभ्रमं म० । ४. सङ्गते । ५. मपि म० । ६. हतसत्रण-भूषणम्-म० ।

काचिदूचे यथैतत्ते वदनं सुमिधतं मया । तथा^१ वचसि सज्जातं सुमिध्यामि जगाननम् ॥१९॥
 अनलिप्रौढिका काचिद्वधूरभिनवौढिका । संग्रामे प्रोद्यते नाथे प्रौढत्वं समुपागतम् ॥१९॥
 चिराय रक्षितं मानं काचिन्नाथे रणोन्मुले । तत्प्राज्ञैरुपदे कान्ता कान्तसंरक्षेयत्परम् ॥१९॥
 अवितृप्तं भटी काचिद्वर्तुवन्नासवं पर्या । तथापि मदनप्राप्ता रणयोग्यमशिक्षयत् ॥१९॥
 काचिदुत्तानितं^२ भर्तुर्वदनं वनजेत्तगा । नैमिषोऽम्भितमद्राक्षां सुचिरं दृत्तसुम्बना ॥१९॥
 काचिद्वृक्षस्तटे भर्तुः करजव्रणमुज्ज्वलम् । भविष्यच्छुक्लपातस्य सत्यङ्कारनिवारणम् ॥१९॥
 इति सज्जातचेष्टासु द्युतिवता यु ययाययम् । भटानामित्यभूद्वागी महासंग्रामशालिनाम् ॥२०॥
 नरास्ते द्युतिं श्लाघ्या ये गता रणमस्तकम् । त्यजन्यभिममुक्ता जीवं शत्रूणां लब्धकीर्तयः ॥२१॥
 उद्भिन्नदन्तिदन्ताग्रगोलातुल्लङ्घितं भटाः । कुर्वन्ति न विना पुण्यैः शत्रुनिघोषितस्तवाः ॥२२॥
 गजदन्ताप्रमिन्नस्य कुम्भदारणकारिणः । यत्सुखं नरसिंहस्य तत् कः कथयितुं चमः ॥२३॥
 व्रतं शरणायातं दत्तपृष्ठं च्युतायुधम् । पतित्यज्य पतिप्यामो द्युतिं शत्रुमस्तके ॥२४॥
 भवत्या वाञ्छितं कृत्वा प्रत्यागत्य रणाजिरात् । प्रार्थयिष्ये समारलेपं भवन्तीं तोषधारिणीम् ॥२५॥
 एवमादिभिरालेपैः पतिसाम्ब्य निजप्रियाः । धीरा निर्गन्तुमुद्युक्ताः सङ्घपतौल्यसमुत्सुकाः ॥२६॥

मुखकमल खिल उठेगा और वीर पत्रियों सुके वड़े गौरवसे देखेगी ॥१९॥ कोई स्त्री बोली कि मैंने जिस प्रकार आपके इस मुखका चुम्बन किया है उसी प्रकार वक्ष्यलपर उत्पन्न हुए धावके मुखका चुम्बन करूंगी ॥१९॥ कोई नवविवाहिता स्त्री यद्यपि अधिक प्रौढ़ नहीं थी तथापि पतिके युद्धके लिए उद्यत होनेपर वह प्रौढ़ताको प्राप्त हो गई ॥१९॥ कोई स्त्री चिरकालसे मानको रक्षा करती बैठी थी परन्तु जब पति युद्धके समुत्थ हो गया तब उसने सब मान एक साथ छोड़ दिया और पतिका आलिङ्गन करनेमें तत्पर हो गई ॥१९॥ यद्यपि किसी बोट्टाकी स्त्री पतिके मुखकी मद्रिा पीती-पीती वृष्ट नहीं हुई थी तथापि कामाङ्कलित हो उसने पतिके लिए रणके योग्य शिक्षा दी थी ॥१९॥ कोई कमललीचना स्त्री पतिके ऊपर उठाये हुए मुखको टिसकार रहित नेत्रोसे चिरकाल तक देखती रही और उसका चुम्बन करती रही ॥१९॥ किसी स्त्रीने पतिके वक्षःस्थलपर नखका उज्वल धाव बना दिया मानो आगे चलकर जो शस्त्रपात होगा उसका वयाना ही दे दिया था ॥१९॥ इस प्रकार जब स्त्रियोंमें नाना प्रकारकी चेष्टाएँ हो रही थीं तब महायुद्धसे सुशोभित बोट्टाओंकी इस प्रकार वाणी प्रकट हुई ॥२०॥ कोई बोला कि हे श्रिये ! वे मनुष्य प्रशंसनीय हैं जो रणाग्रभागमें जाकर शत्रुओंके समुत्थ प्राण छोड़ते हैं तथा लुपश प्राप्त करते हैं ॥२१॥ शत्रु भी जिनका विरद बखान रहे हैं, ऐसे बोट्टा पुण्यके विना मदीन्मत्त हाथियोंके दौंताके अग्रभागसे मूला नहीं मूल सकते ॥२२॥ हाथीदौंताके अग्रभागसे विदीर्ण तथा हाथीके गण्डस्थलको विदीर्ण करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्यको जो सुख होता है उसे कहनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२३॥ कोई कहने लगा कि हे श्रिये ! मैं भयभीत, शरणागत, पीठ दिखानेवाले एवं शस्त्र ढाल देनेवाले पुरुषको छोड़ शत्रुके मस्तकपर दृट पड़ूँगा ॥२४॥ कोई कहने लगा कि मैं आपकी अभिलाषा पूर्णकर तथा रणाङ्गसे लौटकर जब आपको समुत्थ कर दूँगा तभी आपसे आलिङ्गनकी प्रार्थना करूँगा ॥२५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकारके वार्तालापोंसे अपना प्राणवत्त्वभावोंको सान्त्वना देकर बुद्धसम्बन्धी सुख प्राप्त करनेमें उत्सुक वीर मनुष्य घरोंसे बाहर निकलनेके लिए उद्यत हुए ॥२६॥ किसीका पति हाथमें शस्त्र लेकर जब जाने लगा तब वह उसके गलेमें दोनों भुजाएँ ढालकर ऐसी मूल गई मानो किसी गजराजके गलेमें कमलनी ही

१. यथा म० । २. अवितृप्तभटी म० । ३. मदनं प्राप्ता म० । ४. दुत्तानितु म० । ५. प्रायविष्ये न० ।
 ६. तोषकारिणोम् ज० । ७. संल्ये ज० ।

प्रियासोः शस्त्रहस्तस्य कण्ठापितभुजद्वया । काचिद्वोलायनं चक्रे गजेन्द्रस्येव पद्मिनी ॥२७॥
 काचित्सन्नाहरुद्धस्य पत्युर्देहस्य सङ्गमम् । अप्राप्य परमं प्रासा पीडामङ्गमपि श्रिता ॥२८॥
 अर्द्धबाहुलिकां द्यूा काचित्कान्तस्य वक्षसि । ईर्ष्यारसेन संस्पृष्टा किञ्चित्कृतलोचना ॥२९॥
 अर्द्धसन्नाहनामाय मया परिहिता प्रिये । इति पुंशन्दयोगेन पुनस्तोपमुपागता ॥३०॥
 ताम्बूलप्रार्थनव्याज्वात् काचित् प्राप्य प्रियाधरम् । अमुञ्जत् सुखिनीं कृच्छ्रात् कृत्वा व्रणविभूषितम् ॥३१॥
 काचिन्नित्यर्थमानापि प्रियेण रणकान्क्षिणा । सन्नाहकण्ठसूत्रस्य बन्धव्याजेन गच्छति ॥३२॥
 एकतो दधितादष्टिरन्यतः त्थर्निस्वनः । इति हेतुद्वयाद्वोलामारूढ मटमानसम् ॥३३॥
 स्त्रीणां परिहरन्तीनां वाष्पपातममङ्गलम् । सत्यामपि दिदृक्षार्यां निसेयो नाभवत् दशाम् ॥३४॥
 अगृहीत्वैव सन्नाह केचित् त्वरितमानसाः । यथालम्बायुधं योवा निर्ययुर्दुर्पशालिनः ॥३५॥
 रणसङ्गाततोपेण शरीरे पुष्टिमागते । कस्यचिद् रणसौण्डस्य वर्मं माति स्म नो निजम् ॥३६॥
 श्रुत्वा परबसूत्यस्वन कश्चिद् मटोत्तमः । चिररूढैर्गैः रक्त मुमोचोक्त्वासविग्रहः ॥३७॥
 विगर्द्धं कस्यचिद् वर्मं सुदढं तोपहारिणः । वर्द्धमान ततः शीर्णं पुराणं ककटाधितम् ॥३८॥
 विश्रब्ध कस्यचिज्जाया समाधानपरायणा । सारयन्ती मुहुस्तस्थौ शिरस्त्राण सुभाषिता ॥३९॥
 प्रियापरिमलं कश्चिद्दीयमानैः स्ववक्षसः । कङ्कट प्रति नो चक्रे मनः सद्ग्रामलालसः ॥४०॥
 एव विनिरगता योधाः कृच्छ्रतः सान्त्वितप्रियाः । आकुलीभूतचित्ताश्च शयनान्येषु ताः स्थिताः ॥४१॥

फूल रही हो ॥२७॥ किसी स्त्रीके पतिने कवच पहिन रक्त्वा था इसलिये उसके शरीरका संगम न प्राप्त होनेसे वह गोदमे स्थित होनेपर भी परम पीडाको प्राप्त हो रही थी ॥२८॥ कोई एक स्त्री पतिके वक्षःस्थलपर अर्द्धबाहुलिका देख ईर्ष्यासे भर गई तथा उसके नेत्र कुञ्ज-कुञ्ज संकुचित हो गये ॥२९॥ उसे अप्रसन्न जान पतिने कहा कि हे प्रिये ! यह आधा कवच मैंने पहिना है । इस प्रकार पतिके कहनेसे पुनः सन्तोषको प्राप्त हो गई ॥३०॥ किसी सुखिया स्त्रीने ताम्बूल याचनाके वहाने पतिका अधरोष्ठ पाकर उसे दन्ताघातसे विभूषितकर बड़ी कठिनाईसे छोड़ा ॥३१॥ रणके अभिलाषी किसी पुरुषने यद्यपि अपनी स्त्रीको लौटा दिया था तथापि वह कवचके कण्ठका सूत्र बाँधनेके वहाने चली जा रही थी ॥३२॥ एक ओर तो वल्लभाकी दृष्टि और दूसरी ओर तुरहीका शब्द, इस प्रकार योद्धाका मन दो कारण रूपी दोलाके ऊपर आरूढ़ हो रहा था ॥३३॥ अमार्गलिक अश्रुपातको बचानेवाली स्त्रियोंके यद्यपि पतिको देखनेकी इच्छा थी तो भी वे नेत्रोंका पलक नहीं भ्रपाती थी ॥३४॥ जिनके मन उतावलीसे भर रहे थे ऐसे कितने ही अहं-कारी योद्धा, कवच पहिने बिना ही जो शस्त्र मिला उसे ही लेकर निकल पड़े ॥३५॥ किसी रणवीरका शरीर रणसे उत्पन्न संतोषके कारण इतना पुष्ट हो गया कि उसका निजका कवच भी शरीरमें नहीं माता था ॥३६॥ किसी उत्तम योद्धाका शरीर पर-चक्रकी तुरहीका शब्द सुनकर इतना फूल गया कि वह चिरकालके भरे घावोंसे रक्त छोड़ने लगा ॥३७॥ किसी योद्धाने नया मजबूत कवच पहिना था परन्तु हर्षित होनेके कारण उसका शरीर इतना बढ़ गया कि कवच फटकर पुराने कवचके समान जान पड़ने लगा ॥३८॥ किसीका टोप ठीक नहीं बैठ रहा था सो उसे ठीक करनेमें तत्पर उसकी स्त्री निश्चिन्ततापूर्वक मधुर शब्द कहती हुई वार-वार टोपको चला रही थी ॥३९॥ किसीकी स्त्रीने पतिके वक्षःस्थलपर सुगन्धिका लेप लगा दिया था सो उसकी रक्षा करते हुए उसने युद्धकी अभिलाषा होते हुए भी कवच धारण करनेकी ओर मन नहीं किया था—कवच धारण करनेका विचार नहीं किया था ॥४०॥ इस प्रकार जो बड़ी कठिनाईसे प्रियाओं

१. सन्नहनीं (टि०) । २. कृत्वा म० । ३. शीर्णं पुराणं कंकटाधितम् म० । ४. दीयमानः म० ।
 ५. कर्क म०, ल० ।

अथाप्रकीर्तिमाध्वीकरसास्वादनलालसौ । द्विरदस्यन्दनारूढावसोर्दारिवलस्वनौ ॥४२॥
 प्रथमं निर्गतोद्गात्प्रतापौ शौर्यशालिनौ । हस्तप्रहस्तनामानौ लङ्कातो निर्गती वृषी ॥४३॥
 अनापृच्छाऽपि तत्काले स्वामिनो राजते तयोः । दोषोऽपि हि गुणीभावं प्रस्तावे प्रतिपद्यते ॥४४॥
 मारीचः सिंहजवनः स्वयम्भूः शम्भुस्तमः । पृथुः पृथुवलोपेतश्चन्द्रार्को शुक्रसारणौ ॥४५॥
 राजवीभत्सनामानौ वज्राचो वज्रशृङ्घुतिः । शम्भोरनिनदो नक्रो मकरः कुलिशस्वजः ॥४६॥
 उग्रनादस्तथा सुन्दः निङ्गम्भकुम्भशब्दितः । सन्ध्याचो विभ्रमक्रूरो माल्यवान् खरनिस्त्रजः ॥४७॥
 जम्बूमाली शिखावीरो दुर्दृषश्च महाबलः । एते केसरिभिर्युक्तैः सामन्ता निर्ययु रथैः ॥४८॥
 वज्रोदरोऽथ शक्राभः कृतान्तो विघटोदरः । महाराणिरवश्चन्द्रनखो मृत्युः सुभीषणः ॥४९॥
 कुलिशोदरनामा च धूम्राचो मुदितस्तथा । विद्युजिह्वो महामाली कनकः क्रोधनध्वनिः ॥५०॥
 चोभणो धुन्धु रुद्रामा डिण्डिण्डिमडम्बराः । प्रचण्डो डमरश्चण्डकुण्डहालाहालयः ॥५१॥
 व्याघ्रयुक्तैरिमैस्तुङ्गै रथैस्त्रासिताम्बरैः । अहंयवो विनिर्याताः शत्रुविष्वसतुङ्गयः ॥५२॥
 विद्याकौशिकविस्थातिः सर्पबाहुर्माहाद्युतिः । शंखप्रशंखनामानौ रागो भिन्नाञ्जनप्रभाः ॥५३॥
 पुष्पचूडो महारको घटाक्षः पुष्पखेचरः । अनङ्गकुसुमः कामः कामावर्त्तस्मरायणौ ॥५४॥
 कामाग्निः कामराशिश्च कनकामः शिलीमुखः । सौम्यवक्त्रो महाकामो हेमगौरादयस्तथा ॥५५॥
 एतेऽपि वातरहोभी रथैर्युक्तैरुत्तरङ्गमैः । यथायथं विनिर्जग्मुरालयेभ्यो रसद्वजलाः ॥५६॥
 कदम्बविटपौ भीमो भीमनादो भयानकः । शार्दूलक्रीडितः सिंहशलाङ्गो विद्युदम्बुकः ॥५७॥

को समझा-बुझा सके थे ऐसे योधा तो बाहर निकले और उनकी स्त्रियों व्याकुल चित्त होती हुई शय्याओंपर पड़े रहीं ॥४१॥

अथानन्तर उत्तम कीर्तिरूपी मयुरसके आस्वादनमें जिनका मन लग रहा था, जो हाथियोंके रक्ष पर आरूढ थे, जिन्होंने शत्रु सेनाका शब्द सहन नहीं किया था, जिनका उत्कट प्रताप पहले ही निकल चुका था, और जो शूरवीरतासे सुशोभित थे, ऐसे हस्त और प्रहस्त नामके दो राजा लंकासे सर्वप्रथम निकले ॥४२-४३॥ यद्यपि वे दोनों स्वामीसे पूछकर नहीं निकले थे तथापि उस समय उनका स्वामीसे नहीं पूछना शोभा देता था क्योंकि अवसरपर दोष भी गुणरूपताकी प्राप्त हो जाता है ॥४४॥ मारीच, सिंहजवन, स्वयंभू, शम्भु, उत्तम, विशाल, सेना से सुशोभित पृथु, चन्द्र, सूर्य, शुक, सारण, गज, वीभत्स, इन्द्रके समान कान्तिको धारण करनेवाला वज्राक्ष, गम्भीर-नाद, नक्र, मकर, वज्रनाद, उग्रनाद, सुन्द, निङ्गम्भ, कुम्भ, सन्ध्याच, विभ्रम, क्रूर, माल्यवान्, खरनाद, जम्बूमाली, शिखीवीर और महाबलवान् दुर्दृष ये सब सामन्त सिंहासे जुते हुए रथोंपर सवार हो बाहर निकले ॥४५-४६॥ उनके पीछे वज्रोदर, शक्राभ, कृतान्त, विघटोदर, महावज्ररथ, चन्द्रनख, मृत्यु, सुभीषण, वज्रोदर, धूम्राक्ष, मुदित, विद्युजिह्व, महामाली, कनक, क्रोधनध्वनि, चोभण, धुन्धु, उद्दामा, डिण्डि, डिण्डिम, डम्बर, प्रचण्ड, डमर, चण्ड, कुण्ड और हालाहल आदि सामन्त, जिनमें व्याघ्र जुते थे, जो ऊँचे थे तथा आकाशको वेदीप्यमान करनेवाले थे ऐसे रथोंपर सवार हो बाहर निकले । ये सभी सामन्त महा अहंकारी तथा शत्रु नाशकी भावना रखनेवाले थे ॥४६-५२॥ उनके पीछे विद्याकौशिक, सर्पबाहु, माहाद्युति, शङ्ख, प्रशङ्ख, राग, भिन्नाञ्जनप्रभ, पुष्पचूड, महारक्त, घटाक्ष, पुष्पखेचर, अनङ्गकुसुम, काम, कामावर्त्त, स्मरायण, कामाग्नि, कामराशि, कनकाम, शिलीमुख, सौम्यवक्त्र, महाकाम तथा हेमगौर आदि सामन्त, वायुके समान वेगशाली घोड़ोंके रथोंमें सवार हो यथायोग्य अपने-अपने धरोसे निकले । इन सबकी सेनाएँ प्रचण्ड शब्द कर रहीं थीं ॥५३-५६॥ तदनन्तर कदम्ब, विटप, भीम, भीमनाद, भयानक,

१. -वसोर्दारिवलस्वनौ म० । २. प्रयाणे म० । ३. सिंहजवनः ज०, ख० । ४. वज्राक्षो म० । ५. गम्भीरो निनदो म० । ६. विभ्रमः क्रूरो म०, ख० । ७. -प्रभौ म० ।

ह्लादनश्चपलरचोलश्चलश्चञ्चलकादयः । गजादिभिरिभैर्युक्तैर्निर्ययुर्मास्वरै रथैः ॥५८॥
 कियन्तः कथयिष्यन्ते नाम्ना प्राग्रहराः नराः । अध्यक्षपञ्चमीकोट्यः कुमारार्णां स्मृत्या बुधैः ॥५९॥
 विशुद्धराक्षसानुकाः कुमारस्तुल्यविक्रमाः । प्रख्यातयशसः सर्वे विज्ञेया गुणमण्डनाः ॥६०॥
 आवृतास्ते ससुयुक्तैः कुमारैर्मारविभ्रमाः । बलिनो मेघवाहाद्याः कुमारैर्न्मा विनिर्ययुः ॥६१॥
 अर्कक्रीतिसमो भूत्या दशाननमहाप्रियः । इन्द्रजित्त्रिययौ कान्तो जयन्त इव धीरधीः ॥६२॥
 विमानमर्कसङ्गाश नाम्ना ज्योतिःप्रभ महत् । कुम्भकर्णः समारूढखिशूलाखो विनिरगतः ॥६३॥
 मेरुशृङ्गप्रतीकाशं लोकत्रितयशब्दितम् । विमान पुष्पकामिस्थायामारूढः शक्रविक्रमः ॥६४॥
 सन्ध्याद्य रोदसी सैन्यैर्मास्वरायुवपाणिभिः । निष्कान्तो रावणस्तिग्मकिरणप्रतिमद्युतिः ॥६५॥
 स्यन्दनैर्वारणैः सिंहैर्वराहैः रुद्रभिर्सृगैः । स्मरैर्विहगैश्चित्रैः सौरभैर्यैः क्रनेलकैः ॥६६॥
 ययुर्भिर्माहि पौरैर्यैर्जैलस्यलसमुद्भवैः । सामन्ता निर्ययुः शीघ्रं वाहनैर्बहुरूपकैः ॥६७॥
 भामण्डलं प्रतिक्रुद्धाः किष्किन्धाधिपति तथा । हिता राक्षसानाथाय निर्ययुः खेचराधिपाः ॥६८॥
 अथ दृशित्तो दृष्टा भयानकमहास्वनाः । प्रयाणवारणोद्युक्ता भरलुका बद्धमण्डलाः ॥६९॥
 बद्धान्यतमसा पक्षैर्गुंदा विकृतनिस्वनाः । आग्यन्ति गगने भीमाः कथयन्तो महाक्षयम् ॥७०॥
 अन्येऽपि शकुनाः क्रूरं क्रन्दन्तो भयशंसिनः । बभ्रुबुराकुलीभूता भौमा वैहायसास्तथा ॥७१॥
 शौर्यातिगर्वसम्मूढा विदन्तोऽप्ययुभानिमात् । महासैन्योद्धता योद्धुं रक्षोवर्गा विनिर्ययुः ॥७२॥

शादूलविक्रीडित, सिंह, चलाङ्ग, विद्युदम्बुक, ह्लादन, चपल, चोल, चल और चञ्चल आदि सामन्त हाथियों आदिसे जुते हुए देदीप्यमान रथों पर आरूढ होकर निकले ॥५८-५८॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाम लेले कर कितने प्रधान पुरुष कहें जावेंगे ? उस समय सब मिला कर साढ़ेचार करोड़ कुमार बाहर निकले थे ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥५९॥ ये सभी कुमार विशुद्ध राक्षसवंशी, समान पराक्रम के धारी, प्रसिद्ध यशसे सुशोभित एवं गुणरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले थे ॥६०॥ युद्धके लिए उद्यत इन सब कुमारोंसे धिरे, कामके समान सुन्दर, महाबलवान् मेघवाहन आदि श्रेष्ठ राजकुमार भी बाहर निकले ॥६१॥ तदनन्तर जो विभूतिसे सूर्यके समान था और रावणको अतिशय प्यारा था, ऐसा धीर वीर बुद्धिका धारक सुन्दर इन्द्रजित्, जयन्तके समान बाहर निकला ॥६२॥ त्रिशूल शस्त्रका धारी कुम्भकर्ण, सूर्यके समान देदीप्यमान ज्योतिः-प्रभ नामक विशाल विमान पर आरूढ होकर निकला ॥६३॥ तदनन्तर जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध मेरुकी शिखरके समान सुशोभित पुष्पक नामक विमानपर आरूढ था, इन्द्रके समान पराक्रमी था और सूर्यके समान कान्तिका धारक था ऐसा रावण हाथोंमें नानाप्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले सैनिकोंसे आकाश और पृथ्वीके अन्तरालको आच्छादितकर निकला ॥६४-६५॥ तत्पश्चात् रथ, हाथी, सिंह, सूकर, कृष्णमृग, सामान्यमृग, साभर, नानाप्रकारके पक्षी, वैल, ऊँट, घोड़े, भैंसे आदि जलधर्ममें उत्पन्न हुए नानाप्रकारके वाहनोंपर सवार होकर सामन्त लोग बाहर निकले ॥६६-६७॥ जो भामण्डल और सुग्रीव के प्रति क्रुद्ध थे तथा रावण के हितकारी थे ऐसा विद्याधर राजा बाहर निकले ॥६८॥ अथानन्तर जो महाभयङ्कर शब्द कर रहे थे, जो प्रयाणके रोकनेमें तत्पर थे तथा जो मण्डल बंधकर खड़े हुए थे ऐसे रीळ दक्षिणकी ओर दिखायी दिये ॥६९॥ जिन्होंने अपने पङ्क्तोंसे गाढ़ अन्धकार उत्पन्न कर रक्खा था, जिनका शब्द अत्यन्त विकृत था तथा जो महाविनाशकी सूचना दे रहे थे ऐसे भयंकर गीध आकाशमें उड़ रहे थे ॥७०॥ इस प्रकार क्रूर शब्द करते तथा भयकी सूचना देते हुए पृथ्वी तथा आकाशमें चलनेवाले अन्य अनेक पक्षी न्याकुल हो रहे थे ॥७१॥ शूरवीरताके बहुत भारी गर्वसे मूढ़ तथा बड़ी-बड़ी सेनाओं से उद्धत राक्षसोंके समूह यद्यपि इन अशुभ स्वप्नोंको जानते थे तो भी युद्ध करने के लिए वरावर

१. हदन-म० । २. राक्षसानाशाय म० ।

प्राप्ते काले कर्मणामासुरूप्याहासुं योग्यं तत्फलं निश्चयाप्यम् । -
 शक्तो रोद्धुं नैव शक्नोऽपि लोके वार्तान्येषां केव वाह्मात्रभाजाम् ॥७३॥
 वीरा योद्धुं दत्तचित्ता महान्तो वाहारूढाः शस्त्रभाराजिहस्ताः । ,
 कृत्वावज्ञां वारकाणां समेषां यान्त्यप्युद्ग्राहो रवि प्रत्यभीताः ॥७४॥

इत्यार्षे रविषेणान्चार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावणबलनिर्गमनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५७॥

नगरीसे बाहर निकल रहे थे ॥७२॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि जब कर्मोंकी अनुकूलताका समय आता है तब देनेके योग्य समस्त पर्यायकी प्राप्ति निश्चयसे होती है उसे रोकनेके लिए लोकमें इन्द्र भी समर्थ नहीं है । फिर दूसरे प्राणियोंकी तो वार्ता ही क्या है ॥७३॥ जिनका चित्त युद्धमें लग रहा था, जो स्वयं महान् थे, वाहनों पर सवार थे और शस्त्रोंकी कान्तिका समूह जिनके हाथ में था अथवा जिनके हाथ शस्त्रोंकी कान्तिसे सुशोभित थे ऐसे शूरवीर मनुष्य निर्भीक हो निषेध करनेवाले इन समस्त अशक्तोंकी उपेक्षा करते हुए उस प्रकार आगे बढ़े जाते थे जिस प्रकार राहु सूर्यमण्डलके प्रति बढ़ता जाता है ॥७४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणान्चार्य कथित पद्मपुराणमें रावणकी सेना लङ्कासे बाहर निकली इस बातका वर्णन करनेवाला संतावनवौं पर्व समाप्त हुआ ॥५७॥

अष्टपञ्चाशत्तमं पर्व

१ आस्तृणुद्दीप्य तत्सैन्यमुद्वेलमिव सागरम् । नलनीलमरुपुत्रजाग्बवाधाः सुखेचराः ॥१॥
 रामकार्यसमुद्युक्ताः परमोदारचेष्टिताः । महाद्विपयुतैर्दक्षैः स्पन्दनैर्निर्ययुर्वरैः ॥२॥
 सम्मानो जयमित्रश्च चन्द्राभो रतिवर्धनः । कुमुदावर्तसज्ञश्च महेन्द्रो भानुमण्डलः ॥३॥
 भुवुद्धरो दृढरथः प्रीतिकण्ठो महाबलः । समुन्नतबलः सूर्यज्योतिः सर्वप्रियो बलः ॥४॥
 सर्वसारश्च दुर्बुद्धिः सर्वदः सरभो भरः । अभृष्टो निर्विनष्टश्च संत्रासो विघ्नसूदनः ॥५॥
 नादो वर्वरकः पापो लोलपाटनमण्डलौ । सङ्ग्राममचपलाद्याश्च परमा खेचराधिपाः ॥६॥
 शार्दूलसङ्गतैस्तुङ्गै रथैः परमसुन्दरैः । नानायुधघटाटोपा निर्जग्मुः प्रथुतेजसः ॥७॥
 प्रस्तरो हिमवान् भङ्गः प्रियरूपाद्यस्तथा । एते द्विपयुतैर्योद्धुं निर्ययुः सुमहारथैः ॥८॥
 दुःप्रेक्षः पूर्णचन्द्रश्च विधिः सागरनिःस्वनः । प्रियविग्रहनामा च स्कन्दश्चन्दनपादपाः ॥९॥
 चन्द्रांशुप्रतीघातो महाभैरवकीर्तनः । दुष्टसिंहकटिः क्रुष्टः समाधिबहुलो हलः ॥१०॥
 इन्द्रायुधो गतत्रासः सङ्कटप्राहरादयः । एते हरियुतैस्त्वर्णं सामन्ता निर्ययु रथैः ॥११॥
 विद्युत्कर्णो बलः शीलः स्वपद्मरचनो घनः । सम्मेदो विचलः सालः कालः चित्तिवरोऽङ्गदः ॥१२॥
 विकालो लोलकः कालिभङ्गश्चण्डोर्मिरुजितः । तरङ्गस्तिलकः कीलः सुपुण्णतरलो बलिः ॥१३॥
 भीमो भीमरथो धर्मो मनोहरमुखः सुखः । प्रमत्तो मर्दको मत्तः सारो रत्नजटी शिवः ॥१४॥
 दूषणो भीषणः कोणः विघटाख्यो विराधितः । मेरु रणखनिः क्षेमः बेलाक्षेपी महाधरः ॥१५॥
 नक्षत्रलुब्धसंज्ञरच सङ्ग्रामो विजयो जयः । नक्षत्रमालकः क्षोदः तथातिविजयादयः ॥१६॥

अधानन्तर लहराते हुए सागरके समान व्याप्त होती हुई रात्रणकी उस सेनाको देख, श्रीरामके कार्य करनेमे उद्यत परम उदार चेष्टाओके धारक नल, नील, हनुमान्, जान्मव आदि विद्याधर, महागजोसे जुते देदीप्यमान उत्तम हाथियोसे युक्त रथोपर सवार हो कटकसे निकले ॥१-२॥ सम्मान, जयमित्र, चन्द्राभ, रतिवर्धन, कुमुदावर्त, महेन्द्र, भानुमण्डल, भुवुद्धर, दृढरथ, प्रीतिकण्ठ, महाबल, समुन्नतबल, सूर्यज्योति, सर्वप्रिय, बल, सर्वसार, दुर्बुद्धि, सर्वद, सरभ, भर, अभृष्ट, निर्विनष्ट, संत्रास, विघ्नसूदन, नाद, वर्वरक, पाप, लोल, पाटनमण्डल और संग्रामचपल आदि उत्तमोत्तम विद्याधर राजा व्याघ्रोसे जुते हुए परम सुन्दर ऊँचे रथोपर सवार हो वाहर निकले । ये सभी विद्याधर नाना प्रकार के शस्त्रोके समूहको धारण कर रहे थे तथा विशाल तेजके धारक थे ॥३-७॥ प्रस्तर, हिमवान्, भङ्ग तथा प्रियरूप आदि ये सब हाथियोसे जुते उत्तम रथोपर सवार हो युद्धके लिए निकले ॥८॥ दुष्प्रेक्ष, पूर्णचन्द्र, विधि, सागर निःस्वन, प्रियविग्रह, स्कन्द, चन्दनपादप, चन्द्रांशु, अप्रतीघात, महाभैरव, दुष्ट, सिंहकटि, क्रुष्ट, समाधिबहुल, हल, इन्द्रायुध, गतत्रास और संकटप्रहार आदि, ये सब सामन्त सिंहासे जुते रथोपर सवार हो शीघ्र ही निकले ॥९-११॥ विद्युत्कर्ण, बल, शील, स्वपद्मरचन, घन, सम्मेद, विचल, साल, काल, चित्तिवर्, अङ्गद, विकाल, लोलक, कालि, भङ्ग, चण्डोर्मि, ऊर्जित, तरङ्ग, तिलक, कील, सुपुण, तरल, बलि, भीम, भीमरथ, धर्म, मनोहरमुख, सुख, प्रमत्त, मर्दक, मत्त, सार, रत्नजटी, शिव, दूषण, भीषण, कोण, विघट, विराधित, मेरु, रणखनि, क्षेम, बेलाक्षेपी,

एते वाजियुतैः कान्तैर्मनोरथजवै रथैः । महासैनिकमध्यस्थैरभ्यासत रणाजिरम् ॥१७॥
 विद्युद्वाहो मरुद्वाहुः सानुर्जलदवाहनः । रवियानः प्रचण्डालिरीमेऽपि घनसज्जितैः ॥१८॥
 महादथवर्नानावाहनोऽज्ञासिताम्बरैः । युद्धभद्रासमायुक्ता दधातुर्मास्तेः समाः ॥१९॥
 विमानमुत्तमाकारं नाम्ना रत्नप्रभं महत् । आरूढो यत्नवानस्थात् पद्मपद्मो त्रिभीषणः ॥२०॥
 युद्धावर्चो वसन्तश्च कान्तः कौमुदिनन्दनः । भूरिः कोलाहलो हेडो भावितः साधुवत्सलः ॥२१॥
 अर्द्धचन्द्रो जिनप्रेमा सागरः सांगरोपमः । मनोज्ञो जिनसंज्ञश्च तथा जिनमतादयः ॥२२॥
 नानावर्णविमानाग्रसूम्भिकास्थितमूर्त्तयः । दुर्द्धरा निर्ययुर्द्योर्धुं चद्रसन्नाहविग्रहाः ॥२३॥
 पद्मनाभः सुमित्राजः सुग्रीवो जनकात्मजः । एते हंसविमानस्था विरेह्युर्गनान्तरैः ॥२४॥
 महागुह्यप्रतीकाशा नानायानसमाश्रिताः । लङ्काभिमुखमुद्युक्ता गन्तुं खेचरपार्थिवाः ॥२५॥
 संधारलम्बिताम्भोदवृन्दनिघोषभैरवाः । शङ्खकोटिस्वनोन्मिश्रास्तूर्याणामुद्युतः स्वनाः ॥२६॥
 भम्भाभेरीयौ मृदद्धारश्च लम्पाका धुन्धुमण्डुकाः । भस्त्रालातकहृत्कारश्च हुङ्कारा दुन्दुकाणकाः ॥२७॥
 भर्भरा हेतुकमुञ्जाश्च काहला दर्दुरादयः । समाहता महानादं सुमुहुः कर्णवर्णकम् ॥२८॥
 वेणुनादादृहासाश्च ताराहलहलारावाः । ययुः सिंहद्विपस्वाना महिपत्यन्दनस्वनाः ॥२९॥
 क्रमेलकमहारावा निनादा मृगपक्षिणाम् । उत्सल्युः पिहितारोपाशोपविष्टपनिःस्वनाः ॥३०॥
 तथोरन्धोन्मयासङ्गै जाते परमसैन्ययोः । लोकः संशयमारूढः समस्तो जीवितं प्रति ॥३१॥
 क्षोर्णा क्षोभं परं प्राप्ता विकम्पितमहौघरा । प्रशोपं गन्तुमारब्धः प्रक्षुब्धः क्षौरसागरः ॥३२॥

महादथ, नक्षत्रलुब्ध, संग्राम, विजय, रथ, नक्षत्रमालक, चोद तथा अतिविजय आदि घोड़ोंसे जुते मनोहर, इच्छानुसार वेग वाले, तथा महासैनिकों के मध्य स्थित रथोंपर सवार हो रणाङ्गणमें पहुँचे ॥१९-२७॥ विद्युद्वाह, मरुद्वाहु, सानु, मेघवाहन, रवियान और प्रचण्डालि ये सब सामन्त भी मेघोंके समान नाना प्रकारके वाहनोंसे आकाशको देदीप्यमान करनेवाले उत्तमोत्तम रथोंपर सवार हो युद्ध की अभिलाषासे दौड़े । ये सब वायुके समान तीव्रवेग वाले थे ॥१८-१९॥ जिसे रामकी पक्ष थी ऐसा यत्नवान् विभीषण रत्नप्रभ नामक उत्तम विमानपर आरूढ़ हुआ ॥२०॥ युद्धावर्त, वसन्त, कान्त, कौमुदि-नन्दन, भूरि, कोलाहल, हेड, भावित, साधुवत्सल, अर्द्धचन्द्र, जिनप्रेमा, सागर, सांगरोपम, मनोज्ञ, जिनसंज्ञ तथा जिनमत आदि योद्धा युद्ध करनेके लिए बाहर निकले । ये सब नाना वर्णों वाले विमानोंकी अग्रभूमिमें स्थित थे, दुर्धर थे और सबके शरीर कवचोंसे कसे हुए थे ॥२१-२३॥ पद्मनाभ—राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और भामण्डल ये सब हंसोंके विमानोंमें बैठे हुए आकाशके बीचमें अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥२४॥ जो महामेघके समान जान पड़ते थे तथा नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़ थे, ऐसे विद्याधर राजा लंकाकी ओर जानेके लिए तत्पर हुए ॥२५॥ प्रलयकालीन घनघटाकी गर्जनाके समान जिनके भयंकर शब्द थे, तथा जो करोड़ों शङ्खोंके शब्दसे मिले हुए थे ऐसे तुरही चादित्रोंके शब्द उत्पन्न होने लगे ॥२६॥ भंभा, भेरी, मृदङ्ग, लम्पाक, धुन्धु, मण्डुक, भस्त्रा, भस्त्रालातक, हुङ्कार, हुङ्कार, दुन्दुकाणक, भर्भर, हेकगुब्जा, काहल और दर्दुर आदि बाजे ताड़ित होकर कानोंको घुमानेवाले महाशब्द छोड़ने लगे ॥२७-२८॥ बौसोंके शब्द, अर्द्धहासकी ध्वनि, तारा तथा हलहलाके शब्द, सिंहों और हाथियोंके शब्द, भैंसाओं और रथोंके शब्द, ऊँटोंके विशाल शब्द तथा मृग और पक्षियोंके शब्द उठने लगे । इन सबके शब्दोंने शेष समस्त संसारके शब्दोंको आच्छादितकर दिया ॥२९-३०॥ जब उन दोनों विशाल सेनाओंका परस्परमें समागम हुआ तब समस्त लोक अपने जीवनके प्रति संशयमें पड़ गये ॥३१॥ पृथिवी अत्यन्त क्षोभको प्राप्त हुई, पर्वत हिलने लगे और क्षुभित हुआ

सदपैर्निर्गतैर्धैरसहैर्निजवर्गतः । दन्तुरीभूतमत्युग्रं बलद्वयमलक्ष्यत ॥३३॥
 चक्रक्रकचकुन्तासिगदाशक्तिशिलीमुखैः । भिण्डमालादिभिश्चोत्रं प्रवृत्तं युद्धमेतयोः ॥३४॥
 आह्वयन्तः सुसन्नदाः शस्त्रज्वलितबाहवः । समुत्पेतुर्भटाः शूराः परसैन्यं विवक्ष्वः ॥३५॥
 अतिवेगसमुत्पाताः प्रविष्टाः शात्रवं बलम् । शस्त्रसञ्चारमार्गार्थमपससुः पुनर्मनाक् ॥३६॥
 लङ्कानिवासिभिर्यौधैर्दुर्गतैरतिभूरिभिः । सिहैरिव गजा भङ्गं नीता वानरपक्षिणः ॥३७॥
 पुनरन्यैर्भटैः शीघ्रमसीदन्तः समुज्वलाः । रक्षोयोधान् विनिर्जन्तुर्भासुरा वानरध्वजाः ॥३८॥
 मेघमान बलं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य सर्वतः । स्वामिरागसमाकृष्टौ महाबलसमावृतौ ॥३९॥
 गजध्वजसमालक्ष्यौ गजस्यन्दनवर्तिनी । मा भैष्टेति कृतस्वानौ परमोत्कटविग्रहौ ॥४०॥
 हस्तप्रहस्तसामन्तावुत्थाय सुमहाजवौ । निन्यतुः परमं भङ्गं बलं वानरलक्ष्मणम् ॥४१॥
 शाखामृगध्वजौ तावत्प्रतापं निश्रतो परम् । क्रोडवारणसंवृत्तबाह्व्यूदमहारथौ ॥४२॥
 शौर्यगर्वाविवायुक्तशरीरौ परमद्युतौ । नलनीलौ परिक्रुद्धौ भीषणौ योद्धुसुचतौ ॥४३॥
 ततो बहुविधैः शस्त्रैश्चिरं जाते महाहवे । क्रमाससाधुनिस्त्राने निपतद्भटसङ्घे ॥४४॥
 नलेनोत्पत्य हस्तो वा विद्वलो विरथीकृतः । प्रहस्त इव नीलेन कृतश्च गतजीवितः ॥४५॥
 तावालोक्ष्य ततो राजन् विपर्यस्तौ महोतले । विनायका बभूवैतद्वाहिनीयं पराद्सुखा ॥४६॥

लवण समुद्र शोषणको प्राप्त होने लगा ॥३२॥ अपने-अपने वर्गसे निकलकर बाहर आये हुए, असह्यनशील, अहंकारी योद्धाओंसे व्याप्त हुई दोनो सेनाएँ अत्यन्त भयंकर दिखने लगीं ॥३३॥ कुछ ही समय बाद दोनो सेनाओंमें चक्र, क्रकच, कुन्त, खड्ग, गदा, शक्ति, बाण और भिण्डमाल आदि शस्त्रोंसे भयंकर युद्ध होने लगा ॥३४॥ जो एक दूसरेको बुला रहे थे, जो कवचोंसे युक्त थे, जिनकी मुजाएँ शस्त्रोंसे देदीप्यमान हो रही थीं और जो पर-चक्रमें प्रवेश करना चाहते थे ऐसे शूर वीर योद्धा उल्लर रहे थे ॥३५॥ ये योद्धा अत्यन्त वेगसे उल्लरकर पहले तो शत्रुओंके दलमें जा चुके अनन्तर शस्त्र चलानेके योग्य मार्ग प्राप्त करनेकी इच्छासे पुनः कुछ पीछे हट गये ॥३६॥ लंका निवासी योद्धा अधिक संख्या में थे तथा अत्यधिक शक्तिशाली थे इसलिए उन्होंने वानर-पक्षके योद्धाओंको उस तरह पराजितकर दिया जिस तरह कि सिंह हाथियोंको पराजितकर देते हैं ॥३७॥ तदनन्तर शीघ्र ही जो अन्य योद्धाओंके द्वारा नहीं दबाये जा सकते थे ऐसे प्रतापी तथा देदीप्यमान वानर राजाओंने राक्षस योद्धाओंको मारना शुरू किया ॥३८॥ तत्पश्चात् रावणकी सेनाको सब ओरसे नष्ट होती देख स्वामीके प्रेमसे खिचे तथा बड़ी भारी सेनासे घिरे हस्त और प्रहस्त नामक सामन्त उठकर आगे आये । ये हाथीके चिह्नसे सुशोभित ध्वजासे प्रथक् ही जान पड़ते थे, हाथियोंके रथपर आरूढ़ थे, 'ढरो मत, ढरो मत' यह शब्दकर रहे थे, अत्यन्त उत्कट शरीरके धारक थे और महावेगशाली थे । इन्होंने आते ही वानरोंकी सेनामें तीव्र मार-काट मचा दी ॥३९-४१॥ यह देख जो परम प्रतापकी धारण कर रहे थे, सूकर, हाथी तथा घोड़े जिनके बड़े-बड़े रथ खींच रहे थे, जो शरीरधारी शूर वीरता और गर्वके समान जान पड़ते थे, परमदीप्तिके धारक थे, अत्यन्त क्रुद्ध एवं भयंकर थे, ऐसे वानरवंशी नल और नील युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥४२-४३॥

तदनन्तर जिसमें क्रम-क्रमसे साधु-साधु बहुत अच्छा बहुत अच्छाका शब्द हो रहा था तथा जो गिरते हुए योद्धाओंसे व्याप्त था ऐसा महायुद्ध जब चिरकाल तक नाना प्रकारके शस्त्रोंसे हो चुका तब नलने उल्लरकर हस्तको रथ रहित तथा विद्वल कर दिया और नीलने प्रहस्तको निर्जीव बना दिया ॥४४-४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनन्तर

वंशस्थवृत्तम्

विभक्तिं तावद् दृढनिश्चयं जनः प्रभोर्मुखं पश्यति यावद्बुद्धतम् ।
गतविनाशं स्वपत्नीं विद्यायति यथारचक्रं परिशीर्णतुम्बकम् ॥४७॥

उपेन्द्रवज्रावृत्तम्

सुनिश्चितानामपि सज्जराणां विना प्रधानेन न कार्ययोगः ।
शिरस्यपेते हि शरीरबन्धः प्रपद्यते सर्वत एव नाशम् ॥४८॥
प्रधानसम्बन्धमिदं हि सर्वं जगद्यथेष्टं फलमभ्युपैति ।
राहूपसृष्टस्य रवेर्विनाशं प्रयाति मन्दो निकरः करणाम् ॥४९॥

इत्यार्षे श्रीरविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणो हस्तप्रहस्तवधामिधानं नामाष्टपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५८॥

हस्त और प्रहस्तको पृथ्वीपर पड़ा देख रावणकी सेना, नायकसे रहित होनेके कारण विमुख हो गई—भाग खड़ी हुई ॥४६॥ सो ठीक ही है क्योंकि जब तक यह मनुष्य, स्वामीके ऊँचे उठे मुखको देखता रहता है तभी तक दृढ़ निश्चयको धारण करता है और जब अपना स्वामी नष्ट हो जाता है तब समस्त सेना जिसका पुट्टा बिखर गया है ऐसी गाड़ीके पहियेके समान बिखर जाती है ॥४७॥ आचार्य कहते हैं कि यद्यपि निश्चित किये हुए मनुष्योका कार्य किसी प्रधान पुरुष के विना नहीं होता है क्योंकि शिर नष्ट हो जानेपर शरीर सब ओर से नाश ही को प्राप्त होता है ॥४८॥ प्रधानके साथ सम्बन्ध रखनेवाला यह समस्त जगत् यथेष्ट फलको प्राप्त होता है, सो ठीक ही है क्योंकि राहुके द्वारा आक्रान्त सूर्यकी किरणोंका समूह मन्द होता हुआ विनाशको ही प्राप्त होता है ॥४९॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें हस्त प्रहस्तके वधका कथन करनेवाला अष्टावन्वर्ष पर्व समाप्त हुआ ॥५८॥

एकोनषष्टितमं पर्व

उवाच श्रेणिकोऽर्थं विधाविधिविशारदौ । हस्तप्रहस्तसामन्तौ जितपूर्वौ न केनचित् ॥१॥
 महदाश्रयमेतन्मे ताभ्यां तौ निहतौ कथम् । अत्र मे कारणं नाथ गणध्वजवतुमहसि ॥२॥
 ततो गणधरोऽवोचच्छ्रुत् तत्त्वविशारदः । राजन् कर्माभिलुप्तानां जन्तूनां गतिरोदृशी ॥३॥
 पूर्वकर्मानुभावेन स्थितिर्दुःकृतिनामियम् । असौ मारयिता तस्य यो येन निहितः पुरा ॥४॥
 असौ मोचयिता तस्य बन्धनव्यसनानिदिषु । यो येन मोचितं पूर्वमनर्थं पतितो नरः ॥५॥
 आसँह्लौकिकमर्यादाः प्रातिवेदिमकवासिनः । निःस्वाः कुटुम्बिनः स्थाने कुशस्थलकनामनि ॥६॥
 इन्धकः पल्लवश्चैव तत्रैकोदरसन्भवौ । पुत्रदारपरिविलष्टौ विप्रौ लाङ्गलकर्मकौ ॥७॥
 सानुकम्पौ स्वभावेन साधुनिन्दापराङ्मुखौ । जैनमित्रपरिष्वङ्गाद् भिचादानादिसेविनौ ॥८॥
 द्वितीयं निःस्वयुगल प्रतिवेरमोषितं तयोः । स्वभावनिर्दयं क्रूरं लौकिकोन्मार्गमोहितम् ॥९॥
 वण्टने राजदानस्य सज्जाते कलहे सति । ताभ्यामत्यन्तरौद्राभ्यां हताविन्धकपल्लवौ ॥१०॥
 साधुदानाद्दरिक्षेत्रे जाती सद्भोगभोजिनौ । पत्यद्वयस्ये जाती देवलोकनिवेशिनौ ॥११॥
 अधर्मपरिणामेन क्रूरौ तु प्राप्तपञ्चतौ । शशी कालञ्जरारण्ये जाती दुःखातिसङ्घटे ॥१२॥
 मिथ्यादर्शनयुक्तानां साधुनिन्दनकारिणाम् । प्राणिनां पापकृटानां भवत्येवेदृशी गतिः ॥१३॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे इस प्रकार कहा कि हे भगवन् ! विद्याओंकी विधिमे निपुण जो हस्त और प्रहस्त नामक सामन्त पहले किसीके द्वारा नहीं जीते जा सके वे बड़ा आश्चर्य है कि नल और नील के द्वारा कैसे मारे गये ? हे नाथ ! आप मेरे लिए इसका कारण कहिए ॥१-२॥ तदनन्तर श्रुत रहस्यके ज्ञाता गौतम गणधरने कहा कि हे राजन् ! कर्मासे प्रेरित प्राणियोंकी ऐसी ही गति होती है ॥३॥ पूर्व कर्मके प्रभावसे पापी जीवोंकी यह दशा है कि पहले जो जिसके द्वारा मारा जाता है वह उसे मारता है ॥४॥ पहले जिसने विपत्तिमे पड़े हुए जिस मनुष्यको उस विपत्तिसे छुड़ाया है वह उसे भी बन्धन तथा व्यसन-संकट आदिके समय छुड़ाता है ॥५॥

इनकी कथा इस प्रकार है कि कुशस्थल नामक नगरमें लौकिक मर्यादाको पालनेवाले कुछ दरिद्र कुटुम्बी पास-पासमें रहते थे ॥६॥ उनमे इन्धक और पल्लवक नामक दो भाई थे जो एक ही माताके उदरसे उत्पन्न थे, पुत्रों तथा स्त्रियोंके कारण क्लेशको प्राप्त रहते थे, जातिके त्राहण थे, हल चलानेका काम करते थे, स्वभावसे दयालु थे; साधुओंकी निन्दासे विमुख थे, तथा अपने एक जैन-मित्रकी संगतिसे आहारदान आदि कार्योंमें तत्पर रहते थे ॥७-८॥ उन दोनोंकी पत्नीसमे ही एक दूसरा दरिद्र कुटुम्बियोंका युगल रहता था जो स्वभावसे निर्दय था, दुष्ट था और लौकिक मिथ्या प्रवृत्तियोंसे मोहित रहता था ॥९॥ एक बार राजाकी ओरसे जो दान बँटता था उसमे कलह हो गई जिससे अत्यन्त क्रूर परिणामोंके धारक उन दरिद्र कुटुम्बियोंके द्वारा इन्धक और पल्लवक मारे गये ॥१०॥ मुनि दानके प्रभावसे दोनों, हरिक्षेत्रमे उत्तम भोगोंको भोगनेवाले आर्य हुए । वहाँ दो पत्यकी उनकी आयु थी । उसके पूर्ण होनेपर दोनों ही देवलोकमें उत्पन्न हुए ॥११॥ दूसरे जो क्रूर दरिद्र कुटुम्बी थे वे अधर्म रूप परिणामसे मर कर दुःखोंसे परिपूर्ण कालञ्जर नामक वनमें खरगोश हुए ॥१२॥ सो ठीक

१. च्छुत् तत्त्वविशारदः म० । २. पुत्रादर- म० । ३. विद्वौ म० । ४. विभागकरणे, बन्धने म० । ५. काले जारण्ये म० ।

ततस्तिथ्यंशु सुचिरं भ्रान्वा विविधथोनिपु । कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्तीं तापसस्त्वमुपागतीं ॥१३॥
 बृहज्ज्यौ बृहलकायौ फलपर्णादिभोजिनौ । तपोभिः कश्चित्ती तीर्त्नैः कुञ्जाने द्वौ मृतौ च तौ ॥१५॥
 क्रमादरिञ्जये जातावशिवन्याः कृत्तिसन्भवौ । पुत्रौ वह्निकुमारस्य विजयादस्य दक्षिणे ॥१६॥
 आशुकारासुराकाराविमौ जगति विश्रुतौ । हस्तप्रहस्तनामानौ सचिवौ रक्षसां विभोः ॥१७॥
 पूर्वौ तु प्रच्युतौ नाकाद् सुमनुष्यत्वमागतौ । गृहाश्रमे तपः कृत्वा पुनर्जातौ सुरोत्तमौ ॥१८॥
 पुण्यक्षयाद् परिभ्रष्टौ स्वर्गादिन्धकपल्लवौ । किङ्कुसंज्ञे पुरे जातौ नलनीली महाबलौ ॥१९॥
 यत्तद्धस्तप्रहस्तभ्यां नलनीली भवान्तरे । निहृती फलमेतस्य परावृत्य तदागतम् ॥२०॥
 हतवान् हन्यते पूर्वं पालकः पात्यतेऽपुना । भौदासीन्यमुदासीने जायते प्राणधारिणाम् ॥२१॥
 यं वीक्ष्य जायते कोपो दृष्टकारणवर्जितः । निःसन्दिग्धं परिज्ञेयः स रिपुः पारलौकिकः ॥२२॥
 यं वीक्ष्य जायते चित्तं प्रह्लादि सह चक्षुषां । असन्दिग्धं सुविज्ञेयो मित्रमन्वथ जन्मनि ॥२३॥
 श्रुत्वोर्मिणि जले सिन्धोः शीर्णपीतं म्पादयः । स्थले म्लेच्छाश्च बाधन्ते यत्तद्दुःकृतजं फलम् ॥२४॥
 मत्सैर्गिरिनिभैर्नागैर्योर्धैर्वहुविधायुधैः । सुवेगैर्वाजिभिर्दंष्टैश्चैत्यैश्च कवचावृतैः ॥२५॥
 विग्रहैर्विग्रहे वापि निःप्रमादस्य सन्ततम् । जन्तोः स्वपुण्यहीनस्य रक्षा नैवोपजायते ॥२६॥
 निरस्तमपि निर्यन्त यत्र तत्र स्थितं परम् । तपोदानानि रक्षन्ति न देवा न च बान्धवाः ॥२७॥

ही है क्योंकि मिथ्यादर्शनसे युक्त तथा साधुओंकी निन्दा करनेवाले पापी प्राणियों की ऐसी ही गति होती है ॥१३॥ तदनन्तर तिर्यञ्चोंकी नाना योनियोंमें चिरकाल तक भ्रमणकर दोनों बड़ी कठिनतासे मनुष्य पर्याय प्राप्तकर तापस हुए ॥१४॥ वहाँ वे बड़ी-बड़ी जटाएँ रखाये हुए थे, डील-डौलके विशाल थे, फल तथा पत्ते आदिका भोजन करते थे और तीव्र तपस्यासे दुर्बल हो रहे थे। मिथ्याज्ञानके समय ही दोनोंकी मृत्यु हुई ॥१५॥ दोनों ही मरकर विजयार्थ पर्वतके दक्षिणमें वह्निकुमार विद्याधरकी अरिचनी नामा स्त्रीकी कुत्तिसे दो पुत्र हुए ॥१६॥ ये दोनों ही शीघ्रतासे कार्य करने वाले असुरोंके समान आकारके धारक थे, जगत्में अतिशय प्रसिद्ध थे तथा आगे चलकर रावणके हस्त, प्रहस्त नामक मन्त्री हुए थे ॥१७॥ पहले जिनका कथन कर आये हैं ऐसे इन्धक और पल्लवकस्वर्गसे च्युत हो कर उत्तम मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुए। तदनन्तर गृहस्थाश्रममें ही तपकर दोनों उत्तम देव हुए ॥१८॥ फिर पुण्यका क्षय होनेसे स्वर्गसे च्युत हो किङ्कु नामक नगरमें महाबलके धारक नल और नील हुए ॥१९॥ हस्त और प्रहस्तने भवान्तरमें जो नल और नीलको मारा था इसका फल लौटकर इस भव में उन्हींको प्राप्त हुआ अर्थात् उनके द्वारा वे मारे गये ॥२०॥ पूर्वभवमें जो जिसे भारत है वह इस भवमें उसके द्वारा मारा जाता है, पूर्वभवमें जो जिसकी रक्षा करता है वह इस भवमें उसके द्वारा रक्षित होता है तथा पूर्वभवमें जो जिसके प्रति उदासीन रहता है वह इस भवमें उसके प्रति उदासीन रहता है ॥२१॥ जिसे देखकर अकारण क्रोध उत्पन्न होता है उसे निःसन्देह परलोक सम्बन्धी शत्रु जानना चाहिए ॥२२॥ और जिसे देखकर नेत्रोंके साथ-साथ मन आह्लादित हो जाता है उसे निःसन्देह पूर्वभवका मित्र जानना चाहिए ॥२३॥ समुद्रके लहराते जलमें जर्जर नाकवाले मनुष्यको जो मगर, मच्छ आदि बाधा पहुँचाते हैं तथा स्थलमें म्लेच्छ पीड़ा पहुँचाते हैं वह सब पापकर्मका फल है ॥२४॥ पर्वतों के समान मदोन्मत्त हाथियों, नाना प्रकारके राक्ष धारण करनेवाले योद्धाओं, तीव्र वेगके धारक घोड़ों एवं कवच धारण करनेवाले अहंकारी श्रुत्योंके साथ युद्ध हो अथवा नहीं हो और आप स्वयं सदा प्रमादरहित सावधान रहे तो भी पुण्यहीन मनुष्यकी रक्षा नहीं होती ॥२५-२६॥ इसके विपरीत पुण्यात्मा

१. आशुकारशराकायौ ज० ख०, आशुकारशुपकारौ क० । २. उदासीन- म० । ३. नलुषाम् म० ।
 ४. शीर्षो पीतं म० । ५. नियतं म० । ६. स्थिरं म० ।

दश्यते बन्धुमध्यस्थः पित्राप्यालिङ्गितो धनी । त्रियम्माणोऽतिशूरश्च कोऽन्यः शक्तोऽभिरचित्तुम् ॥२८॥
पात्रदानैः व्रतैः शीलैः सम्यक्त्वपरितोषितैः । विग्रहेऽविग्रहे वापि रक्ष्यते रचितैर्नरैः ॥२९॥
दयादानादिना येन धर्मो नोपार्जितः पुरा^१ । जीवितं चैष्यते दीर्घं वाञ्छा तस्मात्तनिःफला ॥३०॥

न विनश्यन्ति कर्माणि जनानां तपसा विना ।

इति ज्ञात्वा क्षमा कार्या विपरिचञ्जिरिष्वपि ॥३१॥

दोधकवृत्तम्

एष ममोपकरोति सुचेताः दुष्टतरोऽपकरोति ममायम् ।

दुद्धिरियं निपुणा न जनानां कारणमत्र निजाजितकर्म ॥३२॥

इत्यधिगम्य विचक्षणसुख्यैर्वाह्यसुखसुखगौणनिमित्तैः ।

रागतं कलुषं च निमित्तं कृत्यमपोऽभितकुत्सितचेष्टैः ॥३३॥

भूविचरेषु निपातसुपैति भ्रावणि सज्जति गच्छति सर्पम् ।

सन्तमसापिहिते पथि नेत्री नो रविणा जनितप्रकृत्वे ॥३४॥

इत्यार्षे रविष्याचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हस्तग्रहस्तनलनीलपूर्वभवानुकीर्तनं नामैकोनषष्टितमं पर्व ॥५६॥

मनुष्य जहाँसे हृदयता है, जहाँसे बाहर निकलता है अथवा जहाँ स्थिर रहता है वहाँ तप तथा दान ही उसकी रक्षा करते हैं, यथार्थमें न देव रक्षा करते हैं और न भाई-बन्धु ही ॥२७॥ देखा जाता है कि जो भाई-बन्धुओंके मध्यमे स्थित है, पिता जिसका आलिङ्गन कर रहा है, जो धनी और अत्यन्त शूरवीर है वह भी मृत्युको प्राप्त होता है, कोई दूसरा पुरुष उसकी रक्षा करनेमे समर्थ नहीं होता है ॥२८॥ युद्ध हो चाहे न हो सम्यग्दर्शनके साथ-साथ अच्छी तरह पाले हुए पात्रदान, व्रत तथा शील ही इस मनुष्यकी रक्षा करते हैं ॥२९॥ जिसने पूर्व पर्यायमें दया दान आदि के द्वारा धर्मका उपार्जन नहीं किया है और फिर भी दीर्घ जीवनकी इच्छा करता है सो उसकी वह इच्छा अत्यन्त निष्फल है ॥३०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि 'तपके विना मनुष्योंके कर्म नष्ट नहीं होते' यह जानकर विज्ञ पुरुषोंको शत्रुओं पर भी क्षमा करनी चाहिए ॥३१॥ यह उत्तम हृदयका धारक पुरुष मेरा उपकार करता है और यह अतिशय दुष्ट मनुष्य मेरा अपकार करता है । लोगोंको ऐसा विचार करना अच्छा नहीं है क्योंकि इसमें अपने ही द्वारा अर्जित कर्म कारण हैं ॥३२॥ ऐसा जानकर जिन्होंने सुख-दुःखके बाह्य निमित्तोंको गौण कर खोटी चेष्टाओंका परित्याग कर दिया है ऐसे श्रेष्ठ विद्वानोंको निमित्त कारणोंसे तीव्र राग अथवा दोष नहीं करना चाहिये ॥३३॥ गाढ़ अन्धकारके द्वारा आच्छादित मार्ग जब सूर्यके द्वारा प्रकाशित हो जाता है तब नेत्रवान् मनुष्य न तो पृथ्वीके गड्डोमे गिरता है; न पत्थर पर टकराता है और न सर्प ही को प्राप्त होता है ॥३४॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रतिद्व, रविष्याचार्य कथित पद्मपुराणमें हस्तग्रहस्त और नल-नीलके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला उनसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५६॥

षष्ठितमं पर्व

हस्तग्रहस्तसद्दीरो विश्वाय निहतौ ततः । अन्येषु रूद्रधुरक्रोधो बहवो योद्बुधुद्यताः ॥१॥
 मारीचः सिंहजघनः स्वयम्भुः शम्भुरुजितः । शुक्रसारणचन्द्रार्कजगद्दीभत्सनिःस्वनाः ॥२॥
 ज्वरोग्रनक्रमकरा वज्राख्योद्यामनिष्ठुराः । गम्भीरनिनदाद्याश्च सन्नदारभसान्विताः ॥३॥
 सिंहसम्बुद्धबाहोहस्यन्दनापितभूतयः । चोभयन्तः परिप्राप्ताः कपिकेतुवरुधिनीम् ॥४॥
 तान् समापततो दृष्ट्वा राक्षसान् पार्थिवान्पराम् । हमे वानरवंशाग्राः पार्थिवा योद्बुधुद्यताः ॥५॥
 मदनान्कुरसन्तापप्रस्थिताक्रोशवैन्दनाः । दुरितानघपुष्पाखविघ्नप्रीतिक्रारादयः ॥६॥
 अन्योन्याहृतमेतेपामभवत् परमं रणम् । कुर्वन्निर्यटिलं व्योम शस्त्रैर्वहुविधैर्धनम् ॥७॥
 अभिलष्यति सन्तापो मारीचं समरे तदा । प्रथितः सिंहजघनमुद्यानं विघ्नसंज्ञकः ॥८॥
 आक्रोशः सारणं पापः शुक्रार्थं नन्दनो ज्वरम् । तेषां स्पृह्यतामेवं युद्धं जातं नियन्त्रितम् ॥९॥
 ततः क्लिष्टेन सन्तापो मारीचेन निपातितः । नन्दनेन हतः कृच्छ्राञ्ज्वरः कुन्तेन वृक्षसि ॥१०॥
 प्रथितः सिंहकटिना विघ्नश्चोद्यामकीर्तिना । हतोऽथ युद्धसंहारः सवितास्तं समागमत् ॥११॥
 श्रुत्वा स्वं स्वं हतं नाथं निमग्नाः शोकसागरे । स्त्रियो विभावरीमेतामनन्तामिव मेनिरे ॥१२॥
 अन्येषुः सन्ततक्रोधाः सामन्ता योद्बुधुद्यताः । वज्राख्यः क्षपितारिश्च सुगेन्द्रदमनो विधिः ॥१३॥
 शम्भुः स्वयम्भुश्चन्द्रार्कस्तथा वज्रोदरादयः । राक्षसाधिपवर्गीयास्तेभ्योऽन्ये वानरध्वजाः ॥१४॥

अथानन्तर हस्त और ग्रहस्त वीरोंको मरा सुन दूसरे दिन उत्कट क्रोधसे भरे बहुतसे योद्धा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१॥ जिनके कुछ नाम इस प्रकार हैं—मारीच, सिंहजघन, स्वयम्भु, शम्भु, अर्जित, शुक्र, सारण, चन्द्र, अर्क, जगद्दीभत्स, निःस्वन, ज्वर, उग्र, नकर, मकर, वज्राख्य, उद्याम, निष्ठुर और गम्भीर, निनद आदि । ये सभी योद्धा कवच धारणकर युद्धके लिए तैयार थे, वेगसे सहित थे, सिंहों और परिपुष्ट घोड़ोंसे जुते हुए रथोंपर आरूढ़ थे तथा वानर वंशियोंकी सेनाको चोभित करते हुए आ पहुँचे ॥२-४॥ उन राक्षस वंशो उत्तमोत्तम राजाओंको आते देख वानरवंशके प्रधान राजा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥५॥ इनमेसे कुछके नाम इस प्रकार हैं—मदन, अंकुर, संताप, प्रस्थित, आक्रोश, नन्दन, दुरित, अनघ, पुष्पाख, विघ्न और प्रीतिकर आदि ॥६॥ आकाशको अत्यन्त जटिल करनेवाले नाना प्रकारके शस्त्रोंसे दोनो पक्षके लोगोका एक दूसरेको ललकार-ललकार कर भयंकर युद्ध हुआ ॥७॥

उस समय युद्धमें संताप, मारीचको चाह रहा था; प्रथित, सिंह जघनको; विघ्न, उद्यामको; आक्रोश, सारणको, पाप, शुक्रको और नन्दन, ज्वरको; देख रहा था । इस प्रकार स्वर्षासे भरे हुए इन सब योद्धाओका विकट युद्ध हुआ ॥८-९॥ तदनन्तर क्लेशसे भरे हुए मारीचके सन्ताप को गिरा दिया । नन्दनने वृक्षस्थलमें भालेका प्रहारकर बड़े कष्टसे ज्वरको मार डाला ॥१०॥ सिंह जघनने प्रथितको और उद्यामने विघ्नको मार गिराया । तदनन्तर सूर्य अस्त हुआ और उस दिनके युद्धका उपसंहार हुआ ॥११॥ अपने-अपने पतिको मरा सुन स्त्रियों शोकरूपी सागरमें निमग्न हुईं और उस रात्रिको अनन्त—बहुत भारी मानने लगीं ॥१२॥

तदनन्तर दूसरे दिन तीव्र क्रोधसे भरे वज्राख्य, क्षपितारि, सुगेन्द्रदमन, विधि, शम्भु, स्वयम्भु, चन्द्र, अर्क तथा वज्रोदर आदि राक्षस पक्षके और उनसे भिन्न दूसरे वानर पक्षके योद्धा

१. वज्राक्षो घाति निष्ठुराः म०, क० वज्राक्षोद्याननिष्ठुराः ज०, क० । २. सवृत्त-ज० । ३. क्रोध-ज० । ४. शुक्रार्कं म० । ५. वज्राक्षः म० ।

जन्मान्तराजितक्रोधकर्मबन्धोदयेन ते । योद्धुं परममासका निजजीवितनिस्पृहाः ॥१५॥
 क्षपितारिः समाहूतः संक्रोधेन महारुषा । मृगारिदमनो बलिना संहृतो बाहुशालिना ॥१६॥
 विधिर्वितापिनाऽन्योन्यमेवं जाते महाहवे । भटेज्ज्जातसंज्ञेषु निपत्सत्पलेण्विव ॥१७॥
 शार्दूलस्ताडितः पूर्वं वज्रोदरमताडयत् । सक्रोधं सुचिरं युद्धं क्षपितारिरमारयत् ॥१८॥
 विशालद्युतिनामा च शम्भुना विनिपातितः । मृत्युं स्वयम्भुवा नीतो विजयो यष्टिताडितः ॥१९॥
 वितापिर्विधिना ध्वस्तो गदाघातेन कृच्छृतः । सामन्तैरिति हन्यन्ते सामन्ताः शतशस्तदा ॥२०॥
 अवसोदत्ततो दृष्टा स्वं किष्किन्धपतिर्बलम् । परमक्रोधसम्मारो यावत्सन्नदधुमुच्यते ॥२१॥
 अङ्गनासनयस्तावत्तत्त्वसैन्येन युग्महीम् । चारणोढं रथं हेममारुढो योद्धुसुद्ययौ ॥२२॥
 रक्षःसामन्तसद्घातो इष्टैव पवनात्मजम् । गवाभिव गणो भ्रान्तस्त्रस्तः केशरिदर्शनात् ॥२३॥
 ऊर्जुश्च राक्षसः सोऽयं हनूमान् वानरध्वजः । अद्यैव विधवा योषाः परं बह्वीः करिष्यति ॥२४॥
 माली तस्याग्रतो भृतो युद्धार्थी राक्षसोत्तमः । समुद्दृष्ट्य शरं तस्य पुरो वातिरजायत ॥२५॥
 तयोरभूमहयुद्धं शरैराकर्णसहितैः । उपात्तसाधुनिस्त्रानं क्रमेण परमोद्धतम् ॥२६॥
 सचिवाः सचिवैः साकं रथिनो रथिभिस्तथा । सादिनो सादिभिः सत्रा लना युक्तरणोद्यताः ॥२७॥
 मालिन नष्टमालोक्य शक्या पवनजन्मनः । वज्रोदरोऽभवत्सस्य पुरः परमविक्रमः ॥२८॥
 चिरकृतरणोऽथायं वातिना विरथीकृतः । रथमन्यं समाच्छ्रुत् मार्सति समघावत ॥२९॥
 कृत्वा तं विरथ भूयो मार्सतिः परमोदयः । उपर्यवाहयत्सस्य रथं मारुतरंहसम् ॥३०॥

युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१३-१४॥ जन्मान्तरोंमें संचित क्रोध कर्मके तीव्र उदयसे वे अपने जीवनसे निःस्पृह हो भयंकर युद्ध करनेमें जुट पड़े ॥१५॥ महाक्रोधसे भरे संक्रोधने क्षपितारिको ललकारा, भुजाओंसे सुशोभित बलीने सिंह दमनको बुलाया और वितापिने विधिको पुकारा । इस प्रकार परस्पर महायुद्ध होनेपर जिनके नामोंका पता नहीं था ऐसे अनेक योद्धा मर-मरकर ऐसे गिरने लगे मानो पत्थर ही बरस रहे हो ॥१६-१७॥ जिसपर पहले प्रहार किया गया था ऐसे शार्दूलने वज्रोदरको मारा । दीर्घकाल तक युद्ध करनेवाले संक्रोधको क्षपितारिने मार डाला ॥१८॥ शम्भुने विशालद्युतिको मार गिराया, स्वयंभूने यष्टिकी चोटसे विजयको मृत्यु प्राप्त करा दी और विधिने गदाके प्रहारसे वितापिको बड़ी कठिनाईसे मार पाया । इस प्रकार उस समय सामन्तोंके द्वारा सैकड़ों सामन्त मारे गये थे ॥१९-२०॥

तदनन्तर अपनी सेनाको नष्ट होती देख परमक्रोधसे भरा सुग्रीव जबतक कवच धारण करनेके लिए उद्यत हुआ तबतक अपनी सेनासे पृथिवीको व्याप्त करनेवाला हनूमान् हाथियोंसे जुते स्वर्णमय रथपर सवार हो युद्ध करनेके लिए उठ खड़ा हुआ ॥२१-२२॥ जिस प्रकार सिंहको देखकर गायोंका समूह भयभीत हो इधर-उधर भागने लगता है, वसी प्रकार हनूमान्को देख राक्षस-सामन्तोंका समूह भयभीत हो इधर-उधर भागने लगा ॥२३॥ राक्षस परस्पर कहने लगे कि यह हनूमान् आज ही अनेक स्त्रियोंको विधवाएँ कर देगा ॥२४॥ तदनन्तर युद्धका अभिलाषी राक्षसोंका शिरोमणि, माली हनूमान्के आगे आया सो हनूमान् भी बाण निकालकर उसके सामने जा पहुँचा ॥२५॥ कानोंतक खीच-खींचकर चढ़ाये हुए वाणोंसे उन दोनोंका ऐसा महायुद्ध हुआ कि जिसमें क्रम-क्रमसे ठीक-ठीक शब्दका उच्चारण हो रहा था, तथा जो परम उद्धततासे युक्त था ॥२६॥ योग्य युद्ध करनेमें तत्पर सचिव, सचिवोंके साथ, रथी रथियोंके साथ और युद्धसवार युद्धसवारोंके साथ जूझ पड़े ॥२७॥ हनूमान्की शक्तिसे मालीको नष्ट हुआ देख परम पराक्रमी वज्रोदर उसके सामने आया ॥२८॥ चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद हनूमान् ने जब उसे रथ-रहितकर दिया तब वह दूसरे रथपर सवार हो हनूमान्की ओर दौड़ा ॥२९॥ परम अभ्युदयके

स्यन्दनोद्वाहिनानागाहिवूर्णितः सं रणाजिरे । अमुञ्जत हुंतं प्राणान् हुङ्करिणापि वज्रितः ॥३१॥
 ततोऽस्याभिसुखं तस्यौ स्वपचवधकोपितः । जम्बूमालीति विख्यातो रावणस्य सुतो बली ॥३२॥
 असावृत्थितमात्रध्वजं वानरलान्कनम् । चिच्छेद वायुपुत्रस्य चन्द्रार्द्धसदृशपुगा ॥३३॥
 केतुकल्पनद्वयेन तस्य मारुतिना धनुः । कवचं च ततो भीतं पुराणत्वणशीर्णताम् ॥३४॥
 ततस्तनूदरीसुभ्रुवध्वान्यं कवचं दृढम् । अताडयन्मरुत्सुं र्वीचणैर्वचसि सायकैः ॥३५॥
 बालनीलोत्पलम्लाननालस्पर्शसमुद्भवैः । असेवत स तैः सौख्यं धरणीधरधीरधीः ॥३६॥
 अथास्य वायुपुत्रेण रथयुक्तं सहोद्धतम् । सुक्तं सिंहशत पष्ठीचन्द्रवक्रेण पत्रिणा ॥३७॥
 दंष्ट्राकरालवदनैः स्फुरह्योदितलोचनैः । तैरुपत्य निजं सैन्यं सकलं विद्धलीकृतम् ॥३८॥
 महाकह्लोलसङ्काशास्तस्य सैन्याणवस्य ते । क्रूरनक्रसमाना वा जाताः प्रबलमूर्तयः ॥३९॥
 चण्डसौदामिनीदण्डमण्डलाकारहारिणः । सैन्यमेघसमूहं ते परमं क्षोभमानयन् ॥४०॥
 रणसंसारचक्रोऽसौ सैन्यलोकः समन्ततः । सिद्धकर्मभिरत्यर्थमहादुःखवशीकृतः ॥४१॥
 बाजिनो वारणा मत्ता रथारोहाश्च विह्वलाः । रणव्यापारनिर्मुक्तानिष्टुर्दृश दिशस्ततः ॥४२॥
 ततो नष्टेषु सर्वेषु सामन्तेषु यथायथम् । अपश्यद्वाचनं वातिर्वैरैः स्वस्थितमग्रतः ॥४३॥
 आरुह्य च रथं सिंहैर्युक्तं परमभासुरैः । अधावद्वाणसुदृष्टस्य विशत्यर्द्धसुखं प्रति ॥४४॥

धारक हनूमान्ने उसे पुनः रथरहित कर दिया और उसके ऊपर वायुके समान वेगशाली अपना रथ चढ़ा दिया ॥३०॥ जिससे रथको खींचनेवाले हाथियोंके पैरोसे चूर-चूर होकर उसने रणाङ्गणमें शीघ्र ही प्राण छोड़ दिये । अब हूँकारसे भी रहित हो गया ॥३१॥

तदनन्तर रावणका जम्बूमाली नामका प्रसिद्ध बलवान् पुत्र, अपने पक्षके लोगोंकी मृत्युसे क्लृप्त हो हनूमान्के सामने खड़ा हुआ ॥३२॥ इसने खड़े होते ही, अर्धचन्द्र सदृश बाणके द्वारा हनूमान् की वानरचिह्नित ध्वजा छेद डाली ॥३३॥ तदनन्तर ध्वजाके छेदसे हर्षित हुए हनूमान्ने उसके धनुष और कवचको जीर्ण तृणके समान जर्जरता प्राप्त करा दी अर्थात् उसका धनुष और कवच दोनों ही तोड़ दिये ॥३४॥ तदनन्तर मन्दोदरीके पुत्र जम्बूमालीने तत्काल ही दूसरा मजदूत कवच धारण कर तीक्ष्ण वाणों द्वारा हनूमान्के वक्षःस्थलपर प्रहार किया ॥३५॥ सो पहाड़के समान अत्यन्त धीर बुद्धिको धारण करनेवाले हनूमान्ने उन वाणोंसे ऐसे सुखका अनुभव किया मानो बाल नीलकमलके मुरझाये हुए नालोंके स्पर्शसे उत्पन्न हुए सुखका ही अनुभव कर रहा हो ॥३६॥ तदनन्तर हनूमान्ने पष्ठीके चन्द्रमाके समान कुटिल बाणके द्वारा जम्बूमालीके रथमें जुते हुए महा उद्धत सौ सिंह छोड़ दिये अर्थात् एक ऐसा बाण चलाया कि उससे जम्बूमालीके रथमें जुते सौ सिंह छूट गये ॥३७॥ जिनके मुख दाढ़ोंसे भयंकर थे तथा लाल-लाल आँखें चमक रही थीं ऐसे उन सिंहोंने उल्लङ्घनकर अपनी समस्त सेनाको विह्वलकर दिया ॥३८॥ उस सेनारूपी सागरके मध्यमें वे सिंह बड़ी-बड़ी तरङ्गोंके समान जान पड़ते थे अथवा अतिशय बलवान् क्रूर भगर-मच्छोंके समान दिखायी देते थे ॥३९॥ चमकते हुए विद्युद्दण्डके समूहका आकार धारण करनेवाले उन सिंहोंने सेनारूपी मेवोंके समूहको अत्यन्त क्षोभ प्राप्त कराया था ॥४०॥ युद्धरूपी संसारचक्रके बीचमें सैनिकरूपी प्राणी, सिंहरूपी कर्मोंके द्वारा सब ओरसे अत्यन्त दुःखी किये गये थे ॥४१॥ घोड़े, मदनोन्मत्त हाथी और रथोंके सवार—सभी लोग विह्वल हो युद्ध सम्बन्धी कार्य छोड़ दशों दिशाओंमें भागने लगे ॥४२॥ तदनन्तर यथायोग्य रीतिसे सब सामन्तोंके भाग जानेपर हनूमान्ने कुछ दूर सामने स्थित रावणको देखा ॥४३॥ तदनन्तर वह अत्यन्त देदीप्यमान सिंहोंसे युक्त रथपर सवार हो बाण खींचकर रावणकी

दशस्यस्त्रासितं वीच्य निजं केसरिभिवल्लम् । समीपं चाङ्गनासुलुं कृतान्तमिव दुर्द्वरम् ॥१५॥
 चक्रे थोद्बुमभिप्रायं यावत्सस्त्राहतत्परः । तावन्महोदरोऽप्यान्ते संरम्भेण समुद्ययौ ॥१६॥
 महोदरस्य च वातेश्च वरुते यावदाहवः । तावत्ते हरयः प्राज्ञैर्गृहीताः स्वामिभिः शनैः ॥१७॥
 वशीभूतेषु सिंहेषु जाता सन्तो महारूपः । वायुपुत्रं समुत्पेतुः समस्ता राक्षसध्वजाः ॥१८॥
 तथाप्यनिलसुस्तान् मुञ्चत शरसंहतीः । वधार मण्डलीभूतान् पतयिसन्निवैः कृता ॥१९॥
 ते शिलीमुखसङ्घाताः प्रहितास्तस्य राक्षसैः । संयतस्य यथाऽऽक्रोशा नामवन्कम्पकारिणः ॥२०॥
 रक्षोभिर्विघ्नं दृष्ट्वा तैस्तमतिभूरिभिः । इमे वानरवर्गीणः समराय समुद्ययुः ॥२१॥
 सुपेणो नलनीलो च प्रीतिङ्करो विराधितः । सन्त्रासको हरिकटिः सूर्यज्योतिर्महाबलः ॥२२॥
 जाम्बूनदसुताद्याश्च सिंहेभारवयुतैः रथैः । कृच्छ्राद्वावणसैन्यस्य निवारयितुमुद्यताः ॥२३॥
 तैः समापतितैः सैन्यं दशग्रीवस्य सर्वतः । परीपहैरिव ध्वस्तं महातुच्छद्वर्तं व्रतम् ॥२४॥
 आर्त्मीयानाकुलान् दृष्ट्वा युयुत्सुं च दशाननम् । आदित्यश्रवणो योद्बुसुद्गतो सुमहाबलः ॥२५॥
 दृष्ट्वा तमुद्गतं वीरं ज्वलन्तं रणतेजसा । सुपेणादीनिमे प्रापुः साधारयितुमाकुलाः ॥२६॥
 इन्दुररिमर्षयस्कन्दश्चन्द्रामो रतिवर्धनः । अङ्गोऽङ्गदोष्य सम्मेदः कुसुदः शशिमण्डलः ॥२७॥
 वलिश्चण्डतरङ्गश्च सारो रत्नजटी जयः । वेलाक्षेपी वसन्तश्च तथा कोलाहलादयः ॥२८॥
 ततस्ते बहुबलत्वेन प्रवीराः पद्मपद्मिणः । लम्ना महाहवं कर्तुं शत्रुसामन्तदुःसहम् ॥२९॥

आर दौड़ा ॥१४॥ अपनी सेनाको सिंहाके द्वारा त्रासित तथा यमराजके समान दुर्घर हनूमानको पास आया देख, क्वच आदि धारण करनेमें तत्पर रावणने ज्योही युद्धका विचार किया त्योही उसके पास बैठा महोदर क्रोधपूर्वक बठ खड़ा हुआ ॥१४-१६॥ इधर जब तक महोदर और हनूमानका युद्ध होता है तब तक वे छूटे हुए सिंह धीरे धीरे बुद्धिमान स्वामियोंके द्वारा पकड़ लिये गये ॥१७॥ सिंहाके वशीभूत होने पर जिनका तीव्र क्रोध बढ़ रहा था ऐसे समस्त राक्षस यद्यपि पवन पुत्र पर दृष्ट पड़े ॥१८॥ तथापि अतिशय क्रुशाल हनूमानने, चाण समूहको छोड़ने वाले उन ससस्त राक्षसोंको वाणरूपी मन्त्रियोंके द्वारा रोक लिया ॥१९॥ जिस प्रकार दुर्जन मनुष्योंके द्वारा कहे हुए दुर्वचन संयमी मनुष्यके कम्पन उत्पन्न करने वाले नहीं होते उसी प्रकार राक्षसोंके द्वारा छोड़े हुए चाणोंके समूह हनूमानके कम्पन उत्पन्न करने वाले नहीं हुए अर्थात् धीर वीर हनूमान्, राक्षसोंके चाणोंसे कुछ भी विचलित नहीं हुआ ॥२०॥

तदनन्तर हनूमानको बहुतसे राक्षसोंके द्वारा घिरा देख वानर पक्षके ये योद्धा युद्धके लिए उद्यत हुए ॥२१॥ सुपेण, वल, नील, प्रीतिकर, विराधित, सन्त्रासक, हरिकटि, सूर्यज्योति, महाबल और जाम्बूनदके पुत्र आदि । ये सब सिंह, हाथी और घोड़ोंसे जुते हुए रथों पर सवार हो बड़ी कठिनायीसे रावणकी सेनाको रोकनेके लिए उद्यत हुए ॥२२-२३॥ जिसप्रकार किसी अत्यन्त तुच्छ पुरुषके द्वारा धारण किया हुआ व्रत परिषदोंके द्वारा ध्वस्त—नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है उसी प्रकार सब ओरसे आते हुए वानर पक्षके योद्धाओंसे रावणकी सेना ध्वस्त हो गई ॥२४॥ अपने पक्षके लोगोंको व्याकुल देख रावण युद्ध करनेका अभिलाषी हुआ, सो उसे देख महाबलवान् भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) युद्ध करनेके लिए उठा ॥२५॥ रणके तेजसे देदीप्यमान वीर भानुकर्णको उठा देख, ये लोग सुपेण आदिको सहारा देनेके लिए पहुँचे ॥२६॥ चन्द्ररिम, जयस्कन्द, चन्द्राम, रतिवर्धन, अङ्ग, अङ्गद, संमेद, कुसुद, चन्द्रमण्डल, वलि, चण्डतरङ्ग, सार, रत्नजटी, जय, वेलाक्षेपी, वसन्त, तथा कोलाहल आदि ॥२७-२८॥ ये सब राम पक्षके अत्यन्त बलवान् योद्धा,

१. सक्रोवेन म० । २. सूतेश्च म० । ३. संत्राहको हरिकोटिः म० । ४. इन्द्ररिम म० क० । ५. बहुबलत्वेन म०, क० । ६. शत्रुसामन्तिदुःसहम् म० ।

क्रुद्धेन क्रुन्भकर्णेन ततस्ते रणपामनाः । विद्यया स्वापिताः सर्वे दर्शनावर्णो जया^१ ॥६०॥
 निद्रावृण्णितनेत्राणां तेषां शखावसङ्गिनाम् । करेभ्यः सायकाः पेतुः शिथिलेभ्यः समन्ततः ॥६१॥
 निद्राविद्राणसङ्ग्रामानेतानप्यकचेतवान् । दृष्ट्वाऽयुञ्जत सुग्रीवो विधां द्वात्रिंशत्प्रतिबोधिनाम् ॥६२॥
 प्रतिबुद्धास्तथा तेभ्य सुतरां जाततेजसः । हनूमदादयो योद्धुं प्रवृत्ताः सङ्कुलं परम् ॥६३॥
 शास्त्रकेसरिचिह्नानां बलमत्यर्थपुष्कलम् । छत्रासिपत्रसङ्कीर्णमपिच्छन्नरणालसम् ॥६४॥
 स्पृष्टमानं समालोक्य क्षुब्धसागरसन्निभम् । अवस्थां च स्ववाहिन्याः परिप्राप्तामसुन्दरीम् ॥६५॥
^३उत्सेहे रावणो योद्धु प्रणम्य च तमिन्द्रजित् । कृताञ्जलिरिदं वाक्यमभापत महाद्युतिः ॥६६॥
 तात तात न ते युक्तं सम्प्राप्तं मयि तिष्ठति । निष्फलत्वं हि मे जन्म सत्येवं प्रतिपद्यते ॥६७॥
 नखच्छेद्ये वृणे किं वा परशोरुचिता गतिः । ततो भव सुविश्रब्धः करोम्येव तवेप्सितम् ॥६८॥
 इत्युक्त्वा मुदितोऽप्यन्तमार्गच्छ गिरिसन्निभम् । त्रैलोक्यकण्ठकाभिख्यं गजेन्द्रं^४ परमप्रियम् ॥६९॥
 गृहीतादरसर्वस्वो महासचिवसङ्गतः । क्रुद्धाखण्डलसङ्घायाः प्रवीरो योद्धुमुद्यतः ॥७०॥
 कपिध्वजबल तेन विविधायुधसङ्कटम् । प्रस्तमुत्थितंमात्रेण महावीर्येण मानिना ॥७१॥
 किष्किन्धाधिपतेः सैन्ये न सोऽस्ति कपिकेतनः । यो न शक्यजिता विद्रः शरैराकर्णसंहितैः ॥७२॥
 किमयं शक्यजिज्ञायं शक्नो बह्निरयं नु किम् । उतायमपरो भालुरिति वाचः समुद्ययुः ॥७३॥

ऐसा महायुद्ध करने लगे कि जो शत्रु-सामन्तांको अत्यन्त दुःसह था ॥५६॥ तदनन्तर रणको खाजसे युक्त उन सब वीरोको क्रोधसे भरे भालुकर्णने निद्रा नामा विद्याके द्वारा सुखा दिया ॥६०॥ तत्पश्चात् निद्रासे जिनके नेत्र धूम रहे थे ऐसे शत्रुको धारण करनेवाले उन वीरोके हाथ सब ओरसे शिथिल पड़ गये तथा उनसे अस्त्र-शस्त्र नीचे गिरने लगे ॥६१॥ निद्राके कारण जिनका युद्ध बन्द हो गया था तथा जिनकी चेतना अव्यक्त हो चुकी थी ऐसे उन सबको देख सुग्रीवने शीघ्र ही प्रतिबोधिनी नामकी विद्या छोड़ी ॥६२॥ तदनन्तर उस विद्याके प्रभावसे प्रतिबुद्धि होनेके कारण जिनका तेज अत्यन्त बढ गया था ऐसे हनूमान् आदि वीर अत्यन्त भयङ्कर युद्ध करनेके लिए प्रवृत्त हुए ॥६३॥ वानर वंशियों की वह सेना बहुत बड़ी थी; छत्र, खड्ग तथा बाहनोंसे व्याप्त थी, उसकी युद्ध की लालसा समाप्त नहीं हुई थी, उत्तरोत्तर रमधां करनेवाली थी, और क्रोध को प्राप्त हुए सागरके समान जान पड़ती थी । इसके विपरीत रावणकी सेनाकी दशा अत्यन्त अशोभनीय हो रही थी सो वानर वंशियोंकी सेना तथा अपनी सेनाकी दशा देख रावण युद्धके लिये उत्साही हुआ सो महावीरिका धारक इन्द्रजित् प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर यह कहने लगा कि ॥६४-६६॥ हे तात ! हे तात ! मेरे रहते हुए इस समय आपका युद्धके लिए तत्पर होना उचित नहीं है क्योंकि ऐसा होने पर मेरा जन्म निष्फलताको प्राप्त होता है ॥६७॥ अरे ! जो वृण नखके द्वारा छेदा जा सकता है वहाँ परशुका प्रयोग करना क्या उचित है ? इसलिए आप निश्चिन्त रहिये आपका मनोरथ मैं पूर्ण करता हूँ ॥६८॥ इतना कहकर अत्यधिक प्रसन्नतासे भरा इन्द्रजित् पर्वतके समान त्रैलोक्यकण्ठक नामक अपने परम प्रिय गजेन्द्र पर सवार होकर युद्धके लिये उद्यत हुआ । उस समय जिसने आदर रूपी सर्वस्व ग्रहण किया था, ऐसा वह इन्द्रजित् महामन्त्रियोंसे सहित था, सम्पदासे इन्द्रके समान जान पड़ता था तथा अतिशय धीर-वीर था ॥६९-७०॥ उस महाबलवान् मानी इन्द्रजित्ने उठते ही नाना शस्त्रोंसे भरी वानरांकी सेना क्षणमात्रमे प्रस ली—दवा दी ॥७१॥ सुग्रीवकी सेनामे ऐसा एक भी वानर नहीं था जिसे इन्द्रजित्ने कान तक खिंचे हुए बाणोंसे घायल नहीं किया हो ॥७२॥ उस समय लोगोंके मुखसे

१. यया म०, यथा क०, यथा ज० । २. स वाहिन्याः म० । ३. उत्सेहे म० । ४. परमं प्रियः म० ।
 ५. मस्थित-म० । ६. बह्निरियं म० ।

प्रस्थमानं निजं सैन्यं वीक्ष्य शक्रजिता ततः । सुग्रीवः स्वयमुच्चातः प्रभामण्डल एव च ॥७३॥
 तद्रथानामथूदुग्धमन्योन्वाह्वानसद्व कुलम् । शस्त्रान्वकारिताकाशमनपेक्षितजीवितम् ॥७४॥
 'अश्वैरश्वः समं लग्नाः नागा नागै रथा रथैः । निजनाथानुरागेण महोत्साहो भटा भटैः ॥७६॥
 जगादेन्द्रजितः क्रुद्धः किष्किन्धेशं पुरः स्थितम् । अपूर्वशस्त्रभूतेन स्वरेण गगनस्पृशा ॥७७॥
 दशास्यशासनं त्यक्त्वा शाखाभृगपशो त्वया । क्वाभ्युना गम्यते पाप मयि कोपमुपागते ॥७८॥
 इन्दीवरनिमेनाथ सायकेन तवामुना । शिरश्छिन्नदम्भि संरक्षां कुरुतां क्षितिगोचरौ ॥७९॥
 किष्किन्धेशस्ततोऽब्रुवत् किमेभिर्गजितैर्मुग्धा । मानश्रद्धमिदं भग्नं तच्चु परय मयाभुना ॥८०॥
 इत्युक्ते कोपसम्भारं वहन्नन्द्रजितोऽद्भुतम् । चापमास्फालयन्नस्य समीपस्वमुपागतः ॥८१॥
 शशिमण्डलसङ्काशच्छन्नछायाजुसेवितः । मुसोच शरसङ्घातं किष्किन्धाधिपतिं प्रति ॥८२॥
 सोऽप्याकर्णसमाकुट्टैरान् वापान्नादोपलक्षितान् । निजरक्षामहादक्षश्चिक्षेपेन्द्रजितं प्रति ॥८३॥
 तेन घाणसमूहेन सन्ततेन निरन्तरम् । जातं नभस्तलं सर्वं मूर्तियुक्तामिवापरम् ॥८४॥
 मेघवाहनवीरेण प्रभामण्डलसुन्दरः । आहूतो वज्रनक्रश्च विराधितमहीभृता ॥८५॥
 विराधितनरेन्द्रेण वज्रनक्रनरोत्तमः । राजन् वक्षसि चक्रेण भासुरेणाभिपतितः ॥८६॥
 तादितो वज्रनक्रेण सोऽपि चक्रेण वक्षसि । विना हि प्रतिदानेन महती जायते त्रपा ॥८७॥
 चक्रसन्नाहनिपेजन्मवह्निकणोत्करैः । चञ्चदुस्कास्फुलिङ्गैर्वापिङ्गतां गगनं गतम् ॥८८॥

इसप्रकारके वचन निकल रहे थे कि—यह इन्द्रजित् नहीं है ? किन्तु इन्द्र है ? अथवा अग्निकुमार देव है, अथवा कोई दूसरा सूर्य ही उदित हुआ है ॥७३॥ तदनन्तर अपनी सेनाको इन्द्रजीतके द्वारा दची देख स्वयं सुग्रीव और भामण्डल युद्धके लिए उठे ॥७४॥ तत्पश्चात् उनके योद्धाओसे ऐसा युद्ध हुआ कि जो परस्परके बुलानेके शब्दसे व्याप्त था, शस्त्रोंके द्वारा जिससे आकाश अन्धकारयुक्त हो रहा था और जिससे प्राणोंकी अपेक्षा नहीं थी ॥७५॥ घोड़े घोड़ोंसे, हाथी हाथियोंसे, रथ रथोंसे और अपने स्वामीके अनुरागके कारण महोत्साहसे युक्त पैदल सैनिक पैदल सैनिकोंसे भिड़ गये ॥७६॥

अथानन्तर क्रोधसे भरा इन्द्रजित् सामने खड़े हुए सुग्रीवको लक्ष्य कर अपूर्व शस्त्रभूत गगनस्पर्शीं स्वरसे बोला ॥७७॥ कि अरे ! पशु तुल्य नीच वानर ! पापी ! रावणकी आज्ञा छोड़ कर अब तू मेरे कुपित रहते हुए कहाँ जाता है ? ॥७८॥ आज मैं इस नील कमलके समान श्याम तलवारसे तेरा मस्तक काटता हूँ, भूमिगोचरी राम लक्ष्मण तेरी रक्षा करे ॥७९॥ तदनन्तर सुग्रीवने कहा कि इन व्यर्थकी गर्जनाओंसे क्या लाभ है ? देख तेरा मान रूपी शिखर मैं अभी ही भग्न करता हूँ ॥८०॥ इतना कहते ही क्रोधके भारको धारण करने वाला इन्द्रजित् अद्भुत रूपसे धनुषका आस्फालन करता हुआ सुग्रीवके समीप पहुँचा ॥८१॥ तत्पश्चात् इधर चन्द्रमण्डलके समान छत्र की छायासे सेवित इन्द्रजित्ने सुग्रीवको लक्ष्य कर वाणोंका समूह छोड़ा ॥८२॥ उधर अपनी रक्षा करनेमें अत्यन्त चतुर सुग्रीवने भी कान तक खिचे तथा शब्दसे युक्त वाण इन्द्रजित् की ओर छोड़े ॥८३॥ उन विस्तृत वाणोंके समूहसे निरन्तर व्याप्त हुआ समस्त आकाश ऐसा हो गया मानो मूर्तिधारी दूसरा ही आकाश हो ॥८४॥ उधरसे वीर मेघवाहनने भामण्डलको ललकारा और इधरसे राजा विराधितने वज्रनक्रको पुकारा ॥८५॥ गौतम स्वामी श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन ! राजा विराधितने वज्रनक्र राजाकी छाती पर देदीप्यमान चक्रकी चोट देकर उसे गिरा दिया ॥८६॥ इसके बदले वज्रनक्रने भी संभलकर विराधितकी छाती पर चक्रका प्रहार किया सो ठीक ही है क्योंकि बदला चुकाये बिना बड़ी लज्जा उत्पन्न होती है ॥८७॥ उस समय

१. अश्वैरश्वैः म० । २. महोत्साहमयः म० । ३. समाकुण्ठन् म० । ४. निजरक्षमहारत्न-म० ।
 ५. राजवक्षसि म० ।

लङ्कानाथस्य पुत्रेण निरस्रः सूर्यनन्दनः । कृतः सङ्ग्रामशौण्डेन सङ्ग्रामादनिवर्तकः ॥८६॥
 तेनापि तस्य वज्रेण सर्वशस्त्रं निराकृतम् । पुण्यानुकूलितानां हि नैरन्तर्यं न जायते ॥९०॥
 भवतीर्यं ततः क्रुद्धो नागादिन्द्रजितो द्रुतम् । सिंहस्यन्दनमारुह्य पिञ्जरीकृतपुष्करम् ॥९१॥
 समाहितमतिर्नागाविद्यासन्नगतिपण्डितः । योद्धुमभ्युद्यतो विभङ्गसन्नवनिवाहवे ॥९२॥
 अस्त्रं घनौघनिर्घोषं सम्प्रयुज्य सवारुणम् । दिशः किष्किन्धराजस्य चकारालोकवर्जिताः ॥९३॥
 तेनापि पवनघोषेण कृत्स्नत्रध्वजादिना । तदस्त्रं वारुणं क्वापि नीतं तूलोत्करोपम् ॥९४॥
 घनवाहनवीरोऽपि प्रभामण्डलभ्रूश्रुतः । आग्नेयास्त्रनिधोगेन चकार धनुर्निधनम् ॥९५॥
 तस्य स्फुलिङ्गसंसर्गाद्दन्त्येषामपि चापिनाम् । धूमोद्गारानमुञ्चन्त धनुषि भयवीक्षितम् ॥९६॥
 नितान्तबहुयोद्धृषणां जीवितप्रसनादिव । प्रासानां परमार्जीणं धनुषां ते तदाभवन् ॥९७॥
 वारुणेन ततोऽप्येण त्वरितं जनकाम्बजः । आग्नेयास्त्रं निराचक्रे स्वन्नक्रे कृतपालनः ॥९८॥
 ततो मन्दोदरीसूनुश्चक्रे त रथवर्जितम् । तथाविधमहासत्त्वमाकुलत्वविवर्जितम् ॥९९॥
 प्रयोगकुशलश्चास्त्रमस्त्रं तामसमक्षिपत् । तेनान्धकारितं सैन्यं सर्वं जनकजन्मनः ॥१००॥
 ३ स नाजानाद् द्विप न द्वां नात्मीयं न च शत्रवम् । अन्धध्वान्तपरिच्छन्नो मूच्छामिव समागतः ॥१०१॥

चक्र और कवचकी टक्करसे जो आग्निके कण उत्पन्न हुए थे, उनके समूहसे आकाश इस प्रकार पीला हो गया मानो चमकती हुई उल्काओंके तिलगोंके समूहसे ही पीला हो रहा हो ॥८८॥ युद्ध-निपुण लङ्कानाथके पुत्र इन्द्रजितने सुग्रीवको निःशस्त्र कर दिया फिर भी वह सभामसे पीछे नहीं हटा ॥८९॥ प्रत्युत इसके विपरीत सुग्रीवने भी वज्रके द्वारा इन्द्रजितके सर्वशस्त्र दूर कर दिये सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यात्मा जीवोंके किसी कार्यमें अन्तर नहीं पड़ता ॥९०॥ तदनन्तर क्रोध से भरा इन्द्रजित् शीघ्र ही हाथीसे उतर कर आकाशको पीला करने वाले सिंहके रथपर आरूढ हुआ ॥९१॥ तत्पश्चात् जिसकी बुद्धि स्थिर थी, जो नाना विद्यामय अस्त्र-शस्त्रोंके चलनेमें निपुण था और जो युद्धमें मानो नवीन रस धारण कर रहा था ऐसा इन्द्रजित् मायामय युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥९२॥ प्रथम ही उसने मेघ-समूहके समान गर्जना करने वाला वारुण अस्त्र छोड़ कर सुग्रीवकी दिशाओंको प्रकाशसे रहित कर दिया ॥९३॥ इसके बदले सुग्रीवने भी छत्र तथा ध्वजा आदिको छेदने वाला पवन वाण चलाया जिससे इन्द्रजित्का वारुण अस्त्र रुईके समूहके समान कहीं चला गया ॥९४॥

उधर वीर मेघवाहनने भी आग्नेय वाण चलाकर राजा भामण्डलके धनुषको इन्धन बना दिया अर्थात् जला दिया ॥९५॥ उस धनुषके तिलगोंके सम्बन्धसे अन्य धनुष धारियोंके धनुष भी धूम छोड़ने लगे जिसे सब सेनाने बड़े भयसे देखा ॥९६॥ उन धनुषोंने अनेक योद्धाओंके प्राण ग्रसित किये थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो उन्हें अत्यधिक अजीर्ण ही हो गया हो ॥९७॥ तदनन्तर अपने चक्र—सेनाकी रक्षा करते हुए भामण्डलने शीघ्र ही वारुण अस्त्र छोड़ कर आग्नेय अस्त्रका निराकरण कर दिया ॥९८॥ तत्पश्चात् मन्दोदरीके पुत्र मेघवाहनने उस प्रकारके महापराक्रमी एवं आकुलतासे रहित भामण्डलको रथ रहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ डाला ॥९९॥ यही नहीं प्रयोग करनेमें कुशल मेघवाहनने सुन्दर तामस वाण भी चलाया जिससे भामण्डलकी समस्त सेना अन्धकारसे युक्त हो गई ॥१००॥ वह उस समय अन्धकारके कारण न अपने हाथी तथा पृथिवीको जान पाता था, न शत्रु सम्बन्धी हाथी तथा पृथिवी ही को जान पाता था । गाढ़ अन्धकारसे आच्छादित हुआ वह मानो मूच्छाको ही प्राप्त हो रहा था

अर्थाभूतो दशास्यस्य सुतेन जनकात्मजः । विमुक्तविषधूमौघैः वेष्टितो नागसायकैः ॥१०२॥
 तै रसौ व्याप्तसर्वाङ्गो विस्फुरद्भोगभासुरैः । चन्दनद्रुमसङ्काशः पपात वसुधातले ॥१०३॥
 एवमिन्द्रजितेनापि कृता किष्किन्धभृश्रुतः । अवस्थाध्वान्तनागास्त्रद्वयव्यापारकारिणा ॥१०४॥
 ततो विभीषणो विद्वान् विद्यास्त्ररणवस्तुनि । कृत्वा करपुटं भूर्धिनं बभाषे पद्मलक्ष्मणौ ॥१०५॥
 पद्म पद्म महाबाहो वीर लक्ष्मण लक्ष्मण । पृताः पश्य दिशश्चक्रवाः शरैरिन्द्रजितेरितैः ॥१०६॥
 वियत्तलं धरित्रीं च तस्य वाणैर्निरन्तरैः । उत्पातभूतनागाभैरातेनेऽत्यन्तदुःखदैः ॥१०७॥
 कृत्वा सुग्रीववैदेहौ निरसौ नागसायकैः । बद्धौ निपातितौ भूमौ मयजामुतनिःसृतैः ॥१०८॥
 उदारै विजिते देवै श्रीभामण्डलपण्डिते । वीरै सुग्रीवराजे च बहुविद्याधाराधिपे ॥१०९॥
 सङ्घातमृत्युमस्माकमासन्नं विद्धि रावच । पृत्तौ हि नायकावुग्रावत्सपक्षस्य केवलौ ॥११०॥
 एतामनायकीभूतां विद्याधरवरूथिनीम् । पलायनोद्यतां पश्य समाश्रित्य दिशो दश ॥१११॥
 आदित्यश्रवणेनासौ पश्य मारुतनन्दनः । विजित्य समुहायुद्धे कराम्बां बद्धविग्रहः ॥११२॥
 शरजर्जरितच्छत्रनेतृकामुक्ककण्ठः । गृहीतः प्रसभं वीरः पुनश्च ध्वजपुङ्गवः ॥११३॥
 यावत्सुग्रीवभाष्यं पतितौ धरणीतले । न सन्भावयते क्षिप्रं रावणी रणकोविदः ॥११४॥
 तावदेतौ स्वयं गत्वा निश्चेदावालयम्यहम् । त्वं साधारय निर्नाथामिमां खेचरवाहिनीम् ॥११५॥
 यावदेवमसौ पद्मं लक्ष्मणं चाभिभाषते । सुनारातनयस्तावद् गत्वा स्वैरमलक्षितः ॥११६॥

॥१०१॥ जत्र भामण्डल उस तामसचाणसे अन्धा हो रहा था तब मेघवाहनने उसे विपरुषी धूम का समूह छोड़ने वाले नागवाणोसे वेष्टित कर लिया ॥१०२॥ उठते हुए फनोसे सुशोभित उन नागोसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था और इसीलिए जो चन्दन वृत्तके समान जान पड़ता था ऐसा भामण्डल पृथिवी पर गिर पड़ा ॥१०३॥ इसी प्रकार तामस और नाग पाश इन दो अस्त्रों को चलाते बाले इन्द्रजितने भी सुग्रीवकी दशाकी अर्थात् उसे तामसास्त्रसे अन्धा कर नागपाशसे बाँध लिया ॥१०४॥

तदनन्तर विद्यामय शस्त्रोसे युद्ध करनेमें कुशल विभीषणने हाथ जोड़ भस्तकसे लगा राम-लक्ष्मणसे कहा कि हे महाबाहो ! राम ! राम ! हे वीर ! लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! देखो, ये दिशाएँ इन्द्रजित् के द्वारा छोड़े हुए वाणोसे आच्छादित हो रही हैं ॥१०५-१०६॥ उत्पातकारी नागोके समान आभावाले, अत्यन्त दुःखदायी उसके निरन्तर वाणोसे आकाश और पृथिवी व्याप्त हो रही है ॥१०७॥ मन्दोदरीके पुत्रोने सुग्रीव और भामण्डलको अस्त्र रहित कर दिया है, तथा अपने द्वारा छोड़े हुए नाग वाणोसे उन्हें बाँधकर पृथिवी पर गिरा दिया है ॥१०८॥ हे देव ! अतिशय चतुर भामण्डल और अनेक विद्याधरोके राजा वीर सुग्रीवके पराजिन होने पर हे रावच ! समझ लीजिये कि हम लोगोको सामूहिक मृत्यु निकटवर्ती है, क्योंकि ये दोनो ही हमारे पक्षके प्रमुख नायक हैं ॥१०९-११०॥ इधर देखो, यह विद्याधरोकी सेना नायकसे रहित होनेके कारण दशो दिशाओमें भागनेके लिए उद्यत हो रही है ॥१११॥ उधर देखो कुम्भकर्णने महायुद्धमें हनुमान्को जीतकर अपने हाथोसे उसे कैदकर रक्खा है ॥११२॥ जिसका छत्र, ध्वज, धनुष और कवच वाणोसे जर्जर कर दिया गया है, ऐसा यह वीर हनुमान् बलात् कैद किया गया है ॥११३॥ रण-विशारद रावणका पुत्र, जब तक पृथिवी पर पड़े हुए सुग्रीव और भामण्डलके समीप शीघ्रतासे नहीं पहुँचता है तब तक निश्चेष्ट पड़े हुए इन दोनोको मैं स्वयं जाकर ले आता हूँ, तुम नायकरहित इस विद्याधर सेनाको आश्रय दो ॥११४-११५॥ इस तरह जब तक विभीषण राम और लक्ष्मण

१ म पुस्तके त्रेवं पाठः 'सर्वाङ्गो विस्फुरद्भोगभासुरैश्चन्दनद्रुमः । यथा तथायं तैर्युक्तः पपात वसुधातले ॥' २. निरस्तौ म० । ३. मन्दोदरीपुत्र । ४. देवे म० । ५. भामण्डली ।

अम्बरं भानुकर्णस्य परिधानममुञ्चत । हीभाराकुलितो जातः सेतुद्वरणविह्वलः ॥११७॥
 थावद्वासः समाधानपरोऽसौ राक्षसोऽभवत् । भुजपाशोदरादस्य निःसृतस्तावदानिलिः ॥११८॥
 नवो बद्धो यथा पत्नी निर्गतः पञ्जरोदरात् । आसीत्सुचक्रितो वातिः प्रत्युग्रयुतिसङ्गतः ॥११९॥
 ततो मुद्रितसम्प्रीती विमानशिखरस्थितौ । हनूमदद्गदौ वीरौ रेजतुः सुसन्निभौ ॥१२०॥
 ताभ्यामङ्गकुमारैण चन्द्रोदरसुतेन च । सम लक्ष्मीधरः सेनां समावसथितुं स्थितः ॥१२१॥
 मन्दोदरीसुत तावदभिथाय विभीषणः । स पितृव्यं समालोचय चिन्तामेतामुपागतः ॥१२२॥
 तातस्यास्य च को भेदो न्यायो यदि निरीक्ष्यते । ततोऽभिमुखमेतस्य नावस्थानुं प्रशस्यते ॥१२३॥
 नागपाशैरिमौ बद्धौ मृच्युं यातौ विरसथम् । पृतावच्चेह कर्तव्यं युक्तं तदवसर्पणम् ॥१२४॥
 इति सन्नित्य निर्याताविन्द्रजिन्मेघवाहनौ । गहनाहवमेदिन्याः कृतार्थरवाभिमानी ॥१२५॥
 अन्तर्द्धौ सेविते ताभ्यां सम्भ्रान्तात्मा विभीषणः । त्रिशूलहेतिरासुककङ्कटस्तल्लेचनः ॥१२६॥
 उत्तार्य स्वस्थाद्वीरस्तथोक्तिं कम्पदेहयोः । अवस्थान्तरमदाक्षीबागसायकनिर्मितम् ॥१२७॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽञ्जोचत् पद्मनाभं विचक्षणः । श्रूयतां नाथ यत्रेमौ महाविद्याधराधिपौ ॥१२८॥
 अत्युजितौ महासैन्यौ महाशक्तिसमन्वितौ । श्रीभामण्डलसुग्रीवौ नीतावस्त्रविमुक्तताम् ॥१२९॥
 रावणस्य कुमाराभ्यां स्मृतात्पुरगमार्गणैः । तत्र त्वया मया वापि साध्यते किं दशाननः ॥१३०॥
 ततः पुण्योदयस्यन्नः स्मृत्वा लक्ष्मणमब्रवीत् । तदा स्मर चर लब्धं योग्युपद्रवनाशने ॥१३१॥

से कहता है तब तक सुतारिके पुत्र अङ्गदने छिपे-छिपे जाकर कुम्भकर्णका अधोवस्त्र खोल दिया जिससे वह लज्जासे व्याकुल हो वस्त्रके संभालनेमें लग गया ॥११६-११७॥ जब तक कुम्भकर्ण वस्त्रके संभालनेमें लगता है तब तक हनूमान् उसकी भुजपाशके मध्यसे निकल भागा ॥११८॥ जिस प्रकार नया बंधा पत्नी पिजड़ेके मध्यसे निकलने पर चकित हो जाता है, उसी प्रकार हनूमान् भी कुम्भकर्णके भुजबन्धनसे निकलने पर चकित तथा उग्र तेजसे युक्त हो गया ॥११९॥ तदनन्तर प्रसन्नता और संतोषसे युक्त वीर हनूमान् और अङ्गद विमानके अग्रभाग पर बैठ देवोंके समान सुशोभित होने लगे ॥१२०॥ उधर अंगदके भाई अंग और चन्द्रोदरके पुत्र विराधितके साथ लक्ष्मण, विद्याधरोंकी सेनाको धैर्य बंधानेके लिए जा डटे ॥१२१॥ अब विभीषण, मन्दोदरी के पुत्र इन्द्रजित्के सामने गया सो वह काकाको देख इस चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥१२२॥ कि यदि न्यायसे देखा जाय तो पितासे और इसमें क्या भेद है ? इसलिए इसके सम्मुख खड़ा रहना अच्छा नहीं है ॥१२३॥ ये सुग्रीव और विभीषण नागपाशसे बंधे हैं सो निःसन्देह मृत्युको प्राप्त हो चुके हैं, इसलिए इस समय यहाँसे चला जाना ही उचित है ॥१२४॥ ऐसा विचार कर कृतकृत्यताके अहंकारसे भरे इन्द्रजित् और मेघवाहन दोनों ही युद्धभूमिसे बाहर निकल गये ॥१२५॥ उन दोनोंके अन्तर्हित हो जाने पर जिसकी आत्मा घबड़ा रही थी, जो त्रिशूल नामक शस्त्र धारण कर रहा था, जिसने कवच पहिन रखा था, तथा जिसके नेत्र अत्यन्त चञ्चल थे ऐसा वीर विभीषण अपने रथसे उतर कर वहाँ गया जहाँ सुग्रीव और भामण्डल निश्छेद पड़े हुए थे । वहाँ जाकर उसने नागपाशसे निर्मित दोनोंकी चिन्तनीय दशा देखी ॥१२६-१२७॥

तदनन्तर बुद्धिमान् लक्ष्मणने रामसे कहा कि हे नाथ ! सुनिये, जहाँ वे महाविद्याधरोंके स्वामी, अतिशय बलवान्, बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित और महाशक्तिसे सम्पन्न थे भामण्डल और सुग्रीव भी रावणके पुत्रों द्वारा अस्त्र रहित अवस्थाको प्राप्त हो नागपाशसे बंध लिये गये हैं वहाँ क्या तुम्हारे या हमारे द्वारा रावण जीता जा सकता है ? ॥१२८-१२९॥ तब पुण्योदयसे स्मरण कर रामने लक्ष्मणसे कहा कि भाई ! उस समय देशभूषण-कुलभूषण मुनिवोंका उपसर्ग दूर

महालोचनदेवस्य तदधिष्णानमात्रतः । सुखावस्थस्य सहसा सिंहासनमकम्पत ॥१३२॥
 आलोचन्यावधिनेत्रेण ततो विज्ञाय सम्भ्रमी । विद्याभ्यां प्राहिणोद्युक्त चिन्तावेगं निजं सुरम् ॥१३३॥
 गवा कथित स क्षेमः सन्देशः सादरं सुरः । ताम्यामुद्धे ददौ विधे परिवारसमन्विते ॥१३४॥
 २ सैह पद्मावदातस्य थानमर्पयदद्भुतम् । समुद्योतितदिक्चक्र सौमित्राय च गारुडम् ॥१३५॥
 ३ विधेसं प्राप्य सम्मान्य धीरो चिन्तागति मुदा । पृष्टवार्तो जिनेन्द्राणां पूजां तौ चक्रतुः परम् ॥१३६॥
 पर साधुप्रसादं च प्रस्तावे सङ्गतोदयम् । सशक्तसुदोदारगुणग्रहणतः परौ ॥१३७॥
 ४ अद्राष्टां च सुरास्त्राणि भासुराणि सहस्रशः वारुणाग्निमरुत्सृष्टिप्रभृतीनि सुविभ्रमौ ॥१३८॥
 चन्द्रादित्यसमे कृत्रे चारुचामरमण्डिते । स्नानानि च प्रदत्तानि पिहितानि निजौजसा ॥१३९॥
 गदाप्रहरणं विद्युद्भवना लक्ष्मीधर श्रिता । हलं समुसलं पद्म दैत्यानां भयकारणम् ॥१४०॥
 महिमान परं प्राप्य ताम्नां सम्मदसङ्गतः । आशीश्रुतानि दत्त्वासौ गतो देवस्त्रिविष्टपम् ॥१४१॥

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

धर्मस्यैतद्विधियुतकृतस्यानवद्यस्य धीरैर्ज्ञेयं स्तुत्यं फलमनुपमं युक्तकालोपजातम् ।
 यत्सम्प्राप्य प्रमदकलिताः दूरमुक्तोपसर्गाः सञ्जायन्ते स्वपरकुशलं कर्तुमुद्भूतवीर्याः ॥१४२॥

करने पर हमलोगोको जो वर प्राप्त हुआ था उसका स्मरण करो ॥१३१॥ उसी समय रामके स्मरण मात्रसे सुखसे बैठे हुए महालोचन नामक गरुडेन्द्रका सिंहासन सहसा कम्पायमान हुआ ॥१३२॥ तदनन्तर अघधिज्ञान रूपी नेत्रके द्वारा सब समाचार जान कर गरुडेन्द्रने शीघ्र ही दो विद्याओं के साथ अपना चिन्तावेग नामका देव भेजा ॥१३३॥ वहाँ जाकर जिसने आदरके साथ कुशल संदेश सुनाया था ऐसे उस देवने राम-लक्ष्मणके लिए परिवारसे सहित दो प्रशस्त विद्याएँ दी ॥१३४॥ रामके लिए तो आश्चर्य उत्पन्न करने वाली सिंहवाहिनी विद्या और लक्ष्मणके लिए दिक्समूहको देदीप्यमान करने वाली गरुडवाहिनी विद्या दी ॥१३५॥ धीर वीर राम-लक्ष्मणने, दोनों विद्याएँ प्राप्तकर चिन्तागति देवका बड़ा सम्मान किया, उससे कुशल समाचार पूछा और तदनन्तर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम पूजा की ॥१३६॥ उत्तम गुणोंके ग्रहण करनेमें तत्पर रहनेवाले राम-लक्ष्मणने योग्य अवसरपर प्राप्त हुए गरुडेन्द्रके उस उत्तम प्रसादकी बड़े हर्षसे स्तुतिकी प्रशंसा की ॥१३७॥ उत्तम शोभाको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणने उसी समय वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा वायव्यास्त्र आदि हजारों देवोपनीत देदीप्यमान शस्त्र सामने खड़े देखे अर्थात् उस देवने वे सब शस्त्र उन्हें दिये ॥१३८॥ सुन्दर चमरोसे सुशोभित चन्द्रमा और सूर्यके समान झर तथा अपनी कान्तिसे आच्छादित अनेक रत्न भी उस देवने प्रदान किये ॥१३९॥ विद्युद्भवत्र नामक गदा लक्ष्मणको प्राप्त हुई और देवियोंको भय उत्पन्न करनेवाले हल तथा मुसल नामक शस्त्र रामको प्राप्त हुए ॥१४०॥ इस प्रकार वह देव राम-लक्ष्मणके साथ हर्षपूर्वक मिलकर तथा परम महिमाको प्राप्तकर उन्हें सैकड़ों आशीर्वाद देता हुआ वह देव अपने स्थानको चला गया ॥१४१॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! जो योग्य समय पर प्रशंसनीय एवं अनुपम फलकी प्राप्ति होती है वह विधिपूर्वक किये हुए निर्दोष धर्मका ही फल है ऐसा धीर वीर मनुष्योंको जानना चाहिये । धर्मसे वह फल प्राप्त होता है जिसे पाकर मनुष्य उत्तम हर्षसे युक्त होते हैं, उनके उपसर्ग दूरसे ही छूट जाते हैं और वे महाशक्तिये सम्पन्न हो स्वपरका

१. गवा कथितः क्षेमः सन्देशः म० । २. तयोः म० । ३. विधेशं प्राप्य । ४. चित्तगति म० ।
 ५. आदत्ता म० ।

आस्तां तावन्मनुजजनिताः^१ सम्पदः काञ्चितानां यच्छ्रुन्तीष्टादधिकमतुलं वस्तु नाकश्चितोऽपि ।
तस्मात्पुण्यं कुरुत सततं हे जनाः सौख्यकांक्षाः येनानेकं रविसमरुचः प्राप्नुताश्चर्ययोगम् ॥१४३॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विद्यालामो नाम षष्टितमं पर्व ॥६०॥



कल्याण करनेमें समर्थ होते हैं ॥१४२॥ अथवा मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न होनेवाली सम्पदाओंकी वात दूर रहे, स्वर्ग सम्बन्धी सम्पदाएँ भी इसे इच्छासे भी अधिक अनुपम सामग्री प्रदान करती है । इसलिए सुखकी इच्छा रखनेवाले हे भन्धजनो ! निरन्तर पुण्य करो जिससे सूर्यके समान कान्तिके धारक होते हुए तुम अनेक आश्चर्यकारी वस्तुओंके संयोगको प्राप्त हो सको ॥१४३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणको विद्याओंकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला साठवें पर्व समाप्त हुआ ॥६०॥

एकषष्टितमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे दिव्यकवचच्छुभविग्रहौ । लक्ष्मीश्रीवत्सलक्ष्मणौ तेजोमण्डलमध्यगौ ॥१॥
 नागारिवाह्नारूढौ सुकान्तौ पद्मलक्ष्मणौ । सैन्यसागरमध्यस्थौ सैह्यगण्डकेतवौ ॥२॥
 परपञ्चम्य कर्तुमुद्यतौ परमेश्वरौ । सप्रामधरणीमध्य तेन सन्नतुरुक्तदौ ॥३॥
 अग्रतस्त्वरितो जातः सौमित्रिमित्रवत्सलः । दिव्यातपत्रविचिसदूरभास्करदीधितिः ॥४॥
 श्रीशैलप्रमुखैर्वीरैर्वृतः पुत्रगकेतनैः । वृषानखैर्दशं रूपमशक्यपरिवर्णनम् ॥५॥
 अग्रतः प्रस्थिते तस्मिन् द्वादशादित्यभास्वरम् । दृष्टं विभीषणेनेदं जगद्विस्मिततेजसा ॥६॥
 गरुडकेतने तस्मिन् सम्प्राप्ते तत्तथाधनम् । अस्त्र सान्तमसं कापि गतं गरुडतेजसा ॥७॥
 गरुडपञ्चवातेन चोभितचारसिन्धुना । नीता विषधरा नाशं क्रुभावा इव साधुना ॥८॥
 तार्क्ष्यपञ्चविन्धुं कर्मयूखालोकसङ्गतम् । जान्वूनदरसेनेव जगदासीद्विनिर्मितम् ॥९॥
 ततो नभश्चराधीशौ गतपद्मगबन्धनौ । प्रनामण्डलसुग्रीवौ समाश्रासनमापतुः ॥१०॥
 सुखेन प्राप्य निद्रां च रत्नांशुकसमावृतौ । अलगादलतारेखासमलङ्कृतविग्रहौ ॥११॥
 अधिक भासमानाङ्गी व्यक्तोच्छ्वासविनिर्गमी । निद्राचये परं कान्तौ स्वैस्वयसुसाविबोध्यतौ ॥१२॥
 ततो विस्मयमापन्नाः श्रीवृत्तप्रथितादयः । विद्याधरगणाधीशाः पप्रच्छुः कृतपूजनाः ॥१३॥
 नाथावापसु वामेपा दृष्टपूर्वा न जातुचित् । विभूतिरद्भुता जाता कृतश्रिदिति कथ्यताम् ॥१४॥

आधानन्तर इसी बीचमे जिनके शरीर दिव्य कवचोंसे आच्छादित थे, जो लक्ष्मी और श्रीवत्स चिह्नके धारक थे, तेजोमण्डलके मध्यमे गमन कर रहे थे, सिंह तथा गरुड़ वाहनपर आरूढ थे, अत्यन्त सुन्दर थे, सेनारूपी सागरके मध्यमे स्थित थे, सिंह तथा गरुड़ चिह्नसे चिह्नित पताकाओंसे युक्त थे, पर-पक्षका क्षय करनेके लिए उद्यत थे और उत्कट बलके धारक थे, ऐसे परममहिमा सम्पन्न राम और लक्ष्मण विभीषणके साथ रणभूमिके मध्यमें आये ॥१-३॥ जिन्होंने दिव्यद्वज के द्वारा सूर्यकी किरणें दूर हटा दीं थीं तथा जो मित्रोंके साथ स्नेह करनेवाले थे ऐसे शीघ्रतासे भरे लक्ष्मण आगे हुए ॥४॥ उस समय लक्ष्मण हनूमान् आदि प्रमुख वानरवंशी वीरोंसे घिरे थे तथा जिसका वर्णन करना अशक्य था ऐसे देवसदृश रूपको धारण कर रहे थे ॥५॥ लक्ष्मणके आगे प्रस्थान करने पर आश्चर्यजनक तेजके धारक विभीषणने देखा कि यह संसार एक साथ उदित हुए बारह सूर्योंसे ही मानो देदीप्यमान हो रहा है ॥६॥ लक्ष्मणके आते ही वह उस प्रकारका सघन तामस अस्त्र गरुडके तेजसे न जाने कहाँ चला गया ॥७॥ लक्ष्मण समुद्रके जलको चोभित करनेवाली गरुडके पङ्क्तकी वायुसे सब नाग इस प्रकार नष्ट हो गये जिस प्रकार कि साधुके द्वारा छोटे भाव नष्ट हो जाते हैं ॥८॥ गरुडके पङ्क्तोंसे छोड़ी हुई किरणोंके प्रकाशसे युक्त संसार ऐसा जान पड़ने लगा मानो स्वर्णरससे ही बना हो ॥९॥

तदनन्तर जिनके नागपाशके बन्धन दूर हो गये थे ऐसे विद्याधरोंके अधिपति सुग्रीव और भामण्डल धैर्यको प्राप्त हुए ॥१०॥ जो सुखसे निद्रा प्राप्तकर रत्नमयी कन्वलोंसे आवृत थे, सर्परूपी लताओंकी रेखाओंसे जिनके शरीर अलङ्कृत थे अर्थात् जिनके शरीरमे नागपाशके गड़रा पड़ गये थे, जो पहलेसे कहीं अधिक सुशोभित थे, और जिनके श्वासीच्छ्वासका निकलना अब स्पष्ट हो गया था, ऐसे दोनों ही राजा इस प्रकार उठ बैठे, जिस प्रकार कि सुखसे सोये पुरुष निद्रान्ध्र होनेपर उठ बैठते हैं ॥११-१२॥ तदनन्तर आश्चर्यको प्राप्त हुए श्रीवृत्त आदि विद्याधर राजाओंने

वाहनावस्त्रसम्पत्तिरातपत्रे परा सृतिः । ध्वजौ रत्नानि चित्राणि श्रूयते दिव्यमोदयाम् ॥१५॥
 पद्मनाभस्ततोऽगादीत्सेभ्यो ह्रिण्डनमात्मनः । उपसर्गे च शैलाग्रे देशगोत्रविभूषणयोः ॥१६॥
 चतुराननयोगेन स्थितयोर्देवनिर्मितम् । प्रातिहार्यं समुद्भूतं केवलं च सुरागमम् ॥१७॥
 गरुडेन्द्रस्य तोषं च परिप्राप्तिं वरस्य च । अनुध्यानप्रयोगेन महाविद्यासमागमम् ॥१८॥
 ततस्तेज्वहिताः श्रुत्वा परमां योगिसङ्ख्याम् । इदमूचुः परिप्राप्ताः प्रमोदं विकचाननाः ॥१९॥

वंशस्थवृत्तम्

इहैव लोके विकटं परं यशो मतिप्रगल्भस्वमुदारचेष्टितम् ।
 अवाप्यते पुण्यविधिश्च निर्मलो नरेण भक्त्यापितसायुसेवया ॥२०॥
 तथा न माता न पिता न वा सुहृत् सहोदरो वा कुरुते नृणां प्रियम् ।
 प्रदाय धर्मे मतिमुत्तमां यथा हितं परं सायुजनः शुभोदयाम् ॥२१॥
 उतिप्रशंसापित्तभाविताश्चिरं जिनेन्द्रमार्गोन्नतिविस्मिताः परम् ।
 बलं सनारायणमाश्रिता यभुर्महाविभूत्या समुपाश्रिता नृपाः ॥२२॥

शार्दूलविक्रीडितम्

भव्याम्भोजमहासमुत्सवकरौ श्रुत्वा पवित्रां कथां
 सर्वे हर्षमहारसोदधिगताः प्रीतिं दधानाः पराम् ।
 तौ निद्रोन्मिक्तपुण्डरीकनयनौ सम्प्राप्तदेवार्चनौ
 ते विद्याधरपुङ्गवाः सुरसमाः सर्वात्मनापूजयन् ॥२३॥

पूजा कर राम लक्ष्मणसे पूछा कि हे नाथ ! आप दोनोंकी विपत्तिके समय जो पहले कभी देखने में नहीं आई ऐसी यह अद्भुत विभूति किस कारण प्राप्त हुई है सो कहिये ॥१३-१४॥ वाहन, अस्त्ररूपी संपत्ति, छत्र, परम कान्ति, ध्वजाएँ और नाना प्रकारके रत्न जो कुल आपको प्राप्त हुए हैं वे सब दिव्य हैं, देवोपनीत हैं ऐसा सुना जाता है ॥१५॥ तदनन्तर रामने उन सभके लिए कहा कि एकवार वंशस्थविल पर्वतके अग्रभाग पर देशभूषण और कुलभूषण मुनियोंको उपसर्ग हो रहा था सो मैं वहाँ पहुँच गया ॥१६॥ मैंने उपसर्ग दूर किया, उसी समय दोनों मुनिराजोंको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ, चतुर्मुखकार होकर दोनों विराजमान हुए, देवनिर्मित प्रातिहार्य उत्पन्न हुए, देवोंका आगमन हुआ, गरुडेन्द्र हमसे संतुष्ट हुआ और उससे हमे घरकी प्राप्ति हुई । इस समय उसी गरुडेन्द्रके ध्यानसे इन महाविद्याओंकी प्राप्ति हुई है ॥१७-१८॥ तदनन्तर सावधान हो मुनियोंकी उत्तम कथा श्रवण कर, जो परम प्रमोदको प्राप्त हो रहे थे और जिनके मुखकमल हर्षसे विकसित हो रहे थे । ऐसे उन सब विद्याधर राजाओंने कहा कि ॥१९॥ भक्ति पूर्वककी हुई साधुसेवाके प्रभावसे मनुष्य इसीभवमें विशाल उत्तम यश, बुद्धिकी प्रगल्भता, उदार चेष्टा और निर्मल पुण्य विधिको प्राप्त होता है ॥२०॥ मुनिजन उत्तम बुद्धिको धर्ममें लगा कर मनुष्योंका जैसा भोदयसे संपन्न परम प्रिय हित करते हैं वैसा हित न माता करती है, न पिता करता है, न मित्र करता है और न सगा भाई ही करता है ॥२१॥ इस प्रकार चिरकाल तक प्रशंसा कर जिन्होंने अपनी भावनाएँ समर्पित की थीं और जिनेन्द्रमार्गकी उन्नतिसे जो परम आश्चर्यको प्राप्त हो रहे थे, ऐसे महावैभवसे युक्त राजा, राम और लक्ष्मणका आश्रय पाकर अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥२२॥ इस तरह भव्य जीव रूपी कमलोंके उत्सवको करने वाली पवित्र

वंशस्थवृत्तम्

उपात्तपुण्यो जननान्तरे जनः करोति योगं परमैरिहोत्सवैः ।

न केवलं स्वस्य परस्य भूयसा रविर्यथा सर्वपदार्थदर्शनात् ॥२४॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सुग्रीवभामरडलसमाश्वासनं नामैकपक्षितमं पर्व ॥६१॥



कथा सुनकर जो हर्ष रूपी महारसके सागरमे निमग्न हो परम प्रीतिको धारण कर रहे थे, ऐसे देवोंके समान समस्त विद्याधर राजाओंने, विकसित कमलोंके समान नेत्रोंको धारण करने वाले उन देव पूजित राम-लक्ष्मणकी सब प्रकारसे पूजा की ॥२३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जन्मान्तरमे पुण्यका संचय करने वाला मनुष्य, इस संसारमें न केवल अपने आपका ही उत्तम उत्सवोंसे संयोग करता है किन्तु सूर्यके समान समस्त पदार्थोंको दिखाकर अन्य लोगोंका भी अत्यधिक वैभवके साथ संयोग करता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्य स्वयं वैभवको प्राप्त होता है और दूसरों को भी वैभव प्राप्त कराता है ॥२४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें सुग्रीव और भामरडलका नागपाश से युक्त हो आश्वासन प्राप्तिका वर्णन करने वाला इकसठवां पर्व समाप्त हुआ ॥६१॥

द्वाषष्टितमं पर्व

अपरेषुर्महोद्भूतविक्रमोक्रमकोविदाः । युद्धार्थोपात्तसम्भारा रणशौण्डाः समुच्चयुः ॥१॥
 वानरीयैः खमालोक्य सैन्यैर्व्याप्तं निरन्तरम् । शङ्खदुन्दुभिसन्मिश्रं श्रुत्वेभारवध्वनिं तथा ॥२॥
 अभ्युजितमतिमानां साद्रोऽमरविभ्रमः । सत्त्वप्रतापसंयुक्तः सैन्यार्णवसमावृत्तः ॥३॥
 तेजसा शस्त्रजातेन ज्वलयन्निव विष्टपम् । कैलासोद्धारवीरोऽपि निरैन्द्राद्वादिभिः समम् ॥४॥
 उद्रता बद्धकवचाः सङ्ग्रामात्यर्थलालसाः । नानायानसमारूढा नानाविधमहायुधाः ॥५॥
 पूर्वानुबन्धसङ्क्रोधमहारौरवसन्निभाः । परस्परं भटा धीराः लग्नास्ताडनकर्मणि ॥६॥
 चक्रकवचपाशासिन्धुष्यार्ष्टिघनमुद्गरैः । कनकैः परिघाद्यैश्च गगनं गहनीकृतम् ॥७॥
 लग्नमन्धीयमन्धीयैर्गजता गजतामगात् । रथिनश्च महाधीरा उद्यता रथिभिः समम् ॥८॥
 सैहं सैहेन पादात् पादातेन च चञ्चलम् । समं महाह्रवं कर्तुमुद्यतं समविक्रमम् ॥९॥
 ततः कापिध्वजं सैन्यं रत्नोद्यैः पराजितम् । नीलादिभिः पुनर्नीतं शस्त्रसम्पातयोग्यताम् ॥१०॥
 भूयोजलधिकरुलोललोललङ्घेन्द्रपाधिवाः । इमे समुच्चयुर्दृष्ट्वा निजसैन्यपराभवम् ॥११॥
 विद्युद्दन्मारीचचन्द्रार्कशुकसारणाः । क्रतान्तस्त्युजीमूतनादसङ्क्रोधनादयः ॥१२॥

अथानन्तर दूसरे दिन जिन्हें महापराक्रम उत्पन्न हुआ था, जो क्रमको जाननेमें निपुण थे, एवं युद्धके लिए जिन्होंने सब सामग्री ग्रहण की थी ऐसे रणवाङ्कुरे वीर युद्धके लिए उद्यत हुए ॥१॥ वानरोंकी सेनासे समस्त आकाशको निरन्तर व्याप्त देख तथा शङ्खों और दुन्दुभियोंके शब्दोंसे मिली हाथियों और घोड़ोंकी आवाज सुन कैलासकी उठानेवाला वीर रावण भी भाइयों आदिके साथ निकला । रावण अत्यन्त बलवती बुद्धिका धारक था, मानी था, आदरसे युक्त था, देवोंके समान शोभासे सहित था, सत्त्व और प्रतापसे युक्त था, सेनारूपी सागरसे घिरा हुआ था, और शस्त्रसे उत्पन्न तेजके द्वारा संसारको जलाता हुआ-सा जान पड़ता था ॥२-४॥ तदनन्तर जिन्होंने उठकर कवच बाँध रखले थे, जिन्हें संग्रामकी उत्कट लालसा भरी हुई थी, जो नाना प्रकारके चाहनोंपर आरूढ थे, नाना प्रकारके बड़े-बड़े शस्त्र जिन्होंने धारण कर रखले थे और जो पूर्वानुबद्ध क्रोधके कारण महानारकीके समान जान पड़ते थे, ऐसे धीर वीर योद्धा परस्पर मार-काट करनेमें लग गये ॥५-६॥ चक्र, क्रकच, पाशा, खड्ग, यष्टि, वज्र, घन, मुद्गर, कनक तथा परिघ आदि शस्त्रोंसे आकाश सघन हो गया ॥७॥ घोड़ोंका समूह घोड़ोंके समूहके साथ जुट पड़ा, हाथियोंका समूह हाथियोंके समूहके सम्युख गया, महा धीर-वीर रथोंके सवार रथसवारोंके साथ खड़े हो गये ॥८॥ सिंहोंके सवार सिंहोंके सवारोंके साथ और चञ्चल तथा समान पराक्रमको धारण करनेवाला पैदल सैनिकोंका समूह पैदल सैनिकोंके साथ महायुद्ध करनेके लिए उद्यत हो गया ॥९॥

तदनन्तर प्रथम तो राक्षस योद्धाओंने वानरोंकी सेनाको पराजित कर दी, परन्तु उसके बाद नील आदि वानरोंने उसे पुनः शस्त्रवर्षा करनेकी योग्यता प्राप्त करा दी, अर्थात् वानरोंकी सेना पहले तो कुछ पीछे हटी, परन्तु ज्योंही नील आदि वानर आगे आये कि वह पुनः राक्षसोंपर शस्त्र वर्षा करने लगी ॥१०॥ पश्चात् अपनी सेनाका पराभव देख, समुद्रकी तरङ्गोंके समान चञ्चल लङ्काके निम्नाङ्कित राजा पुनः युद्धके लिए उद्यत हुए ॥११॥ विद्युद्बक्र, मारीच, चन्द्र

१. विक्रमक्रम म० । २. अश्वानां समूहः । ३. गजाना समूहः । ४. सेवोग्रं म० । ५. कपिध्वजसैन्यं म० । ६. विद्युद्बक्र म० ।

भज्यमानं निजं सैन्यं वीचय तैः राक्षसोत्तमैः । कपिध्वजमहायोधाः परिप्रापुः सहस्रशः ॥१३॥
 प्रप्ता राक्षससैन्यास्तैरुच्छ्रितैर्विधायुधैः । महाप्रतिभयैर्वीरैर्युदात्तविचेष्टितैः ॥१४॥
 निजसैन्याण्वं व द्रष्टा पीयमानं समन्ततः । शङ्खज्वालाविलासेन कपिप्रलयवद्विना ॥१५॥
 लङ्केशः कोपनो योद्धुं बलवान् स्वयमुत्थितः । शुष्कपत्रोपमान् दूरं विचिपन् शत्रुसैनिकान् ॥१६॥
 ततः पलायनोद्युक्तान् परिप्राप्य तदा द्रुतम् । स्थितो विभीषणो योद्धुं महायोधविभीषणम् ॥१७॥
 आह्वयेऽभिमुखोभूतं आतरं वीचय रावणः । वभण पृथुकक्रोधो वाक्यमादरवर्जितम् ॥१८॥
 कनीयानसि स त्वं मे आता हन्तुं न युज्यते । अपसर्पाप्रतो मास्थाः न त्वां शक्तोऽस्मि वीक्षितुम् ॥१९॥
 विभीषणकुमारिण जगदे पूर्वजस्ततः । कालेन गोचरत्वं मे नीतः किमवसर्प्यते ॥२०॥
 ततः कुमारकोपस्तं पुनरप्याह रावणः । क्लीबं क्षिप्रं धिगस्तु त्वां नरकाक कुचेष्टितम् ॥२१॥
 त्वया व्यापदितेनापि नैव मे जन्म्यते धृतिः । भवद्विधा हि नो योग्याः कर्तुं हर्षं न दीनताम् ॥२२॥
 यद्विद्याधरसन्तानं त्यक्त्वा मूढोऽन्यमाश्रितः । कर्मणामतिदौरात्म्याज्जैनं त्यक्त्वेव शासनम् ॥२३॥
 ततो विभीषणोऽबोचत् किमत्र बहुभाषितैः । शृणु रावण कल्याणं भण्यमानमनुत्तमम् ॥२४॥
 एवं गतोऽपि चेत् कर्तुं स्वस्य श्रेयः स मेच्छसि । रावणेण समं प्रीतिं कुरु सीतां समर्पय ॥२५॥
 अभिमानोर्ध्वतिं त्यक्त्वा प्रसादय रघूत्तमम् । मा कलङ्कं स्ववंशस्य कार्ष्णीयैःपिभ्रिमित्तकम् ॥२६॥
 अथवा मनुमिष्टं ते कुरुपे यन्न मद्रवचः । मोहस्य दुस्तरं किं वा बलिनो बलिनामपि ॥२७॥

अर्क, शुक, सारण, कृतान्त, मृत्यु, मेघनाद और संक्रोधन आदि ॥१९॥ इन राक्षस योद्धाओंके द्वारा अपनी सेनाको नष्ट होते देख वानर पक्षके हजारों महायोद्धा आ पहुँचे ॥१३॥ और आते ही उन्नत, नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले, महाभयंकर, वीर और अत्यन्त उदात्त चेष्टाओंको धारक उन वानर योद्धाओंने राक्षसोंकी सेनाको धर द्वाड़े ॥१४॥ तदनन्तर शस्त्ररूपी ज्वालाओंसे सुशोभित वानर रूपी प्रलयानिके द्वारा अपनी सेना रूपी सागरको सब ओरसे पिचा जाता देख क्रोधसे भरा बलवान् रावण, शत्रु सैनिकोंको सूखे पत्तोंके समान दूर फेंकता हुआ युद्ध करनेके लिए स्वयं उद्यत हुआ ॥१५-१६॥ तदनन्तर महायोद्धाओंको भयभीत करनेवाला विभीषण भागनेमें तत्पर वानरोंकी शीघ्र ही रक्षा कर युद्ध करनेके लिए खड़ा हुआ ॥१७॥ युद्धमें भाईको सन्मुख खड़ा देख जिसका क्रोध भड़क उठा था ऐसा रावण निरादरताके साथ वह वचन बोला कि तू छोटा भाई है अतः मुझे तेरा मारना योग्य नहीं है, तू सामनेसे हट जा, खड़ा मत रह मैं तुम्हें देखनेके लिए भी समर्थ नहीं हूँ ॥१८-१९॥ तदनन्तर विभीषणने बड़े भाई—रावणसे कहा कि तू यमके द्वारा मेरे सामने भेजा गया है अतः अब पीछे क्यों हटता है ? ॥२०॥ परचात् विभीषणकुमारपर क्रोध प्रकट करते हुए रावणने उससे पुनः कहा कि रे नपुंसक ! संक्लिष्ट ! नरकाक ! तुम कुचेष्टीको धिक्कार है ॥२१॥ तुम्हें मार डालनेपर भी मेरा यश नहीं होगा, क्योंकि तेरे समान तुच्छ मनुष्य न मुझे हर्ष उत्पन्न कर सकते हैं और न दीनता ही उत्पन्न करनेके योग्य है ॥२२॥ जिस प्रकार कोई, कर्मोंका अत्यन्त अशुभ उदय होनेसे जिन शासनको छोड़ अन्य शासनको ग्रहण करता है, उसी प्रकार तुम मूर्खने भी विद्याधरको सन्तानको छोड़ अन्य भूमिगोचरीको ग्रहण किया है ॥२३॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हे रावण ! तेरे कल्याण के लिए जो उत्तम वचन कहे जा रहे हैं उन्हें सुन ॥२४॥ इस स्थितिमें आने पर भी यदि तू श्रपना भला करना चाहता है तो रामके साथ मित्रता कर और सीताको समर्पित कर दे ॥२५॥ अहंकार छोड़कर रामको प्रसन्न कर स्त्रीके निमित्त अपने वंशको कलङ्कित मत कर ॥२६॥ अथवा तुम्हें मरना ही इष्ट है इसीलिए मेरी बात नहीं मान रहा है सो ठीक ही है क्यों कि बलवान्

विनिशम्य वचस्तस्य तरुणक्रोधसङ्गतः । निशातं चाणमुवृष्ट्य समवावत रावणः ॥२८॥
 रथाश्ववारणाः स्वामितोषे हि तत्पराः । अन्येऽपि पाथिवा लया रणे सुभद्रदारुणे ॥२९॥
 आयातोऽभिमुखं तस्य राक्षसेन्द्रस्य रंहसा । अष्टमीचन्द्रवक्रेण ध्वजं ज्ञान्तेपुणाऽन्विजन्तु ॥३०॥
 तेनापि तस्य संरम्भसम्भाराक्रान्तचेतसा । धनुर्द्विधाकृतं चिप्त्वा सायकं निशिताननम् ॥३१॥
 ततोऽपरमुपादाय चापमाशु विभीषणः । द्विधाकरोद्भुस्तस्य प्रतिकारविचक्षणः ॥३२॥
 एवं तयोर्महायुद्धे प्रवृत्ते वीरसंक्षये । जनकस्य परं भक्तः शक्रजिद्योद्भुमुद्यथौ ॥३३॥
 लक्ष्मीधरेण रुद्धोऽसौ पर्वतेनैव सागरः । पद्मनेत्रेण पद्मेन भानुकर्णोऽप्रतः कृतः ॥३४॥
 ययौ सिंहकटिं नीलो युद्धशम्भुं तथा नलः । स्वयम्भुं दुर्मतिः क्रुद्धो दुर्मतेऽपि घटोदरम् ॥३५॥
 द्रुष्टः शक्राशनिं कालिस्तथा चन्द्रनखं नृपम् । स्कन्दो भिन्नाङ्गनं विघ्नं विराधितनराधिपः ॥३६॥
 ख्यातं मयमहादैत्यमद्भदो भासुराद्भदः । कुम्भकर्णसुतं कुम्भं समीरणसमुद्भवः ॥३७॥
 किष्किन्वेशः समात्पात्य केतुं जनकनन्दनः । काम दडरथः क्षुब्धः जोभणाभिस्त्वमूर्जितम् ॥३८॥
 अन्येऽप्येव महायोधा यथायोग्यं परस्परम् । आरेभिरे रण कर्तुमाह्वानमुखराननाः ॥३९॥
 गृहाण प्रहरागच्छ जहि व्यापादयोद्विरः । क्षिन्धि भिन्धि क्षिपोत्तिष्ठ तिष्ठ दारय धारय ॥४०॥
 बधान स्फोटयार्कपं सुब्रह्म चूर्णय नाशय । सहस्व दस्व निःसर्पं सन्धस्त्रोच्छ्रय कल्पय ॥४१॥
 किं भीतोऽसि न हन्मि त्वां धिक् त्वां कातरको भवान् । कस्त्वं विभेसि नष्टोऽसि मा कम्पिषा क्व गम्यते ॥४२॥

मनुष्योको भी इस बलवान् मोहका तिरना अत्यन्त कठिन है ॥२७॥ तदनन्तर विभीषणके वचन सुन तीव्र क्रोधसे युक्त हुआ रावण तीव्र वाण चढ़ाकर दौड़ा ॥२८॥ स्वामीको संतुष्ट करनेमें तत्पर रहने वाले, रथों, घोड़ों और हाथियों पर बैठे हुए अन्य राजा लोग भी योद्धाओंको भय उत्पन्न करने वाले युद्धमें लग गये ॥२९॥ तदनन्तर बड़े वेगसे सन्मुख जा कर विभीषणने अष्टमी के चन्द्रके समान कुटिल धूमने वाले वाण से रावणकी ध्वजा छेद डाली ॥३०॥ और क्रोधके भार से जिसका चित्त व्याप्त था ऐसे रावणने भी एक तीव्रमुख वाण चला कर विभीषणके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३१॥ पश्चात् प्रतिकार करनेमें निपुण विभीषणने शीघ्र ही दूसरा धनुष लेकर रावणके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३२॥ इस प्रकार जब रावण और विभीषणके बीच अनेक वीरोंका क्षय करने वाला महायुद्ध चल रहा था तत्र पिताका परमभक्त इन्द्रजित् युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥३३॥ सो जिस प्रकार पर्वत समुद्रको रोकता है उसी प्रकार लक्ष्मणने उसे रोक और कमललोचन रामने भानुकर्णको अपने आगे किया अर्थात् उससे युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥३४॥ नील, सिंहकटि (सिंहजघन)के सन्मुख गया, नलने युद्ध शम्भुका, दुर्मतिने स्वयम्भुका, क्रोधसे भरे दुर्मर्पने कुम्भोदरका, द्रुष्टने इन्द्रवज्रका, कान्तिने चन्द्रनखका, स्कन्धने भिन्नाङ्गनका, विराधित राजाने विघ्नका, देदीप्यमान केयूरके धारक अङ्गद्वने प्रसिद्ध, मय नामक महा दैत्यका, हनूमान्ने कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भका, सुधीवने सुमालीका, भामण्डलने केतुका, दडरथने कामका और लुम्बने ज्योभण नामक बलवान् सामन्तका सामना किया ॥३५-३८॥ इनके सिवाय बुलानेके शब्दसे जिनके मुख शब्दायमान हो रहे थे ऐसे अन्य महायोधाओंने भी परस्पर यथायोग्य युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥३९॥ उस समय योद्धाओंमें परस्पर इस प्रकारके शब्द हो रहे थे कोई किसीसे कहता था कि लो, इसके उत्तरमें दूसरा कहता था कि मारो, आओ, मारो, जानसे मारडालो, छेदो, भेदो, फेंक दो, उठो, बैठो, खड़े रहो, विदारण करो और धारण करो ॥४०॥ वॉयों, फोड़ डालो, बसोटो, छोड़ो, चूर-चूर कर डालो, छोड़ो, नष्ट करो, सहन करो, देओ, पीछे हटो, संधि करो, उन्नत हो ओ, समर्थ बनो । तू क्यों डर रहा है ? मैं तुम्हें नहीं मारता, तुम्हें धिक्कार है, तू बड़ा कातर है, तुम्हें धिक्कार है, तू क्यों कम्पित हुआ जा रहा है ? क्या तू भूल गया है ? कम्पित मत हो,

अयं स वर्तते कालः शूराशूरविचारकः । भुज्यतेऽन्नं यथा मृष्टं न तथा युध्यते रणे ॥४३॥
 गतिरिति धीराणां तूर्यनादैस्तथोज्ज्वैः । नर्दन्तीव दिशो मत्ताः क्षतजातान्धकारिताः ॥४४॥
 चक्रशक्तिगदायष्टिकनकाष्टिघनादिभिः । दृष्टालमिव सज्जातं गगनं भीषणं परम् ॥४५॥
 रक्ताशोकवनं किं तत् किं वा किंशुककाननम् । परिभ्रद्भद्रदुमारण्यमुत जातं क्षतं बलम् ॥४६॥
 कश्चिद्विघटितं दृष्ट्वा कङ्कटं क्षिन्नबन्धनम् । सन्धत्ते त्वरितं भूयः स्नेहं साधुजनो यथा ॥४७॥
 कश्चित्सन्धार्थं दन्ताग्रैः खट्वगं परिकरं दृढम् । वध्वा दीपः पुनर्यौदुषुं श्रममुक्तः प्रवर्तते ॥४८॥
 मत्तवारणदन्ताग्रक्षतवक्षस्थलोऽपरः । चलत्कर्णसमुद्धूतैर्वीजितः कर्णचामरैः ॥४९॥
 उर्ध्वार्णस्वामिकर्तव्यो निराकुलमतिः परम् । दन्तोत्सङ्गे ततः शिर्ये सम्प्रसार्य भुजद्वयम् ॥५०॥
 धातुपर्वतसङ्काशाः केचित् क्षतजनिर्जराः । सुसुचः शीकरासारसेकबोधितमूर्च्छिताम् ॥५१॥
 पर्यस्ता भूतले केचिद्दृष्टीष्टाः शास्त्रपाणयः । कुञ्चितभ्रूदुरीक्यास्या वीरा मुञ्चन्ति जीवितम् ॥५२॥
 उपसंहृत्य संरम्भं त्यक्तशस्त्रास्तथापरे । मुञ्चन्ति जीवितं धीरा ध्यायन्तः परमाचरम् ॥५३॥
 विपाणकोटिसक्तपाणयः केचिदुत्कटाः । आन्दोलनं गजेन्द्राणामग्रतः समुपासिरे ॥५४॥
 रक्तच्छट्यौ विमुञ्चन्तश्चञ्चलाः शस्त्रपाणयः । कन्नथा नर्त्तनं चक्रुः शतशोऽतिभयानकम् ॥५५॥
 केचिद्विघ्नविमुक्तं जर्जरभूतकङ्कटा । प्रविष्टाः सलिल विलष्टा जीविताशापराङ्मुखाः ॥५६॥

तूथकेला कहाँ जायगा ? ॥४१-४२॥ यह वह समय है जिसमें शूर और कायरका विचार किया जाता है । जैसा मीठा अन्न खाया है वैसा रणमें युद्ध नहीं कर रहे हो ॥४३॥

इस प्रकार धीर-वीरोकी गर्जना और तुरहीके उन्नत शब्दोंसे दिशाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो रुधिरकी वर्षासे अन्धकार युक्त तथा पागल हो चिल्ला ही रही हो ॥४४॥ चक्र, शक्ति, गदा, यष्टि, कनक, आर्ष्टि और घन आदि शस्त्रोंसे आकाश उस प्रकार अत्यन्त भयंकर हो गया मानो सवको निगलनेके लिए दाँद ही धारण कर रहा हो ॥४५॥ खूनसे लथपथ घायल सेनाको देख कर ऐसा संदेह होता था कि क्या यह अशोकका लाल वन है ? या पलाशका कानन है, या पारिभद्र वृक्षोका वन है ? ॥४६॥ किसीका कवच टूट गया तथा उसके बन्धन खुल गये, इसलिए उसने शीघ्र ही दूसरा कवच उसप्रकार धारण किया जिस प्रकार कि साधु पुरुष एक बार स्नेहके टूट जाने पर उसे शीघ्र ही पुनः धारण कर लेते हैं ॥४७॥ कोई तेजस्वी योद्धा दाँतोके अग्रभागसे तलवार दवा तथा हाथोंसे कमर कस कर श्रमरहित हो फिरसे युद्ध करने के लिए तैयार हो गया ॥४८॥ मदोन्मत्त हाथीके दन्ताग्रसे जिसका वक्षःस्थल वायल हो गया था ऐसा कोई योद्धा हाथी के चञ्चल कानोंसे ऊपर उठे हुए कर्णचामरोसे वोजित हो रहा था ॥४९॥ जिसने स्वामी का कर्त्तव्य पूरा किया था ऐसा कोई एक योद्धा निराकुल चित्त हो दोनों हाथ पसार कर हाथीके दाँतोके बीच सो रहा था ॥५०॥ जिनसे खूनके निर्भर भर रहे थे तथा जो गेरूके पर्वतके समान जान पड़ते थे ऐसे कितने ही योद्धाओंने जलकणोकी वर्षाके सिञ्चनसे सचेत हो मूर्च्छा छोड़ी थी ॥५१॥ जो ओठ डस रहे थे, हाथोंमें शस्त्र लिये थे और टेढ़ी भौंहोंसे जिनके मुख भयंकर दिख रहे थे ऐसे कितने ही योद्धा पृथिवी पर पड़कर प्राण छोड़ रहे थे ॥५२॥ कितने ही धीर वीर योद्धा ऐसे भी थे जो क्रोधका संकोच तथा शस्त्रोंका त्याग कर परब्रह्मका ध्यान करते हुए प्राण छोड़ रहे थे ॥५३॥ कितने ही प्रचण्ड वीर खींसोके अग्रभागको हाथोंसे पकड़ कर हाथियोंके आगे झूला झूल रहे थे ॥५४॥ जो रक्तकी छटा छोड़ रहे थे तथा हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए थे, ऐसे सैकड़ों उल्लूकते कन्नथ—शिररहित धड़ अत्यन्त भयंकर नृत्य कर रहे थे ॥५५॥ जिनके कवच जर्जर हो गये थे ऐसे कितने ही दुःखी योद्धा, जीवनकी आशासे विमुख हो शस्त्र

१. मुञ्चतेऽन्नं म० । २. तदुन्नतैः म० । ३. पारिभद्रकुमाराणां म० । ४. समुद्धूतैः म० । ५. विमुञ्चन्ति म० ।

ईदृशे समरे जाते लोकसन्त्रासकारिणि । परस्परसमुद्भूतमहाभटपरिचये ॥५७॥
 महेन्द्रजित्दौ वाणैर्लक्ष्मीमन्तं सिताननैः । लक्ष्मणद्वयितुं वीरस्तथा तमपि लक्ष्मणः ॥५८॥
 महातामसशस्त्रं च भीमं शक्रजिदक्षिपत् । विनाशं भानवांयेन तद्वस्त्रेणानयद्विपुः ॥५९॥
 तमुग्रैः शक्रजिदभूयः शरैराशीविपाभकैः । आरब्धो वेष्टितुं क्रुद्धः सरथं शस्त्रवाहनम् ॥६०॥
 वैनतेयास्त्रयोगेन नागास्त्रं स निराकरोत् । पूर्वोपात्तं यथा पापजालं योगी महातपाः ॥६१॥
 ततोऽमह्यगणान्तस्थं हस्तिवृन्दस्थलावृतम् । विरथं लक्ष्मणशस्त्रे दशवक्त्रसमुद्भवम् ॥६२॥
 पालयन् स निजं सैन्यं वचसा कर्मणा तथा । प्रायुङ्क्तास्त्र महाध्वान्तपिहितारिद्राशयकम् ॥६३॥
 विधया तपनास्त्रं च हृत्वा तस्य विचिन्तितम् । क्षिपेच्छ्वाघृताकारानाशीमुखशिलीमुखान् ॥६४॥
 सद्ग्रामामिमुखो नागैः कुटिलं व्यासविग्रहः । इन्द्रजित्पतितो भूमौ पुरा भामण्डलो यथा ॥६५॥
 पद्मेनाऽऽदित्यकर्णोऽपि सुयुद्धे^३ विरथीकृतः । आदित्यास्त्रं शनैर्हृत्वा नागास्त्रं संप्रयुज्य च ॥६६॥
 सन्वेष्य सर्वतो नागैः पतितो धरणीतले । पुरेन वाहुवलिना श्रीकण्ठो नमिनन्दनः ॥६७॥
 चित्रं श्रेणिक ते बाणाः भवन्ति धनुराश्रिताः । उल्कासुखास्तु गच्छन्तः शरीरे नागमूर्त्तयः ॥६८॥
 क्षणं बाणाः क्षणं दण्डाः क्षणं पाशस्वनागताः । आमरा हस्त्रभेदास्ते यथा चिन्तितरूपगाः ॥६९॥
 कर्मपाक्षीर्यथा जीवो नागपाशैः स वेष्टितः । भामण्डलेन पद्माज्ञां प्राप्याऽऽस्मीये रथे कृतः ॥७०॥

छोड़ पानोमें घुस गये ॥५६॥ इस तरह जब परस्पर महायोद्धाओंका क्षय करने वाला, लोक संत्रास कारी महायुद्ध हो रहा था तब इन्द्रजित् तीक्ष्ण बाणोंसे लक्ष्मणको और लक्ष्मण इन्द्रजित्को आच्छादित करनेमें लीन थे ॥५७-५८॥ इन्द्रजित्ने अत्यन्त भयंकर महातामस नामक शस्त्र छोड़ा जिसे लक्ष्मणने सूर्यास्त्रके द्वारा नष्ट कर दिया ॥५९॥ तदनन्तर क्रोधसे भरे इन्द्रजित्ने नाग बाणोंके द्वारा रथ, शस्त्र तथा वाहन के साथ लक्ष्मणको वेष्टित करना प्रारम्भ किया । तब लक्ष्मणने गरुडास्त्रके द्वारा उस नागास्त्र को उस तरह दूर कर दिया जिस प्रकार कि महातपस्वी योगी पूर्वोपाजित पापोंके समूहको दूर कर देता है ॥६०-६१॥

तदनन्तर मन्त्रिसमूहके मध्यमें स्थित तथा हाथियोंके समूहसे वेष्टित इन्द्रजित्को लक्ष्मण ने रथरहित कर दिया ॥६२॥ तब वचन तथा क्रियासे अपनी सेनाकी रक्षा करते हुए इन्द्रजित्ने ऐसा तामसास्त्र छोड़ा कि जिसने महा अन्धकारसे रावणको छिपा लिया ॥६३॥ इसके बदले लक्ष्मण ने सूर्यास्त्र छोड़कर इन्द्रजित्का मनोरथ नष्ट कर दिया और इच्छानुसार आकृतिको धारण करने वाले नागबाण छोड़े ॥६४॥ इनके फलस्वरूप संग्रामके लिए आते हुए इन्द्रजित्का समस्त शरीर नागोंके द्वारा व्याप्त हो गया और उनके कारण जिस प्रकार पहले भामण्डल पृथिवीपर गिर पड़ा था उसी प्रकार वह भी पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६५॥ उधर रामने भी धीरेसे सूर्यास्त्रको नष्ट कर तथा नागास्त्रको चलाकर युद्धमें भानुकर्णको रथ रहितकर दिया ॥६६॥ पहले जिस प्रकार वाहु-बलीने नमिके पुत्र श्रीकण्ठको जीतकर नागपाशसे बंध लिया था, उसी प्रकार रामने भी भानुकर्ण को सब ओरसे नागपाशसे वेष्टित कर लिया जिससे वह पृथिवीतल पर गिर पड़ा ॥६७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! वे बाण बड़े ही विचित्र थे । जब वे धनुषपर चढ़ाये जाते थे तब बाणरूप रहते थे, चलते समय उल्काके समान मुखवाले हो जाते थे और शरीरपर जाकर नागरूप हो जाते थे ॥६८॥ वे बाण क्षण भरके लिए बाण हो जाते थे, क्षण भरमें दण्डरूप हो जाते थे और क्षण भरमें नागपाशरूप हो जाते थे, यथार्थमें ये सब शस्त्रोंके भेद देवों-पनीत थे तथा मन चाहे रूपको धारण करनेवाले थे ॥६९॥ आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार संसारी प्राणी कर्मरूपी पाशसे वेष्टित रहता है, उसी प्रकार भानुकर्ण भी नागपाशसे वेष्टित

१. रिपुम् म० । २. हृत्वा म० । ३. सुयुद्धो म० । ४. म० पुस्तके ६८-६९तमश्लोकयोर्मध्ये 'निजसैन्यार्णवं दृष्ट्वा पीयमानं समन्ततः । शस्त्रज्वालाविस्रातेन कपिप्रलयवह्निना ॥' एष श्लोकोऽधिको वर्तते ।

मन्दोदरीसुतोऽप्येव बद्धो नारायणाज्ञया । विराधितेन याने स्वे स्थापितः क्लान्तविग्रहः ॥७१॥
 तावद्गणमुखेऽभागीद् दशवक्त्रो विभीषणम् । सद्क्रुद्धोऽभिसुखीभूतं चिरं सोढारणक्रियम् ॥७२॥
 प्रहारामिममेकं मे प्रतीच्छ यदि मन्यसे । सत्यं पुरुषमात्मानं रणकण्डूप्रचण्डकम् ॥७३॥
 इत्युक्त्वा विस्फुरत्पिङ्गुस्कुलिङ्गलिङ्गिताम्बरम् । शूलं चिक्षेप लुप्तोऽसौ लक्ष्मणेनान्तरे शरैः ॥७४॥
 तं भस्मीकृतमालोक्य शूलमत्युग्रमायुधम् । अधिकं रावणः क्रुद्धः शक्तिं जग्राह दारुणाम् ॥७५॥
 यावत्परयति सङ्गातमग्रतो गर्दभ्वजम् । प्रौढेन्द्रीवरसङ्काश भासुरं पुरुषोत्तमम् ॥७६॥
 प्रलयाम्भोदसम्भारगम्भीरोदारनिस्वनः । विशत्यर्द्धमुखोऽवोचत् तमेवं ताडयन्निव ॥७७॥
 अन्यस्यैव मया शस्त्रमुग्रतं वधकारणम् । यदि तत्कोऽधिकारस्ते स्थातुमासन्नतो मम ॥७८॥
 अभिवाञ्छसि मर्त्तुं वा यदि दुर्मत लक्ष्मण । प्रतीच्छेयं प्रहारं मे तिष्ठ प्रगुणविग्रहः ॥७९॥
 विभीषणं समुत्सार्थं सोऽपि कृच्छ्रेण मानवान् । दशास्थमभिदुद्वाव चिरं सङ्ग्रामखेदितम् ॥८०॥
 निःसर्पत्तारकाकारस्कुलिङ्गनिकरां ततः । चिक्षेप रावणः शक्तिं कोपसम्भारसङ्गतः ॥८१॥
 वक्षस्तस्य तथा भिन्न महाशैलतटोपमम् । अमोघक्षेपया शक्त्या दिव्ययात्यन्तदीपया ॥८२॥
 लक्ष्मणोरसि सा सक्ता भासुराङ्गमनोहरा । परमप्रेमसम्बद्धा शोभते स्म वधूरिव ॥८३॥
 गाढप्रहारदुःखार्तः स परायत्तविग्रहः । महीतलं परिप्राप्तो गिरिवज्राहतो यथा ॥८४॥

हो गया । तदनन्तर रामकी आज्ञा पाकर भामण्डलने उसे अपने रथपर डाल लिया ॥७०॥ उधर जिसका शरीर वैचैन हो रहा था ऐसे नागपाशसे बँधे हुए इन्द्रजित्को भी लक्ष्मणकी आज्ञासे विराधितने अपने रथपर रख लिया ॥७१॥

उसी समय रणके मैदानमे क्रोधसे भरे रावणने, चिरकाल तक रणक्रियाको सहन करने-वाले विभीषणने कहा कि ॥७२॥ यदि तू अपने आपको सचमुच ही रणकी खोजसे प्रचण्ड पुरुष मानता है तो मेरे इस एक प्रहार को मेल ॥७३॥ इतना कहकर उसने निकलते हुए पीले तिलगोंसे आकाशको व्याप्त करने वाला शूल चलाया, सो लक्ष्मणने उसे अपने वाणोंसे बीचमे ही समाप्त कर दिया ॥७४॥ उस अत्यन्त भयङ्कर शूल नामक शस्त्रको भस्मीकृत देख रावणने अत्यन्त कुपित हो भयानक शक्ति उठायी ॥७५॥ रावण शक्ति उठाकर ज्योंही सामने देखता है तो उसे आगे खड़े हुए, तरुण नील कमलके समान श्याम, देदीप्यमान पुरुषोत्तम, लक्ष्मण दिखायी दिये ॥७६॥ लक्ष्मणको देख प्रलय कालीन मेघ समूहके समान गम्भीर शब्द करनेवाला रावण ताड़न करते हुए के समान इस प्रकार बोला ॥७७॥ कि जब मैंने दूसरेका ही वध करनेके लिए शस्त्र उठाया है तब तुझे मेरे निकट खड़े होनेका क्या अधिकार है ? ॥७८॥ अथवा रे मूर्ख लक्ष्मण ! यदि तू मरना ही चाहता है तो सीधा खड़ा हो और मेरा यह प्रहार मेल ॥७९॥ यह सुन मानी लक्ष्मण भी कठिनायीसे विभीषणको अलग कर जो चिरकाल तक युद्ध करनेसे खेद खिन्न हो गया था ऐसे रावणके सन्मुख दौड़ा ॥८०॥

तदनन्तर क्रोधके भारसे भरे रावणने जिससे ताराओंके समान तिलगोंका समूह निकल रहा था ऐसी शक्ति चलायी और जिसका चलाना कभी व्यर्थ नहीं जाता तथा जो अत्यन्त देदीप्यमान थी ऐसी उस शक्तिसे महापर्वतके तटके समान लक्ष्मणका वक्षःस्थल खण्डित हो गया ॥८१-८२॥ लक्ष्मणके वक्षःस्थलपर लगी देदीप्यमान आकृतिसे मनोहर वह शक्ति, परम प्रेमसे लिपटी स्त्रीके समान सुशोभित हो रही थी ॥८३॥ जो गाढ प्रहारजन्य दुःखसे दुःखी थे तथा जिनका शरीर विवश हो गया था ऐसे लक्ष्मण वज्रसे ताड़ित पर्वतके समान प्रृथिवी पर गिर

द्रुपुः तं पतितं भूमौ पद्मः पद्मानलोचनः । विनियम्य परं शोकं शत्रुघातार्थमुद्यतः ॥८५॥
 सिंहयुक्तं समारूढः स्यन्दनं क्रोधपूरितः । शत्रुनायातमात्रेण चकार विरथं बली ॥८६॥
 रथान्तरं समारूढश्छिन्नपूर्वशरासनः । यावच्चापं समादत्ते भूयोऽथ विरथीकृतः ॥८७॥
 पद्मानभस्य शरैर्ग्रस्तो दशास्यो विह्वलीकृतः । न समर्थो बभूवेषु ग्रहांतुं न च कामुकम् ॥८८॥
 लोटितोऽपि शरैस्तैत्रैस्तथापि धरणीतले । रथे विलोक्यते भूयो रावणः खेदसङ्गतः ॥८९॥
 विच्छिन्नचापकवचः पट्टवारं विरथीकृतः । तथापि शक्यते नैव स साधयितुमद्भुतः ॥९०॥
 प्रोक्तश्च पद्मनाभेन परं प्राप्तेन विस्मयम् । नात्पायुष्को भवानेव यो न प्राप्नोऽसि पञ्चताम ॥९१॥
 मद्वाहुप्रेरितैर्वाणैर्वैगवज्जिः शिताननैः । महीमृत्तोऽपि शीर्यन्ते मन्येऽन्यत्र किमुच्यताम् ॥९२॥
 तथापि रक्षितः पुण्यैर्जन्मान्तरसमजितैः । शृणु जल्पामि किं चित्ते वचन खेचराधिप ॥९३॥
 सद्ग्रामेऽभिसुखो आता यो मे शक्या त्वया हतः । प्रेतस्याभिसुखं तस्य बोद्धे यद्यनुमन्यसे ॥९४॥
 एवमस्त्विति सम्भाष्य प्रार्थनामङ्गदुर्विधः । ययौ दशाननो लङ्कामृद्धवाऽऽखण्डलसन्निभः ॥९५॥
 एकस्तावद्वयं ध्वस्तो मया शत्रुर्महोत्कटः । इति किञ्चिदूर्ध्वं प्राप्नो विवेश भवन निजम् ॥९६॥
 अन्विष्य विच्रतांस्तत्र योधान् विक्रान्तवत्सलः । विवेशान्तःपुरं धीरो दर्शनश्रमनोदनः ॥९७॥
 निरुद्धं आतरं श्रुत्वा पुत्राचरणकारिणौ । शोचन् प्रियजनं पश्यन्नाशां चक्रे दशाननः ॥९८॥

पड़े ॥८५॥ उन्हें भूमिपर पड़े देख कमल लोचन राम, तीव्र शोकको रोककर शत्रुका घात करनेके लिए उद्यत हुए ॥८५॥ सिंह जुते रथपर बैठे एवं क्रोधसे भरे वलघान् रामने सामने जाते ही शत्रुको रथरहित कर दिया ॥८६॥ जब तक वह दूसरे रथ पर चढ़ता है तब तक रामने उसका धनुष तोड़ दिया । तदनन्तर वह जब तक दूसरा धनुष उठाता है तब तक उसे पुनः रथरहित कर दिया ॥८७॥ रामके वाणोंसे ग्रस्त हुआ रावण इतना विह्वल हो गया कि वह न तो वाण ग्रहण करनेके लिए समर्थ था और न धनुष ही ॥८८॥ यद्यपि रामने तीव्र वाणोंके द्वारा रावणको पृथिवीपर लुटा दिया था तथापि वह खेद-खिन्न हो पुनः दूसरे रथपर आरूढ हो गया ॥८९॥ इस प्रकार यद्यपि रामने छह बार उसका धनुष तोड़ा तथा छह बार उसे रथरहित किया तथापि आश्चर्यसे भरा रावण जीता नहीं जा सका ॥९०॥ तत्र परम आश्चर्यको प्राप्त हुए रामने उससे कहा कि आप जब इस तरह मृत्युको प्राप्त नहीं हुए तब अल्पायुष्क नहीं हो, यह निश्चित है ॥९१॥ मैं समझता हूँ कि मेरी भुजाओंसे छोड़े हुए वेगशाली तीक्ष्णमुख वाणोंसे पहाड़ भी ढह जाते हैं फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ॥९२॥ इतना होनेपर भी जन्मान्तरमे सञ्चित पुण्य कर्मने तेरी रक्षा की है । अब हे विद्याधरराज ! सुन, मैं तुम्हसे कुछ वचन कहता हूँ ॥९३॥ संग्राममे सामने आये हुए मेरे जिस भाईको तूने शक्तिके द्वारा घायल किया है वह मरनेके सन्मुख है, यदि तू अनुमति दे तो उसका मुख देख लूँ ॥९४॥ तदनन्तर जो प्रार्थना भङ्ग करनेमें दरिद्र था और इन्द्रके समान जिसकी शोभा बढ़ रही थी ऐसा रावण 'एवमस्तु' कह कर वैभवके साथ लङ्काकी ओर चला गया ॥९५॥ 'यह एक महाबलवान् शत्रु तो मेरे द्वारा मारा गया' इस प्रकार हृदयमें कुछ धैर्यको प्राप्त हुए रावणने अपने भवनमे प्रवेश किया ॥९६॥ पराक्रमी मनुष्योंके साथ स्नेह रखनेवाले धीर वीर रावणने घायल योद्धाओंकी खोज कराकर उनकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखा तथा इस तरह उनका खेद दूर कर अन्तःपुरमे प्रवेश किया ॥९७॥ भाई कुम्भकर्ण और युद्ध करनेवाले इन्द्रजित् तथा मेघवाहन नामक दो पुत्रोंको शत्रुके पास रुका सुन रावण शोक करने लगा परन्तु प्रियजनोंकी ओर देखते हुए उसने उन्हें शीघ्र ही छुड़ानेकी आशा की ॥९८॥

मालिनीवृत्तम्

इति निजचरितस्यानेकरूपस्य हेतोर्भ्यतिगतभवजस्यावश्यलभ्योदयस्य ।
 इह जनुषु विचित्रं कर्मणो भावयन्ते फलमविरतयोगाज्जन्तवो शूरिभावाः^१ ॥६६॥
 व्रजति विधिनियोगात्कश्चिदेवेह नाशं हृतरिपुरपरश्च स्वं पदं याति धीरः ।
 विफलतपृथुशक्तिर्वन्धनं सेवतेऽन्यो रविरुचितपदार्योऽज्ञासने हि प्रव्रीणः ॥१००॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणो शक्तिसन्तापामिधानं नाम द्राषट्टितमं पर्व ॥६२॥



गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाना प्रकारके भावोंको धारण करनेवाले जीव, अपने विविध आचरणोंके अनुरूप पूर्वभावोंमें जो कर्मका सञ्चय करते हैं उन्हें उसका उदय अवश्य ही भोगना पड़ता है और उसके उदयके अनुरूप ही वे इस जन्ममें निरन्तर नाना प्रकारका फल भोगते हैं ॥६६॥ इस संसारमें कर्मयोगसे कोई नाशको प्राप्त होता है, कोई धीर वीर शत्रुको नष्ट कर अपने पदको प्राप्त होता है, कोई अपनी विशाल शक्तिके निष्फल हो जानेसे बन्धनको प्राप्त होता है और कोई सूर्यके समान योग्य पदार्थोंको प्रकाशित करनेमें समर्थ होता है ॥१००॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके शक्ति लगनेके दुःखका वर्णन करनेवाला वासठवौ पर्व समाप्त हुआ ॥६२॥

त्रिषष्टितमं पर्व

ततः समाकुलस्वान्तः पद्मः शोकेन तादितः । परिप्राप तमुद्देशं यत्र तिष्ठति लक्ष्मणः ॥१॥
निर्विचेष्टं तमालोक्य क्षितिमण्डलमण्डनम् । शक्याऽऽलिङ्गितवक्षस्कं पद्मो मूर्च्छामुपागतः ॥२॥
सम्प्राप्य च चिरात् संज्ञां महाशोकसमन्वितः । दुःखाग्निदीपितोऽयन्तं विप्रलापमसेवत ॥३॥
हा वरस विधियोगेन महादुर्लङ्घ्यमर्णवम् । उच्यते सङ्गतोऽस्येतामवस्थामतिदारुणाम् ॥४॥
अयि मद्भक्तिसच्चेष्टो मदर्थं सततोद्यतः । क्षियं प्रयच्छ मे वार्चं किं मौनेनावतिष्ठसे ॥५॥
जानास्येव वियोगं ते मुहूर्त्तमपि नो सहे । कुर्वालिङ्गनमुच्छिद्य क्व गतोऽसौ तवादरः ॥६॥
अद्य केयूरदद्यौ मे भुजावेतौ महायतौ । भावमात्रकरी जातौ निष्क्रियो निष्प्रयोजनौ ॥७॥
निक्षेपो गुरुमिस्त्वं मे प्रयत्नेन समर्पितः । गत्वा किमुत्तरं तेभ्यो दास्यामि त्रययोक्तिम् ॥८॥
क सीमित्रिः क सीमित्रिरिति गाढं समुत्सुकः । लोकोऽपि हि समस्तो मे प्रचयति प्रेमनिर्भरः ॥९॥
रत्नं पुरुषवीराणां हारयित्वा त्वकामहम् । मन्ये जीवितमात्मीयं हतं निहतपौरुषः ॥१०॥
दुष्कृतस्पोदयस्थस्य रचितस्य भवान्तरे । फलमेतन्भया प्राप्तं सीतया मे किमन्यथा ॥११॥
यस्याः कृते चतोरस्क शक्या निर्दयनुज्ञया । भवन्तं भूतले सुप्तं पश्यामि दृढमानसः ॥१२॥
कामार्थाः सुलभाः सर्वे पुरुषस्यागमास्तथा । विविधाश्चैव सम्बन्धा विष्टेऽस्मिन् यथा तथा ॥१३॥
पर्यट्य पृथिवीं सर्वां स्थानं पश्यामि तन्ननु । यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽपि वा ॥१४॥

अथानन्तर जिनका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो रहा था तथा जो शोकसे पीड़ित हो रहे थे ऐसे श्रीराम उस स्थानपर पहुँचे जहाँ लक्ष्मण पड़े थे ॥१॥ जिनका वक्षःस्थल शक्तिसे आलिङ्गित था ऐसे पृथिवीतलके अलंकार स्वरूप लक्ष्मणको निश्चिष्ट देख राम मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥२॥ चिरकाल बाद जब सचेत हुए तब महाशोकसे युक्त एवं दुःख रूपी अग्निसे जलते हुए अत्यन्त विलाप करने लगे ॥३॥ वे कहने लगे कि हाय वत्स ! तू कर्मयोगसे इस दुर्लङ्घ्य सागर को उल्लंघ कर अब इस अत्यन्त कठिन दशाको प्राप्त हुआ है ॥४॥ अये वत्स ! तू सदा मेरी भक्तिसे सचेष्ट रहता था और मेरे कार्यके लिए सदा तत्पर रहता था, अतः शीघ्र ही मुझे वचन दे-मुझसे वार्तालाप कर मौनसे क्यों बैठा है ? ॥५॥ तू यह तो जानता ही है कि मैं तेरा वियोग मुहूर्त भरके लिए भी सहन नहीं कर सकता हूँ अतः उठ आलिङ्गन कर, तेरा वह आदर कहाँ गया ? ॥६॥ आज वाजुवन्दसे सुशोभित मेरी ये लम्बी भुजाएँ नाममात्रकी रह गईं, तेरे विना सर्वथा निष्फल और निष्क्रिय हो गईं ॥७॥ माता-पिता आदि गुरुजनोंसे तुझे धरोहरके रूपमें प्रयत्न पूर्वक मेरे लिए सौंपा था, अब मैं लज्जा रहित हुआ जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा ? ॥८॥ प्रेमसे भरे समस्त लोग अत्यन्त उत्सुक हो मुझसे पूछेंगे कि लक्ष्मण कहाँ है ? लक्ष्मण कहाँ है ? ॥९॥ तू वीर पुरुषोंमें रत्नके समान था सो तुझे हराकर मैं पुरुषार्थ हीन हुआ अपने जीवनको नष्ट हुआ समझता हूँ ॥१०॥ भवान्तरमे जो मैंने दुष्कृत-पाप कर्म किया था वह इस समय उदय मे आ रहा है । और उसीका फल मुझे प्राप्त हुआ है, हे भाई ! मुझे तेरे विना सीतासे क्या प्रयोजन है ? ॥११॥ मुझे उस सीतासे क्या प्रयोजन है जिसके लिए निर्दय-रावणके द्वारा चलायी हुई शक्तिसे तेरा वक्षःस्थल विदीर्ण हुआ है तथा मैं कठोर हृदय हो तुम्हें पृथिवी पर सोया हुआ देख रहा हूँ ॥१२॥ इस संसारमें पुरुषको काम और अर्थ तथा नाता प्रकारके सम्बन्ध सर्वत्र सुलभ है ॥१३॥ समस्त पृथिवीमें घूम कर मैं वह स्थान नहीं देख सका जिसमें भाई माता तथा

हे सुग्रीव सुहृत्वं ते दशितं खेचराधिप । ब्रजाऽयुना निज देशं भामण्डल भवानपि ॥१५॥
 जीविताशां परित्यज्य दशितां जानकीमिव । ज्वलनं श्वः प्रवेष्टास्मि सप्तं भ्रात्रा विसंशयम् ॥१६॥
 विभीषण न मे शोकस्तथा सीताऽनुजोद्भव । यथा निरुपकारित्वं मम सम्बोधते त्वयि ॥१७॥
 उत्तमा उपकुर्वन्ति पूर्वं पश्चात्तु मध्यमाः । पश्चादपि न ये तेषामधमत्वं हतस्मनाम् ॥१८॥
 कृतपूर्वोपकारस्य साधोर्वन्धुविरोधिनः । दत्ते नोपकृतं किञ्चित्तेन दह्येतरामहम् ॥१९॥
 भो भामण्डलसुग्रीवौ चित्तां रचयतां द्रुतम् । परलोकं गमिष्यामि क्रुद्ध युक्तमारमनः ॥२०॥
 ततो लक्ष्मीधर स्पृष्टुमिच्छन्त रघुनन्दनम् । अवारयन्महाबुद्धिर्जाम्बूनदमहत्तरः ॥२१॥
 मा स्माह्वीर्लक्ष्मणं देव दिव्यास्त्रपरिमृच्छितम् । प्रमादो जायते ह्येवं प्रायो हि स्थितिरीदृशी ॥२२॥
 प्रपद्यस्व च धीरत्वं कातरत्वं परित्यज । भवन्तीह प्रतीकाराः प्रायो विपदभीयुषाम् ॥२३॥
 प्रतीकारो विलापोऽत्र नानुदात्तजोचितः । परमार्थानुसारेण क्रियतां धीरमानसम् ॥२४॥
 उपायः सर्वथा कश्चिदिह देव भविष्यति । जीविष्यति तव भ्राता ननु नारायणो ह्ययम् ॥२५॥
 ततो विपादिनः सर्वे परं विद्याधराधिपाः । उपायचिन्तनासक्ताश्चक्रुरित्यन्तरात्मनि ॥२६॥
 दिव्या शक्तिरियं शक्या न निराकृतुं मौषधैः । उद्गते ज्योतिषामीशे दुःखं जीवति लक्ष्मणः ॥२७॥
 अयोत्सायं कबन्धादीन्निमिषाद्देन सा मही । किङ्करैर्विहितोत्सुद्गद्व्यप्राकारमण्डपां ॥२८॥

पिता पुनः प्राप्त हो सकते हैं ॥१४॥ हे विद्याधरोंके राजा सुग्रीव ! तुमने अपनी मित्रता दिखाई । अब अपने देश जाओ । इसी तरह हे भामण्डल ! तुम भी अपने देश जाओ ॥१५॥ इसमें संशय नहीं कि मैं प्रिया जानकीके समान जीवनकी आशा छोड़ कल भाईके साथ अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥१६॥ हे विभीषण ! मुझे सीता तथा छोटे भाईके वियोगसे उत्पन्न हुआ शोक उस प्रकार पीड़ा नहीं पहुँचा रहा है जिस प्रकार कि तुम्हारा कुल उपकार नहीं कर सकना ॥१७॥ उत्तम मनुष्य कार्यके पूर्व तथा मध्यम मनुष्य कार्यके पश्चात् उपकार करते हैं परन्तु जो कार्यके पीछे भी उपकार नहीं करते हैं उन दुष्टोंमें नीचताका ही निवास समझना चाहिये ॥१८॥ हे विभीषण ! तू साधु पुरुष है । तूने मेरा पहले उपकार किया और मेरे पीछे बन्धुसे विरोध किया है फिर भी मैं तेरा कुल भी उपकार नहीं कर सका इससे मन हो मन जल रहा हूँ ॥१९॥ हे भामण्डल और सुग्रीव ! शीघ्र ही चिता बनाओ । मैं पर लोक जाऊँगा, आप दोनों अपने योग्य कार्य करो- जिसमें तुम्हारा कल्याण हो सो करो ॥२०॥

तदनन्तर रामने लक्ष्मणके स्पर्श करनेकी इच्छा की सो उन्हें महाबुद्धिमान् जाम्बूनदने मना किया ॥२१॥ उसने कहा कि हे देव ! दिव्यअस्त्रसे मूर्च्छित लक्ष्मणको मत छुओ क्यों कि ऐसा करनेसे प्रायः प्रमाद हो जाता है । इन दिव्य अस्त्रोंकी ऐसी ही स्थिति है ॥२२॥ आप धीरताको प्राप्त होओ, कातरता छोड़ो, विपत्तिमें पड़े हुए लोगोंके प्रतीकार इस संसारमें अधिकांश विद्यमान हैं ॥२३॥ बुद्ध मनुष्योंके योग्य विलाप करना इसका प्रतीकार नहीं है, हृदयको यथार्थमें धैर्य युक्त किया जाय ॥२४॥ हे देव ! इसका कोई न कोई उपाय अवश्य होगा और तुम्हारा भाई जीवित होगा क्यों कि यह नारायण है नारायणका असमयमें मरण नहीं होता ॥२५॥ तदनन्तर विवादसे भरे सत्र विद्याधर राजा उपायके चिन्तनमें तत्पर हो मनमें इस प्रकार विचार करने लगे कि यह दिव्य शक्ति औषधियोंके द्वारा दूर नहीं की जा सकती और सूर्योदय होने पर लक्ष्मण वड़ी कठिनाईसे जीवित रह सकेंगे अर्थात् सूर्योदयके पूर्व इसका प्रतीकार नहीं किया गया तो जीवित रहना कठिन हो जायगा ॥२६-२७॥

तदनन्तर किङ्करोने आवे निमेषमें ही शिर रहित धड़ आदिको हटा कर उस युद्धभूमिको शुद्ध किया और वहाँ कपड़ेके ऊँचे ऊँचे डेरे बनाते तथा मण्डप आदि खड़े कर दिये ॥२८॥ उस

ससकच्याटसम्पन्ना कृतदिवचयनिर्गमा ३ । वहिः कवचितैर्वोषैर्गुप्ता कामुं कधारिभिः ॥२६॥
 प्रथमे गोपुरे नीलश्रापपाणिः प्रतिष्ठितः । द्वितीये तु नलस्तस्यौ गदाहस्तो घनोपमः ॥३०॥
 विभीषणस्तृतीये तु शूलपाणिमहामनाः । खड्गमाल्यचित्ररत्नांशुरीशानवदशोभत ॥३१॥
 सञ्जद्वन्द्वत्गोरीस्तुरीये कुमुदः स्थितः । सुषेणः पद्ममे ज्ञेयः कुन्तहस्तः प्रतापवान् ॥३२॥
 सुपीवरञ्जुको वीरः सुग्रीवः स्वयमेव च । रराज भिण्डिमालेन पथे वज्रधरोपमः ॥३३॥
 प्रदेशे ससमे राजमहारिपुबलान्तकः । मण्डलाग्रं समाकृष्य स्वयं भामण्डलः स्थितः ॥३४॥
 पूर्वद्वारेण संचारे शरमः शरभध्वजः । रराज पश्चिमे द्वारे कुमारो जाग्रद्वो यथा ॥३५॥
 प्रदेशशौत्तरद्वारं व्यायामात्पौषसंकुलम् । स्थितश्चन्द्रमरीचिश्च वालिपुत्रो महाबलः ॥३६॥
 एवं विरचिता ज्ञोणी श्लेचरेशैः प्रयत्निभिः । रराज घौरिवात्थर्थं निर्मलैरुद्दुमण्डलैः ॥३७॥
 यावन्तः केचिदन्ये तु समरादनिवर्त्तिनः । ते स्थिता दक्षिणामाशां व्याप्य वानरकेतवः ॥३८॥

उपजातिवृत्तम्

एवं प्रयत्नाः कृतयोग्यरक्षाः संदेहिनो लक्ष्मणजीवयोगे ।

सविस्मयाः सोल्लुचः ममानाः स्थिताः समस्ता गगनायनेशाः ॥३९॥

न तस्मिन् नो ययैवो न नागा न चापि देवा विनिवारयन्ति ।

यदात्मना सञ्जनितस्य लभ्य-फलं नृणां कर्मरवेः प्रकाशम् ॥४०॥

इत्याप्ये श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणौ शक्तिभेदरामविलापामिधानं नाम त्रिषष्टितमं पर्व ॥६३॥

भूमिको सात चौकियोंसे युक्त किया, दिशाओंमें आवागमन बन्द किया और कवच तथा धनुष को धारण करने वाले योद्धाओंने वाहर खड़े रह कर उसकी रक्षा की ॥२६॥ पहले गोपुर पर धनुष हाथमें लेकर नील बैठा, दूसरे गोपुरमें गदा हाथमें धारण करने वाला मेघ तुल्य नील खड़ा हुआ, तीसरे गोपुरमें हाथमें शूल धारण करने वाला उदारचेता विभीषण खड़ा हुआ । वहाँ जिसकी मालाओंमें लगे नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणें सब ओर फैल रही थीं ऐसा विभीषण ऐशानेन्द्रके समान सुशोभित हो रहा था ॥३०-३१॥ कवच और तरकसको धारण करनेवाला कुमुद चौथे गोपुर पर खड़ा हुआ । पांचवे गोपुरमें भाला हाथमें लिये प्रतापी सुषेण खड़ा हुआ ॥३२॥ जिसकी भुजाएँ अत्यन्त शूल थीं और भिण्डिमाल नामक शस्त्रसे इन्द्रके समान जान पड़ता था ऐसा वीर सुग्रीव स्वयं छठवें गोपुरमें सुशोभित हो रहा था । तथा सातवे गोपुरमें बड़े बड़े शत्रुराजाओंकी सेनाको मौतके घाट उतारने वाला भामण्डल स्वयं तलवार खींच कर खड़ा था ॥३३-३४॥ पूर्व द्वारके मार्ग में शरभ चिह्नसे चिह्नित ध्वजाको धारण करने वाला शरभ पहरा दे रहा था, पश्चिम द्वारमें जान्धव कुमार सुशोभित हो रहा था और मन्त्रि समूहसे युक्त उत्तर द्वारको घेर कर चन्द्ररश्मि नामका वालिका महाबलवान् पुत्र खड़ा हुआ था ॥३५-३६॥ इस प्रकार प्रयत्नशील विद्याधर राजाओंके द्वारा रची हुई वह भूमि, निर्मल नक्षत्रोंके समूहसे आकाश के समान अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥३७॥ इनके सिवाय युद्धसे नहीं लौटने वाले जो अन्य वानरध्वज राजा थे वे सब दक्षिण दिशाको व्याप्त कर खड़े हो गये ॥३८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक । जिन्होंने इस प्रकार प्रयत्न कर योग्य रक्षा की थी, जिन्हें लक्ष्मणके जीवित होने में संदेह था, जो आश्चर्यसे युक्त थे, बहुत भारी शोकसे सहित थे एवं मानो थे ऐसे सब विद्याधर राजा यथा स्थान खड़े हो गये ॥३९॥ अपने ही द्वारा अर्जित कर्म रूपी सूर्यके प्रकाश स्वरूप जो फल मनुष्योंको प्राप्त होने वाला है उसे न मनुष्य दूर कर सकते हैं, न घोड़े, न हाथी, और न देव भी ॥४०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें शक्तिभेद एवं रामविलापका वर्णन करनेवाला तिरसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६३॥

चतुःषष्टितमं पर्व

नियतं मरणं ज्ञात्वा लक्ष्मणस्य दशाननः । पुत्रभ्रातृवधं बुद्धौ चकारात्यन्तदुःखितः ॥१॥
 हा भ्रातः परमोदार ममात्यन्तहितोद्यतः । कथमेतामवाप्नोसि वन्धावस्थामसङ्गताम् ॥२॥
 हा पुत्रौ सुमहावीर्यौ भुजाविव दडौ मम । विधेर्नियोगतः प्राप्तौ भवन्तौ वन्धनं नवम् ॥३॥
 किं करिष्यति वः शत्रुरित्याकुलितमानसः । न वेद्मि दुरितात्माहं विरसं वा करिष्यति ॥४॥
 भवद्भिरुत्तमैः प्रीतैर्वन्धदुःखं समागतैः । वाप्येह नितरां कष्टं किमिदं मम वर्त्तते ॥५॥
 एवं गजेन्द्रवद्धनिजयूथमहागजः । अप्रकाशं परं शोकमसेवत स सन्ततम् ॥६॥
 शक्त्या हतं गतं भूमिं श्रुत्वा लक्ष्मीधरं परम् । सम्प्राप्ता जानकी शोकमकरोत्परिदेवनम् ॥७॥
 हा भद्र लक्ष्मण प्राप्तस्त्वमवस्थामिनां हताम् । कृते मे मन्दभाग्याया विनोत गुणभूषण ॥८॥
 ईदृशमपि वाञ्छामि भवन्तमहमीक्षितुम् । विसृक्ता हतदैवेन न लभे पापकारिणी ॥९॥
 भवन्तं तादृश वीरं धनता पापेन शत्रुणा । क्व मे कृतो न सन्देहः प्रवर्तै मरणं प्रति ॥१०॥
 वियुक्तो बन्धुभिः भ्रातुरिष्टे संसक्तमानसः । अवस्थामागतोऽप्येतां कृच्छ्रादुत्पीर्य सागरम् ॥११॥
 अपि नाम पुनः क्रीडाकोविदं विनयान्वितम् । पर्येयं चाह्वाक्यं त्वां परमाद्भुतकारिणम् ॥१२॥

अथानन्तर रावण लक्ष्मणका मरण निश्चित जान अत्यन्त दुखी होता हुआ मनमे पुत्रों और भाईके वधका विचार करने लगा । भावार्थ—रावणको यह निश्चय हो गया कि शक्तिके प्रहारसे लक्ष्मण अवश्य मर गया होगा और उसके प्रतिकार स्वरूप रामपक्षके लोगोंने कैद किये हुए इन्द्र-जित् तथा मेघवाहन इन दो पुत्रों और कुम्भकर्ण भाईको अवश्य मार डाला होगा । इस विचारसे वह मन ही मन बहुत दुःखी हुआ ॥१॥ वह विलाप करने लगा कि हाय भाई ! तू अत्यन्त उदार था और मेरा हित करनेमें सदा उद्यत रहता था सो इस अयुक्त वन्धनकी अवस्थाको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥२॥ हाय पुत्रो ! तुम तो महा बलवान् और मेरी भुजाओंके समान दृढ़ थे । कर्मके नियोग से ही तुम इस नूतन वन्धनको प्राप्त हुए हो ॥३॥ शत्रु तुम लोगोका क्या करेगा ? यह सोचकर मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है । मैं पापी शत्रुके कर्तव्यको नहीं जानता हूँ अथवा निश्चित ही है कि वह अनिष्ट ही करेगा अर्थात् तुम्हें मारेगा ही ॥४॥ आप जैसे उत्तम, प्रीतिके पात्र पुद्ब वन्धनके दुःखको प्राप्त हुए हैं इसलिये मैं अत्यधिक पीड़ाको प्राप्त हो रहा हूँ । हाय, यह कष्ट मुझे क्यों रहा है ? ॥५॥ इस प्रकार जिसके यूथ—फुण्डका महागज पकड़ लिया गया है ऐसे अन्य गजराजकी तरह वह रावण निरन्तर अप्रकट रूपसे मन ही मन शोकका अनुभव करने लगा ॥६॥

तदनन्तर जब सीताने सुना कि लक्ष्मण शक्तिसे धायल हो पृथिवी पर गिर पड़े हैं तब वह शोकको प्राप्त हो विलाप करने लगी ॥७॥ वह कहने लगी कि हाय भाई लक्ष्मण ! हाय विनोत ! हाय गुण रूपी आभूषण-से सहित ! तुम मुझ अभागिनीके लिए इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥८॥ यद्यपि मैं इस तरह संकटमे पड़ी हुई भी तुम्हारा दर्शन करना चाहती हूँ तथापि मैं अभागिनी पापिनी आपका दर्शन नहीं पा रही हूँ ॥९॥ आप जैसे वीरको मारते हुए पापी शत्रुने किस वीरके मारनेका सन्देह मुझे उत्पन्न नहीं किया है ? अर्थात् जब उसने आप जैसे वीरको मार डाला है तब वह प्रत्येक वीरको मार सकता है ॥१०॥ तुम भाईका भला करनेमें चिन्ता लगा पहले बन्धुजनोंसे विद्योहको प्राप्त हुए और अब बड़ी कठिनाईसे समुद्रको पारकर इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥११॥ क्या मैं क्रीडा करनेमें निपुण विनयी, सुन्दर वचन बोलने वाले एवं

कुर्वन्तु सर्वथा देवास्तव जीवितपालनम् । विशल्यतां द्रुत गच्छ सर्वलोकमनोहर ॥१३॥
 एवं विलापिनी कृच्छ्राच्छ्लोकिनी जनकात्मजा । भावप्रतिभिरानीता खेचरीभिः प्रसान्त्वनम् ॥१४॥
 ज्ञायते देवि नाद्यापि निरचयो देवरश्च ते । अतो न वर्तते कर्त्तुं मेतस्मिन् परिदेवनम् ॥१५॥
 भव धीरा प्रवीराणां भवत्येवेदशी गतिः । भवन्ति च प्रतीकाराश्चित्रं हि जगतीहितम् ॥१६॥
 इति विद्याधरीवाक्यात्किञ्चित्साऽभूद्नाकुलः । शृण्विद्वानी यदेतस्मिन्नातं लक्ष्मणपर्वणि ॥१७॥
 प्रासो दूष्यगृहद्वारं पुरुषश्चारुदर्शनः । प्रभामण्डलवारेण प्रविशन्निति नोदिता ॥१८॥
 कस्त्वं कस्य कुतो वाऽसि किमर्थं वा विविक्षसि । तिष्ठ तिष्ठ समाचक्ष्व नात्राविदितसंगमः ॥१९॥
 सोऽनोचदध मे मासः साग्रः प्रासस्य वर्तते । पद्मं समाश्रयामीति प्रस्तात्रो नत्वलभ्यत ॥२०॥
 अधुना दर्शये शीघ्रं जीवन्तं यदि लक्ष्मणम् । द्रुपदं भवति वाञ्छा वस्तुप्रोपायं वदाम्यहम् ॥२१॥
 इत्युक्ते परितुष्टेन भामण्डलमहीश्रुता । दत्त्वा प्रतिनिधिं द्वारे नीतोऽनौ पद्मगोचरम् ॥२२॥
 संप्रयुज्य प्रणामं च स जगाद् महादरः । मा खित्थास्त्वं महाराज कुमारो जीवति ध्रुवम् ॥२३॥
 सुप्रभा नाम मे माता जनकः शशिमण्डलः । देवगीते पुरेऽहं च चन्द्रप्रतिमसञ्चकः ॥२४॥
 जातुचिद्विचरन् व्योम्नि वेलाप्यक्षस्य सूनुना । सहस्रविजयाख्येन वैरिणाऽहं निरीक्षितः ॥२५॥
 ततो मैथुनिकावैरं स्मृत्वा क्रोध समायुपः । तस्य जात मया साह्यं रणं सुभट्टदारणम् ॥२६॥

परम आश्चर्यके कार्ये करने वाले तुम्हें फिर भी देख सकेगी ? ॥१२॥ देव सब प्रकारसे तुम्हारे जीवनकी रक्षा करें और सब लोगोंके मनको हरण करने वाले तुम शीघ्र ही शल्य रहित अवस्थाको प्राप्त होओ ॥१३॥ इस प्रकार विलाप करने वाली शोकवती सीताको भावसे स्नेह रखने वाली विद्याधरियोने सान्त्वना प्राप्त कराई ॥१४॥ उन्होंने समझाते हुए कहा कि हे देवि ! तुम्हारे देवरका अभीतक निश्चय नहीं जान पड़ा है इसलिए इसके विषयमें विलाप करना उचित नहीं है ॥१५॥ धैर्य धारण करो, वीरोंकी तो ऐसी गति होती ही है । जो हो चुकता है उसको प्रतीकार होते है यथार्थमें पृथिवीकी चेष्टा विचित्र है ॥१६॥ इस प्रकार विद्याधरियोके कहनेसे सीता कुछ निराकुल हुई । गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब इस लक्ष्मण पर्वमें जो कुछ हुआ उसे श्रवण कर ॥१७॥

अथानन्तर इसी बीचमें एक सुन्दर मनुष्य डेरेके द्वार पर आकर भीतर प्रवेश करने लगा तब भामण्डलने उसे रोकते हुए कहा कि तू कौन है ? किसका आदमी है ? कहाँसे आया है ? और किस लिए प्रवेश करना चाहता है ? खड़ा रह खड़ा रह सब बात ठीक-ठीक बता, यहाँ अपरिचित लोगोंका आगमन निषिद्ध है ॥१८-१९॥ इसके उत्तरमें उस पुरुषने कहा कि मुझे यहाँ आये कुछ अधिक एक मास हो गया । मैं रामका दर्शन करना चाहता हूँ परन्तु अब तक अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ ॥२०॥ इस समय उनका दर्शन करता हूँ । यदि आप लोगोंकी लक्ष्मणको शीघ्र ही जीवित देखनेकी इच्छा है तो मैं आपको इसका उपाय बताता हूँ ॥२१॥ उसके इतना कहते ही राजा भामण्डल बहुत सन्तुष्ट हुआ । वह द्वार पर अपना प्रतिनिधि बैठाकर उसे रामके समीप ले गया ॥२२॥ उस पुरुषने बड़े आदरसे रामको प्रणाम कर कहा कि हे महाराज ! खेद मत कीजिये, कुमार निश्चित ही जीवित है ॥२३॥ मेरी माताका नाम सुप्रभा तथा पिताका नाम चन्द्रमण्डल है । मैं देवगीतपुरका रहने वाला हूँ तथा चन्द्रप्रतिम मेरा नाम है ॥२४॥ किसी समय मैं आकाशमें घूम रहा था उसी समय राजा वेलाप्यक्षके पुत्र सहस्रविजयने जो कि हमारा शत्रु था मुझे देख लिया ॥२५॥ तदनन्तर स्त्री सम्बन्धी वैरका स्मरणकर वह क्रोधको प्राप्त हो गया

१. कुःखग्रहद्वारं म० । २. विविक्षसि म० । ३. समन्वश्च (?) म० । ४. ननु लभ्यते म० । न ड लभ्यते । ५. खित्थास्त्वं ख० । ६. रणे म० ।

ततोऽहं चण्डरवया शक्त्या तेन समाहृतः । खान्महेन्द्रोद्योद्याने नक्तं निपतितो घने ॥२७॥
 पनन्त मां समालोक्य तारकाविम्बलज्जिभम् । साकेताधिपतिस्तर्की^{१०} भरतः समलौकत ॥२८॥
 शक्तिशक्तियतवक्षश्च^{११} सिकक्षन्दनवारिणा । तेनाह कृष्णार्त्तेन साधुना जीवदायिना ॥२९॥
 शक्तिः पलायिता काऽपि जात रूपं च पूर्वकम् । अधिक च सुख जात तेन मे गन्धवारिणा ॥३०॥
 तेन मे पुरुषेन्द्रेण भरतेन महात्मना । जन्मान्तरमिदं दत्तं फल यस्य त्वदीक्षणम् ॥३१॥
 अब्रान्तरे स सम्भ्रान्तः सुरूपो रघुनन्दनः । प्रयच्छ भद्र जानासि तद्गन्धोदकसम्भवम् ॥३२॥
 सोऽनोचहेव जानामि श्रूयतां वेदयामि ते । पृष्टो हि स मया राजा तेन चेति निवेदितम् ॥३३॥
 यथा किल समस्तोऽयं देशः पुरसमन्वितः । अभिभूतो महारोगैरासीदप्रतिकारकैः ॥३४॥
 उरोघातमहादाहज्वरलालापरिस्त्रवा । सर्वशूलारुचिच्छर्दिंश्चयथुस्फोटकादयः ॥३५॥
 क्रुद्धा ह्येव पर तीव्राः तेषां रोगास्तदाऽभवन् । यैरेत्र विषये प्राणी नैकोऽप्यस्ति न पातितः ॥३६॥
 केवलो द्रोणमेघाह्नः सामात्यपशुबान्धवः । नृपो देव इवारोगः श्रुतो निजपुरे मया ॥३७॥
 आह्वय स मयाऽवाचि माम त्व नौरुजो यथा । कालक्षेपविनिर्मुक्तं तथा मां कसु मर्हसि ॥३८॥
 ततः सौरभसरुद्धदूरदिग्बल्य जलम् । तेन सिकतोऽहमानाच्य प्राप्तश्लोधावतां पराम् ॥३९॥

जिससे उसका मेरे साथ योद्धाओंको भय उत्पन्न करनेवाला—कठिन युद्ध हुआ ॥२६॥ तत्पश्चात् उसने मुझे चण्डरवा नामक शक्तिसे मारा जिससे मैं रात्रिके समय आकाशसे अयोध्याके महेन्द्रोद्य नामक सघन वनमें गिरा ॥२७॥ आकाशसे पड़ते हुए ताराविम्बके समान मुझे देख अयोध्याके राजा भरत तर्क करते हुए मेरे समीप आये ॥२८॥ शक्ति लगनेसे जिसका वक्षःस्थल शल्ययुक्त था ऐसे मुझको देख राजा भरत दयासे दुखी हो उठे । तदनन्तर जीवन दान देनेवाले उन सत्पुरुषने मुझे चन्दनके जलसे सींचा ॥२९॥ उसी समय शक्ति कहीं भाग गई और मेरा रूप पहलेके समान हो गया तथा उस सुगन्धित जलसे मुझे अत्यधिक सुख उत्पन्न हुआ ॥३०॥ पुरुषोंमें इन्द्रके समान श्रेष्ठ उन महात्मा भरतने मुझे यह दूसरा जन्म दिया है जिसका कि फल आपका दर्शन करना है । भावार्थ—शक्ति निकालकर उन्होंने मुझे जीवित किया उसीके फल-स्वरूप आपके दर्शन पा सका हूँ ॥३१॥

इसी बीचमें परम हर्षको प्राप्त हुए, सुन्दर रूपके धारक रामने उससे पूछा कि हे भद्र ! उस गन्धोदककी उत्पत्ति भी जानते हो ? ॥३२॥ इसके उत्तरमें उसने कहा कि हे देव ! जानता हूँ सुनिये मैं आपके लिए बताता हूँ । मैंने राजा भरतसे पूछा था तब उन्होंने इस प्रकार कहा था ॥३३॥ कि नगर ग्रामादिसे सहित यह देश एक बार जिनका प्रतिकार नहीं किया जा सकता था ऐसे अनेक महारोगोंसे आक्रान्त हो गया ॥३४॥ उरोघात—जिसमें वक्षःस्थल-पसली आदिमें दर्द होने लगता है, महादाहज्वर—जिसमें महादाह उत्पन्न होता है, लालापरिस्त्राव—जिसमें मुँहसे लार बहने लगती है, सर्व-शूल—जिसमें सर्वाङ्गमें पीड़ा होती है, अरुचि—जिसमें भोजनादिकी रुचि नष्ट हो जाती है, छर्दि—जिसमें वमन होने लगते हैं, श्वयथु—जिसमें शरीर पर सूजन आ जाता है, और स्फोटक—जिसमें शरीर पर फोड़े निकल आते हैं, इत्यादि समस्त रोग उस समय मानो परम क्रुद्ध हो रहे थे । इस देशमें ऐसा एक भी प्राणी नहीं बचा था जो कि इन रोगों द्वारा गिराया न गया हो ॥३५-३६॥ केवल, द्रोणमेघ नामका राजा मन्त्रियों पशुओं तथा वन्धु आदि परिवारके साथ अपने नगरमें देवके समान नीरोग बचा था ऐसा मेरे सुननेमें आया ॥३७॥ मैंने उसे बुलाकर कहा कि हे माम ! जिस प्रकार तुम नीरोग हो उसी प्रकार मुझे भी अखिलम्ब नीरोग करनेके योग्य हो ॥३८॥ तदनन्तर उसने बुलाकर अपनी सुगन्धिसे दूर-दूर तकके दिग्मुण्डलको व्याप्त करनेवाला जल मुझ पर सींचा और मुझे परम नीरोगता प्राप्त करा

न केवलमहं तेन वारिणांस्तःपुरं मम । पुरं देशश्च संजातं सर्वरोगविवर्जितम् ॥४०॥
 कर्ता रोगसहस्राणां वायुरत्यन्तदुःसहः । प्रणष्टो वारिणा तेन मर्मसम्भेदकोविदः ॥४१॥
 मयैवं सततं पृष्टो मामेतद्दुदकं कुतः । येनाऽऽश्चर्यमिदं शीघ्रं कृतं रोगविनाशनम् ॥४२॥
 सोऽजोचच्छ्रूयतां राजन्नस्ति मे गुणशालिनी । विशाल्या नाम द्रुहिता सर्वविज्ञानकोविदा ॥४३॥
 यस्यां गर्भप्रपन्नायामनेकव्याधिपीडिता । देवी ममोपकाराऽभूत्सर्वरोगविवर्जिता ॥४४॥
 जिनेन्द्रशासनासक्ता नित्यं पूजासमुद्यता । शोपेव सर्वबन्धूनां पूजनीया मनोहरा ॥४५॥
 स्नानोदकमिदं तस्या महासौरम्यसङ्गतम् । कुरुते सर्वरोगाणां तत्क्षणेन विनाशनम् ॥४६॥
 ततस्तद्दहमाकर्ष्य द्रोणमेघस्य भाषितम् । परं विस्मयमापन्नः सम्पदा तामपूजयम् ॥४७॥
 नगरीतश्च निष्क्रम्य नाम्ना सत्त्वहितं मुनिम् । गणेशवरं समप्राञ्च प्रणम्य विनयान्वितः ॥४८॥
 ततः 'खेचरपृष्टोऽसौ समाख्यासोन्महायतिः । वैशाल्यं चरितं दिव्यं चतुर्धा नी सुवत्सलः ॥४९॥
 विदेहे पौण्डरीकाख्ये विपैवै स्वर्गसन्निभे । चक्रो त्रिशुवनानन्दः पुरे चक्रधरोऽभवत् ॥५०॥
 नामाऽनङ्गशरा तस्य तनया गुणमण्डना । अपूर्वा कर्मणां सृष्टिर्लावण्यप्लवकारिणां ॥५१॥
 तां प्रतिष्ठुराशोशः सामन्तोऽप्य पुनर्वसुः । दुर्धराहाहरोप्य विमानं स्मरचोदितः ॥५२॥
 क्रुद्धाच्चक्रधरादाज्ञां सम्प्राप्त्यामुप्य किङ्करीः । चिरं कृतवतो युद्धं विमानं चूर्णितं भृशम् ॥५३॥
 चूर्ण्यमानविमानेन मुक्ता तेनाकुलात्मना । पपात नभसः कान्तिरिव चन्द्रस्य शारदी ॥५४॥

दी ॥३६॥ उस जलसे न केवल मैं ही नीरोग हुआ किन्तु मेरा अन्तःपुर, नगर और समस्त देश रोग रहित हो गया ॥४०॥ हजारों रोगियों को उत्पन्न करनेवाली, अत्यन्त दुःसह, एवं मर्मघात करनेमें निपुण दूषित वायु ही उस जलसे नष्ट हो गई ॥४१॥ मैंने राजा द्रोणमेघसे बार-बार पूछा कि हे माम ! यह जल कहाँसे प्राप्त हुआ है जिसने शीघ्र ही रोगियों को नष्ट करनेवाला यह आश्चर्य उत्पन्न किया है ॥४२॥ इसके उत्तरमें द्रोणमेघने कहा कि हे राजन् ! मुनिये, मेरी, गुणोंसे सुशोभित तथा सब प्रकारके विज्ञानमें निपुण विशाल्या नामकी पुत्री है ॥४३॥ जिसके गर्भमें आते ही अनेक रोगोंसे पीड़ित मेरी स्त्री सर्व रोगोंसे रहित हो मेरा उपकार करने वाली हुई थी ॥४४॥ वह जिन-शासनमें आसक्त है, निरन्तर पूजा करनेमें तत्पर रहती है, मनोहारिणी है और शोपाक्षतके समान सर्व बन्धु जनोकी पूज्या है ॥४५॥ यह महा सुगन्धिसे सहित उसीका स्नान-जल है जो कि क्षण भरमें सब रोगोंका नाश कर देता है ॥४६॥ तदनन्तर द्रोणमेघके वह वचन सुन मैं परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और बड़े वैभवसे मैंने उस पुत्रीकी पूजा की ॥४७॥ नगरीसे निकलकर जब वापिस आ रहा तब सत्यहित नामक मुनिराज जो कि मुनिसंघके स्वामी थे वे मिले । मैंने विनयपूर्वक प्रणाम कर उनसे विशाल्याका चरित्र पूछा ॥४८॥ राजा भरत विद्याधर से कहते हैं कि हे विद्याधर ! तदनन्तर मेरे पूछने पर चार ज्ञानके धारी, महास्नेही मुनिराज विशाल्याका दिव्य चरित्र इस प्रकार कहने लगे कि—॥४९॥

विदेह क्षेत्रमें स्वर्गके समान पुण्डरीक नामक देश है उसके चक्रधर नामक नगरमें त्रिशुवनानन्द नामका चक्रवर्ती रहता था ॥५०॥ उसकी अलगशरा नामकी एक कन्या थी जो गुण रूपी आभूषणोंसे सहित थी, कर्मोंकी अपूर्व सृष्टि थी और सौन्दर्यका प्रवाह वहाने वाली थी ॥५१॥ चक्रवर्ती त्रिशुवनानन्दका एक पुनर्वसु नामका सामन्त था जो कि प्रतिष्ठपुर नगरका स्वामी था । कामसे प्रेरित हो उस दुर्बुद्धिने विमान पर चढ़ाकर उस कन्याका अपहरण किया ॥५२॥ क्रोधसे भरे चक्रवर्तीकी आज्ञा पाकर सेवकोंने उसका पीछा किया और बहुत काल तक युद्ध कर उसके विमानको अत्यधिक चूर कर डाला ॥५३॥ तदनन्तर जिसका विमान चूर चूर किया

विद्यया पर्णलक्ष्याऽसौ पुनर्वसुनियुक्त्या । अटवीमागता स्वैरं नाम्ना श्वापदशौरवाम् ॥५५॥
 महाप्रतिक्रियाकारं महाविद्यामृततामपि । दुःप्रवेशां कृतध्वान्तां महाविटपसङ्घैः ॥५६॥
 नानावस्त्रीसमाश्लिष्टविधयोत्तुङ्गपादपाम् । पल्लवोद्भासितैर्मुक्तां भौतेरिव रवेः करैः ॥५७॥
 तरङ्गशरभद्रीपिब्याप्रसिहादितेविताम् । उच्चवाचखरचोर्णा महाविवरसङ्घताम् ॥५८॥
 अरण्यानीं गता सेयं महाभयसमागता । कान्ता शिखेव दीपस्य सीदति स्म वराकिका ॥५९॥
 नदीतीरं समागम्य कृत्वा दिगवलोकनम् । महाखेदसमायुक्ता स्मृतबन्धुः स्म रोदिति ॥६०॥
 तेनाहं लोकपालेन देवेन्द्रप्रतिभासिना । सुचक्रवर्तिना जाता महाहुल्लितात्मिका ॥६१॥
 विधिना वारुणेनैमामवस्थामनुसारिता । किं करोमि परिप्राप्ता वन दुःखनिरोक्षणम् ॥६२॥
 हा मात सकलं लोक त्वं पालयसि विक्रमी । कथं मामपरित्राणां विपिने नानुकम्पसे ॥६३॥
 हा मातस्तादृशं दुःखं कुक्षिधारणपूर्वकम् । विपद्य साप्रतं कस्मात् कुरूपे नानुकम्पनम् ॥६४॥
 हा मेऽन्तःकरणच्छायपरिवर्गगुणोत्तम । अमुक्तां क्षणमप्येकं कथं त्यजसि साश्रुतम् ॥६५॥
 जातमात्रा मृता नाऽहं कस्माद्दुःखस्य भूमिका । अथवा न विना पुण्यैरभिवाञ्छितमाप्यते ॥६६॥
 किं करोमि कं गच्छामि दुःखिनी संश्रयामि कम् । कं पश्यामि महाऽन्ये कथं तिष्ठामि पापिनी ॥६७॥
 स्वप्नः किमेव सम्प्राप्तं जन्नेद् नरके मया । सैव किं स्यादहं कोऽयं प्रकारः सहसोद्गतः ॥६८॥
 एवमादि चिर कृत्वा विप्रलापं सुविह्वला । पशूनामपि तीव्राणां मनोद्भवकारणम् ॥६९॥

जा रहा था ऐसे उस पुनर्वसुने कन्याको विमानसे छोड़ दिया जिससे वह चन्द्रमाकी शरद् कालीन कान्तिके समान आकाशसे नीचे गिरी ॥५४॥ पुनर्वसुके द्वारा नियुक्त की हुई पर्णलक्ष्मी नामक विद्याके सहारे स्वेच्छासे उतरती हुई वह श्वापद नामक अटवीमें आई ॥५५॥

तदनन्तर जो बड़े बड़े विद्याधरोके लिए भी भय उत्पन्न करने वाली थी, जिससे प्रवेश करना कठिन था, बड़े बड़े वृत्तोंकी सघन भाङ्कियोंसे जिसमें अन्धकार फैल रहा था, जहाँ विविध प्रकारके ऊँचे वृत्त नाना लताओंसे आलिङ्गित थे, पल्लवोंकी सघन छायासे दूर की हुई सूर्यके किरणोंने भयभीत होकर ही मानो जिसे छोड़ दिया था, जो भेङ्किये, शरभ, चीते, तट्टुप तथा सिंहो आदिसे सेवित थी, जहाँकी कठोर भूमि ऊँची नीची थी, और जो बड़े-बड़े त्रिलोसे सहित थी ऐसी उस महा अटवीमें जाकर महाभयको प्राप्त हुई वेचारी अनंगसेना दीपककी शिखाके समान कोंपने लगी ॥५६-५९॥ नदीके तीर आकर और सब दिशाओंकी ओर देख महाखेदसे युक्त होती हुई वह कुटुम्बीजनोको चितार-चितार कर रोने लगी ॥६०॥ वह कहती थी कि हाय मैं लोककी रक्षा करने वाले, इन्द्रके समान सुरोभित उन चक्रवर्ती पितासे उत्पन्न हुई और महास्नेहसे लालित हुई । आज प्रतिफूल दैवसे—भाग्यकी विपरीततासे इस अवस्थाको प्राप्त हुई हूँ । हाय जिसका देखना भी कठिन है ऐसे इस वनमें आ पड़ी हूँ क्या करूँ ? ॥६१-६२ हाय पिता ! तुम तो महापराक्रमी, सब लोककी रक्षा करते हो फिर वनमें असहाय पड़ी हुई मुझ पर दया क्यों नहीं करते हो ? ॥६३॥ हाय माता ! गर्भ धारणका वैसे दुःख सहकर इस समय दया क्यों नहीं कर रही हो ? ॥६४॥ हाय मेरे अन्तःकरणके समान प्रवृत्ति करने वाले तथा उत्तम गुणोंसे युक्त परिजन ! तुमने तो मुझे एक क्षणके लिए भी कभी नहीं छोड़ा फिर इस समय क्यों छोड़ रहे हो ? ॥६५॥ मैं दुःखिया क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किसका आश्रय लूँ ? किसे देखूँ और इस महावनमें मैं पापिनो कैसे रहूँ ? ॥६६॥ क्या यह स्वप्न है ? अथवा नरकमें मेरा जन्म हुआ है ? क्या मैं बही हूँ अथवा यह कौनसी दशा सहसा प्रकट हुई है ? ॥६७-६८॥ इस प्रकार चिरकाल तक चिलापकर वह अत्यन्त विह्वल हो गई । उसका वह चिलाप क्रूर पशुओंके

क्षुत्तृष्णापरिदग्धाङ्गा शोकसागरवर्षिणी । फलपर्णादिभिर्वृत्तिमकरोद्दीनमानसा ॥७०॥
 अरण्याम्बुजखण्डानां शोभासर्वस्वमर्दनः । हिमकालस्तथा निन्द्ये भुवं कर्मानुभावंतः ॥७१॥
 श्वसत्पशुगणस्तीक्ष्णः शोपितानेकापादपः । सोढस्तथैव रूचङ्गो ग्रीष्मसूर्यातपस्तया ॥७२॥
 स्फुरच्छण्डाचिरन्ज्योतिः शीतधरान्धकारितः । घनकालोऽपि निस्तीर्णः प्रवृत्तौषो यथा तथा ॥७३॥
 निरङ्गाय स्फुटितं क्षामं शीर्णकेशं मलावृतम् । वर्षोपहृतचित्राभं स्थितं तस्याः शरीरकम् ॥७४॥
 सूर्यालोकहतच्छाया क्षीणैव शशिनः कला । जाता तन्वी तनुस्तस्या लावण्यपरिवर्जिता ॥७५॥
 कपित्थवनमानत्रं फलेः पाकाभिधूसरैः । श्रित्वा तातमनुध्यायं करुणं सा स्म रोदिति ॥७६॥
 जाता चक्रधरेणाऽहं प्रासावस्थामिमाम् वने । भुवं कर्मानुभावेन सुपापेनाप्यजन्मना ॥७७॥
 हृत्पशुदुर्दिनीभूतवदना वाञ्छितचित्तिः । फलान्यादाय सा शान्ता पतितानि स्वपाकतः ॥७८॥
 उपवासैः कृशीभूता परं पछाष्टमादिभिः । अम्बुना वाकरोद् बाला पारणामेकवेलिकाम् ॥७९॥
 शयनीयगतैः पुर्णैर्वा स्वकेशच्युतैरपि । अग्रहीत् खेदमेवासौ स्थंडिलेशेते केवले ॥८०॥
 पित्तः सङ्गीतकं श्रुत्वा या प्रबोधमसेवत । सेयं शिवादिनिर्मुक्तैरधुना भीषणैः स्वधैः ॥८१॥
 एवं वर्षसहस्राणि क्षीणि द्रुःखमहासदा । अकरोत्सा तपो बाह्यं प्रासुकाहारपारणा ॥८२॥
 ततो निर्वेदमापन्ना त्यक्त्वाह्यारं चतुर्विधम् । निराशतां गता धीरा श्रिता सखेखनामसौ ॥८३॥

भी मनको पिघला देने वाला था । ६६॥ तदनन्तर भूख प्यासकी वाधासे जिसका शरीर फुलस गया था, जो निरन्तर शोक रूपी सागरमें निमग्न रहती थी और जिसका मन अत्यन्त दीन हो गया था ऐसी अनंगसेना फल तथा पत्रोंसे निर्वाह करने लगी ॥७०॥ वनके कमल समूहकी शोभाका सर्वस्व हरने वाला शीत काल आया सो उसने कर्मोका फल भोगते हुए व्यतीत किया ॥७१॥ जिसमे पशुओंके समूह साँसे भरते थे, अनेक वृक्ष सूख गये थे, तथा जिससे शरीर अत्यन्त रूक्ष पड़ गया था ऐसे ग्रीष्म ऋतुके सूर्यका आतप उसने उसी प्रकार सहन किया ॥७२॥ जिसमे तीक्ष्ण विजली कौंध रही थी, शीतल जलधारासे अन्धकार फैल रहा था, और नदियोंके प्रवाह बढ़ रहे थे ऐसा वर्षा काल भी उसने जिस किसी तरह पूर्ण किया ॥७३॥ कान्ति हीन, फटा, टुबला, बिखरे बालोसे युक्त एवं मलसे आवृत उसका शरीर वर्षासे भीगे चित्रके समान निष्प्रभ हो गया था ॥७४॥ जिस प्रकार चन्द्रमाकी क्षीण कला सूर्यके प्रकाशसे निष्प्रभ हो जाती है उसी प्रकार उसका दुर्बल शरीर लावण्यसे रहित हो गया ॥७५॥ परिपाकके कारण घूसर वर्षा से युक्त फलोंसे भुके हुए कैथाओंके वनमे जाकर वह बार बार पिताका स्मरण कर रोने लगती थी ॥७६॥ मै चक्रवर्तीसे उत्पन्न हो वनमे इस दशाको प्राप्त हो रही हूँ सो निश्चित ही जन्मान्तरमें किये हुए पापकर्मके उदयसे मेरी यह दशा हुई है ॥७७॥ इस प्रकार अचिरल अश्रवर्षासे जिसका मुख दुर्दिनके समान हो गया था ऐसी वह अनंगसेना नीची दृष्टिसे पृथिवीकी ओर देख पक जानेके कारण अपने आप गिरे हुए फल लेकर शान्त हो जाती थी ॥७८॥ वेला तेला आदि उपवासोंसे जिसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था ऐसी वह बाला जब कभी फेवल पानीसे ही पागण करती थी सो भी एक ही बार ॥७९॥ जो अनंगसेना पहले अपने केशोसे च्युत हो शय्या पर पड़े फूलोसे भी खेदको प्राप्त होती थी आज वह मात्र पृथिवी पर शयन करती थी ॥८०॥ जो पहले पिताका संगीत सुन जागती थी वह आज शृगाल आदिके द्वारा छोड़े हुए भयंकर शब्द सुनकर जागती थी ॥८१॥ इस प्रकार महादुःख सहन करती तथा बीच बीचमें प्रासुक आहारकी पारणा करती हुई उस अनंगसेनाने तीन हजार वर्ष तक बाह्य तप किया ॥८२॥ तदनन्तर जब वह निराशताको प्राप्त हो गई तब विरक्त हो उस धीर धीराने चारों प्रकार

१. एष श्लोको म० पुस्तके नास्ति । २. श्वेतकेवले । ३. त्यक्त्वाहार ।

बाह्यं हस्तशताद्भूमि न गन्तव्य मयेति च । जग्राह नियमं पूर्वं श्रुतं कैनेन्द्रशासने ॥८३॥
 नियमावधितोऽतीते पट्टरात्रेऽथ नभश्चरः । लब्धिदास इति ख्यातो वंदित्वा मेरुमाज्रवत् ॥८५॥
 तामपश्यच्चतो नेतुमारोमे तां समुद्यतः । पितुः स्थान निषिद्धश्च तथा सल्लेखनोक्तिः ॥८६॥
 लब्धिदासो लघु प्राप्तः सकार्यां चक्रवर्त्तिनः । सम तेन समायातस्तुद्देशमसौ गतः ॥८७॥
 अथ तामतिरौद्भिण शंयुनाऽतिस्थवीयसा । भक्ष्यमाणामसौ दृष्ट्वा समाधानप्रदोऽभवत् ॥८८॥
 प्राप्तसल्लेखनां क्षीणां संवृत्तामपराभिव । तादृशीं तां सुतां दृष्ट्वा चर्का निर्वेदमागतः ॥८९॥
 समं पुत्रसहस्राणां द्वाविंशत्या गतस्पृहः । महावैराग्यसम्पन्न श्रमणत्वमुपागतः ॥९०॥
 कन्या स्वथ क्षुधात्तेन प्राप्तेनातिस्थवीयसा । भक्षिताऽजगरेणागात्सती सानकुमारताम् ॥९१॥
 जानत्याऽपि तथा मृत्युं न समुत्सारितः शयुः । माभूस्वल्पापि पीडाऽस्य काचिदित्यनुकम्पया ॥९२॥
 उत्सार्थं खेचरान् संख्ये समस्तांश्च पुनर्वसुः । तदानङ्गशरामिथापश्यन्विहरावनौ ॥९३॥
 द्रुमसेनसुने. पार्श्वे गृहीतं श्रमणव्रतम् । अत्यन्तदुःखितस्तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥९४॥
 कृत्वा निदानमेतस्याः क्लृतेऽयं प्रांसपञ्चतः । सुरो जातस्थ्युतश्चाय जातो लक्ष्मणसुन्दरः ॥९५॥
 प्रभ्रष्टा सुरलोकाच्च जाताऽनङ्गशराचरी । सुतेयं द्रोणमेघस्य विशल्येति प्रकीर्त्तिता ॥९६॥
 तैत्स्मिन्नगरे देशे भरते वा महागुणा । पूर्वकर्मानुभावेन सञ्जाताऽन्यन्तमुत्तमा ॥९७॥
 परमं ज्ञानवारीढं तेन तस्या महागुणम् । सोपसर्गं कृतं पूर्वं तथा येन महातपः ॥९८॥

का आहार त्याग कर सल्लेखना धारण कर ली ॥८३॥ उसने जिन-शासनमे पहले जैसा सुन रक्खा था वैसा नियम ग्रहण किया कि मैं सौ हाथसे वाहरकी भूमिमे नहीं जाऊँगी ॥८४॥

अथानन्तर उसे सल्लेखनाका नियम लिये हुए जब छह रात्रियों व्यतीत हो चुकी तब लब्धिदास नामक एक पुरुष मेरु पर्वतकी वन्दना कर लौट रहा था सो उसने उस कन्याकी देखा । तदनन्तर जब लब्धिदास उसे पिताके घर ले जानेके लिए उद्यत हुआ तब उसने यह कह कर मना कर दिया कि मैं सल्लेखना धारण कर चुकी हूँ ॥८५--८६॥ तत्पश्चात् लब्धिदास शीघ्र ही चक्रवर्तीके पास गया और उसके साथ पुन. उस स्थान पर आया ॥८७॥ जब वह आया तब अत्यन्त भयंकर एक बड़ा मोटा अजगर उसे खा रहा था यह देख उसे समाधान करनेमे तत्पर हुआ ॥८८॥ तदनन्तर जिसने सल्लेखना धारण की थी, और दुर्बलताके कारण जो ऐसी जान पड़ती थी मानो दूसरी ही हो ऐसी उस पुत्रीको देख चक्रवर्ती वैराग्यको प्राप्त हो गया ॥८९॥ जिससे उसने सब प्रकारकी इच्छा छोड़ महावैराग्यसे युक्त हो वाईस हजार पुत्रोंके साथ दीक्षा धारण कर ली ॥९०॥ भूखसे पीड़ित होनेके कारण सामने आये हुए उस अत्यन्त स्थूल अजगरके द्वारा खाई हुई वह कन्या मर कर ईशान स्वर्गमे गई ॥९१॥ यद्यपि वह जानती थी कि इस अजगरसे मेरी मृत्यु होगी तथापि उसने उसे इस दया भावसे कि इसे थोड़ी भी पीड़ा नहीं हो दूर नहीं हटाया था ॥९२॥

तदनन्तर जब पुनर्वसु युद्धमे समस्त विद्याधरोको परास्त कर आया तब वह अपनी प्रेमपात्र अनंगशराको नहीं देख विरहकी भूमिमे पड़ बहुत दुखी हुआ । अन्तमे उसने द्रुमसेन नामक सुनिराजके समीप दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली और अत्यन्त कठिन तप तप कर इसीका निदान करता हुआ मरा जिससे स्वर्गमे देव हुआ और वहाँसे च्युत हो यह अत्यन्त सुन्दर लक्ष्मण हुआ है ॥९३--९४॥ पहलेकी अनङ्गशरा देवलोकेसे च्युत हो राजा द्रोणमेघकी यह विशाल्या नामकी पुत्री हुई है ॥९६॥ महागुणोंको धारण करने वाली विशाल्या इस नगर देश अथवा भरत क्षेत्रमे पूर्वकर्मीके प्रभावसे अत्यन्त उत्तम हुई है ॥९७॥ यतश्च उसने पूर्वं भवमे उत्सर्ग सहित महातप

अनेन वारिणाऽमुस्मिन्देश्यं विपमोऽनिलः । महारोगकरो यातः क्षयं शासितविष्टपः ॥६६॥
 कुतोऽयमीदृशो वायुरिति पृष्टेन भापितम् । मुनिना भरतायैवं तदा कौतुकयोगिने ॥१००॥
 गजाङ्घ्रानगराद्देव्यं विन्ध्यो नामा महाधनः । अयोध्यां सार्धंवाद्देशः खरोद्गमहिषादिभिः ॥१०१॥
 मासानेकादशायुष्मां त्वन्नैर्गर्भामसौ स्थितः । तस्यैकमहिपस्तीव्ररोगभारेण पीडितः ॥१०२॥
 पुरमध्ये महादुःखं कृत्वा कालं त्रयान्वितः । अकामनिर्जरायोगाद्देवभूयमशिश्रियत् ॥१०३॥
 जातो वायुकुमारोऽसावश्वकेतुर्महाबलः । ब्याव्यावर्त्तं इति ख्यातो वायुदेवमहेश्वरः ॥१०४॥
 श्रेयस्करपुरस्वामी रसातलगतो महान् । असुरो भासुरः क्रूरो मनोयासक्रियासहः ॥१०५॥
 अज्ञासीत्सावधिज्ञानः प्राप्तपूर्वपरामभवम् । सोऽहं महिपकोऽभूवं प्रासोऽयोध्यां तदा त्रणी ॥१०६॥
 क्षुत्पृष्ठापरिदिग्धाज्ञो महारोगनिपीडितः । रष्याकर्दमनिर्भद्रस्ताडितो जनसंपदा ॥१०७॥
 कृत्वा मे मस्तके पादं तदाऽयासीञ्जनोऽखिलः । पतितस्य विचेष्टस्य निर्दोषो विद्ममलाङ्घितम् ॥१०८॥
 अचिरान्निग्रहं धोरं तस्य चेन्न करोम्यहम् । अनर्थकं सुरत्वं मे तदेवं जायते सहत् ॥१०९॥
 इति ध्यात्वा पुरेऽमुष्मिन् सदशे क्रोधपूरितः । प्रावर्त्तयदसौ वायुं नानारोगसमावहम् ॥११०॥
 सोऽयं नीतो विशल्याया वारिणा प्रलथं क्षणात् । भवति हि बलीयांसो बलिनामपि विष्टे ॥१११॥
 यथा सत्त्वहितेनेदं भरताय निवेदितम् । भरतेनापि मे तद्गन्मया ते पद्म वेदितम् ॥११२॥

किया था इसलिए उसका यह स्नानजल महागुणोंसे सहित है ॥६६॥ इस देशमें जिसने सब लोगों पर शासन जमा रक्खा था तथा जो महारोग उत्पन्न करने वाली थी ऐसी विषय वायु इस जलसे क्षयको प्राप्त हो गई है ॥६६॥ 'यह वायु ऐसी क्यों हो गई?' इस प्रकार पूछने पर उस समय मुनिराजने कौतूहलको धारण करने वाले भरतके लिए इस प्रकार कहा कि ॥१००॥

विन्ध्या नामका एक महा धनवान् व्यापारी गधे, ऊँट तथा भैंसे आदि जानवर लदाकर गजपुर नगरसे आया और तुम्हारी उस अयोध्यानगरीमे ग्यारह माह तक रहा । अनेक वर्षोंसे सहित उसका एक भैंसा तीव्र रोगके भारसे पीडित हो नगरके बीच मरा और अकाम निर्जराके योगसे देव हुआ ॥१०१-१०३॥ वह अश्वचिह्नसे चिह्नित महाबलवान् वायुकुमार जातिका देव हुआ । वायव्यावर्त्त उसका नाम था, वह वायुकुमार देवोंका स्वामी था, श्रेयस्करपुर नगरका स्वामी, रसातलमे निवास करने वाला देदीग्यमान, क्रूर और इच्छानुसार क्रियाओंको करने वाला वह बहुत बड़ा भवनवासी देव था ॥१०४-१०५॥ अवधिज्ञानसे सहित होनेके कारण उसने पूर्वभ्रममें प्राप्त हुए पराभवको जान लिया । उसे विदित हो गया कि मैं पहले भैंसा था और अयोध्यामें आकर रहा था । उस समय मेरे शरीर पर अनेक घाव थे । भूख प्यास आदिसे मेरा शरीर लिप्त था, अनेक रोगोंसे पीडित हुआ मैं मार्गकी कीचड़में पड़ा था, लोग मुझे पीटते थे । उस समय मैं गोबर आदि मलसे व्याप्त हुआ निश्चेष्ट पड़ा था और सब लोग मेरे मस्तक पर पैर रखकर जाते थे ॥१०६-१०८॥ अब यदि मैं शीघ्र ही उसका भयंकर निग्रह नहीं करता हूँ—बढ़ला नहीं चुकाता हूँ तो मेरा यह इस प्रकारका वड्डप्पन युक्त देव पर्याय पाना व्यर्थ है ॥१०९॥ इस प्रकार विचारकर उसने क्रोधसे पूरित हो उस देशमें नाना रोगोंको उत्पन्न करने वाली वायु चलाई ॥११०॥ यह वही देव विशल्याके स्नान जलके द्वारा क्षण भरमें विज्ञाशको प्राप्त कराया गया है सो ठीक ही है क्योंकि लोकमें बलवानोंके लिए भी उनसे अधिक बलवान् होते हैं ॥१११॥ चन्द्रप्रतिम विद्याधर, रामसे कहता है कि यह कथा सत्त्वहित नामा मुनिने राजा भरतसे जिस प्रकार कही और भरतने जिस प्रकार मुझसे कही उसी प्रकार हे राम । मैंने

अभिपेकजलं तस्या तदा नेतुमतिव्वरम् । यत्नं कुरुत नास्त्यन्या गतिलङ्घनजोविते ॥११३॥

उपेन्द्रवज्रा

इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे जनैरशेषैरपि निश्चितानाम् ।
महात्मनां पुण्यफलोदयेन भवत्युपायो विदितोऽसुदायी ॥११४॥

उपजातिः

अहो महान्तः परमा जनास्ते येषां महापत्तिसमागतानाम् ।
जनो वदत्युद्भवनाभ्युपायं रवे समस्तस्त्वनिवेदनेन ॥११५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विशल्यापूर्वभवामिधानं नाम चतुःषष्टितमं पर्व ॥६४॥



आपसे कही है ॥११२॥ इसलिए शीघ्र ही विशल्याका स्नान जल लानेका यत्न करो । लक्ष्मणके जीवित होनेका और दूसरा उपाय नहीं है ॥११३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि जो इस तरह मृत्युके मार्गमें स्थित हैं तथा समस्त लोग जिनके मरणका निश्चय कर चुके हैं ऐसे महापुरुषोंके पुण्यकर्मके उदयसे जीवन प्रदान करने वाला कोई न कोई उपाय विदित हो ही जाता है ॥११४॥ अहो ! वे पुरुष अत्यन्त महान् तथा उत्कृष्ट हैं कि महाविपत्तिमें पड़े हुए जिनके लिए सूर्यके समान उज्ज्वल पुरुष यथार्थ तत्त्वका निवेदन कर विपत्तिसे निकलनेका उपाय बतलाते हैं—प्रकट करते हैं ॥११५॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें विशल्याके पूर्वभवका वर्णन करने वाला चौसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६४॥

पञ्चषष्टितमं पर्व

प्रतीन्द्रोर्वचनं श्रुत्वा राघवोऽत्यन्तसंसदः । समं विद्याधराधीशैर्विस्मितस्तमपूजयत् ॥१॥
 अजनाजविदेहाजसुताराजास्ततः कृताः । अयोध्यां गमिनः कृत्वा सन्मंत्र निश्चितं द्रुतम् ॥२॥
 ततश्चित्तमात्रेण ते यथुर्यत्र पार्थिवः । भरतः प्रवरः कीर्त्या प्रतापी गुणसङ्गतः ॥३॥
 सुतस्थोऽथाप्यमानस्य सहसास्यासुखासिका । मा भूदिति सुख गीतं वैदेहादिभिराश्रितम् ॥४॥
 ततः सङ्गीतमाकर्ण्य दिव्यं श्रुतिमनोहरम् । शनैर्भावसमारूढसुतस्यौ कोशलेश्वरः ॥५॥
 ज्ञापिताः सेवितद्गारास्ततस्तस्मै समागताः । वैदेह्या हरणं प्रोचुर्निपात लक्ष्मणस्य च ॥६॥
 अथ शोकरसादुप्राप्तं क्षणमात्रमुवः परम् । राजा क्रोधरसं भेजे परम भरतश्रुतिः ॥७॥
 महाभेरोर्ध्वनिं चाशु रणप्रीतिमकारयत् । सकला येन साकेता सप्राज्ञाऽऽकुलतां परम् ॥८॥
 लोको जगाद् किं न्वेतद्वर्त्तते राजसद्यनि । महान् कलकलः शब्दः श्रूयतेऽत्यन्तभीषणः ॥९॥
 किन्तु राज्ञी निशीथेऽस्मिन् काले दुष्टमतिः परः । अतिवार्यसुतः प्राप्तो भवेदापातपदितः ॥१०॥
 ऋद्धिदङ्गतां कान्तां त्यक्त्वा सन्नदधुमुद्यतः । सन्नाहनिरेपवोऽन्यः सायके करमर्पयत् ॥११॥
 मुग्धबालकमादाय काचिदुद्भे मुगेक्षणा । हस्तं स्तनतटे न्यस्य चक्रे दिगवलोकनम् ॥१२॥
 काचिद्वीर्याकृतं त्यक्त्वा निद्वारहितलोचना । सुसमाश्रयते कान्त शयनार्थैकपार्श्वगम् ॥१३॥

अथानन्तर प्रतिचन्द्र विद्याधरके वचन सुन जिन्हें अत्यन्त हर्ष हो रहा था ऐसे श्रीरामने आश्चर्यचकित हो विद्याधर राजाओंके साथ-साथ उसका बहुत आदर किया ॥१॥ और शीघ्र ही निश्चित मन्त्रणाकर हनुमान् भामण्डल तथा अङ्गदकी अयोध्याकी ओर रवाना किया ॥२॥ तदनन्तर इच्छा करते ही वे सब वहाँ पहुँच गये जहाँ उत्तम कीर्तिके धारक प्रतापी एवं गुणवान् राजा भरत विराजमान थे ॥३॥ उस समय भरत सोये हुए थे इसलिये सहसा उठानेसे उन्हें दुःख न हो ऐसा विचार कर भामण्डल आदिने सुखदायी संगीत प्रारम्भ किया ॥४॥ तदनन्तर कर्ण और मनकी हरण करने वाले उस भावपूर्ण दिव्य संगीतको सुनकर भरत महाराज धीरे-धीरे जाग उठे ॥५॥ हनुमान आदि द्वारके पास तो खड़े ही थे इसलिये जागते ही खबर देकर उनके पास जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीताका हरा जाना तथा शक्ति लगनेसे लक्ष्मणका गिर जाना यह समाचार कहा ॥६॥

अथानन्तर क्षणमात्रमे उत्पन्न हुए, अतिशय उग्र शोकरसे राजा भरत परम क्रोधको प्राप्त हुए ॥७॥ उन्होंने उसी समय रणमे प्रीति उत्पन्न करानेवाली रणभेरीका महाशब्द कराया जिसे सुनकर समस्त अयोध्या परम आकुलताको प्राप्त हो गई ॥८॥ लोग कहने लगे कि राजभवनमें अत्यन्त भय उत्पन्न करने वाला महान् कल-कल शब्द सुनाई पड़ रहा है सो यह क्या कारण है ? ॥९॥ क्या इस अर्धरात्रिके समय दुष्ट बुद्धिका धारक तथा आक्रमण करनेमें निपुण अतिवीर्यका पुत्र आ पहुँचा है ? ॥१०॥ कोई एक योद्धा अंकेमें स्थित कान्ताको छोड़ कवच धारण करनेके लिए उद्यत हुआ और कोई दूसरा योद्धा कवचसे निरपेक्ष हो तलवार पर हाथ रखने लगा ॥११॥ कोई मुगनयनी स्त्री, सुन्दर बालकको गोदमे ले तथा स्तन तट पर हाथ रखकर दिशाओंका अवलोकन करने लगी अर्थात् भयसे इधर-उधर देखने लगी ॥१२॥ कोई एक स्त्री ईर्ष्या वश पतिसे हटकर पड़ी हुई थी और उसके नेत्रोमे नींद नहीं आ रही थी । रणभेरीका शब्द सुन वह इतनी भयभीत हुई कि ईर्ष्याभाव छोड़ शय्याके एक ओर पड़े हुए निद्रातिमग्न पतिसे जा

पार्थिवप्रतिभः कश्चिद्धनी कान्तामुदाहरत् । कान्ते बुद्धयस्व किं शेषे किमपीदमशोभनम् ॥१४॥
 राजालये समुद्योतो लचयते जात्वलक्षितः । सन्नद्धा रथिनो मत्ता करिणोऽर्मा च सहिताः ॥१५॥
 नीतिज्ञैः सततं भाच्यमप्रमत्तैः सुपण्डितैः । उच्छिष्टोत्तिष्ठ गोपाय स्वापतेयं प्रयत्नतः ॥१६॥
 शातक्रीम्नानिमान्कुम्भान् कलघौतमयास्तथा । मणिरत्नकरडांश्च कुरु भूमिगुहान्तरे ॥१७॥
 पट्टवस्त्रादिसम्पूर्णाग्निसान् गर्भालयान् द्रुतम् । तालयान्यदपि द्रव्यं दुःस्थितं सुस्थितं कुरु ॥१८॥
 शत्रुघ्नोपि सुसंभ्रान्तो निद्रारुणितलोचन । आरुह्य द्विरदं शीघ्रं घण्टाटङ्कारनादिनम् ॥१९॥
 सचिवैः परमैर्युक्तं शस्त्राधिष्ठितपाणिभिः । विमुञ्चन् वक्रुलामोदं चलदम्बरपल्लवः ॥२०॥
 भरतस्यालय प्रापस्तथाऽन्ये नरपुङ्गवाः । शस्त्रहस्ताः सुसंनद्धा नरेन्द्रहिततत्पराः ॥२१॥
 यच्छत्रज्ञानं नरेशानां युद्धाय स्वयमुद्यतः । विनीताधिपतिः प्रोक्तो नत्वा भामंडलादिभिः ॥२२॥
 दूरे लङ्कापुरी देव गन्तुं नार्हति तां विशुः । क्षुब्धोर्मिजलजो घोरो वर्धते सागरोऽन्तरे ॥२३॥
 मया किं तर्हि कर्तव्यमिति राशिं कृतस्वने । उच्चारित विशल्यायाश्चरितं तैर्मनोहरम् ॥२४॥
 अवप्रमथनं नाथ पुण्यं जीवितपालनम् । द्रोणमेघसुतास्तानवारिदानं द्रुतं भज ॥२५॥
 प्रसादं कुरु यास्यामो यावन्नोदेति भास्करः । हतोऽरिसयनः शक्त्या दुःखं तिष्ठति लक्ष्मणः ॥२६॥
 भरतेन ततोऽवाचि किं वा ग्रहणमम्भसा । स्वयं सा सुभगा तत्र यातुं द्रोणधनात्मजा ॥२७॥
 सुनीशेन समादिष्टा तस्यैवासौ सुभामिनी । स्मरन्स्वमुत्तम सा हि कस्य वाऽन्यस्य युज्यते ॥२८॥

मिली—उससे सटकर पढ़ रही ॥१३॥ राजाकी तुलना प्राप्त करने वाला कोई धनी मनुष्य अपनी स्त्रीसे कहने लगा कि हे प्रिये ! जागो, क्यों सो रही हो ? यह कोई अशोभनीय बात है ॥१४॥ राजभवनमें जो कभी दिखाई नहीं दिया ऐसा प्रकाश दिखाई दे रहा है । रथोंके सवार तैयार खड़े हैं और ये मद्दोन्मत्त हाथी भी एकत्रित हैं ॥१५॥ नीतिके जानकार पण्डित जनोंको सदा सावधान रहना चाहिये । उठो उठो धनको प्रयत्न पूर्वक छिपा दो ॥१६॥ ये सुवर्ण और चोर्दीके घट तथा मणि और रत्नोंके पिटारे तलगृहके भीतर कर दो ॥१७॥ रेशमी वस्त्र आदिसे भरे हुए इन गर्भगृहोंको शीघ्र ही बन्द कर दो तथा और जो दूसरा सामान अस्त-व्यस्त पड़ा है उसे ठीक तरहसे रखदो ॥१८॥ जिसके नेत्र निद्रासे लाल-लाल हो रहे थे ऐसा घबड़ाया हुआ शत्रुघ्न भी घंटाका शब्द करने वाले हाथी पर शीघ्र ही सवार हो भरतके महलमें जा पहुँचा । शत्रुघ्न, हाथीमें शस्त्र धारण करनेवाले उत्तमोत्तम मन्त्रियोंसे सहित था, वक्रुलकी सुगन्धिको छोड़ रहा था तथा उसके वस्त्र चञ्चल-चञ्चल हो रहा था । शत्रुघ्नके सिवाय दूसरे अन्य राजा भी जो हाथीमें शस्त्र धारण किये हुए थे, कवचोंसे युक्त थे तथा राजाका हित करनेमें तत्पर थे भरतके महलमें जा पहुँचे ॥१९-२१॥ अयोध्याके स्वामी भरत, राजाओंको आज्ञा देते हुए स्वयं युद्धके लिए उद्यत हो गये तब भामण्डल आदिने नमस्कार कर कहा कि ॥२२॥ हे देव ! लंकापुरी दूर है, वहाँ जानेके लिए आप समर्थ नहीं हैं, जिसकी लहरे और शङ्ख क्षोभको प्राप्त हो रहे हैं ऐसा भयंकर समुद्र वीचमें पड़ा है ॥२३॥ तो मुझे क्या करना चाहिए, इस प्रकार राजा भरतके कहने पर उन सबने विशल्याका मनोहर चरित कहा ॥२४॥ उन्होंने कहा कि हे नाथ ! द्रोण-मेघकी पुत्रीका स्नानजल पापको नष्ट करने वाला, पवित्र और जीवनकी रक्षा करने वाला है सो उसे शीघ्र ही दिलाओ ॥२५॥ प्रसाद करो, जब तक सूर्य उदित नहीं होता है उसके पहले ही हम चले जावेंगे । शत्रुघ्नका संहार करने वाले लक्ष्मण शक्तिसे घायल हो दुःखमें पड़े हैं ॥२६॥ तब भरतने कहा कि जलका क्या ले जाना, वह द्रोणमेघकी सुन्दरी पुत्री स्वयं ही वहाँ जावे अर्थात् उसे ही ले जाओ ॥२७॥ मुनिराजने कहा है कि यह उन्हींकी वल्लभा होगी । यथार्थमें वह उत्तम स्त्री है सो अन्य किसके योग्य हो सकती है ? ॥२८॥

ततो द्रोणघनाह्वस सकाशं प्रेषितो निजः । स चाऽपि कुपितो योद्धुं मानस्तम्भसमुद्यतः ॥२६॥
 संक्षुब्ध्यास्तनयास्तस्य सन्नद्धाः सचिवैः सह । परमाकुलतां प्राप्तां महादुर्लभितक्रियाः ॥३०॥
 भरतस्य ततो मात्रा स्वयं गत्वा महादरम् । प्रतिबोधसुपानीतः स^१ तेन तनयामदात् ॥३१॥
 सा भामण्डलचन्द्रेण विमानशिखरं निजम् । आरोपिता महारथं कान्तिपूरितदिङ्मुखा ॥३२॥
 सहस्रमाधिकं चान्यत्कन्यानां सुमनोहरम् । राजनोत्रप्रसूतानां कृतं गामिं समं तथा ॥३३॥
 ततो निमेषमात्रेण प्राप्ता संग्राममेदिनीम् । अर्घ्यादिभिः कृतार्घ्य^२हां सर्वैः खेचरपुङ्गवैः ॥३४॥
 अवतीर्णा विमानात्रात्ततः कन्याभिरावृता । चारुचामरसङ्घातैः वीज्यमाना शनैः सुखम् ॥३५॥
 परयन्ती तुरगान् द्वारे भक्तांश्च चरवारणात् । महत्तरैः कृतानुज्ञा पुण्डरीकनिभानना^३ ॥३६॥
 यथा यथा महाभाग्या विशल्या सोपसर्पति । तथा तथाऽभजत्सौम्यं सुमित्रातनयोऽद्भुतम् ॥३७॥
 प्रभापरिकरां शक्तिस्ततो लक्ष्मणवत्सः । चकित्वा दुष्टयोपेव कासुकात् परिनिःसृता ॥३८॥
 स्फुरत्स्फुल्लिङ्गवाला च लङ्घयन्ती द्रुतं नभः । उत्पत्य वायुपुत्रेण गृहीता वेगशालिना ॥३९॥
 दिव्यस्त्रीरूपसम्पन्ना ततः सङ्गतपाणिका । सा जगाद हनूमन्तं सम्भ्रान्ता बद्धत्रेपथुः ॥४०॥
 प्रसीद् नाथ सुब्रह्मच न मे दोषोऽस्ति कश्चन । कुस्मितास्मद्विधानां हि प्रेम्णयां स्थितिरिदृशी ॥४१॥
 अमोघविजया नाम प्रज्ञप्तेरहकं स्वसा । विद्या लोकत्रये खयाता रावणेन प्रसाधिता ॥४२॥
 कैलासपर्वते पूर्वं वाली प्रतिमया स्थिते । सन्निकी जिनविभ्रानां गायता भाविताध्मना ॥४३॥

तदनन्तर भरतने द्रोणमेघके पास अपना आदमी भेजा सो मान दमन करनेमें उद्यत वह द्रोणमेघ भी युद्ध करनेके लिए कुपित हुआ ॥२६॥ प्रचण्ड बलको धारण करने वाले उसके जो पुत्र थे वे भी परम आकुलताको प्राप्त हो क्षुभित हो उठे तथा युद्ध करनेके लिए मन्त्रियोंके साथ साथ तैयार हो गये ॥३०॥ तब भरतकी माता केकयीने स्वयं जा कर उसे बड़े आदरसे समझाया जिससे उसने अपनी पुत्री देदी ॥३१॥ कान्तिसे दिशाओंको पूर्ण करने वाली उस कन्याको भामण्डलने अपने शीघ्रगामी विमानके अग्रभाग पर बैठाया ॥३२॥ इसके सिवाय राजकुलमें उत्पन्न हुई एक हजारसे भी अधिक दूसरी मनोहर कन्याएँ विशाल्याके साथ भेजीं ॥३३॥ तदनन्तर निमेष मात्रमें वह युद्धभूमिमें पहुँच गईं सो समस्त विद्याधरोंने अर्घ्य आदिसे उसका योग्य सन्मान किया ॥३४॥ तत्पश्चात् जो कन्याओंसे धिरी थी और जिसपर सुन्दर चमरोंके समूह धीरे धीरे सुख पूर्वक भेले जा रहे थे ऐसी विशाल्या विमानके अग्रभागसे नीचे उतरी ॥३५॥ द्वार पर खड़े घोड़ों और मदोन्मत्त हाथियोंको देखती, हुई वह आगे बढ़ी । बड़े बड़े लोग उसकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर थे तथा कमलके समान उसका मुख था ॥३६॥ महाभाग्यशालिनी विशाल्या जैसे जैसे पास आती जाती थी वैसे वैसे लक्ष्मण आश्चर्यकारी सुखदशा को प्राप्त होते जाते थे ॥३७॥

तदनन्तर जिस प्रकार दुष्ट स्त्री चकित हो पतिके घरसे निकल जाती है उसी प्रकार कान्तिके मण्डलको धारण करने वाली शक्ति लक्ष्मणके वक्षस्थलसे बाहर निकल गईं ॥३८॥ जिससे तिलगे और ज्वालाएँ निकल रही थीं ऐसी वह शक्ति, शीघ्र ही आकाशको लाँघती हुई जाने लगी सो वेगशाली हनूमाचने उड़ल कर उसे पकड़ लिया ॥३९॥ तब वह दिव्यस्त्रीके रूपमें परिणत हो हाथ जोड़ कर हनूमाचसे बोली । उस समय वह धवड़ाई हुई थी तथा उसके शरीर से कर्कषपी छूट रही थी ॥४०॥ उसने कहा कि हे नाथ ! प्रसन्न होओ मुझे छोड़ो इसमें मेरा दोष नहीं है हमारे जैसे सेवकोकी ऐसी ही निन्द्य दशा है ॥४१॥ मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध अमोघ-विजया नामकी विद्या हूँ, प्रज्ञप्तिकी वहिन हूँ और रावणेन मुझे सिद्ध किया है ॥४२॥ कैलास

जिने मुजे समुक्लृप्य शिरातन्त्री मनोहराम् । उपवीणयता दिव्यं जिनेन्द्रचरितं शुभम् ॥४३॥
 लक्ष्मणं दशवक्त्रेण धरणाश्रागराजतः । कम्पितासनतः प्राप्तात्पमोद विभ्रतः^१ परम् ॥४५॥
 भनिच्छुभ्रप्यसौ तेन रक्षसां परमेवरः । मां परिग्राहितः कृच्छ्रान् स हि ग्रहणदुर्विधः ॥४६॥
 साह न कस्यपिच्छुभ्रक्या भुवनेऽत्र व्यपोहितुम् । विशाल्यासुन्दरीमेकां मुक्त्वा दुःसहतेजसम्^२ ॥४७॥
 मन्ये पराजये देवान् बलिनो नितरामपि । अनया तु विकीर्णाह महत्या सूर्योचरा ॥४८॥
 भयुण भास्करं कुर्यादशीत शशलक्षमणम् । अनया हि तपोऽयुधं चरितं पूर्वजन्मनि ॥४९॥
 शिरीषकुसुमासार शरीरमनया पुरा । निर्युक्तं तपसि प्रायो मुनीनामपि दुःसह ॥५०॥
 पुतावतैव संसारः सुखारः प्रतिभाति मे । ईदृशानि प्रसाध्यन्ते यत्तपांसीह जन्तुभिः ॥५१॥
 वर्षाशीतातपैर्षो रैर्महावातलुदुःसहैः । पुषा न कम्पिता तन्वी मन्दरस्येव चूलिका ॥५२॥
 अहो रूपमदो सत्त्वमहो धर्मदंडं मनः । अशक्यं ध्यातुमप्यस्याः सुतपोऽभ्याह्वानजनैः ॥५३॥
 सर्वथा जिनचन्द्राणां मतेनोद्बृहते तपः । लोकत्रये जयत्येक यस्येदं फलमीदृशम् ॥५४॥
 भधवा नैव विज्ञेयमाश्रयमिदमीदृशम् । प्राप्यते येन निर्वाणं किमन्यत्तस्य दुष्करम् ॥५५॥
 परार्थीनक्रिया साहं तपसा निजिताऽनया । ब्रजामि स्वं पद साधो^३ चम्यतां दुर्विचेदितम् ॥५६॥
 एवं कृतसमालापां तत्त्वज्ञः शक्तिदेवताम् । विस्ज्यावस्थितो वातिः त्वसैन्येऽद्भुतचेदितः ॥५७॥

पर्वत पर पहाड़े जब बालिमुनि प्रतिमा योगसे विराजमान थे तब रावणने जिन-प्रतिमाओंके समीप भवानिमग्न हो मधुरगान किया था और अपनी भुजाकी नाड़ी रूपी मनोहर तन्त्री निकाल कर जिनेन्द्र भगवान्का दिव्य एवं शुभचरित वीणाद्वारा गाया था । रावणकी भक्तिके प्रभावसे धरणेन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ था जिससे परम प्रमोदको धारण करते हुए उसने वहाँ आकर रावणके लिए मुझे दिया था । यद्यपि राक्षसोका इन्द्र रावण मुझे नहीं चाहता था तथापि धरणेन्द्रने प्रेरणा कर बड़ी कठिनाईसे मुझे स्वीकृत कराया था । यथार्थमे रावण किसीसे कोई यस्तुग्रहण करनेमें सदा संकुचित रहता था ॥४३-४६॥ वह मैं, इस संसारमे दुःसह तेजकी धारक एक विशाल्याको छोड़ और किसीकी पकड़में नहीं आ सकती ॥४७॥ मैं अतिशय बलवान् देवोंको भी पराजित कर देती हूँ किन्तु इस विशाल्याने दूर रहने पर भी मुझे पृथक् कर दिया ॥४८॥ यह सूर्यको ठण्डा और चन्द्रमाको गरम कर सकती है क्योंकि इसने पूर्वभवमे ऐसा ही अत्यन्त कठिन तपश्चरण किया है ॥४९॥ इसने पूर्वभवमे अपना शिरीषके फूलके समान सुकुमार शरीर ऐसे तपमे लगाया था कि जो प्रायः मुनियोंके लिए भी कठिन था ॥५०॥ मुझे इतने ही कार्यसे संसार सारभूत ज्ञान पड़ता है कि इसमे जीवों द्वारा ऐसे ऐसे कठिन तप सिद्ध किये जाते हैं ॥५१॥ तीव्र चायुसे जिनका सहन करना कठिन था ऐसे भयंकर वर्षा शीत और धामसे यह कृशाङ्गी सुमेरुकी चूलिकाके समान रश्मिमात्र भी कम्पित नहीं हुई ॥५२॥ अहो इसका रूप धन्य है, अहो इसका धर्म धन्य है और अहो धर्ममे दृढ़ रहनेवाला इसका मन धन्य है । इसने जो तप किया है अन्य स्त्रियों उसका ध्यान भी नहीं कर सकती ॥५३॥ सर्वथा जिनेन्द्र भगवान्के मतमे ही ऐसा विशाल तप धारण किया जाता है कि जिसका इस प्रकारका फल तीनों लोकोंमे एक छुदा ही जयवंत रहता है ॥५४॥ अथवा इसे कोई आश्चर्य नहीं मानना चाहिये क्योंकि जिससे मोक्ष प्राप्त हो सकता है उसके लिए और दूसरा कौन कार्य कठिन है ? ॥५५॥ मेरा काम तो परार्थीन है देखिए न, इसने मुझे तपसे जीत लिया । हे सत्पुरुष ! अब मैं अपने स्थान पर जाती हूँ—मेरी दुःखेष्टा क्षमा की जाय ॥५६॥ इस प्रकार वार्त्तालाप करने वाली उस शक्तिरूपी देवताको छोड़ कर तत्त्वका ज्ञानकार तथा अद्भुत चेष्टाका धारक हनुमान् अपनी सेनामे स्थित हो गया ॥५७॥

१. कम्पितासनकं म० । २. विभ्रता म० । ३. तेजसाम् म० । ४. हनुमान् । ५. सान्ने म० ।

सुता तु द्रोणमेघस्य हियालंकृतदेहिका । पादपद्मद्वयं पात्रं प्रणम्य विहिताञ्जलिः ॥५८॥
 विद्याधरमहामन्त्रिवचोभिः कृतशसना । वन्दिता खेचरैरन्यैराशीभिरभिनन्दिता ॥५९॥
 शक्रस्यैव शचीं पार्श्वे लक्ष्मणस्य सुलक्ष्मणा । अवस्थिता महाभाग्या सखीवचनकारिणी ॥६०॥
 मुग्धा मुग्धसृगीनेत्रा पूर्णचन्द्रनिभानना । महानुरागसम्भारप्रेरितोदारमानसा ॥६१॥
 परिष्वज्य रहो नाथ सुखसुखं महीतले । सुकुमारकराम्भोजसवाहनसुचारुणा ॥६२॥
 गोशीर्षचन्दनेनैवमन्त्रलिम्पत सर्वतः । तथा पद्ममपि ग्रीडाकिञ्चित्कम्पितपाणिका ॥६३॥
 शोभाः कन्या यथायोग्य शोपाणां खेचरेशिनाम् । चन्दनेनास्पृशन्नात्रं विशल्याहस्तसङ्गिना ॥६४॥
 विशल्याहस्तसस्पृष्टं चन्दनं पद्ममवाक्यतः । कान्तमिन्द्रजितादीनामुपनीतं यथाक्रमम् ॥६५॥
 शीतलं त समाप्राप्य कृत्वाङ्गेषु च सादरम् । निर्घृति परमां प्राप्ताः शुद्धामानो गतञ्जराः ॥६६॥

उपजातिवृत्तम्

अन्ये च योधाः क्षतचित्तताङ्गा द्विपास्तुरङ्गाः पदचारणश्च ।

अभ्युक्षितास्तत्सलिलेन जाता प्रणष्टशल्या नवभास्कराङ्गाः ॥६७॥

जन्मान्तरं प्राप्त इवाथ कान्तः स्वभावनिद्रामिव सेवमानः ।

उत्थाप्यते स्म प्रवरैर्मितान्त सङ्गीतकैर्बेषुनिनादगर्तैः ॥६८॥

ततः शनैरुच्छ्रितोरुवच्चा नेत्रे समुन्मील्य तिगिन्ध्रताम्रे ।

विक्षिप्तबाहुः शनकैर्निकुन्ध्य लक्ष्मीधरोऽमुञ्जत मोहशय्याम् ॥६९॥

अथानन्तर जिसका शरीर लज्जासे अलंकृत था, जिसने श्रीरामके चरण-कमलोमें प्रणाम कर हाथ जोड़े थे, विद्याधर महामन्त्रियोंके वचनोसे जिसकी प्रशंसा की गई थी, अन्य विद्याधरों ने जिसे वन्दना कर शुभाशीर्वादसे अभिनन्दित किया था, जो उत्तम लक्षणोंको धारण करने वाली थी; महाभाग्यवती थी, और सखियोंकी आज्ञाकारिणी थी ऐसी द्रोणमेघकी पुत्री विशल्या लक्ष्मणके पास जाकर उस प्रकार खड़ी हो गई जिस प्रकार मानो इन्द्रके पास इन्द्राणी ही खड़ी हो ॥५८-६०॥ जो अत्यन्त सुन्दरी थी, भोली सृगीके समान जिसके नेत्र थे, पूर्णचन्द्रके समान जिसका मुख था, और महा अनुरागके भारसे जिसका उदार हृदय प्रेरित था ऐसी विशल्याने एकान्तमें पृथिवी तल पर सुखसे सोये हुए प्राणनाथ लक्ष्मणका आलिङ्गन कर उन्हें सुकोमल हस्त कमलमें स्थित होनेसे अत्यन्त सुन्दर दिखने वाले गोशीर्ष चन्दनसे खुब अनुलिप्त किया तथा लज्जासे कुछ कुछ कॉपते हुए हाथसे श्रीरामको भी चन्दनका लेप लगाया ॥६१-६३॥ शोप कन्याओं ने विशल्याके हाथमें स्थित चन्दनके द्वारा अन्य विद्याधरोंके शरीरका स्पर्श किया ॥६४॥ श्रीराम की आज्ञा अनुसार विशल्याके हाथका छुआ सुन्दर चन्दन यथाक्रमसे इन्द्रजित आदिके पास भी भेजा गया ॥६५॥ सो उस शीतल चन्दनको सूँघकर तथा आदर के साथ शरीर पर लगाकर वे सब परम सुखको प्राप्त हुए । सबकी आत्माएं शुद्ध हो गई तथा सबका उबर जाता रहा ॥६६॥ इन सबके सिवाय क्षत-चित्त शरीरके धारक जो अन्य योधा हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक थे वे सब उसके जलसे सींचे जा कर शल्यरहित तथा नूतन सूर्य—प्रातःकालीन सूर्यके समान देदीप्यमान शरीरसे युक्त हो गये ॥६७॥ अथानन्तर जो दूसरे जन्मको प्राप्त हुए के समान सुन्दर थे और मानो स्वाभाविक निद्राका ही सेवन कर रहे थे ऐसे लक्ष्मणको वांस्त्रीकी मधुर तानसे मिश्रित उत्तम संगीतके द्वारा उठाया गया ॥६८॥ तदनन्तर जिनका विशाल वचनस्थल धीरे धीरे उच्छ्रित हो रहा था और जिनकी भुजाएं फैली हुई थीं ऐसे लक्ष्मणने कमलके समान लाल नेत्र खोल कर तथा भुजाओंको संकोचित कर मोहरूपी शय्याका परित्याग किया ॥६९॥

१ त्वन्लोपपादाङ्गशिलामिवासी रणक्षितिं देव इवोद्यकायः ।
 उत्थाय रुष्टः ककुभो निरीच्य कासीं गतो रावण इत्युवाच ॥७०॥
 ततः प्रफुल्लान्बुजलोचनेन महाभिनन्दं भजताऽप्रजेन ।
 उदाररोमाञ्चसुकर्कशेन प्रोक्तः परिष्वज्य लसद्भुजेन ॥७१॥
 कृतार्थवत्तात दशाननोऽसौ हत्वा भवन्तं विजहार शक्त्या ।
 त्वमप्यमुष्याश्चरितेन जीवं भूयोऽभजः संस्तुतकन्यकायाः ॥७२॥
 निःशेषतश्चास्य निवेदितं तच्छक्त्याहृतिप्रेरणवस्तुवृत्तम् ।
 अपूर्वमाश्चर्यमुद्गारभावं सुविस्मितैर्जाम्बवसुन्दराद्यैः ॥७३॥
 तावद् त्रिवर्णाञ्जविलासिनेत्रां शरत्समृद्धेन्दुसमानवक्त्राम् ।
 शातोदरीं दिग्गजकुम्भशोभिस्तनद्भ्यां नूतनयौवनस्थाम् ॥७४॥
 शरीरवद्भामिव मन्मथस्य क्रीडां विशालालससन्नितम्बाम् ।
 संगृह्य शोभामिव सार्वलोकं विनिर्मितां कर्मभिरकतानैः ॥७५॥
 तां वीच्य लक्ष्मीनिलयोऽन्तिकस्यामचिन्तयद् विस्मयरुद्धचित्तः ।
 लक्ष्मीरिय किन्तु सुरेश्वरस्य कान्तिर्तु चन्द्रस्य तु मानुदीप्तिः ॥७६॥
 ध्यायन्तमेवं परिगम्य योपास्तमेवभूजुः कुशलप्रधानाः ।
 स्वामिन् विवाहोत्सवमेतया ते इष्टं जनो वान्छति सन्नतोऽयम् ॥७७॥
 कृतस्मितोऽस्तावगदत् समीपे संशये युक्तमिदं कथं तु ।
 ऊजुः पुनस्ते ननु वृत्त एव स्पर्शोऽनया ते प्रकटस्तु नासीत् ॥७८॥

जिस प्रकार उपपाद शय्याको छोड़ कर उत्तम शरीरका धारक देव उठ कर खड़ा होता है उसी प्रकार लक्ष्मण भी रणभूमिको छोड़ खड़े हो गये और दिशाओको ओर देख रुष्ट होते हुए बोले कि वह रावण कहाँ गया ? ॥७०॥ तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे जो महान् आनन्दको प्राप्त थे, उक्त रोमाञ्चोसे जिनका शरीर कर्कश हो रहा था और जिनकी भुजाएँ अतिशय शोभायमान थीं ऐसे बड़े भाई श्रीरामने आलिङ्गन कर कहा कि हे तात ! रावण तो शक्तिके द्वारा आपको भार कृतकृत्यकी तरह चला गया है और तुम भी इस प्रशस्त कन्याके चरित्रसे पुनर्जन्मको प्राप्त हुए हो ॥७१-७२॥ तत्पश्चात् अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुए जाम्बव और सुन्दर आदिने शक्ति लगनेसे लेकर समस्त वृन्तान्त लक्ष्मणके लिए निवेदन किया-सुनाया तथा उदार भावनासे युक्त अपूर्व आश्चर्य प्रकट किया ॥७३॥

तदनन्तर जिसके नेत्र लाल सफेद और नीले इन तीन रङ्गके कमलोंके समान सुशोभित थे, जिसका मुख शरद्भृजुके पूर्णचन्द्रमाके समान था, जिसका उदर कृशा था, जिसके दोनों स्तन दिग्गजके गण्डस्थलके समान सुशोभित थे, जो नूतन यौवन अवस्थामे स्थित थीं जो, मानो शरीर-धारिणी कामकी क्रीड़ा ही थीं, जिसके उत्तम नितम्ब विशाल तथा अलसाये हुए थे, और जिसे कर्मोने एकप्र चित्त हो सर्व संसारकी शोभा ग्रहण कर ही मानो बनाया था ॥७४-७५॥ ऐसी समीपमें स्थित उस विशाल्याको देख लक्ष्मणने आश्चर्यसे अवरुद्ध चित्त हो विचार किया कि क्या यह इन्द्रकी लक्ष्मी है ? या चन्द्रमाकी कान्ति है ? अथवा सूर्यकी प्रभा है ? ॥७६॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए लक्ष्मणको देख, मङ्गलाचार करनेमें निपुण स्त्रियों उनसे बोलीं कि हे स्वामिन् ! यहाँ इकट्ठे हुए सब लोग इसके साथ आपका विवाहोत्सव देखना चाहते हैं ॥७७॥ यह सुन लक्ष्मणने मुसकराते हुए कहा कि जहाँ प्राणोका संशय विद्यमान है ऐसे युद्ध क्षेत्रमें यह किस प्रकार

भवत्प्रभावज्ञतसर्वविघ्नं पाणिग्रहं नाथ भज त्वमस्याः ।
इत्यर्थनाम्नैरवतश्च वाक्यादियेष लक्ष्मीनिलयो विवाहम् ॥७६॥

मालिनीवृत्तम्

क्षणविरचितसर्वशलाघ्यकर्तव्ययोगः पवनपथविहारिस्फोतभूतिप्रपञ्चः ।
अभवदमरसम्पत्कल्पितानन्दतुदयः प्रधनभुवि विशाखालक्ष्मणोद्वाहकल्पः ॥८०॥
इति विहितसुचेष्टाः पूर्वजन्मशुद्धाराः परमपि परिजित्य प्राप्तमायुर्विनाशम् ।
द्रुतसुपगतचारुद्रव्यसम्बन्धभाजो विधुरविगुणतुल्यां स्वामवस्थां भजन्ते ॥८१॥

इत्यार्षे श्रीरविश्याचार्यमोक्षे श्रीपद्मचरिते विशल्यासमागमाभिधानं नाम पद्मषष्टितमं पर्व ॥६५॥



वचित हो सकता है ? इसके उत्तरमें सबने पुनः कहा कि इसके द्वारा आपका स्पर्श तो हो ही चुका है परन्तु आपको प्रकट नहीं हुआ है ॥५८॥ हे नाथ ! आपके प्रभावसे जिसके समस्त विघ्न नष्ट हो चुके हैं ऐसा इसका पाणिग्रहण आप स्वीकृत करो । इस प्रकार लोगोंकी प्रार्थना तथा गौरव-पूर्ण वचनोंसे लक्ष्मणने विवाह करनेकी इच्छा की ॥७६॥ तदनन्तर जिसमे क्षणभरमें समस्त प्रशंसनीय कार्योंका योग किया गया था, विद्याधरोने जिसमें विशाल वैभवका विस्तार प्रदर्शित किया था, और जो देव सम्पदासे कल्पित भानन्दके समान था ऐसा विशल्या और लक्ष्मणका विवाहोत्सव शुद्धभूमिमें ही सम्पन्न हुआ ॥८०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने पूर्वजन्ममें उत्तम आचरण किया है ऐसे उदार पुरुष प्राप्त हुए मरणको भी जीतकर शीघ्र ही उत्तम पदार्थोंके समागमको प्राप्त होते हैं और चन्द्रमा तथा सूर्यके गुणोंके समान अपनी अवस्था को प्राप्त करते हैं ॥८१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविश्याचार्य विरचित पद्मचरितमें विशल्याके समागमका वर्णन करने वाला पैंसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६५॥

द्वितीयो भागः समाप्तः

श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

[अ]					
अशकान्तेन हृदयं	२६५	अचिन्तयच्च खौरेषा	१३७	अतिघन्योऽहमप्यद्य	१०८
अशुकैः वर कण्ठ	१४८	अचिन्तयच्च नो साध्वी	४५	अतिप्रकटवोर्यस्य	३५६
अशुकैः समालम्ब्य	१४६	अचिन्तयच्च पद्मोऽतः	२७५	अतिभूतिप्रभृतयो	६३
अशुकैनाम्बुवर्षेण	१४६	अचिन्तयच्च पर्यामि	२३	अतिभूतिश्च तद्धेतोः	६२
अक्रोच्चन्द्ररश्मिश्च	२७४	अचिन्तयच्च मे कास्था	२३८	अतिमत्तान्नापाङ्ग-	५०
अक्रूरमप्यं स्वभावेन	२६१	अचिन्तयच्च रामस्वी	२५३	अतिमधुरवं कराभिघातै-	२२०
अक्रूरमात् सेषमुत्तुङ्ग	१३७	अचिन्तयच्च सम्प्रान्त-	३०३	अतिमूढहतात्मानो	३३१
अक्रूरिचिरिति निन्द्येय-	२७३	अचिन्तयच्च सुव्यक्तं	२७४	अतिमृदुभुजमाला	१४
अक्रूरपच्यवीजेन	१०१	अचिन्तयच्च हा कर्षं काम	२६५	अतिवीर्यं समस्तेषु	१५५
अक्षीणसर्वकोशोसा-	६४	अचिन्तयच्च हा कर्षं प्रातो	२३	अतिवीर्यं किमेतत्ते	१६३
अक्षोभ्यस्त्वनग्मीरं	३०३	अचिन्तयच्च ही साधु	१५२	अतिवीर्यमुनि दृष्ट्वा	१६८
अक्षोहिष्यस्ततः सप्त	२७४	अचिन्तयच्च वार्ता	३४२	अतिवीर्यस्ततोऽवोचन्न	१६५
अक्षोहिष्या प्रकीर्त्यानि	३५८	अचिन्तयच्च दमुष्यद्रे	२४१	अतिवीर्यो तथा बुद्धौ	१५७
अक्षोहिणीसहस्राणि	३५७	अचिरान्निग्रहं धोरं	४०६	अतिवीर्योऽतिदुर्वार-	१५६
अगाधदिव भृङ्गाया	२१२	अजातचिन्तिता नून-	१४६	अतिवीर्योऽतिवीर्योऽय	१५६
अग्रहीत्वैव सन्नाहं	३६३	अजानानो विशेष वा	२७०	अतिवीर्योऽत्र पद्मे न	१६४
अग्निक्वैरुर्विद्योगेन	२०७	अभिन्नदामरं गन्धं	२२३	अतिवीर्योऽपि दूतेन	१५८
अग्रतः पृष्टतश्चास्य	३०१	अज्ञातमिदमप्राप्तं	१४१	अतिवीर्यं महाधन्य-	१६७
अग्रतः प्रस्थिते तस्मिन्	३८५	अज्ञातलोकवृत्तान्तो	५	अतिवीर्यो क्वा कम्पो	१६४
अग्रतस्त्वरितो जातः	३८५	अज्ञाता एव ये कार्य	१६१	अतिविगसमुत्पाताः	३६६
अग्रतो भ्रूयस्सुग्रः	१८५	अज्ञातैरिदमस्माभिः	१५६	अतिशयपरम विनिहत-	३१
अग्रतोऽवग्रहं तस्य	६६	अज्ञातो मन्त्रिवर्गस्य	२७२	अतीतागामिशोकाभ्या-	३८
अग्रप्रयाणकन्यस्ताः	३५६	अज्ञानदोषतो नाशं	२७७	अतीते गणरात्रे च	२०३
अग्राहं यदभयाना	७३	अज्ञानयोगमेतस्य	१६१	अतीत्य त्रीनितः कोशा-	१०२
अग्रप्रमथनं नाथ	४०६	अज्ञानोऽसौ विलङ्घः सं	२०७	अतुप्तः परमाहारैः	३४१
अङ्गः कृत्रिमसुग्रीवं	२७३	अज्ञासीत्सावधिज्ञानः	४०६	अतुप्तः क्षीसहलोचै-	३४१
अङ्गनाजनदृष्टीना	४६	अङ्गनाजविदेहाज	४०८	अतो जनकसम्बन्धं	१
अङ्गारक्रेतुना तेन	३१५	अङ्गनातनयस्ताव-	३७५	अतो न ता स्वयं देवि	२५६
अञ्जलो नाम विख्यातो	२०६	अङ्गनातनयस्ताव-	२६१	अतो नवत्रयन्वस्त-	३६१
अचिन्तयच्च किं नाम	२३६	अङ्गनातनयस्ताव-	११५	अतो ब्रवीमि राजस्त्वो	१६
अचिन्तयच्च किं न्वेत-	२६	अङ्गनातनयस्ताव-	१३८	अतो ब्रवीमि राजत्वा यदी-	१०८
अचिन्तयच्च किं सीता	२८१	अङ्गनातनयस्ताव-	६१	अत्यन्तं तदहं मन्ये	३०६
अचिन्तयच्च को न्वेष	५८	अङ्गनातनयस्ताव-	३२१	अत्यन्तं दुर्वरोदिष्टा	७५
अचिन्तयच्च खिन्नात्मा	२३०	अङ्गनातनयस्ताव-	१५६	अत्यन्तं यद्यधीरस्त्वं	३५२
अचिन्तयच्च ते नून-	३१	अङ्गनातनयस्ताव-	२२१	अत्यन्तच्छुद्र निर्लज्ज	२४५
		अङ्गनातनयस्ताव-	२२६	अत्यन्तधनवन्धेन	३४

अत्यन्तदीनवदन्तः	२४२	अथ रत्नजटो व्रस्ताः	२४८	अथाशास्त्रिकविद्याया	३१८
अत्यन्तदुर्लभा लोके	२७३	अथ राजसुतासमीरितं	२१६	अथाससाह कैक्किन्ध	३४४
अत्यन्तदुस्सहा चेष्टा	६६	अथ लङ्केरवरं वीर	३५१	अथासत्तमागच्छद्	२३५
अत्यन्तमधुरैर्वाक्यैः	१२८	अथ लब्धाम्बुदम्रात-	१७५	अथासावाङ्मनो गच्छ	३०८
अत्यन्तविषमीभावं	४३	अथवा किं मनो व्ययं	४२	अथासौ ज्ञातसद्भावा	२
अत्यन्तस्निग्धया तन्व्या	१२७	अथवा क्षयमप्राप्ते	१८	अथासौ साधुयुगलं	३१३
अत्युग्रकर्मनिर्माकै-	६८	अथवात्यन्तमेवेदं	११३	अथास्य व्रजतो ज्योतिन	३१७
अत्यूर्जितौ महासैन्यौ	३८२	अथवा दयितो रत्या	२४६	अथास्य वायुपुत्रेण	३७६
अत्र किं क्रियते साधो	१०७	अथवा न सुनेवाक्यं	३१५	अथास्य शतदुःखेन	२०४
अत्र विभाति ज्योमगवृन्दं	२१८	अथवा निखिले लोके	२५५	अथाहूतः पुनः प्रातः	२७७
अत्राग्निहोत्रशालाया-	१३३	अथवानेकशो दृष्टो	२६६	अथैत्वाचक्रिरे तस्य	३४७
अत्रान्तरे जगादैवं	८	अथवा नैव विज्ञेय-	४११	अथैत्वाचक्रिरे वृक्ष	६०
अत्रान्तरे तमुद्देशं	२६१	अथवा मयि विश्वस्ते	३८	अथेन्द्रजितवीरेण	३३६
अत्रान्तरे मृषो मूर्च्छां	७६	अथवा मर्तुमिष्टं ते	३८६	अथेषुवारिधाराभि-	२३६
अत्रान्तरे परिप्रातः	२३६	अथवा रामशोकेन	२६८	अथेकान्ते गृहस्यास्य	२५१
अत्रान्तरे प्रियाः प्राप्ता	४७	अथवा विरहव्याघ्रं	१२३	अथैनमूचिरे वृद्धाः	२६०
अत्रान्तरे विदेहाजः	६२	अथवा शुद्धतस्त्वस्य	१२१	अथैवं दुःखमापन्ने	६३
अत्रान्तरे समागत्य	२३७	अथवा सर्वसैन्येन	१६	अथैवमिति तत्सर्व	१७
अत्रान्तरे स सम्भ्रान्ताः	४०१	अथ शोकरसाधुप्रात्	४०८	अथोत्तरे सिंहनादख्यो	३४६
अत्रान्तरे सुरूपाब्धौ	१२५	अथ सुग्रीवमाह्वय	२७६	अथोत्तार्यं कन्नवादीन्	३६७
अत्रावसीदतो देव	१२१	अथ सेनापतिर्नाम्ना	१८०	अथोद्यानगतानार्य	३३५
अथ कूटभटाटोपः	२६६	अथ अयाग्रकीर्तिमाप्त्वीक-	२४६	अथोद्यानस्य सम्भ्रान्ताः	१८५
अथ गेहेऽपि लभ्येत	७७	अथाज्ञानात्मजोऽपृच्छ-	३६४	अथोपलालनं तस्य	२८१
अथ त त्वरितात्मानं	३२२	अथातस्थौ सनिर्ग्रन्थौ	३१४	अथोद्दत्तं चिरं पादौ	१७१
अथ तत्त्वणमम्भूत-	१८३	अथात्र नगरे राजा	३१३	अथः पश्यसि कैलास-	६६
अथ तत्र ज्ञणं नीत्वा	८६	अथात्रैव वनोद्देशे	१४७	अथदत्तदाननिर्मुक्तो	२१८
अथ तामतिरौद्रेण	४०५	अथानरण्यनतारौ	२०१	अथदीर्घोपेक्षिता तेन	२४
अथ ते त्रिविधामिषयाः	१३३	अथानरण्यराजस्य	१६६	अथदुष्टमानसः पश्यन्	३३५
अथ तौ परमारण्ये	६४	अथान्तरिक्षे देवाना	६१	अथदृष्टतनुमिदं कै-	५६
अथ त्वं साधयस्येयं	१६१	अथान्ते तस्य निखिर्शं	२६६	अथदृष्ट्वावनिचर्याथं	६४
अथ दक्षिणतो दृष्टा	३६५	अथान्येकविहारस्य	२२७	अथ द्रुतैर्जितमूर्धानो	६४
अथ नास्यन्तदूरस्थ-	२४१	अथान्येकविहारस्य	६१	अथ कैयूरदृष्टो मे	३६६
अथ नानाद्रुमक्षमासु	१७८	अथान्येकविहारस्य	३५१	अथ ते निशितैर्नरै-	२४५
अथ पद्मं समालोक्य	२७७	अथान्येकविहारस्य	२४८	अथ ते रावणः कृद्धो	३१६
अथ पद्मोऽतिवीर्यस्य	१६७	अथान्येकविहारस्य	२२७	अथ ते रावणः कृद्धो	४६
अथ प्रशान्तवैरासा-	३२१	अथान्येकविहारस्य	११४	अथश्रीनमजसुं काय	२०५
अथ प्रत्येपि नो राजन्	११२	अथान्येकविहारस्य	१२६	अथान्येकविहारस्य	२३२
अथ भीतिपरिव्रस्ताः	२८८	अथान्येकविहारस्य	२७२	अथान्येकविहारस्य	२३२
अथ भेरीनिनादेन	५२	अथान्येकविहारस्य		अथान्येकविहारस्य	३८३

अधत्त यः पुरा शक्ति	४६	अनिच्छयाथ विध्वस्ते	२३२	अत्र च परमं ताभ्या	३३५
अधर्मपरिणामेन	३७१	अनिवार्यं समालोक्य	१६	अन्नं वरगुणं भुक्त्वा	१७१
अधस्तात्सः क्षितेरन्या	७	अनीकिन्यो दश प्रोक्ता	३५८	अन्यच्च खलु कौशाम्या	३५५
अधस्तात् स्फुटिता वाप्यः	३३८	अनुकूलरिमिः पापै-	२०१	अन्यजन्मसु ये दारा	६२
अधवदियुमुद्घृत्य	३१६	अनुगत्य सुदूरं तौ	१६७	अन्यथा क्व महीचारा	२५४
अधावल्लक्ष्मणस्तेषा	२०	अनुजो लक्ष्मणो यस्य	३५	अन्यदा तिथिवेलाया	१६६
अधिकं भाममानाङ्गौ	३८५	अनुद्धरो हृदरथः	३६७	अन्यदाथ तमुद्देशं	२४
अधिष्ये न कृते तस्मिन्	३७	अनुन्वरस्तु विहर-	१६०	अन्यदाथ महीपाल	१६७
अधिष्ठिते देवगणैश्च चापे	६६	अनुपमगुणधरमनुपमकार्यं	३२	अन्यदाथ सुलासीनं	१५५
अधीश्वरः स यज्ञाणा	१३६	अनुपालितमर्यादाः	३४१	अन्यदा परिपुष्टश्च	३१५
अधुना त्वं मया ज्ञातः	१४४	अनुप्रयातुकामस्य	८३	अन्यदा प्रथितः क्षोण्यां	१८६
अधुना त्वयि दोषादथे	३२२	अनुबन्धमहादाहा	२६४	अन्यदा योगमाश्रित्य	६१
अधुना दर्शये शीघ्र	४००	अनुबन्धमिदं ह्यस्यं	२६२	अन्यदा रतिशैलस्य	३३४
अधुना वेतुभिर्व्याप्तं	१४५	अनुमन्यस्व मा तात	७७	अन्यदा वज्रकर्णोऽयं	१०६
अधुना भज लोकेश	३२६	अनुपरागोत्कटैर्भृत्यैः	३५६	अन्यदावधिना शाल्वा	१६३
अधुना रावणे क्रुद्धे	३४६	अनुलम्बनश्च तस्याग्नि-	२०४	अन्यदा सा पुरः सख्या	१११
अध्वदं तस्य पत्नीना	६६	अनुछितं स्वया मातुः	२२८	अन्यदा सिंहनगरं	६६
अध्याप्यमानं गुरुणा	६३	अनुष्णं भास्करं कुर्या-	४११	अन्यस्यैव मया शङ्ख-	३६३
अध्रुवं देहभोगादि	६२	अनुद्धरेति विख्याता	१८५	अन्या गुणवती नाम	२५६
अध्याय घटकैर्मर्गैः	१०४	अनुसक्तुश्च तं नाना	६०	अन्यायमीदृशं कर्तुं	८१
अनङ्गकुसुमा कृच्छ्रा	३००	अनेकगोत्रचरणा	३५७	अन्या सुखती नाम	२७६
अनङ्गकुसुमा लब्धा	३३०	अनेकयुद्धनिर्भग्न-	२६५	अन्यास्तत्रोचुरे कोऽपि	११८
अनतिप्रौढिका काचि-	३६२	अनेकरत्नसम्पूर्णा	२२०	अन्ये च योधा क्षत-	४१२
अनत्युच्चैर्धनच्छायैः	१६६	अनेकशो मया प्राप्ता	६२	अन्ये जगुरियं किमस्माकं	४०
अनन्ताफलमानोति	६८	अनेकाकारवक्रादथ-	३१७	अन्ये जगुरिय नून-	४०
अनन्तर नृपादेशात्	११२	अनेन भृशता श्रेष्ठै-	१६७	अन्येद्युः सन्ततक्रोधाः	३७४
अनन्तवीर्यनामाथ	१६३	अनेन वारिणाऽमुष्मिन्	४०६	अन्येद्युर्दूतमाहूय	३००
अनन्तवीर्ययोगीन्द्र-	२६४	अनेन साधुना पश्य	१०६	अन्येऽपि शकुनाः क्रूर	३६५
अनन्तवीर्यसम्पन्नान्	२६५	अनेनामृतकल्पेन	११५	अन्येऽप्येवं महायोधा	३६०
अनन्यमानसोऽसौ हि	२८१	अनेनैव ततो युक्ताः	३०२	अन्योन्यं दत्तनेत्र च	५६
अनन्यशरणत्वेन	५७	अन्तः कृत्वा शिशुगण-	२१४	अन्योन्यमक्षणादीनि	६२
अनरण्ये च राजस्थे	४	अन्तरं विष्य शूरास्या-	३५६	अन्योन्यमभिमानञ्चैव	२६७
अनर्घ्वरत्नमहर्षं	६६	अन्तरङ्गः प्रतीहारो	१२६	अन्योन्यस्य वय प्रोह-	२७६
अनर्थाद्यतचित्तेन	३५३	अन्तरेण प्रमोराज्ञा	३३४	अन्योन्याहृतमतेषा-	३७४
अनाहतः प्रभृतं च	२३०	अन्तर्द्धौ सेविते ताभ्या	३८२	अन्वगायदिमं लक्ष्मी-	१८१
अनाद्यमन्तनिमुक्तं	६८	अन्तर्हस्य च संकुब्दा	२३०	अन्वयव्रतमस्माक-	५०
अनापृच्छापि तस्माले	३६४	अन्ते तस्या महारण्ये	७६	अन्वर्थसंज्ञकास्ते च	२६२
अनारतमिति व्यायन्	२६	अन्ते लक्ष्मणस्तत्र	१२७	अन्विष्यन्ती प्रभाते नौ	१७६
अनिच्छन्नप्यती तेन	४११	अन्धीभूतो दशास्यस्य	३८१	अन्विष्य विद्वतास्तत्र	३६४

अपकारिणि काश्चन्यं	१२२	अन्नवीदस्ति कौशाम्बी	१३०	अमुष्मिन् वल्लभवते	१२६
अपमानेन दग्धस्य व्याकुलस्य	११२	अन्नवीद् ब्राह्मणैकान्ते	१३४	अमुष्य व्यसनं कृत्वा	२३७
अपमानेन दग्धस्य हृदयस्या-	४६	अन्नवीत् पद्मनाभश्च	२६०	अमृतस्वरसंज्ञोऽस्य	१८४
अपरः कृतसंकेता	८६	अन्नवील्लव्यसंज्ञश्च	२७७	अमृतादिपि सुस्वादेः	२६४
अपराधविमुक्तस्य	११५	अन्नमानशृङ्गेयं	१७३	अमोघविजया नाम	४१०
अपराधानिमान् भ्रुत्वा	३४०	अमव्याना गतिः क्लिष्टा	६८	अम्ब मा गाद् विषाढं	७६
अपराधाब्धिमग्नः सन्	२६८	अमाव्यी च तथा भाव्यी	६७	अम्बरं भानुकर्णस्य	३८२
अपरे त्रपया केचि-	८८	अभिज्ञानादिकं सर्वं	३४४	अम्भोविहारविज्ञान-	८६
अपरेद्युर्महोद्भूत-	३८८	अभिमानोन्नतिं त्यक्त्वा	३८६	अयं कुङ्कुमपङ्केन	२२७
अपरे शयरा रेजु-	२०	अभिप्रायं ततो ज्ञात्वा	२८८	अयक्चत्पुलभरनम्रपादपः	२१६
अपरोत्तरदिग्भागे	१४७	अभिलक्ष्य शिराजाल-	४८	अयं प्रयवादिष चित्रिताङ्गको	२१४
अपरो मानमुत्सृज्य	८६	अभिलष्यति सन्तापो	३७४	अयं प्रातोऽयमायातो	११६
अपश्यश्च समुत्थाय	१५०	अभिवाञ्छसि मर्तुं वा	३६३	अयं मदालसेक्षणः	२१३
अपश्यच्च तच्छुद्धं	२२६	अभिषिञ्चत मे पुत्रं	७३	अयं मृग इवोद्विग्नी	१५०
अपश्यच्च नरश्रेष्ठं	३०२	अभिषेकं जिनेन्द्राणां कृत्वा	६७	अयं शरणमायातो	२७५
अपश्यच्च परिस्फ्रीताः	२६	अभिषेकं जिनेन्द्राणां विधाय	६७	अयं स वर्तते कालः	२६१
अपश्यच्च मनश्चौरी	४६	अभिषेकबलं तस्या	४०७	अयं स लक्ष्मणः खयातो	२३७
अपश्यच्च महामोह-	२३६	अभिषेकप्रभावेण	६८	अयं सस्यमुवं सुक्त्वा	२२१
अपश्यच्च लताजालै-	३२४	अमीतिदानपुण्येन	६७	अयनेनेव सा तेन	१७४
अपश्यच्च विचाराणां	२२७	अभूत् सर्वशोकस्त्व-	२२५	अयमन्यश्च विवशो	१४५
अपश्यता च तस्यान्ते	१७८	अभूतां चूर्णने देव	४८	अयमस्य महान् लाभो	२३६
अपसर्णामृतो देशा-	११६	अभयङ्कोद्धत्यं सुस्नातं	१३२	अयमायामि देवेति	१५०
अपि चानुक्रमान्मुक्ति-	७७	अभ्युत्थानादिकामस्य	२७२	अयमिच्छनाङ्कुसम्भूतो	३६
अपि दिनकरदीप्तिः कौमुदी	१४	अभ्युत्थानाभियानामि-	२००	अयात्यद्यदित् नैताभ्या	८७
अपि द्रष्टु न ये शक्ये	५५	अभ्यूक्षितमतिर्मानां	३८८	अयि देवि वच यातासि	२३६
अपि नाम पुनः क्रीडा	३६६	अमन्त्रयन्त सम्भूय	३५४	अयि पापे किमिष्येथा	१३४
अपीक्ष्यन्त प्रजाः सर्वाः	३३	अमाल्य धूर्तमाहूय	३	अयि मद्भक्तिस्त्वो	३६६
अपुण्यथा मया नून-	२२८	अमात्यवदनं वीक्ष्य	१७३	अयि मुग्धे सुकथटेऽस्मिन्	१४६
अपूर्वलोकासङ्घात	२६६	अमी ततः समागत्य	३३६	अयि मूढे न पुण्येन	१७०
अपुच्छच्च परिष्वज्य	३४५	अमी निरागसः क्षुद्रा	१०८	अयि सुन्दरि हर्षस्य	२५७
अपुच्छत् ततः पद्मः	१०६	अमी भयाङ्कुला म्लेच्छा	२१	अयोगमोहितं चेत-	२३१
अपुच्छत्तस्य हृत्तान्त-	६५	अमीभिरनुयातोऽहं	१५६	अयोगमायामिदं तेन	२६२
अप्येकाक्षरनिष्पत्तिं	४८	अमीभिरक्षरैः पद्मः	२७६	अरण्यदेवतातूजा	१४८
अप्रतर्क्य गगनगै-	२२४	अमी लङ्काश्रिता राजन्	२२५	अरण्यमपि रम्यत्वं	२५०
अग्रमत्तेन गन्तव्यं	३०६	अमीषामस्य आकारो	२६६	अरण्यात् पिङ्गलः प्रातो	६१
अग्रमेयगुणाधारान्	२६५	अमीषु स्वादास्त्वणि	१६६	अरण्याना गिरिसूनि	१५२
अप्राप्तानेव धरोऽसौ	११७	अमी समीरणेरिते धरोऽसि-	२१६	अरण्यानां गता सेवं	४०३
अशालेन्दुमुखा बाला	५५	अमुमिन्द्रनीलवर्णं	२१३	अरण्याम्बुजखण्डानां	४०४
अन्नवीत् तु यौवा नाथा	१३१	अमुष्य पुस्तकमपि चित्रं	२८६	अरण्ये तत्र निस्तौये	१३३

अरुणे निर्मनुष्येऽस्मिन्	२४१	अवतीर्य ततो वृत्ताद्	२६	अष्टाविमे गताः ख्यातिं	३५८
अस्या कर्षिताङ्गोऽसौ	५४	अवतीर्य वुरङ्गाच्च	६४	अष्टाहोपोषितं कृत्वा	४५
अरुण धवल कपिलं हरितं	२१५	अवतीर्याम्बराच्चारु	२७	अष्टौ शतानि सप्तत्या	३५८
अर्कक्रीतिसमो भूत्वा	३६५	अवतीर्याम्बरादाशु	६५	असंखया अपि मातङ्गा	३४
अर्कभस्मन्दनः सौऽपि	३०६	अवतेरुः समीपे च	२६४	असक्त इव तं द्रष्टु-	८३
अर्णवाह धनुर्धस्य	३५३	अवद्वारस्ततोऽवोचद्	२५	असमाप्तवताः ताश्च	३१३
अर्थेन विप्रहीनस्य	१४४	अवद्वारेण निर्गस्य	८७	असमातेन्द्रियसुखं	८४
अर्थोऽय दुस्तरोऽप्यन्त	२७१	अवनौ पूर्णकलशाः	१६५	असमातोपयोगस्य	२२६
अर्थदत्तघतच्छ्रायं	४	अवरुद्धा च सच्चैष्टा	१६१	असावुत्थितमात्रश्च	३७६
अर्थरात्रे तदा स्पष्टे	१५०	अवरोहंस्ततो देशा-	३३६	अमारोऽयमहोऽप्यन्तं	१६०
अर्द्धचन्द्रो जिनप्रेमा	३६८	अवलोक्य मुनीनित्यं	१८६	असिताभिः सिताभिश्च	१३६
अर्षितः पोषणायासौ	१२	अवश्यं यदि भोक्तव्या	१६६	असिपवनत्रयं याता	७
अर्द्धबाहुलिका दृष्ट्वा	३६३	अवसर्प ममाङ्गानि	२५२	असिपवननच्छ्रानाः	७
अर्द्धसन्नाहनामाव	३६३	अवसीदत्ततो दृष्ट्वा	३७५	असौ दूतोऽन्यदा राजा	१८४
अर्द्धस्वर्गोदयश्चान्ये	२८६	अवस्था वा गतामेता	३२८	असौ पवनपुत्रोऽपि	३१७
अर्षितः पुण्यवत्यै च	६०	अवस्थितोऽयमत्रेति	१४३	असौ प्रसन्नक्रीर्तिर्मे	३११
अर्मक च दृशति-	११	अवाचि च प्रिये कस्मात्	४६	असौ मोचयिता तस्य	३७१
अर्द्धच्छासनदेवीव	६६	अवार्यवीर्यसंप्राप्तः	१५६	अस्ति क्रौञ्चपुरं नाम	२८३
अर्हन्त समतिक्रम्य	१४०	अवितृप्त भटी काचिद्भर्तु-	३६२	अस्ति ते दुहिता राजन्	३२
अर्हन्तस्त्रिजगत्पूज्या	३५	अविदितपरमार्थैरेवमर्थेन	२३१	अस्ति वेणागते मेही	२६०
अर्हन्तो मङ्गल सन्तु	२६६	अविदित्वानयोर्भेद-	२७५	अस्त्यत्र कनको नाम	४२
अल कान्ते रुदित्वा ते	३८	अवोचञ्ज्यायसौ तासां	३१४	अस्त्यत्र प्रवरो नाम	२०७
अलप्यवचन तस्य	२६८	अवोचल्लक्ष्मणः पद्मं	१२०	अस्त्यत्र मिथिला नाम	२५
अल तथापि सद्बक्त्रे	३०६	अव्यापारेण तातस्य	७४	अस्त्यत्र लवणाम्भोवी	२८८
अलं प्रतिभयाकारा	१८२	अशंसिषं ततः किञ्चिदी-	३३४	अलं धनौघनिर्घोषं	३८०
अल रुदित्वा नान्येव	२३२	अशुचिः सर्वमासादो	२०२	अलवाहनसन्नाह-	३५७
अल वत्से रुदित्वा ते	२५४	अशुचेः कायतोऽन्योऽहं	६३	अस्मद्द्वारसमायातो	३१४
अलङ्कारोदय नाम	२२४	अशेषवस्तुसम्पन्ना	१३६	अस्मत्प्रभव पूर्व	६०
अलातचक्रसन्नाशः	४१	अशोकमालिनी नाम	२६३	अस्माकं बहवः सन्ति	३४६
अवगत्य ततस्तस्मात्	१३०	अश्रद्धाना सरंभ-	६८	अस्माकमत्र वसता	१६७
अवगत्य कुमारैवं	५५	अश्रुदुर्दिनवक्त्रायाः	१५२	अस्माकमपि नारीणा-	८२
अवगम्य ततो धर्म	१३८	अश्वघ्रीवो महासैन्यः	२६७	अस्माभिः सह सुष्पाक-	८८
अवगाहनधर्मोक्ता	२६५	अश्वत्थैस्तिन्तिडीकामि-	२११	अस्मिन् जगत्त्रये राजन्	६७
अवग्रहोऽस्मद्दोषः क्व	२०६	अश्वत्थान् शालन्यद्रोधा	३३७	अस्मिन् महीधरे रम्ये	१७६
अवगारितमौर्षीकं	४१	अश्वारूढः स तं दृष्ट्वा	१०७	अस्मिन् राघव नाकामे	१३४
अवतीर्षाः किमेव स्या-	३५५	अश्वैरश्वा समं लग्नाः	३७६	अस्मिन् सुहृद्नेऽप्ये	२०६
अवतीर्षा विमानाग्रा-	४१०	अष्टमोऽनीकनीसंज्ञ-	३५८	अस्मिन्नागोचरेऽन्येषा-	२२०
अवतीर्ष गजात्तत्र	१६४	अष्टादशसहस्राणि वेनूनां	१४६	अस्मिन्नुच्चैर्निर्जराः	२१५
अवतीर्ष ततः क्रुद्धो	३८०	अष्टादशसहस्राणि पत्नीना	३५६	अस्य गह्वरदेशोऽ	२१५

अस्य पोरसमुद्रस्य	३३०	अम्नद्यः प्रोष्ठिलो राजा-	१५६	आत्मीयवल्गुसश्च	२५१
अस्याः पुष्टः समासजां	१३८	आकारमात्रमत्रैत-	२५	आत्मीयानाकुलान् हृष्टा	३७७
अस्याः शृणु यदाकृत-	१६०	आकुला रक्षता चैता	२४८	आदरेण च तैः पृष्ठः	२५
अस्या च ये गताः सिद्धिं	१६५	आकुलो मन्त्रिभिः साकं	२६५	आदरेणानुसुकश्च	१३६
अस्या भगवता तेन	३०८	आकूपारसमं तेन	३३७	आदित्यश्रवणेनासौ	३८१
अस्या द्वारत्रयं पुर्याः	१३८	आकृष्टो नगरीमध्य	१५८	आद्रिणेव स रामेण	२७७
अस्योद्देशाः शुभ्राः केचित्	२१६	आकृष्य क्षामुर्कं कूरं	४१	आनयाम्येव सत्कन्यां	५६
अस्योपरि परिक्रन्दं	२४८	आकृष्य ह्युरिकां केचि-	११७	आनयेयमितः क्षिप्रं	१०५
अहं त्वां खेचरध्वांक्ष	२८३	आकृष्य सागरजलं	३१४	आनायिकृष्टहीतोऽसौ	३५५
अहं पुनरनुतात्वा	१०६	आक्रोशः सारणं पापः	३७४	आनाथितः पिता मूत्या	१२३
अहंयुरयमत्यन्तं	३०८	आख्यातं च क्रमात् सर्वं	३१६	आनन्दं सर्वलोकस्य	१६६
अहं स लक्ष्मणो मुञ्च	१४६	आगच्छाम्यहमित्युक्त्वा	१५६	आनन्दोद्यानमाश्रित्य	२७८
अहमार्यं गमिष्यामि	३११	आगच्छाशु ममाभ्याशं	११३	आपातरमणीयानि	५०
अहरत् पिङ्गलः कन्या	६३	आगतं जनकं ज्ञात्वा	३०	आपूर्वमाणपर्यन्तौ	८७
अहिंसानिमल सार-	१४०	आगतश्च द्रुतं भूयः	२३३	आपृच्छ्या न मे किञ्चि-	७४
अहिंसा प्रवर मूलं	८	आगतो यश्च सैन्येन	२१	आप्तप्रघातणन्याय-	३८
अहिसारजमादाय	६६	आगत्य नाक्तः केऽपि	१३५	अभिसुखगतं मृत्युं	३६१
अहिदेवमहीदेवौ	३५५	आगन्तव्यं त्वया प्रीत्या	१५६	आभ्रानाम्नातकाङ्क्षोभ्रा-	३३७
अहो कान्तिरमुष्येयं	८६	आगमिष्यति मे पुत्रो	२२६	आयातोऽभिसुख तस्य	३६०
अहो जिनेश्वरे भक्ति-	३१४	आघातः स चिरामोदो	६२	आयात्येव सती कल्पाम्	२३०
अहो ते वत्स माहात्म्यं	३१०	आचार्यमार्यगुप्तं च	३	आयान्मदुविधा म्लेच्छ्या-	१५५
अहोऽस्यैकादश जातं	३२४	आचार्यस्तु विविकैषी	५१	आरण्यकस्तादा हली	३३४
अहो धैर्यमहो त्यागो	३०५	आचार्यैषैवमित्युक्ते-	१६६	आरण्यतृणपानीय-	१०८
अहो परमधन्येयं	८२	आज्ञादानेन चाशेषान्	३५६	आरब्धुं प्रसमं कार्यं	२३६
अहो परममाहात्म्यो	३	आज्ञादानेन तुष्टोऽसौ	२७	आरुह्य च रथं सिंहै-	३७६
अहो परमिद् चित्रं	३३०	आज्ञापयति नगरे	१५५	आरुह्य तेन मुक्तः सो-	२६१
अहो पराक्रमो भद्र	३११	आज्ञापयत्यसौ देवो-	११६	आरुह्य चासिता भद्रां	५२
अहो प्रीतिरहो भक्ति-	८२	आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्त-	१५७	आरुढा विचरन्त्येते	२११
अहो प्रौढकुमार्या	४२	आङ्गनेन ततः सीता	३३२	आरोह देवि मे स्वन्ये	३३३
अहो महानुभावोऽयं	८१	आटोपमीदृशं हृष्टा	१७	आरोहन्ती गिरिं देवी	१८०
अहो महान्तः परमा जनास्ते	४०७	आहुदौकन् द्रुतं चाव-	८१	आर्तस्तेन सदुःखेन	३००
अहो मे ययुना तेन	३०	आतिथेयाः स्वमावेन	१०१	आर्यदेशाः परिष्वस्ता	१६
अहो रूपमहो सत्व-	४११	आतोद्यानुगतं द्रुत्यं	१६२	आर्यानेताङ्गनपवान्	१५
अहो रूपमिदं लोके	३२५	आत्मश्रेयः समः पद्मः	२६३	आर्यं विद्याभृता कन्याः	२७
अहो वीर्यमहो रूपं	१७५	आत्मश्रेयस्ततो ब्रह्म-	२६३	आलम्बे यदि नो यष्टि-	४६
अहो वो विमला बुद्धि-	३१६	आत्मश्रेयोऽमिधानश्च-	२६२	आलस्योपहतो मूढो	११६
अहो शक्तिरहो रूप-	३०५	आत्मार्थं कुर्वतः कर्म	२५७	आलिङ्गिता मनश्चोर्षी	६२
[आ]		आत्मार्थनिरतस्त्यक्त-	१६६	आलीयमानमात्राणा	३३८
आः पाप दयितादुःख-	२८२	आत्मीयं राज्यमापाय	५८	आलोक्य शस्त्रसङ्घातं	११६

आलोक्यावधिनेत्रेण	३८३	आस्ता स्वामिनि ते वाक्या-	१६५	इति ता कुर्वतीमुच्चै-	१२
आवयोः किल दारार्थं	१८६	आस्तृणद् वीक्ष्य तल्लैन्य-	३६७	इति ता वचनं श्रुत्वा	३२६
आवयोरधुना आत्रोः	२०७	आस्तृणानमथो हृष्टा	११८	इति दीनमना गच्छन्	१३१
आवासास्त्रिगोतोऽपश्य-	१६१	आस्फाल्यमारवाभ्येनं	१०	इति व्यात्वा पुरेऽमुष्मिन्	४०६
आवृतास्ते समुद्युक्तैः	३६५	आस्वादि त महावीर्य-	६२	इति व्यात्वावलोकित्या	२३७
आशा च भजमानस्ता-	२४८	आस्वादमानो निजयेच्छ्रयासौ	२१०	इति व्यात्वाऽवहीरूपं	२४७
आश्रापरायण नित्य-	१४१	आह्वेऽभिमुखीभूतं	३८६	इति ध्यायन् महाभीत्या	१०५
आशीविषाग्निभूतेयं	२६०	आहार भोक्तुकामस्य	३३०	इति ध्यायन् विनिश्चित्य	६१
आशुकारासुराकारा-	३७२	आहारदानपुरायेन	६७	इति निगदति पद्मे केकयी-	१२२
आश्चर्यं मोहतः कष्ट-	१६२	आहारो वायुपुत्रेण	३३३	इति निगदति राघवोत्तमे	२१८
आरिष्य जनकीं देवि	१७५	आहार्यैर्विधिवैः शास्त्र-	२००	इति निजचरितस्यानेकरूप-	३६५
आश्वास गच्छ विश्रवः	२०६	आहिताग्निद्विजस्तत्र	१३३	इति निर्यूहदेशेषु	८७
आश्वासितश्च नाशौचै-	१८	आहृत्ये समुद्धारः	२६६	इति निवेदमापन्ना	६०
आश्रयित्वात्तरं तीरं	२२४	आहूतोऽथ हितैः पुष्पिभः	१२०	इति पूर्वभव ध्यानात्	२०१
आश्रयाश इव स्वस्य	३५३	आहो वंशस्थल छित्वा	२३५	इति पृथः समाधानी	३२८
आपादघनलाघ्र्याः	४५	आह्वयन्तः सुसन्नदाः	३६६	इति पृथो महातेजा	६७
आसंक्षीकिकर्मार्थादाः	३७१	आहाय स मयाऽवाचि	४०१	इति प्रशार्पितभाविता-	३८६
आसन्न च परिहाय	२८६	इ		इति प्रशस्य तं स्नेहा-	३११
आसन्नाना च वल्लीना	१८१	इत्ताचक्रे च देवेन्द्र	५६	इति प्रसन्नता प्राप्ते	२२३
आसन्नोऽय महाप्राप्तो	१३३	इक्ष्वाकुवंशसम्भूता	३५	इति बहुविधवाचा	३६०
आसन्नमेन्द्रसप्राप्ते	२५५	इक्ष्वाकूणा कुलं श्रीमद्	७६	इति मङ्गलनिस्वानै-	२६६
आसीन्न नन्दनच्छ्राये	३३४	इच्छामान्नादपि क्षुद्र-	२५३	इति मंत्रयमाणस्य	१६१
आसीत् हृष्टेरक्षुष्टम्-	४८	इच्छामि विशदं श्रोत्रु-	१५७	इति राजः पुरः कृत्वा	५
आसीदतिशुभे तरिमन्	४०	इतः क्षमापटलं मेरो-	६	इति वनगहनान्धपि प्रयाताः	१५४
आसीदस्तु कुमारेषु	४०	इतरोऽपि खलीकतुं	१६५	इति विज्ञाय विरसं	२०५
आसीदनन्तवीर्यस्य	२५६	इतश्चेतश्च विस्तीर्ण-	११८	इति विद्याधरी वाक्या-	४००
आसीदनुसमालोक्य	२८६	इतश्चेतश्च विस्तीर्णा	५६	इति विस्मयमापन्न.	३०३
आसीद् गृहपतिः खयातः	२६२	इतस्ततश्च तत्रार्चा	२५१	इति विहितसुचेष्टाः	४१४
आसीद्देवेन्द्रयुद्धेऽपि	३१०	इति कृत्वा स्तुतिं बानु-	१४२	इति संवेगमापन्नः	३०३
आसीद्यस्याधिमाहात्म्य	३०४	इति केचित् समाधाय	१४१	इति सचिन्तयन् क्रुद्धः	१०
आसाद् रथोपशोभाब्जा	३२२	इति गत्या गतीः श्रुत्वा	१६४	इति सखिन्तयन्ती सा	१५०
आसीनमञ्जलावेनं	३४५	इति गायति दैत्येन्द्रे	३२	इति सखिन्त्य कामार्तः	२३०
आसन् मम वपुः शैल-	४८	इति चात्रेदयन्नाथ	१५४	इति सखिन्त्य जगद्	१०६
आसीन्मया कृता बाह्या	१६५	इति चिन्तयतस्तस्य कुमारौ	१८	इति सखिन्त्य जायायै	१५२
आसीन्मे शीर्णपतित-	१४५	इति चिन्तयतस्तस्य प्रसन्ने	११०	इति सखिन्त्य तामङ्गा-	२३६
आस्ता तावदिदं राघ्न	६४	इति चिन्तयतस्तस्य सम्प्राप्तो	२८६	इति सखिन्त्य निर्गता	३८२
आस्ता तावदिदं वक्ष्ये	४	इति ज्ञात्वा क्षमं कर्तुं	१०	इति सखिन्त्य निश्रयन्	१८६
आस्ता तावद्द्रवापन्न	१४४	इति ज्ञात्वा महादुःखं	८	इति सखिन्त्य मंनाधु	२२६
आस्ता तावन्मनुजवनिताः	३८४	इति तद्वचनं श्रुत्वा	३२७	इति सखिन्त्य सन्त्यग्न	१६०

इति सञ्चिन्त्य सम्प्रान्त-	२४८	इत्युक्ते परिषत्सर्वा	११७	इत्युक्त्वा मोचयित्वा तं	१३५
इति सञ्चिन्त्य सा बाळा	१४८	इत्युक्ते पादयोर्दूतो	१५८	इत्युक्त्वा रथमारुह्य	१५६
इति सञ्जातचेष्टासु	३६२	इत्युक्ते पार्थिवोऽनोचत्	३७	इत्युक्त्वालङ्कितं क्षिप्र	१६२
इति सम्भाषिते तस्याः	१६२	इत्युक्तेऽमिदधे तात किं	७६	इत्युक्त्वावस्थित व्योम्नि	२४५
इति सुचिमल्लोलः	२२०	इत्युक्तेऽमिदधे तात हृषीक	७७	इत्युक्त्वा वायुसम्भूतः	३११
इति सुविहितवृत्ताः	३४३	इत्युक्ते सुञ्जती वाष्प-	७५	इत्युक्त्वावार्यमाणापि	१३३
इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे	४०७	इत्युक्ते रघुचन्द्रेण	३००	इत्युक्त्वावार्यमाणोऽपि	२३७
इतो हृष्टावितो हृष्टौ	६४	इत्युक्ते रहसि स्थित्वा	३५	इत्युक्त्वा विकथाः कर्तुं	२६१
इत्यधिगम्य विचक्षणमुख्यै-	३७३	इत्युक्ते रामदेवोऽपि	१४७	इत्युक्त्वा विरपमासौ	५७
इत्यश्रुदुर्दिनीभूत-	४०४	इत्युक्ते रुदतीं सीता	३३५	इत्युक्त्वा विस्फुरत्पिङ्ग-	३६३
इत्याचार्यस्य वचनं	६	इत्युक्ते लोकवक्त्रेभ्यः	१२२	इत्युक्त्वा शिरसा पादौ	१३६
इत्यादिवर्णनायुक्ता	३६	इत्युक्ते वचन वाति-	३३०	इत्युक्त्वा समिधाभारं	१३७
इत्याद्यालापसंसक्तं	१७०	इत्युक्ते वचनं सीता	३३१	इत्युक्त्वा साञ्जलिं कृत्वा	१६८
इत्यार्तध्यानयुक्तस्य	५४	इत्युक्ते विस्मयं प्राप्ता	६२	इत्युक्त्वासी सुसन्नहा	५६
इत्यासन्नं तयोरसी-	२४५	इत्युक्ते वैरसम्पन्नो	२४४	इत्युक्त्वा स्मष्टुक्कामं तं	२५८
इत्युक्तः करुणं यावत्	२२७	इत्युक्ते सीतया सार्धं	१२६	इत्युक्त्वा स्वग्रहं गत्वा	१६१
इत्युक्तः कुपितो राजा	१७३	इत्युक्तो धृतिमासाद्य	६३	इदं कर्मविचिन्त्वाद्	२०६
इत्युक्तः क्रोधसंरक्तः	३४१	इत्युक्तोऽप्यनुकम्पेन	२८७	इदं च प्रत्ययोत्वादि	३०६
इत्युक्तः प्रकटक्रोधः	११६	इत्युक्तोऽप्यपरित्यक्त-	११३	इदं जनो यः सुविशुद्धचेताः	६६
इत्युक्तः साञ्जलिः पत्नी	२०६	इत्युक्तोऽमिदधे तात	७७	इदं तदण्डकारण्य	२१५
इत्युक्तस्तेन यातोऽसौ	२२४	इत्युक्तो मस्तके कृत्वा	१६५	इदं ते कथितं देव	११३
इत्युक्ताः सम्मदोपेताः	२४८	इत्युक्तो लक्ष्मणोऽभागीत्	२४७	इदं नाथ महाश्चर्यं	२२५
इत्युक्ता कुपितावोच-	३२६	इत्युक्त्वा कङ्कटच्छन्नः	२३५	इदं परं चेष्टितमाति-	१६६
इत्युक्ता लिखती ज्ञोर्णौ	७५	इत्युक्त्वा क्षमयित्वा तं	१६६	इदं वाच्यमिदं वाच्य-	११५
इत्युक्ता वापसम्भार-	२५७	इत्युक्त्वा चरितार्थः सन्	२६	इदं शिखरिणो मूर्ध्नि	३०८
इत्युक्तास्ते गता मोहं	२८८	इत्युक्त्वा दह्यमानोरु	१५८	इदमेव शरीरं मे	२५७
इत्युक्ते करुणाकिल्लः	११३	इत्युक्त्वा दुःखभारेण	१२८	इन्दीवरनिभेनाद्य	३७६
इत्युक्ते क्रोपमायातः	११७	इत्युक्त्वा दौषण सैन्य	२४४	इन्दुरिर्मर्जयत्कन्द-	३७७
इत्युक्ते क्रोपसम्भारं	३७६	इत्युक्त्वानन्दवाष्पेण	६५	इन्द्रायुषो गतत्रासः	३६७
इत्युक्ते क्रोऽपि नोऽप्यर्थ	३४	इत्युक्त्वा निरपेक्षौ तौ	८६	इन्द्रियप्रभव सौख्यं	१०८
इत्युक्ते चतुरैरश्वै-	२५०	इत्युक्त्वा परमं विभ्र-	२३४	इन्द्रियाण्यप्रमत्तः सन्	२०६
इत्युक्ते जनकैर्नैता	३२	इत्युक्त्वा परमोद्विग्नो	२४१	इन्द्रियैर्वचितात् प्रुच्छ	१०७
इत्युक्तेऽप्यन्तसद्भक्तिः	६६	इत्युक्त्वा पादयोः कान्ता	१८३	इन्द्रेण साधितो यो न	३५६
इत्युक्ते द्विज उत्थाय	३	इत्युक्त्वा पाशमेतस्याः	१४६	इन्धकः पल्लवश्चैव	३७१
इत्युक्तेन मया देवि	२५६	इत्युक्त्वा पुनरध्वासीत्	२४१	इमकणौ गणस्तेषा-	१३५
इत्युक्ते संयतं नत्वा	२८५	इत्युक्त्वा पुनरप्यस्य	६५	इमं चन्द्रगतिः श्रुत्वा	५८
इत्युक्ते निश्चित ज्ञात्वा	७३	इत्युक्त्वा प्रणतिं कुर्वन्	१३१	इमकं वनिता दृष्ट्वा	३४२
इत्युक्ते परम तोषं	१२८	इत्युक्त्वा भावतः पादौ	७६	इमकैर्दृष्टुलोत्स्रैः	११४
इत्युक्ते परितुष्टेन	४००	इत्युक्त्वा सुदितोऽप्यन्त-	३७८	इमामप्रतिमाकारा	२३६

इमामप्रतिमाकारा	२३६	उक्तोऽपि सुञ्च सुञ्चेति	२३३	उत्साहं परमं विभ्र-	२७४
इमे मिये फलकुसुमैरल-	२१८	उग्रनाटस्तथा सुन्दरः	३६४	उत्साहयन् छलोद्भृच्चं	१५६
इमे वाणासने कर्तुं-	३६	उचितं किमिदं कर्तुं	३२४	उत्सेहे रावणो योद्धुं	३७८
इमैर्निगदितैः क्रोधात्	३४०	उच्चारयति नो शब्द-	१७२	उदात्ततेजसस्तस्य	३६०
इय च तत्र शोकेन	७८	उच्चावचा क्षितिं वेगात्	४८	उदारभट्टकामिन्यो	११८
इय च पृत्रशोकेन	७५	उज्जगाम ततो लोक	१६४	उदारे विजिते देव	३८१
इय च शाकतदाङ्का	७८	उज्जयिन्या ददावर्ध-	१२२	उदारे सति सौमान्ये	३७
इय ते प्राणतुल्येति	२४१	उडुपातः किमेष स्याद्	११	उदाहृतमिदं श्रुत्वा	७१
इय नः सुमती माता	८७	उत्किरन्नितरा दृष्टो	३४८	उदीचीनं प्रतीचीनं	२५४
इय मनोहरकारा	३२०	उत्तमलक्ष्णलक्षितदेहं	३१	उद्गतं भवने वह्निं	३५२
इय यमालयं पापं	३१६	उत्तमल्लसहस्राणा	३२७	उद्गता बद्धकवचाः	३८८
इयत यत्थ मे कालं	१३०	उत्तमा उपकुर्वन्ति	३६७	उद्गर्गमानने नैव	६४
इयमेतदयं वल्ली	१७८	उत्तरीवायुकस्योद्ध्यं	२६३	उद्घाटितकपाद्यानि	२५६
इय नाम ततस्तेन	३३२	उत्तिष्ठति पुनः शून्यः	२६४	उद्दामानं मनोवेगं	२७
इष्टवस्तुविधातेन	२३८	उत्तिष्ठ भज निःशेषाः	३७	उद्दामाऽसौ महानाग-	३३४
इह चमरीगणोऽयमति-	२१६	उत्तिष्ठ स्वपुरीं यामः	६४	उद्धैरित्युपदेशोच्चै-	१०८
इह तावदल भोगै-	१६७	उत्तिष्ठैवं गृह्णायैवं	१४१	उद्भिन्नदन्तिदन्ताग्र-	३६२
इह यत् क्रियते कर्म	१६७	उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्र त्वं	१०५	उद्यन्तमन्यदा भातुं	३३४
इह प्रेरितः कालः	१६७	उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा भैषी	१३१	उद्यम्य नर्तकी खड्गं	१६४
इहापदि महाभाग	३१५	उत्तीर्णः सरितं पद्मो	८६	उद्यान सुमहादृच्छं	५१
इहापि निखिले लोके	३०४	उत्तीर्णस्वामिकर्तव्यो	३६१	उद्यानमिव निर्याता	१०३
इहासीद् भारते वास्ये	७०	उत्तीर्यं प्रसृतः सते	१०८	उद्यानानि सुरभ्याणि	१३७
इहैव लोके विक्रत पयं यशो	३८६	उत्तीर्यं विहितक्रीडा-	१२६	उद्याने निकटे तस्य	१७०
		उत्तीर्यं स जनो नागात्	१२५	उद्योगेन विमुक्ताना	२६६
		उत्तीर्यं स्वरथाद्बीर-	३८२	उद्दृष्टननक्रसुत्कार-	८८
		उत्थाय पद्मनाभेन	३००	उद्दृष्टतोऽयमतौ पापः	३४०
		उत्थाय सहसा दृष्ट्वा	२४६	उद्द्वेगकारणं भद्र-	५
		उत्थायान्तिकमागत्य	२२६	उद्द्वेगविपुलावर्ते	५४
		उत्थायान्यापदेशेन	२३०	उद्द्वेगानन्दसम्पन्नं	३०१
		उत्पत्य च रथे तस्य	३१०	उद्द्वेष्य दधितावाहु-	३६१
		उत्पन्नः कनकाभाया	१८८	उन्मज्जत्प्रलग्राह-	८८
		उत्पन्नो विमलाख्याया	१८६	उन्मत्तवारणस्कन्ध-	१०२
		उत्पाठ्य वायुपुत्रोऽपि	३३७	उन्मूलयन्नदं यत्रं	३१८
		उत्सुह्मनयनो लोकः	१६८	उन्मूलितमहालाना	३३८
		उत्सुह्मनेत्रराजीवाः	१५१	उपकण्ठेऽस्य नगरं	२२०
		उत्सुह्मसुखराजीवाः	१६२	उपकारः कृतस्तत्याः	२२८
		उत्सवः स महाङ्गाता	१५३	उपगम्य ततः सीता	३२७
		उत्सार्यं खेचरान् संख्ये	४०५	उपचारो यथायोग्यं	१५३
		उत्सार्यं चोचलगनां ता	१०४	उपनिन्द्ये शुभा कन्यां	१६७

[ई]

ईदकराक्रमकृष्टो	२३
ईदकृशील्मुणोपेतो	११५
ईदक्षमपि वाञ्छामि	३६६
ईदशामपि शशाया	६०
ईदशो नाम नायस्य	४७
ईदशो चरिते कृत्ये	३२२
ईदशो समरे जाते	३६२
ईदशान्चिदभिज्ञाय	३३६
ईदशान्क्रोधपरीतरश्च	५६

[उ]

उक्तं च गुण्या भद्र	२०८
उक्तं च स्वाभिना तस्य	१२८
उक्तं तातेन यत्सर्वं	६५
उक्तप्रत्युक्तमालाभिः	५५

उपमानविनिर्मुक्तं	१८१	उवाच गौतमो राजा	१	ऋद्धया परमया युक्तः	१७६
उपयोगो जगदैव	१८४	उवाच च गणस्वामी	१३६	ऋन्याभिगच्छतस्तस्य	३०१
उपयोगेति भार्यास्य	१८४	उवाच च गतिः केन	३१७	ऋपर्यं सततं परमं वरदं	३१
उपरिष्ठात् करिष्यामि	६६	उवाच च ग्रहाः सर्वे	३४२	ऋषिसम्बन्धमुद्भ्रान्तं	५८
उपसुंपरि संरक्तो	२६३	उवाच च चिरात् सोऽहं	२४४	[ए]	
उपलब्धप्रवृत्तिश्च	२८७	उवाच च परिक्लिन्न-	१७४	एककं मीषणेऽरण्ये	२२८
उपलभ्य च वृत्तान्तं	१५१	उवाच च प्रिये नूनं	२३४	एककेनैव सा तेन	२३५
उपलभ्यास्य वैराग्यं	१४६	उवाच चेदमेकं मे	२८३	एकतो दयितादृष्टि-	३६३
उपवासपरिश्रान्त	१४०	उवाच जनको धीरः	३४	एकदेशानहं तस्य	२६२
उपवासदिहीनस्य	८	उवाच पयिको देव	१०६	एकमहौहिणीना तु	३५७
उपवासैः कृशीभूता	४०४	उवाच रावणो देवि	२५८	एकलाहं सहस्राणि	३५८
उपविद्याश्च विधिना	२७१	उवाच लक्ष्मणः शक्त्या	१७३	एकस्तावदव ध्वस्तो	३६४
उपविष्टोऽर्कसङ्काशो	३४०	उवाच श्रेणिकोऽयैवं	३७१	एकस्तु पुत्रपाकारो	१०५
उपविश्य विनीतास्ता	२७६	उवाच श्रेणिको भूपः	६७	एकस्मिन्नुपितः कुक्षौ	५६
उपविश्याङ्गमारोप्य	७६	उवाचासावहो वृद्धा	२६६	एकस्मादपि जैनैर्न-	६८
उपसहस्य संरम्भं	३६१	उपितोऽनेकशो बीषो	१८६	एका रात्रिं वसामीति	१११
उपसर्गादिवस्ते	१८२	उपित्वा गच्छता तेषा	१०१	एका वेलामिह ततो	१२३
उपसस्युश्च ते सर्वे	२६४	उष्णदीर्घातिनिःश्वासान्	३६	एकाकिनमसौ ज्ञाता	२४४
उपसृत्य च ता कन्या	३२१	[ऊ]		एका नानासपत्नीना	३३२
उपसृत्य ततः स्वैरं	१८१	ऊचिरे तस्य भृत्यास्त	११४	एकान्तरह्यचर्व वा	२०८
उपसृत्य भय त्यक्त्वा	१४३	ऊचुरन्येऽन्यनारीभिः	४०	एकान्ते च तेनाति	१२५
उपाचपुण्यो जननान्तरे जनः	३८७	ऊचुरन्ये विवेकस्था	२३४	एकीभूय च ते सर्वे	२७३
उपाचसुमनोदामा	४२	ऊचुश्च देव मुञ्चैनं	१२०	एके च वचन प्रोञ्चुः	२६७
उपादाय च ते शूरा	३६	ऊचुश्च राज्ञसाः सोऽय	३७५	एकेन वायुपुत्रेण	३५६
उपाध्यायेन चानीतौ	१८६	ऊचे च कुन्दसकाशैः	१४३	एकेन साधुना तत्र	२५६
उपायः सर्वथा कश्चि-	३६७	ऊचे च तेऽसिनानेन	२८५	एको रथो गवश्चैक-	३५८
उपायश्चिन्त्यतामाशु	२६	ऊचे चन्द्रमरीचिश्च	३४६	एत मुञ्चन्त्वमी दोषा	११६
उपायारम्भमुक्तस्य	१५१	ऊचे च वायुपुत्रेण	३२८	एतयोः स्ववतोरेवं	१४२
उपालङ्गमिदं किं स्यात्	१३७	ऊचेऽपराजिता हा त्वं	७६	एतश्च वनमायाता	२६२
उपासीनस्य चाख्यातं	१०६	ऊचे रघुकुलोद्योतं	१६४	एतश्च सर्वरोगाणा	३१२
उपास्तिर्वेदि देहीति	६६	ऊचे विभीषणो नत्वा	३५६	एतश्चाग्निमानेन	२५६
उपागाणां पतिः किं स्यात्	३२	ऊचे वैता हृतस्वान-	११	एतत् चेत् कुरुषे सर्व-	१२१
उपोषातमहादाह-	४०१	ऊर्ध्वपादमधोऽधीषं	१३४	एतत्तस्वामिनः प्रीति	३४०
उल्काभिर्नु जगद्व्यासं	२०५	ऊर्या मात्रा सह प्रातः	६२	एतत्तस्मिन्निवासिन्यः	१४६
उल्कालाङ्गुलदिव्याख-	३४६	[ऋ]		एतत् पश्यसि यद् विप्र	१३७
उल्कालाङ्गुलपार्थि तं	३१०	ऋजुनैव च रूपेण	२०३	एतत् प्राणदटासक्तात्	२४७
उल्केय सङ्गतादित्य	३१६	ऋणता तच्चिरं नीव-	७८	एतत्सर्वं मम भ्रातः	३२८
उल्लङ्घयस्तेऽति तुङ्गेपु	७	ऋद्धया च परया युक्तो	१८५	एतत्र कुचते बन्धु-	३०५
उल्लङ्घ्य सुमहारण्यं	१४७			एतन्नगरनाथस्य	१७१

एतस्मिन् कुसुमैः पूर्णा	३३४	एवं चिन्तयतस्तस्य	२८२	एवं स गदितो दध्यौ	११०
एतस्मिन्नन्तरे प्रातः	२४४	एवं चिन्ता परे तस्मिन्	३१	एवं सङ्गान् सावसानान्	२५१
एतस्मिन्नन्तरे जाते	२५८	एवं चिन्तामुपेतायाः	७४	एवं सुदुःखितमतिः	३
एतस्मिन्नन्तरे दिव्य-	३८५	एवं जनः परां भक्ति	४५	एव हि बोधिता तेन	३३२
एतस्मिन्नन्तरे प्राप	२७२	एवं तयोः समाखर्प	५६	एवमथु शुचं मुखं	७५
एतस्मिन्नन्तरे प्रासः पद्मः	१८	एव तयोर्महायुद्धे	३६०	एवमस्त्विति तेनोक्ते तारं	५८
एतस्मिन्नन्तरे प्रासः स्वय-	२५८	एव तिरस्कृतो माया	२५८	एवमस्त्विति तेनोक्ते दध्मुः	१६४
एतस्मिन्नन्तरे ताधु	६	एव तौ चारुधामानि	१८८	एवमस्त्विति भाषित्वा	१२२
एतस्य वचनस्यान्ते	२७१	एवं तौ विहितालापौ	१८७	एवमस्त्विति संभाष्य तं	३०६
एतस्या स निषण्णेति	२८१	एव दुर्गवरे जाते	२६७	एवमस्त्विति संभाष्य देवीं	१२
एतस्याकृतिमाश्रित्य	२७१	एवं धर्मिणि देहेऽस्मिन्	१८६	एवमस्त्विति संभाष्य नृपो	११४
एतामिरपराभिश्च	३१६	एव ध्यात्वानुराधाद्यैः	२७५	एवमस्त्विति संभाष्य प्र-	३६४
एतामनायकीभूता	३८१	एव नानाविधैर्यै-	२५६	एवमस्त्विति सम्भाष्य	
एतावतैव ससारः	४११	एव निगद्य शाखाया	१४६	प्रयुष्य	२०७
एतास्त्वया परित्यक्ता	१६३	एवं निश्चितचित्तो	८५	एवमस्त्वित्यभीष्टाया	१६७
एते किं लोचने तस्या	२८२	एवं परममाहार-	३३३	एवमादिकृतालापाः	११६
एते खण्डत्रयाधीशा	२६७	एवं प्रमातसमये	५२	एवमादि गदन्तस्ते	८८
एते चान्ये च भूयासश्चारु	१६५	एवं प्रभो क्रोमीति	१३१	एवमादि चिर कृत्वा	४०३
एते ध्वजोपरिन्यस्त-	३४८	एवं प्रयत्नीकृतयोग्य-	३६८	एवमादितर भूरि	३०१
एतेऽन्ये च महासस्त्वा-	१५६	एव प्रवदमान त	३५३	एवमादिभिरालापैः	३६३
एतेऽन्ये च महासत्त्वा महा-	३६	एव प्रशान्तसरम्भे	१६५	एवमादिमहादोषा	६६
एतेऽपि ब्रह्मिनः सर्वे	२६६	एवं भगवतो वक्त्र-	२५६	एवमादीनि वस्तूनि	१४२
एतेऽपि वातरहोमी	३६४	एवंभूतापि नो यावत्	२३०	एवमाद्याः क्रिया क्लिष्टा	२६५
एते वाजिभ्युतैः कान्तै-	३६८	एवं मनोरथं सिद्धं	२२६	एवमाद्याः पुराभिषयाः	३५७
एतैरन्यैश्च विविधै-	३१०	एवं मोहपरीताना	२०८	एवमाद्याः सुवहवः	२८६
एतौ प्रयागि शरणं	२०१	एवं युक्तो महाभूल्या	३०७	एवमाद्या महायोधा	२५०
एव कुरु न चेदेवं	१६३	एवं वर्षसहस्राणि	४०४	एवमित्युचिते याता	११४
एवं कृतध्वनिभ्राम्यन्	२३६	एव वायुगतिः पृष्टो	१५७	एवमिन्द्रजितेनापि	३८१
एव कृतसमालापा	४११	एव विचिन्तयन्तीभिः	१२३	एवमुक्तः म तैरुचे	११६
एवं कृते न ते भेदं	१६७	एव विदिततस्त्वाना	३५६	एवमुक्तं त्वया नाथ	१४६
एवं गजेन्द्रवद्बद्ध	३६६	एवविधममु युद्धे	२८६	एवमुक्तं समाकर्ण्य क्रुद्धः	२६०
एवं गतेऽपि भिन्नाणः	१६३	एव विध्वंसयन् यावन्	११७	एवमुक्त समाकर्ण्य सीता	२६०
एव गतेऽपि चेत् कर्तु	३८६	एवं विनिर्गता योधाः	३६३	एवमुक्तस्तथा साकं	१६२
एवं च चिन्ता सततं प्रपन्नो	१००	एव विभूश्य विद्रासः	२६८	एवमुक्ता विसृज्यात्तौ	२३२
एव च पर्युपास्यैतौ	२०१	एवं विभूश्य सज्जात-	२७०	एवमुक्ता सती सीता	२५२
एवं च मानसे चक्रे	७१	एवं विरचिता क्षोणी	३६८	एवमुक्ते कुमार्रीणा	१२३
एवं च वाचिते लेखे	१५६	एवं विलापिनी कुच्छ्रा	४०७	एवमुक्ते तथा स्वैरं	१३३
एवं च सुचिरं खल्व्वा	२६६	एव विषमता प्राप्ते	३०१	एवमुक्ते विमुक्तः सन्	८०
		एवं संख्यबलापेतं	३५८	एवमुक्तेऽखसपूर्णा-	३८

एवमुक्तो जगादासौ	७५	कदम्बविटपौ भीमो	३६४	कर्मभारगुरुभूता	१४१
एवमुक्त्वा तथा कृत्वा	१४२	कदम्बैस्त्रिलकैर्लोमै-	२११	कर्मविचेष्टितमेतदसुरिमन्	३२३
एवमुक्त्वाभिमानेन	१६३	कदाचारसमुद्रे त्वं	३४१	कर्मानुभावतस्तच्च	३७
एवमुक्त्वा मरुपुत्र-	३२३	कदानु विषयास्त्यक्त्वा	५०	कलं प्रवरनारीभि-	५८
एवमुक्त्वा शुचा अस्त	१४५	कनकस्याग्रजो राजा	५८	कलाकलापनिष्ठातो	४२
एवमुपान् विमुञ्चन्तं	२८३	कानने सीतया साक-	१२५	कल्पोद्धानसमञ्जस्य-	१८५
एवमुद्गतसदृष्टि-	१४१	कनीयास्तस्य धर्मोऽय-	६६	कल्पिताः पुरुषोभादव्याः	३४६
एवमुद्गमापन्नो	१४३	कनीयानसि स त्वं मे	३८६	कल्पोला इव निर्जग्मुः	१२७
एवमेकाकिना तेन	११७	कन्दमूलफलाहारप	२१	कश्चित् पररुहं प्राप्तो	८६
एवमेवेति सोऽबोचबद्	३२२	कन्यया मुदितश्चौरः	२	कश्चित् सुरतखिन्नाङ्गो	८६
एष खड्गधनुच्छाय-	११८	कन्या त्वय जुषाचैन	४०५	कश्चित् सन्ध्याय दन्ताग्रैः	३६१
एष प्रत्युपकारं मे	२७५	कन्याभिर्घटकैः स्याद्	१०१	कश्चिदङ्गता कान्ता	४०८
एष ममोपकरोति सुचेताः	३७३	कन्यामेकामुपादाय	१६७	कश्चिद्विघटित इष्ट्वा	३६१
एषा मध्ये न पश्यामि	२६८	कन्या स्वयवरा साध्वी	५५	कथं चिन्तितमेतन्मे	२६६
एषा क्रौञ्चरवा नाम	२१६	कपिकेतुरवाचेदं	२७६	कष्टमेककर्मोक्ति	१६०
एषा गन्तासि वैधव्यं	३३२	कपित्थवनमानम्र	४०४	कष्टावस्थां ततः प्राप्तं	१३१
एषा नीला शिला स्यात्तिमिर-	२१६	कपिध्वजबलं तेन	३७८	कस्त्वं कस्य कुतो वाऽसि	४००
एषा यातानेकविलासा-	२१८	कपिमौलिभृतामीशं	३४२	कस्त्वसौ भविता लोके	३१५
एषाऽसौ विजनेऽरुण्ये	३०८	कपोतभृङ्गराजश्च	२१२	कस्मादयं जनोऽस्माकं	२७२
एषोऽपि दुःखः परमो महीध्रः	१६८	कमण्डलुशिखाकूर्च-	१३३	कस्मैचित् पूर्ववैगुण्यं	८६
एहि बत्स निर्जं रूपं	२२८	कमलजालकरानितमस्तकः	२१४	कस्य पुण्यवतो गोत्र-	१७०
एह्यागच्छ क्व यातोऽसि	१५०	कमलनिकरेष्वत्र स्वेच्छं कृता-	२१७	काश्चिच्चिच्छेद बाणोवैः	२०
एह्यागच्छ (प्र) यातोऽसि	२३६	कम्बोजेन सताकारि	७०	काश्चिदन्योन्यघातेन	११७
		कयानः क्रमशो भूत्वा	६३	काश्चिदश्रुतवृत्तान्तान्	२८५
[ओ]		कयानोऽयं सुरो हर्ता	६३	काश्चिद् विशातवृत्तान्तान्	२८५
ओदनच्छादिते हेम-	३५५	करञ्जकुष्ठकालीयै-	२१२	काको नदा इति ख्याता	१३०
		करवालीकराकूर-	१८२	का क्व कामिस्त्वया दृष्टा	३६
[क]		कराञ्जकुष्ठमलाङ्गेन	१६६	काचिजगाद ते नाथ	३६१
कचिद्वावेन निर्दग्ध-	१२६	करिवालककर्णान्त-	१८६	काचित् सन्नाहरुदस्य	३६३
कचेपु काश्चिदाकृष्य	११७	कदमण बहु कुर्वन्त्यः	१२०	काचिदिन्द्रमुखी वामे	३३६
कटकस्य प्रसादेन	२६३	करेण हृदयं मार्ष्टि	२६४	काचिदीर्घा कृतं त्यक्त्वा	४०८
कटिसूत्रमणिप्रायाः	१६	करेशोरवतीर्याऽसौ	५२	कचिदुत्तानित भर्तु-	३६२
कथं जानासि देवीति	१५०	कर्णकुण्डलनद्याश्च	३३५	काचिद्वृत्ते यथैततो	३६२
कथं त्रिभुवनख्यातो	३४	कर्णकुण्डलनामात्र	२०३	काचिद्वृत्तस्ते भर्तुः	३६२
कथ निरुत्तरा यूय-	२४०	कर्णयोरतिदुःखानि	१४३	काचिन्निवर्त्यमानापि	३६३
कथं मे न भवेद्भर्त्ता	७४	कर्ता रोगसहस्राणा	४०२	कातरस्य विषादोऽसि	५६
कथं वा तव मनोऽयं	१११	कर्तुं प्रत्युपकारं यो	३०५	का तस्य बुद्धिर्न्यायेषु	३०५
कथं वा मुच्यते पापै-	६	कर्मपाशैर्यथा जीवो	३६२	कान्ताविवोगदावेन	२७५
कथाभिः स्मिन्नुक्ताभिः	१५१	कर्मभक्त्या विनेन्द्राणा	६८	कान्तिमासि मुखं दृष्ट्वा	३२७
कथितं ते महाराज	२८५				

कान्ते रामपुरीं किं नो	१४१	किं वा दुर्गं समाश्रित्य	१६	किष्किन्वेशस्ततो भ्राम्यन्	२६६
कामदाहरहीतात्मा	२३७	किं वा दुष्टं द्विजा केचि-	२३५	किष्किन्वेशस्ततोऽवोचत्	३७६
कामारिणः कामराशिश्च	३६४	किं वा मदिरहादुग्ध-	३२८	कीदृश्वामं मया नाथ	३८
कामार्षिणा पर दाहं	७७	किं वृथा गर्जसि जुद्ध	२४५	कीदृशी वा सती सीता	३२२
कामार्थाः सुलभाः सर्वे	३६६	किं स्यादसुन्दरायोऽयं	३१७	कीर्तयन्ती गुणान् भूयः	२३८
काय म्लेच्छो महाराष्ट्रः	१३१	किङ्कराणामतः पत्न्यो	३६१	कीर्तिरस्य निजा पाल्या	३३०
कारणं यदतिक्रान्त	५६	किङ्किणीजालयुक्तानि	१६५	कुक्षिजातोऽपि पुत्रस्य	१२
कारयाम्पूर्मिका त्वार्णा	११०	किञ्चित् किल त्रपाभाजं	२२६	कुङ्कुमप्रविलिताङ्गा	७२
कार्मुकं क्षिप्रमुञ्चाएवं	११६	किञ्चित् पद्मवियोगेन	६१	कुटुम्बभेदने दक्षैः	११३
कालः कर्मेश्वरो देवं	८२	किञ्चित् सम्भ्रान्तधीर्वाति	३३६	कुतः किं राजपुत्रीति	२१२
काल देरो च विनाय	१७६	किञ्चिदाह्वयते दत्त-	२६४	कुतः श्रद्धाविमुक्तस्य	६८
काले तत्रैव नेघ्नन्ते	१२३	किन्तु त्वद्विरहोदार-	३४५	कुतः समागतः कस्त्वं	१७३
कालेनाथ सुतं देवी	१०	किन्तु राज्ञौ निशीथेऽस्मि-	४०८	कुतः समागतावेतौ	१७०
काले महान्तिक्रान्ते	२०५	किन्त्वयं वर्ततेऽत्रैव	१६१	कुतोऽप्यपुण्यतः क्षिप्रं	१६०
कालो नाम यमो वायुः	११६	किमङ्कदो गतो मेघ	२७२	कुतोऽयमीदृशो वायु-	४०३
कालो नैष विषादस्य	२४६	किमञ्जनासुतं गत्वा	२६६	कुन्तासितोमरञ्जत्र	२६१
काश्चिददुःकण्डया युक्ता	१०२	किमत्र बहुनोक्तेन प्र-	३१८	कुन्दातिमुक्तकलता	१६५
कापायप्रावृता चाहं	१६२	किमत्र बहुनोक्तेन समु०	३३१	कुमतेस्तव धीरेषा	१२१
काष्ठाद्यानयनासक्ता	७२	किमथैव करोम्यन्या	८१	कुमाराः परमोत्साहा	३६
किं करिष्यति वः शत्रु-	३६६	किमधीतैरिहानर्था	१८८	कुमाराभ्या सम गन्तु-	८२
किं करोमि वच गच्छामि	४०३	किमनेन विचारेण	८१	कुमारे च ह्यवा माता	१६३
किं करोमि वच गच्छामि		किमयं वनदेवीभिः	१५०	कुम्भकर्णेन्द्रजिन्युल्लै-	३५३
विवर	१४३	किमयं शक्रनिश्चयं	३७८	कुम्भीपाकाख्यमाख्यातं	७
किं कार्यं पशुवञ्चैस्ते-	१७	किमिति स्वविनाशाय	१६३	कुरूपादारुणारावा	७
किं किं भो ब्राह्मण ब्रूहि	१३६	किमिदमिह मनो मे किं	२३१	कुर्वन्तीव लतालीला	२६३
किं किमेतद्दहो नाथ	२३४	किमियं जानकी नैषा	२८१	कुर्वन्ती सा महाकन्दं	२८७
किं तदमार्थं कामेयु	१६२	किमेतदिति प्रष्टश्च	२६६	कुर्वन्तु सर्वथा देवा	४००
किं तिष्ठत सुविश्रवाः	३३६	किमेष रमते युद्धे	११६	कुर्वेनं मुक्तकं भद्र	१६५
किं त्वमिच्छसि वैदेहीं	२६७	किमेषा नगरी नाका-	१३७	कुलं गोत्रं च संश्राव्य	३२७
किं न प्रतिभये शीघ्रं	२८६	किमेषा नर्दति क्षीणी	२४६	कुलपर्वतकुञ्जेषु	२८५
किं न स्पृष्टं न किं दृष्ट	६२	कियन्तः कथयिष्यन्ते	३६५	कुलपर्वतसयुक्तां	२५२
किं नाथाकुलता धत्से	२५४	कियत्यपि ततोऽतीते	५०	कुलपोतं निमज्जन्तं	८४
किं नु दुःखेचरैः संख्ये	३२८	किष्किन्ध च पुरं गत्वा	३१६	कुलमेक पिताप्येक-	४२
किं नो ग्रहेण किं भोगैः	८६	किष्किन्धस्वामिनोऽन्येऽपि	३४७	कुलिशोरनाना च	४६३
किं पुनस्तस्य माहात्म्यं	१५	किष्किन्धाधिपतिर्वातिः	३४८	कुशाग्रनगरेऽयोऽयं	१३६
किं भीतोऽसि न हन्मि त्वां	३६०	किष्किन्धाधिपतेः सैन्ये	३७८	कुसम्बन्धं परित्यज्य	३४
किं वा कृतार्थता प्राप्तः	२८२	किष्किन्धाधिपतिपुरारल	३५३	कुसुमग्रहणव्याजात्	१६१
किं वाऽप्यन्तज्जुवाचैनं	२४२	किष्किन्धेन्द्रेन्द्रजिह्वीरौ	२५०	कृचाञ्छादितवत्स्को	१०५
किं वात्र कृत्यं बहुभाषिते	२२	किष्किन्धेशः समाल्याख्यं	३६०	कूर्मपुष्टमहातेजः	३०३

कूलेषु सरितामद्रेः	१३५	केचिज्ज्वराकुलाः पेटुः	४०	क्रमेण मानिनस्ते च	४०
कृच्छ्राभियग्य शोकं च	१२६	केचित् केवलमासाद्य	६०	क्रमेणातीत्य शिविरं	११६
कृत कृतमहो साधु	३०१	केचित्पन्नगवातेन	४०	क्रमेलक्रमहारवा	३६८
कृत तैराननः श्रेयो	१०८	केचिदध्वजखेदेन	८७	कृग्यादा विरसं रेसुः	१८२
कृत परेणाप्युपकारयोगं	३०७	केचिदस्त्रविनिर्मुक्ता	३६१	क्रोडास्त्रवि लया देव	८६
कृत सौमित्रिणा नृनं	१७५	केचिद्वृक्षुर्यदि स्थानं	४०	क्रुद्धः सिद्धोदरो यत्ते	११०
कृतपूर्वापकारस्य	३६७	केचिद्भिन्नाज्ञनच्छायाः	१६	क्रुद्धा इव परं तीव्राः	४०१
कृतप्रचिन्तनामेवं	३२५	केतकीसृतिरजसा	२२३	क्रुद्धाच्चक्रचरादाज्ञा	४०२
कृतसमस्तजनप्रतिमाननाः	४४	केतुकल्पनदृष्टेन	३७६	क्रुद्धेन कुम्भकर्णेन	३७८
कृतसान्त्वनमप्युच्चै-	६१	केतुतोरणमालामि-	४३	क्रुद्धो जगज् सुग्रीवः	२७३
कृतस्मितोऽसावरादत्तमीपे	४१३	केयूररत्नजटिलै-	२५५	क्रूर्कर्मभिरन्यैश्च	२०४
कृतस्थास्योपकारस्य	३२६	केवलज्ञानसम्भूति-	१८३	क्रूरश्वापदयुक्तेषु	१६६
कृतान्तमेव निरुद्ध-	३७	केवलो द्रोणमेघाङ्गः	४०१	क्रोधसंस्पृष्टचित्तेन	३३६
कृतान्तापकृतं कि ते	२२८	केवल्यास्यात् समुद्भूता	१८८	क्रोशं क्रोश शनैस्तत्र	१६६
कृतापयामहाशीभं	३०२	केशभारं मयूरीषु	२८२	क्व गतास्ता नु नर्तक्यः	१६८
कृता मया प्रतिज्ञैर्वं	११३	केसरैश्चन्दनैर्नापै-	२११	क्वचित्तालादिभिर्वृद्धै-	१२६
कृतार्थवत्तातदशाननोऽसौ	४१३	कैकसीनन्दनोऽबोचद्	३२४	क्वचिदिदमतिपनवरनग-	२१५
कृतार्थभाषणस्यास्य	२४४	कैकसेयी सुतस्नेहाद्	२२६	क्वचिदुपमदगजपातित-	२१५
कृतावग्रहमेवं तमुवाच	६६	कैलासपर्वते पूर्वं	४१०	क्वचिदिदं क्वचित्पक्षं	२११
कृती चपलवेगश्च	३०	कैव वार्तां प्रीयन्त्या नु	२८	क्वचिद्भ्रमरसङ्घातै-	१७८
कृती सुग्रीववैदेहौ	३८१	को दोषः कर्मसामर्थ्या-	१६४	क्वचिद् वशिष्ठशिखाकारः	२१०
कृत्य किञ्चिद्विशदमनसा	२६८	को दोष इति सखिन्य	१२५	क्वचिद्द्विदुमसंकाशां	१७८
कृत्वा करपटं मूर्ध्नि	२५३	कोऽन्धःकूपं समापन्नो	२३२	क्वचिद् विभ्रान्तसत्त्वकं	२१५
कृत्वा चैत्ये नमस्कारं	६	कोपकम्पश्लथं चास्य	३४७	क्वचिन्नाट्य क्वचिद् गीतं	१६६
कृत्वा त विरथ भूयो	३७५	कोऽपराधो वदास्माकं	८६	क्वचिन्नाशेखरीभाति	१६६
कृत्वा निदानमेतस्याः	४०५	कोपदिमतसमायुक्ता	३४०	क्वचिन्नील क्वचित् पीतं	१०३
कृत्वापराधकः पूर्वं	८६	कोपेन तप्यमानस्य	२०४	क्व तत् क तत् प्रिये साधि	२००
कृत्वा पुरस्सरान् पद्म-	६४	कोऽप्युद्दामतयोद्यानं	३३६	क्व महासम्पदो देवैः	३४
कृत्वा पुराणवस्तुनि	१६२	कोऽप्येष पुरुषो नाथ	११८	क्व मे पापाधुना याति	२४
कृत्वा पूजा जिनेन्द्राणा	१६१	कोलाहलेन रम्येण	२१२	क्व यातमधुना तत्ते	३३१
कृत्वा बालतपः कर्हं	१८८	को वाच नृपतेर्दोषः	४६	क्व वयं क्षुद्रसामर्थ्याः	२८८
कृत्वा मे मस्ते पाद्	४०६	को वा प्रात्रव्यकालोऽस्या	३	क्व सौमित्रिः क्व सौमित्रि-	३९६
कृत्वा सुनिश्चत भृत्यं	१३२	कोऽसौ नाथेति तेनोक्तं	२०७	क्वासौ महामुनिः क्वासा-	१६७
कृत्वास्य महतीं पूजा	१६८	कौस्तुभकोत्कलिकाकीर्ण-	१६७	क्वेदानां गम्यते साधु	२४४
कृत्वेदमीदृशं सैन्यं	११६	क्रमाच्च यौवनं विभ्रद्	१११	क्षणं चिन्तागतः स्थित्वा	१६४
क्षपाणं यावदादत्ते	२०	क्रमादरिञ्जये जाता	३७२	क्षणं क्षाणाः क्षणं दण्डाः	३६२
क्षशीरदि गवाक्षेण	२५२	क्रमेण गच्छतश्चात्य	१७५	क्षणं स्थित्वा च वृत्तान्तै-	३२
क्षणसर्पं मृतस्तस्य	२०३	क्रमेण ताक्षमस्यन्तः	६०	क्षणं स्थित्वाऽतिरम्याणि	१६६
केकयानन्दनः श्रीमान्	१५८	क्रमेण प्रणमन् साधू	१८६	क्षणविरचितसर्वश्लाथकसंब्य	४१४

		[ग]		
क्षयाद्ग्नमिवालोक्ष्य	२०२			गिरिः सतमिरुद्यानै-
क्षणाभिषर्तते यावत्	२३६	गच्छु क्षिप्रं निबं धाम	१३१	गीतजल्पितमुक्तानि
क्षणेन प्राप्य संज्ञा च	३०	गच्छन्तं तं महाभाग्य	३०१	गीतनर्तनवादित्रै-
क्षन्त्य दुरितं किंचि-	१६८	गच्छतस्तस्य चात्नेन	२८२	गीतवृत्त्यादिसम्प्राप्ता-
क्षन्त्य देव यत्किञ्चि-	१४७	गजदन्ताग्रभिन्नस्य	३६२	गीतानुगमसम्पन्न-
क्षपितारिः समाहृतः	३७५	गजध्वजसमालक्ष्यौ	३६६	गीर्वाणकुमुदशेखरम्
क्षान्त्यार्या वृन्दमध्यस्था	३	गजवाजिविमानस्था-	३२२	गुड्डेन सर्पिषा दध्ना
क्षितिगोचरदूतोऽय	३४२	गजवीभत्सनामानौ	३६४	गुणश्रुत्यनुरागेण
क्षिप्रं समर्प्यता सीता	३५१	गजाह्वानगरादेत्य	४०६	गुणान्वितैर्भवंति जनैरलङ्-
क्षीणमत्वभिरमाङ्गं	३४४	गजोऽयमस्य शैलाम्-	३६	गुणोच्चारणसञ्ज्ञः
क्षुत्पूष्पापरिष्ठाङ्गा	४०४	गयाधिपसमेतोऽसौ	२०४	गुप्ता बहुविधैः सैन्यै-
क्षुत्पूष्पापरिष्ठाङ्गो	४०६	गतश्च लक्ष्मणः पथं	३२६	गुरुः प्रोवाच वचनं
क्षुदतिक्लेशार्दूल-	१०२	गताऽऽगता च सा तस्मै	२६३	गुरुणा च यथादिष्टं
क्षुद्रशक्तिसमासक्ता	२६६	गताया व्यसनं धोर-	३२६	गुरुपूजा परा कृत्वा
क्षुद्रस्याथ शिखी जातु	२६१	गते साधौ तपोयोग्य	३०६	गुरुभिर्भार्य्यमाणोऽपि
क्षुब्धः स्वासनकम्पेन	१६०	गत्वा कृत्वाञ्जलिर्दत्तः	१२५	गुरुरूचे न यो मार्सं
क्षुब्धकूपारनिर्घोषा	२११	गत्वा कथितसत्त्वैः	३८३	गुरुवाक्यानुरोधेन
क्षुब्धकूपारनिस्वानं	४१	गत्वा पवनपुत्रेण	३४६	गुरुपदेशयुक्तोऽसौ
क्षुब्धोर्मिणि जले सिन्धोः	३७२	गत्वा पवनवेगेन	६४	गुरुन् परिजन वृद्धान्
क्षेत्रवंशसमुद्रभृताः	२२५	गत्वा प्रबोधयिष्यामि	३०५	गुरोस्तस्य प्रसादेन
क्षेत्रिष्ठं प्रमदारत्नं	२६	गत्वा महेन्द्रकेयुश्च	३११	गृहं प्लात्रितुमारब्धा
क्षेमङ्करनरेशस्तु	१६०	गत्वा स यावदन्विष्य	४६	गृहण तट्टि देवि
क्षोणीक्षोभ पर प्राप्ता	३६८	गदाप्रहरणं विद्युद्वज्ज्वा	३८३	गृह्याय प्रहरागच्छु
क्षोभणो धुन्धुक्क्षामा	३६४	गम्भीरो दौन्दुभो धीरो	३०२	गृह्याणैतत्तत्स्तुभं
क्षमागोचरस्य निलयं	२७	गरुडाधिपतिश्चासौ	१६०	गृह्याश्रमे महावत्स
		गरुडेन्द्रस्य तोष च	३८६	गृह्विषर्मसमासक्तो
		गरुत्मकैतने तस्मिन्	३८५	गृहीतगमनक्षत्रैर्द्ध
		गरुत्मपक्षवातेन	३८५	गृहीतचलराज्यं तं
		गजितैरिति धीराणां	३६१	गृहीतश्रायमेतेन
		गर्भवासपरिक्षेप-	२२५	गृहीतसायकं हृष्ट्वा
		गर्भस्य एव चैतस्मिन्	१६३	गृहीतादत्सर्वस्वो
		गर्भे च तौ विदेहाया	६	गृहीत्वा च परा पूजा
		गले तदंशुकेनैव	११६	गृहीत्वा च प्रमोदेन
		गवाभरणज्जाताना	२००	गृहीत्वा समयेनास्य
		गवेषयत यत्नेन	२४७	गृहीत्वासौ ततो राज्ञा
		गहनान् कोकिलालापन्	२६३	गृहोपकरण भूरि
		गहनेषु समस्तेषु	२८५	गृह्णतु रुचितस्तुभ्यं
		गाढप्रहारदुःखात्तः	३६३	गृह्यता गृह्यता कोऽयं
		गायतोरक्षराण्येवं	१८१	गोधन्धारवसम्पूर्णं
				२६२
				२७२
				६८
				७२
				१८२
				३२५
				१६६
				२७६
				३१६
				११५
				१५
				६
				२०८
				६१
				२२६
				८
				२३४
				१३८
				३४१
				१०
				१२७
				४६
				३६०
				२६३
				७६
				६६
				३४७
				५
				२२७
				२२७
				३७८
				३०
				११
				१६५
				१५५
				११३
				१२०
				२३
				१०४

[ख]

खड्गघाटस्य खण्डोऽयं	२४२
खड्गगोशुलीढदेहश्च	२४५
खड्गि खड्गसमुत्कीढ	१०३
खरदूपणनामा त्व	२३३
खरदूपणशोकेन	२५६
खरेण सह संग्रामं	२४५
खर्चुरैरिहगुदैपाम्नि-	२००
खलीकारात्ततः पूर्व-	१८६
खिलोऽसौ धरणौ दुःखं	६१
खेचरा भूचपरचैते	५६
खगत मयमहादैत्य-	३६०
ख्याते शशिपुरे स्थाने	६६
खगतो धनगतिस्तीक्ष्णो	३४६

गोत्रक्रमसमायात-	४६	चक्षुस्तत्र द्रुतं केचि-	४०	चलिताश्चञ्चलग्रीवाः	२६१
गोपुरं च समासीद्	११४	चण्डविक्रमसम्पन्नो	२०३	चान्दनेन द्रवणैता	२६६
गोमायुप्रावृत्तान् कांश्चित्	२६६	चण्डतौटामिनीदण्ड-	३०६	चापं यावद्द्वितीयं स	३०६
गोशीर्षचन्दनेनैव	४१२	चण्डातकं समुद्दिद्य	१२७	चारणप्रियमुद्यानं	२६२
गोष्पद्रप्रमितं क्वैतेद्	३५६	चण्डोर्मिमालयाज्यन्तं	२४१	चारुणुरनिस्त्राना	१७
ग्रस्ताराक्षससैन्यास्तै-	३८६	चतस्रो यस्य सम्पन्नाः	३५	चारुवशप्रसूताना	२५८
ग्रस्यमानं निलं सैन्यं	३७६	चन्दनादिभिरालितं	३३३	चारुश्रीरिति विषयाता	२७६
ग्रहणं वा भवद्भिः किं	३५	चन्दनार्चितसर्वाङ्गः	३२७	चित्तोत्सवकरी पद्म-	२४०
ग्रहनक्षत्रपटल-	१३५	चन्दनेन विलितस्य	६५	चित्तोत्सवा समायुक्त-	५
ग्रामखेटमटम्वेषु	८७	चन्दनेन स दिग्भाङ्गौ	२१०	चित्रं श्रेणिकं ते बाणाः	३६२
ग्रामाश्चायतवापीभिः	१०५	चन्दनैररङ्गकैश्च	२१२	चित्रं सुशीवराजो मा	२७०
ग्रामे तत्रैव जातोऽस्मि	१४५	चन्द्रकान्तेद्रनीलान्तः	१८०	चित्रकूटः सुदुर्लभ्यः	१०२
ग्रान्णा निश्चूर्णं तद्रत्नं	३५५	चन्द्रविभ्रमिवाचूर्ण्यं	११५	चित्रपादपसङ्घातै-	२१२
ग्राहसहस्रचारविषमा	२१७	चन्द्रमःकान्तवदना	२३६	चित्रमासीद्यदृशाना	३०१
ग्रीष्मढामरकं धारं	१३५	चन्द्राशुरप्रतीघातो	३६७	चित्रमिदं परमत्र नृलोके	३२३
[घ]		चन्द्रादित्यसमे छत्रं	३८३	चित्रयत्याद्रीं सीता	२६५
घटस्तनविमुक्तेन	३३६	चन्द्रामा नाम चन्द्रास्था	२७६	चिन्तयत्येवमेतस्मिन्	३२०
घटिता सा ततस्तेन	११०	चन्द्रोदरसुतः सोऽयं	२४७	चिन्तयत्येवमेवारिमन्	७१
घनकालस्ततः प्रातो	१३५	चन्द्रोदरसुत प्राप्य	३५६	चिन्तयत्येवमेवारिमन्	१६६
घनच्छायाकृतश्रद्ध-	२६१	चम्पकैः कर्णिकारैश्च	२११	चिन्तयत्यतिक्रम्य	२७२
घनवाहनवीरोऽपि	३०८	चरमागाधरं दृष्ट्वा	१६३	चिन्तयतिदमन्यच्च	२६५
घनानामिव सङ्घास्ते	११८	चरितं निरगाराणा	५६	चिन्तयित्वाप्यसावेवं	५०
घृष्टावान् संप्रचार्येद्	१०	चविमिर्धातकीमिश्च	२१२	चिन्तयेव हतच्छायः	३४४
घृतक्षीरमिदं वातं	११५	चतुःषष्टिसहस्राणि	१६०	चिन्तयित्वा प्रमादेन	१६०
घृतसूपादिभिः काश्चित्	३३३	चतुरङ्गबलोपेतौ	१८	चिन्तास्य नित्यं मगधाधिपा-	६६
[च]		चतुरङ्गस्य देशस्य	१२२	चिन्तितं च मया तच्चे-	१११
चकार व्याकुलीभृता	२३२	चतुराननयोगेन	३८६	चिन्त्यमत्स्यपर नातः	२६०
चकारोपवने चन्द्र-	२४	चतुर्दशसहस्राणि	२२५	चिरं कृतरणोऽथार्यं	३७५
चक्रकृकचकुन्तासि-	३६६	चतुर्दिग्यः समायतैः	३४८	चिरं प्रार्थयमानोऽपि	३१५
चक्रकृकचवाशासि-	३८८	चतुर्विधमहासैन्य-	२५०	चिरात् कमलिनीगेहं	२२३
चक्रकृकचसंवर्त-	३२०	चतुर्विधास्ततो देवा	१८३	चिराद्दुपगतं कश्चिद्	८६
चक्रतुः परमं युद्धं	३१०	चतुर्विधेन महता	२४७	चिरान्मानुषनिर्मुक्तं	२३०
चक्रवाककृतच्छाया	५४	चतुर्भिर्विशतिं युक्ता	१४२	चिरायति कथं सोऽपि	२८२
चक्रशक्तिगदायष्टि-	३६१	चरितजननकालाऽभ्यस्त-	३६०	चिराय रक्षितं मानं	३६२
चक्रसन्नाहनिष्पेष	३७६	चलता पल्लवेनेयं	२१३	चिह्नानि विटनातस्य	३४०
चक्रेण महता युक्तो	१५८	चलत्कुण्डलविद्योत-	३२७	चूडामयि सुकल्पार्णं	१४७
चक्रेणानिलसुनुश्च	३१६	चलत्केतुमहाखण्डं	२५३	चूडामणिमिम चोद्धं	३३५
चक्रे योद्धुममिप्रायं	३७७	चलत्केसरसङ्घातैः	२५६	चूर्ण्यमानविमानेन	४०२
चक्षुस्ततो नियुज्यासा-	३१७	चलन्नीलोत्पलच्छाये	१६१	चैत्याङ्गणं समासाद्य	६८

सैत्यालय प्रभाते तं	१२३	जनसुत्तारथस्येप	१४१	जानत्याऽपि तथा मृत्युं	४०५
सैत्याल्यैरल तुङ्गै-	३४६	जनस्याश्राविकस्यापि	१८२	जानन् सफलमर्यादा	२६०
च्युतोऽतः पुष्करावस्था	६६	जनस्योत्सार्यमाणस्य	८२	जानन्नपि कथं सर्वं	२६१
च्युती तो मुन्दरी नाका	१८८	जनाना विस्मयकरं	१४५	जानामि नाथ ते भाव	३३५
[छ]		जनोऽविदितपूर्वो यो	२३०	जानास्येव विद्योग ते	३६६
छत्रचामरलम्बूय-	६७	जन्तुरेक एवाय	७४	जानुं क्षितितले न्यस्य	२८४
छायया तुङ्गशृङ्गाणा	१७८	जन्तुना दुःखभूयिष्ठ-	२५६	जानुन्यस्तमुहुःक्षस्त-	१७५
छेकहसाक्षिचरं त्रस्ता	१२७	जन्मनः प्रभृति क्रूरः	१०६	जामाता लक्ष्मणाऽय ते	१५१
[ज]		जन्ममृत्युजरात्युय-	२७२	जामात्रेऽपि मुसम्पन्न-	११५
जगतो गुरुभूतस्त्वं	३११	जन्ममृत्युजराव्याधै-	८४	जाम्बूनदमवान् कुम्भान्	१७
जगदुश्चैवमन्योऽन्यं	२५	जन्मान्तर प्रात इवाय-	४१२	जाम्बूनदमयो यावत्	३५२
जगाद च किमद्यापि	१७३	जन्मान्तरकृतस्यास्य	१६५	जाम्बूनदनुताद्याश्च	३७७
जगाद च कुदूतस्य	१५८	जन्मान्तरार्जितक्रोध-	३७५	जाम्बूनदस्ततोऽवोचत्	२६०
जगद च न देव त्वा	१२०	जम्बूद्वीपमहीध्रस्य	२८६	जाम्बूनदादयः सर्वे	२६४
जगाद जानकीनाथ	१५६	जम्बूद्वीपस्य जगतो	२२४	जाम्बूनदो महाबुद्धिः	२६४
जगाट भद्र नो वेधि	२४६	जम्बूमाली शिखावीरो	३६४	जायते ज्ञानदानेन	६७
जगाट प्रणतो वासिः	३४५	जय वर्षस्व नन्देति	२५३	जायते प्रातःकम्पाना	५१
जगाद मुनिमुख्यस्त-	१८६	जयशब्दसमुद्घोष्य	२६५	जाया न्यग्रोधजा श्रित्वा	१०४
जगाद राधवः किं नु	२३५	जराधीनस्य मे नाथ	४८	जायावैरप्रदीप्तोऽय-	२३७
जगाद वज्रकर्णश्च	११४	जरारीगविहीनाश्च	२२५	जिघासन्त तमालोक्य	१८७
जगाट वाऽतिद्वष्टा	१३६	जलं प्रार्थयमानाना	७	जितपद्मा ततो भीतां	१७६
जगाद विहसन् भृशुद्र-	१०७	जलबुद्बुदनिस्सारं	५०	जितपद्मा ततः प्राप	१७४
जगाट व्याकुलः किञ्चि-	२५६	जवनाश्चरथारुढा	३१६	जितहसगतिं कान्तं	२१०
जगाट श्रेणिको नाथ	१	जातमात्रा मृता नाह	४०३	जित्वा तमपि सद्ग्रामे	३८६
जगादाथ यथावृत्त	२६६	जातमुर्वीतल सम्यक्	५१	जिनमार्गप्रवीणासौ	३००
जगादासौ समर्त्तं भो	७३	जातरूपधरौ कान्ति-	१८०	जिनशाननवर्गेण	११३
जगादेति च तत्रैकः	३	जातश्चाभिमुखः शक्तेः	१७१	जिनानर्चति यो भक्त्या	६६
जगादेन्द्रजितः क्रुद्धः	३७६	जातस्य नियतो मृत्यु-	६२	जिनेन्द्रविहिते मार्गे	३२८
जगाम च समुद्रेश	२४१	जाता चक्रधरेणाऽहं	४०४	जिनेन्द्रशामनासक्ता	४०२
जगौ च वाण्यूर्णास्था	२६०	जाता मनस्विनीदेव्याः	६३	जिनेन्द्रसमता याता.	२६५
जगान जानुना काश्चित्	११७	जाताया सुप्रसन्नाया	१४७	जीमूतमलनिमुक्तं	२२३
जज्ञाथेगात्समुद्रद्वी	३३८	जाता विशुद्धवशेषु	१६३	जीवं जीवकभेदगुण-	२१२
जननः कनकं हृष्टा	१८	जाता सा विषये कस्मिन्	२३१	जीवन् पर्यति भद्राणि	२८६
जननः कृषिमाश्वेन	६०	जातुच्चिद्विचरन् व्यामि	४००	जीवत्येवानगुणस्य	१६३
जनस्तु सखेदाङ्गः	३६	जातेन ननु पुत्रेण	७६	जीवनशिरनन्तोऽयं	६८
जननेन च साक्रेता	१५	जातेऽस्य वाग्वर्तिनि रौद्र-	१३२	जीवन्तोऽग्निम वेपि	२८२
जननेन ममासख्यै-	१११	जातो वायुकुमागेऽभा-	४०६	जीवितं चमितामिष्ट	७७
नवर्षो बालनृप्राया	५५	जातो हेमप्रभौ पदौ	२०२	जीवितास्तेऽस्मन्नु-न	२०१
नवर्षोऽथोचदत्यन्त-	३४	जानक्या सह तन्मन्य	१६६	जीवितस्य स्वमेवैः	८०

जीविताशा परित्यज्य	३६७	तं लङ्कामुन्दरी भूयो	३२०	ततः क्षणमसौ सङ्घ-	२०४
जीविताशा समालम्ब्य	२८७	तं विसर्पमटामोदं	११०	ततः क्षणात् परित्यज्य	२२६
जीर्णवस्त्रावशेषाङ्गा	६२	त दृष्ट्वा सुन्दराकारं	१७३	ततः क्षुब्धापगानाय	१७५
जृम्भोत्तानीकृतोरस्को	२६५	तर्कं घृसरसर्वाङ्ग-	२८६	ततः खेचरपृष्टोऽसौ	४०२
जैनं ध्याकरणं श्रुत्वा	१८७	तच्छ्रुत्वा भूपतिस्तस्यै	१६१	ततः पञ्चमुखोऽवोच-	२६६
ज्ञातमिश्रशेषकर्तव्या	१५०	तच्छ्रुत्वा रावणोऽवोचत्	२६१	ततः पद्मः समुत्सथौ	४०
ज्ञातमिश्रशेषवृत्तान्तै-	१५१	तच्छ्रुत्वा वचनं सद्यः	३२४	ततः पद्मप्रमोऽवोच-	२७७
ज्ञातमेव हि देवस्य	३००	तच्छ्रुत्वा विगतक्रोधो	३०१	ततः पद्मो जगादेद	८६
ज्ञातश्चानुमतिं प्राप्य	२७१	तच्छ्रुत्वा विविधं विभ्र-	२८७	ततः पद्मो जगादैवा	२२६
ज्ञात्वा तदीदृशं कर्म	२०४	तच्छ्रुत्वा समुगाख्यान	२९४	ततः पद्मो जगादैवं किं न	६५
ज्ञात्वापहृतमार्त्मानं	२३८	तच्छ्रुत्वा सुतरां पद्मी	२०८	ततः पद्मो जगादैव ता नः	१४३
ज्ञानत्रितयसम्पन्नौ	२००	तच्छेन कथितं रम्यं	१६८	ततः पद्मो जगादैव विभ्र-	७६
ज्ञानध्यानहरैः कान्तै-	३२०	ततः कपिध्वजावेवं	२७४	ततः पद्मो निवार्यता	१६०
ज्ञानविज्ञानरहित-	२	ततः कपिध्वजैर्गोधा	३१६	ततः पद्मोऽपि तत्पाणौ	७८
ज्ञापिताः सेवितद्वाप-	४०८	ततः कर्मणि निर्दृष्टे	१२६	ततः परं परिप्रासा-	३३०
ज्ञायते देवि नाद्यापि	४००	ततः कर्मानुभोवन	१६३	ततः परममित्युक्त्वा धनुषी	३६
ज्योतिर्वरे गते तस्मिन्	१८३	ततः करतलासङ्ग-	१५	ततः परममित्युक्त्वा वार्ता-	४२
ज्योतीरेखेव काप्येवा	१४८	ततः करिणमारुह्य	१६४	ततः पराद्गुह्यीभूता	१६
ज्योत्स्नाकृताद्दृहासाया	६२	ततः कलाकलाप्रज्ञा	७४	ततः परिकरं बद्ध्वा	२६५
ज्योत्स्नया सहितश्चन्द्रो	१५१	ततः कल्याणमालाया	१२६	ततः पर्येष्ट्य विपिने	२४२
ज्योत्स्नाकृतमकरा-	३७४	ततः कान्तकरस्यर्श-	११	ततः पलायनीयुक्तान्	३८६
ज्वलद्भारकुटिले	७	ततः कपिध्वज सैन्य	३८८	ततः पञ्चवक्रान्ताभ्या	१५०
ज्वलद्वियुद्धरुक्माम्बु-	३०२	ततः कर्षुकिम्बान् दृष्ट्वा	३३६	ततः पुण्योदयात्पद्मः	३८२
ज्वलत्स्फुलिङ्गमीमानै-	२५६	ततः कालानलाकारो	२०४	ततः प्रकुपितोऽवोचद्	४७
[भ]		ततः कालो गतः क्वापि	५४	ततः प्रणम्य भूयोऽसौ	२४४
भर्भर्राहेतुक गुञ्जाश्च	३६८	ततः किञ्चिन्मधुस्वाद	२५७	ततः प्रत्युपकारं कं	३३
[ङ]		ततः किलापरैः क्रूरैः	३३७	ततः प्रफुल्लाम्बुजलोचनेन	४१३
हुदौकिरे च भक्त्याख्या	१८०	ततः क्रुमारकोपस्तं	३८६	ततः प्रबुद्धचित्तं	१५२
[ङ]		ततः कुक्षिपुहां तस्याः	३१८	ततः प्रभृति चास्माक-	३१५
दौकितश्च स मायाश्वः	२८	ततः कृतमहाशोभं	३६	ततः प्रभृति सक्तोऽसौ	२०३
दौकित्वा वज्रकर्णस्ताः	२७४	ततः कृत्वा जिनेन्द्राणा	३६	ततः प्रमदसम्भार-	२००
[त]		ततः कृत्वा जिनेन्द्राणा पूजा	१६७	ततः प्रफदती माता	७६
तं कपिध्वजमालोक्य	१२२	ततः कृत्वा रणक्रीडां	२७८	ततः प्रमजित्वां वाञ्छा	२०८
तं क्रीडन्तं जनो दृष्ट्वा	२८६	ततः कैःपि ते दृष्टाः	१५१	ततः शत्रुदमोऽच्येन	१७४
त च विशयं ब्रुत्तान्तं	१४८	ततः क्रोधपरीताङ्गः	१५७	ततः शनैरच्छुसितोऽवदा	४१२
तं च सिंहवं श्रुत्वा	२३७	ततः क्रोधपरीताङ्गो	२४६	ततः शरदत्तुर्जित्वा	२२३
त द्रोष्टं धनुःपार्ष्णि	७०	ततः क्रोधपरीतेन	२४५	ततः शाल्योदनः सृण-	१२५
तं दृष्ट्वा मारुतिर्दध्या-	३१८	ततः क्रिष्टेन सन्तापो	३७४	ततः शुद्धप्रमोदः सन्	२८
तं भस्मीकृतमालोक्य	३६३	ततः क्षणं बिलम्ब्यैतौ	१२६	ततः शोचति निःश्वासात्	२४

ततः शोणितधारामि-	२३३	ततः सौरभसंरुद्ध	४०१	ततस्तयैवमित्युक्ते	२५५
ततः श्रुत्वा कुमारं त-	२५	ततः स्थित्वा क्षणं विस्मयं	३२४	ततस्ता गुणलावण्य-	८४
ततः श्रेणिक वैदेही	३२६	ततः स्थित्वा पुरस्तस्य	३६	ततस्तांन राघवोऽञ्च-	८८
ततः संज्ञा समासाद्य	२२८	ततः स्पन्दनमारोप्य	१७५	ततस्तापसता प्राप्य	१६३
ततः संधारयन् सैन्य-	२०	ततः स्वपुरुषासक-	२३८	ततस्तिर्यक्तु सुचिरं	३७२
ततः संवेगमापद्य	४	ततः स्वमन्यथाभूत-	२०२	ततस्तुष्टः प्रयातोऽसौ	११४
ततः सख्या विमुक्तासौ	२८४	ततः स्वयंवरोदन्तं	५६	ततस्तुष्टोऽवदत्पदमः	११५
ततः सङ्गीतमाकर्ण्य	४०८	ततः स्वैरं मयाद् भ्रष्टो	२४	ततस्ते कथयाम्बकु-	५५
ततः सदनयाताना	४३	ततश्चन्द्रगतिः श्रुत्वा	२७	ततस्ते क्वयुग्माब्ज	१८१
ततः स पिङ्गलाख्योऽपि	२	ततश्चन्द्रायणोऽञ्चोचदीध-	३२	ततस्तेऽप्यन्तवित्रस्ता	१३०
ततः सतिद्विपारुद्ध-	१५३	ततश्चन्द्रायणोऽञ्चोचदीमान्	३२	ततस्तेन सुश्रुत्येन	५
ततः सभ्रातृकं पद्मं	२७८	ततश्चपलवैगारख्यं	२७	ततस्तेन सधुद्दिष्टं	१३८
ततः समन्तादनुपाल्य	३१२	ततश्च माधवीतुङ्ग-	२६	ततस्ते निम्नगा हृष्टा	८८
ततः समाकुलत्वान्तः	३६६	ततश्च श्रुतवृत्तान्तो	३१६	ततस्ते पुनरित्युजु-	८६
ततः समुत्सुकः पद्मः	२८८	ततश्च विनयी गत्वा	१२१	ततस्ते बहुजलत्वेन	३७७
ततः समुद्रवातेन	२४६	ततश्चामीकरानेक-	२११	ततस्ते भूमहीप्राप्र-	१०२
ततः सम्भाषण प्राप्य	२२६	ततश्चालीकमुग्रीवः	२७६	ततस्तेऽवहिताः श्रुत्वा	३८३
ततः सरभसस्तत्र	११८	ततश्चितितमात्रेण	४०८	ततस्ते सुखसम्पन्नं	१३६
ततः सर्वसमृद्धीना	४५	ततश्चिरं वनं भ्रान्त्या	३२६	ततस्तेः पक्षैर्वाक्यैः	२४५
ततः सर्वहितोऽञ्चोचन्	६२	ततस्त तादृशं ज्ञात्वा	२५७	ततस्तेर्विषिकाकोशैः	३४२
ततः सर्वाङ्गकुशलौ	१८	ततस्तं बालकं कान्त	११४	ततस्तौ तद्दिगरो ज्ञात्वा	१६०
ततः ससम्भ्रमत्वान्तः	२८२	ततस्त शोकमारेण	५६	ततस्तौ परया द्युत्या	१८६
ततः ससार पद्मामः	२७७	ततस्तं विद्युदुद्योत-	२८३	ततस्तौ सम्भ्रमी ज्ञात्वा	१८३
ततः स हृष्टरोमाङ्गो	१८	ततस्तदनुभावेन	१३६	ततस्त्वयेति पृष्टेन	३३५
ततः सागरगम्भीरः	१५८	ततस्तादृहमाकर्ण्य	४०२	ततस्तासपरीताङ्गा	३००
ततः साध्वससम्पूर्णो	२३०	ततस्तिद्विर्गतं ज्ञात्वा	३४६	ततो गणधरोऽञ्चोचच्छृणु	२८३
ततः साहसगत्याख्यः	३००	ततस्तद्गचन श्रुत्वा खेचरा	३४७	तो गणधरोऽञ्चोचच्छृणुत	३७१
ततः सिंहोदरं पद्मो	१२०	ततस्तद्गचनं श्रुत्वा शोक-	२३३	ततो गणधरोऽञ्चोचबुद्धात-	२२४
ततः सिंहोदरो मूर्ध्ना	१२०	ततस्तद्गचन श्रुत्वा विस्मय-	२७५	ततो गत्वा मया साधो	१४०
ततः सिंहोदरोऽजादी-	११६	ततस्तद्गचनाद् गत्वा	११३	ततो ग्रहृष्टहीतस्य	२५
ततः सिद्धान्तसम्बद्धा	५३	ततस्तनूदरीसु नुर्वध्वा	३७६	ततो गुरुवचः प्राप्य	२०६
ततः सिद्धान् प्रमोदाढ्याः	२६६	ततस्तन्निनदं श्रुत्वा	३१८	ततोऽप्युदीयक तस्या	३२५
ततः सोताऽन्नवीत्यभ-	१३४	ततस्तन्मण्डलप्रान्त-	३४०	ततोऽचिन्तयद्देताभ्या	२२६
ततः सुप्रोचतुस्त्योऽपि	२७३	ततस्तन्मन्त्रिणोऽञ्चोचन्	७३	ततो जनोपभोग्राना	१०१
ततः सुप्रोचतुस्त्येन	३४४	ततस्तमज्जलिं कृत्वा	२३५	ततो जन्मोत्सवस्तस्य	१२
ततः सुप्तजने काले रजन्या	१२८	ततस्तमुद्यदादित्य-	३३७	ततो जयजयत्वान	२४७
ततः सुप्तजने काले विदितौ	१७०	ततस्तमेवमित्युक्त्वा	२६३	ततो जिहीर्षया तस्य	१११
ततः सौमनसाकार	२१३	ततस्तस्याः समाप्राय	१४८	ततोऽज्जलिपुटं बद्ध्वा	३३४
ततः सौम्यानं राम	१०६	ततस्तस्या वचः श्रुत्वा	१३८	ततोऽज्जलिपुटं मूर्ध्नि	३०

ततोऽटनिञ्जटङ्कार	४१	ततोऽनुक्रमतः काले	१४७	ततो लक्ष्मीधरे नम्रे	२२१
ततोऽत्यन्तमृदुस्यशौ	१०४	ततोऽनेकममारुह्य	११८	ततो लक्ष्मीधरोऽपृच्छ-	२७०
ततोऽत्यन्तविषण्णात्मा	२३६	ततोऽनेन विपुत्राया	२८४	ततो लक्ष्मीधरोऽवाचि	१७५
ततो दण्डिनमाहूय	३५६	ततोऽन्यस्यात्तिष्ठन्नस्य	१०४	ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत् किमत्र	११६
ततो दशरथः कृत्वा	५६	ततोऽनमाननिर्दग्धः	१६३	ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत् किमेवं	१५६
ततो दशरथः श्रुत्वा	६४	ततोऽपरमुपादाय	३६०	ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत्वप्रनाभं	३८२
ततो दशरथोऽपृच्छत्	६०	ततो बहुविधैः शस्त्रै-	३६६	ततो लक्ष्मीधरोऽवोचःसरमो	२६२
ततो दशरथोऽवोचद्	७४	ततोऽभवद् भृशं दुःखी	२६६	ततो लल्लटभगोन	१५८
ततो दशरथोऽवोचत् प्रिये	७५	ततो भयाद्विशेषेण	४७	ततो लीला बहून् रम्या	३२५
ततो दुन्दुभिनिघोषं	२७०	ततोऽभिममुखमेतस्य	३१८	ततो यानं समावृण	६५
ततो देवगणाः स्वस्था	१७४	ततो मगधराजेन्द्रः	२२४	ततो विक्रमगोत्रेण	२८५
ततो देवत्वमासाद्य	६१	ततो मगधराजेन्द्र-	१५	ततो विदितनिश्चेष-	१८१
ततो धनुर्ग्रहप्रान्ते	३८	ततो मत्तिसमुद्रेण	३५४	ततो विनयदत्त-	२६१
ततो दर्पणसक्रान्तं	२३	ततो मदनदीप्तानिन-	२६४	ततो विवोधितस्तेन	६४
ततो दशाननोऽप्येन-	२४८	ततो मदनयावाचि	१६१	ततो विभीषणो विद्वान्	३८१
ततो दूरारसमालोच्य	१५२	ततो मन्दोदरी कष्टां	२५५	ततो विभीषणोऽवोचत्	३८६
ततो दृष्टिर्गता तस्य	५६	ततो मन्दोदरीसूनु-	३८०	ततो विभीषणोऽवोचदिति	३५२
ततो द्रोणधनार्हस्त	४१०	ततो महाहृद्वे जाते	३३	ततो विमलता प्राते	२५६
ततो द्विजगणा ऊचुः	२८	ततो महादधिनम्ना	२६८	ततो विशुद्धया बुद्ध्या	१२७
ततो नगरलोकेन	३३६	ततो महोदरः स्वैर	२५५	ततो विशेषविज्ञान-	८३
ततो नताननः किञ्चित्	२४७	ततोऽमात्यगणान्तस्य	३६२	ततो विषमपाषाण-	१६८
ततो नदीर्गिरीन् देशा-	२६	ततो मुक्ताफलस्थूल-	३२८	ततो विपाटिनः सर्वे	३६७
ततो नभः समुत्पत्य	२६६	ततो मुदितसम्प्रीतो	३८२	ततो विस्मयमापन्नाः	१८५
ततो नभश्चरा ऊचू-	३३	ततो मृदुमहामोद-	१५०	ततो विस्मयमादाय	४१
ततो नभश्चराधीशौ	३८५	ततो मृद्यानि पक्वानि	१६६	ततोऽशुक्तेन संवीथ	१२७
ततो नभस्वतः सूनु-	३२६	ततो मैथुनिकावैरं	४००	ततोऽश्रुपर्णनेत्राणां	१५१
ततो नभो निषद्याया	१४२	ततोऽथ सत्वसुग्रीवो	२७४	ततोऽसात्रवीदेवं	५६
ततोऽनरण्यसेनान्या	५७	ततो यत्र नभोदेशे	३२२	ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा	१३८
ततो नलेन सत्यद्वं	३४६	ततो यथोचितस्थान-	४२	ततोऽसौ कृतकर्तव्यो	१४२
ततो नष्टेषु सर्वेषु	३७६	ततो युगमितज्ञोऽर्थी	२००	ततोऽसौ खड्गमालम्ब्य	२६
ततो नागाश्वसिंहाना	३५६	ततो रत्नरथेनासौ	१८६	ततोऽसौ त्रयया युक्ता	१५०
ततो नादरतस्तेषा-	२६०	ततो रथकरारुदौ	२७६	ततोऽसौ पतितः क्षोण्या	२४५
ततो निमेषमात्रेण	४१०	ततो राजीवलयनो	१७	ततोऽसौ परम क्रोध	१३०
ततो निर्भर्त्स्यं स्वस्य	१६३	ततो रामापरच्छ्राये	१५२	ततोऽसौ परयापाताद्	२३८
ततो निर्भर्त्स्यं सकलं	१३४	ततो रामोऽभिरामाङ्गः	५६	ततोऽसौ बालचन्द्रेण	५
ततो निर्बुद्धितं सन्तं	१०	ततो रेचकमादाय	१६२	ततोऽसौ मन्त्रिणा सुख्यो	२७१
ततो निर्बिम्बमारोप्य	२३८	ततो रोषपरीतेन	१८४	ततोऽसौ मुदितसुख्य	२८
ततो निर्वैदमपन्ना	४०४	ततो लब्धासनासीनो	१४३	ततोऽसौ विधुरा नाम्ना	२०८
ततो निशम्य ता वार्ता	२६६	ततो लक्ष्मीधर स्पर्णुं	३६७	ततोऽसौ विनयी नित्ये	२८

ततोऽसौ शङ्कनो मृत्वा	१८८	तत्र सङ्कथया स्थित्वा	१७६	तदाशान्यत्तनेत्राद्यु	६०
ततोऽसौ सहसा मुक्त-	१२७	तत्राक्षयवने रम्ये	३६४	तदासन्ने मथा चैका	१३६
ततोऽसौ स्वसृष्टुःखेन	२७६	तत्राचार्यो द्युतिर्नाम	६६	तद्विष्यमायथा सृष्टं	३१०
ततोऽस्तमागते द्युर्धे	१४७	तत्राज्ञानात् समालोक्य	२४	तद्व्यति तयोः पृष्ट्वा	१५३
ततोऽष्माक वध कर्तुं	३१५	तत्रादरनिराकाङ्क्ष	२५४	तद्धि नः पुरमाथात-	२५०
ततोऽस्य क्रोधसंरुद्ध-	३००	तत्राद्राक्षीद्रथान् भग्नान्	२६६	तद्वंशानुक्रमो ज्ञेयो	२२५
ततोऽस्यामिमुख तस्थौ	३७६	तत्रार्थवर्षो देशो	१५	तनयाद्यैव मे गन्तु-	८०
ततोऽखसरितरुद्धेदे	६५	तत्रार्त्त प्रतिमा दृष्ट्वा	२५१	तनया वनमालोति	१४८
ततोऽहं कुलिशेनेव	११२	तत्राशोकतरुच्छ्रुत्वे	२६३	तनुकृत्ये कृते तत्र	१५६
ततोऽहं चण्डरवथा	४०१	तत्रासाजुत्तमे वृक्षे	२५२	तनुदरी त्वभावेन	३४५
ततोऽहं पापिनी जाता	१२८	तत्र हेमद्रवमन्यस्त	२६६	तन्निमित्तं मशशोकः	२६१
ततो हरिगजद्वीपि-	३०	तत्रैका रजनीं स्थित्वा	३४६	तप्यन्ते विधिवद्दोरं	३१३
ततो हरिगजनात-	८८	तत्सङ्गमार्थमन्योन्व्यं	१८६	तद्भयानामभूद् युद्धं	३७६
ततो हर्म्यतले कान्ते	३६	तथा चास्फालितं सर्व-	१३०	तम.पिण्डासितैस्तुङ्गै-	२५६
ततो हेमचयाम्मोभिः	१४५	तथा जिनमतिर्नित्यं	२७६	तमक्षततर्तुं दृष्ट्वा	१७४
ततो ह्रीभारनम्रास्था	२७६	तथा न माता न पिता	३८६	तमाचार्यं परिप्राप्तः	६३
तत्सकान्त्वा भवन लिप्तं	१२६	तथापरे वचः प्राहुः	२६६	तमुपेत्य नतिं कृत्वा	२८३
तत्किमेतेन खड्गेन	२३८	तथापि देवभाषेऽहं	१५६	तमुयैः शक्रविद्भूयः	३६२
तत्स्तेमङ्कलमस्माक	३२४	तथापि धीर नो भंगः	७८	तमूर्चुर्नित्रणो वृद्धा	२६७
तत्पुत्रो यद्दत्तात्तस्यः	२८३	तथापि पुण्यशेषेण	२३३	तमेकान्तपर दृष्ट्वा	२३४
तत्र शूलतकच्छाय-	२५४	तथापि भवतो वाक्यान्	३२४	तमेव पादपं सापि	१४६
तत्र कृत्वा नमस्कार		तथापि रक्षितः पुण्यै-	३६४	तथा कलितया तस्य	३३
तत्र कैचिद्द्रुत प्रोचुः	२३३	तथानि विहरन् क्षीर्णां	४	तथा चित्तं समाकृष्टं	२५
तत्र गोपायितं सर्पं	११३	तथाप्यनिलय्य नुस्तान्	३७७	तथा नानायुषाटोपैः	३२०
तत्र च प्रमदोद्याने	२६२	तथाप्युस्ताहमाश्रित्य	२४७	तथा विरहितः सोऽयं	२४७
तत्र चोत्तमनारीभिः	३६	तथाविधं च तद्वक्त्रं	३४७	तथा सह सुलं रेमे	२
तत्र ताद्युपितौ ज्ञात्वा	८४	तथाविधं तमालोक्य	१८३	तयोक्तं नाथ कः क्राप-	४७
तत्र ते कानने रम्ये	१२८	तथाविधं पुरा राज्यं	२७५	तयोरेव्योऽप्यमासङ्गे	३६८
तत्र ते चित्रकूटस्य	१०३	तथाविधो दशास्यत्वं	३४१	तयोरेभूमहत्संख्यं	३१०
तत्र दूषणसम्राजे	२५३	तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा	१८१	तयोरेभूमहद्युद्धं	३७५
तत्र देवनिवासामे	२५०	तथास्ति भरतक्षेत्रे	१८८	तयोरीयं कथा याव-	२७१
तत्र देशे नरा नून	११७	तथास्मिन्नियमद्वीपे	६६	तयोश्चिन्तोसवापत्यं	१
तत्र प्रयातुमस्माकं	१७	तथैव लक्ष्मणस्तत्र	१६	तरङ्गुत्तसारङ्ग-	१०३
तत्र प्रीति महाप्राप्ता	२१०	तदह वत्स नो नेत्रि	७६	तरङ्गुशरभद्वीपि-	४०३
तत्र बान्धवभूतस्य	५७	तदाज्ञा प्राप्य सम्पद्भि-	१५७	तर्जयन्निव लोकस्य	५१
तत्र भद्रासने रम्ये	३०४	तदाज्ञापनया मार्गो	११२	तल्पेऽवस्थितमात्मान-	१३६
तत्र भाण्डोपकरणं	१६६	तदातिशोभते सीता	६०	तत्र सोऽयमपुत्रायाः	१२
तत्र लावण्यनिञ्जलक-	१७६	तदा वृष्टेन पत्नीनां	७५	तस्यदूरत एवाप्ये	४०
तत्र वंशगिरी राजन्	१६६	तदा दशरथो भीतो	७२	तस्मात् कैनाप्यु गयेन	२७

तस्मात्क्षेपविनिर्मुक्त-	२६७	तस्या बहुलशर्वायं	८८	ताम्बूलप्रार्थनव्यंग्वात्	३८३
तस्माच्चद्रुर्गुरुसिद्धौ	२६८	तस्या सिद्धाजमस्कृत्य	२६५	ताम्रचूडाः खरं रेणु-	५२
तस्मात्चावत् प्रतीक्षिता	१२९	तस्या एव च वाक्येन	२६०	तायैते दुःखतो यस्मा-	७७
तस्मात्प्रेषितवृत्तोऽय	३५५	तस्यामिमुखता प्राप्य	२१०	ताक्ष्यंपन्नविनिर्मुक्तं	३८५
तस्मादकीर्तिसम्भूति-	२३६	तस्यामीक्षितमात्रायां	२३६	तावच्च गवडाधीशः	१६४
तस्मादन्वपरिज्ञान-	११५	तस्यामेवमवस्थाया	३२५	तावच्च तेन कुष्ठेन	२३३
तस्मादवलम्ब्यता धैर्यं	२४९	तस्या रूपेण चक्षूषि	१६२	तावच्च नखन्दस्थ	१७५
तस्मादानय तौ क्षिप्रं	९३	तस्या रोषसि विश्रम्य	८८	तावच्चन्द्रनखासुप्तु	२५०
तस्मादानीयता सीता	२९७	तस्यार्थपाणयो दाराः	२८३	तावच्च समतीताया	२५९
तस्मादुच्छिष्ट तत् स्थान-	२५०	तस्या वर्णनमेवाति-	२७८	तावच्चात्तरिथतादित्य-	२२७
तस्मादेकक एवाह	८०	तस्यास्वरितभायान्त्या	३१६	तावच्छिरसि संकुद्धो	२४५
तस्माद् खुद्धि रणे त्यक्त्वा	२९७	तस्यै जगाद वृत्तान्त-	३२२	तावत्ताः सिद्धसंताप्या	३१४
तस्माद् भोग भुवनविकर्त	३५०	तस्यैतद्भवन्न भद्रे	१४३	तावत्तोयदवाहेन	३३९
तस्माद्योनैव संग्रामे	२७०	तस्यैवामिमतो भूत्वा	१३१	तावत् त्रिवर्णान्नविलासि-	४१३
तस्माद् ब्रह्मादिलोमेन	३५५	तस्योपरि समारुह्य	२६२	तावत्पदान्तरस्थाया	२५९
तस्मान् महाबल दीप्तं	२६९	ता प्रतिष्ठ पुराधीशः	४०२	तावत्तरागतं दृष्ट्वा	११२
तस्मिन्श्च दर्पदेवस्य	३५५	ता विनच्छ्रुति दृष्ट्वा	२३२	तावत्सलायक कृत्वा	२७८
तस्मिन् कालगते पद्मः	२३६	ता वीक्ष्य लक्ष्मीनिलयो	४१३	तावत् दुन्दुभयो नेदुर्गाने	२०१
तस्मिन् दशाननोक्ताभिः	२६३	ताडितः कामरागेन	१२५	तावद् दूषणपञ्चत्या-	२५४
तस्मिन् देव मया सार्द्धं	३३४	ताडितः स्मरवाणैश्च	१६१	तावच्छिष्ट गच्छत्यः	११४
तस्मिन्मरसधाम्ने	२५०	ताडितो यज्ञनक्रेण	३७९	तावद्देवो स्वयं गत्वा	३८१
तस्मिन्नासन्नता प्राग्ते	३५८	तात तात न ते शुक्र	३७८	तावद्गणमुखेऽभागीद्	३६३
तस्मिन् रणशिरो याते	११८	तात रक्षात्मनः सत्य	७६	तावन्त्पुत्रता साध्वीं	३५२
तस्मिन् विप्रकृष्टे तु	३१३	तातस्यास्य च को भेदो	३८२	तावन्मे नास्ति दुःखस्य	१४६
तस्मिन् विमानतुल्येषु	११३	तातेन पृथिवी दत्ता	७९	तावपि भ्रातरौ तस्मिन्	१८७
तस्मिन् शिखातले रम्ये	५१	तातेन भरतः स्वामी	६९	तावालोभ्य ततो राजन्	३६९
तस्मिन् सजानकीरामः	११४	तातेन भ्रातरुक्त वत्	७८	ताश्च निस्सीमसौमाथा	३१६
तस्मै दत्त्वा स जैनेन्द्रो	३२९	ता दुःखहेतवः सर्वा	३३२	तासामाकुलिका काचि-	३३६
तस्मै सैकान्तयाताय	१६१	तान् वीक्ष्य शोकसन्तान्	५४	तासामेवोर्दमागेषु	२८२
तस्य कूल्यद्रुमैश्चनैः	२८८	तान् समापततो दृष्ट्वा	३७४	तितवाकारदेहोऽय	२७८
तस्य क्रोशचतुर्मांग-	३१३	तान्चुस्तापसा वृद्धाः	१०२	तित्तिरच्छुद्रनच्छाय-	७२
तस्य तद्वचन श्रुत्वा	३१७	तान्यह सातुमिच्छामि	६७	तिम्भन्तस्ते ततोऽन्यर्ण	१३५
तस्य राजसत्स्यस्य	३३४	तापसप्रमदा दृष्ट्वा	१०२	तिरोधानं गता वसापि	७१
तस्य राज्येऽधुना जाते	३३	तापसा ञटिलस्तत्र	१०१	तिर्यन्तरक्तुःखान्नि-	६०
तस्य स्फुल्लिङ्गसंसर्गा-	३८०	तापसोऽवश्यमस्माभि-	१०२	तिष्ठत स्त्रेच्छयेदानीं	२४९
तस्य स्मरपत्निना दीप्त	२६५	ताभ्यमगकुमारेण	३८२	तिष्ठ तिष्ठ महापाप	२४८
तस्याः पुरोऽय रहसि	१६१	तामपश्यन्ततो नेतु-	४०५	तिष्ठ त्वमिह कुर्वाणः	१५९
तस्याः श्रोणीवपरोहा	२६	तामेव च पुनर्न्यस्ता	३४७	तिष्ठन्तमिह मृत्यु चेदेत-	३५३
तस्या ग्रथातमात्राया	२३०	तामेव सरतीं रम्या	१२५	तिष्ठामि पापो भवदुःख-	६९

तिष्ठणा तरुणीक्रीभि-	४५	ते शिलीमुखसङ्घाताः	३७७	त्रैलोक्यगुणवद्रत्नं	२४०
तीक्ष्णकोटिभिरत्यन्तं	२३८	तेऽस्मदर्थे शिव क्वापि	३१५	त्रैलोक्येऽपि न मे कश्चि-	१३९
तीक्ष्णायस्फोळसङ्कीर्णां	१०७	तेषां ज्ञात्वा मनःशून्यं	२४९	त्रैलोक्ये स न जीवोऽस्ति	९२
तीर्थस्नानानि दानानि	६	तेषां द्रष्टुं सक्ताः श्रेष्ठामपर-	२१९	त्वं बालः सुकुमाराङ्गः	१७
तीव्रकोषपरीतात्मा	२३४	तेषां निर्दग्धकण्ठाना	८	त्वं मे हृदयसर्वस्वं	४६
तीव्रवेगिगिरिखंताः-	१०३	तेषां बभूव तेजस्वी	३४८	त्वदीक्षाचिन्तया देहो	६५
दुङ्ग्राकारखुक्ता ता	३४९	तेषां महातनुभावाना	१३६	त्वया दशात्यजातेन	३४१
दुङ्ग्या शिखरेष्वस्य	२१५	तेषु ते तीव्रदुःखानि	७	त्वया मत्तद्वचनाद् वाच्यः	३३४
दुरीयानुन्धरो नाम्ना	२७९	तैः समापतितैः सैन्यं	३७७	त्वया मया च भिक्षार्थं	३३५
दुष्यभ्यसनदाहेतोः	२७०	तैस्सौ व्याप्तसर्वाङ्गो	३८१	त्वया व्यापादितेनापि	३८९
दृणस्यापि न वाञ्छामि	१२२	तैरावृता दिशं प्रेक्ष्य	१३०	त्वया सह परिज्ञाति-	३२८
दृणस्यापि पुरा दुःखं	१०	तोद्यमानमिमं नूनं	११५	त्वरितं चोदितायासौ	१८४
दृतीये तु जनो द्वारे	८३	तौ च सर्वकलाभिज्ञौ	२०६	दंष्ट्राकरालदशानै-	२५९
दृतीयेऽलं वने रम्ये	२६२	तौ निरीक्ष्यैव निर्भाता	१२९	दंष्ट्राकरालत्रदनैः	३७६
दृतीयेऽहनि पञ्चत्वं	२०७	तौ महातेजसौ तत्र	१९९	दन्तवद्राज्जलिं भीरुं	१७३
दृष्यान्तेन सचोर्यं	१३९	तौ विधाय यथायोग्यं	९५	दक्षिणावर्त्तनिधूम-	३४७
ते चक्षुर्गोचरीकृत्य	८७	तौ सीतागतिचिन्तित्वा-	८७	दक्षिणे विजयादर्क्ष्य	१५
ते चक्षुर्वैशतिभक्त्या	१६२	त्यक्तनिःशेषकर्तव्यो	३२७	दण्डकाण्ड्यभागान्तं	२२६
तेजःपटपरीतेन	२९५	त्यक्तमृत्युमयो विभ्रत्	३४१	दण्डपाणिचचाचैकः	११०
तेजसा शखजातेन	३८८	त्यक्तराच्याधिकारोऽहं	८४	दण्डोपायं परित्यज्य	१६१
ते दृष्ट्वा दुःखिते वाढ-	९३	त्यक्तोपपादागशिलामिवा-	४१३	दत्तपेङ्गः क्वचित् स्मेरैः	१९६
तेन गोधरशब्देन	२९३	त्रयोऽपि ते शुभध्यानाः	६३	दत्ता विराधितायाय	२४६
तेन च भ्रमता तत्र	१०६	त्रस्तं शरणमायातं	३६२	दत्ता स्थानं क्षणमवनि-	५३
तेन तेजस्विना सैन्य	२७७	त्रिसादयोजनमानेन	२८८	दत्ता च महापुङ्गं	२९
तेन दृष्टान्यदा बाला	२	त्रिकल्प बलनैर्भाग-	१६२	ददर्श च महाभागान्	१८३
तेन देवैन्द्रवन्द्येन	२५६	त्रिकालगोचर विश्व	१८४	दहशुश्च विविक्त्यु	९०
तेन मायासुरगेण	३७	त्रिकालमरनाथस्य	९३	दधती हृदये कर्म	३२७
तेन मे पुरुषेन्द्रेण	४०१	त्रिगुप्त इति विख्यातो	२०६	दधाति हृदये पद्मं	२६४
तेन बाणसमूहेन	३७९	त्रिगुप्तस्य सुनेस्तस्य	२०६	दधानः प्रवरं माल्यं	१७१
तेन सम्भाव्यमानोऽसौ	३१८	त्रिजगन्मण्डनमिख्य-	२६१	दधाना परमं राग-	८३
तेन सुमीवरूपेण	३०५	त्रिदशस्तत्समो बुद्ध्या	२८९	दधिकुम्भैर्जिनेन्द्राणा	९७
तेनापि कोपशयेन	३५३	त्रिसुवनवरदममिष्टत-	३१	दध्नुश्च विष्मय प्राप्ता	१८०
तेनापि तस्य वज्रेण	३८०	त्रियामान्ते ततोऽस्पष्टे	८७	दध्यौ च मारयाम्येतं	३२१
तेनापि तस्य सरम्भ-	३९०	त्रिलोकेऽप्यस्ति नासाध्यं	१५९	दध्यौ चाहं पुरा यत्र	१४५
तेनापि पवनाक्षेण	३८०	त्रिलोके प्रकटं सूक्ष्म	७३	दध्यौ सञ्जातकर्मश्च	१४३
तेनाभ्यागतमात्रेण	२०	त्रिवर्णाभोजनेत्राणा	२९१	दन्तस्थानमवावर्णा	४९
तेनाह लोकपालेन	४०३	त्रिवर्णाभोजनखण्डेषु	२८२	दन्तिनो बलदाकारा-	१७२
तेनोक्तस्त्रवर्यं श्रुत्वा	२३९	त्रिविष्टपसमे साध्वि	३२७	दन्तिमिश्रं समृद्धश्च	१६०
तेनोद्यानसमुत्थेन	५८	त्रिसन्ध्यं सीतया सार्कं	२१०	दयादानादिना येन	३७३

दशवानीदशः कोऽस्मिन्	२४१	दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य	३४५	दृष्टं ब्राह्मणि यातेन	१३६
दशवान् मङ्गवान् योऽपि	८	दीर्घसूत्रत्वमुत्सृज्य	२६७	दृष्टं मया कण्ठकेन-	५६
दशितां रानुवेवस्य	२४८	दीर्घसूत्रो भवानेवं	५४	दृष्टपूर्वं ननोहारि	२४१
दशितां सान्त्वयित्वैवं	१३	दुःखं तिष्ठति मे तातः	१२८	दृष्टाद्वेष्टेति किं वद्वि	२४१
दशिते क्रियते यावत्	४७	दुःखतापितसर्वाङ्गा	३०८	दृष्टान्तः परकीर्णोऽपि	२०६
दर्पगादिभिर्भूयं तत्	८३	दुःखस्य यावदेकस्य	३८	दृष्टिगोचरमात्रे तु	१०५
दर्पया बुद्धुद्वावल्पो	१६५	दुःखस्य यावदेकस्य नाव-	२४२	दृष्टेन केन कार्येण	४७
दर्पसम्भूरितश्चाविन्	१०३	दुःखाण्यतर्तं प्राप्नोति	२४७	दृष्टया कश्चिन्नेरान्यं	३२८
दर्शनं तामथोत्सृष्ट्या	२४०	दुःखितानां दरिद्राणां	५	दृष्ट्या कमजपमं च	७०
दर्शनस्य विद्युद्विश्व	१०६	दुःश्लेषः पूर्णचन्द्रश्च	३६७	दृष्ट्या कश्चिन्नयकस्तान्	१६१
दर्शितोऽपि चोऽसा-	१६७	दुःश्रुत्य दुर्विमर्शेण	२४०	दृष्ट्या गणेश्वरमीन्द्र	६३
दशवर्षसहस्राद्युः	६३	दुःखेव दीधितिरिन्द्रोः	११५	दृष्ट्या च दूरतः सीता	३२५
दशव्यामापया वृक्षा	२६२	दुरात्मनातिवीर्येण	१६०	दृष्ट्या च अमरानेका	१३७
दशाङ्गपुरनाथोऽस्य	१०६	दुर्योगारमध्वर्या	२६५	दृष्ट्या तं ज्ञामभोभासं	१०७
दशाननसहस्रायत्वं	३३०	दुःखेन विजने राक्षस्	३१३	दृष्ट्या तं पतितं भूमौ	३६४
दशास्यकस्य नगरी	३७६	दुर्विन्दवैः खनीमांभूत्	२७६	दृष्ट्या तं पुरयो हृष्ट-	१०५
दशास्यशासनं त्यक्त्वा	३७६	दुर्लभैः सङ्गमो भूयः	३०६	दृष्ट्या तमीदृशं रामो	२२७
दशास्यस्त्रासितं वीक्ष्य	३७७	दुर्लभादप्यलं तस्मान्	३०६	दृष्ट्या तस्युत्तमाकारं	२३५
दहति त्वचनेवाकौ	२६	दुःशशांलया तथा वृत्तं	२३५	दृष्ट्या तस्युत्तं वीरं	३७७
दहमानं तथाप्येव	४	दुःकृतत्वोद्वेगस्यस्य	३६६	दृष्ट्या तस्युत्तं गन्तुं	८१
दहमानान् वृथान् काश्चित्	२६६	दुष्टत्रेष्टामिमां तावन्	१७२	दृष्ट्या तस्य सितच्छत्रं	१८
दाग्निमकल्याणिभीतास्य	२६०	दुष्टया किं तथा कृत्यं	६	दृष्ट्या तस्युत्तं हस्तैः	२०
दारिद्र्यान्मोचितो लोकः	६४	दुष्टविद्याधरः कोऽपि	२७२	दृष्ट्या तां वच्यतीर्तं त्वं	२०७
दास्यमे तु विप्रोऽभूद्	६२	दुष्टविद्याधरानेक-	२८६	दृष्ट्या तान् कुपितोऽस्यन्त-	१३३
दावानलसमं यस्य	१३३	दुष्टः शक्राशनिं कालि-	३६०	दृष्ट्या तैत्याधिपं प्राप्तं	३१
दावेन महता रावन्	३१४	दुष्प्रथप्रतिपन्नेन	१३६	दृष्ट्या परमशौचैः	६५
दिकुङ्कुमार इवोदारे	२२५	दूतः पितुः सकाशान्मे	१२६	दृष्ट्या प्रतिदिनं सङ्घं	२२७
दिदुस्तुत्वां महाराज	१७२	दूतत्वेनागतं सीतां	३३१	दृष्ट्या वज्रवरं पूवं	३०३
दिवसस्य गते याने	२०७	दूताहृतः समायातः	३३६	दृष्ट्या संरक्ष्यैः दृष्टः	१६६
दिवसो द्वादशोऽस्नाकं	३१५	दूतिं सीतां ब्रज ब्रूहि	२६३	दृष्ट्या सातिशयावेप	२०५
दिव्यगन्धानुलिप्तस्य	२२६	दूतोऽस्मि शक्रतुल्यस्य	१५७	दृष्ट्यते नैष्यते भूयः	१३
दिव्यपीताम्बरबरो	३०४	दूरं देशं यदानायि	२	दृष्ट्यते बन्धुमदस्यः	३७३
दिव्यञ्जोरूपसम्पन्ना	४१०	दूराद्दुःखाय दृष्ट्वैवं	३०३	दृष्ट्यते वैरसेतस्मिन्	३५५
दिव्यहाराम्बरं दृष्ट्वा	१७२	दूरादेव च तौ दृष्ट्वा	१३६	दृष्ट्यते वैरसेतस्मिन्	२०२
दिव्या शक्तिरिवं शक्त्या	३६७	दूरादेव समालोक्य	१२६	दृष्ट्यते वैरसेतस्मिन्	१०६
दिव्यैः सन्तर्पितैर्गति-	२६३	दूराध्वपरिक्षिन्नाङ्को	१५५	दृष्ट्यते वैरसेतस्मिन्	२८७
दिव्याः सर्वाः समास्तीर्य	१५१	दूरं च सरसो दुर्गे	२८	दृष्ट्यते वैरसेतस्मिन्	२८४
दिव्यास्तूर्पिनादेन	१५३	दूरं लङ्कापुरी देव	४०६	दृष्ट्यते वैरसेतस्मिन्	४७
दीक्षां श्रुत्वातिर्षीयस्य	१६७	दूषणो भीषणः क्रोधः	३६७	दृष्ट्यते वैरसेतस्मिन्	१२०

देवी मस्करिणा तस्य	२०३	धनिनैकेन तत्राहं	१३०	ध्यायन्तमेवं परिगम्य यौघा-	४१३
देवीवित्परिम्राजा	२०४	घनुरायतमास्थाय	१९	ध्यायन्निति महोद्धेती	१७२
देवेन भरतेनामा	१६३	घनुसम्मोदये ळ्वः	३०५	ध्रुवं भवान्तरे कोऽपि	१२
देवेन सदशौभोगै-	७५	घनूरत्नलता तस्य	५५	ध्वनिं मारुतिर्त्यस्य	३०२
देवोपगीतसज्ञे च	२८७	धन्या पुण्यवती सुखी	६५	ध्वनिरश्रुतपूर्वोऽयं	१७९
देवोपनीतनिश्शेष-	१७८	धन्या मनुष्या धरणीतले ये	९९	ध्वस्ता ग्राहादयः सर्वे	५२
देशं जनकराजस्य	१५	धन्या सा श्रीधरा देवी	१११	ध्वनिमश्रुतपूर्वं तं	१६२
देशकालप्रपन्नेभ्यः	६९	धन्येयं वनिवैताभ्या	१७०		

[न]

देशघाते यथा जातः	२७	धर्मपक्षो महानीतिः	३५४	न करोति कथामन्या	२८१
देशकुलभूषणमहासुनिभवं	१९४	धर्ममेवं विधानेन	९८	न करोति यतः पातं	७८
देशकुलभूषणयुनी तु	१९४	धर्मरत्नोज्ज्वलद्वीपं	२५६	न किञ्चिदत्र बहुना	२०१
देशा उद्भासिता तेन	४	धर्मस्य पश्यतौदार्यं	२१०	न कृता मन्दभागेन	१४५
देशान् सर्वान् समुल्लंघ्य	१२३	धर्मस्यैतद्विधियुतकृतस्या-	३८३	न केवलमसौ मानी	११६
देशे देशे नमस्कुर्वन्	५२	धर्मिणा सुस्थिरो राम-	७१	न केवलमहं तेन	४०२
देशोऽयमतिविस्तीर्णः	१०४	धर्माधर्मविवेकज्ञः	३२९	नक्तदिवमशुष्यत् स	५
देहि पुत्रस्य मे राज्य-	७५	धर्मार्थकाममोक्षाणा-	१६	नक्त शक्या स्थितेनासा-	११
देहेनापि किमेतेन	७४	धर्मार्थकामससक्तै-	२१	नक्षत्रगोचरातीतं	५७
देहोपकारणव्यग्र	१३६	धर्मादिद्वयपर्यन्तं	६८	नक्षत्रमण्डलालोकं	१८२
द्रक्षामि यदि धन्याहं	३६१	धर्मोद्यतमनस्कस्य	११२	नक्षत्रल्लुषसश्च	३६७
द्रविणेन तथा लोकः	४३	धर्म्यध्यानगतः कृत्वा	६१	नलच्छेद्ये तुणे किं वा	३७८
द्रुमस्रशडे क्वचिद् स्थित्वा	१७८	धवभिन्ना प्रयच्छेति	१२०	नलविक्षतकक्षोरु	२३२
द्रुमसेनयुगेः पार्श्वं	४०५	धातुपर्वतसङ्काशाः	३९१	नलौर्विल्लप्य दन्तैश्च	२३३
द्वयमेव ध्रुवं मन्ये	२६	धारयन्ती परा कान्ति-	२६	नगरं साधनं कोर्षं	११३
द्वाःस्थमाज्ञापयद्भूमि-	७२	धावध्वमसकौ कोऽसौ	३३६	नगरीतश्च निष्कर्म्य	४०२
द्वाःस्थेन प्रविशन्नेव	१७२	धिक् तं पशुसर्म पापं	२३२	नगर्यां पश्चिनीनाग्नि	१८४
द्वादशस्य ततः किञ्चि-	९८	धिक् शब्दः प्राप्यते योऽय	२६०	नगाना कोटरेष्वन्ये	५१
द्वारशोभा करोत्यन्यो	४५	धिगत्यन्ताशुन्वि देहं	१८६	नगोऽय दण्डको नाम	२१५
द्वारे र चिन्ताभ्यर्चै	३२४	धिगिद शौर्यमस्माकं	२३४	नगन्तापरिहारेषु	६५
द्वितीय निःस्वयुगलं	३७१	धिग् धिग् धिगिदमत्यन्तं	१९०	न च प्रत्युपकाराय	३२८
द्वितीयस्य विनेन्द्रस्य	२२४	धिग् धिग् नीचसमासङ्गं	१३५	न चात्र काचिदापत्ते-	१६५
द्वितीयैतदहस्तेन	१७४	धिद् मया चिन्तितं सर्वं	१०	न चापे साम्प्रतं जाते	५५
द्विरदाना सहस्रेण	१५६	धूपं यश्चन्दनाशुभ्रा-	९७	न जल्पति निषण्णाङ्गां	२६४
द्वीपस्य तस्य पर्यन्ते	३५४	धृतराजः समीपेऽस्य	१७४	न तथासन्नमृत्योर्मै	४९
द्वेषि लोकविमुक्तोऽसौ	५१	धृतार्थिना जल तेन	२०३	न तन्नरा नो ययवो न	३९८
		धमाताः शङ्खा जगत्कम्पा	३०९	न त्वयैकेन संसारो	६७
[ध]		ध्यात्वैति सोदरस्नेह-	५९	न त्वा खुत्वा च तत्रासौ	५९
धत्ते क्वहह स्वानं	२६५	ध्यात्वेन्द्रनगरेशस्य	१४८	नदीतीरं समागम्य	४०३
धनगौरत्नसंपूर्णा	३३	ध्यानाशुशुक्षिणाविद्धे	१४१	नदीना चरडवेगाना-	१९७
धनकपुरुषद्वेषेन	२९२	ध्यानो न मुनिदृष्टेन	६३	नद्याः कर्णवायास्तु	१९७
धनलोभाभिभूतस्य	१३८				

नद्यां गिरावरशये वा	७८	नवयौवनसंपूर्णा	३३	नानापत्तिकुलकूर-	१०३
नृघोषा विमलबला-	२१८	नवयौवनसंभृत-	२५	नानापुष्पकतामोदा	२२३
ननाम चाञ्जलिं कृत्वा	१०६	नवयौवनसम्पन्ना	१७२	नानापुष्पफलाकीर्णं	१०३
ननाशा भयपूर्णा च	२१	न वर्तते इदं कर्तुं	१६२	नानाप्रकाररत्नांशु	२२४
ननु ते शातमेवैतद्यथा-	३२१	नवसङ्गमना कश्चि-	८६	नानाप्रहरणान् वीरान्	१२६
न नो निवर्तते चिच्चं	८६	न विद्मः स किमस्माकं	१६४	नानाभूषणयुक्ताङ्गौ	१६६
नन्दिघोषोऽन्यदा धर्म-	६६	न विनश्यन्ति कर्माणि	३७३	नानामृगक्षतजपानसुरक्त-	२१४
नन्दिधर्मनकाले ते	७१	न वृक्षाज्जायते मासं	६	नानायानविमानास्ते	३४८
नन्यावर्तपुरीं रामो	१५६	नवेन संगमेनास्या	१७४	नानायुद्धकृतध्वान्ता	२०
न प्रसादयितुं शक्यः	२३८	नवो बद्धो यथा पत्नी	३८२	नानायुद्धसद्वेषु	२५०
नमःसमुत्पतन्ती तौ	२०६	न शृणोति ध्वनिं किञ्चिद्	२८१	नानायुद्धाश्च संकुब्धा	२७७
नमश्चरसमायोगे	३१६	न शृणोति स्मरग्रस्तो	१६२	नानायुधविचिह्नाना	३५६
नमश्चरैः समं पूजां	५६	नष्टशङ्कस्तमादाय	२२७	नानारत्नांशुसम्पर्क-	१५३
न भेत्तव्यं न भेत्तव्यं इति तां	२३४	न सा क्षितिर्न तत्तोयं	६२	नानारूपप्रसमाकीर्णं	२६
न भेत्तव्यं न भेत्तव्यं निवर्त्त-	१४३	न ह्याखूनां विरोधेन	१७	नानाखतोपगूवानि	१७१
नभोऽन्धकारितं कुर्वन्	१३५	नाकाले म्रियते कश्चि-	२५४	नानावर्णविमानाग्र-	३६८
नभोविहरणीं लब्धि	१६०	नागपाशैरिमौ बद्धौ	३८२	नानावल्कीसमाश्लिष्ट-	४०३
नमस्कारं च कृत्वास्या	१३८	नागा सिंहादयोऽप्यत्र	२०१	नानावृक्षलताकीर्णं	१६६
नमस्कारं जिनेन्द्राणा	१६१	नागारिवाहनारुदौ	३८५	नानावृक्षलताकीर्णं	१६५
नमस्कृत्य मुनि श्रेष्ठे	६४	नागेन्द्र इव हस्तेन	२६४	नानाशक्करजेषु	११७
नमस्त्य जिनं भक्त्या	१८७	नागैरञ्जनशौलाभैः	११२	नान्ताःपुरं न देशो न	२०५
नमस्त्रिलोकनन्देभ्यो	१४२	नातिदूरे ततो दृष्ट्वा	२६	नाम्नाऽनङ्गशरा तस्य	४०२
नयनाना समानन्दं	३०२	नाश्रयुक्तमवशात्	२३५	नारकानिनमयग्रस्ताः	७
न यस्य बलदध्वान्ते	४	नाथ ! भक्तोऽस्मि ते किञ्चि-	२४४	नारदः परमं विश्रद्भ-	२३
न यावदथवा याति	१६०	नाथ ! युक्तमयुक्तं वा	२७	नारदोऽनुपदं तदथा	२३
न युक्तमथवा चिच्चं	८१	नाथ बाह्याथतां ताव-	१५०	नारायणसमेतेन	१६३
न ये भवप्रभवविकार-	२४३	नाथ ! वेद्य मे स्थानं	३७	नारिङ्गमाशुलिङ्गाद्यैः	२६२
नरकप्रतिमे घोरे	१८३	नाथ शूरस्त्वमेवैकः	१६८	नालिकैरैः कपित्थैश्च	२१२
नरप्रधानदोसिस्ते	१८६	नाथ ! सातिशयोऽर्थं मे	२०६	नाशकनोदनरण्यस्तं	४
नराणां मानदग्धाना	१६६	नाथाज्ञापय किं कृत्य-	७३	नाशावाजीजनस्तत्र	१३
न राशौ न दिवा निद्रा	२४	नाथानर्थसमुद्गोन	२६	नास्यर्थाङ्गुलमात्रोऽपि	७
नरास्ते दधिते श्लाघ्या	३६२	नाथावापस्तु धामेषा	३८५	नास्त्येव मरणे हेतु-	२६४
नरेन्द्र पश्य केनापि	२०३	नाथे तथा स्थिते तस्मिन्	६३	निःशङ्क द्विपत्तिकान्तः	३२७
नरेभकलभौ सत्य-	१७६	नादो धर्वरकः पापो	३६७	निःशेषं दूत यद्दृत्तं	३००
नरेशः सुसुखस्तत्र	१६०	नानाजनपदाकीर्णा	१७०	निःशेषवत्शाल्य निवेदित	४१३
नलनीलप्रभृतयः	३०४	नानाजनोपमोग्येषु	१७८	निःसर्पचारकाकार-	३६३
नलेनोत्पत्य हस्तो वा	३६६	नानाजन्महावर्ता	७३	निःसृताशुपसर्गात्तौ	१८८
नलो नीलो तडिद्रवन्नो	३४६	नानाजातीश्च वृक्षाणां	२६	निःस्वःक्षमागोचरः कोऽपि	२५७
नवमेघप्रतीकाशै-	३१३	नानानिर्भ्रूहसम्पन्नं	१७२	निक्षिप्यते हि कामाग्नौ	७७

निक्षेपो गुणमित्त्व मे	३६६	निर्दयाः पशुमासादो	२०	नूनं त्वया न विज्ञाता	१०७
निजसैन्यार्णव दृष्ट्वा	३८६	निर्दयैश्च गदाघातै-	३१८	नूनं दैत्येन केनापि	२४६
निजा शक्तिममुखश्चि-	२४६	निर्दयोन्मुक्तशस्त्रोऽसा-	३०६	नूनं न भवितव्यं मे	२७७
निजे भुजे सप्रकृतये	४११	निर्दोषभाववो यस्तु	१०	नूनं भवन्तमुद्दिश्य	२८
नितान्तकूर कर्माय-	१०६	निर्मात्स्यैर्लानकीं सम्यक्	२३७	नूनं सर्वं कृतं कर्म	२४६
नितान्तपट्टताभाञ्चि	४६	निर्मुक्तदुःखनिश्वासं	२३०	नृत्यन्तं च समालोक्ष्य	१७५
नितान्तबहुयोद्घृणा	३८०	निर्ययी च पुराद्युक्तः	२७	नृपतिश्चागतो वीक्ष्य	४६
नित्यमर्थयुतं देव	१४४	निर्वाह्य दिवसानष्टौ	३५६	नृपवाहुत्रलच्छायां	१६
निद्राघूर्णितनेत्राणा	३७८	निर्विचेष्टं तमालोक्ष्य	३६६	नृपाः शञ्जुन्दमाघाश्च	१७६
निद्राविद्रागसङ्ग्रामा-	३७८	निर्वर्त्तय द्रुत चित्तमशुभ-	१६३	नृपाः सिंहोदराद्याश्च	१२२
निद्रावशीकृतान् वीरान्	१६०	निर्वर्त्तस्व भज स्वास्थ्यं	१७०	नृपाण्य नरैः क्रूरै-	३
निघानमघनेनैव	१०६	निर्वर्त्तस्व महादुद्धे	३१७	नेक्ष्यते सन्धिरप्यत्र	१६०
निघाय हृदये राम	३३३	निर्वर्त्तमानबन्धूना	८२	नेता वानरमौलीना	२६६
निन्दनेत्रं खलासङ्ग	१३५	निवासमत्र कुर्मोऽत्र	२११	नेत्रचापविनिर्मुक्तै-	३२०
निन्द्योनिपु पर्यट्य	१८८	निवृत्तभोजनविधिः	३३३	नेत्रमानसचौराभ्या	१७०
निपत्य शिखरादद्रे-	३२५	निवृत्ते मरुतः पुत्रे	२७५	नेत्राभ्यामखमुत्पुज्य	६५
निमग्नं संशयाग्मोघौ	२७५	निवेदितं ततो बृद्धै-	२७१	नैमित्तादिष्टकालस्य	२६३
निमिषान्तरमात्रेण	२१	निवेदयन् गुण्यास्ताव-	२३६	नैव वारयितुं शक्या	१८५
नियतं मरणं ज्ञात्वा	३६६	निवेद्यैवमसौ तेभ्यः	२५	नैशं ध्वान्तं समुत्सार्य	२५६
नियमस्त्वद्यसादेन	१२२	निशम्य तद्रुचो राजा	५०	नैषा सीता समानीता	३५२
नियमांघ्रितोऽतीते	४०५	निशम्य वचनं तस्या	३४२	न्यायेन सङ्गता साध्वी	३३०
नियुज्यात्मसमं द्वारे	७२	निशम्यामोघवाक्यस्य	३१५	[प]	
निरन्तरं तिरोघाय	२२१	निशम्योक्तमिदं सीता	१७६	पक्वं पल्लमिषैतन्मे	४६
निरपेक्षं प्रवृत्तेऽस्मिन्	२६१	निशागमे किमस्माक	१७६	पक्षिणः प्रतिबोधार्थं	२०६
निरर्थकं प्रियगतै-	३४१	निशितानि च चक्राणि	१६	पक्षिणं संयतोऽगादीन्	२०६
निरर्थकमिदं कर्म	५६	निश्चलश्च क्षण स्थित्वा	२४८	पक्षिमत्स्यमृगान् हत्वा	६
निरस्तमपि निर्यन्तं	३७२	निश्चेष्टविग्रहश्चाय	२७६	पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति	६
निराश्रयाकुलीभूता	८६	निश्छायं स्फुटित क्षायं	४०४	पक्षीभवन्नसौ यस्मा-	१८८
निरिक्ष्वैनमुत्पत्य	११६	निश्शब्दपदनिक्षेपा-	१४८	पक्षो नैः पञ्चभिर्मासै-	१०३
निरिक्ष्य सौम्या दृष्ट्या	१०८	निषद्याऋषभादीना-	२६६	पङ्कचन्दनयोर्यद्वट-	२२५
निरिक्ष्य स्वजनं विप्रो	१४६	निष्कान्तेनान्यदा तेन	२०३	पञ्चकल्याणसम्प्राप्तिः	३५
निरुद्ध भ्रातरं श्रुत्वा	३६४	निष्कामत परं गेहान्	१३४	पञ्चपत्न्योपमं स्वर्गं	७०
निरुध्य सर्वशस्त्राणि	२३५	निसर्गकान्तया गत्या	३३६	पञ्चषष्टिसहस्राणि	३५८
निरुपद्रवसञ्चारे	२६२	निहन्तास्मि न चेदेन	११२	पञ्चसङ्गन्धताम्बूल-	३०४
निरुपय क्वचित्तावद्	१०४	निहतोऽयमनेनेति	३२१	पञ्चस्यैरावतास्येषु	१४२
निर्गच्छन्तीं प्रजा दृष्ट्वा	१७८	नीचानामपि नाल्यन्त-	५६	पट्टवस्त्रादिसम्पूर्णा	४०६
निर्गन्धपुङ्गवावेभिः	२०६	नीता कल्याणमालारख्या	१२८	पठद्विर्विशदं युक्ताः	१०१
निर्गन्धसंयतश्छत्रं	३४७	नीतिज्ञैः सततं भाव्य-	४०६	पततावेश्मना तेन	३४२
निर्बाधः पतितः क्षोण्या	२४६	नीत्वा द्वादशवर्षाणि	२२६	पतद्विस्तोरणैस्तुङ्गैः	३३८

पतन्तं मा समालोक्य	४०१	पद्मो लक्ष्मण इत्युच्चै-	३६	परितोऽकरोद्भ्रमणमस्य	२२०
पतन् धीक्ष्य तदा रात्रा-	५७	पद्मोऽवदन्न मेऽन्याभिः	२६०	परित्यक्तनरद्वेषा	१७३
पताकातोरणैश्चित्रं	५६	पपात नभसो वृष्टि-	१५१	परित्यक्ताश्चित्रांघ्ने	१०६
पतितस्याद्य नो रूपे	१६३	पप्रच्छ परिसात्स्यैष	२३२	परित्यक्तोत्सवतिथिः	१४०
पतितोदारवृक्षौषे	३१३	पप्रच्छ मगधाधीशो	२८३	परित्यज्यप्रातिवीर्यस्य	१६४
पत्तनग्रामसंवाह-	२०३	पयसा संस्कृतैः काश्चि-	३३३	परिदेवननिस्वानं	२४८
पत्तयः पत्तिमिर्लंगनाः	२४४	पयोमुचः केचिदमी-	२२१	परिदेवनमारब्धे	२४६
पत्तिः प्रथमभेदोऽत्र	३५८	परं च विस्मयं प्राप्ता	११	परिदेवनमेवं च चक्रे चक्रा-	१२
पत्तिस्त्रिगुणिता सेना	३५८	परं प्राप्य प्रबोधं स	२७०	परिदेवनमेवं च चक्रे पुत्रक-	६५
पत्नीमहानरस्यास्य	२४७	परं विस्मयमापन्ना	१५०	परिदेवनमेवं च चक्रे विह्वल-	३८
पत्न्या जनकराजस्य	६	परं साधुप्रसादं च	३८३	परिदेवनमेव ता	७६
पत्युर्ममं न तुल्यस्तु	२७३	परचक्रसमा क्रान्तो	२२४	परिभ्रस्ताखिलद्वेष	६५
पदमन्यत्र यच्छ्रामि	४६	परदारान् समाकाञ्च्	२५३	परिप्राप्याश्रमपदं	५
पदातिभो रथैर्नगैः	१५६	परदारामिलाषोऽय-	२६०	परिवार्य महावीर्यं	२६६
पदार्थान् सर्वजीवादीन्	५३	परपद्मार्थं कर्तु-	३८५	परिष्वज्य महाप्रोत्या	१५२
पद्मः सीतानुगो भूत्वा	१७६	परमं भोजितश्चाक्षं	१४५	परिष्वज्य रहो नाथं	४१२
पद्मं लक्ष्मणसंयुक्त-	७५	परम सर्वमावाना	७३	परिसान्त्वनसूरिभ्यां	८२
पद्मकैर्मुचिच्छिन्दैश्च	२११	परमं सुन्दरे तत्र	१२५	परिसान्त्व्य सुतं क्रान्ता	२७
पद्मगर्भदलाभ्या च	१०४	परमं स्नानवारीदं	४०५	परिसान्त्वोत्तमैर्वाक्यै-	२४६
पद्मगर्भदलं यस्मिन्	२३	परमशितिशिलौघरश्मि-	२१७	पश्चैश्छन्दान्तैश्च	-२३८
पद्मगर्भदलच्छाया	४२	परमापदि सीदन्त	३२६	परेण तेजसा युक्ता	१८०
पद्मश्च सीतया साकं	१५१	परमेऽथ निशीथे ते	१२३	पर्यल्लब्धीं ततो विद्या	१०
पद्मनाभः सुमित्राजः	३६८	परयोषिःकृताशस्य	२५८	पर्यटन्तो महीं स्वैरं	१४७
पद्मनाभस्ततोऽगादी-	३८६	परलोकादिहैतस्त्वं	१०८	पर्यटन् वसुधामेतां	२६२
पद्मनाभस्ततोऽवोच-	२६७	परसैन्यसमाश्लेष-	३६१	पर्यट्य पृथिवीं सर्वां	३६६
पद्म पद्म महाबाहो	३८१	परस्परं च दुश्चिन्तां	३५५	पर्यस्ता भूतले केचि-	३६१
पद्मरागामनेत्रश्च	२०२	परस्परं समालापं	३५५	पर्यस्तानि न किं तानि	७१
पद्मश्च तानुवाचैनं	१२३	परस्परं समालोक्य	३०३	पर्यतिर्नास्ति मृष्टाना-	८४
पद्मस्य प्रणतिं कृत्वा	१७६	परस्परकृतं दुःखं	८	पल्लवस्यशंस्ताभ्या	२०६
पद्मस्याङ्गलियातोऽसौ	३४५	परस्परकृताह्वानै-	२४५	पवनलक्ष्यराजस्य	२६६
पद्मादिच्छादितैः स्वच्छैः	३२५	परस्परकृताक्षेपो	३१०	पवनस्य सुतो न त्वं	३४०
पद्माभस्य शरैर्ग्रस्तो	३६४	परस्परमिधाताह्वा	३५४	पवस्थात्मनः ख्यातो	२५०
पद्मेनादित्यकर्णोऽपि	३६२	परस्त्रीरूपसत्येषु	१८७	पशोर्भूमैककार्यस्य	२४२
पद्मे द्विरेफवत् सक्तः	१११	पराकाश्ययुक्तैर्कयं	१६२	पश्चात्तापानलेनालं	६४
पद्मेषु चरणाभिख्या	२८२	पराक्रमेण धैर्येण	३३०	पश्चात् खोतः संसक्ताय-	२१६
पद्मो जगद् ता देवि	१८३	पराद्मुखीकृतैः कर्त्तव्यैः	२१	पश्चादिदं समाकीर्णं	२०५
पद्मो नाम सुतो यस्य	३५	पराजिता त्वया नाथ	३२१	पश्चान्मस्तकभागस्थ-	४८
पद्मोत्पल्वनाब्जामि-	१६५	पराधीनक्रिया साऽह	४११	पश्चिमाया इवाशयाः	१२
पद्मोत्पलादिजलज-	५४	परार्थं यः पुरस्कृत्य	३२६	पश्यतः प्रौढया दृष्टया	३०८

पश्य तं विभवैर्बुक्तं	३३३	पाषाणेनैव ते गात्र-	११६	पुरस्तात् नरेशानां	१७४
पश्यताम्बरयानोद्ध-	३५६	पितरं तादृशं दृष्ट्वा	७४	पुरस्य दक्षिणे भागे	२७४
पश्यतैन महाभीम	११८	पितरौ परिवर्गेण	८१	पुरस्थात्यन्तदुर्गत्वात्	११२
पश्यन्ती तुरगान् द्वारे	४१०	पिता तद्वचनं श्रुत्वा	७७	पुरा करिक्राकार-	४८
पश्य पश्य नरश्रेष्ठ !	२००	पिता दशरथो यत्पुत्र-	३०५	पुराकृतादतिनिश्चितात्	३१६
पश्य पापस्य माहात्म्यं	२२६	पितानाथोऽथवा पुत्रः	८०	पुरातनं च वृत्तान्तं	६७
पश्य मातरमुक्तिवत्त्वा	८२	पितुः पालयितुं सत्यं	७८	पुरानेकत्र संग्रामे	२५५
पश्य सीता कथं याति	८२	पितुः सङ्गीतकं श्रुत्वा	४०४	पुरा योऽनेकमासादौ	२१०
पश्यात्मीय पतिं युद्धे	३३२	पितुरन्ते ततो नीतः	५६	पुरा विशिष्टं चरितं कृत्वा-	३१२
पश्यात्स्तावदित्युक्त्वा	३३६	पितुर्भ्रातृश्च दुःखेन	३००	पुरा संसर्गतः प्रीतिः	१
पश्याद्युष्य महानुभाव-	२१३	पिनद्ध कस्यचिद्दुर्म	३६३	पुरुषः कोऽन्वसौ लोक्रे	१७१
पश्यात्साकं लुपुप्साभि-	४७	पिनष्टि पञ्चवर्णानि	४५	पुरुषोत्तम मे माता	२२६
पश्येमे निखना धृष्टाः	१३४	पुण्डरीकातपत्रेण	१३७	पुरे कारयितुं शोभां	२७८
पात्यंगुलीयकं सीता	३३५	पुण्ड्रेच्छुचाटसम्पन्ना	१०४	पुरो मोक्ष्यामि सेवध्वं	१२०
पातालं किं भवेन्नीता	२४६	पुण्यक्षयात् परिभ्रष्टौ	३७२	पुरोहितो गन्तो जातो	७०
पाताललुत्थितः किं वा	३०	पुण्यवत्य इमाः श्लाघ्या	४६	पुण्यकार्यं समारोप्य	२६१
पात्रदानप्रभावेण	२११	पुण्यवन्तो महोत्साहाः	५०	पुण्यचूडो महारक्तो	३६४
पात्रदानमहो दानं	३३५	पुण्यानुभावेन महानराया	३५७	पुष्पप्रकसंपूर्णाः	८२
पात्रदानानुभावेन	२०१	पुण्येन लम्पते सौख्य-	७२	पुष्पाणि गन्धमाहारं	२४
पात्रदानैः त्रैतैः शीलैः	३७३	पुत्रः प्रकाशसिंहस्य	२	पुष्पाद्भेदवतीर्णस्य	३३७
पादताडितभूभाग्गा	३३२	पुत्र राक्ष्यं त्वया लब्धं	९३	पुष्पैर्जलस्थलोद्भूतै-	१०३
पादन्यासैर्लघुस्यूष्ट-	१६२	पुत्रवत्यो भवत्योऽत्र	८४	पूरिताञ्जलिर्मयाना-	३४५
पादपाना किमेतेपा	२२४	पुत्रार्थ्यां सह सम्मन्त्र	८४	पूर्णं जगत्सिद्धिं जन्तु-	३०७
पादमार्गप्रदेशेषु	३३८	पुत्रोत्तिष्ठ पुरीं यामः	६५	पूर्वं सनत्कुमाराख्यः	१४४
पादमूले ततो नीत्वा	१४१	पुत्रोऽनरखरराजस्य	३५	पूर्वकर्मानुभावेन प्रेरितः	२६२
पादविन्यासमात्रेण	३४२	पुनः पुनः समाहूय	३०६	पूर्वकर्मानुभावेन स्थिति-	३७१
पादावष्टम्भभिन्नेषु	३३८	पुनः पुनरपृच्छच्च	२८८	पूर्वं चक्रे लक्ष्मीनाथः	२१६
पादोदकप्रभावेण	२०२	पुनः पुनरपृच्छत् सा	१५२	पूर्वजन्मनिवास्येऽस्मिन्	५७
पानकानि विचित्राणि	१२६	पुनरन्यैर्भटैः शीघ्र-	३६६	पूर्वद्वारमदो यत्सु	१३८
पापकर्मपरिविज्ञाटै-	१०८	पुनश्च मावृतेः पार्श्व-	२७४	पूर्वद्वारेण संचारे	३६८
पापघातकरं सर्व-	१०७	पुनश्च राघवोऽवोचत्	१२१	पूर्वमेव तु निर्यातो	१८
पापात्मकमनायुष्य-	२५३	पुनश्चाचिन्त्ययुद्धे	२४८	पूर्वमेव हृता कस्मा-	५५
पारगः सीतया सार्धं	६०	पुनश्चोवाच भरतं	६५	पूर्वानुबन्धसद्वक्रोच-	३८८
पार्थिवः प्रतिभः कश्चि-	४०६	पुनस्तत्रैव गान्धार्या	७०	पूर्वपरायतद्वोषयां	१५
पालयन् स निजं सैन्यं	३६२	पुनाति त्रायते चाय	७६	पूर्वं तु प्रच्युतौ नाकात्	३७२
पाशकोऽज्ञान्तरे नत्वा	२८	पुरःकृत्वातिवीर्यस्य	१६६	पूष्णो यस्य करैरुग्रै-	४
पाशैर्यथः पद्मनाभस्य	३४८	पुरःप्रवृत्तसोत्साह-	१५३	पृच्छन्ती श्री वरा तस्य	१११
पाशैर्यथया तथा रेजे	४१	पुरप्रामसमाकीर्णा	१६६	पृथिवीति प्रिया तस्य	१२७
पाशैर्वै कमलज्ञान्ताया	६३	पुरमव्ये महादुःखं	४०६	पृथिवी महिषी तोष-	१३२

पृथिव्यः सति सप्ताधो	१०७	प्रतिपद्यस्व तत् क्षिप्रं	२५७	प्रभाते तद्विनिर्मुक्तं	१७०
पृथुस्थाधिपस्याहं	२६२	प्रतिपन्नैस्ततः सर्वै-	२६८	प्रभापरिकरा शक्ति-	४१०
पृष्ठश्च लक्ष्मणः कृत्स्नं	२२७	प्रतिबुद्धास्तया तेऽथ	३७८	प्रभामण्डलमादाय	६४
पृष्ठा च सा मयाख्यात	१३६	प्रतिमा यो जिनेन्द्राणा	६८	प्रभामण्डलमायातं	३५६
पृष्ठतश्चास्य सानन्दा	३४२	प्रतिमा किन्तु जैनेन्द्री	३१७	प्रमावं तपसः पश्य	१६७
पौदने नगरेऽन्विष्य	३	प्रतिमावस्थितान् काञ्चि-	१८४	प्रभिन्न वारण्यं तावद्	२०६
प्रकीर्णकं जनानन्दं	२६२	प्रतिसन्ध्येति तज्जाया	१३०	प्रभीष्यते वराक्रोऽयं	१७६
प्रकीर्णकं महीपृष्ठे	२६२	प्रतीकारो विलापोऽत्र	३६७	प्रभुर्महाबलो भोगी	२७१
प्रकारेणामुना शत्रू-	२६८	प्रतीच्छारिन्दमेदानो	१७४	प्रभूतदिवसप्राप्त	६४
प्रकृतेऽस्मिन् ल्वमाख्यानं	३५५	प्रतीच्छेच्छसि मर्तुं चे-	१७३	प्रभ्रष्टासुरलोकाच्च	४०५
प्रचण्डनिस्सद्गण्डः	२६१	प्रतीतः प्रणिपत्यासौ	११३	प्रमदसुपगताना योषिता-	१३
प्रचण्डैर्विगलद्गण्डैः	२५८	प्रतीतां सनमस्कारा	१३२	प्रमदाभिख्यमुद्यानं	२६३
प्रच्छन्नं प्रेषिता दूती	२	प्रतीन्दोर्वचनं श्रुत्वा	४०८	प्रमादरहितस्तत्र	१६१
प्रच्छन्नमिह तिष्ठाम-	७	प्रतीहारा भयाः शशा-	१३६	प्रमादाद्भवतो वातो	३३५
प्रजातेन त्वया वत्स	३११	प्रत्यावृत्य च सम्भ्रान्त-	२८४	प्रयच्छति स्वयं नान्नं	६८
प्रजात्तरमानन्दा	२१	प्रत्यासन्नं ततः कृत्वा	१३२	प्रथोऽह्नि क्षपाया च	२०८
प्रजाभिः पृथिवीपृष्ठे	६२	प्रत्युवाच स तं भीतिः	१८७	प्रथयौ परया धृत्या	३०७
प्रजासु रक्षितास्वेत-	१६	प्रत्येकं पञ्चभिः सति-	१५६	प्रयाणतूर्वसघातं	३४७
प्रजासु विप्रनष्टासु	१६	प्रत्येति नाद्युना लोकः	३३४	प्रयाहि भगवन् भानो-	१४८
प्रजिघाय च सर्वासु	३२५	प्रथमं निर्गतोदात्त-	३६४	प्रयोगकुशालश्चारु	३८०
प्रणम्य केकया सान्तवं	६५	प्रथम वातिना हर्ष-	३४४	प्रलम्बाम्बुदहन्दोः	३०६
प्रणम्य च जगौ रामं	२७६	प्रथमा चन्द्रलेखाख्या	३१४	प्रलम्बितमहाबाहू	३१४
प्रणम्य त्रिजगद्गन्धं	१२१	प्रथमाभ्यां ततस्तस्य	२८५	प्रलयाभ्योदसम्भार-	३६३
प्रणम्य पादयोः साधुं	२०२	प्रथमे गोपुरे नील-	३६८	प्रभवति गुणसस्यं येन	१३
प्रणम्य भरतायासौ	१६७	प्रथितः सिंहकटिना	३७८	प्रवरं रथमारुह्य	१४८
प्रणम्य वायुपुत्रोऽपि	३११	प्रदानैर्दिव्यवस्तुना	२५३	प्रवरभवनकुक्षिष्वल्यु-	१४
प्रणम्य विधिना तत्र	१८३	प्रदोपाः पाण्डुरा जाता	५२	प्रवाच्य चार्पितं लेखं	६४
प्रणम्य शिरसा तस्य	६१	प्रदेशमौत्तरद्वार	३६८	प्रवाच्य मारुतिर्वाणं	३२१
प्रणम्य श्वसुरं श्वभू-	८१	प्रदेशा नगरोपेता	२८६	प्रवातधूर्गिताम्भोज-	४१
प्रणम्य सर्वभावेन	८४	प्रदेशान्तरमेतस्मिन्	३५४	प्रवाहेणामृतस्येव	२७६
प्रणाममात्रसाध्यो हि	२८३	प्रदेशे स त्वया क्रस्मिन्	३२८	प्रविशन्तं च तं दृष्ट्वा	२७२
प्रणामरहितं दृष्ट्वा	१७३	प्रदेशे सप्तमे राज-	३६८	प्रविशन् विपुलं सैन्यं	१६
प्रस्थिपत्यं गुप्तं मूर्ध्ना	६	प्रदोषे सस्तरं कृत्वा	१५०	प्रविश्य च पुरं दृष्ट्वा	११२
प्रस्थिपत्यं च भावेन	८७	प्रधानसम्बन्धमिदं हि	३७०	प्रविष्टं नगरं श्रुत्वा	११२
प्रणेष्टश्च समं तेन	३१४	प्रपद्यस्व च धीरत्वं	३६७	प्रविष्टे मारुतेर्गैर्हं	२६६
प्रतापश्चानुरागश्च	६६	प्रपद्येऽहं जिनेन्द्राणा	४	प्रवेशितस्य चास्थान्या	३३६
प्रतिज्ञा स्मारयैस्तस्य	२८३	प्रपात्य भूतले भूयो	८	प्रवृत्तश्च महासीमः	१८
प्रतिज्ञाय तदेदानीं	७५	प्रपीड्यते च यन्त्रेषु	७	प्रशमम्य स्वयं क्रोप-	८१
प्रतिपत्नी भवन् साधो	२८७	प्रबुध्य च विशालेन	६५	प्रशशसुश्च ते सीता	८७

प्रशान्तगुणसम्पूर्णं	३०३	प्राप्तबोधिरसौ पत्नी	२०६	फलैर्बहुविधैः पुण्यै-	१०१
प्रशान्तावस्थितं हत्वा	२३३	प्राप्तरोषं सुतं दृष्ट्वा	३०६	[च]	
प्रशान्तो भव मा पीडा	२०८	प्राप्तश्च तामरण्यानी	६४	बद्धस्तथाविधो वृत्ते	२६१
प्रेषित. पद्मनाभश्च	३२६	प्राप्तसत्कैलना स्त्रीणा	४०५	ब्रह्मन्धतमसा पत्नै-	३६५
प्रसन्नवदना भट्ट-	२२६	प्राप्ते काले कर्मणामानु-	३६६	बद्ध्वा परिकरं पुमिभः	१६५
प्रसन्नमानसौ सद्यः	१८३	प्राप्ते विनाशकालेऽपि	३४१	बधान स्फोटयाकर्ष-	३६०
प्रसन्न साधुना हट्ट-	५५	प्राप्तौ दूष्यगृहद्वारं	४००	बन्धयित्वा महावृत्तै-	६४
प्रसादः साधुना तस्य	१०६	प्राप्तौ भवत्प्रसादेन	६२	बन्धुस्नेहमय बन्ध	१०६
प्रसादं कुर्वन् शुक्य	११२	प्राप्तौ नानारचनभवनो-	१२४	बभञ्ज त्वरित काश्चि-	३३७
प्रसादं कुर्वन् तच्छाया-	१२६	प्राप्य च वासमात्मीयं	३४४	बभूव चोदितस्यापि	१८४
प्रसादं कुर्वन् मा दुःखं	१२०	प्राप्य तौ गुणसंपूर्णौ	३३	बलं वाप्रमुखं दृष्ट्वा	३१८
प्रसादं कुर्वन् यास्यामो	४०६	प्रावृट्कालगजो मेघ-	२२३	बलदेवोऽपि कसंख्य-	१४७
प्रसाद्यता सुविज्ञानै-	२६७	प्रावृत्त्ये यस्य भगवन्	५	बलीयान् रावणः स्वामी	२५७
प्रसादाद्यस्य यतोऽसि	३४०	प्रासादगिरिमालामि-	१७१	बलिश्चण्डतरङ्गश्च	३७७
प्रसीद दयितस्त्यास्य	४७	प्रासादप्रचरोत्संगे	२७२	बलोऽस्मिन् मारदेशीयो	३५६
प्रसीद देवि कोऽद्यापि	४७	प्रासादशिखरच्छाया	१६५	बर्हिर्निष्क्रान्तकैश्चिन्ध-	३४४
प्रसीद देवि भृत्यास्ये	२५२	प्रियंगुलतिका पश्य	२१३	बर्हिर्विनिर्ययौ हृष्टः	३०६
प्रसीद नाथ सुखस्व	४१०	प्रियस्य चिरद्रे प्राणान्	१२३	बर्हिश्चैत्यालयस्यास्य	२७६
प्रसवमेवक कृत्वा	६१	प्रिया जीवति ते भद्रे	३४४	बहुकोषो नरेशो यः	१६
प्रस्तोरो हिमवान् भङ्गः	३६७	प्रियापरिमलं कश्चि-	३६३	बहुनात्र किमुक्तेन	११७
प्रस्थिता च पिडुगौहं	२८४	प्रियायास्तदभिज्ञानं	३४५	बहुनादा महाशैला	३५७
प्रस्यष्टमिति चोवाच	११६	प्रिये त्वं तिष्ठ चात्रैव	८०	बहुप्रकारैर्मरणाज्ञैर्नो	१००
प्रहस्यावोचतामेता-	१७६	प्रिये मा गाः परं शोकं	१२	बहुभिः पूज्यमानोऽसौ	३०२
प्रहारमिममेकं मे	३६३	प्रीतिवर्धनसंज्ञस्य	१०६	बहुले मार्गशीर्षस्य	३४७
प्राकृता कापि सा नारी	३७	प्रीतिश्चेन्मयि युष्माकं	२६०	बहुश्रुतोऽतिघर्मज्ञो	६६
प्राकृता परमा सा त्व	३३१	प्रीत्या परमया दृष्ट्वा	७४	बाजिनो वारणा मत्ता	३७६
प्राग्भागेषु स्थिताः केचिद्	५१	प्रीत्या विमोचयामि त्वां	३२६	बालः सूर्यस्तमो घोर	१७
प्राग्भारदधिवक्त्राश्च	३५३	प्रीत्या सर्वाधितं भूयः	८०	बालनीलोत्पलभ्रान-	३७६
प्राग्भारसिंहकर्णस्थ-	१०५	प्रेमनिर्भरं पूर्णेन	३२१	बालञ्जुद्विपि स्वामिन्	२६०
प्राणाश्च धारयन्तीनां	१२३	प्रेषितं मानुमार्गेषु	६४	बालाना प्रतिकूलेन	१७४
प्राणिनां मृत्युभीरुणा	६	प्रेषितः कोशला दूतः	३८	बालखिलन इति ख्यातः	१२७
प्राणेशं निश्चितं श्रुत्वा	७३	प्रोक्तश्च पद्मनाभेन	३६४	बालेन्दुद्वतसर्वस्वो	६१
प्रातिवेशिमक्रयोधाना-	३६१	[फ]		बाल्यात् प्रभृति दुःकर्म	१३०
प्रातिहार्यं कृत येन	१६४	फलं ध्यानाच्चतुर्थस्य	६८	बालं हस्तशताद् भूमि-	४०५
प्रातिहार्यसमायुक्तं	३०	फलं प्रदक्षिणीकृत्य	६८	बाह्यभूमिगतस्तत्र	२०४
प्रातिहार्ये कृते तास्या-	१८३	फलं यदेतदुद्दिष्टं	६८	बाह्यस्थानि पुरस्यास्य	१६०
प्राप्त्येपु सर्वसामन्ता-	३६	फलपुष्पभरानम्रा	३३६	बाह्याया भुवि लङ्काया	३३६
प्राप्तः कर्मानुभावेन	१३०	फलभारनतैरग्नै-	२१२	विभर्ति तावद् दृढनिश्चयं	३७०
प्राप्तः प्राण्येसपात-	७१	फलानि स्वादुहारीणि	१०३	विभेति दशचक्राहः	३४६

बुद्धिमानसि ज्ञान्योऽसि	१२१	भयेन स्वनतस्तस्मा-	१७६	भव्याम्भोजमहासमुत्सव-	३८६
बोधितेन दाक्षिण्या-	२६८	भरतः शिञ्जणीयोऽयं	६५	भाग सर्वं परित्यज्य	७८
ब्रवीत्येवमथौ यावत्	६४	भरतस्ये विदग्धाख्ये	६०	भागो न भरतस्तस्य	१६०
ब्राह्मणी विनिशाम्यैतं	१४०	भरतस्य किमाकृत	८२	भाग्यन्तो महासत्वा-	६०
ब्राह्मणया वसुभूतेश्च	१८४	भरतस्य जयेनात्र	१६०	भामण्डलं प्रतिक्रुद्धाः	३६५
ब्रुवते नास्ति तृष्णा न	८	भरतस्य ततो मात्रा	४१०	भामण्डलकुमारस्य	५४
ब्रुवत्या अपि सीताया-	१२६	भरतस्य त्रिखण्डस्य	२६७	भामण्डलेन सम्भ्रज्य	६४
ब्रुवन्ति महाहृष्टः	१४३	भरतस्य मया नाथ-	४२	भामिनी जनकस्यासीद्	१
बृहन्नृक्षुकिनो हस्ते	४५	भरतस्याखिले राज्ये	७६	भारती न विशत्याज्ञा	१६७
बृहन्नैतुस्ततोऽबोचत्	५५	भरतस्थाल्यं प्राप्त-	४०६	भार्या मित्रवती तस्य	२८४
बृहज्जटो बृहत्कायी	३७२	भरतायानिनरोच्चिण्यु-	१५८	भावपुण्यैर्जिनं यस्तु	६७
बृहद्गतितनूजस्तु	११०	भरतेन ततोऽत्राचि-	४०६	भाव प्रतग्नसे किं त्व-	२०१
बृहद्वादित्रनिर्धोषे-	१६	भरतो जयति श्रीमान्	१६४	भाषमाणे गुणानेव	१७५
[भ]		भर्तारं दुःखयुक्तेव	२५४	भासा भूषणजाताना	३०२
भक्तिभिः पूज्यमानोऽपि	८३	भर्तुर्मै भूषिताङ्गस्य	२७३	भास्कराभाः पयोदाह्वः	३५६
भक्त्या वस्तुगृहार यः	६८	भवतो या गतिः सैव	३४६	भास्वन्नक्तिशताकीर्णं	१७२
भक्त्या शशाङ्कयानोऽपि	३१	भवत्कीर्तिलताजालै-	२६०	भिन्नं वैध्यानदग्डेन	१८१
भगवंस्तत्रसादेन	५८	भवत्प्रभावज्ञतसर्वविघ्नं	४१४	भीमभोगिमहद्भोग-	३३७
भगवन्तौ कृतो नक्तं	१८४	भवत्या यद्यसौ भ्राता	५६	भीमो भीमरथो धर्मो	३६७
भगवजयमत्यन्त	२०२	भवत्या रमणोद्याने	२५२	भीषितानां दरिद्राणा-	२
भगवान् स हि सर्वत्र	५८	भवत्या वाञ्छितं कृत्वा	३६२	भुञ्जे देशं मया दत्त-	११३
भगिनी दुर्नखा तस्य	२२५	भवद्विद्वचमैः प्रीतै-	३६६	भुक्त्वा भोगान् दुःकृपादान्	७७
भग्नं पुष्पनगोद्यानं	३३६	भवद्वद्वैस्यलस्त्यान-	३६१	भुक्त्वा राज्यं चिरं कालं	१८६
भग्नोत्सृज्यापयश्रेणिः	३३८	भव धीरा प्रवीराणां	४००	भुषुण्डीः परशूल् वाणान्	३१०
भग्नः शङ्करसैन्येऽस्मिन्	१६	भवनं यस्तु जैनैर्द्रं	१८	भूतमात्रमतिं त्यक्त्वा	५८
भज खेचरनाथाना	५६	भवनेऽवधिनो स्मृत्वा	६	भूतोऽयं भविता वापि	११६
भजत सुकृतसङ्गं तेन	३४३	भवन्त तादृश चीरं	३६६	भूमिगोचरिणो मर्या-	१८३
भजता चन्द्रहासेन	२२८	भवन्तं शरणं भक्तः	३५४	भूमिसम्प्राप्तसौवर्ण-	३४२
भज तावत्सुखं पुत्र	७६	भवन्तमेव पृच्छामि	१०८	भूयो जलधिकलोल-	३८८
भजत्येव तथा देवो	१५७	भवादारभ्य पूर्वोक्तात्	१६०	भूयो भूयो बहु ध्यायन्	२४२
भज सर्वाः क्रियाः पुत्र-	२७	भवान्तकस्य भवन	८३	भूयो विषादमागत्य	२४०
भव्यमानं निर्जं सैन्य	३८६	भवान्गमा मम स्मृत्वा	७३	भूरिशोऽवग्रहाश्चक्रु-	५२
भञ्जनं करशाखानां	२२६	भवामि छत्रधारस्ते	६४	भूविषरेषु निपातमुपैति	३७३
भद्र किं किमयं स्वप्नः	६४	भवार्णवसमुत्तीर्णा-	२६५	भृगुपातपरित्रस्ता	१८०
भद्र ते कुशलेनाथ	१२१	भवितव्यं कृतज्ञेन	३३१	भृत्याना भक्तिपूर्वाना	८८
भद्राः किं किमिति ब्रूये-	१८५	भवितारौ जगत्सारौ	१६३	भृत्यो भूत्वा विपुण्योऽहं	११०
भद्रे कोऽहं प्रसादस्य	१६२	भव्यबीजा यमासाद्य	६०	भेद्यमानं बलं हृष्ट्वा	३६६
भद्रोस्तिष्ठ जययुः खं	२२७	भव्यता पश्यतामुष्य-	२६६	मेरीपश्यववीणाद्यै-	५२
भम्माभेयो मृदङ्गाश्च	३६८	भव्य भो यावदायाति	६६	मेरीशङ्करवः सिद्धि-	३४८

भोगसागरमग्नोऽसौ	२७८	मद्यपस्यातिवृद्धस्य	२७३	मयायं सहशो मन्ये	२७१
भोगैर्नास्ति मम प्रयोजन-	१७७	मद्वाक्यादुच्यता सीता	३०६	मया शिशुतया किञ्चि-	३११
भो भामण्डलसुमीवौ	३६७	मद्वियोगेन तता वा	२८२	मयासीन्मन्दधीभाजा	१४०
भो भो निर्भय मा गास्त्वं	२०४	मधुरं ब्रुवते काश्चिद्	१०२	मया स्नेहानुवन्धेन	७०
भो भो महीधराधीश !	२४१	मध्ये च गहनस्यास्य	२२६	मयि स्थिते समीपेऽस्मिन्	७६
भो भो सुविभ्रभाः सर्वे	२८५	मध्ये तस्यापि विपुलं	२२६	मयूरमालानगरे	१५
भो वृक्षाश्चम्यकच्छाया	२४०	मध्ये मन्दरतुल्योऽस्य	२८८	मयेति गदितं वाक्यं	२५७
भृत्यस्य दशवक्त्रस्य	३३१	मध्येऽयमस्य तैन्यस्य	३१	मयेदं शासनं जैनं	१३६
भ्रुकुटि कुटिला यस्य	२८६	मध्ये यस्य नदी भाति	१३३	मयेदमर्कितं पूर्वं	२५४
भ्रमश्च समिदाद्यर्थ-	१३६	मनुष्यभावसुकरं	२०१	मयैवं सततं पृष्टो	४०२
भ्रमद्भिश्चञ्चलैर्भृगै-	३३४	मनुष्यलोकमासाद्य	१६८	मर्थादा न च नामेयं	७६
भ्रमयित्वा क्षितौ याव-	१३४	मनुष्याणा पशूना च	२५६	मर्थादाना नृपो मूल-	३२४
भ्रमरप्रावृत्तैर्युञ्जैः	३२५	मनोरथं पुरस्कृत्य	२८६	मर्थधर्मा यथा कश्चित्	३४१
भ्रष्टनिःशेषनीतिश्च	३२६	मनोरथशतैः पुत्र-	७६	मलयोपत्यका प्राप्य	१६६
भ्राजते त्रायमानः सन्	७६	मनोविषयमार्गेषु	१८७	महतः सरसस्तस्य	१२५
भ्रातरौ वाञ्छिष्यीवौ	२७०	मनोहरैर्यद्भेर्भाति	२६३	महता शोकमारेण	१४६
भ्राता मम मृगे भीमे	२४२	मन्त्रदोषमसत्कारं	२७०	महतापि प्रयत्नेन	८८
भ्राता ममया सुहृदेषु वश्यो	३५७	मन्त्रिणो नृपतीन् सर्वांन्	८०	महता मोहपकेन	२५३
भ्राता विमीषणो यस्य	२८६	मन्त्री जाम्बूनदोऽवोचत्	३०६	महदाश्चर्यमेतन्मे	३७१
भ्रातृश्वन्ननखा पादौ	२५४	मन्त्री माता च मे वेत्ति	१२८	महाकल्लोलसङ्काशा-	३७६
भ्रातृवन्धुपरिवृक्क	८०	मन्थरैश्चारुसञ्चारै-	१६२	महाजलधरञ्चान-	४१
भ्रातृभिः स वितृ-या च	२६२	मन्दमात्तनिश्चितैः	२१२	महातरोरधस्तावत्	२६३
[म]		मन्दोदरि परं गर्वं	३३१	महातामसशस्त्रं च	३६२
मकरग्राहनक्रादि-	३२८	मन्दोदरी क्रमात्प्राप्य	२५७	महातुरङ्गसंयुक्तैः	३०१
मकरन्दरसास्वाद-	१२१	मन्दोदरी ततोऽवोचत्	३३१	महादेव्यायुमे तस्य	१८८
मत्सिकाच्छदनच्छात-	४८	मन्दोदरी ततोऽवोचच्छूराः	३३०	महाद्रिकन्दरास्फाल-	८८
मगधेन्द्र ततो वातिः	३२४	मन्दोदरी सुतं तावदभि-	३८२	महानरानिति पुरदुःख-	२४२
मगधेन्द्रस्ततोऽपृच्छत्	३५८	मन्दोदरीसुतोऽप्येष-	३६३	महानिर्भरगम्भीरान्	२११
मणितोरणरम्येषु	१३८	मन्मथाकृष्टनिःशेष-	१६२	महान्तश्च पुरस्कारा-	१६
मणिपीठस्थित सौम्यं	८३	मन्ये पराजये देवान्	४११	महान्तस्तस्य सज्जाता	२६३
मण्डलप समाक्षिप्य	१६४	मन्ये तस्य सुरेशोऽपि	३७	महापुरुषयुक्त ते	१२६
मतिक्रान्तोऽब्रवीत्सपञ्च	३५४	मन्ये यथानुबन्धेन	२४६	महानिधानवह्नांका-	२६३
मत्तवारणदन्ताग्र-	३६१	ममात्मजमुदासीनं	२४५	महापदि निमग्नस्य	३३०
मचाः केसरिणोऽरुप्ये	३४०	ममापि सहसा हृष्टा	१२१	महापूतमिति श्रुत्वा	१६४
मत्सैर्गिरिनिर्गैर्नागै-	३७२	मयदैत्यात्मजा तीव्र-	३३२	महाप्रकृष्टपूरस्य	२३७
मदनाटकुरसन्ताप-	३७४	मया किं तर्हि कर्त्तव्य-	४०६	महाप्रतिभयाकारां	४०३
मदनैर्सादिरैर्निञ्जै-	२१२	मया जन्मानि भूरीणि	६७	महाप्रभावसम्पन्नं	३०३
मदीय रूपमासाद्य	२७४	मयानुमोदितस्तेऽयं	११	महाभेरीवनिं चाशु	४०८
मद्वाहुरितैर्वाणै-	३६४	मयापि पुत्र जातोऽसि	२२८	महाभोगो महातेजा-	१५५

महामहिषशृङ्गाग्र-	१०२	मातापितृसुहृन्मित्र-	२०८	मित्राणि द्रविणं दाराः	१८०
महाम्बुदप्रतोकाशा-	३६८	मातामहं समादाय	३१०	मिथिलनगरीतोऽहं	३२
महायोगेश्वराघीरा	१८१	मातालिङ्ग्यागदन् सीता	६६	मिथ्यादर्शनयुक्ताना	३७१
महारथवरैर्नाना-	३६८	माता विषेण तौ हन्तु-	३५५	मुक्तमात्रः स पापेन	८
महार्णवरवामेयं	३५१	मातुः सहोदरो भ्राता	६	मुक्त्वावप्यरूपस्य	१०७
महालोचनदेवस्य	३८३	मानवो भव देवो वा	१२०	मुक्ता कन्या स्वशिविरं	३३२
महावष्टम्भसुस्तम्भा	१६६	मातृषत्वं परिभ्रष्टं	२४०	मुक्तादामसमाकीर्ण-	२६६
महाविनयसम्पन्नः	१२५	मातृषद्वीपमासाद्य	१४०	मुक्तिज्ञान्तिगुणैर्मुक्ता	१६
महाविनयसम्पन्नो	८१	मातृष्यकमिदं जातं	१६६	मुक्त्वा नानाकृत्यासङ्गं	२१६
महाशक्तिमिम शत्रुं	२४४	मानन्दतैरिमैवाक्यै-	२६७	मुक्त्वा त्रिभुवनाधीशं	१०६
महाशीतपरीतस्त्व-	३५२	माभूत्तस्मिन् कृतक्रोधे	२६७	मुग्धबालकमादाय	४०८
महाश्रद्धान्वितस्वान्ता	३३३	मा भैषीर्भद्र मा भैषी-	२८७	मुग्धा मुग्धमृगीनेत्रा	४१२
महासंवेगयुक्तोऽन	२०५	मामैष्ट ततो राजा कृत्वा	१८५	मुञ्चते समये यस्मिन्	६
महासाधनसामन्त-	१६८	माययाह्वयचैनं	११०	मुञ्चते सुकृतं चासा-	७०
महिमानं परं प्राप्य	३८३	मायां सुग्रीवसन्देह-	२६८	मुञ्चन्वानन्दनेत्राम्-	२०२
महीतले समस्तेऽस्मिन्	२८५	मायाविनिहतैः क्षुद्रै-	२३४	मुञ्चन् त्वरितं क्षुद्रं	१३४
मुहुः प्रेषितदूतोऽयमद्य	३४६	मायासदृष्टसम्पन्नो	२७५	मुदितैः किङ्करैर्मैरी	१७
महेन्द्रं निभृतं श्रुत्वा	३११	मा यासीदँषि संत्रासं	२५८	मुनयो यं समाश्रित्य	१४०
महेन्द्रकेतुरत्युग्र-	३४६	मारयामीति तेनोक्त्वा	५७	मुनिं निःप्रतिकर्माणं	२०३
महेन्द्रजितसञ्जश्च	२८६	मारस्यात्यन्तमृदुभि-	२५२	मुनिपायातमात्रः सन्	५२
महेन्द्रजिदसौ बाणै-	३६२	मारितारिम् न कि तेन	१२	मुनिमुन्नतनाथस्य तीर्थै-	१६३
महेन्द्रसदशैस्ताव-	२५३	मारीचः सिंहबधनः	३७४	मुनिमुन्नतनाथस्य सम्प्राप्य	१४१
महेन्द्रोऽथ महावीर्यो	३१०	मारीचः सिंहबधनः	३६४	मुनिमुन्नतनाथाय तस्मै	१४२
महेन्द्रोद्वेगययात त-	५८	मारीचोऽमलचन्द्रश्च	३५१	मुनीना वत्स केषाञ्चि-	७७
महेभङ्गुमशिश्वर-	२३६	मा रोदीः सौम्यवक्त्रे त्व-	३२१	मुनीशेन समादिष्टा	४०६
महीदरस्य वातेश्च	३७७	मार्गं तत्र क्रियन्तं चि-	१०४	मुनी सुगुप्तिगुताख्या	२००
महीरगाङ्गना कि स्याद्	२५	मार्तण्डमण्डलच्छायो	५१	मुनेश्चारित्रशूरस्य	१३८
महामन्वेषितस्ताभ्या	१३	मालिनं नष्टमालोक्य	३७५	मुनेस्तस्य प्रभावेण	२०५
मासखण्डभमगनाक्षी-	१८२	माली तत्पाग्रतो भूतो	३७५	मुसुञ्जश्च घनं शलं	३३७
मासाशानाविबुक्ताना	१४४	मा वीवधोऽस्य लक्ष्मीमन्	१६४	मुहुस्तामीक्षते कन्यां	२६
माणिक्पथशकलाङ्कानि	२३५	मा ब्रवीरङ्गदैन्यं त्वं	१६५	मुहूर्तं मन्त्रिभिः सार्धं	२७५
मातरं भ्रातरौ चैवा	३५५	माश्वसीदीर्घमुष्णं च	७८	मुहूर्तंऽथ चतुर्थं नु	३३३
मातरं शरणा प्राप्ता	३०८	मासमात्रमुषित्वातो	६६	मुहूर्तानामिः स्वरैर्ग्रामै-	१६२
मातरौ दुःखिते एते	६३	मासानेकादशामुष्ण्यां	४०६	मूर्तिनिर्मुक्तमेवैत-	२०५
माता च वनमालायाः	१५२	मामोपवासिनौ वीरौ	२००	मूर्तिमन्तमिषानङ्गं	३२०
माता तं भूङ्क्षिता दृष्ट्वा	६५	मास्याक्षीर्लक्ष्मण देव-	३६७	मूर्धोरोधुजबद्धादी-	१८२
माता पिता च ते वत्स	६२	माहात्म्यादमुतो राजन्	२१	मृगध्वजो रणोर्मिश्च	१५६
माता पिता च पुत्रश्च	६	माहेन्द्रिरथ सम्भ्रान्तो	३०६	मृगीत्वं सरसा प्राप्ता	६३
मातापितृसमायोगं	३११	माहेन्द्रिमुदितो भूयो	३०६	मृगेन्द्राधिष्ठितात्मान-	२६७

मृदङ्गवंशसुरज-	१६७	यथा भज समागत्य	१५७	यद्युभिर्महवैरन्वै-	३६५
मृदुमरुदीरथङ्करमलं	२१६	यथा भवशतैः खिन्नो	१३३	यवौ सिंहकटि नीलो	३६०
मृद्यमाना निपेतुस्ते	२०	यथाभूतो मुनेर्धर्म	१४०	यथोद्यग्मुनेः पार्श्वे	६६
मृत्युङ्गोल्लसंयुक्ता	७३	यथा मे केचिदेतस्मिन्	१५५	यस्त सर्पति मूढात्मा	३१७
मृत्युजीवननि.काक्षा	३१४	यथा यथा महाभाग्या	४१०	यस्मिन्शूलधरः संख्ये	३६०
मेघकाण्डानि वल्गाणि	१६५	यथा रत्नाकरद्वीपं	६६	यस्मादंशुजयस्तस्य	२१०
मेघवाहनवीरिण्य	३७६	यथावद् विदितं तेन	२८५	यस्मिन् दधिमुखं नाम	३१३
मेघशृङ्गप्रतीकाशं	३६५	यथावस्थितभावाना	२२५	यस्मिन्न विद्यते पत्न्या	१६६
मोहारिकण्टक हित्वा	१८७	यथाश्रुति परिज्ञाय	८७	यस्य चारण्यकन्याना-	१६४
श्लेच्छनिर्घाटनात् स्तोत्रं	३४	यथा सत्त्वहितेनेदं	४०६	यस्य देशं समाश्रित्य	१७
श्लेच्छैः किं ग्रहणं लुद्रै-	३४	यथा स्थुरामि ते मातः	८०	यस्य सर्पस्य सम्पर्काद्	२०३
श्लेच्छोऽयं हन्सुमुद्युक्तो	१८७	यथेष्टं दीयमानेषु	१७५	यस्याः कृते क्षतोर्स्कं	३६६
[य]		यथोक्तमाचरन् राज-	२२६	यस्यां गर्भप्रपन्नाया-	४०२
यः करोति विभार्या-	६७	यदत्र द्रविणं क्रिञ्चि-	१२८	यस्या रात्रौ वनोद्देशे	१४८
यः पुनः शीलसम्पन्नो	८	यदर्थं मत्तमातङ्ग-	३५२	यस्यातपत्रमालोक्य पूर्ण-	२८६
यः सन्देहकलङ्केन	६८	यदाज्ञापयतीत्युक्त्वा	४२	यस्यातपत्रमालोक्य शरदि	३६०
यः क्लिप्तियिवेलाया-	१४०	यदाज्ञापयसीत्युक्ते	१६७	यस्यायस्तस्य मित्राणि	१४४
य य देशं विहितमुकृताः	३४६	यदि दृष्टिप्रसादं मे	२५२	यस्यालोक्य तदा संख्ये	३०३
य वीक्ष्य जायते कोपो	३७२	यदि नाम न तत्त्वैर्न्यं	३३	यस्यासिरत्नमुत्पन्नं	२३४
य वीक्ष्य जायते चित्तं	३७२	यदि भोगशरीराम्या	११०	यस्यास्तदानि रम्याणि	१६६
य इदं कपिलानुकीर्तनं	१४६	यदि मे निश्चयोपेतः	२७६	यान्तेषु किमुतायाति	१०५
यज्ञेणैव कृते तस्मिन्	१५३	यदिमौ शोभिनी मुग्धे	१७०	यादृक् येन कृतं कर्म	४३
यच्छं नाशा नरेशाना	४०६	यदि वाञ्छसि जीवन्तं	२६५	यामोऽनेन समं दुःख-	८२
यजन्ते भावतः सन्तो	१६	यदि सा वेधसः क्षुष्टि-	२५५	या येन भाविता बुद्धिः	३४१
यतोऽनया जितं पद्मं	१७१	यदीयं देव नामापि	२८८	यावच्च कुरुते पूजा	३१४
यतोऽयं टण्डको देशः	२०५	यदोपलभ्यते चावां	३२२	यावत्तस्य च तार्सां च	२३
यत्सदस्तप्रहस्ताभ्या	३७२	यद् शोभमातपतताङ्गौ	१४६	यावत् तिष्ठन्ति ते तत्र	१३३
यत्प्राप्तव्यं यदा येन	५०	यद्दर्शं दुःखितोऽप्राप्त्वी-	६१	यावत्साली नरेन्द्रस्य	२६३
यत्र त्रिलोकपूज्याना	५७	यद्यनेन समं सक्ता	३२१	यावत्पर्ययति तं बद्धं	२६१
यत्र यत्र पदन्त्यास	१६६	यद्यथा निर्मितं पूर्वं	१८८	यावत्पर्ययति तं मुक्तं	२४६
यत्र यत्र समुद्देशे	१६२	यद्यप्याशापूर्वकर्मानु-	२५१	यावत्पर्ययति सञ्जात-	३६३
यथा क्लिप्तये लोके	३२४	यद्यन्युपशर्मं यात-	१५८	यावत्प्राप्नोमि नो वार्ता	२५३
यथा क्लिप्त विनीताना	११६	यद्येनं वारयामोऽतः	१८२	यावत्सुग्रीवभाचक्रौ	३८१
यथा क्लिप्त समस्तोऽयं	४०१	यद्विद्याधरसन्तानं	३८६	यावदाहूयते स्वामी	३२६
यथा ज्ञापयसि स्पष्ट-	१५१	यद्वृत्तं दण्डकाखपस्य	३५६	यावदेवं बदन्येषा	४७
यथा ज्ञापयसीत्युक्त्वा	३०६	यद्रौद्रभूतिः सुचिरं विचिर्न	१३२	यावदेव ध्वनिर्लोकै	२०५
यथा त्यङ्गिरेहै बाला	१४६	यन्त्रैषु श्रमणाः सर्वे	२४०	यावदेवमसौ पद्मं	३८१
यथा नन्दोश्चरे द्वीपे	४५	यन्त्रैर्ह्रस्वजनक्षोदै-	२६८	यावदेवोऽपनीतो न	२०३
यथाधिपेन रामस्य	१३६	यन्निरिद्व्य वरारोहे	२००	यावद्वासानः समाधान-	३८२

यावच्च मुञ्चति प्राणान्	२६०	यो भूतिरूपमन्युश्च	७१	रथैः प्रभास्वरीर्दिव्यैः	६६
यावन्नोच्छति मा नारी	२५६	यो रतिं परनारीपु	६६	रत्नं प्राप्य बने भीमे	२४०
यावन्नोपद्रवः कश्चि-	३३४	यो लोकहितसुदिरय	३५	रत्नविन्यस्तचितेन	११०
यावन्तः केचिदन्ये तु	३६८	योऽसौ परमया शक्त्या	२०५	रमणाश्च महामोदान्	२६
यावन्तो युवने क्वचि-	३१५	योऽसौ विभोषणः स्वयातः	२६८	रमणारमबपञ्चल-	२५४
यावन्मुञ्चामि नो प्राणान्	२५६	योऽसौ विमुक्तिस्थितीत्	६३	रमते क्वचिदपि चित्त	६८०
मियासोः शस्त्रहस्तस्य	३६३	यौ रामलक्ष्मणौ नाम	२५७	रमते नीलनृपतिः	१८६
युक्तं युचतुरैरश्वै-	३३६	[र]		रम्यं चैत्यग्रहं तत्र	२७८
युक्तमुक्तमत्तं तारं-	१६०	रक्तच्छटा विमुञ्चन्त-	३६१	रम्येष्वग्निनिर्गमेषु	६०
युक्तमेवातिनीर्यस्य	१५६	रक्तवस्त्रशिरस्तायाः	१६	रम्ये सुविपुले तुये	६४
युक्त्या भवन्तमन्यस्य	२६	रक्तशिलौघपरिनिचितता	२१७	रवः किमेव सिंहस्य	२३४
युगान्तकालमेवौघ-	३१७	रक्ताशोकप्रकाशेन	२०४	रविणा दिवसस्यान्ते	८३
युद्धार्थमुद्गतावेतौ	३५३	रक्तावनं किं तत्	३६१	रविररिमङ्कोद्योत	३३३
युद्धावर्त्तो वसन्तश्च	३१८	रक्षःप्रभृतिषु श्लथ्ये	२२५	रहितश्चानया रामो	२६०
युद्धे च मानसं कृत्वा	३१८	रक्षःसामन्तसङ्घातो	३७५	रहिता शतपत्रेण	३२५
युद्धे हंस्तरयं तत्र	३४६	रक्षन्निर्दत्तं तस्मात्	२३६	रहस्यमिदमेकं च	२२४
युवगर्वसमाभ्यता	१६०	रक्षसा वानराणां च	३५६	रहस्यमेतत्सम्भन्ध	२६४
युवत्युज्ज्वलन्नक्षीना	१७०	रक्षितस्य पितृवाङ्म-	१६६	राक्षसानामधीशेन	२२४
युवयोः कुनतोर्लस्यं	२०७	रक्षिता येन मे प्राणा-	३३	राक्षसैः पचकारावै-	१८२
युवविद्याभूतालोख	२८६	रक्षोभिर्वैष्टितं दृष्ट्वा	३७७	राघवाकृतनुज्जाले	३४७
युश विभोषणेनाथ	३५४	रणप्रत्यागतं धीर-	३६१	राघवो रथमारूढो	१६
युष्मान् ब्रवीमि सञ्ज्ञेया-	२५८	रणभेरीनिनादेन	३५१	राक्षधियात् कुतोऽप्येव	२३४
ये जन्मान्तरसञ्ज्ञिताति-	१७६	रणसंसारचक्रेऽसौ	३७६	राक्षन्कर्मणुदसमर्थं	२६८
ये तस्य प्रणतास्तुङ्गाः	३५३	रणसञ्ज्ञाततोषेण	३६३	राक्षन् दाक्ष्यामङ्गलता-	२७२
येन व्यापादितो बल्ले	२५४	रणाक्षिरे परं तेजो	२४५	राक्षस साधयित्वा तं	५
येनासीत् समरे भीमे	२८७	रतिं न लभते क्वापि	३	राक्षन् वज्रमुखः क्रुद्धः	३१८
येनैवेन्दुनखानाथो	३३१	रत्नं पुरुषवीराणां	३६६	राक्षन् विचित्ररूपोऽय	१४४
ये पुष्येन विनिर्मुक्ताः	१५२	रत्नकाञ्चनरार्थिं च	२०६	राक्षपुत्रकरं प्राप्ता	२६१
येष्वयन्येऽन्वेषणं कर्तुं	२४६	रत्नकुण्डलमान्दना	१२२	राक्षपुत्रि परीक्षस्व	३६
ये विवाहोत्सव द्रष्टु-	४३	रत्नत्रयापादित्वाक-	१६६	राक्षपुत्र्या समं बालौ	६३
येपूङ्गितसितच्छत्रो	६३	रत्नमालिन् किमारब्धा-	७०	राक्षमारगुंऽद्रित्सकाशान्	१४२
येषा न भोजन हस्ते	१४०	रत्नमाली पुनर्नाना	७१	राबाधिराजशिल्लः	१५५
येषा विरतिरेकापि	२५६	रत्नवातावनैस्युक्त	२६	राबानमागतं शाल्या	४६
यैः संसारसमुद्रस्य	१४२	रथाग्नारूढमायान्त	७०	राबा भूत्या पुनः शङ्ख	६
योजनस्यार्धमं भागं	२२४	रथाचे विगता श्रीम-	३०६	राबाल्ये समुद्योतो	४०६
योजनानां शतेनापि	१५२	रथाहुत्तीर्थं पचास्यः	१७६	राक्षं पुरोहितस्यास्य	१
यो किनेन्द्राल्ये दीप	६७	रथान्तरं समारूढ-	३६४	राक्षं च संघृहीतस्य	१८६
यो ना परकलत्राणि	२६०	रथारुक्वारणारूढाः	३६०	राक्षोऽन्यस्य वृत्ता नाम्ना	१८६
यो निर्वाणशिका पुण्या-	२६४	रथे दिवाकरस्यापि	२८	राक्षं पाण्य वस्त ल-	७६

राज्य पुत्रेषु निक्षिप्य	१८८	लक्ष्मी कुमुद्वती यस्य	१६४	लोको जगद कि न्वेत-	४०८
राज्यस्थश्च प्रमादाश्च	२६३	लक्ष्मीधरः समाकर्ण्य	१७२	लोको दुर्लभदर्शनं	१३७
राज्ये तथाविधेऽयस्य	६५	लक्ष्मीधर पुरस्कृत्य	२८५	लोको विचित्ररुगोऽयं	६३
राजावपि न विन्दन्ति	१०८	लक्ष्मीधरकुमाराद्या	२७१	लोहितोऽपि शरैस्तीव्रै-	३६४
रात्रिमैका बहिर्निात्वा	२७८	लक्ष्मीधरस्ततोऽवोचद्	१२३	लोभसजासमासक्तः	१०६
रामः पप्रच्छ तेनैतो	१८७	लक्ष्मीधरस्तदादाय	११४	[व]	
रामकार्यसमुद्युक्ताः	३६७	लक्ष्मीधरेण रुदोऽसौ	३६०	वंशस्थलपुरेशश्च	१६५
रामपादरजःपूत-	१५६	लक्ष्मीधरोऽनुको यस्य	३३१	वशाद्विशिखरे रम्ये	१६५
रामलक्ष्मणयोरग्रे	२१०	लक्ष्मीमान् लक्ष्मणश्चाय-	३६	वक्त्रारविन्दमेतत्ते	२५२
रामलक्ष्मणयोर्वापि	१६६	लक्ष्मीलताविषकाङ्गं	३०२	वन्द्यस्तस्य तथा मित्र	३६३
रामे च पञ्चता प्राप्ते	२६७	लक्ष्मते दीर्घसूत्रत्वं	३४६	वचस्त्वा ज्ञापयामीति	१५७
रामेण यस्मात्परमाणि-	१६८	लग्नमश्वीयमश्वीयै-	३८८	वचोगुति ततो भित्वा	२०६
रावणस्य कुमाराभ्या	३८२	लङ्का जिगमिषोरस्य	३०८	वचोभिरभिरन्यैश्च	३२१
रावणस्य महासैन्यं	३५६	लङ्का दृष्ट्वा समासन्नां	३४६	वञ्जकर्णस्ततः कृत्वा	१२२
रावणस्य हि तनुल्यो	२६६	लङ्का कमलिनीखण्डं	३३८	वञ्जकर्णो दुरात्मारवं	११६
रिपुचक्रमिहायातं	१७	लङ्काधिपतिना नून	२८६	वञ्जगणेरिधामुष्य-	३०८
रिपुञ्जया. शशिस्थानाः	३५७	लङ्कानाथस्य पुत्रेण	३८०	वञ्जवर्तधनुर्घोषं	३३१
रुद्धाक्षराभिधानाभिः	२५३	लङ्कानिवासिभिर्यौधै-	३६६	वञ्जवर्तमधिलय चे-	३७
रुद्धाक्षरकुवस्त्रत्व	६१	लङ्कायाः परिपार्श्वेषु	२८६	वञ्जवर्तमिदं चाप-	४०
रूपमात्रेण यातोऽसि	२५	लङ्काया तेन विन्यस्ता	३४७	वञ्जवर्तं समारोय	३६
रूपमेवमलं कान्तं	१४५	लङ्काशालपरिक्षेपं	३१७	वञ्जोदरी ततोऽवोचत्	३४२
रूपेणाप्रतिभो युक्तः	३२७	लङ्केशः कोपनो योद्भुं	३८६	वञ्जोद्रोऽथ शक्राभः	३६४
रूपयौवनलावण्य-	२३०	लताग्रहेषु विश्रान्ता	१०३	वण्डने राजदानस्यं	३७१
रेजे विराधितस्यापि	३४८	लवण्य च पुनर्दानं	२६३	वट कि कृतमस्माभि-	७५
रेजिरे प्रतिमास्तत्र	१६७	लवण्यरत्नरथेनैषां	१८६	वदतामिति भृत्याना	१५१
रोमाश्चाचितसर्वांगा दधती-	४१	लवण्यदृशवक्त्रेण	४११	वट तेषा पशूनां च	३४
रोमाश्चाचितसर्वाङ्गा	५८	लवण्यदासो लघुप्राप्तः	४०५	वटनजितशशाङ्का-	१३
शेषतोषविनिर्मुक्त	१६८	लवण्यानुमननं ज्येष्ठा	२२३	वटन्ती पुनरेवं सा	१८०
रौरवाद्यवयक्रान्ता	१०७	लवण्यपि जैनं समय	१००	वटन्त्यन्योन्यमप्रैते	११८
रौरवारावरोद्रेण	१७६	लखिलितं परमैर्भोगैः	४६	वटञ्जवमसा ऊचे -	१२२
[ल]		लावण्य यौवनं रूप	२५५	वट पुत्रक किन्त्वेत-	५७
लक्ष्मणश्चमाधर वदुः	२०	लावण्ययुतिरूपाढ्यः	३२८	वटर नैरुमप्यस्मै	१४४
लक्ष्मणश्चानुजस्तस्य	३३	लिखन्तो भूमिमङ्गुल्या-	७३	वध्वा च त ततो गेह	२६०
लक्ष्मणस्ता तथाभूता	१४६	लील्या परया युक्ता	१८१	वनमाला रुई दृष्ट्वा	१७०
लक्ष्मणस्योपमांस्तश्च	२०	लुब्धकेनाहृतो जीवः	१८८	वनमाला ततोऽवोच-	१६६
लक्ष्मणनेपुणा तावद्	२४६	लुब्धको जीवमोक्षेण	१८८	वनमेतदल चारु	१६६
लक्ष्मणैर्नैव सुप्रोवः	२७७	लोकं च विविधं पश्यन्	१७१	वनस्वल्पुर्जीविन्या-	१४४
लक्ष्मणो दूपणेनामा	३२६	लोकं द्रव्यानुभावाश्च	५३	वनान्तररिपयं पुत्रं -	२३३
लक्ष्मणोरसि सा सक्ता	३६३				
लक्ष्मणो विस्मय प्राप्तः	२२६				

वनितामृतमेतन्मे	२४०	वहन् परमभावेन	११०	विज्ञावाङ्माम् महापोथान्	३४४
वनिते सर्वमेतत्ते	२५७	वाच्यो मद्रचनादेवं	१४६	विग्रहेऽविग्रहे वापि	३७२
वनेऽतिभीषणे कष्टं	३००	वातायनस्यतेषांपि	१६०	विघूर्णमाननयनः	५२
वनेऽस्मिन् जननिर्मुक्तैः	२४०	वातेनापहृते सिन्धोः	२६६	विघृणस्य कथ तस्य	१२
वन्दनं यो जिनेन्द्राणा	६७	वातेहिताम्बरव्याजा-	१६१	विचारेण न वः कृत्यं	३३६
वन्द्यापि महानागान्	१७५	वानराभोगामुकुटः	३०४	विचित्रधातुस्त्राएव	१७१
वयस्तपोधिकारे ते	७८	वानरीयैः खमालोक्य	३८८	विचित्रशिखरा यव	२११
वयस्यवनिता तावत्	२३७	वामे श्रुचे सुषेणश्च	३४८	विचित्रस्वजनस्नेहै-	१४६
वरं तस्वले शीते	१३५	वायसं पृच्छति प्रीत्या	२८१	विचित्रैः कुट्टिमतलै-	३४६
वरं पुष्पफलच्छन्नैः	१३४	वायसा अपि गच्छन्ति	३५	विचित्र्यैवं द्रुतं गत्वा	२४
वरं सम्प्रति त यच्छु	७४	वायुतो ह्यियमाणेन	२१२	विचेष्टितमिदं व्यर्थं	१८३
वरधर्मापि सर्वेण	१६४	वायुपुत्र द्रुतं गत्वा	३०६	विच्छिन्नकण्डुका भ्रष्ट-	२३२
वरप्रासादायातास्तु	७२	वायुशावतमैरश्वै-	३०७	विच्छिन्नचापकवचः	३६४
वरमस्मिन् श्रुचे मृत्युः	३२०	वारणै- सप्तभिर्गोभि-	१३७	विच्छिन्ननासिकाकर्ण-	७
वरमालाधरौ गन्ध-	१५३	वारणो मेघक्रान्तस्य	३४८	विच्छिन्नार्धशुभ्रान् काश्चित्	२६६
वरमाहारसुखस्य	१३५	वारुणेन ततोऽज्जेण	३८०	विजहार महातपारततः	१४६
वरवारणमाच्छ्र	३५२	वार्तान्विषो गतो याव-	२६०	विज्ञापनवचोमुक्ति-	२६८
वरस्त्रीजनमुद्याने	३३६	वार्ता समागता भर्तु-	३२६	विज्ञापयति देव त्वा	१४
वराज्जननगामाना	१५५	वार्यमाणोऽपि यत्नेन	२०२	विज्ञाय कपिलं रक्तं	१४१
वराट्कामदशना	२०	वारहृद्गतप्रसादेन	१२२	विडम्बनमिदं कस्मान-	६४
वराहमहिषव्याघ्र-	२०	वाल्लिखित्यस्तु सम्प्राप्तः	१३२	वितत्य सकलं लोकं	२३६
वर्तते किमिदं मातः	८२	वालीति योऽत्र विख्यातः	२७०	वितापिर्विधिना ध्वस्तो	३७५
वर्ततेऽनुचित धादं	८२	वासमानो युद्धः क्रूरं	१२६	विदधनगरं चाप	२
वर्तमान महाशोक-	३४४	वासयत्युदकं कश्चि-	४५	विदधो विजयो मेरुः	६१
वर्षं रैस्तु महासैन्यै-	१८	वाहनावल्लसम्पत्ति-	३८६	विदेशरामनोद्युक्तं	८१
वर्षावातविमुक्तानि	२२३	वाहिनी त्रीणि गुरुमानि	३५८	विदेहा तु हृते पुत्रे	१२
वर्षाशीतातपैर्षरै-	४११	वाह्योऽह भरतस्यापि	१७३	विदेहैति प्रिया तस्य	२५
वलीना वर्तते वृद्धि-	४६	विशतिर्षोबनान्यस्था-	३५६	विदेहे धातकीलण्डे	६६
वह्नीभिर्गुल्मकैः स्तम्भैः	३१३	विशतिर्वासराणा च	३७	विदेहे पौष्टरीकाख्ये	४०१
ववर्षं वायुपुत्रस्य	३१६	विकचास्यघृतिं सीता	३२६	विद्यथा तपनात्वं च	३६२
वधारीभूतेषु सिंहेषु	३७७	विकलीभूतनिशोय-	४१	विद्यथाऽनिलपुत्रोऽपि	३६२
वसन्तातिलकामिख्ये	१८५	विकसत्युषसद्घातान्	२२३	विद्यथा पर्णलब्धासौ	४०३
वसुभूतिः समं तेन	१८४	विकसन्नयनम्गोज-	२०६	विद्याकवचमुक्तं च	३१८
वसुभूतिचरेणाथ	१८७	विकस्वरमनोदेहं	३२०	विद्याकौशिकविख्यातिः	३६४
वस्तुना केन हीनोऽहं	२५८	विक्रलो लोळकः कालि	३६७	विद्याधरकुमारिणा	२६०
वज्रकान्तिवितेन्दूना	१६१	विकीर्णास्तद्बुला माषा	१०४	विद्याधरमहामन्त्रि	४११
वज्रालङ्कारमाल्यानि	१२६	विक्रान्तः स च शालीष-	३२०	विद्याधरमहाराजे	२५०
वहन्ती चापमानं तं	२३२	विक्रान्तपुरुषाङ्क-	४६	विद्याधरैः समागत्य	४२
वहससौ दर्पयुदारसुच्चै-	२१३	विक्रान्त्या तथा तस्मै	४२	विद्यान्नलविधिज्ञैर्य-	३०५

विद्याभूता सुराणा च	२२५	विनीता पृथिवी यस्य	१५७	विमुचिर्दक्षिणाकाक्षी	६२
विद्यामाहात्म्यनिर्मुक्ता-	३४	विनीताभिः कलाज्ञाभिः	७२	विम्बप्रवालरक्तोष्ट्रं	३०२
विद्यार्जनीचिती तौ च	१८६	विनोदः कण्ठकः सत्यः	६१	विततोऽवतनद् वीच्य	२८६
विद्यालभस्तयोर्नासी-	१	विनोदान् प्रस्तुतान् युक्त्या	७४	वियत्तलं घरित्री च	३८१
विद्या वामिमता लब्धुं	२३८	विन्धोऽयं निधिभिः पूर्णो	१३१	वियुक्तो बन्धुभिः प्रातु-	३६६
विद्युच्चालाकुले कासे	१११	विन्धस्य भक्तिसम्पन्न-	५२	वियोगवह्निनात्यन्त	६०
विद्युच्चालामुखैर्लम्बै-	१८२	विपञ्चीं च विधायान्के	३१	विरक्ता च समात्यन्त-	१२८
विद्युत्कणो बलः शीलः	३६७	विपादयितुमस्माक-	४७	विराधितः कुमारोऽपि	३०४
विद्युत्संभावनया योग्या	५४	विपुलस्तननम्राङ्गा-	२४१	विराधितनरेन्द्रेण	३७६
विद्युद्बद्धः सुधी सोऽय	१२१	विपुले राक्षसद्वीपे	२२४	विराधितोऽपरः क्रोऽपि	२६६
विद्युद्बद्धोऽप्यय मित्र	१२१	विप्रलापं ततः कृत्वा	६०	विलक्षाः पार्थिवाः सर्वे	४३
विद्युद्बद्धनेभवज्रेन्द्र-	३५३	विप्रस्य रूक्ष्या वाचा	१३४	विल्लाप्य च शोकात्तां	२२८
विद्युद्बद्धनमारीच-	३८८	विप्रोऽवोचदुपायेन	१३७	विलापमिति कुर्वाणा	२२८
विद्युद्बद्धसुवर्णाञ्ज-	२७६	विबुद्धा तानपश्यन्ती	१२६	विलासायापि ते सर्वे	२०८
विद्युद्बद्धो मरुद्बाहुः	३६८	विबोधय क्वेचिदत्रोत्तु-	६०	विवादो गर्विणोरेव	१७३
विद्ये सप्राप्य सम्मान्य	३८३	विभावर्था तमिस्त्राया	१६०	विवाहसमये प्राप्ते	२०८
विधातुं महिमानं च	३२६	विभीषणं समुत्सार्य	३६३	विविधयानसमाकुल-	४३
विधातुरद्य सामर्थ्यं	८१	विभीषणकुमारोण	३८६	विचिन्नागोभिरापूर्णाः	३२२
विधानदन्तिना सोऽपि	२६६	विभीषण न मे शोक-	३६७	विवेकरहितास्ते हि	३३
विधाय बानर्को मध्ये	८६	विभीषणसमायोगे	३५६	विवेश चिन्तयन्नेवं	३०
विधाय तुङ्गानचलान्	२२१	विभीषणस्तृतीये तु	३६८	विशन् सिंहोदरस्थासौ	११४
विधाय राज्य घनपापद्विग्धो	१००	विभीषणगमे जाते	३५४	विशाल्याहस्तसंस्तुष्टं	४१२
विधाय वृषभादीना	१६३	विभीषणेन यत्राद्यैः	२६८	विशालखसंज्ञमाहूय	४६
विधाययुधशाला च	३६	विभीषणोदितं श्रुत्वा	२६६	विशाल्युतिनामा च	३७५
विधिच्छलेन केनापि	१४८	विशुः सरपुरस्वाय-	३६	विशालपङ्कजवनं	३
विधिना पारया कृत्वा	२०२	विभूतिं तस्य तां वाप्यः	२६३	विशालपत्रसञ्छन्ना	१०१
विधिना धारणेनेमा	४०३	विभूतिमतिरुक्ता च	६१	विशालभूतिसञ्च	२६०
विधिरिव रतिदेवीं	१४	विमल चरितं लोके	३२४	विशुद्धकुलजाताना	१६८
विधिर्वितापिताऽन्योन्य-	३७५	विमलाम्भसि पक्षिन्या-	३३४	विशुद्धराक्षसानूकाः	३६५
विधूय पक्ष्युगल-	२०१	विमानं चारुशिखर-	३०७	विश्रवं कस्यचिज्जाया-	३६३
विधेः पश्य मया योगं	१४०	विमानं परमञ्छाय-	२७४	विश्रवचेतयोर्वावत्	२४७
निवसं वज्रशालस्य	३३६	विमानं सुमहत्स्य	३०१	विषमप्रावसञ्जातं	१८०
त्रिनद्याचैर्गुणैर्युक्तो	३११	विमानमर्कसङ्काशं	३६५	विषमपानविकुर्वाणः	६३
विना ताभ्या विनीताभ्या	६३	विमानमुत्तमाकारं	३६८	विषयेषु यदायत्तं	५०
विनाशमगमत्स्याः	२२६	विमानवाहनघण्टाः	३३०	विषाणक्रोदितंमक्त-	३६१
विनिमज्जन् सुदूरथायिना	२१६	विमानसदृशैः रम्यैः	२८८	विषाणं सङ्गता भूयो	३२७
विनिशम्य वचस्तस्य	३६०	विमुक्तं बन्धुभिः कष्टं	२४६	विषाणमनुत्तं देव-	२४६
विनीत धारयन् वेप-	११६	विमुक्तनिश्शेषपरिग्रहार्थं	१६६	विपिकं पाताले क्वचि-	२१७
विनीता च परित्यज्य	१५७	विमुक्तहारमुकुटं	१६५		

विषेणात्यन्तपरमं	४६	वैलम्बरपुरस्वामी	३४८	शक्नोति सुखधीः पातुं	२५३
विष्टपानन्दजननी	५२	वेश्यां कामलता दृष्ट्वा	१११	शक्रप्रासादसङ्काशा	३४२
विस्तीर्णां प्रवरा सम्भ-	३५१	वेश्याचरणयोश्चासौ	१६२	शक्रभूतिरथागादी	३५८
विस्तीर्णेन किमुक्तेन	२	वेष्टितः किङ्करैः क्रूरै-	३४२	शक्रस्येव शक्तो पाश्वै	४१२
विहम्ये जगतः शक्ता-	३२०	वैदेहि तव न ज्ञातः	३३०	शक्तायुधश्रुतिर्यत्ते	१२०
विस्मितो गोपुराप्रस्थो	११८	वैदेहि भयसम्पन्ना	१८१	शङ्कितो धातकीर्दीपो	२६७
विस्मितस्य सुचिरं रामं	३०४	वैदेही सञ्चरेवोचे	१७६	शक्येव रहित शक्रं	३०३
विहरन्तौ ततः क्षोणीं	१७०	वैदेह्याः शरणं देव	६६	शतानि वरनारीणा	३५
विहाय लौकिकं मार्गं	१४२	वैदेह्या सङ्गतो रामः	२२४	शतानि सप्तविस्तीर्णां	२८८
विहितातिथिसन्मानो	१०६	वैनन्तेयास्त्रयोगेन	३६२	शत्रुन्तोऽपि सुसंभ्रान्तो	४०६
वीक्षस्व माहात्म्यमिदं	६६	वैराग्यादथवा ताते	१५८	शत्रुन्दमकृतच्छन्दौ	१७६
वीक्षितं परमं रूपं	६२	वैवस्वतः शशाङ्को यु	१०५	शत्रुशब्दममृष्यन्तो	१८
वीक्ष्यञ्च वासुरैः स्वल्पैः	२६६	व्याक्षेपो मे कुतः कश्चि-	४६	शनैः प्रसन्नता याते	१५३
वीर्या च सन्निधायाङ्के	१८१	व्याग्रयुक्तरिमैस्तुगै-	३६४	शनैः शनैस्ततः कर्म	२४
वीणातन्त्रोसहस्राणा	२६६	व्याघ्रसिद्धगजेन्द्रादि	८६	शनैर्विहरमाणो तौ	१७८
वीणादिवादनेस्तासा	२८१	व्याचाननैः कृतोत्पात-	२५६	शब्दोऽय शोकसम्भूत-	२६०
वीणावेणुमुदङ्गादि	१५३	व्यापाद्यते न कि दृष्टः	३४०	शम्भूकः साधितो येन	२३३
वीरपत्नी प्रिय काचि-	३६१	व्याप्ताशेषजगत्कीर्तिः	१६६	शम्भूकस्य वध युद्धं	२६६
वीरा योद्धुं दत्ताचिता	३६६	व्यालाजलाद्वा विपतो-	६६	शम्भूको नाम सुन्दश्च	२२५
वृकेण मारिता मेघी	२०७	व्रजता बन्धुदत्तेन	२८५	शम्भुः स्वयम्भुश्चन्द्रार्क-	३७४
वृक्षैर्वियोजिता बल्य-	३३६	व्रज तावत्त्वमारुह्य	६३	शयनान्यासनैः सार्कं	१६६
वृताः सामन्तचक्रेश	३४८	व्रजति विधिनियोगा-	३६५	शयनासनवादित्र-	२११
वृत्तान्तमिममालोक्य	४२	व्रजतोश्च तयोऽग्र-	१४२	शयनीयगतैः पुष्टै-	४०४
वृत्तान्तमीदृशं श्रुत्वा	२०८	व्रजन्तो लीलया युक्ता	१०३	शयिताश्च यथास्थानं	२६६
वृत्तान्तश्रवणात्तस्मा-	७१	व्रजन्तो वाहनैश्चित्रै-	३५४	शरजर्जरितच्छत्र-	३८१
वृत्तान्तेनामुना कस्य	२६६	व्रज स्वास्थ्यमिम लोखं	१३	शरत्कालः परिप्राप्तः	५४
वृत्तान्तोऽर्थं च सङ्गातो	२०६	व्रजानय जनन्वौ नौ	२२१	शरधारा क्षिपत्यस्मिन्	२७८
वृथा रोदिषि किन्त्रेत-	३२१	व्रतज्ञानतपोदानै	६८	शरशक्तिशतक्ष्मीभि-	३२०
वृथावोचत मा किञ्चि-	७३	ब्रीडा व्रजति मे चेतः	२६६	शरीरच्छायाया तुल्याः	७२
वेगनिक्षिप्तनिःशेष-	२८२	[श]		शरीरव्रजामिव मन्मथस्य	४१३
वेगनिर्मुक्तदुङ्काराः	११७	शकुन्तयो मुग्धाश्चामी	१०८	शरीरमात्रधारी तु	५
वेगेनोत्पततस्तस्य	३३८	शक्तिः पलायिता वनापि	४०१	शरीरयातं च विधाय	२२०
वेणीव्रजन्धुतिच्छाय-	३४५	शक्तिं दधतापि परा	२६८	शरीररथमुन्मुक्ताः	१८७
वेणुतन्त्रीसमायुक्तं	३२७	शक्तिं यः पाणिना मुक्तां	१७२	शरीरिसार्थं एतस्मिन्	१८६
वेणुनादादृष्टहासाश्च	३६८	शक्तितोमरचक्रासि-	३३७	शराः शरैरुच्यन्त	३२०
वेत्रैः श्यामलताभिश्च	२१२	शक्तिमुद्गरचक्राणि	२३५	शरे निहितदृष्टिं तं	४१
वेदिकापुण्डरीकभैः	३०८	शक्तिशक्तिवत्त्वश्च	४०१	शर्वरी भण्यतां यात्वा	१४८
वेदितागमनस्तावद्	२६६	शक्त्या मुञ्जत पापानि	२५६	शल्यभूतोऽस्य विश्वस्य	२६७
वेभिर्निर्मलशीलाढ्या	३०६	शक्त्या हतं गत भूमि	३६६	शशिमण्डलसङ्काशा-	३७६

शास्त्रान्धकारिते जाते	२३७	शैलामा द्विरदाः पेतु-	२३५	श्रुत्वा धर्मं सुनेः प्रातः	३
शस्त्रिवृन्दावृते-तस्मि-	१७२	शोकविस्मरणे हेतु-	१३	श्रुत्वानरण्यपुत्रस्य	१४८
शाकामलकलाद्यन्त-	७२	शोकाकुलजवाकीर्णं	३००	श्रुत्वा पङ्कजरागायाः	३०१
शाखाकेसरिचहाना	३७८	शोकावर्त्तनिमग्ना ता	३८	श्रुत्वा परचमूर्त्य-	३६३
शास्त्रामृगध्वजौ तावत्	३६६	शोको हि नाम कोऽप्येष-	२४९	श्रुत्वा परवलं प्रातं	३०६
शातकौम्भानिमान् कुम्भान्	४०६	शोचत्यनुमुक्तदीर्घांष्ण-	२६४	श्रुत्वापीदं सुतारोक्तं	२७३
शार्दूलसङ्गतैस्तुङ्गै-	३६७	शोभयापहृतस्तस्या-	२३०	श्रुत्वा प्रातं हनूमन्त-	२७४
शार्दूलस्ताडितः पूर्वं	३७५	शौर्यगवाविवायुक्त-	३६६	श्रुत्वा सिंहस्वनं पद्मो	३२६
शासन यच्छ्रता नाथो	१३१	शौर्यमाहात्म्यसयुक्त	३०३	श्रुत्वा स्वं स्वं हतं नाथं	३७४
शासनस्य जिनेन्द्राणा-	५७	शौर्यातिगर्वसमृदा-	३६५	श्रुत्वैवं कौतुकी कञ्चि-	१७१
शास्त्रानुगतमस्तुद्धं	३५१	श्येनयुवैष लघुभ्रमपद्मो	२१४	श्रेयस्करपुरस्तामी	४०६
शियिलीभूतनिःशेष-	३२८	श्रद्धासन्नेगहीनाना	६८	श्रेष्ठेन विदुषा तेन	२८७
शिरसो मुण्डनैः स्नानै-	६	श्रमं कृत्वापि भूयासं	११	श्रोतुं समुद्यतस्वैवं	६७
शिरीषकुसुमासारं	४११	श्रमणां ब्राह्मणा गावः	१३४	श्लाघामित्यतिवीर्यस्य	१६७
शिल्पयामिह ये सिद्धा-	२६६	श्रमादिदुःखपूर्णस्य	६	श्वसत्यशुगणस्तीक्ष्णः	४०४
शिव सौम्यननो वाक्य	३५१	श्रावकोऽयं विनीतात्म	२०६	श्वसुराभ्या ततो ज्ञात्वा	२८४
शिशाविपफले प्रीति-	३४	श्रीनन्द्यावर्तनगरा-	१५५	[य]	
शीतल तं समाप्राय	४१२	श्रीमास्तावन्मरुत्पुत्रः	३३२	षट्खण्डा यैरपि क्षोणी	१६५
शुच्यङ्गया च वैदेह्या	२००	श्रीमानयमतौ राजा	३०३	षड्भिः संवत्सरैः साग्रे-	३१५
शुद्धात्मा भगवान्चे	६०	श्रीमान् जनकराजस्य	५८	षड्रसं स्नादुसम्पन्नं	७२
शुद्धात्मा श्रूयते सोऽय-	११५	श्रीप्रमामण्डलोऽप्येक	५६	षड्रसैरुपदशैरच	३३३
शुभे काश्चित्पतीक्ष्व	१२८	श्रीरत्नश्रवसः पुत्रः	३५३	[स]	
शुशुभाते तदात्पन्तं	२५०	श्रीवत्सकान्तिसम्पूर्ण-	३०३	संक्रुद्धभोगिभोगोभा	१७४
शुश्रूषा भवतः कृत्वा	१६२	श्रीशैलप्रमुलैर्वादि-	३८५	संस्तुत्वास्तनयास्तस्य	४१०
शुष्कागकृतसरोधे	३१३	श्रीशैलस्य वियत्युच्चै-	३१३	संस्तुभ्यतीव भूः सर्वा	१७६
शुष्कपत्राशिनस्तत्र	१०१	श्रीसंजयो जयो भानुः	३६	सख्ये पितृवैवं दृष्ट्वा	३१६
शुष्कोविटगोष्ठीषु	३३१	श्रुत कैसरिज कुच्छं	३०८	सगीतेन समुद्युक्ता	१६३
शुष्काः परम सामन्ताः	३५३	श्रुत तव न तस्मिन्ना	१३६	संघारलाभिताम्भोद-	३६८
शृणु देवि यतोऽवस्था-	३७	श्रुत वेत्सि जिनेन्द्राणा	४६	संज्ञा प्राप्य ततो दृष्टिं	२३६
शृणु नाथ । व्याधार ।	१६२	श्रुतद्विदिरिति ख्यातो	१५७	संतदोष्ठी महासत्त्वो	२७३
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यन्मा-	६७	श्रुतश्च तेन वृत्तान्तो	२३	संधानवर्जितान् वर्णान्	४८
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामस्य-	१५	श्रुताः सङ्गीतनिस्वाना	६२	संध्याभ्रकूटसंकाशान्	२६
शृणु शृण्वति तत्राय	१७१	श्रुत्वा केवलिनः पद्म-	१६५	सन्नद्धबद्धतुणीर-	३६८
शृणु सारथ्यतुष्टेन	७८	श्रुत्वा चैवंविध तं च	२०७	संन्यासेन तनुं त्यक्त्वा	६६
शृणु सुन्दरि सद्भाव-	२५५	श्रुत्वा तं मिथिलाधीशः	१५८	संप्रयुज्य प्रणामं च	४००
शृण्वन्ति मृत्तिकावत्वा	२८४	श्रुत्वा तदिन्द्रजिह्वाकथं	३५२	संभाषितः स रामेण	६४
शेष मातृजनं नत्वा	८०	श्रुत्वा तद्वचनं तस्या	२३०	संरक्ष राजपुत्रीं त्वं	२३५
शेषाः कन्या यथायोग्यं	४१२	श्रुत्वा तद्वचनं स्मिन्त्वा	१३५	संरक्ष्य जनकं प्रीतः	१६
शेषामिष ततो मूर्ध्नि	२८६	श्रुत्वा तावदलं तारं	२४६	संरम्भवशसम्कुल-	३१६

संबुत्तो मासमात्रोऽस्य	२८	स तयोः प्रणतिं कृत्वा	१२१	सम्मानैर्बहुभिः शश्वत्	२६७
ससार्धर्मनिर्मुक्तान्	२९५	सतालशब्दं जनकात्मजाया	२१०	सपत्नीभिरपि प्रीत-	५७
ससारेऽतिचिरं भ्रान्त्वा	२०५	स तूर्णं घनुराढाय	७६	सपुरस्कारमारोप्य	२९४
संसारे न परः कश्चि-	७१	सत्य यदीदृशः ख्यातः	२६०	सप्तकद्याद्दसम्पन्ना	३६८
ससारे सुचिरं भ्रान्त्वा	६०	सत्यकेतुगणीशेन	६१	सफेनवलया लसत्प्रकटवीचि-	२१६
संसिद्धसूर्यहासश्चे-	२२८	सत्यव्रतधरः स्त्रिभ-	६६	सभानुरञ्जनी यावत्कथेयं	७६
सहितामिव कामेन	२३६	सत्यश्री कमला चैव	३४६	सभाया पितुरस्माकं	२०८
सकम्पहृदया सीता	४१	स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य	१२०	सभावापीविमानाना-	३३८
सकलविष्टप्रनिर्गतकीर्तयः	४३	स त्वं नाथ जराधीन	५०	सद्भावजापने लब्जा	१२६
सकप्रायं तपः कृत्वा	६	स त्वं निष्कण्टक तात	७८	समं करतलैर्हन्तु-	३३२
सखत्कारं मुहुः कुर्वन्	४८	स त्वं भूतिमृगो जातो	७०	समं किं परिवर्गेण	१२४
सखि पश्यात्थ वीरस्य	११६	स त्वं रत्नजटी पूर्वं-	२८७	समं कुलिशकर्णेन	१२४
सखी त्वं मूर्ख्या तस्या	७६	सत्त्वत्यागादिवृत्तीनां	१८	समं दशाननेनास्य	२६८
सख्योऽत्र वनमालायाः	१५१	सत्सुभीयो भवान्यो वा	२७५	समं पुत्रसहस्राणां	४०५
सख्योऽनेन पथा दृष्टौ	१७०	स दध्यो नीयमानः सन्	१३१	समं साहसथानेन	२७८
सप्रावभिः करैर्मानो-	१०७	सदर्पैर्निगतैर्यथै	३६६	समत्वं लक्ष्मणस्याथ	२८७
सङ्कथेयं तथोर्थवद्	१२१	सदा करोति सर्वरमै	३२७	समत्तकुसुम ताव-	२६२
सङ्कटोत्कटतीक्ष्णाग्र-	३१७	स दृष्ट्वातिशयोपेतौ	२०१	समय श्रुत्वा भूनाथ	३६
सङ्कुल चर्चता तेन	३०२	सद्गन्धं विपुलं स्वच्छं	३३३	समये नारदस्तरिमन्	२३
सङ्ग्रामाभिमुखो नागैः	३६२	सद्भावात् प्रणयोत्पत्तिः	१	समयेऽस्मिन्नतिक्रान्ते	२२१
सङ्ग्रामे तारको नष्टो	२६७	सद्भूतरुगसस्त्रीसै-	१२१	समये हि कृते तेन	३५६
सङ्ग्रामेऽभिमुखो भ्राता	३६४	सद्यो विनयनघ्राङ्गो	१७४	समयैः सान्त्वयित्वेति	१६६
सङ्ग्रामे विक्षतः पृष्ठे	३६१	सद्वितीय सतो दृष्ट्वा	१५०	समर्थितप्रतिज्ञासौ	३३२
सङ्घातमस्युमस्माक-	३६१	सनत्कुमाररूपोऽपि	२५८	समवगम्य जनाः शुभकर्मणः	४४
स चाह च सुतस्याशु	१३	स नाजानाद् द्विप न क्षमा	३८०	समवलोकितुमुत्तमविग्रहे	४३
सचिवाः सचिवैः साकं	३७५	सन्तुष्टोऽङ्गगतं ताभ्यो	३२६	समस्त च समारख्यातं	३११
सचिवैः परमयुक्तः	४०६	सन्त्यस्मिन् विविधा भ्रात-	२२०	समस्तैभ्यो हि वस्तुभ्यः	१७१
सञ्चेष्टाः पूज्यमानस्ताः	१२३	सन्त्रासकम्पमानाङ्गा	८८	समाकथितवृत्तोऽय-	१०५
सञ्जैर्बहुभिर्युक्ता	१०१	सन्धानं शरं वीक्ष्य	१३०	समादधे खलुत्पाणि-	२४
सजलाविव जीपूतौ	१८३	सन्दिदेश च सुग्रीव	३०७	समाधानोपदेशेन	१६१
सजायो दृश्यते ज्वाया-	१२२	सन्दिहाना निजे नाथे	२७४	समाने जानकी तरिमन्	३५२
सज्जनाभ्योदवाकोय-	२८३	सन्देहतापविच्छेदि	६०	समासाशनकृत्यञ्च	२०६
सञ्जिता परमा भूमिः	१६५	सन्दिधु च्छिद्यमानेषु	६	समायासुपविष्टोऽसौ	३५४
सञ्चरन्ती तमुद्देशं	२२६	सन्ध्यथा रञ्जिता प्राची	२५६	समालम्ब्य जिनात् रान्वैः	६७
सञ्चिन्येति कृतप्रान्ति-	२३१	सन्ध्याकारः सुवेङ्कच	२६६	समालोक्य कुमारस्ता	२६
सञ्जुञ्ज रोदसी सैन्यै-	३६५	सन्ध्याकालोऽत्र ये केचित्	१६१	समावास्य समीपे च	११२
सततं चिन्तयन्ती त्वां	३५५	सन्ध्यारक्तान्नसङ्कार्शं	३२२	समाश्वास्य च सर्वत्र	२४०
सततारञ्जनिःशेष-	१६७	सन्ध्यालोकलामोषी	५४	समाश्वाससमिर्म नीत्वा	१४३
स तथा परमा श्रद्धा	२०६	सन्मानविशिखैर्विद्धो	१४५	समाश्वास्य च संक्रुद्धो	२४०

समाक्षाद्य च तैः सर्वैः	२७८	सर्वबातिगता जीवा	६	सशाल्यस्य दरिद्रस्य	११२
समाहितमतिर्नाना	३८०	सर्वशोक्तं निशम्यैत-	२६४	ससागरा मही देवि	३३२
समित्कल्पप्रसूनार्य	१०२	सर्वतेजस्विमूर्धानं	३५६	सस्यन्दं दक्षिणं चक्षु-	२६६
समिदर्थं प्रयातेन	१३६	सर्वतो मरणं दुःख-	४६	सस्थानि कृष्टपञ्चानि	१०४
समीपता च सम्प्राप्तो	१८७	सर्वत्र जगति ख्यात-	२६५	सस्थानि बहुरूपाणि	८७
समीपीभूय चोवाच	२५८	सर्वथा जिनचन्द्राणां	४११	सस्यैर्बहुप्रकारैश्च	२१२
समीपीभूय दूतश्च	२७६	सर्वथा परमोत्साहो	२३६	ससिमता लोकितैस्तत्या-	१६२
समुद्रतालकैर्भूमै-	१८०	सर्वथा प्रातरुत्थाय	२६१	सहस्रमतिनामाथ-	२६७
समुद्रजलमथ्यस्य	२४८	सर्वथा शुद्धभावांश्च	२६५	सहस्रमधिक चान्यत्	४१०
समुद्रावर्तभूत्पूर्व-	३५४	सर्वदा तुलभा पुंसः	२६२	सहस्रसख्यत्पूर्वाणा	२६१
समुद्रावर्तसनेन	३७	सर्वप्राप्तिहितोऽवोच-	६०	सहस्राभारपुण्यस्य	२२६
समेति बन्धुलोकोऽव्य	६५	सर्वभागडेन तौ रत्न-	३५५	सहस्रैरागतोऽप्राभि-	१५६
सम्यद्भिरेवमाद्याभि-	२६१	सर्वभूतहितो नाम	५१	सहाय्यरहितत्वेन	२८४
समूह्य च पुनर्मुक्तः	३४६	सर्वमक्षप्रवर्तुषु	१४०	सहायैर्भूगराजस्य	३३७
समूर्णचन्द्रवदन	८४	सर्वमेतत् समासन्न-	१२६	स हि रावणराष्ट्रस्य	२६५
समूर्णाना परममहसा	५३	सर्वलोकस्य नेत्राणि	१६१	सहानन्दमतोः शिष्यः	१४६
समूर्णैर्दुसमानोऽपि	२३३	सर्वविद्याधराधीश परा-	२५७	साकार्यपुरनाथोऽय-	३६
सम्प्रहारैस्ततो लनै-	३०६	सर्वविद्याधराधीशस्त्रि-	२३३	सार्कं विजयसुन्दर्या-	१६६
सम्प्रहरो महान्-जातस्तयो-	२७६	सर्वव्यापी समुद्भिजो	३४५	सार्कं विमलया देव्या	१६०
सम्प्राप्तः परम क्रोध-	१६१	सर्वशास्त्रार्थबोधाम्बु-	२३०	सागारं निरगारं च	१०६
सम्प्राप्तश्च महाकालः	५१	सर्वसारश्च दुर्बुद्धिः	३६७	सागारधर्ममपरे	२५६
सम्प्राप्य च चिरात् संजा-	३६६	सर्वसौन्दर्ययुक्तस्य	३०४	सागारधर्मरक्तसु	१४१
सम्प्राप्य साध्वंसं यस्मा-	१५७	सर्वस्मृतिमहाचार्यो	२३६	सागरान्ता मही यस्य	२८७
सम्भाषणैः कुटीरानैः	१०१	सर्वस्यामवनौ ख्यातः	५७	सागरोदारमत्स्युग्र	३५६
सम्भ्रान्तमानसः किञ्चि-	३५१	सर्वस्त्रेनापि यः पूज्यो	३४०	साग्रं योजनमेतस्मा-	१७६
सम्मानो जयमित्रश्च	३६७	सर्वाः प्रियास्तदा तस्य	४५	साग्राभिश्चाकृशक्त्वाभिः	३५३
सम्मेदं च ब्रजन्तौ ता-	१८७	सर्वाकारसमानीतो	२८१	सा जगौ जातु पञ्चस्य	१३७
सम्पददर्शनमात्रेण	६१	सर्वातिथ्यसमेतास्व	१०२	सार्थो धर्मेण यो युक्तो	१४४
सम्पददर्शनरत्न स-	६६	सर्वादरसमेतश्च	७१	साधनेन तदग्रेण	१५६
सम्पददर्शनहीना या	१६६	सर्वानामन्य विन्यस्य	६६	साधुगोश्रावणाकीर्णा	१६
सम्पददृष्टिः पुनर्बन्धुः	८	सर्वासामेव शुद्धीनां	८४	साधुवचमुनेः पाश्र्वे	१६१
सन्वेष्टय सर्वतो नागैः	३६२	सर्वेषा भूभृता नाथ	७४	साधु दानाद्धरिस्त्रे	३७१
सरस्वाश्च सटे कालं	५१	सर्वेषामेव बीजाना	१५२	साधनानि भयस्तेषा	६१
सरस्युन्निद्रपद्मादि-	२८१	सर्वोपायविधानेन	२६७	साधुपूर्वमर्षं श्रुत्वा	१६४
सरसि पङ्कजाढ्यानि	२२३	सलवङ्गादिताम्बूलं	१६६	साधुप्रसावतस्तस्य	१०६
सरस्यभूमि रम्याणि	१३७	सविमुच्यानुवाच्यैर्न	१५५	साधुम्यामुक्तमित्येतं	२०६
सरित्सर्वतदुर्गेषु	४	स ब्रजन् रुद्रणावाचि	२०७	साधु साधु त्वया विभ्रं	१६५
सर्पन् सीता समुद्दिश्य	३२७	सशंखद्वयनिस्वान-	४३	साधु साध्विति देवाना बभूव	४१
सर्पिणा जिननाथाना	६७	सशब्दैरायतैः स्थूलै-	३४२	साधु साध्विति देवाना मधुरो	२०१

साधु साध्विति संस्मित्य	३१६	सिंहोदर इति खयातो	१०६	सुग्रीवरूपसंयुक्तः	३२६
साधुसेवाप्रसादेन	१६४	सिंहोदरप्रभृतयो	१३२	सुग्रीवरूपसम्पन्नं	३०५
साधूनामप्रतः पूर्वं	२३८	सिंहोदरमहिष्योऽथ	११६	सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा	२७४
साधूपसर्गमथने	३३६	सितक्रीर्तिसमुत्पत्ति-	८१	सुग्रीवाकृतिचौरैण	३००
साधोः कमलगर्भस्य	७०	सितचन्दनदिग्धगा	२६४	सुग्रीवाकृतिनिर्मुक्तं	२७७
साधो केनासि पृष्टस्त्वं	३५२	सितानामातपत्राणा	३०१	सुग्रीवागमने तेन	२७०
सा निर्वाणशिला येन	२६६	सितासितारुणाम्भोज-	२१२	सुग्रीवाद्याः समासीना	२६७
सानुकम्पौ स्वभावेन	३७१	सिद्धाः सिद्धयन्ति सेत्स्यन्ति	६८	सुग्रीवेण प्रतीष्टश्च	३०२
सानुजः सानुर्जं पद्मो	२१	सिन्धवः स्वच्छकौलाळा	२२३	सुग्रीवोऽप्यभिमत्तात्मा	२७०
साऽन्नवीत् समतिक्रान्तं	३२२	सीतया सह रामस्य	३२२	सुग्रीवाण प्रसार्यन्तां	२६७
सा भामण्डलचन्द्रेण	४१०	सीतया शोभितं पार्श्व-	१०६	सुचिरं देवभोगेऽपि	७७
सा भामण्डलसन्नाय	३२	सीतया सहितस्तस्यौ	१२६	सुचिरं प्रथितं लोके	१२७
सामन्तैरथ सन्नद्धै-	११७	सीता चाक्लिष्टसौभाग्या-	१६६	सुतं स्वैरं समादाय	२८४
सामन्तैर्वहुभिर्गात्रा	६१	सीता तत्र विशुद्धाक्षी	६०	सुतरां तेन वाक्येन	१४७
सामाधिकं पुरस्कृत्य	१३८	सीतापतिस्ततोऽवोचदिति	२२०	सुता जनकराजस्य	२६०
सामोरणितचः श्रुत्वा	३४५	सीतायाः शोक्तताया	२५२	सुता तु द्रोणमेघस्य	४१२
सामोदैर्भूजभेदभूतैः	६७	सीताया वदनाम्भोजं	३०५	सुतारामवनद्वारं यो	२७४
सायके रविहासाख्ये	३२६	सीता लक्ष्मीवपश्चैव	८६	सुतारैति ततोऽवोचत्	२७३
सा यावदग्रहीच्छक्तिं	३१६	सीताशरीरसम्पर्क-	२८१	सुतारौ सङ्गता वल्ग्वौ	१७८
सायाह्ने सौम्यत्रपुषो	२६६	सीता सीतेति कृत्वास्य	२६४	सुतैर्दशरथोऽमीभि-	३६
सारङ्गदयितामिश्र	२६३	सीतोवाच कुर्यात्स्य	२५८	सुतोऽभूद् भद्रचारिण्यो	६६
सारङ्गैरुपित सार्धं	१३४	सुकुमारशरीरोऽसौ	२६२	सुतो यत्याङ्गदाभिद्यः	२७१
सारैरेवंविधैर्वाक्त्रैः	३८	सुकैतुः प्रतिबुद्धः सन्	२०७	सुदीर्घोऽपि तयोः कालो	१७८
सा लक्ष्मणकुमारैण	२६६	सुकैतुरग्निश्रेष्ठश्च	२०७	सुदुर्लभमिदं प्राप्य	३५२
सा विद्यावल्लगम्भीरा	३१६	सुकैशतनयाः पूर्वं	३४८	सुदुष्करं विगेहानां	१०६
सानोचदप्रिय ब्रह्म्यास्मि	११	सुकृतं दशवक्त्रस्थ-	३४०	सुनिश्चितानामपि सन्नराणा-	३७०
सानोचदस्तु नामैवं	११	सुखं प्रसादतो यस्य	३३०	सुन्दरि पश्य वराहं	२१४
सानोचन्मधुरैर्वर्णैः	१६१	सुखं संवसतास्वेष्टं	२४७	सुपीवरसुजो वीरः	३६८
साहं दुःखसहलाणां	२३३	सुखशतो ववौ वायुः	३३५	सुपोवरसुजो वीरो दुर्द्धर-	३६०
साहं न कस्यचिच्छक्या	४११	सुखेन च प्रसूता सा	५७	सुप्तं तमसिना हत्वा	६८४
साहं पूर्वकृतात् पापाद्	२२६	सुखेन पालिता क्षोणी	५०	सुप्तत्योत्थाप्यमानस्य	४०८
साहमस्यामस्याया	३२८	सुखेन प्राप्य निद्रां च	३८५	सुप्तावगणनिश्वात-	१०२
सिंहयुक्तं समारूढः	३६४	सुखोदधौ निमग्नस्त्वं	३५१	सुप्रभा नाम ये माता	४००
सिंहवारणशार्दूल-	१३८	सुगन्धिभिर्महाम्भोजैः	२६४	सुमद्रो मुनिभद्रश्च	१५६
सिंहव्याघ्रमुल्लैस्त-	१८२	सुगन्धिमाल्यवस्त्राद्यै-	३०४	सुभूमश्चक्रभृद् भूत्वा	१४४
सिंहसम्बृद्धवाहोद-	३७४	सुगुप्तिश्रमयोऽवोचद्	२०२	सुभूरिचरितं पाप	२०१
सिंहाना भीतिजननं	२४०	सुग्रीवः सचिवैः सार्क	३५७	सुभृश तेन वह्निः स	३१४
सिंहावित्र महारोषी	३१०	सुग्रीवं कैङ्कुनगर-	२६७	सुमहान् भृगुरेकत्र	१२३
सिंहे करीन्द्रकीलाळ-	१५८	सुग्रीवमेव सुग्रीवो	२७६	सुमित्राजस्ततोऽवोच-	२४७

सुमित्रातनयोऽपृच्छत्	२७१	सोऽवोचत् कथमित्याख्यं	२८४	सौमित्रिरगदद् भद्रे	१६६
सुमित्रानन्दनं कृद्धं	३५२	सोऽवोचत् कुन्दनगरे	१११	सोमित्रे किमिदं क्लीबे	१३४
सुमित्रासुनुना चोक्ता	१२८	सोऽवोचत् पश्यतोदारं	१२०	सौम्यः क्रौर्यविनिर्मुक्तः	३२६
सुरतायासखिन्नाङ्गा	८६	सोऽवोचत् सद्य उत्तमो	१७	स्कन्धावारमहासार्थ-	१२६
सुरूगशुचिसर्वाङ्गा-	२२५	सोऽवोचत् सर्वमेतत्स्यात्	३२	स्तनद्वयसमुत्तीर्णं	३६१
सुरेन्द्रकीर्तितोदार-	३५	सोऽवोचत् साहसगतिं	३१५	स्तनेष्वप्सरसा पाणि-	६२
सुरेन्द्रगणिकादुल्लयं	१६१	सोऽवोचत् सुहृदं प्राप्य	१२२	स्तन्येन बर्धितं यस्या	६
सुशफामैर्मृदङ्गाना	२८	सोऽवोदद्य दिवस-	१७६	स्तवकेषु सुजातेषु	२८२
सुशर्माया समारोप्य	१४६	सोऽवोचदद्य मे मासः	४००	स्त्रियोऽथ नारदं मत्वा	२६
सुपेणो नलनीलौ च	३७७	सोऽवोचदुपलैरम्ब-	८०	स्त्रियो मंगलहस्तास्तं	१७६
सुहृच्चन्द्रगतिरुचे	३२	सोऽवोचद्वयिते जात-	११	स्त्रीणां कुतोऽथवा शक्ति-	१६६
सुहृदाज्ञप्रवृत्तस्य	३०८	सोऽवोचद्वीथता मद्य	२६१	स्त्रोणा परिहरन्तीना	३६३
सुहृद्भिर्प्रांतृभिः पुत्रे-	२८६	सोऽवोचद्दूरतः स्थाना-	१०६	स्त्रीहेतोः क्षणमात्रेण	३५१
सूचयत्यथवा तस्य	१५७	सोऽवोचद्वैव जानामि	४०१	स्थानं दुर्गं समाश्रित्य	४
सुता तावदियं देवी	६	सोऽवोचद्वैव पश्यामि	१०४	स्थानभ्रंश परिक्लेश-	३
सूटगेहसमेतानि	१६६	सोऽवोचद्वैवि नानेन	११	स्थापयित्वा कृती सीता	१६१
सूर्यज्ञप्रस्तपः कृत्वा	७१	सोऽवोचद्वैवि निद्रा मे	१११	स्थापयित्वा धनुर्वनं	८३
सूर्यहासधरेणापि	२६६	सोऽवोचद्वैवि मा शङ्कां	११	स्थापितो बन्धयित्वाऽसौ	१६३
सूर्यालोकहतच्छाया	४०४	सोऽवोचद्वैवि विज्ञाप्य	२५५	स्थितं फुल्लनगस्योर्ध्वं	२६२
सूर्योदयामृताभिख्याः	३५७	सोऽवोचद् वा समुद्दिश्य	२८४	स्थितश्च यत्र ससिद्ध-	२२७
सेनापुरेऽथ दीपिन्या	६८	सोऽवोचद् यो मया मुक्ता	१७३	स्थितास्त्रैलोक्यशिक्षरे	२६५
सेयं सिद्धगतिः शुद्धा	६७	सोऽवोचद् विप्रयोगान्मे	१२५	स्थितामूर्द्धसु हर्म्यायां	११६
सेयमत्यन्तशीलाढ्या	२८५	सोऽवोचद् द्रष्टुमिच्छामि	१७२	स्थितास्तत्र यथान्यायं	३२२
सैहं पद्मवाटातस्य	३८३	सोऽवोचन्नगरस्यास्य	१७५	स्थितिरेषा जगन्नाथ	१४४
सैह सैहेन पादात्	३८८	सोऽवोचन्न ममायत्तं	८४	स्थितो द्वादशवर्षाणि	२२८
सैकतमस्या राजति चेदं	२१८	सोऽवोचन्नत्र भुञ्जेऽह-	११४	स्थित्वा सिंहोदरस्याग्रे	११०
सैतस्मिन्नगरे देवो	४०५	सोऽवोचन्मयि निर्वाणं	१६३	स्थूरीपृष्ठं समारुह्य	१६८
सोऽपि तस्याः परं वश्य	२०३	सोऽवोचन्मृत्युकन्या सा-	१७१	स्थूलमुक्ताफलसग्भि-	२११
सोऽपि वह्निप्रमस्तस्मा-	१६३	सोऽहं दर्शनमात्रेण	१३०	स्थैर्यनिर्जितशैलेन्द्रः	३५
सोऽपि श्रामण्यमासाद्य-	१४४	सोऽह पुनर्भवाद् मीरु	१६६	स्तनसाजलकसंश्लिष्ट-	१८६
सोऽप्याकर्णसमाकृष्टान्	३७६	सोऽहं भवत्प्रसादेन	५७	स्तानक्रोडोचितारम्या	२६२
सोऽन्नवीन मया ज्ञात	१४३	सोऽहं महात्मा भुवने	२२	स्तानालंकाररहितैः	१०७
सोऽथ नीतो विशाल्याया-	४०६	सोऽहं स्वमानमुन्मूल्य	१६५	स्तानोदकमिदं तस्या	४०२
सोऽथं यथा श्रुतो नाथः	१५०	सौदामिनीत्वरस्यास्य	५०	स्तिग्धञ्चलनसङ्काशा	३२५
सोऽथ लङ्कापुरीनाथो	३२६	सौधर्मेशानदेवामौ	१५३	स्तिग्धेन चक्षुषा पश्यन्	८०
सोऽथं समासाद्य परां विभूतिं	१३२	सौधादन्नतरन्नेगा-	७६	स्नेहालम्बनमेकैव	२८
सोऽहंक्षमो मया लब्ध-	१४०	सौन्दर्यकारणं नात्र	३५४	स्पर्द्धामनं समालोक्य	३७८
सोऽवोचच्छ्रुता देव-	२७०	सौमिनिः सद् पद्मो न	३४१	स्फटिकस्वच्छुकालिला	३१३
सोऽवोचच्छ्रुता राजनसि-	४०२	सौमित्रियुवनिसुकै-	१६	स्फीतदेवाचकारामे	२८४

स्फुटं यातोऽसि हा वत्स	२२८	स्वशरीरेऽपि निस्संगा	१४१	हा तात क्व प्रयातोऽसि	३००
स्फुटिताधरपादान्ताः	७२	स्वसंशयमशेषज्ञं	६७	हा देवि किमिदं मुग्धे	४६
स्फुरन्नण्डाचिरञ्च्योतिः	४०४	स्वसार च समालिङ्ग्य	६६	हानिः पुष्पकारस्य	३२६
स्फुरत्स्फुलिङ्गचञ्चला च	४१०	स्वसारमेवमाश्वस्य	२५४	हा पुत्रौ सुमहावीर्यौ	३६६
स्फुरद्भुजंगविस्फारि-	३१७	स्वस्ति स्वस्ति लकोदार-	१५५	हा भद्र लक्ष्मण प्राप्त-	३६६
स्मरन् सीता मनोयाता	२६४	स्वस्तिमन्निहितचेतस्के	२२०	हा भ्रातः परमोदार	३६६
स्मरन्प्राप्त्यनिर्दग्ध	२६४	स्वाध्यायनिरतानन्यान्	१८६	हा भ्रातः प्रथम दृष्टो	६४
स्मरेषु हतचित्तोऽसौ	२८३	स्वामिने चावदन्नत्वा	३०	हा मया पुण्डरीकाक्षौ	१४५
स्मित्वा च स जगादाय	१४३	स्वामिनो दशवक्त्रस्य	२६६	हा मातः कोऽयमत्रेति	२३
स्मयमाणोपदेशोऽसौ	२०६	स्वामिनो दृष्टिमार्गस्थाः	३१६	हा मातः पश्यतामुष्य	२०२
स्यन्दनैर्वारणैः सिंहै-	३६५	स्वामी त्व परमोऽस्वामि-	२४७	हा मातः सकल लोकं	४०३
स्यन्दनैर्विधैर्यनैः	३५६	स्वामी भरतखण्डाना	२८७	हा मातस्तादृशं दुःखं	४०३
स्यन्दनोद्वाहिनागाहि	३७६	स्वाहारेण क्वचिनुताः	१६६	हा मेऽन्तःकरणञ्छ्राय-	४०३
स्वच्छनीलाम्बरधर-	३०४	स्वेच्छ्रया तेषु यातेषु	१४७	हार स्वयप्रभामिख्यं	६४७
स्वजन नैव तौ कश्चि-	१८६	स्वेच्छ्रया पर्यटन्तस्ते	२११	हारराजितवत्सका	१५३
स्वजनस्योत्सवे जातो	२६१	स्वैरं स्वैरं जनकतनया	१२४	हा वत्स विधियोगेन	३६६
स्वनाथवचनात् साध्वी	३२६	[ह]		हा सीत इति भाषित्वा	२३६
स्वपाकादपि पापीयान्	३०५	हंसकुलामफेनपटलप्रमिन्न-	२१७	हाहाकार नृपाः कृत्वा	२८
स्वप्नः किमेष सम्प्राप्तं	४०३	हंसस्ताराद्भ्रसरसि	६३	हा हा मातः किमेतन्तु	२०५
स्वप्नप्रतिममैश्वर्यं	१८६	हंसीव पद्मिनीखण्डे	२२६	हाहाहीकारगम्भीरः	३३८
स्वप्नमेवं तु पश्यामि	१३७	इत महोपकारेण	३३	हिंसाघर्मविहीनाना	१६
स्वभावमागत दृष्ट्वा	२७७	इतवान् हन्यते पूर्व	३७२	हिंसाया कारणं घोरं	६
स्वभावविद्यामप्यज्ञा	२२५	इत्वा शत्रून् ससुद्दृष्ट्वा	३५२	हितं करोत्यसौ स्वस्य	१०८
स्वभावार्जवसम्पन्ना	६१	हनूमानप्यलं रेजे	३०४	हिमाहत इवात्यर्थ	४८
स्वयं दुर्मतिना सार्द्धं	३४१	हनूमानिति विख्यातः	३३०	हुताशनशिखागौरं	३०
स्वयंवरामिधं भूयः	४२	हनूमानिपुमिस्तस्य	३०६	हुतमार्यो द्विजो दीन-	२
स्वयमेव गमिष्यामि	२२१	हनूमान्यावदेतेन	३३६	हुता तत्र मया ज्ञाया	५७
स्वयमेव च सुग्रीवः	२८६	इन्ता सत्वसहस्राणा	१०७	हुदथागारमुद्दीप्तं	२४१
स्वर्गादिव ततोऽपस्तत्	१२६	हरिवाहननामाऽयं	३६	हुदये स्थापिताः कृच्छ्रा	४८
स्वर्गे राज्यं ददामीति	१७१	हस्तं हस्तेन सस्पृश्य	२६५	हे सुभ्रौव सुहृद्भव ते	३६७
स्वल्प इत्यनया बुद्ध्या	२६७	हस्तप्रहस्तसद्दीरौ	३७४	हेमकुम्भोपम गोत्रं	३०१
स्वल्पमप्यर्जितं पाप	१०	हस्तप्रहस्तसामन्ता-	३६६	हेमनानामणिसूतः	२८८
स्वल्पेन सुकृतेन त्व-	७१	हा कर्णं देव कस्मात् त्वं	२३६	द्वियमाणामथ प्रेक्ष्य	२३८
स्वशरीरमपि त्यक्त्वा	३०५	हा कान्त इति कूर्जश्च	६१	ह्लादनश्चपलश्चोळ-	३६५

